



॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धुः ।

द्वैतस्य समानपादवाणिमहामहोपाध्यायकाशीस्थ-

श्रीकमलाकरभट्टविरचितः ।

जयपुरवासिदाधीचकुलोत्पन्नमहामहोपाध्याय
पं. शिवदत्तेन संशोधितः टिप्पण्यालंकृतश्च ।

क्षेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुद्रय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कयित्वा

प्रासिद्धिं नीतः ।

संवत् १९६५, शके १८३०, १५०८

१८६५ तमविश्वशिक्षादि २५ तमराजनिस्मानुसारता राजल्लेखन सञ्चया

म्यागस्ता १०१५५ प्रख्यातः ।

किञ्चिदिह प्रास्ताविकम् ।

—१४३—

इह खलु अकारणवत्सलैः परमकारुणिकैः पापिदुःखासहिष्णुभिः रात्रिन्दिवमपि लोकोपकारो-
न्मुखैः पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणैर्महामहर्षिभिः प्रत्युपकारपराङ्मुखैः मनुयाजवत्स्यपराशरादिभिः
लोकसुपुण्यराशिभिरनुगृहीता महामहितसुगुणगरिष्णो भगवतः श्रीपरमेश्वरस्य प्रसादेन उपलब्धा
वेदास्तत्कल्पाश्च कल्पसूत्रस्मृत्यादिधर्मशास्त्रग्रन्थाः श्रीतस्मार्तसमयाचारघण्टापथाः सर्वतः सर्वैः
समाद्रियमाणाः स्वस्ववर्णाश्रमधर्मानुयायिभिः सज्जनैर्भारतखण्डस्थैः सर्वतोमुखमध्ययनाभ्यापनादिकु-
शलकुशाप्रबुद्धिभिः परिरक्ष्यमाणाश्च बहुशो दरीदृश्यन्ते । तेऽपि नानाविधविपुलधर्मशास्त्रनिबन्धेषु
अतीव दुरवगाहतां विस्तरं च दृष्ट्वा लसानामाधुनिकजनानां बुद्धिमान्द्यं तत्तद्ग्रन्थेभ्यस्तत्तत्प्राकरणिका-
र्थनिश्चयासामर्थ्यं सारासारविवेचनसामर्थ्यं शून्यतां देशकालादिव्यवस्थितिनिश्चयसामर्थ्याभावनादिकं च
पारिचिन्त्य सकलसाङ्गोपाङ्गवेदशास्त्रपुराणेतिहाससदाचारपारावारपारीणीस्तदुक्तान्यूनानुतिरिक्तधर्मानुष्ठान-
निष्ठगारिष्ठैः श्रीमद्रामकृष्णभट्टात्मजैः श्रीकमलाकरभट्टैः सर्वमहानिबन्धान्विलोडय सारासारविवे-
चनेन तत्तदर्थं निर्णयैककृत्याय “निर्णयसिन्धु” नामा धर्मशास्त्रमहानिबन्धोन्वयनामा न्यरचि
व्यलेखि च लोकानां हिताहितज्ञानोपदेशद्वारा । असंशयं तत्तत्समयोचितधर्मकर्मनुष्ठानाय आमूलचूड-
मोतप्रोतधर्माचार्यविविधमहर्षिवर्यवचनोपनिबद्धाखिलसिद्धान्तसद्रत्नानां रक्षाकरण्डरूपो वेदशास्त्रोद-
धिपारङ्गतानामपि परमानन्ददः किमुतान्येषाम् ॥

एतादृगयं सर्वमान्यो ग्रन्थः श्रीतस्मार्तधर्मानुष्ठाननिष्ठगारिष्ठैस्सर्वत्रापि सर्वेर्द्धैरपि सर्वधर्मनिर्ण-
यार्थमाद्रियते उपयुज्यते च त्रिकालेपीति सर्वैर्विदितमेव ॥

तस्मादयं ग्रन्थः, प्रयोजनबाहुल्येन प्रतिद्विजमिदं पुस्तकं प्रायः सर्वदा मुद्रणमन्तरा न सुष्ठम-
मिति विचिन्त्य मुद्रापणप्रयासमात्रयोग्यमूल्यग्रहणेन उक्तमहाशयलोकोपकाराय तदाशिषामुपलब्धये
च मया महामहोपाध्यायपण्डित श्रीशिवदत्तद्वारा परिशोध्य टिप्पणीविधृतिपुरस्सरं स्वीये
“श्रीवेङ्कटेश्वर” मुद्रणालये मुद्रापयित्वा प्रकाशमनीयत ।

अधुना च भिन्नभिन्नविषयाणां ज्ञातिव्यवगमाय भिन्नभिन्नविषयपङ्क्तिनां मिलितानां त्रोटनतो विभा-
गं विधाय पुनर्विशेषतः संशोध्य विवाह दिषु ज्ञाति गोत्रप्रवरनिर्णयार्थं प्रवरदर्पणप्रवराध्यायाशनु-
सारतो निर्मितगोत्रप्रवरबोधककोष्ठैर्यथास्थानं समलङ्कृत्य च प्रकाश्यत इति विज्ञापनम् ।

सर्वविद्वज्जनाशीराशासी-

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासः,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” (स्टीम) मुद्रणालयाध्यक्षः-मुंबयीस्थः.

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिंधुविषयानुक्रमणिका ।

प्रथमपरिच्छेदः ।

| विषयः | पृष्ठांकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|----------------------------------|------------|
| मङ्गलाचरणम् | ... | क्षयमासकालनियमः | ... |
| पोढाकालभेदः | ... | मलमासकार्याकार्यनिर्णयः | ... |
| अवधः पञ्चमा | ... | मलमासे वर्ज्यनिर्णयः | ... |
| चान्द्रोऽब्दः षष्टिभेदः | ... | मलमासे वर्ज्यवर्ज्यनिर्णयः | ... |
| संवत्सरनामानि | ... | गुरुशुक्रास्तादी वर्ज्यम् | ... |
| संवत्सरप्रवृत्तिः | ... | सिंहस्थे गुरो वर्ज्यनिर्णयः | ... |
| अयनस्वरूपम् | ... | सिंहगुरो गोशुक्रास्तादी वर्ज्यम् | ... |
| अयनयोर्विनियोगः | ... | गुरुशुक्रयोर्बालवृद्धत्वम् | ... |
| तत्र देवताप्रतिष्ठापननिर्णयः | ... | अतिचारगते जीवे | ... |
| दक्षिणायनेऽपि प्रतिष्ठा | ... | वात्यादेर्देशपरत्वव्यवस्था | ... |
| क्रतुनिर्णयः | ... | अस्तादेरपवादः | ... |
| क्रतुमासभेदाः | ... | मलमासप्रतम् | ... |
| मासभेदाः | ... | पक्षनिर्णयः | ... |
| संक्रान्तिनिर्णयः | ... | तिथिनिर्णयः | ... |
| सर्वसंक्रान्तिषु दानानि | ... | विशेषधनिर्णयः | ... |
| संक्रान्तिषु अनुपवासानिर्णयः | ... | मास्यप्रातर्विधिलक्षणम् | ... |
| संक्रान्तौषु स्वागदानिर्णयः | ... | तिथिविशेषे विधिविशेषः | ... |
| संक्रान्तौ श्राद्धम् | ... | कर्मकालव्यापिनी तिथिः | ... |
| पिण्डपदादिस्वरूपम् | ... | सामान्यतो दशमी | ... |
| अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धम् | ... | त्रयोदशी | ... |
| कुत्रचिद्रात्रौ स्नानम् | ... | प्रतिपदा | ... |
| जन्मर्क्षे संक्रान्तिश्चेत्तर्हि तत्र स्नानं | ... | खर्वदर्पलक्षणम् | ... |
| विशेषः | ... | एकभक्तम् | ... |
| कुत्रचित्सायंसंध्यानिषेधः | ... | अथ नक्तम् | ... |
| चान्द्रमासलक्षणम् | ... | प्रदोषलक्षणम् | ... |
| सावनादिमासव्यवस्था | ... | प्रदोषे तिथिद्वयार्थाः | ... |
| मलमासक्षयमासनिर्णयः | ... | सन्ध्यालक्षणम् | ... |
| अधिकमासकालनियमः | ... | यदिनक्तं विधवानक्तं च | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------|------------|---|------------|
| विधुरनक्तं तल्लक्ष्णम् | ... | दक्षिणानिर्णयः | ... |
| सौरनक्तम् | ... | रजतदक्षिणानिषेधः | ... |
| हरिनक्तम् | ... | पराश्रमभोजननिषेधः | ... |
| नक्ते धर्माचरणम् | ... | क्षारपदार्थनिषेधः | ... |
| अयाचितनिर्णयः | ... | क्षारस्वरूपनिर्णयः | ... |
| नक्षत्रव्रतकालः | ... | गोधूमप्रतिप्रसवः | ... |
| व्रतपरिभाषा... | ... | व्रते ग्राह्याभ्यानि | ... |
| तदधिकारिणः | ... | कृष्मांडादिनिषेधः | ... |
| शूद्रवैश्यवर्णधर्माः | ... | प्रतिपदादिपु | ... |
| स्त्रीणामनुज्ञैव | ... | हविष्यपदार्थाः | ... |
| स्त्रीणां स्नानविशेषः | ... | गृहीतव्रतत्यागे प्रायश्चित्तम् | ... |
| व्रतग्रहणप्रकारः | ... | उपवासप्रत्याग्रायाः | ... |
| व्रतारम्भकालः | ... | व्रते नियमाः | ... |
| भद्रानिर्णयः | ... | स्त्रीव्रते विशेषः | ... |
| भद्रापुच्छनिर्णयः | ... | विधवाया विशेषः | ... |
| भद्रा सर्पिणी वृश्चिकी च | ... | एकादश्यां ताम्बूलनिषेधः | ... |
| दिनभद्रा रात्रिभद्रा | ... | अशुपातादिनिषेधः | ... |
| व्रतारम्भे विशेषः | ... | सूतकादौ निर्णयः | ... |
| खण्डतिथिलक्षणम् | ... | जाताशौचे निर्णयः | ... |
| व्रतारम्भे धर्माः | ... | मृताशौचे निर्णयः | ... |
| व्रतस्थधर्माः... | ... | क्षतजाशौचे निर्णयः | ... |
| व्रते ब्राह्मणभोजनम् | ... | गार्भिण्यादीनां व्रते प्रतिनिषेधः | ... |
| सहस्रभोजने विशेषः | ... | पूर्वसंक्रिप्तव्रते रजस्वलासु प्रतिनिषेधः | ... |
| द्वित्रियजमानकर्तृके | ... | स्त्रीशूद्रयोर्व्रतादौ निषेधः | ... |
| शूद्रस्य विप्रद्वारा व्याहृतिर्हामः | ... | ब्राह्मणस्य हीनवर्णकर्मकरणे निषेधः | ... |
| प्रतिमास्वरूपम् | ... | कुत्रचित्प्रतिनिधिनिषेधः | ... |
| अनादेशद्रव्ये आज्यम्... | ... | व्रतादिसंनिपाते | ... |
| अनादेशमन्त्रे समस्तव्याहृतिः | ... | शिवरात्रौ प्रातः पारणम् | ... |
| अनादेशे देवता प्रजापतिः | ... | भूताष्टम्यादौ दिवाभोजननिषेधः | ... |
| ग्रहादिपूजायां होमसंख्या | ... | संक्रान्त्यादौ रात्रिभोजननिषेधः | ... |
| अनुक्तसंख्यायां निर्णयः | ... | चान्द्रायणे एकादश्यां भोजनं कार्यम् | ... |
| व्रतोद्यापनानुक्तौ | ... | प्रतिपदादितिथिनिर्णयः | ... |
| व्रतोद्यापनाशक्तौ | ... | सर्वतिथिषु वर्ज्याणि | ... |
| वृथा विप्रवचनग्रहणे | ... | द्वितीयानिर्णयः | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------|------------|--------------------------------------|------------|
| तृतीयानिर्णयः | ... | द्वादशीनिर्णयः | ... |
| चतुर्थीनिर्णयः | ... | त्रयोदशीनिर्णयः | ... |
| संकष्टचतुर्थीनिर्णयः | ... | प्रदोषत्रयम्... | ... |
| पञ्चमीनिर्णयः | ... | चतुर्दशीनिर्णयः | ... |
| षष्ठीनिर्णयः | ... | पूर्णिमामावास्यानिर्णयः... | ... |
| सप्तमीनिर्णयः | ... | अमायां सोमवारादि | ... |
| अष्टमीनिर्णयः तत्र, बुध्वाष्टमा | ... | योगे संयोगलक्षणो व्यतीपातः | ... |
| नवमीनिर्णयः | ... | अथेष्टिकालः.... | ... |
| दशमीनिर्णयः | ... | अमायां विशेषः | ... |
| एकादशीनिर्णयः | ... | मलमासादौ प्रथमारम्भनिर्णयः | ... |
| एकादश्युपवासानिर्णयः | ... | अथ विकृतीष्टिः | ... |
| एकादशीनित्यकाम्योपवासनिर्णये | ... | पशुसोमयागकालाः | ... |
| फलाहाराभ्यनुष्ठाननिर्णयः | ... | आधानकालाः | ... |
| दशमीविधे निर्णयः | ... | आधाननक्षत्राणि | ... |
| एकादशीव्रतोपयुक्तधर्माः | ... | अमावास्याश्राद्धकालः | ... |
| एकादशीव्रतेऽधिकारिणः | ... | पिण्डपितृयज्ञकालः | ... |
| एकादशीव्रताशक्तौ | ... | पिण्डपितृयज्ञकरणे प्रायश्चित्तम् | ... |
| एकादशीव्रताकरणे प्रायश्चित्तम् | ... | वैश्वदेवाकरणे प्रायश्चित्तम् | ... |
| काम्यव्रतविधिः | ... | पतितान्नभोजने प्रायश्चित्तम् | ... |
| दशमीनियमः | ... | निरम्भिकस्यामानिर्णयः | ... |
| व्रतघ्नानि तेषु प्रायश्चित्तम् | ... | सामिकस्यामानिर्णयः | ... |
| एकदश्यां श्राद्धभाषा | ... | सिनीवालीलक्षणम् | ... |
| अव्रतघ्नानि... | ... | कुल्लक्षणम्.... | ... |
| सर्वमतेषु नियमः | ... | कुतुपकाललक्षणम् | ... |
| उपवाससंकल्पः | ... | तुलादानम् | ... |
| द्वादश्यां व्रतनिवेदनगात्रः | ... | अनुपनीतानां शूद्राणां चामाश्राद्धानि | ... |
| द्वादश्यां वर्ज्यपदार्थाः... | ... | श्राद्धान्तरसंज्ञिपति | ... |
| आशौचे द्वादशीव्रतम् | ... | अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तम् | ... |
| रजस्वत्याया एकादशी.... | ... | ग्रहणनिर्णयः | ... |
| अथ द्वादशीनिर्णयः.... | ... | वेधनिर्णयः.... | ... |
| आद्रिकापकर्षः | ... | चन्द्रग्रहणे विशेषः | ... |
| प्रदोषादिसंकटे निर्णयः | ... | चन्द्रग्रस्तोदये | ... |
| हरिवासरलक्षणम् | ... | चन्द्रसूर्यग्रस्तास्ते | ... |
| उपवासातिक्रमे | ... | ग्रहणे सन्ध्याहोमादौ | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| बालवृद्धातुराणाम् ... | ... |
| शृतान्निषेधः | ... |
| तक्रघृतपाचितानां निर्णयः | ... |
| वेधे भोजनादिप्रायश्चित्तम् ... | ... |
| ग्रहणकाले भोजने प्रायः ... | ... |
| उपवासो ग्रहणे कैः कार्यः ... | ४४ |
| पुत्रवदुपवासनिषेधः ... | ... |
| ग्रहणे चूडामणियोगे ... | ... |
| स्नानादिकालनिर्णयः ... | ... |
| मुक्तिस्नानाकरणे दोषः ... | ... |
| ग्रहणस्नाने तीर्थादौ विशेषः | ... |
| उष्णोदकस्नाने तारतम्यम् ... | ४५ |
| तीर्थविशेषे दानविशेषः | ... |
| ग्रहणे श्राद्धविधिः ... | ... |
| ग्रहणे श्राद्धभोजने दोषः... | ... |
| सूतके ग्रहणे च कर्तव्यविशेषः ... | ... |
| रजस्वलास्नानम् ... | ४६ |
| रात्रावपि श्राद्धानि ... | ... |
| चन्द्रग्रहणं दिवाचेत् ... | ... |
| ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धे ... | ... |
| तत्र मन्त्रप्राप्तौ दीक्षाकालः ... | ... |
| जन्मराश्यादौ ग्रहणम्... | ४७ |
| ग्रहणे इष्टानिष्टफलम् ... | ... |
| तत्परिहारार्थं दानादि ... | ... |
| नागबिम्बदाने मन्त्रः ... | ... |
| अत्र शान्तिरुक्ता ... | ... |
| गर्भिण्या ग्रहणावलोकननिषेधः ... | ... |
| संगलकृत्येषु वेधविचारः ... | ... |
| ग्रहणे होमादिकर्तव्यता ... | ४८ |
| होमाशक्तौ चतुर्गुणो जपः ... | ४९ |
| मन्त्रदीक्षाहोमतर्पणम् ... | ... |
| कुतश्चे प्रतिग्रहे प्रायश्चित्तम् ... | ... |
| पूर्वसंकल्पितद्रव्योपग्रहणे विशेषः ... | ... |
| मेवाच्छादने अन्यादीनाम् ... | ... |

इति ग्रहणनिर्णयः ।

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---------------------------|------------|
| अथ समुद्रस्नानम् ... | ५१ |
| भौमभृगुवारस्नाननिषेधः ... | ... |
| अथ पर्वणि स्नानम् ... | ... |
| समुद्रस्नानविधिः ... | ५२ |
| समुद्रार्घ्यमंत्रः ... | ... |
| समुद्रतर्पणम् ... | ... |

इति प्रथमपरिच्छेदः ॥

अथ द्वितीयपरिच्छेदः ।

अथ चैत्रमासः ।

| | |
|--|-----|
| तत्रादौ तिथिकृत्ये विवाहादौ च शुक्ल- कृष्णमासादिनिर्णयः ... | ५३ |
| मीनसंक्रान्तिः ... | ... |
| चैत्रशुक्लप्रतिपत्संवत्सरारम्भः ... | ... |
| अधिकश्चेत्तदा निर्णयः ... | ... |
| अत्र तैलाभ्यंगः ... | ... |
| अत्र नवरात्रारंभः ... | ५४ |
| प्रपादानम् ... | ... |
| प्रत्यहं धर्मकुंभदानम् ... | ... |
| चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीदोलोत्सवः... | ... |
| अत्र सौभाग्यशयनव्रतम् ... | ... |
| इयं मन्वादिरपि ... | ... |
| अत्रैव प्रसंगात्सर्वमन्वादिनिर्णयः ... | ... |
| अत्र श्राद्धमुक्तं मात्स्ये... | ५५ |
| मलमासेपि मन्वादिश्राद्धमुक्तम् ... | ... |
| तत्र कर्तव्यतानिर्णयः ... | ... |
| अकरणे प्रायश्चित्तम् ... | ... |
| चैत्रशुक्लतृतीया मत्स्यजयंती ... | ... |
| अत्रैव दशावतारजयंत्यः ... | ... |
| चैत्रशुक्लपंचमी कल्पदिः ... | ५६ |
| चैत्रशुक्लपंचम्यां लक्ष्मीपूजनम् ... | ... |
| चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः ... | ... |
| अत्रैव भवानीयात्रा ... | ... |
| तत्रैवाशोककलिकाप्राशनम् ... | ... |
| चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी ... | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| रामपूजाविधिः | ५७ |
| चैत्रशुक्लैकादश्यां दोलोत्सवः | ५८ |
| चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः | " |
| तिथिविशेषे दमनारोपणम् | ५९ |
| आगमोक्तदीक्षावतां दमनारोपणविधिः | " |
| चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंगव्रतम् | ६० |
| चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वा प्राह्या | " |
| चैत्रशुक्लपौर्णमासी | ६१ |
| अत्र चित्रवस्त्रदानस्नानदानश्राद्धा- द्युक्तम् | " |
| अत्रैव सर्वदेवानां दमनपूजनमुक्तम् | " |
| इयं मन्वादिरपि | ... |
| चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महानारुणीसं- ज्ञयोगः | ... |
| चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां स्नानम् | ... |

इति चैत्रमासः ।

अथ वैशाखमासः ।

| | |
|--------------------------------|-----|
| मेघसंक्रान्तिः | ... |
| धर्मघटदानम् | ... |
| अथ वैशाखस्नानम् | ... |
| तीर्थनामाज्ञाने | ... |
| तुलस्यादिपुष्पैर्विष्णुपूजा | ... |
| अत्राश्वत्थसेचनादि | ... |
| अत्र प्रपागलंतिकादानम् | ... |
| वैशाखे मलमासे सति नि० | ... |
| वैशाखे सर्वस्नानाशक्तौ | ... |
| वैशाखे मलमासे सति | ... |
| अत्र दानविशेषः | ... |
| वैशाखव्रतोद्यापनम् | ... |
| उद्यापनाशक्तौ | ... |
| वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीया | ... |
| इयं युगादिः | ... |
| अत्र श्राद्धनिर्णयः | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|-----------------------------------|------------|
| अत्र धर्मघटादिदानं मंत्रश्च | ... |
| अत्र रात्रिभोजननिषेधः | ... |
| वैशाखे मलमासे सति | ... |
| तत्रैव युगादिः कार्यः | ... |
| अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तम् | ... |
| अत्र समुद्रस्नानं प्रशस्तम् | ... |
| इयमेव परशुरामजयंती | ... |
| वैशाखशुक्लसप्तम्यां गंगोत्सृज्यते | ... |
| वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषः | ... |
| वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती | ... |
| वैशाखशुक्लपौर्णमास्यां विशेषः | ... |
| अत्र कृष्णजिनदानम् | ... |
| इति वैशाख मासः । | |

अथ ज्येष्ठमासः ।

| | |
|---|-----|
| वृषसंक्रान्तिः | ... |
| ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतम् | ... |
| ज्येष्ठशुक्लदशमी दशहरा | ... |
| ज्येष्ठे मलमासे सति | ... |
| अत्र विशेषः काशीखंडे | ... |
| ज्येष्ठशुक्लैकादशी निर्जला | ... |
| ज्येष्ठशुक्लपौर्णमास्यां सावित्रीव्रतम् | ... |
| इयं मन्वादिः | ... |

इति ज्येष्ठमासः ।

अथाषाढमासः ।

| | |
|---------------------------------------|-----|
| मिथुनसंक्रान्तिः | ... |
| आषाढशुक्लद्वितीयायां रथोत्सवः | ... |
| आषाढशुक्लदशमी पौर्णमासी च मन्वादिः | ... |
| आषाढशुक्लद्वादश्यां पारणानिर्णयः | ... |
| अत्रैव विष्णुशयनोत्सवः | ... |
| आषाढशुक्लैकादशी | ... |
| अत्रैव चातुर्मास्यारंभः | ... |
| व्रतग्रहणमंत्रः | ... |

| विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| चातुर्मास्ये वर्ज्यपदार्थाः ... | ७३ |
| चातुर्मास्यव्रतसमाप्तौ दानानि ... | ७४ |
| अत्र तप्तद्राधारणम् ... | ७५ |
| आपाढशुक्लपौर्णमास्यां कौकिला- व्रतम् ... | ७६ |
| अत्रैव शिवशयनोत्सवाविधिः ... | ७७ |
| अत्रैव व्यासपूजा ... | ७८ |
| इत्यापाढमासः । | |

अथ श्रावणमासः ।

| | |
|--|----|
| कर्कसंक्रान्तिः ... | ७६ |
| कर्के केशनिकृंतनं वर्ज्यम् ... | ७७ |
| नदीनां रजोदोषः ... | ७७ |
| महानद्यः ... | ७८ |
| सप्त नदाः ... | ७८ |
| कुत्रचिद्रजोदोषाभावः ... | ७९ |
| श्रावणशुक्लतृतीया मधुसूता ... | ७८ |
| श्रावणशुक्लचतुर्थी मातृविद्धा ग्राह्या ... | ७९ |
| श्रावणशुक्लपंचमी नागपंचमी ... | ८० |
| अत्र विशेषो हेमाद्रौ ... | ८० |
| श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिब्रतम् ... | ८० |
| अस्यामेव विष्णोः पवित्रारोपणम् ... | ८० |
| शिवपवित्रारोपणम् ... | ८० |
| देवतापरत्वेन पवित्रारोपणम् ... | ८० |
| पवित्रारोपणे गौणकालः ... | ८० |
| पवित्रनिर्माणप्रकारः ... | ८० |
| पवित्रारोपणेऽधिकारिणः ... | ८० |
| पवित्रारोपणविधिः ... | ८० |
| पवित्रारोपणाकरणे प्रायश्चित्तम् ... | ८० |
| श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ... | ८० |
| अथोपाकर्मानिर्णयः ... | ८० |
| उत्सर्जननिर्णयः ... | ८० |
| श्रावणपौर्णमास्यां रक्षाबंधनमुक्तम् ... | ८५ |
| अत्रैव हयग्रीवोत्पत्तिः ... | ८५ |

| विषयः | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|
| अस्यामेव श्रवणार्कर्म ... | ८५ |
| श्रावणशुक्लद्वितीयायामशून्यव्रतम् ... | ८६ |
| इति श्रावणमासः । | |

अथ भाद्रपदमासः ।

| | |
|---|----|
| सिंहसंक्रान्तिः ... | ८६ |
| सिंहे गोप्रसवशान्तिः ... | ८६ |
| महिष्यादिप्रसवशान्तयः ... | ८६ |
| भाद्रकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञा ... | ८६ |
| भाद्रकृष्णचतुर्थी बहुला ... | ८६ |
| अत्र गोः पूजा यवान्नाशनं च ... | ८६ |
| भाद्रकृष्णषष्ठी हलषष्ठी ... | ८६ |
| भाद्रकृष्णसप्तमी शीतला ... | ८६ |
| भाद्रकृष्णाष्टमी जन्माष्टमी ... | ८६ |
| जन्माष्टमीपारणानिर्णयः ... | ९१ |
| अष्टम्यां पूजाविधिः ... | ९२ |
| भाद्रपदमावास्यायां कुशग्रहणम् ... | ९२ |
| भाद्रशुक्लतृतीयायां ह रितालिकाव्रतम् ... | ९२ |
| भाद्रशुक्लचतुर्थी वरदचतुर्थी अत्रैव सिद्धिविनायकव्रतम् ... | ९३ |
| अत्रचंद्रदर्शनं निषिद्धम् ... | ९३ |
| भाद्रशुक्लपंचमी ऋषिपंचमी ... | ९३ |
| भाद्रशुक्लषष्ठी सूर्यषष्ठी ... | ९४ |
| भाद्रशुक्लसप्तमी मुक्ताभरणसप्तमा ... | ९४ |
| भाद्रशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी ... | ९४ |
| अत्रैव ज्येष्ठापूजोक्ता ... | ९५ |
| भाद्रशुक्लद्वादश्यां पारणानिर्णयः ... | ९५ |
| अत्र रिवर्तनोत्सवः ... | ९५ |
| अत्रैव शक्रध्वजोत्थापनम् ... | ९५ |
| इयमेव श्रवणद्वादशी ... | ९६ |
| अस्यामेव द्वादश्यां वामनोत्पत्तिः ... | ९७ |
| अत्रैव दुर्गव्रतम् ... | ९८ |
| भाद्रपदचतुर्दश्यामनंतव्रतम् ... | ९९ |
| अथागस्त्याद्यर्घ्यम् ... | ९९ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| भाद्रशुक्लपौर्णमास्यां नांदीमुखपितृ- श्राद्धम् | १०० |

इति भाद्रपदमासः ।

अथाश्विनमासः ।

| | |
|--|-----|
| कन्यासंक्रांतिः | १०१ |
| अथ महालयः | " |
| पौडशमहालयनिर्णयः | " |
| विधवाया विशेषः | १०२ |
| महालयेवर्ज्यतिथयः | " |
| महालयेवर्ज्यनक्षत्रादि... .. | " |
| पुष्यमपवादमाह | " |
| संन्यासिनां महालयः | १०३ |
| कालातिक्रमे गौणकालः... .. | " |
| महालयादिश्राद्धमन्त्रेनैव कार्यं नत्वा- मेत | १०४ |
| महालये देवताः | " |
| अनकसापत्नमावृत्तु पिंडदानम् | " |
| बहुव्राह्मणाभावे | " |
| एकौहिष्टस्वरूपम् | " |
| अथ पाणिहोमः | " |
| अत्र भूरिलोचनौ देवौ | १०५ |
| संन्यस्तापितृकेण जीवत्पितृकेणापि महालयः कार्यः | " |
| जीवत्पितृके निषेधः | " |
| सांकल्पिकश्राद्धस्वरूपम् | " |
| सकृन्महालये तर्पणनिर्णयः | " |
| विषिद्धदिने तर्पणम् | " |
| मलमासे सति निर्णयः | " |
| महालये कृते फलम् | " |
| महालयाकरणे दोषः | " |
| महालयाकरणे प्रायश्चित्तम् | " |
| अत्र भरणीश्राद्धनिर्णयः | " |
| कपिलापष्टोनिर्णयः... .. | १०६ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कान्दे | " |
| इयं चंद्रपष्ठी | " |
| अष्टम्यां माघ्यावर्षश्राद्धम् | " |
| अष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम् | १०७ |
| अथ नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् | " |
| अत्राशक्तावनुकल्पमाहाश्वलायनः १०९ | |
| एतदकरणे प्रायश्चित्तम् | " |
| द्वादश्यां संन्यासिनां महा० | " |
| मघात्रयोदशीश्राद्धम् | " |
| अत्र गजच्छायायुक्ता | " |
| मघात्रयोदशीमहालयः | " |
| युगादिश्राद्धानां तत्रेण प्रयोगः ११० | |
| आश्विनकृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रादिमू- तानां श्राद्धम् | " |
| अमावास्यायां गजच्छाया | ११२ |
| आश्विनकृष्णप्रतिपदि दौहित्रश्राद्धम् " | |
| इति महालयनिर्णयः । | |
| आश्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारंभनि- र्णयः | ११२ |
| अथ पूजाविधिः | ११६ |
| कुमारीपूजा | " |
| नवरात्रे वेदपारायणम् | ११७ |
| सप्तशतीचंडीपाठः | " |
| प्रतिपदादौ विशेषः | ११८ |
| स्त्रीकर्तृकव्रते विशेषः | " |
| अत्राशौचे निर्णयः | " |
| आश्विनशुक्लपंचम्यामुपांगललिताव्र- तम् | " |
| सरस्वत्यावाहनम् | ११९ |
| आश्विनशुक्लषष्ठ्यां विल्वाभिर्मंत्रणम् " | |
| अस्यामेव देवीत्रिरात्रम् | " |
| पत्रिकापूजाविधिः | १२० |
| देव्यागृहकरणे निर्णयः | " |
| देव्याः प्रतिमालक्षणम् | १२१ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------|------------|
| हेमादिप्रतिमाकरणम् ... | ... |
| प्रतिमाभावे विशेषः ... | ... |
| सप्तमीपूजाविधिः | ... |
| अथ शस्त्रादिपूजोक्ता | ... १२२ |
| दुर्गास्तुतिः | ... |
| अथ महाष्टमी | ... |
| इयमेव मूलयुक्ता महानवमी ... | ... १२३ |
| पुत्रवतोष्टम्यामुपवासनिषेधः ... | ... |
| लोहाभिसारिकं कर्म | ... १२४ |
| छत्रादिपूजामंत्राः | ... १२५ |
| महानवमीनिर्णयः | ... १२७ |
| होमप्रकारः | ... १२८ |
| अथ बलिदानम् | ... १२९ |
| अथ शतचंडीविधानम् | ... १३० |
| हस्तचंडीविधानम् | ... |
| नवरात्रपारणानिर्णयः | ... |
| स्त्रीणां रजोदर्शने पारणानिर्णयः ... | ... १३२ |
| अथ दशमीनिर्णयः | ... |
| इयमेव विजया दशमी | ... १३३ |
| आश्विनपौर्णमासीनिर्णयः | ... १३४ |
| अस्यां कोजागरीव्रतम् | ... |
| अत्रैवाश्वयुजोर्कर्मोक्तम् | ... |
| अत्रैवाग्रयणनिर्णयः | ... |
| अस्याऽहरणे प्रायश्चित्तम् | ... |

इत्याश्विनमासः ।

अथ कार्तिकमासः ।

| | |
|-----------------------------------|---------|
| तुलासंक्रान्तिः | ... १३५ |
| कार्तिकस्नानारंभः | ... |
| अथ मालाधारणम् | ... १३६ |
| कार्तिके द्विदशदिवर्जनम् | ... |
| आकाशदीपनिर्णयः | ... १३७ |
| करकचतुर्थीनिर्णयः | ... |
| कार्तिककृष्णद्वादशी गोवत्सद्वादशी | १३८ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| द्वादश्यादिषु पंचदिनेषु नीराजनविधिः .. | ... |
| कार्तिककृष्णत्रयोदश्यां यमदीपदानम् .. | ... |
| कार्तिककृ० चतुर्दशी नरकचतुर्दशी .. | ... |
| अस्यामभ्यंगस्ताननिर्णयः | ... |
| अस्यामेव दीपोत्सवः ... १३९ | ... |
| अस्यां माषपत्रशाकभोजनम् ... १४० | ... |
| अत्र भीष्मतर्पणमुक्तम् | ... |
| अथामावास्यायामभ्यंगम् | ... |
| अत्र लक्ष्मीपूजनम् | ... |
| अलक्ष्मीनिःसारणम् | ... १४१ |
| कार्तिकशुक्लप्रतिपदि गोकीडनम् | ... |
| अत्र बलिपूजोक्ता | ... |
| अत्रैव द्यूतं कर्तव्यम् | ... १४२ |
| अस्यां गोवर्धनपूजोत्सवः | ... |
| अत्र मार्गपालीबंधनम् | ... |
| अथ यमद्वितीया | ... |
| अत्र यमपूजनं यमुनास्नानं च | ... |
| अस्यां भगिनीहस्ताद्भोजनम् ... १४३ | ... |
| कार्तिकशुक्लनवमी युगादिः | ... |
| अत्रैव विष्णुत्रिरात्रव्रतम् | ... |
| का० शुक्लैकादश्यां भीष्मपंचकव्रतम् .. | ... |
| कार्तिकशुक्लैकादश्यां पारणानिर्णयः १४४ | ... |
| अस्यामेव रात्रौ देवोत्थापनमुक्तम् .. | ... |
| अस्यां चातुर्मासस्यव्रतसमाप्तिः १४५ | ... |
| अथ वाराहोक्तो बोधिनीविधिः | ... |
| कार्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च | ... |
| मन्वादिः | ... |
| कार्तिकशुक्लचतुर्दशी वैकुण्ठचतुर्दशी .. | ... |
| अस्यामेव विश्वेश्वरयात्रा | ... |
| अथ कार्तिकव्रतोद्यापनम् | ... |
| अथ कार्तिकापूर्णिमा | ... १४६ |
| अत्र योगविशेषः | ... |
| अस्यां पद्मकयोग उक्तः | ... |
| अस्यामेव नत्स्यावतारः | ... |
| अत्र त्रिपुरोत्सव उक्तः | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|------------------------------|------------|
| अत्र वृषोत्सर्ग इक्तः | ... |
| अत्रैव कार्तिकेयदर्शनमुक्तम् | |
| इति कार्तिकः । | |

अथ मार्गशीर्षमासः ।

| | | |
|--|------|-----|
| वृश्चिकसंक्रान्तिः | ... | १४६ |
| मार्गशीर्षकृष्णाष्टमी कालाष्टमी | | " |
| अत्रोपवासनिर्णयः | ... | " |
| मार्गशीर्षशुक्लपंचमी नागपंचमी | ... | १४७ |
| मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी चंपाषष्ठी | ... | " |
| इयमेव स्कंदषष्ठी | ... | " |
| मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचमो- चनीश्राद्धम् | ... | " |
| मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्पत्तिः | ... | " |
| इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या | | १४८ |
| मार्गशीर्षपूर्णिमानंतराष्टमीअन्वष्टका अष्टकानिर्णयः | ... | " |
| अत्र कामकालौ देवौ | | " |
| इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौ देवौ | ... | " |
| अष्टकाऽकरणे प्रायश्चित्तम् | ... | " |
| मलमासे सति निर्णयः | | " |
| मार्गशीर्षादौ रविवारव्रतम् | .. | " |
| इति मार्गशीर्षः । | | |

अथ पौषमासः ।

| | | |
|--|------|-----|
| धनुःसंक्रान्तिः | ... | १४९ |
| पौषशुक्लाष्टम्यां बुधयोगे स्नानदाना- दिकमुक्तम् | ... | " |
| अत्रैव रोहिण्यार्द्रयोगे विशेषः | ... | " |
| पौषशुक्लादशी मन्वादिः | ... | " |
| पौषपौर्णमासीनिर्णयः | ... | " |
| पौषामावास्यायामर्षोदयः | | " |
| अत्र दानादिविशेष उक्तः | ... | " |
| इति पौषः । | | |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--------|------------|
|--------|------------|

अथ माघमासः ।

| | | |
|--|------|-----|
| माघस्नाननिर्णयः | ... | " |
| अत्राधिकारिणः | ... | " |
| अशक्तौ उष्णोदकस्नानम् | ... | " |
| माघे मलमासे सति निर्णयः | ... | " |
| माघस्नाने मंत्रः | ... | " |
| माघस्नानकालः | ... | १५१ |
| मासपर्यंतं स्नानासंभवे त्र्यहं स्नान- निर्णयः | ... | " |
| स्तानोत्तरकृत्यमुक्तम् | ... | १५२ |
| अत्र भोज्यकंवलादिदानं | ... | " |
| अत्र व्रतोद्यापनमुक्तम् | ... | " |
| मकरसंक्रान्तिः | | " |
| तत्र कालनिर्णयः | | " |
| अत्र रात्रावपि श्राद्धमुक्तम् | ... | " |
| माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणम् | ... | १५४ |
| माघशुक्लचतुर्थी तिलचतुर्थी | | " |
| इयमेव कुंदचतुर्थी | ... | " |
| माघशुक्लपंचमी श्रीपंचमी | ... | " |
| माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमी | | " |
| अस्यां स्नानमुक्तम् | ... | " |
| अत्र विधिर्भविष्ये | ... | १५५ |
| दानादिविशेष उक्तः | ... | " |
| इयं मन्वादिः | ... | " |
| माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी | ... | १५६ |
| अत्र श्राद्धं काम्यमुक्तम् | ... | " |
| माघशुक्लद्वादशी भीष्मद्वादशी | ... | " |
| माघपौर्णमासीनिर्णयः | ... | " |
| अत्र स्नानदानाद्युक्तम् | ... | " |
| अस्यां माघ्याष्टकानिर्णयः | ... | " |
| इति माघः । | | |

अथ फाल्गुनमासः ।

| | | |
|-----------------|------|-----|
| कुंभसंक्रान्तिः | | १५६ |
|-----------------|------|-----|

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| फाल्गुनकृष्णाष्टमी सीताष्टमी ... | १५७ |
| फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रि- निर्णयः ... | १५८ |
| शिवरात्रेः पारणानिर्णयः ... | १५८ |
| इदं व्रतं नित्यं काम्यं चेत्युक्तम् ... | १५९ |
| अस्यां व्रतारंभो हेमाद्रौ ... | १५९ |
| शिवरात्रिव्रतोद्यापनम् ... | १६० |
| माघामावास्या युगादिः ... | १६० |
| फाल्गुनपौर्णमास्या होलिकानिर्णयः ... | १६० |
| तत्र भद्रानिर्णयः ... | १६१ |
| अत्र ग्रहणे निर्णयः ... | १६१ |
| होलिकापूजामंत्रः ... | १६१ |
| मलमासे सति निर्णयः ... | १६२ |
| इयं मन्वादिः ... | १६२ |
| अत्र गोविन्दोलोत्सवः ... | १६२ |
| चैत्रकृष्णप्रतिपादि वसंतोत्सवः ... | १६२ |
| होलिकाविभूतिवन्दनम् ... | १६२ |
| तत्र मंत्रः ... | १६२ |
| अस्यामेव चूतकुसुमप्राशनम् ... | १६२ |
| चैत्रामावास्या मन्वादिः ... | १६२ |
| इति फाल्गुनः । | |
| ग्रंथकर्तुरभ्यर्थना ... | |
| इति द्वितीयपरिच्छेदानुक्रमणिका । | |

अथ तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्धम् ।

| | |
|---------------------------------------|-----|
| मंगलाचरणम् | १६३ |
| आदौ गर्भावानम् | १६३ |
| तत्र प्रथमरजोदर्शने दुष्टतिथ्यादिफलम् | १६३ |
| दुष्टवारादिफलम् | १६३ |
| दुष्टनक्षत्रादिफलम् | १६३ |
| लग्नफलम् | १६३ |
| वस्त्रफलम् | १६३ |
| समविषमरक्तादिफलम् | १६३ |
| प्रभूतदोषे स्त्रीसंसर्गवर्जनम् | १६३ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| योगफलम् ... | १६४ |
| प्रथमर्तौ दुष्टयोगे शांतिः ... | १६४ |
| प्रथमर्तौ विशेषः ... | १६४ |
| द्वितीयाद्युत्तुषु नियममाह ... | १६४ |
| प्रथमर्तौः पूर्व स्त्रीगमने निषेधः ... | १६४ |
| ऋतौ गमनमाह ... | १६४ |
| अनृतावपि गमनम् ... | १६४ |
| ऋतौ रात्रिसंख्या ... | १६४ |
| तत्र निंदरात्रयः ... | १६४ |
| तत्र तिथ्यादीनाह ... | १६४ |
| समविषमरात्रिफलम् ... | १६४ |
| चतुर्थ्यादिरात्रिफलानि ... | १६४ |
| रजस्वलायाश्चतुर्थदिने कर्माधिकारनि० ... | १६४ |
| श्राद्धादौ स्त्रीगमने निर्णयः ... | १६४ |
| अनेकभार्यस्य ऋतुगमने ... | १६४ |
| ऋतावगमने दोषमाह ... | १६४ |
| गर्भाधानांगदोषाकरणे प्रायश्चित्तम् ... | १६४ |
| अत्र मलमासशुक्रास्तादिनिर्णयः ... | १६४ |
| स्त्रीगमने शुद्धिमाह ... | १६४ |
| रात्रौ रजसि जननाशौचादिनिर्णयः ... | १६४ |
| सप्तदशदिनात्प्राग् रजोदर्शने ... | १६४ |
| रोगजे रजसि ... | १६४ |
| रजस्वलानामन्योन्यस्पर्शे ... | १६४ |
| असवर्णानां विशेषः ... | १६४ |
| रजस्वलायाश्चांडालादिस्पर्शे ... | १६४ |
| रजस्वलायानैमित्तिकस्नानम् ... | १६४ |
| रजसोऽज्ञाने सति विचारः ... | १६४ |
| अथ पुंसवनम् ... | १६४ |
| पुंनक्षत्राणि ... | १६४ |
| पुंसवने तिथ्यादि ... | १६४ |
| अनवल्लोभनम् ... | १६४ |
| अथ सीमन्तोन्नयनम् ... | १६४ |
| प्रतिगर्भं कर्तव्यता ... | १६४ |
| सीमन्तोन्नयनाभावे ... | १६४ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------|------------|----------------------------------|------------|
| सीमन्तोन्नयने भोजनप्रायश्चित्तम् ... | ... | शूद्रकर्तृकहोमे विशेषः ... | ... |
| गर्भिणीतत्पतिधर्माः ... | ... | यमलयोज्येष्टकनिष्ठविचारः ... | १७७ |
| पत्युर्वपनादिनिषेधः | १७१ | सूतिकास्नानम् ... | ... |
| पत्युः श्राद्धभोजननिषेधः | ... | अथ नामकर्मतत्कालनिर्णयः ... | ... |
| अथ सूतिकागृहप्रवेशः ... | ... | अथ दोलारोहः | १७८ |
| अथ जातकर्म | ... | अथ दुग्धपानम् | १७९ |
| अत्र वृद्धिश्राद्धे विचारः ... | १७२ | अथ कर्णवेधः ... | ... |
| एतत् जननमरणाशौचेऽपि ... | ... | अथ ताम्बूलभक्षणम् ... | ... |
| जन्मानि गंडांतादिदुष्टकालस्तद्दानम् | ... | अथ निष्क्रमणम् ... | ... |
| अथाश्लेषाफलम् | १७३ | अथोपवेशनम् ... | १८० |
| अथ ज्येष्ठाफलम् | ... | अथान्नप्राशनम् ... | ... |
| अथ मूलफलम् ... | ... | अथाब्दपूर्तिः ... | १८१ |
| अभुक्तमूललक्षणम् ... | ... | तद्दिने वर्ज्यम् ... | ... |
| अथ मूलवृक्षः ... | ... | उष्णोदकस्नानमुक्तम् ... | ... |
| वृषादिपरत्वेन मूलवासस्तत्फलं च ... | ... | कटिसूत्रम् ... | ... |
| विशाखादिनक्षत्रफलम् ... | ... | अथ चौलम् ... | ... |
| चित्रादिफलम् | १७४ | मातरि गर्भिण्यां निषेधः ... | १८२ |
| व्यतीपातादिफलम् ... | ... | ज्वरोत्पत्तौ निषेधः ... | ... |
| विकृतांगजनने फलम् ... | ... | मातरि रजस्वलायाम् ... | ... |
| सदंते जाते फलम् | ... | संकटे विचारः ... | ... |
| कृष्णचतुर्दशीजनने | ... | मुंडनोत्तरं मुंडनं न कार्यम् ... | ... |
| पित्राद्येकनक्षत्रजाते ... | ... | मुंडनमुंडनविचारः ... | ... |
| ग्रहणजननशांतिः ... | ... | सोदरयोः समानक्रियानिषेधः ... | १८३ |
| अकालप्रसवादिफलम् ... | ... | आशौचादौ प्राप्ते निर्णयः ... | ... |
| युगुलप्रसवादि० ... | ... | षष्ठाब्दादौ मुंडननिषेधः ... | ... |
| विकृतप्रसवादि० ... | ... | शिखाधारणविचारः ... | ... |
| उपरिदंतजनने० ... | ... | स्त्रीशूद्रयोः शिखाविचारः ... | ... |
| द्वितीयादिमासे दंतजनने फलम् | ... | अत्र भोजने प्रायश्चित्तम् ... | ... |
| तच्छांतिविधिः | १७५ | स्त्रीणां संस्कारविचारः ... | ... |
| प्रथमोर्ध्वदंतजनने फ० ... | ... | अथ विद्यारंभः | १८४ |
| तच्छांतिविधिः ... | ... | अथ धनुर्विद्या ... | ... |
| अथ त्रिकजननशान्तिः ... | ... | अनुपनीतस्य विशेषः ... | ... |
| अथ षष्ठीपूजा ... | ... | शिशुलक्षणम्.... | ... |
| दत्तकपुत्रपरिग्रहविधिः | १७६ | अथोपनयनम् ... | ... |
| स्त्रीशूद्रयोर्दत्तकविचारः | ... | जन्ममासादिनिर्णयः ... | १८५ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|-------------------------------------|------------|
| उपनयने गुरुवलम् ... | ... | अथ पुनरुपनयनम् | ... |
| गलप्रहाः ... | ... | तन्निमित्तानि च | ... १९२ |
| नैमित्तिकानध्यायः ... | ... १८६ | मृतवार्ता श्रुत्वा कृतौर्ध्वदेहिकः | |
| ज्येष्ठमासादिनिर्णयः ... | ... | पुनरागच्छति चेत् ... | ... |
| सोपदास्तिथयः ... | ... | प्रव्रजितः पुनर्गृहस्थाश्रमं कर्तु- | |
| प्रदोषस्वरूपम् ... | ... | मिच्छति चेत् ... | ... |
| अक्षय्यतृतीयादौ उपनयनम् ... | ... | पित्रादिव्यतिरेके प्रेतकर्मकरणे ... | ... |
| भूकंपादौ ... | ... | एकं वेदमधीत्य द्वितीयमध्येतुमिच्छ- | |
| शाखाधिपाः ... | ... १८७ | ति चेत् ... | ... |
| प्रातःसंध्यागर्जने ... | ... | पुनरुपनयने कृत्यविचारः ... | ... |
| पुनरुपनयनम् ... | ... | स्त्रीणामुपनयनम् ... | ... |
| सायंगर्जने शांतिः ... | ... | अथानध्यायाः ... | ... १९३ |
| उपनयने नक्षत्राणि ... | ... | महानामन्यादिब्रतम् ... | ... १९४ |
| उपनयनाधिकारिणः ... | ... | समावर्तनम् ... | ... |
| षण्ढमूकादीनां विशेषः ... | ... | बटोः पूर्वमृतानां त्र्यहाशौचं ... | ... १९५ |
| कुंडगोलकयोगाद्युपदेशः ... | ... १८८ | स्नातकव्रतानि ... | ... |
| भिक्षायांविचारः ... | ... | छुरिकाबंधः ... | ... |
| संस्कारलोपे प्रायश्चित्तम् ... | ... | अथ विवाहः ... | ... |
| अतीतसंस्काराणां युगपत्करणम् ... | ... | सापिण्ड्यनिर्णयः ... | ... १९६ |
| उपनीत्या सह चौलकरणे ... | ... | त्रिगोत्रात्यये विशेषः ... | ... १९७ |
| उपनयनदिने मध्याह्नसंध्या ... | ... | मातुलकन्यापरिणयननिर्णयः ... | ... १९८ |
| ब्रह्मयज्ञारंभः ... | ... | जीवतिपित्रादित्रिकसर्पिडाः ... | ... १९९ |
| अथ ब्रह्मचारिधर्माः | ... १८९ | कन्यासापिण्ड्यम् ... | ... २०० |
| गुरुच्छिष्टम् ... | ... | सापत्नमातामहकुले सा० ... | ... |
| दण्डाः ... | ... | गुरुकुले त्रिपुरुषं सापिण्ड्यम् ... | ... |
| आजिनम् ... | ... | दत्तकस्य सापिण्ड्यम् ... | ... २०१ |
| यज्ञोपवीतं तन्निर्माणप्रकारश्च ... | ... १९० | गोत्रप्रवरनिर्णयः ... | ... २०२ |
| यज्ञोपवीतधारणसंख्या ... | ... | प्रवरनिर्णयः ... | ... २०३ |
| ब्रह्मचारिधर्मलोपे प्रायश्चित्तम् ... | ... | गोत्रप्रवरकोष्टकम् ... | ... २०४ |
| अग्निकार्यलोपे ... | ... | अथ द्विगोत्राः ... | ... २१३ |
| संध्यालोपे ... | ... | गोत्राज्ञाने ... | ... |
| स्त्रीसंगे | ... १९१ | मातृगोत्रनिर्णयः ... | ... |
| यज्ञोपवीतं विना भोजनादिकरणे | | सगोत्रविवाहे प्रायश्चित्तम् ... | ... |
| प्रायश्चित्तम् ... | ... | कन्याविवाहकालः ... | ... २१५ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------|------------|
| गुर्वर्कबलम् | ... |
| बृहस्पतिशान्तिः | २१६ |
| सिंहस्थे गुरौ निर्णयः | |
| शुक्रास्तादिनिमित्ते | |
| अथ कन्यादातारः | ... २१७ |
| भ्रातृणां संस्कृतानामधिकारः | |
| स्वयंवरे नांदीश्राद्धम् | |
| मातृदातृत्वेनांदीश्राद्धम् | |
| परकीयकन्यादाने | |
| गौर्यादिदानफलम् | |
| विवाहे मासनिर्णयः | |
| ज्येष्ठमासनिर्णयः | |
| दश दोषाः | ... २१८ |
| गुरोरेतिचारे | |
| घातचंद्रे विचारः | |
| अकालवृष्ट्यादौ | |
| भूकंपादौ | |
| नांदीश्राद्धे भूकंपादेरपवादः | |
| कन्याया वैधव्ययोगः | |
| कुम्भविवाहविधिः | |
| विष्णुमूर्तिदानम् | |
| प्रतिकूलादि | ... २२० |
| पित्रादौ मृते विशेषः | |
| तत्र विनायकशान्तिः | |
| प्रतिकूलापवादः | |
| मातू रजोदोषे | |
| नांदीश्राद्धोत्तरं मातू रजासि | |
| एकमातृजयोः क्रियानिर्णयः | ... २२१ |
| एतदपवादस्तत्रैव | |
| मंडनमुंडनविचारः | |
| संकटे विशेषः | |
| विवाहमध्ये श्राद्धपाते | ... २२२ |
| मासिकश्राद्धापकर्षः | |
| यमलयोः सहोदरयोश्च विशेषः | |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------|------------|
| भिन्नमातृजयोर्विवाहः | |
| प्रत्युद्वाहे विधिनिषेधः | |
| कन्यारजोदर्शने | ... २२३ |
| तत्र प्रायश्चित्तम् | |
| तद्विवाहे वरस्य प्रायश्चित्तम् | |
| गांधर्वादिविवाहाः | |
| बलादपहरणे कन्यायाः | ... २२४ |
| विवाहादौ आशौचे प्राप्ते निर्णयः | |
| नांदीमुखदिनावधिः | |
| अत्र प्रायश्चित्तम् | ... २२५ |
| अन्नादौ विशेषः | |
| धर्मार्थं विवाहकरणे | |
| कन्यागृहे भोजननिषेधः | |
| भोजनकाले नूतनवस्त्रधारणे दोषा- | |
| भावः | |
| विवाहे स्त्रिया सह भोजने | |
| विवाहे नक्षत्राणि | |
| वर्ज्यवाराः | |
| अनिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तम् | |
| विवाहमंडपनिर्माणप्रकारः | ... २२६ |
| तैलहरिद्रालापनादि | |
| विवाहवेदिका | |
| अथ चुह्याद्यर्थं मृत्तिकाहरणम् | |
| कन्यावरयोर्वरणं वाग्दानं च | |
| वाग्दानोत्तरं वरमरणे | |
| विवाहिताभिः अविद्धयोनिनिर्णयः | ... २२७ |
| वरस्यान्यजातीयत्वादिदोषसत्त्वे | |
| कलौ पुनरुद्बहनादिनिषेधः | |
| वरस्य देशान्तरगमने | |
| शुल्कदाने | |
| अनेकेभ्योपि दत्तायाम् | |
| अत्र नांदीश्राद्धे विशेषः | |
| अथ घटिकास्थापनम् | |
| अथ मधुपर्कः | ... २२८ |
| अन्यशास्त्रीयनिर्णयः | |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| विष्टरलक्षणम् ... | ... |
| कन्यादानविधिः | ... |
| गृहप्रवेशनीयहोमे विशेषः | ... |
| अथ देवकोत्थापनम् ... | ... |
| नांदाश्राद्धोत्तरं मातृकाविसर्जनम् ... | ... |
| पर्यंतं सर्पिडानां निषेधः | २२९ |
| स्पृष्टास्पृष्टिदोषाभावः ... | ... |
| मंगलोत्तरं स्नाननिषेधः ... | ... |
| मंगलानंतरं वर्षपर्यंतं निषिद्धकर्माणि | ... |
| विवाहोपनयनोर्ध्वं मुंडननिषेधः ... | ... |
| गोपोचंदनधारणनिषेधः ... | ... |
| प्रथमवर्षे वध्वा वरपितृगृहे वर्ज्यमासाः | ... |
| विवाहव्रतोर्ध्वं पिंडदानादिनिषेधः ... | ... |
| अथ वधूपवेशः ... | ... |
| तत्र मासादिनिर्णयः ... | ... |
| प्रतिशुक्रविचारः ... | ... |
| गुरुशुक्रास्तादिनिर्णयः ... | ... |
| शस्तानि नक्षत्राणि ... | २३० |
| मांगलिके प्राप्तश्राद्धादि न कार्यम् ... | ... |
| अथ द्विरागमनम् ... | ... |
| तत्र मासपक्षादिविचारः ... | ... |
| अथ दंपत्योः पुनर्विवाहः ... | ... |
| तत्र कारणनिर्णयः ... | ... |
| बहुभार्यात्वे ज्येष्ठासाधर्माधिकारः ... | ... |
| द्वितीयविवाहहोमेऽग्निमाह ... | ... |
| अग्निद्वयसंसर्गाविधिः ... | २३१ |
| द्वितीयविवाहे कालः ... | ... |
| तृतीयविवाहे निषेधः ... | ... |
| अथार्कविवाहः ... | २३२ |
| तस्य विधिः ... | ... |
| अथान्याधानम् ... | ... |
| तत्र नक्षत्राणि ... | ... |
| अग्निहोत्रकालः ... | २३३ |
| उदितानुदितलक्षणम् ... | ... |
| थावसथ्याधानम् ... | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| पितृर्गुपरतेऽवश्यमग्निग्रहणम् | ... |
| अगृहीताग्नेरन्ननिषेधः ... | ... |
| ज्येष्ठे भ्रातारं पितारं च सत्यपि | ... |
| अग्निं विना ज्ञानादिनिष्ठस्य दोषाभावः | ... |
| गृहस्थस्याप्यध्ययनमाह ... | ... |
| आधानं ज्येष्ठे कृताधानेन कायम् ... | ... |
| परिवेत्रादिनिर्णयः ... | ... |
| ज्येष्ठे सोदरे तिष्ठति निषेधः ... | ... |
| तदाज्ञया दोषाभाव उक्तः | ... |
| देशांतरे विशेषः ... | ... |
| क्रीबादावप्यदोषः ... | २३४ |
| अथ शूद्रसंस्काराः | ... |

इति संस्कारप्रकरणम् ।

अथ शुद्रकालाः ।

| | |
|---|-----|
| तत्र जलाशयकालः ... | २३६ |
| कूपदेशास्तत्फलं च ... | ... |
| उत्सर्गविधिः ... | ... |
| कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोषः ... | ... |
| अथ वृक्षारोपणम् ... | २३७ |
| अथ मूर्तिप्रतिष्ठा ... | ... |
| प्रतिष्ठानक्षत्राणि ... | ... |
| मासनिर्णयः ... | ... |
| प्रतिष्ठातिथयस्तत्फलानि च ... | ... |
| पुनः शस्तनक्षत्राणि ... | ... |
| वारफलानि ... | ... |
| अयनर्तुफलानि ... | ... |
| लिंगे विशेषः ... | २३८ |
| प्रतिष्ठाधिकारिणः ... | ... |
| शूद्रस्थापितलिंगादौ निर्णयः ... | २३९ |
| स्त्रीशूद्राणां शिवविष्णुपूजने निषेधः ... | ... |
| प्रतिमादिपूजने दिङ्निर्णयः ... | ... |
| प्रतिमाद्रव्याणि ... | ... |
| गृहे प्रतिमामानम् ... | २४० |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------|------------|
| प्रतिमानां प्राणप्रतिष्ठादि... | ... |
| लिंगे विशेषः | ... |
| अथ पंचसूत्रीनिर्णयः | ... |
| गृहे समविषमलिङ्गादिपूजने विचारः... | २४१ |
| विष्ण्वाराधने ब्राह्मणाद्याधिकारिणः | ... |
| अविभक्तानां पृथग्देवपूजादिनिर्णयः... | ... |
| क्षत्रियादेः स्पर्शसहितपूजानिषेधः | ... |
| सर्ववर्णानां पूज्यप्रतिमाः | २४२ |
| ब्राह्मणादिभिः कतिसंख्याः प्रतिमाः | |
| पूज्याः | ... |
| नवधा प्रतिमाः | ... |
| अधमोत्तमप्रतिमास्तत्फलानि च | ... |
| शिवनाभिश्चालग्रामलक्षणम् | ... |
| पार्थिवपूजा | ... |
| शिवादिदेवालये निषिद्धवाद्यानि | २४३ |
| रुद्रनिर्मात्यस्पर्शनिषेधः | ... |
| पुष्पादिसमर्पणं निर्मात्यनिःसारणं च | ... |
| शिवपूजनावश्यकत्वम् | ... |
| भस्मत्रिपुण्ड्रधारणम् | ... |
| रुद्राक्षधारणे विशेषः | ... |
| रुद्राक्षमहिमा | ... |
| रुद्राक्षाभिमंत्रणम् | ... |
| रुद्राक्षधारणे संख्या | ... |
| रुद्राक्षमालादानम् | ... |
| शिवस्याभ्यङ्गादिस्नानम्... | २४४ |
| विष्णवादौ पंचामृतैर्महास्नानम् | ... |
| चंडादीनां नैवेद्यविभागः... | ... |
| अथ केशवादिमूर्तिनां लक्षणानि | ... |
| अथ लिंगार्चाप्रतिष्ठाप्रयोगः | २४५ |
| अथ पुनःप्रतिष्ठा | २५१ |
| अथ जीर्णोद्धारः | ... |
| अथ मूर्तिप्रासादभेदे | २५२ |
| अथ तुलसीग्रहणम् | ... |
| पुष्पादेः पर्युषितत्वम् | २५३ |
| शिवनिर्मात्यनिर्णयः | ... |
| अथकृषिकर्म.... | २५४ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|------------------------|------------|
| अथ वस्त्रधारणम् | ... |
| अलंकारधारणम् | २५५ |
| अथ सूचीकर्म | ... |
| अथ शय्या | ... |
| अथ शस्त्रम् | ... |
| अथ स्वामिसेवा | ... |
| गजाश्वदोलाः | ... |
| अथ नृत्यम् | ... |
| अथ राजदर्शनम् | ... |
| अथ क्रयविक्रयौ | २५६ |
| अथ सेतुबंधनम् | ... |
| अथ पशुकृत्यम् | ... |
| अथ राजदंतच्छेदः | ... |
| अथ निःक्षेपऋणमोक्षौ | ... |
| अथ राजमुद्राप्रतिष्ठा | ... |
| अथ नौकासंघटनवाहनम् | ... |
| अथ भोगभोगादि | ... |
| अथ इमश्रुकर्म | ... |
| अथैधनसंग्रहः | २५७ |
| अथ नवान्नम् | ... |
| नवभोजनपात्रम् | ... |
| नवपर्णफलादिभक्षणम् | ... |
| होमे आहुतिपातः | २५८ |
| अत्र शान्तिः... | ... |
| अत्रापवादः... | ... |
| ज्वरादौ नक्षत्रफलम् | ... |
| अत्र संक्षेपतः शान्तिः | ... |
| अथ भेषजम्... | ... |
| अथारोग्यस्नानम् | ... |
| अथ दंतधावनम् | २५९ |
| प्रोषितभर्तृकानियमाः | ... |
| आमलकस्नानम् | ... |
| तैलस्नाननिषेधः | ... |
| अथ गृहारंभनिर्णयः | २६० |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| गृहप्रवेशनिर्णयः | ... |
| कलिवर्ज्यानि | ... |
| इति तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्धम् । | |
| अथ तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्धम् । | |
| अथ श्राद्धनिर्णयः | ... २६६ |
| श्राद्धलक्षणम् | ... २६७ |
| श्राद्धभेदाः | ... |
| श्राद्धदेशाः | ... २६८ |
| गयाश्राद्धम् | ... |
| गयाशिरःप्रमाणम् | ... |
| सप्तगोत्राणि | ... |
| एकोत्तरशतकुलानि | ... |
| निषिद्धदेशाः | ... २६९ |
| परगृहे श्राद्धनिषेधः | ... |
| श्राद्धकालाः | ... |
| नवान्ने श्राद्धनिर्णयः | ... २७० |
| शंखपद्मादियोगाः | ... |
| कृष्णपक्षश्राद्धम् | ... |
| व्यतीपातश्राद्धम् | ... |
| तिथिविशेषे श्राद्धम् | ... २७१ |
| नक्षत्रश्राद्धम् | ... |
| श्राद्धाधिकारिणः | ... २७२ |
| तत्र द्वादशविधपुत्राः | ... |
| अनुपनीतस्याधिकारः | ... |
| अपुत्रस्य क्रियादिव्यव० | ... २७४ |
| भगिनीतत्सुतयोर्वि० | ... २७५ |
| ब्राह्मणस्यान्यवर्णक्रिया निषेधः | ... २७६ |
| दत्तक्रीतादिपुत्राणां श्राद्धनिर्णयः | ... |
| पत्न्यादेः सर्पिडनाधिकारः | ... |
| पितुः पुत्रैर्ध्वदेहिककरणे | ... |
| ब्रह्मचारिणः श्राद्धाधिकारः | ... २७७ |
| अविभक्तानां विशेषः | ... |
| विभक्तानां विशेषः | ... २७८ |
| दत्तकस्य श्राद्धाधिका० | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| जारजानां विशेषः | ... २७९ |
| धर्मार्थश्राद्धकरणे | ... |
| गयायामपि | ... |
| स्त्रीशूद्राणामसंत्रकं कर्म.... | ... |
| शूद्राणामामेनैव श्राद्धं कार्यम् | ... २८१ |
| शूद्राणां गोत्राज्ञाने | ... |
| राजकार्यनिशुक्तानां श्राद्धनिर्णयः | ... २८१ |
| यवनादीनां श्राद्धनिर्णयः | ... |
| इति श्राद्धाधिकारनिर्णयः । | |
| अथ श्राद्धे पितरः | ... |
| पितृणां श्राद्धान्नं यथोपतिष्ठति | ... |
| वसुरुद्रादित्यानां स्वरूपम् | ... |
| ब्राह्मणादिवर्णानां पितरः.... | ... |
| केवलपितृपार्वणनिषेधोत्रापवादश्च | ... २८२ |
| दर्शादौ सपत्नीकानां नि०.... | ... |
| अथ विश्वेदेवाः | ... |
| इष्टिश्राद्धे कतुदक्षौ | ... |
| नांदाश्राद्धे सत्यवसू | ... २८३ |
| नैमित्तिकश्रा० कामकालौ | ... |
| काम्यश्राद्धे धूरिलोचनौ.... | ... |
| पार्वणश्राद्धे पुरुरवारद्वौ | ... |
| श्राद्धं त्रिविधम् | ... |
| अथ श्राद्धे विप्राः | ... |
| तत्र उत्तमाः | ... |
| श्राद्धेऽरिभिर्त्रौ वर्ज्यौ | ... |
| पितृपुत्रौ भ्रातरौ च व०.... | ... २८४ |
| अथ मध्यमा विप्राः | ... |
| अत्र विशेषः | ... |
| अथ वर्ज्या विप्राः | ... २८५ |
| तत्र कांडपृष्ठविप्रलक्षणम्.... | ... |
| त्रिशंकुबर्बरादिविप्रा व०.... | ... |
| काणकुब्जादयो वर्ज्याः | ... |
| द्विर्नमादयो वर्ज्याः | ... २८६ |
| तत्र द्विर्नमलक्षणम् | ... |

अनुक्रमणिका ।

(१७)

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|---------------------------------|------------|
| लंघकणलक्षणम् ... | ... २८६ | पवित्रेदर्भसंख्या ... | ... २९१ |
| षंढस्सप्तविधः ... | ... " | पवित्राभावे | ... " |
| तप्तमुद्राङ्कितविप्रनिषेधः ... | ... " | दर्भग्रहणेमन्त्रः ... | ... " |
| कुम्भिकाणादेरपवादः | ... " | दशदर्भाः ... | ... " |
| गयास्थविप्रप्राशस्त्यम् ... | ... " | काशादौविशेषः ... | ... " |
| तीर्थेषुब्राह्मणविचारः ... | ... २८७ | निषिद्धदर्भाः.... | ... " |
| देवेषुत्र्येचकर्मणिविप्रवि० | ... " | सुवर्णपवित्रम् ... | ... " |
| श्राद्धेविप्रनिमंत्रणम् ... | ... " | अथहविः | ... २९३ |
| ब्राह्मणादीनांनिमंत्रणप्रकारः | ... " | शाकादिवस्तुनि ... | ... " |
| सर्वेणैव विप्रा निमंत्र्याः | ... " | श्राद्धेमांसमधुग्रहणं | ... २९४ |
| निमंत्रणेऽश्वनिषेधः ... | ... " | कलौमांसनिषेधः ... | ... " |
| श्राद्धेब्राह्मणसंख्या ... | ... " | अत्रदेशाचाराद्व्यवस्थोक्ता | ... २९५ |
| अशक्तौएकविप्रभोजनेनिर्णयः | ... " | क्षीरादौविशेषमाह .. | ... " |
| एकविप्रसाम्नेर्विशेषः | ... २८८ | कालशाकादिग्रहणम् ... | ... " |
| सर्वथाविप्रालाभेचटश्रा० | ... " | अथवर्ज्यहविः ... | ... २९६ |
| तत्रदक्षिणादानेविचारः.... | ... " | श्राद्धेजलनिर्णयः ... | ... ३९७ |
| दर्भषट्दर्भग्रहणेवि० ... | ... " | कुतुपाअष्टविधाउक्ताः ... | ... २९९ |
| मातृश्राद्धेविप्रालाभे ... | ... " | दौहित्रलक्षणम् ... | ... " |
| लिंगशालग्रामसन्निधौ श्राद्धकार्यम्... | ... " | श्राद्धेसप्तपवित्राणि | ... " |
| श्राद्धकर्तृभोक्तृनियमाः ... | ... २८९ | श्राद्धेतिलाः ... | ... " |
| निमंत्रितप्राक्षणातिक्रमे ... | ... " | श्राद्धेवर्ज्यानि ... | ... " |
| ब्राह्मणेनगृहीतामंत्रणत्यागे .. | ... " | अत्र श्राद्धदिनकृत्यम् | ... ३०० |
| कर्तृभोक्तृश्रुतगमनादिनिषेधः | ... " | श्राद्धदिने काजिकादिदाने निषेधः | ... " |
| श्राद्धभोजनेप्रायश्चित्तम्... | ... २९० | पिंडदानात्प्राक् किञ्चिन्नदेयम् | ... " |
| अमायांनिषेधः ... | ... " | श्राद्धे पाकाधिकारिणः ... | ... " |
| श्राद्धभोजनेहोमादिनिषेधः | ... " | पाकभांडानि ... | ... " |
| कर्तृभोक्तृव्रतधावननिर्णयः | ... " | अथपाकाग्निनिर्णयः | ... ३०१ |
| वनस्पतिगतस्वरूपम् ... | ... " | श्राद्धकृत्यनिर्णयः ... | ... ३०२ |
| क्षौरविचारः ... | ... " | निमंत्रितविप्रस्यकृत्यम् ... | ... " |
| अशक्तौपुत्रादिप्रसिन्धिधयः | ... " | श्राद्धकर्तृनियमाः | ... " |
| स्त्रियानियमाः ... | ... " | वस्त्रेविशेषः | ... " |
| पिंडदानात्प्राग्गृहेभोजननिषेधः | ... २९१ | कर्तृभोक्तृरुर्ध्वपुंड्रनिषेधः | ... " |
| गंधादिधारणनिषेधः ... | ... " | वामहस्तेदर्भधारणनिषेधः | ... " |
| अथश्राद्धाह्वस्तुनिर्णयः | ... " | गृहेरंगवल्लिनिषेधः ... | ... " |
| दर्भग्रहणम् ... | ... " | अत्राचाराद्व्यवस्था ... | ... " |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|---|------------|
| सदर्भतिलककरणेनिषेधः | ... ३०३ | अर्घ्यदानम् | ... ३१० |
| श्राद्धारंभकालः | ... ३०४ | गंधपुष्पाद्यर्चनम् | ... ३११ |
| श्राद्धपरिभाषा | ... ३०५ | तत्रगंधाः | ... ३१२ |
| तत्रजानुपातनम् | ... ३०६ | आसनादिदानेप्रतिवचनम् | ... ३१३ |
| गोत्रनामोच्चारणनिर्णयः | ... ३०७ | विप्राणामूर्ध्वपुंड्रादिनिषेधः | ... ३१४ |
| गोत्रस्यापरिज्ञाने | ... ३०८ | श्राद्धेयोग्यपुष्पाणि | ... ३१५ |
| नामोच्चारणेविशेषः | ... ३०९ | अथधूपः | ... ३१६ |
| पित्रादिनामाज्ञाने | ... ३१० | अथदीपः | ... ३१७ |
| स्त्रीणांनामोच्चारणेविशेषः | ... ३११ | अथवस्त्रम् | ... ३१८ |
| संकल्पादौविभक्तिविचारः | ... ३१२ | यज्ञोपवीतदानम् | ... ३१९ |
| तत्रमातुर्विशेषः | ... ३१३ | श्राद्धेदीपिकादिदेयानि | ... ३२० |
| अनुपनीतस्त्रीशूद्रादेः सव्यापसव्य- निर्णयः | ... ३१४ | कंचुकादिदेयम् | ... ३२१ |
| भूक्तस्तोत्रजपादौसव्यापसव्य० | ... ३१५ | स्त्रीणांश्राद्धेसिंदूरादिदेयम् | ... ३२२ |
| आचमनविचारः | ... ३१६ | कृष्णवर्णादिनिषेधः | ... ३२३ |
| विप्रविसर्जनात्प्राग्दानादिनिषेधः | ... ३१७ | यज्ञोपवीतदानावश्यकता | ... ३२४ |
| श्राद्धेनैवेद्यनिर्णयः | ... ३१८ | कमंडलवादिपात्रदानम् | ... ३२५ |
| देवाद्यर्चाक्रमः | ... ३१९ | उपानच्छत्रादिदानम् | ... ३२६ |
| श्राद्धेदर्भत्यागविचारः | ... ३२० | अलंकारादिदानम् | ... ३२७ |
| श्राद्धेमंत्रादौऊहः | ... ३२१ | स्वर्णादिभोजनपात्रदानम् | ... ३२८ |
| संकल्पार्पणप्रायश्चित्तादिकर्तव्यता | ... ३२२ | बंदीकृतमोचनफट्टम् | ... ३२९ |
| संकल्पविचारः | ... ३२३ | देवाज्ञयापित्रर्चा | ... ३३० |
| निमंत्रणप्रकारः | ... ३२४ | तस्यांविशेषः | ... ३३१ |
| पाद्यार्थमंडलविचारः | ... ३२५ | तत्रार्घ्यकल्पना | ... ३३२ |
| तत्रगोमयग्रहणेविचारः | ... ३२६ | एकव्राह्मणपक्षेअर्घ्यपात्रासादनेनिर्णयः | ... ३३३ |
| पाद्यविधिः | ... ३२७ | अर्घ्येसव्यापसव्यम् | ... ३३४ |
| द्विराचमनम् | ... ३२८ | अर्घ्यानुमंत्रणादिविशेषः | ... ३३५ |
| आसनानि | ... ३२९ | पित्रादीनामावाहनप्रकारः | ... ३३६ |
| निषिद्धासनानि | ... ३३० | अर्घ्यनिषेधनादि | ... ३३७ |
| नीवीबंधः | ... ३३१ | संस्ववेशेषविचारः | ... ३३८ |
| अथदेवार्चा | ... ३३२ | पितृपात्रस्थापननिर्णयः | ... ३३९ |
| अर्घ्यपात्रनिर्णयः | ... ३३३ | गंधपुष्पादिदानम् | ... ३४० |
| विप्रैकत्वद्विस्वादौअर्घ्यपात्रनिर्णयः | ... ३३४ | मण्डलानि | ... ३४१ |
| अर्घ्यपात्रासादनादिविचारः | ... ३३५ | श्राद्धेभोजनपात्राणि | ... ३४२ |
| आवाहनविधिः | ... ३३६ | क्रांस्यादिभोजनपात्रमानम् | ... ३४३ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| कांस्यपात्रनिषेधः ... | ३१५ | भोज्यपात्रेतिलनिषेधः ... | ३२० |
| श्राद्धेपालाशादिपात्राणि... | " | हस्तदत्तस्नेहलवणादिभोजनेदोषः... | ३२१ |
| अभावेकदल्यादीनिग्राह्याणि | " | घृतपात्रेविशेषः ... | " |
| कदलीपात्रनिषेधः ... | " | अपक्वतैलपक्वहस्तदत्तग्राह्यम् | " |
| भस्ममर्यादाऽकरणेदोषः... | ३१६ | पात्रालभननिर्णयः ... | " |
| अग्नौकरणनिर्णयः ... | " | अंगुष्ठनिवेशनेविशेषः ... | " |
| अथपाणिहोमनिर्णयः ... | ३१७ | अन्नदानविधिः ... | " |
| बहुचातिरिक्तानभिकेनि० | " | संकल्पादिकर्मक्रमः ... | ३२२ |
| तीर्थश्राद्धेपाणिहोमनि० ... | " | असंकल्पितान्नभोजनेनिषेधः | " |
| अनभिकस्यपाणिहोमनिर्णयः | " | आपोशनेविशेषः ... | " |
| विधुरस्यपाणिहोमनिर्णयः | ३१८ | चित्राहुतिनिषेधः ... | ३२३ |
| देवविप्रानेकत्वे ... | " | भोजनेलवणादिनपृच्छेत् | " |
| मृतभार्यस्यनि० ... | " | अश्रुसुविभ्रेषुगायत्र्यादिसूक्तजपः | " |
| सभार्यनष्टाभेनि० ... | " | भोजनकालेविप्रनियमाः... | " |
| अनुपनीतप्रह्वचर्यादेः ... | " | अपेक्षितायाचनेदोषः ... | " |
| दैवेपित्र्येचहोमेसव्यापसव्यनिर्णयः... | " | पंक्तौपरस्परस्पर्शेप्रायश्चित्तम् | " |
| सामेधिवेशादौपाणिहोमः | " | अश्रुपातादिवर्ज्यम् ... | " |
| अभिदूरभार्ययोःपाणि० ... | " | विप्राणांगुदसावेप्रायश्चित्तम् | " |
| अथपाणिहोमप्रकारः | " | विप्रवमनेप्रायश्चित्तम् ... | " |
| तत्रवर्ज्यकर्माणि ... | " | श्राद्धविघ्नेप्रायश्चित्तादि | ३२४ |
| पाणिहोमेप्रभादि | " | श्राद्धविघ्नेपुनःश्राद्धम् ... | " |
| पाणिहुतान्नस्यविनियोगः ... | " | पिंडदानोत्तरंवांतौ ... | " |
| हुतशेषपितृपात्रेपुदेयम् ... | ३१९ | पिंडदानात्प्राग्वांतौ | " |
| आपस्तंबानामग्नौकरणम्... | " | दर्शादौवमनेआमश्राद्धम्... | " |
| छंदोगादीनांपाणिहोमः ... | " | श्राद्धविघ्नेपुनरावृत्तिनिर्णयः | " |
| अथपरिवेषणम् | ३२० | तृप्तिप्रश्नादि ... | ३२५ |
| तच्चोपवीत्यैवदेवपूर्वम् ... | " | श्राद्धविशेषप्रश्नभेदः ... | " |
| स्वयंभार्ययावापरिवेषणकार्यम् | " | विकिरदानमुच्छिष्टपिंडश्च | " |
| अपवित्रेणैकहस्तेनपरिवेषणंनकार्यम्... | " | आचमनदाननिर्णयः ... | " |
| आयसादिपात्रेणपरिवेषणेदोषः | " | हस्तक्षालननिर्णयः ... | " |
| परिवेषणेपवित्रपात्राणि ... | " | गंडूपादिकरणेकांस्यपात्रवर्ज्यम् | ३२६ |
| द्वर्षाघृतादिदेयम् ... | " | अथपिंडदाननिर्णयः ... | " |
| द्वर्षाघ्नोदकदानेनिषेधः ... | " | शाखाभेदेनव्यवस्था ... | " |
| पंचयांघ्रिमदानेदोषः ... | " | पिंडदानंकुत्रकर्तव्यम् ... | " |
| | | पिंडदानेकुशादयः | " |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|--|------------|
| अष्टांगःपिंडः.... | ३२७ | विप्रप्रार्थना | ... ३३० |
| पिंडादौमाषनिषेधः | " | अथ पिंडप्रतिपत्तिः | ... " |
| पिंडार्थमन्नग्रहणविचारः.... | " | मध्यमपिंडप्राशननिर्णयः | ... " |
| अथपिंडप्रमाणम् | " | तीर्थश्राद्धेतीर्थएवपिंडप्रक्षेपः | ... " |
| तत्रैकोद्दिष्टे श्राद्धेपिंडप्रमाणम् | " | गवादिभ्यःपिंडादेयाः | ... " |
| प्रत्यब्देतीर्थेदर्शेचपिंडप्रमाणम् | " | पत्न्यांरोगादियुक्तायाम् | ... " |
| महालयगेयायांचपिंडप्रमाणम् | " | भक्षणेनिर्णयः | ... " |
| प्रेतपिंडप्रमाणम् | " | अथ पिंडोपघातेदोषः | ... " |
| महालयादौपिंडशब्दप्रयोगःकथं कर्तव्यः | " | तत्प्रायश्चित्तम् | ... " |
| पत्न्या पिंडाः करणीयाः.... | " | पुनःपिंडदाननिर्णयः | ... " |
| पित्रादिनामाज्ञानेपिंडदानेऋहः | " | अथ पिंडदानेनिपिंडकालः | ... ३३१ |
| पित्रादिपिंडेभ्यःपश्चिमेमात्रादिपिंडा | | धिवाहादौकृतेपिंडनिषेधमाससंख्या ... | ... |
| देयाः ... | ... | कृतोद्वाहेनापिपित्रोःपिंडदानं कार्यम् | ... |
| अन्वष्टकादौस्त्रीणांपृथक्कृद्वाद्धम् | ... ३२८ | पुत्रेणुभिर्नैदादिति श्र्यादौपिंडावर्ज्याः | ... |
| दर्भमूलेहस्तेलेपादिनिर्णयः | ... " | तदपवादः | ... " |
| नीवीविसर्जनम् | ... " | उच्छिष्टोद्वासनिर्णयः | ... " |
| अंजनाभ्यंजने | ... " | श्राद्धेच्छिष्टंशूद्रादिभ्यो न देयम् | ... " |
| वासोदानादि | ... " | द्विजोच्छिष्टंभूमौनिस्वानयेत् | ... " |
| अथ पिंडपूजा | ... ३२९ | श्राद्धदिनेवैश्वदेवनिर्णयः.... | ... ३३२ |
| पिंडानां सर्वान्नभैवेद्यं देयम् | " | अथ नित्यश्राद्धनिर्णयः | ... ३३३ |
| अन्नसव्यापसव्ययोर्विकल्पः | " | नित्यश्राद्धेपात्राभावे | ... " |
| पिंडावघ्राणम् | ... " | नित्यश्राद्धस्यप्रसंगासिद्धिः | ... " |
| पिंडोपस्थानम् | " | श्राद्धेएकादश्यादौभोजननिर्णयः | ... " |
| आचांतेपुऽदकादिदानम्... | ... " | श्राद्धेकृतेदिवैवभोक्तव्यम् | ... " |
| द्विजेभ्यःआशीर्ग्रहणम् | ... " | तद्दिनेपरपाकसेवननिषेधः | ... " |
| स्वस्तिवाचनात्पात्रपात्रचालनं न | | श्राद्धशेषभोजनस्यकचिन्निषेधः | ... ३३४ |
| कार्यम् | ... " | श्राद्धावशिष्टभोजनेनिषेधः | ... " |
| पात्रचालनंकेमकार्यम् | ... " | अस्यापवादः | ... " |
| स्वस्तिवाचनम् | ... " | श्राद्धकर्त्रातांबूलादिवर्ज्यम् | ... " |
| अक्षय्योदकदानम् | ... " | श्राद्धदिनेगृहेशूद्रं न भोजयेत् | ... " |
| दक्षिणादानम् | ... " | अथ श्राद्धानुकल्पाः | ... " |
| स्वधावाचनम् | ... " | तत्रविप्रालाभेदर्भषट्पुः | ... " |
| पिंडप्रवाहणम् | ... " | अशक्तौआमश्राद्धम् | ... " |
| विप्रविसर्जनम् | ... " | आमश्राद्धं कुत्र कार्यम् | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| शूद्रस्यश्राद्धेपक्वनिषेधः | ... ३३५ |
| मृताहादौ आमश्राद्धंनकार्यम् | ... " |
| आमंकियत्परिमितंवेद्यम् | ... " |
| आमश्राद्धविधिः | ... " |
| आमश्राद्धेपिडाननिर्णयः | ... " |
| आमश्राद्धेऋविचारः | ... " |
| आमश्राद्धेवर्ज्यकर्माणि | ... " |
| शूद्रस्य आमश्राद्धविधिः | ... ३३६ |
| आमश्राद्धादेःकालः | ... " |
| आमाभावेहेमश्राद्धनिर्णयः | ... " |
| हेमश्राद्धेपिडवानपदार्थाः | ... " |
| पिडवानेविकल्पः | ... " |
| हेमश्राद्धंशूद्रैःकथं कार्यम् | ... " |
| हेमश्राद्धेवर्ज्यकर्माणि | ... " |
| हेमश्राद्धे मंत्रोद्ःकालश्चपूर्ववत् | ... " |
| श्राद्धीयस्यहेमादेर्लब्धस्यविनियोगः | ... " |
| आमादौशूद्राद्वेदिनि० | ... ३३७ |
| शूद्रगृहेक्षीरादिभोजननिषेधः | ... " |
| शूद्रात्प्राप्ताग्नेर्महाप्राह्मनिर्णयः | ... " |
| श्राद्धाशक्तौसांकल्पविधिः | ... ३३८ |
| सांकल्पविधौवर्ज्यकर्माणि | ... " |
| मघादिश्राद्धेषुसांकल्पविधिरेव | ... " |
| विवाहाद्यूर्ध्वसपिण्डानांपिडनिषेधः | ... " |
| अस्यापवादःपूर्वमुक्तः | ... " |
| अनग्निकादिभिःसांकल्पिक० | ... " |
| अशक्तौश्राद्धानुकल्पाः | ... " |
| अथश्राद्धभोजनेप्रायश्चित्तम् | ... " |
| संस्कारेषुभोजनेप्रायश्चित्तानि | ... " |
| नवश्राद्धेकावशाहादौभोजनेप्रा० | ... " |
| आमेहेमसंकल्पश्राद्धेषुभो० | ... " |
| यत्यादीनांश्राद्धभोजनेनिषेधः | ... " |
| दर्शदौभोजनेप्रा० | ... " |
| अथक्षयाहश्राद्धम् | ... ३३९ |
| तत्स्वरूपम् | ... " |
| मृततिथिनिर्णयः | ... " |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| अत्रचांद्रमानंज्ञेयम् | ... ३३९ |
| मलमासमृतेसावनम् | ... " |
| प्रतिसांवत्सरिकंकेनकार्यम् | ... " |
| सांवत्सरिकेऽकरणेदोषः | ... " |
| तत्रपार्वणैकोद्दिष्टयोर्विचारः | ... " |
| अत्रदेशाचारवंशधर्मव्यवस्था | ... " |
| संन्यासिनांश्राद्धनिर्णयः | ... ३४० |
| संग्राममृतानांश्राद्धनिर्णयः | ... " |
| ज्येष्ठभ्रातुःकनिष्ठेनकर्तव्यम् | ... " |
| कनिष्ठस्य च ज्येष्ठेनैकोद्दिष्टंका० | ... " |
| अपुत्रपितृव्यस्यश्राद्धेनि० | ... " |
| पत्न्याःकर्तृत्वेश्राद्धनि० | ... " |
| अपुत्रमृतानांकार्यम् | ... ३४१ |
| एकोद्दिष्टेकेपांकार्यंतन्निर्णयः | ... " |
| अथक्षयाहद्वैधेनिर्णयः | ... " |
| तत्रैकोद्दिष्टेतिथिनिर्णयः | ... " |
| पार्वणश्राद्धेतिथिनिर्णयः | ... ३४२ |
| प्रत्याब्दिदशश्राद्धेतिथि० | ... " |
| दिवाविघ्नेरात्रावपिश्राद्धम् | ... ३४३ |
| श्राद्धविनामृताहातिक्रमेदो० | ... " |
| ग्रहणादिनेश्राद्धप्राप्तेः | ... " |
| मलमासेप्रत्याब्दिदकनिर्णयः | ... " |
| दर्शेवार्पिकंचेत्तन्निर्णयः | ... " |
| एवंमासिकादिश्राद्धमपि | ... " |
| मृताहेतुपोत्सर्गोक्तः | ... " |
| अथशुद्धिश्राद्धनिर्णयः | ... " |
| वर्षत्रयपर्यंतं श्राद्धभोजनेनिषेधः | ... " |
| अथक्षयाहाज्ञानेनिर्णयः | ... ३४४ |
| श्राद्धविघ्नेनिर्णयः | ... " |
| तत्रनिमंत्रितविप्रस्याशौचेप्राप्ते० | ... " |
| श्राद्धकर्तुराशौचेप्राप्ते० | ... ३४५ |
| श्राद्धारंभनिर्णयः | ... " |
| दातुर्गृहेमरणदौनिर्णयः | ... " |
| विघ्नेषुभुंजानेषुसूतकेप्राप्ते० | ... " |
| दातुर्भोक्तृश्चाशौचेप्राप्ते | ... " |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|---|------------|
| तत्रभोक्तुरेवप्रायश्चित्तम् ... | ३४५ | तिलतर्पणेनिपिद्धकालः ... | ३५२ |
| आशौचमध्येश्राद्धप्राप्तंचेतु ... | " | श्राद्धदिनेनित्यतर्पणेतिलनि० ... | " |
| दर्शादिनित्यकर्मलोपेउपवासप्राय० | " | प्रत्यब्देश्राद्धेपरेद्युस्तर्पणमुक्तम् ... | " |
| सूतकादिविघ्नचेच्छ्राद्धकदाकर्तव्यम् ... | " | महालयेपरेद्युस्तर्पणम् ... | " |
| अथभार्यारजोदर्शने ... | ३४६ | अन्वष्टक्येसद्यस्तर्पणम् ... | " |
| तत्रदर्शश्राद्धनिर्णयः ... | " | तीर्थश्राद्धेदर्शवत् ... | " |
| महालययुगादिश्राद्धनिर्णयः ... | " | माध्याह्न्यन्वष्टकादावन्ततर्पणम् ... | " |
| आब्दिकश्राद्धनिर्णयः ... | " | अनेकश्राद्धसंपातेतर्पणनिर्णयः ... | " |
| अपुत्रस्यभार्यारजोदर्शने... .. | " | श्राद्धांगतर्पणविधिः | " |
| गर्भिणीसूतिकादीनांनिर्णयः ... | ३४७ | मन्वाद्यादौतर्पणनिर्णयः ... | " |
| अनुपनीतादेःश्राद्धाधिकारः | " | अथतिलतर्पणानिषेधः ... | ३५३ |
| अथान्वारोहणेनिर्णयः ... | ३४८ | अत्रापवादः ... | " |
| एककालेमृतानाम् ... | " | तिलाभावेतर्पणसुवर्णादि ... | " |
| स्वामिसेवकानामेकसमयमरणे ... | " | अथवृद्धिश्राद्धनिर्णयः ... | " |
| पतिनासहस्रीमरणे ... | ३४९ | वृद्धिश्राद्धनिमित्तानि ... | ३५४ |
| भर्तुराशौचमध्येन्यदिनेस्त्रीमरणे ... | " | वृषोत्सर्गादौवृद्धिश्राद्धवर्ज्यम् ... | " |
| भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे० ... | " | वृद्धिश्राद्धकालमाह ... | " |
| देशान्तरमृतमन्वारोहणे | " | अथात्राधिकारिणः ... | ३५७ |
| भर्त्राशौचमध्येपृथक्चितौवा ... | " | जातकर्मादौवृद्धिश्राद्धनिर्णयः ... | " |
| भर्त्राशौचोत्तरमृतौतु ... | " | सामिकस्यजीवत्पितुरधिकारः ... | २५८ |
| अन्यसपिंडाशौचमध्येविदेशमृता- न्वारोहणे... .. | ३५० | समावर्तनादौवृद्धिश्राद्धनिर्णयः ... | " |
| अन्यकालेऽन्यतिथावन्वारोहणे० | " | प्रथमविवाहेवृद्धिश्राद्धनिर्णयः ... | " |
| सहगमनश्राद्धेपाकनिर्णयः | " | पितुरभावे वृद्धिश्राद्धाधिकारिक्रमः.... | " |
| अत्रश्राद्धेसुवासिनीभोजनम् ... | " | जीवत्पितृकस्यविशेषः ... | " |
| श्राद्धसंपातेनिर्णयः | " | कर्मागवृद्धिश्राद्धयोर्निर्णयः ... | ३५९ |
| तत्रपित्रोर्मृततथ्येकत्वे ... | " | वृद्धिश्राद्धेइतिकर्तव्यता ... | " |
| पार्वणैकोद्दिष्टयोः संपाते... .. | " | वृद्धौकुशस्थानेर्वाः ... | " |
| एककालेमृतानांश्राद्धनिर्णयः ... | ३५१ | वृद्धिश्राद्धेविप्रसंख्या ... | " |
| एकस्मिन्दिनेऽनेकश्राद्धप्राप्तौकर्तृनि० ... | " | अत्रविप्रालाभेस्त्रियोभोज्याः ... | " |
| युगपन्नित्यनैमित्तिकदर्शा- दौप्राप्तेनिर्णयः ... | " | वृद्धिश्राद्धेपिंडाभौकरणेनिर्णयः ... | ३६० |
| अस्यदेवताभेदाऽपवादः ... | " | अत्रसांकल्पविशेषः ... | " |
| अथश्राद्धांगतर्पणम् ... | " | वृद्धिश्राद्धप्रयोगक्रमः ... | " |
| परेद्युस्तर्पणेऽकृतेद्यौषः ... | " | वृद्धिश्राद्धेवैश्वदेवनिर्णयः ... | " |
| | | अत्रश्राद्धांगतर्पणवर्ज्यम् ... | ३६१ |
| | | अथजीवात्पितृकवृद्धिश्राद्धनिर्णयः ... | " |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| अथपितामहेजीवतिसति | ... ३६२ |
| जीवत्पित्राऽन्वष्टाकदौश्राद्धंनकार्यम् | २६३ |
| अथविभक्ताविभक्तनिर्णयः | ... ३६४ |
| अविभक्तानां वैश्वदेवनिर्णयः | ... " |
| विभक्ताविभक्तानां ब्रह्मयज्ञादिनि० | ... " |
| देवपूजायां विकल्पः | ... " |
| दर्शग्रहणादिश्राद्धादौ निर्णयः | ... " |
| अविभक्तानां पुगपत्तीर्थप्राप्तौ निर्णयः | ... ३६५ |
| काम्यदानादि अनुमत्या | ... " |
| विभक्तैः पृथक्सांवत्सरिकं कार्यम् | ... " |
| विभक्तानां पित्रोर्वर्षपर्यंतं श्राद्धादिक्रि- यानिर्णयः | ... " |
| अथतीर्थश्राद्धनिर्णयः | ... " |
| तत्रयात्रायां तपस्वीकेनैव गंतव्यम् | ... " |
| प्रायश्चित्तार्थयात्रायां पत्नीरहितो गच्छेत् | ... |
| विधवायाः पुत्राद्यनुज्ञा | ... " |
| अथतीर्थयात्राविधिः | ... " |
| यात्राकाले वपनविचारः | ... ३६६ |
| गमनादौघृतश्राद्धनिर्णयः | ... " |
| तीर्थात्पत्यागमने घृतश्राद्धम् | ... " |
| श्राद्धोत्तरगमनप्रकारः | ... " |
| अन्यद्वारायात्राकरणेफलम् | ... " |
| यात्रामध्ये आशौचेरजसिवाप्राप्ते | ... " |
| यात्रामध्येऽन्यतीर्थप्राप्तौ | ... " |
| वाणिज्याद्यर्थगते तीर्थप्राप्तौ | ... " |
| मार्गान्तरे तीर्थप्राप्तौ | ... " |
| यात्रायां द्विर्भोजने निर्णयः | ... " |
| यानादिनायात्राकरणे | ... " |
| मार्गान्तरानदीप्राप्तौ | ... " |
| तीर्थप्राप्तौ लुंठनं कार्यम् | ... " |
| तीर्थप्रार्थनामंत्राः | ... " |
| तीर्थे आवाहनादिकर्मक्रमः | ... " |
| तीर्थे उपवासमुंडननिर्णयः | ... ३६७ |
| कुरुक्षेत्रादिपुमुंडनोपवासनिषेधः | ... " |
| दशमासोर्ध्वपुनस्तीर्थप्राप्तौ | ... " |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| तीर्थे निषिद्धदिने पित्रोरमावश्यकम् | ... " |
| वपने दिङ्मनियमः | ... " |
| सधवानां प्रयागे वपननिर्णयः | ... " |
| यतीनां तीर्थे वपननिर्णयः | ... " |
| जीवत्पितृकस्य वपननिर्णयः | ... " |
| परार्थयात्रायां फलम् | ... " |
| प्रतिकृतिद्वारा तीर्थे स्नानफलम् | ... " |
| तीर्थेऽविलंबेन श्राद्धं तर्पणं च कार्यम् | ... " |
| तीर्थविधौ कालनियमो नास्ति | ... ३६८ |
| आशौचेऽपि तीर्थप्राप्तौ | ... " |
| मलमासे तीर्थश्राद्धादि निर्णयः | ... " |
| आकस्मिकतीर्थप्राप्तौ | ... " |
| तीर्थश्राद्धे वर्ज्यकर्माणि | ... " |
| तीर्थश्राद्धपक्वान्नादिना | ... " |
| पिंडद्रव्याणि | ... " |
| पिंडानां तीर्थे प्रक्षेपः | ... " |
| सपुत्रविधवया तीर्थविधिर्न कार्यः | ... " |
| संन्यासिनां तीर्थविधिः | ... " |
| तीर्थे प्रतिग्रहनिर्णयः | ... " |

इति तीर्थश्राद्धविधिः ।

अथाशौचप्रकरणम् ।

| | |
|--|---------|
| तत्रशवाशौचम् | ... ३६९ |
| पाताशौचम् | ... " |
| सप्तममासादि जनने पूर्णाशौचम् | ... " |
| जाताशौचे विप्रादीनां दिनसंख्या | ... " |
| पुत्रे जाते मातापित्रोः स्नाननिर्णयः | ... " |
| कन्योत्पत्तौ स्नाननिर्णयः | ... " |
| सर्ववर्णानां सूतिकाशुद्धिनिर्णयः | ... ३७० |
| सूतके संसर्गनिर्णयः | ... " |
| सूतिकायाः कर्माधिकारनिर्णयः | ... " |
| प्रथमषष्ठदशदिने पुजातर्कमाद्यधि- कारः | ... " |
| सपिंडादीनां सूतके निर्णयः | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| अथमृताशौचम् ... | ३७१ |
| जातमृतेमृतजातेवा | " |
| नालच्छेदनात्प्राक्शिशुमरणे ... | " |
| नालच्छेदनोर्ध्वदशाहमध्येशिशुमरणे ... | " |
| नामकरणात्प्राक्शिशुमरणे ... | " |
| नामोत्तरंदन्तोत्पत्तेः प्राक्शिशुमरणे ... | ३७२ |
| दंतोत्पत्त्यनंतरं त्रिवर्षात्प्राङ्मरणे ... | " |
| त्रिवर्षोर्ध्वकृतचूडेमृते ... | " |
| प्रथमवर्षादौकृतचूडेमृते ... | ३७३ |
| शूद्रशिशुमरणे | " |
| त्रिवर्षोर्ध्वशूद्रशिशुमृते ... | " |
| अनूढभार्येशूदेमृते ... | " |
| कन्यामरणाशौचनिर्णयः | ३७४ |
| पितृगृहेऽनूढाकन्यारजस्वलामरणे ... | " |
| अथानुपनीतमृतानांदाहादिनिर्णयः ... | " |
| त्र्यहाशौचेपिंडदानविधिः | " |
| शिशुलक्षणम् ... | " |
| बाललक्षणम् ... | " |
| कुमारलक्षणम् | " |
| पौगंडलक्षणम् ... | " |
| एतेषामृतानां क्रियाविधिः | " |
| स्त्रीणामुद्वाहात्प्राङ्मृतानांपिंडदाने० ... | ३७५ |
| अथजात्याशौचम् ... | " |
| तत्रविप्रादीनांदशाहदिनिर्णयः | " |
| पित्राद्योमहागुरुवः ... | ३७६ |
| स्त्रीणांपतिरेवगुरुः | " |
| सपिंडानालक्षणम् | " |
| समानोदकलक्षणम् ... | " |
| सगोत्रलक्षणम् ... | " |
| स्त्रीशूद्रयोर्विवाहोर्ध्वजात्याशौचम् ... | " |
| आशौचसंकोचेनिर्णयः ... | " |
| सर्ववर्णानांदशाहादेवशुद्धिः .. | ३७७ |
| पूर्णाशौचेस्पर्शनिर्णयः ... | " |
| दत्तक्रीतादिपुत्राणामाशौचम् ... | ३७८ |
| व्यभिचारिणीषुसपिंडत्वादिनिर्णयः .. | " |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| अनौरसेषुपुत्रेषु ... | ३७८ |
| पुनर्भूषुस्त्रीषु... .. | " |
| अन्याश्रितस्त्रीणामाशौचम् ... | " |
| परपत्नीसुतानामा० ... | " |
| दत्तकेमृतेपूर्वापरपित्रोराशौचनि० ... | " |
| दत्तकसापिंड्यम् ... | " |
| पूर्वापरभर्त्रोरुत्पन्नयोःपुत्रयोः | " |
| ऊढकन्यानामाशौचम् ... | ३७९ |
| ऊढकन्यायाःपितृगृहेप्रसवेमरणे च ... | " |
| मातापित्रोराशौचम् ... | " |
| भ्रातुराशौचम् ... | " |
| परस्परंभ्रातृभगिन्योः | " |
| भ्रातृभिन्नानामाशौचम् ... | " |
| प्रतिग्रहेप्रसवे.... | " |
| कन्यामृतौपित्रोः ... | " |
| ग्रामान्तरेकन्यामृतौपित्रोः ... | " |
| श्वश्रूश्चशुरयोर्मरणे | " |
| भगिनीमरणे | " |
| मातुलमातुलान्योर्मरणे ... | " |
| पित्रोस्स्वसरिमृतायाम् ... | " |
| सौदरमरणे ... | " |
| पित्रोर्मरणेस्त्रीणामाशौचनिर्णयः | " |
| तत्रपित्रोर्मरणेऊढकन्यायाः ... | " |
| भ्रातृभगिन्योरन्योन्यगृहेमरणे ... | " |
| भ्रातृभगिन्योःपरस्परमरणे ... | " |
| पुत्र्याःपितृव्याशौचम् ... | " |
| मातामहादीनामरणे ... | ३८० |
| स्वगृहेपरमरणे ... | " |
| बंधुत्रयमरणे ... | " |
| स्वरूपसंबंधयुक्तेमृते | " |
| दौहित्रभगिनेययोराशौचम् ... | " |
| मातुलदौसंनिधिविदेशयोर्मृते ... | " |
| श्रोत्रियस्वगृहेमृते ... | " |
| ऋत्विग्विषये ... | " |
| बंधुत्रयनिर्णयः ... | " |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| पितृष्वास्त्रादिकन्यानाम् ... | ... |
| जामातृमरणे ... | ... |
| शालकमरणे ... | ... |
| असर्पिडेस्ववेश्मनिमृते | ... |
| द्विजगृहेश्वशूद्रपतितादिषुमृतेषु ... | ३८१ |
| शवदूषितगृहशुद्धिः ... | ... |
| ग्राममध्ये शवस्तिष्ठति चेत् ... | ... |
| गृहपदवादौमृते | ... |
| क्रियाकर्तुराशौचम् | ... |
| युद्धे मृतस्याशौचम् | ३८२ |
| शृंगिदंष्ट्रादिभिर्दूषितानाम् | ... |
| गोविप्रपालनेमृतानाम् ... | ... |
| शस्त्राविनाशपरान्मुखहते ... | ... |
| राज्ञावध्येहते ... | ... |
| क्षतेनमृते | ... |
| शस्त्राघातेऽयह ऊर्ध्वमृते ... | ... |
| शवस्यस्पर्शेऽशौचम् | ... |
| संसर्गाशौचे कर्माधिकार ... | ... |
| अथनिर्हरणाद्याशौचम् ... | ... |
| निर्हरणविनाशतदन्नाशनेतद्गृहवासैश्च ... | ... |
| भृतिग्रहणेननिर्हारे ... | ... |
| विजातीयनिर्हारे | ... |
| सौदृक्निर्हरणे ... | ... |
| प्रेतालंकरणे ... | ... |
| धर्मार्थमनाथाहरणे क्रियाकरणे च | ... |
| ब्रह्मचारिणाशववाहादिकृतेप्रायः ... | ३८३ |
| समोत्कृष्टवर्णानुगमने ... | ... |
| हीनवर्णस्य दाहादिकरणे ... | ... |
| अथरोदनेऽशौचनिर्णयः ... | ... |
| तत्रसमोत्तमवर्णयोः ... | ... |
| हीनवर्णेषु ... | ... |
| विप्रस्यक्षत्रियविषये .. | ... |
| क्षत्रस्यवैशेष्ये ... | ... |
| विप्रादीनांशूद्रे | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| शूद्रस्यशूद्रे ... | ... |
| संभिडानारोदनेनिर्हरणे च | ... |
| आशौचान्नभक्षणे | ... |
| आशौचान्नभक्षणेप्रायश्चित्तम् ... | ... |
| अथदासाशौचम् | ३८४ |
| दास्याशौचम् ... | ... |
| दत्तदासीनांस्वामिसंभिडमरणादौ ... | ... |
| पंचदशदासभेदाः | ... |
| अथरात्रौ जननेमरणेवा निर्णयः ... | ... |
| आहिताग्नेर्दाहादिनिर्णयः ... | ... |
| अथातिक्रांताशौचम् ... | ३८५ |
| तत्राशौचमध्ये जननादौज्ञाते ... | ... |
| देशान्तरेऽतिक्रांताशौचे ... | ... |
| दशदिनमध्ये श्रुतं चेत् ... | ... |
| दशाहोर्ध्वमासत्रयपर्यंतं श्रुतं चेत् | ... |
| पण्मासपर्यंतं श्रुतं चेत् ... | ... |
| नवमासपर्यंतं श्रुतं चेत् ... | ... |
| तदूर्ध्वं श्रुतं चेत् ... | ... |
| जननेऽतिक्रांताशौचनिर्णयः ... | ... |
| अतिक्रांतेऽपदनापट्वयवस्था ... | ... |
| देशान्तरेऽस्त्रीवादिमृतौ ... | ३८६ |
| देशान्तरलक्षणम् ... | ... |
| देशान्तरेमातापित्रोर्मरणे ... | ... |
| स्त्रीपुंसयोः परस्परं मरणे ... | ... |
| सापत्नमातुराशौचम् ... | ... |
| हीनवर्णसापत्नमातृपुमृतासु ... | ... |
| अथाशौचसंपाते ... | ... |
| तत्र जनने जननाशौचे | ... |
| शावेशावाशौचे ... | ... |
| सूतकेशावाशौचम् ... | ३८७ |
| शावेसूतकम् ... | ... |
| एकदिनेऽसमंन्यूनमधिकं वा प्राप्तं चेत् | ... |
| स्वल्पाशौचे दीर्घाशौचम् ... | ... |
| दीर्घाशौचेऽस्वल्पाशौचम् ... | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|------------------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| जननमरणाशौचस्यगुरुत्वम् | ३८९ | तत्रलवणादिद्रव्ये | ३९० |
| दशमेहनिआशौचांतरपाते | ३८९ | पण्यद्रव्येषुनाशौचम् | ३९० |
| पित्राशौचेमात्राशौचम् | ३९० | सत्रेआमान्नादौदोषाभावः | ३९० |
| मात्राशौचेपित्राशौचम् | ३९० | उभाभ्यामपरिज्ञातेसूतके | ३९० |
| अन्वारोहणेविशेषः | ३९० | विवाहोत्सवादिषुसूतके | ३९० |
| भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे | ३९१ | अथमृतदोषतः | ३९१ |
| अथाशौचापवादःपंचधा | ३९१ | तत्रात्मघाते | ३९१ |
| तत्रकर्तुतः | ३९१ | पतितानामृतानांदाहादिनिर्णयः | ३९१ |
| यत्यादीनामाशौचाभावः | ३९२ | चांडालादिभ्योमरणे | ३९६ |
| ब्रह्मचारिणापित्रोरेत्यकर्मकार्यम् | ३९२ | पतितानामंत्यकर्मकरणेप्रायश्चित् | ३९६ |
| संध्यादिलोपाभावाः | ३९२ | आत्मत्यागिनांक्रियाकरणेप्रायश्चित् | ३९६ |
| ब्रह्मचारिणोऽत्यकर्मकरणेआशौचाभावः | ३९२ | आहिताग्नेर्विशेषः | ३९७ |
| समावर्तनोत्तरत्रयहाशौचम् | ३९३ | प्रमादमरणेत्वाशौचं न | ३९७ |
| दुर्भिक्षाद्यापद्रुतानामाशौचाभावः | ३९३ | सर्पहतेमृतेविशेषः | ३९७ |
| अथकर्मतआशौचम् | ३९३ | दुर्मरणनिमित्तदानानि | ३९७ |
| तत्रसत्रिब्रत्यादीनामाशौचम् | ३९३ | तत्रव्याघ्रेणनिहते | ३९७ |
| कार्वादीनामाशौचाभावः | ३९३ | सर्पदष्टेमृते | ३९७ |
| राजादीनाम् | ३९३ | राज्ञानिहते | ३९७ |
| व्रतयज्ञविवाहादिषु | ३९३ | चौरेणनिहते | ३९७ |
| आशौचेआकस्मिकतीर्थप्राप्तौ | ३९३ | शय्यामृते | ३९७ |
| दीक्षावतांजपपूजानुष्ठानाशौचाभावः | ३९३ | शौचहीनेमृते | ३९७ |
| सूतकिनःपूजाधिकारः | ३९३ | संस्कारहीनेमृते | ३९७ |
| श्रौतकर्मणिविशेषः | ३९३ | अश्वहते | ३९७ |
| ऋत्विजामाशौचाभावः | ३९३ | शुनाहते | ३९७ |
| तुलापुरुषदानादौदोषाभावः | ३९३ | सूकरेणहते | ३९७ |
| अत्रापवादांतरम् | ३९३ | कृमिभिर्मृते | ३९७ |
| श्राद्धादौविशेषः | ३९३ | वृक्षहते | ३९७ |
| स्मार्ताग्निहोमादौसूतकाभावः | ३९४ | शृंगिणाहते | ३९७ |
| आशौचेपंचमहायज्ञनिषेधः | ३९४ | शकटेनहते | ३९७ |
| संध्यादीनामपवादः | ३९४ | भृगुपातमृते | ३९७ |
| सूतकेसंध्याविधिः | ३९४ | अग्निनानिहते | ३९७ |
| ग्रहणेआशौचापवादः | ३९४ | दारुणानिहते | ३९७ |
| भोजनकालेअशुचिर्भवतिचेत् | ३९४ | शस्त्रेणनिहते | ३९७ |
| अथद्रव्यतः | ३९४ | अश्मनानिहते | ३९७ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| विषेणमृते ... | ... |
| ऊर्ध्वधनेनमृते... | ... |
| जलेनमृते ... | ... |
| विषूचिकामृते ... | ... |
| कांठाव्रकवलेमृते ... | ... |
| कासरोगेणमृते ... | ... |
| अतिसारमृते... | ... |
| शाकिन्यादिग्रहैर्मृते ... | ... |
| विद्युत्पातेनमृते ... | ... |
| अंतरिक्षमृते... | ... |
| अस्पृश्यस्पर्शितोमृते ... | ... |
| पतितेमृते ... | ... |
| अपत्यरहितेमृते ... | ... |
| स्त्रियाअन्वारोहणे ... | ... |
| वैधमरणे ... | ३३८ |
| कलौस्त्रीणांसहगमनम् ... | ३३९ |
| तीर्थमरणे ... | ४०० |
| प्रयागादौमरणेदशाहाशौचम् ... | ... |
| अनशनादिमृतानाम् ... | ... |
| मरणांतप्रायश्चित्ते ... | ... |
| आत्महत्यादीनां वत्सरांते और्ध्वदेहिकम्.... | ... |
| आत्मघातादिप्रायश्चित्तम् ... | ... |
| नारायणबलिः | ... |
| पतितोदकविधिः ... | ४०१ |
| नारायणबलिप्रयोगः ... | ४०२ |
| अत्रसर्पहतेतुविशेषः | ४०३ |
| उदकमृतेविशेषः | ... |
| नारायणबलिकर्तुराशौचम् ... | ... |
| व्युच्छिन्नसंततिमृतेविशेषः ... | ... |
| युद्धमृतौ ... | ... |
| अपुत्रस्यनारायणबलिः ... | ... |
| अथविधानादाशौचाभावः ... | ४०४ |
| तत्रयतिमरणेसंस्कारनिर्णयः ... | ... |
| अपरोनारायणबलिः ... | ... |
| कृतजीवच्छाद्वेष्टे ... | ४०५ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| आहिताग्नौप्रोपितेमृते ... | ... |
| अस्थ्याद्यलाभेपालादिदाहविधिः ... | ... |
| पालाशविधिद्रव्याणि | ... |
| इदंनिरग्नेरपि ... | ... |
| प्रेषितस्यद्वादशाव्दातिक्रमे ... | ... |
| देशांतरमृतस्यदिनाज्ञानेसंस्कारकालः ... | ... |
| आहिताग्न्यादीनामाशौचनिर्णयः | ४०६ |
| तत्रगृहीताशौचानांनिर्णयः | ... |
| अगृहीताशौचानांनिर्णयः ... | ... |
| अथातीतसंस्कारेआशौचनिर्णयः ... | ... |
| अथप्रेतसंस्कारकालः ... | ... |
| प्रत्यक्षशवसंस्कारे ... | ... |
| आशौचमध्येशवसंस्कारे... | ... |
| आशौचोत्तरसंस्कारे ... | ... |
| अस्यापवादः ... | ४०७ |
| साक्षात्संस्कारे ... | ... |
| अतीतेअस्तादिवर्ज्यम् ... | ... |
| निषिद्धकालेदाहेदानादि... | ... |
| कृतौर्ध्वदेहिको जीवन्नागच्छतिचेत् ... | ... |
| अमृतस्यदाहादौस्त्रीसहगमने ... | ... |
| अथसर्पसंस्कारविधिः ... | ४०८ |
| नागबलिविधिः ... | ... |
| वटस्फोटविधिः | ... |
| पतितसंग्रहविधिः ... | ... |
| कृतवटस्फोटस्यपुनःसंग्रहविधिः ... | ४०९ |
| पतितानांचरितत्रतानांपरिग्रहः ... | ४ |
| साधारणांत्यक्रियविधिः.... | ... |
| तत्रादिकारिणःप्रागुक्ताः... | ... |
| सर्वाभावेधर्मपुत्रः ... | ... |
| योभिदःसदृशाहंकुर्यात् ... | ... |
| आसन्नमरणेदानानि ... | ... |
| तत्रभोक्षधेनुदानम् ... | ... |
| ऋणधेनुदानम् ... | ... |
| पापधेनुदानम् ... | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|--|------------|
| मरणस्य पुण्यकालः | ११ | निर्हरणप्रकारः | ११ |
| वैतरणीधेनुदानम् | ११ | शवसंस्कारविधिः | ११ |
| उत्क्रांतिधेनुदानम् | ११ | आहिताग्नौ विदेशमृते दाहनि० | ११ |
| दशदानानि | ४११ | साम्नेदीहेपात्रन्यासादि | ११ |
| तिलपात्रदानम् | ११ | शवेभिदानमंत्रः | ११ |
| मरणकाले पुण्यमंत्रश्रवणम् .. | ११ | उत्क्रांतिकाले पट्टपिंडदानम् | ४१६ |
| अष्टौदानानि | ११ | प्रेतस्य स्नानवस्त्रालंकरणम् | ११ |
| कर्तुरधिकारप्रायश्चित्तम् | ११ | प्रेतस्य वपनम् | ११ |
| सुमूर्धोर्मिधुपर्कदानम् | ११ | नलदानुलेपनादि | ११ |
| दुर्मरणे प्रायश्चित्तम् | ११ | नम्रः प्रेतो न दग्धव्यः | ११ |
| शूद्रेण दग्धे प्रायश्चित्तम् | ११ | लेशेषः प्रेतो दाह्यः | ११ |
| अस्पृश्यस्पर्शे प्रायश्चित्तम् | ११ | दाहकाले भिन्नाशे | ११ |
| ऊर्ध्वोच्छिष्टे मृते प्रायश्चित्तम् | ११ | पर्णशरदाहाभिन्नाशे | ११ |
| खट्वायां मरणे प्रायश्चित्तम् | ११ | पर्णशरदग्धे तद्देहलाभे | ११ |
| रात्रौ प्रेतदाहे निर्णयः | ४१२ | दंपत्योरेकदामृतौ | ४१७ |
| रात्रौ वपननिर्णयः | ११ | इदकदानविधिः | ११ |
| प्रेतस्य वपननिर्णयः | ११ | प्रेतस्नानविशेषः | ४१८ |
| आशौचांते पुनर्वपनम् | ११ | अंजलिदाननिर्णयः | ११ |
| रात्र्युषिते प्रेतप्रायश्चित्तम् | ११ | ह्यौवाद्यैर्नो दकंदेयम् | ११ |
| साम्नेर्विशेषः | ११ | आशौचेनियमाः | ११ |
| विच्छिन्नश्रौताग्नेः प्रेताधानम् | ४१३ | प्रेतदग्ध्वागृहमागत्य निवर्दशनादि | |
| अग्न्यरणीनां नाशे | ११ | कार्यम् | ४१९ |
| वृष्ट्या दिनाऽभिन्नाशे | ११ | तद्दिने क्रीतलब्धमन्नादि भक्षणीयम् | ११ |
| पत्नीमरणे येवम् | ११ | उपवासाशक्तौ अशननि० | ११ |
| प्रथमायां जीवत्यां द्वितीयायां मृता | | अधःशय्यासनादिनियमाः | ११ |
| यां दाहनि० | ११ | दशाहमध्ये ज्ञातिभोजनम् | ११ |
| दंपत्योर्मध्ये प्रथममृतस्य दाहनि० | ११ | आशौचेदानप्रतिग्रहादि वर्ज्यम् | ११ |
| पश्चान्मृतस्य दाहनि० | ११ | मृत्युस्थाने प्रत्यहं वलिर्देयः | ११ |
| अपत्नीकस्याधानम् | ४१४ | नम्रप्रच्छादनश्राद्धे वस्त्रादिदानानि | ११ |
| वरस्य दाहाभिनि० | ११ | अथ प्रेतपिंडनिर्णयः | ४२० |
| दाहाभिनि० | ११ | वर्णभेदेन पिंडसंख्या | ११ |
| दाहेनि० | ११ | सद्यः शौचे पिंडदाननि० | ११ |
| पणम् | ११ | अपहाशौचे पिंडदाननि० | ११ |
| यसः | ४१५ | उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्वयविपर्यये | |
| | | निर्णयः | ११ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| क्रियाकर्तुर्नाशे ... | ११ |
| भार्यायाः कर्तृत्वेरजोदर्शनेनि० ... | ११ |
| आशौचमध्येकर्तुरस्वास्थ्ये ... | ११ |
| असंस्कृतानांपिंडः कुत्रदेयः ... | ४२१ |
| फलमूलादिद्रव्यमिश्रितः पिंडोदेयः ... | ११ |
| एकमेव पिंडद्रव्यम् ... | ११ |
| पिंडांशलौकिकाभौपचेत् ... | ११ |
| येन केनापि दाहादिक्रियारव्धाचेत् ... | ११ |
| पुत्रेण पुनः करणे निषेधः ... | ११ |
| प्रेतपिंडदाने पितृशब्दस्वधाशब्दादिनां चारणीयम् ... | ११ |
| एकादशाहदिनपर्यन्तरात्रौ जलं दुग्धं च देयम् ... | ४२२ |
| दशाहेतलदीपः स्थाप्यः ... | ११ |
| भोजनकाले भक्तमुष्टिदानम् ... | ११ |
| हशाहमध्ये दर्शपाते ... | ११ |
| मातापित्रोस्तु विशेषः ... | ११ |
| अत्र देशाचाराद्यवस्था ... | ११ |
| अथास्थिसंचयः ... | ४२३ |
| तत्र कालनिर्णयः ... | ११ |
| संचयने श्राद्धत्रयम् ... | ११ |
| सद्यः शौचे संचयनम् ... | ११ |
| ज्येष्ठाशौचे संच० ... | ११ |
| संचयने श्मशानदेदताः ... | ११ |
| संचयनविधिः ... | ११ |
| प्रेतस्य प्रधानांगास्थिग्रहणम् ... | ११ |
| तीर्थेऽस्थिक्षेपविधिः ... | ४२४ |
| अन्यकुलस्यास्थिनयने दोषः ... | ११ |
| अस्थिक्षेपांगहेमश्राद्धम् ... | ११ |
| अस्थिक्षेपांगहोमः ... | ११ |
| अस्त्रांशुद्विकरणे पदार्थाः ... | ११ |
| संचयनोत्तरश्राद्धम् ... | ११ |
| अनुपनीतस्यास्थिसंचयनि० ... | ११ |
| अथ नवश्राद्धनिर्णयः ... | ४२५ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| नवश्राद्धाकरणे दोषः ... | ११ |
| शास्त्रभेदाद्यवस्था ... | ११ |
| प्रेतश्राद्धेऽष्टादशपदार्थावज्याः ... | ४२६ |
| प्रेतश्राद्धानिलौकिकाभौगृहे कार्यणि ... | ११ |
| प्रेतश्राद्धसंभवेऽन्नकार्यम् ... | ११ |
| नवश्राद्धशेषभोजने प्राय० ... | ११ |
| नवश्राद्धे विभेदास्तेनि० ... | ११ |
| अन्वारोहणे विशेषः ... | ११ |
| आशौचात्यदिनकृत्यम् ... | ११ |
| दशमदिनवपने निर्णयः ... | ४२७ |
| अथैकादशाहकृत्यम् ... | ११ |
| विप्रादीनामाशौचशुद्धिः ... | ११ |
| आवश्राद्धमेकादशेऽह्निकाः ... | ११ |
| अस्य विभेदगौणकालः ... | ४२८ |
| आद्यमासिकाद्यादि कयोर्निर्णयः ... | ११ |
| विप्राभावे अग्रमहैकोदिष्टम् ... | ११ |
| अथ वृषोत्सर्गः ... | ४३० |
| वृषोत्सर्गाकरणे दोषः ... | ११ |
| नीलवृषोत्सर्गफलम् ... | ११ |
| वृषोत्सर्गकालः ... | ११ |
| अयंगृहे न कार्यः ... | ११ |
| नीलवृषलक्षणम् ... | ११ |
| वृषाभावे मृदादिना कार्यः ... | ११ |
| तद्भावे होमः कार्यः ... | ११ |
| वृषोत्सर्गविधिः ... | ११ |
| पतिपुत्रवत्यावृषोत्सर्गे न कार्यः ... | ११ |
| तत्स्थाने सवत्सापयस्विनीदेया ... | ११ |
| आशौचांतरे पितृवृषोत्सर्गादिकर्मका- र्यमेव ... | ११ |
| अथ पददानम् ... | ४३१ |
| पददानवस्तूनि ... | ११ |
| चतुर्दशोपदानानि ... | ११ |
| अथ शय्यादानम् ... | ११ |
| शय्यादानसामग्री ... | ११ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|---|------------|
| मरणस्य पुण्यकालः ... | ... | निर्हरणप्रकारः ... | ... |
| वैतरणीधेनुदानम् ... | ... | शवसंस्कारविधिः ... | ... |
| उत्क्रांतिधेनुदानम् ... | ... | आहिताग्नौ विदेशमृते दाहनि० | ... |
| दशदानानि | ... ४११ | साम्प्रदायिकपात्रन्यासादि ... | ... |
| तिलपात्रदानम् ... | ... | शवे मिदानमंत्रः ... | ... |
| मरणकाले पुण्यमंत्रश्रवणम् .. | ... | उत्क्रांतिकालेषूपिण्डदानम् ... | ... ४१६ |
| अष्टौदानानि ... | ... | प्रेतस्य स्नानवस्त्रालंकरणम् ... | ... |
| कर्तुरधिकारप्रायश्चित्तम् | ... | प्रेतस्य वपनम् ... | ... |
| सुमुखोर्मिधुपर्कदानम् ... | ... | तलदानुलेपनादि ... | ... |
| दुर्मरणप्रायश्चित्तम् ... | ... | नमःप्रेतानुदग्धव्यः ... | ... |
| शूद्रेण दग्धप्रायश्चित्तम् | ... | सशेषःप्रेतोदाह्यः ... | ... |
| अस्पृश्यस्पर्शप्रायश्चित्तम् | ... | दाहकाले मिनाशे ... | ... |
| ऊर्ध्वोच्छिष्टे मृते प्रायश्चित्तम् ... | ... | पर्णशरदाहा मिनाशे ... | ... |
| खट्वायां मरणप्रायश्चित्तम् ... | ... | पर्णशरदग्धते देहलाभे ... | ... |
| रात्रिप्रेतदाहे निर्णयः ... | ... ४१२ | दंपत्योरेकदामृता ... | ... ४१७ |
| रात्रौ वपननिर्णयः ... | ... | उदकदानविधिः ... | ... |
| प्रेतस्य वपननिर्णयः ... | ... | प्रेतस्नानविशेषः ... | ... ४१८ |
| आशौचांते पुनर्वपनम् | ... | अंजलिदाननिर्णयः ... | ... |
| रात्र्युषिते प्रेतप्रायश्चित्तम् ... | ... | होवाद्यैर्नोदकदेयम् ... | ... |
| साम्प्रदिविशेषः ... | ... | आशौचेनियमाः ... | ... |
| विच्छिन्नश्रौताग्नेः प्रेताधानम् ... | ... ४१३ | प्रेतदग्धवागृहमागत्य निवदंशनादि | |
| अग्न्यरणीनां नाशे | ... | कार्यम् ... | ... ४१९ |
| वृष्ट्या दिनाऽग्निनाशे ... | ... | तद्दिने श्रीतलवधमन्त्रादिभक्षणीयम् ... | ... |
| पत्नीमरणेप्येवम् | ... | उपवासाशक्तौ अशननि० ... | ... |
| प्रथमायां जीवत्यां द्वितीयायां मृता | | अधःशय्यासनादिनियमाः ... | ... |
| यां दाहनि० ... | ... | दशाहमध्ये ज्ञातिभोजनम् ... | ... |
| दंपत्योर्मध्ये प्रथममृतस्य दाहनि० | ... | आशौचे दानप्रतिग्रहादिबर्ज्यम् ... | ... |
| पश्चान्मृतस्य दाहनि० | ... | मृत्युस्थाने प्रत्यहं वलिर्देयः ... | ... |
| अपत्नीकस्याधानम् ... | ... ४१४ | नम्रप्रच्छादनश्राद्धे वस्त्रादिदानानि ... | ... |
| विधुरस्य दाहाग्निनि० ... | ... | अथ प्रेतपिण्डनिर्णयः ... | ... ४२० |
| विधवाया दाहाग्निनि० ... | ... | वर्णभेदेन पिण्डसंख्या ... | ... |
| ब्रह्मचारिणो दाहनि० ... | ... | सद्यःशौचे पिण्डदाननि० ... | ... |
| उज्जापनाभिलक्षणम् ... | ... | त्र्यहाशौचे पिण्डदाननि० ... | ... |
| दाहे निषिद्धाग्निः ... | ... | उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये | |
| शवनिर्हरणे दिङ्निग्रसः .. | ... ४१५ | निर्णयः ... | ... |

| विषयः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| क्रियाकर्तुर्नाशे | .. |
| भार्यायाः कर्तृत्वेरजोदर्शनेति० | .. |
| आशौचमध्ये कर्तुरस्वास्थ्ये | .. |
| असंस्कृतानां पिंडः कुत्र देयः | ४२१ |
| फलमूलादिद्रव्यमिश्रितः पिंडो देयः | .. |
| एकमेव पिंडद्रव्यम् | .. |
| पिंडान्नलौकिकामौपचेत् ... | .. |
| येन केनापि दाहादिक्रियारब्धा चेत् ... | .. |
| पुत्रेण पुनः करणे निषेधः ... | .. |
| प्रेतपिंडदाने पितृशब्दस्वधाशब्दादिनो चारणीयम् ... | .. |
| एकादशाहदिनपर्यन्तरात्रौ जलंदुग्धं च देयम् ... | ४२२ |
| दशाहेतलदीपः स्थाप्यः ... | .. |
| भोजनकाले भक्तमुष्टिदातुम् ... | .. |
| दशाहमध्ये दर्शपाते ... | .. |
| मातापित्रोस्तु विशेषः ... | .. |
| अत्र दशाचाराद्यवस्था ... | .. |
| अथास्थिसंचयः ... | ४२३ |
| तत्र कालनिर्णयः ... | .. |
| संचयने श्राद्धत्रयम् ... | .. |
| सद्यः शौचे संचयनम् ... | .. |
| ज्येष्ठाशौचे संच० ... | .. |
| संचयने श्मशानदेवताः ... | .. |
| संचयनविधिः ... | .. |
| प्रेतस्य प्रधानांगास्थिग्रहणम् ... | .. |
| तीर्थेऽस्थिक्षेपविधिः ... | ४२४ |
| अन्यकुलस्यास्थिनयने दोषः ... | .. |
| अस्थिक्षेपांगहेमश्राद्धम् ... | .. |
| अस्थिक्षेपांगहोमः ... | .. |
| अश्रांशुद्धिकरणे पदार्थाः ... | .. |
| संचयनोत्तरश्राद्धम् ... | .. |
| अनुपनीतस्यास्थिसंचयनि० ... | .. |
| अथ नवश्राद्धनिर्णयः ... | ४२५ |

| विषयः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| नवश्राद्धाकरणे दोषः ... | .. |
| दास्यभेदाद्यवस्था ... | .. |
| प्रेतश्राद्धेऽष्टादशपदार्थावर्ज्याः ... | ४२६ |
| प्रेतश्राद्धानिलौकिकामौगृहेकार्याणि ... | .. |
| प्रेतश्राद्धसंभवेऽन्नेन कार्यम् ... | .. |
| नवश्राद्धशेषभोजने प्रायः ... | .. |
| नवश्राद्धे विघ्ने प्राप्ते नि० ... | .. |
| अन्वारोहणे विशेषः ... | .. |
| आशौचात्य दिनकृत्यम् ... | .. |
| दशमदिनवपने निर्णयः ... | ४२७ |
| अथैकादशाहकृत्यम् ... | .. |
| विप्रादीनामशौचशुद्धिः ... | .. |
| आद्यश्राद्धमेकादशेऽद्विका० ... | .. |
| अस्य विघ्ने गौणकालः ... | ४२८ |
| आद्यमासिकाद्याद्विकयोर्निर्णयः ... | .. |
| विप्राभावे अग्नौ मूत्रोद्विष्टम् ... | .. |
| अथ वृषोत्सर्गः ... | ४३० |
| वृषोत्सर्गाकरणे दोषः ... | .. |
| नीलवृषोत्सर्गफलम् ... | .. |
| वृषोत्सर्गकालः ... | .. |
| अयंगृहे न कार्यः ... | .. |
| नीलवृषलक्षणम् ... | .. |
| वृषाभावे मृदादिना कार्यः ... | .. |
| तदभावे होमः कार्यः ... | .. |
| वृषोत्सर्गविधिः ... | .. |
| पतिपुत्रवत्यावृषोत्सर्गनकार्यः ... | .. |
| तत्स्थाने सवत्सापयस्विनी देया ... | .. |
| आशौचांतरे पिबृषोत्सर्गादिकर्मका- र्यमेव ... | .. |
| अथ पददानम् ... | ४३१ |
| पददानवस्तूनि ... | .. |
| चतुर्दशोपदानानि ... | .. |
| अथ दद्यादानम् ... | .. |
| शय्यादानसामग्री ... | .. |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|---------------------------------------|------------|
| शय्यादानमंत्रः | १२२० | पुनःसर्पिणीकरणेविशेषः | १२२१ |
| सूतकशय्यादानविशेषः | १२२१ | युक्तममृतौसर्पिणीकरणानि ० | १२२२ |
| लालाटिकास्थिभोजनम् | १२२२ | गोआदःसर्पिण्डाधिकारः | १२२३ |
| अथोदकुम्भदाननिर्णयः | १२२३ | स्त्रीणांसर्पिणीकरणानि ० | १२२४ |
| अश्वान्नदानम् | १२२४ | अपुतायाःसर्पिण्डनम् | १२२५ |
| पथमाब्देप्रत्यहंदीपोदयः | १२२५ | आसुरादिविवादिनायाःसर्पिण्डनम् | १२२६ |
| अथमासिकश्राद्धानि | १२२६ | सर्पिण्डनमेवमर्त्यकृत्यः | १२२७ |
| तत्रपोडशश्राद्धानि ० | १२२७ | कोकिलमनानुसारिणः | १२२८ |
| ऊनमासिकनिर्णयः | १२२८ | अपतायासर्पिण्डनम् | १२२९ |
| उत्तेपुनर्व्यदिनानि | १२२९ | अपतायासर्पिण्डनम् | १२३० |
| त्रिपुण्ड्ररक्षणम् | १२३० | अपतायासर्पिण्डनम् | १२३१ |
| प्रतिमासंश्राद्धकरणाशर्कानि ० | १२३१ | वर्तीनांसर्पिण्डनम् | १२३२ |
| एतेषांयुगपत्करणेनि ० | १२३२ | सर्पिण्डनविधिः | १२३३ |
| पुद्धिनिमित्तापकर्षपुनःकरणम् | १२३३ | सर्पिण्डनकामकार्योद्देशः | १२३४ |
| पुद्धिनिमित्तापकर्षपुनःकरणाभावः | १२३४ | सर्पिणीकरणपक्षावर्तनकृत्यम् | १२३५ |
| सर्पिण्डनापकर्षोदयः | १२३५ | सर्पिण्डनान्तरपक्षेयमाह्वयम् | १२३६ |
| अंतरितानांनवश्राद्धमासिकारक्षणांशः | १२३६ | ततोपुद्धिश्राद्धकार्यम् | १२३७ |
| तत्रम् | १२३७ | एतन्मन्त्राग्रेसर्पिण्डनम् | १२३८ |
| अथसर्पिणीकरणनिर्णयः | १२३८ | इति सर्पिणीकरणम् ० | |
| तत्रसाधिकांनिरम्भिकयोर्नि ० | १२३९ | | |
| सर्पिणीकरणकालः | १२४० | अथप्रथमाब्देसर्पिण्डनम् | १२४१ |
| सर्पिणीकरणस्थापकनिर्णयः | १२४१ | द्वितीयकर्षणिप्रशुचिनाम् | १२४२ |
| पुद्धिश्राद्धस्यावश्यकानावश्यकता | १२४२ | पत्न्यार्क्षोपवाहः | १२४३ |
| निर्णयः | १२४३ | संघातमरणेनिर्णयः | १२४४ |
| अंतरितसर्पिणीकरणेनश्राद्धा ० | १२४४ | पितरिगृहेअन्यस्यभ्रातृव्यकार्यम् | १२४५ |
| सर्पिणीकरणेऽष्टौकालाः | १२४५ | पितृदायांनमाशोर्निर्णयः | १२४६ |
| सर्पिणीकरणेऽष्टौमस्यैवाधिकारः | १२४६ | तत्रपितृपुत्रोत्तरावश्यकतामाह | १२४७ |
| आदितामःकनिष्ठस्याधिकारः | १२४७ | मातुःपश्चात्सर्पिण्डनम् | १२४८ |
| एवंश्राद्धविधिः | १२४८ | भार्यायाश्चिन्मासम् ० | १२४९ |
| वृद्धममाधेवर्षातसर्पिणी ० | १२४९ | आतुपुत्रयोःसर्पिण्डनमाशो | १२५० |
| ज्येष्ठदेशांतरेसति | १२५० | प्रथमेन्देगयाश्राद्धादिनिर्णयः | १२५१ |
| देशांतरेपितरिमृतेपुत्रैःकार्यम् | १२५१ | अस्यापवादः | १२५२ |
| अत्रदत्तकस्यविशेषःप्रागुक्तः | १२५२ | अथविधानानि | १२५३ |
| कचित्कनिष्ठस्याधिकारयुक्तः | १२५३ | तत्रपंचकर्षोत्तरानाम् | १२५४ |
| | | त्रिपादशेर्मतोवि ० | १२५५ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| त्रिपुष्करेमृतौवि० ... | ... |
| पंचरत्नानि ... | ... |
| सूतकांतेशांतिविधिः ... | ४४८ |
| प्रकारांतरेणशांतिविधिः ... | ... |
| त्रिपान्नक्षत्राणि ... | ... |
| मृतःशमशानाज्जीवन्पुनरागच्छेन्न ... | ... |
| अथब्रह्मचारिमृतौ ... | ... |
| तन्नावकीर्णदोषप्राय० ... | ... |
| कुष्ठिमृतौ० ... | ... |
| कुष्ठिलक्षणानि ... | ४४९ |
| प्रायश्चित्तंविनाकुष्ठिदाहेप्राय० ... | ... |
| अष्टौमहारोगाः ... | ... |
| रजस्वलामरणे ... | ... |
| सूतिका मरणे ... | ... |
| गर्भिणीमरणे ... | ४५० |
| अन्वारोहणेप्रयोगः ... | ... |
| तत्रहारिद्राकुंकुमांजनयुतशूर्पवायनानि० ... | ... |
| पंचरत्नानि ... | ४५१ |
| अग्निप्रार्थना ... | ... |
| आज्यहोमः ... | ... |
| दृषदुपलापूजनम् ... | ... |
| पुनरग्निप्रार्थना ... | ... |
| कातरायाःपुनरुत्थापनम् ... | ... |
| सहगमनमहिमा ... | ... |
| पृथक्चित्तारोहणेनिषे० ... | ... |
| क्षत्रियादिस्त्रीणांपृथक्चित्तिः ... | ... |
| पत्यौदेशांतरेमृतेगमनेवि० ... | ... |
| अस्थिदाहेपर्णशरदाहेवानपृथक्- चित्तिदोषः ... | ... |
| ग्रामांतरस्थायाःसहगमननिर्णयः ... | ४५२ |
| उदक्यायाअन्वारोहणेनिर्ण० ... | ... |
| चित्तिभ्रष्टायाःप्राय० ... | ... |
| गर्भिण्यादीनांसहगमनेनिषे० ... | ... |
| अन्वारोहणे रजस्वलायाःशुद्धिविधिः ... | ४५३ |
| अत्रश्राद्धादिनिर्णयःपूर्वमुक्तः ... | ... |

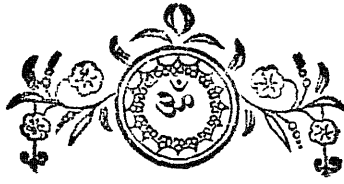
इत्यन्त्यकर्मनिर्णयः ।

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| अथाग्निप्रवेशाशक्तौ ... | ४५३ |
| अथविधवाधर्माः ... | ... |
| विधवायास्तर्पणविधिः ... | ... |
| श्राद्धादौविशेषःप्रागुक्तः ... | ... |
| अथसंन्यासनिर्णयः ... | ... |
| अत्रविप्रस्यैवाधिकारउक्तः ... | ... |
| वर्णक्रमेणाश्रमाउक्ताः ... | ... |
| संन्यासश्चतुर्धा ... | ४५४ |
| तत्रकुटीचकलक्षणम् ... | ... |
| बहूदकलक्षणम् ... | ... |
| परमहंसलक्षणम् ... | ... |
| त्रैराग्यंविनासंन्यासेदोपः ... | ... |
| यतेःपूज्यत्वम् ... | ... |
| अथसंन्यासविधिः ... | ४५५ |
| तत्रादौप्रायश्चित्तम् ... | ... |
| अष्टौश्राद्धानि ... | ... |
| तत्रप्रतिश्राद्धंदेवताक्रमः ... | ... |
| तद्विधिश्च ... | ... |
| देवौ दक्षकतू, सत्यवसू वा ... | ... |
| दंडादिसामग्री ... | ... |
| पूर्वेद्युर्नीदीश्राद्धम् ... | ... |
| दण्डस्यप्रमाणंलक्षणं च ... | ... |
| साम्नेर्निरग्नेश्चविधिः ... | ... |
| संन्यासग्रहणक्रमः ... | ४५६ |
| तत्राधिकारार्थस्वयंनवश्राद्धादीनि कर्तव्यानि ... | ... |
| अनाश्रमीचेत्प्रायश्चित्तम् ... | ... |
| संन्यासग्रहणकालः ... | ... |
| संन्याससंकल्पादि० ... | ... |
| होमेअग्निसिद्धिः ... | ... |
| तत्राहिताग्नेर्गाईपत्ये ... | ... |
| विधुरोभिहोत्रीचेत् ... | ... |
| ब्रह्मचारीचेद्दौकिके ... | ... |
| वपनपूर्वकंसावित्रीप्रवेशादिकर्म ... | ... |

| विषयाः | पृष्ठांकाः | विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| अत्रविरजाहोमःकेचिन्मते | ... ४५७ | विरक्तस्यातुरस्यनिर्ण० ... | ... |
| ततोवशिष्टप्रयोगः | ... | समाधिसंस्कारादिनि० ... | ... |
| अथयतिधर्मा... | ... ४५८ | आतुरसंन्यासानंतरंजीवितश्चेन्निर्ण० | ... |
| अथयतिभिक्षाकालः | ... | कुटीचक्रस्यदहनम् | ... |
| यतेर्भिक्षाविधिः | ... | बह्वर्कंपूरयेत् | ... |
| यतेर्भोजनविधिः | ... | हंसस्यजलेनिक्षेपः | ... |
| यतिभिक्षादानेफलम् | ... ४५९ | परमहंसंपूरयेत् | ... |
| यतेर्ग्रामादौवासदिनानि... | ... | पलाशमूलेनदीतीरेवापूरणम् | ... |
| निषिद्धवासास्थानानि | ... | शत्रुस्यस्नानालंकरणादिपूजनम् | ... |
| यतेर्निषिद्धकर्माणिपट् | ... | यथास्थानदंडादिदानम् | ... |
| यतेःपतनहेतूनिकर्माणिपट् | ... | ततःप्रोक्षणम्... | ... |
| यतेर्वैधकषट्कर्मा० | ... | अवटेप्रोक्षणं प्रेतनिक्षेपश्च... | ... |
| यतिपात्राणि.... | ... | शंखेनमूर्धभेदनम् | ... |
| यतेर्निषिद्धभिक्षा | ... | ततोलवणेनगर्तपूरणम् | ... |
| यतेर्निषिद्धकर्माणि | ... | कुटीचक्रस्यदहनविधिः | ... |
| यतेःपितृपुत्रादिमरणेस्नानमात्रम् | ... | अस्त्रांतीर्थेनिक्षेपः | ... |
| अथयतिसंस्कारः | ... | अस्याशौचनास्ति | ... |
| अथातुरसंन्यासः | ... ४६० | एकादशेहिपार्वणम् | ... |
| आतुरसंन्यासप्रयोगः | ... | हंसपरमहंसानांनपार्वणम् | ... |
| संन्यासग्रहणेफलम् | ... | द्वादशेहिनारायणवलिः | ... |
| कृच्छ्रानांतीश्राद्धविरजाहोमाशक्तौनि० | ... | तद्विधिरन्यश्चविशेषःप्रागुक्तः | ... ४६२ |
| आतुरसंन्यासविधिः | ... | ग्रंथकर्तुःश्लोकः | ... |
| तत्रअप्सुहोमः | ... ४६१ | | |
| आतुरसंन्यासिनिमृतोनि० | ... | | |

इति निर्णयसिद्धोर्विषयानुक्रमणिका समाप्ता.





श्रीमद्वेङ्कटेशाय नमः ।

श्रीमत्कमलाकरभट्टप्रणीतो-

निर्णयसिन्धुः ।

मङ्गलाचरणम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ अविघ्नमस्तु ॥

कारुण्यैकनिकेतं रामं सीतालतायुक्तम् ॥

विश्वामित्रान्ववायव्रततिसमालंविंशाखिनं वन्दे ॥ १ ॥

लक्ष्मीसहायं कल्पद्रुतलरञ्जितगोकुलम् ॥

बर्हापीडं घनश्यामं महः किञ्चिदुपास्महे ॥ २ ॥

वेदार्थधर्मरक्षायै मायामानुषरूपिणम् ॥

पितामहं हरिं वन्दे भट्टनारायणाह्वयम् ॥ ३ ॥

यत्पादसंस्मृतिः सर्वमङ्गलप्रतिभूर्मता ॥

तान् भट्टरामकृष्णारख्याञ्छ्रीतातचरणौज्जुमः ॥ ४ ॥

सर्वकल्याणसंदोहनिदानं यत्पदद्वयम् ॥

द्युनदीसोदरीमंवाभुमाख्यां नौमि सादरम् ॥ ५ ॥

विन्दुमाधवपादाब्जरोलम्बीकृतविग्रहम् ॥

ज्यायांसं भ्रातरं भट्टदिवाकरमुपास्महे ॥ ६ ॥

हेमाद्रिमाधवमते प्रविचार्य सम्यगालोच्य तत्त्वमथ तीर्थकृतां परेषाम् ॥

श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकरारख्यः काले यथामति विनिर्णयमातनोति ॥७॥

१ अन्ववायो वंश इतिटिका । २ कल्पद्रुतलरञ्जितगोकुलम्-कल्पद्रुतलं रञ्जितगोकुलम्, इति टी-
कास्थपाठान्तरम् । ३ इदं च राजसिंह इतीवपूर्वपदार्थगतश्रैष्ठ्यतात्पर्यग्राहकम् 'तं भट्टरामकृष्णा-
ख्यं श्रीतातं सादरं नुमः' इति तु रमणीयमिति संशयध्वान्तनाशिनीव्याख्याकृत् ।

सन्ति यद्यपि विद्वांसस्तन्निबन्धाश्च कोटिशः ॥
तथाप्यमुष्य वैदर्भी केचिद्विज्ञातुमीशते ॥ ८ ॥

तत्र संक्षेपतः कालः षोढा-अब्दोयनमृतुर्मासः पक्षो दिवसइति ॥ तत्राब्दो
माधवमते पञ्चधा-सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्रो बार्हस्पत्य इति ॥
अब्दः पञ्चधा । गुरोर्मध्यमराशिभोगेन बार्हस्पत्यः ॥ स च ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धः ॥
हेमाद्रिस्त्वन्त्ययोर्धर्मशास्त्रेऽनुपयोगात्तिष्ठ एव विधा आह ॥ तत्र वक्ष्यमाणैः सावना-
दिद्वादशमासैस्तत्तदब्दम् ॥ मलमासे तु सति षष्टिदिनात्मक एको मास इति ॥ द्वादश-
मासत्वमविरुद्धम् ॥ तथाचव्यासः 'षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः' इति ॥

तत्र चान्द्रोऽब्दः षष्टिभेदः ॥ तदाह गार्ग्यः 'प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोथ
प्रजापतिः ॥ अंगिराः श्रीमुखो भावो युवा धातेश्वरस्तथा ॥ बहुधान्यः प्रमाथी च
विक्रमोथ वृषस्तथा ॥ चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवोऽव्ययः ॥
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः ॥ नन्दनो विजयश्चैव जयो
मन्मथदुर्मुखौ ॥ हेमलम्बो विलम्बोथ विकारी शार्वरी प्लवः ॥ शुभकृच्छोभनः क्रोधी
विश्वावमुपराभवौ ॥ प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् ॥ परिधावी प्रमादी
च आनन्दो राक्षसोनलः ॥ पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थी रौद्रदुर्मती ॥ दुन्दुभीरुधिरो-
द्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ॥' इति । यद्यपि ज्योतिषे गुरोर्मध्यमराशिभोगेन प्रभवा-
दीनां माघादौ प्रवृत्तिरुक्ता । तथापि प्रभवादीनांचान्द्रत्वमप्यस्ति 'चान्द्राणांप्रभवादीनां
पञ्चके पञ्चके युगे' इति माधवोक्तेः ॥ तेनचान्द्रः प्रभवादिश्चेत्र-
सिते प्रवर्तते, बार्हस्पत्यस्तु माघादौ ॥ तयोर्विनियोगो ज्योतिर्निब-
न्धे ब्रह्मसिद्धान्ते 'व्यावहारिकसंज्ञोऽयं कालः स्मृत्यादिकर्मसु । योज्यः सर्वत्र तत्रापि
जैवो वा नर्मदोत्तरे' ॥ आर्षिषेणः 'स्मरेत्सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा । नान्यं
यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता' इति ॥

अयननिर्णयः । अयनं तु सौरर्तुत्रयात्मकम् । 'सौरर्तुत्रितयं प्रदिष्टमयनम्' इति दी-
पिकोक्तेः ॥ तद्विविधम् दक्षिणमुत्तरं चोति ॥ कर्कसंक्रांतिर्दक्षिणायनं मकरेन्त्यम् ॥ अन-
योर्विनियोगमाह मदनरत्ने सत्यव्रतः 'देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ ।
दक्षिणाशामुखे कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात्' वैखानसः 'मातृभैरववाराह
नरसिंहत्रिविक्रमाः । महिषासुरहंज्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥' वैशब्दोऽ
प्यर्थे न तु दक्षिणायन एवेति नियमः । पूर्ववचने दक्षिणायने निषिद्धाया देवप्रतिष्ठाया

१ तथा चोक्तमाधवेनैव-सौरवृहस्पतिसावनचान्द्रिकनाक्षत्रिकाः क्रमेण स्युः । मातुलपतितालुतुलं
विमेलवराङ्गाश्चवत्सराः पञ्च ॥ इति टीका ॥

गृहप्रवेशादि ।

देवविषये प्रतिप्रसवमात्रात् ॥ रत्नमालायाम् 'गृहप्रवेशस्त्रिदश-
प्रतिष्ठा विवाहचौलव्रतबन्धपूर्वम् । सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं
तत्खलु दक्षिणे च' इति ॥ अस्यापवादः काशीखण्डे 'सदा कृतयुगं चास्तु सदाचा-
स्तूत्तरायणम् । सदा महोदयश्चास्तु काश्यां निवसतां सताम्' ॥ इत्ययनम् ॥

ऋतुनिर्णयः । ऋतुर्मासद्वयात्मा ॥ मलमासे तु मासद्वयात्मक एको
मासः तेनमासद्वयात्मकत्वमविरुद्धम् । स द्वेधा—चान्द्रः सौरश्च । चैत्रारम्भो
वसन्तादिश्चान्द्रः, मीनारम्भो मेषारम्भो वा सौरः 'मीनमेषयोर्मेषवृषयोर्वा वमन्त
ऋतुमासभेदाः । इति बौधायनोक्तेः । अनयोर्विनिर्णययोगमाह त्रिकाण्डमण्डनः

“श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु । तदभावे तु सौरर्तुष्विति
ज्योतिर्विदां मतम् ।” सद्विविधोपि षोढा वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः शरद्धेमन्तः शिशिरः । इत्यृतुः ॥

मासनिर्णयः । मासश्चतुर्धा सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्र इति ॥ त्रिंशद्दिनः
सावनः । अर्कसंक्रान्तेः संक्रान्त्यवधिः सौरः ॥ यद्यपि हेमाद्रिमाधवकाला-
दर्शाद्यालोचनेन 'मेषसंक्रान्त्यां समाप्तमावास्यकत्वं चैत्रत्वम्' इति लक्षणाच्च मेषसंक्रान्ते-
श्चैत्रत्वं प्रतीयते तथापि मेषसंक्रमे दर्शद्वये सति वैशाखस्यैवाधिक्यात्तत्पूर्वभावित्वेन मीन-
स्यैव चैत्रत्वं युक्तम् । एवं मेषादयो वैशाखाद्याः अतो मीनसंक्रान्त्यामध्यस्थपौर्णमासि-
कत्वम् आद्यतिथिकत्वं वा चैत्रत्वमिति लक्षणात् मीन एव सौरश्चैत्रः ॥ एवं वैशाखादयोपि
मेषाद्या ज्ञेयाः ॥ सौरमासप्रसंगात्संक्रान्तिनिर्णय उच्यते ॥ तत्र 'पूर्वतोपि परतो
पि संक्रमात्पुण्यकालघटिकास्तु षोडश' इति सामान्यतः पुण्यकालः सर्वैरुक्तः । विशेषस्तू-
च्यते । अत्र मामकाः संग्रहश्लोकाः 'प्रागूर्ध्वादश पूर्वतः षडवनिस्तद्वत्पराः पूर्वतस्त्रिंशत्पो-
डश पूर्वतोऽथ परतः पूर्वाः पराः स्युर्दश ॥ पूर्वाः षोडश चोत्तरा ऋतुभुवः पश्चात्खवेदाः पुनः
पूर्वाः षोडश चोत्तराः पुनरथो पुण्यास्तु मेषादितः ॥' अस्यार्थः । मेषे प्रागूर्ध्वं च दश घ-
टिकाः पुण्यकालः, वृषे पूर्वाः षोडश, मिथुने पराः षोडश, कर्के पूर्वास्त्रिंशत्, सिंहे पूर्वाः
षोडश, कन्यायां पराः षोडश, तुलायां प्रागूर्ध्वा दश, वृश्चिके पूर्वाः षोडश, धनुषि
पराः षोडश, मकरे चत्वारिंशत्पराः । इदं च हेमाद्रिमतेनोक्तम् । माधवमते त्वत्र
परा विंशतिः पुण्याः, कुम्भे पूर्वाः षोडश, मीने पराः षोडशेति ॥ 'याप्युत्तरा पुण्यतमाम
योक्ता सायं भवेत्सा यदि सापि पूर्वा ॥ पूर्वा तु योक्ता यदि सा विभाते साप्युत्तरारात्रि
निषेधतः स्यात् । अर्वाङ् निशीथाद्यादि संक्रमः स्यात्पूर्वेऽपि पुण्यं परतः परेऽपि ॥ आसन्नया-
मद्वयमेव पुण्यं निशीथमध्ये तु दिनद्वयं स्यात् ॥ कर्के ज्येष्ठेऽप्येवमिति ह्युवाच हेमाद्रि-
सूरिश्च तथा परार्कः ॥ 'ज्येष्ठः प्रदोषे यदि वार्धरात्रे परेऽपि पुण्यं त्वथ कर्कटश्चेत् ॥
प्रभातकाले यदि वा निशीथे पूर्वोऽपि पुण्यं त्विति माधवार्यः' ॥ अत्र मूलवचनानि
माधवापरार्कहेमाद्र्यादिषु द्रष्टव्यानि ॥

१ अयं यद्यपीत्यादि—मेषाद्या ज्ञेया इत्यन्तः पाठो लिखितप्राचीनपुस्तके नोपलभ्यते ।

सर्वासु संक्रांतिषु दानविशेषो हेमाद्रौ दानकाण्डे उक्तः ॥ विश्वामित्रः
‘मेषसंक्रमणे भानोर्मेघदानं महाफलम् ॥ वृषसंक्रमणे दानं गवां प्रोक्तं तथैव च ॥ वस्त्रा-
न्नयानदानानि मिथुने विहितानि तु ॥ घृतधेनुप्रदानं च कर्कटेऽपि विशिष्यते ॥ ससुवर्णं
छत्रदानं सिंहपि विहितं सदा ॥ कन्याप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमेव च । तुलाप्रवेशे
निलानां गोरसानामपीष्टदम् ॥ अन्नकीचलिते भानौ दीपदानं महाफलम् । (अन्नकी-
चृश्चिकः ।) धनुःप्रवेशे वस्त्राणां यानानां च महाफलम् ॥ श्वप्रवेशे दारूणां दानमग्रे
स्तथैव च ॥ कुम्भप्रवेशे दानं तु गवामम्बुतृणस्य च ॥ मीनप्रवेशे स्थानानां मालानामपि
चोत्तमम् ॥ इति ॥

अत्रोपवासमाह हेमाद्रावापस्तम्बः ‘अयने विषुवे चैव त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
स्नात्वा यस्त्वर्चयेद्भानुं सर्वकामफलं लभेत्’ ॥ अशक्तौ तु वृद्धवसिष्ठः ‘अयने संक्रमे
चैव ग्रहणे चन्द्रमूर्ययोः ॥ अहोरात्रोपितः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥’ अत्रोपवासः
संक्रमदिने, दानादि तु पुण्यकालदिने इत्याचार्यचूडामणिः ॥ विधिलाघवात् पुण्य
कालदिन एवोभयमिति वृद्धाः ॥ इदं च पुत्रिगृहस्थातिरिक्तविषयम् ‘आदित्येहनि सं-
क्रान्तां ग्रहणे चन्द्रमूर्ययोः ॥ उपवासो न कर्तव्यः पुत्रिणा गृहिणा तथा’ ॥ इति जैमि-
निवचनात् ॥

अत्रश्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुधर्मे ‘श्राद्धं संक्रमणे भानोः प्रशस्तं पृथिवीपते’ ।
अपराक्रेपिविष्णुः ‘आदित्यसंक्रमश्चैव विशेषेणायनद्वयम् ॥ व्यतीपातोऽथ जन्मर्क्ष-
चन्द्रमूर्यग्रहस्तथा ॥ एतास्तु श्राद्धकालान्वैकाम्यानाहप्रजापतिः ॥ इति द्वादशादिदि-
नगर्वागयनांशप्रवृत्तावपि पुण्यं वत्कुमयनग्रहणम् । अन्यथासंक्रमेण सिद्धेरयनग्रहणं
व्यर्थं स्यादित्यपराकः ॥ हेमाद्रावपि गालवः ‘अयनांशकतुल्येन कालेनैव
स्फुटं भवेत् ॥ मृगकर्कादिगे सूर्येयाम्योदगयने सति ॥ तदासंक्रान्तिकाले स्युरुक्तावि-
ष्णुपदादयः’ इति ॥ अयनांशच्युतिरूपे संक्रांतिकालेपिविष्णुपदादयः प्रवर्तन्ते । तेन
तत्प्रयुक्तपुण्यकालादितत्रापि ज्ञेयमितिसएव व्याचख्यौ ॥ तच्च मेषायनं वृषायनमित्यादि
सर्वत्रज्ञेयम् ॥ माधवीयेपि जाबालिः-‘संक्रान्तिषु यथा कालस्तदीयेप्ययने तथा ॥
अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परा’ ॥ इति ॥ मकरायने पूर्वाः विंशतिघटिकाः
पुण्याः मकरसंक्रान्तौ तु पश्चाद्विंशतिः पुण्याः अन्यत्रायने तत्संक्रान्तिवदित्यर्थः ॥

१ अहोरात्रोपित इति प्रत्ययार्थो भूतकालो न विवक्षितः ‘अमावास्या द्वादशी च संक्रान्तिश्च
विशेषतः । एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥ अत्र स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् ।
उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम् इति सांवर्तैकवाक्यत्वात् ॥ वस्तुतस्तु ‘प्राच्यह्यात्रितयेधोप-
वसनम्’ इति दीपिकायाम् प्राचीतिविशेषणात् ॥ ‘त्रिरात्रोपोषितः’ इति पूर्ववाक्ये इवात्र प्रत्ययार्थवि-
वक्षा । सांवर्तै संक्रान्त्यधिकरणकोपवासविध्यन्तम् इति टीकानिष्कर्षः । २ बहुत्र-आदित्यसंक्रमणं विष्णु-
द्वयं विशेषेणायनद्वयं व्यतीपातः जन्मर्क्षम् अभ्युदयश्च इत्येकं पाठ उपलभ्यते । (अभ्युदयो विवाहादिमङ्गलम्)

विष्णुपदादिस्वरूपेण च दीपिकायामुक्तम् 'हर्यङ्घ्रिर्वृषसिंहवृश्चिकघटेष्वर्यस्ययः
संक्रमः कन्यामीनधनुर्नृयुक्षुषडशीत्याख्यं तुलामेषयोः ॥ प्रोक्तं तद्विषुवंशेषेयनमुदकर्का-
टके दक्षिणम्' इति ॥ हर्यङ्घ्रिर्विष्णुपदम्, नृयुकुमिथुनम् ॥ अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं
कुर्यात् ॥ तथाचापरार्के मात्स्ये 'अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा ॥ संक्रान्तिषु
च सर्वासु पिण्डनिर्वपणादृते' ॥ इति ॥ श्राद्धशूलपाणिस्तु अस्य निर्मूलत्वात् समू-
लत्वेपि 'ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु । त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं स्मृताहनि'
इति मात्स्योक्तेर्ग्रहणोपग्रहणवद्विकल्प एव इत्याह ॥ तन्न । अस्य पार्वणानुवादकत्वं
न पिण्डविधायकत्वात् ॥ पिण्डो व्यक्तिः ॥ अन्यथैकपदे पिण्डानुवादे त्रित्वविधौ वष-
ट्कर्तुः प्रथमभक्षवद्वैरूप्यापत्तेः ॥ तथाचोभयसमूलत्वे पिण्डरहितं पार्वणं कर्तव्यमित्यु-
भयवचनयोरर्थः ॥ त्रिपिण्डशब्देनैकोद्दिष्टव्यावर्तनमात्रम् ॥

मङ्गलकृत्येषु विशेषमाह ज्योतिर्निबन्धे नारदः—'त्याज्याः सूर्यस्य संक्रां-
तेः पूर्वतः परतस्तथा । विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडशषोडश' इति ॥ एतत्पुण्यका-
लोपलक्षणम् ॥ 'भानोः संक्रान्तिभोगश्च कुलिकश्चार्धयामकः' इति ज्योतिःप्रकाशे
वर्ज्येषु परिगणनात् ॥ अयनव्यतिरिक्तासु दशसु संक्रान्तिषु रात्रौ स्नानश्राद्धादि न कार्यम्'
'अद्भि संक्रमणे कृत्स्नमहःपुण्यं प्रकीर्तितम् । रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः ।
अर्धरात्रादधस्तास्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया । ऊर्ध्वसंक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्पहरद्वयम् । पूर्णे
चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः । प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ' ॥ इति वृद्ध-
वशिष्ठादिवचनैरहःपुण्यत्वोक्त्या 'रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिवा कुर्यात्तु तत्क्रियाम् । पूर्वस्मा-
त्परतो वापि प्रत्यासन्नस्य तत्फलम्' इति वसिष्ठवचनाच्चार्थाद्रात्रौ स्नानादिनिषेधप्रतीतिः ॥
यानितु 'विवाहव्रतसंक्रान्तिप्रतिष्ठाऋतुजन्मसु । तथोपरागपातादौ स्नानेदानेनिशा शुभौ'
इति 'राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकंकुर्युर्निशिकाम्यव्रतेषु च' ॥
इत्यादीनि विष्णुगोभिलादिवचनानितानि मकरकर्कसंक्रान्तिविषयाणि ॥ 'मुक्त्वाम-
करकर्कटौ' इतितयोर्दिवानुष्ठानस्य पर्युदस्तत्वादिति हेमाद्रिमाधवादयः ॥ वस्तुतस्तु
प्रागुक्तवचने न तयोर्दिनद्वयपुण्यत्वादेरेव पर्युदासान्मकरकर्कटयोरपि 'स्नानं दानं परेहनि'
इत्यादिभिरहःपुण्यत्वोक्तेः । अहःपुण्यत्वानुपपत्त्याकल्प्यरात्रिनिषेधस्य च प्रत्यक्षरात्रि-
विधिना बाधात्सर्वसंक्रांतिषु रात्रावनुष्ठानविकल्पः ॥ सचदेशाचाराद्व्यतिष्ठत इति युक्तः
पन्थाः ॥ अयनयोस्तु वक्तव्यो विशेषः श्रावणमाघे च वक्ष्यते ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—
'यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत् । तन्मासाभ्यन्तरे तस्य वैरक्लेशधनक्षयाः । त-

१. वैधीप्राप्तिमनूयैकार्थस्य निषेधस्य पाक्षिकतन्निवृत्तौ पर्यवसानादिति टीका । २. उद्देश्यत्वाविधेयत्व-
रूपवैरूप्यापत्तेः । अनेनैव पिण्डविधौ तदुद्देशेन त्रित्वविधौ : चैकप्रसरतामङ्गापत्तिरिति टीकाशयः ।

३. कुलिकज्ञानं मुहूर्तग्रन्थानुसारेण ।

गरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः ॥ स्नानं जन्मक्षगते रविसंक्रमणे नृणां शुभदम् ॥
हेमाद्रौ 'अहि चेद्रात्रियुगं स्याद्रात्रौ चेद्रासरद्वयम् । संक्रातिः पक्षिणी ज्ञेया दानाध्यय-
नकर्मसु ॥ यत्तु गौडाः 'संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे ॥ सायंसंध्यां न
सायंसंध्यानिषेधः । कुर्वीत कुर्वश्चपितृहा भवेत्' इति कर्मोपदेशिन्यां व्यासोक्तैः सायं
पुण्यकाले संध्यानिषेधमाहुः ॥ तन्निर्मूलम् ॥ अन्यच्च बहु वृत्तव्यं
विस्तरभीतिर्नोच्यते ॥ इति संक्रान्तिनिर्णयः ॥

पक्षयुगजश्वान्द्रो मासः ॥ सद्देधाशुक्लादिरमान्तः, कृष्णादिः पूर्णिमान्तश्चेति ॥
तथाच त्रिकाण्डमण्डनः 'चान्द्रोपि शुक्लपक्षादिः कृष्णादिर्वैतिचं द्विधा' ॥ इत्युक्त्वा
देशभेदेन तद्व्यवस्थामाह- 'कृष्णपक्षादिकं मासं नाङ्गीकुर्वन्ति केचन ॥ येषीच्छन्ति न
तेषामपीष्टो विन्ध्यस्य दक्षिणे' इति ॥ विन्ध्यस्य दक्षिणे कृष्णादिनिषेधादुत्तरतो
द्वयोरभ्यनुज्ञा गम्यते ॥ तत्रापि शुक्लादिर्मुख्यः, कृष्णादिर्गौणः ॥ शास्त्रेषु चैत्र-
शुक्लप्रतिपदेव चान्द्रसंवत्सरारम्भोक्तेः तदुक्तं दीपिकायाम् 'चान्द्रोब्दो मधुशुक्ल-
गप्रतिपदारम्भः' इति ॥ नहि ये कृष्णादिमन्यन्ते तेषां वत्सरारम्भो भिद्यते ॥ अतः
शुक्लादिर्मुख्यः, कृष्णादिना मलमासासंभवाच्च ॥ चन्द्रस्य सर्वनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रो
मासः ॥ सावनादीनां व्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ ब्रह्मसिद्धान्ते 'अमावास्यापरिच्छिन्नो
मासः स्याद्ब्राह्मणस्य तु ॥ संक्रान्तिपौर्णमासीभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः' अत्र ब्राह्मणा-
दीनां यत्र कर्मविशेषे वचनान्तरेण 'वसन्ते ब्राह्मणोग्रीनादधीत' इत्यादिवन्मास
उक्तः तत्र दर्शान्तत्वमात्रं नियम्यते न तु सर्वकर्मसु दर्शान्त एवेति ॥ वृष्ट्याद्यर्थसौभरे
हीषादिनिधननियमवद्विधिलाघवात् । त्रैवीर्णकानां सर्वकर्मसु मासविशेषविधेः सावना-
दीनां शूद्रानुलोमादिपरत्वापत्तेश्चेति गुरुचरणाः ॥ ज्योतिर्गर्गः 'सौरोमासो विवा-
हादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः ॥ आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रोमासः प्रशस्यते' ॥
ऋष्यशृंगः 'विवाहव्रतयज्ञेषु सौरं मानं प्रशस्यते ॥ पार्वणे त्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं
तथाब्दिके' ॥ स्मृत्यन्तरे 'एकोद्दिष्टविवाहादौ ऋणादौ सौरसावनौ' ॥ ज्योति-
र्गर्गः 'आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा ॥ सावनेनैव कर्त्तव्या शत्रूणां चाण्डु-
पासना' ॥ विष्णुधर्म 'नक्षत्रसत्राण्ययनानि चेन्दोर्मासेन कुर्याद्भगणात्मकेन' इति ।
ब्राह्मे- 'तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च ॥ विवाहादौ च सौरादिं मासं
कृत्ये विनिर्दिशेत्' ॥

१ अस्यार्थस्तु विषुवायनयोरहि संक्रमे पूर्वापरनिशयोस्तद्विवाध्यापनाव्ययने वर्जयेत्, रात्रिसंक्रमे
पूर्वापरदिनयोस्तद्रात्रौ च वर्जयेत् । एवं पक्षिणी संक्रान्तिः । द्वादशप्रहरपर्यन्तमनव्यायादिकमिति
तात्पर्यम् इति धर्मसिन्धुतोवगन्तव्यः ॥

अथ मलमासः । तत्रैकमात्रसंक्रान्तिरहितः सितादिश्चान्द्रो मासो मलमासः ॥ एकमात्रसंक्रान्तिराहित्यमसंक्रान्तत्वेन संक्रान्तिद्वयवत्त्वेन च भवतीति—मलमासो द्वेधा अधिमासः क्षयमासश्चेति ॥ तदुक्तं काठकगृह्ये—यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा ॥ मलमासः स विज्ञेयो मासः स्यात्तु त्रयोदशः इति ॥ सत्यव्रतेऽपि 'राशिद्वयं यत्र मासे संक्रमेत दिवाकरः ॥ नाधिमासो भवेदेष मलमासस्तु केवलम्' इति ॥ अधिकमासस्य कालनियममाह वसिष्ठः—'द्वात्रिंशद्भिर्मितैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा । घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमासकः' इति ॥ एतच्च सावनादिमानेन संभवार्थं नतुः नियमार्थम् ॥ अन्यथा षोडशदिनाधिकद्वात्रिंशन्मासानन्तरं कृष्णपक्षनियमेन शुक्लादित्वभंगापत्तेः । तेन न्यूनाधिककाले मलमासपातेऽपि न दोषः ॥ अत एवोक्तं माधवीये 'मासे त्रिंशत्तमे भवेत्' इति ॥ क्षयस्यापि ज्योतिःशास्त्रे 'असंक्रान्तिमासोधिमासः स्फुटं स्याद्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ॥ क्षयः कान्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्तदा वर्षमध्येधिमासद्वयं च' ॥ एकः क्षयात्पूर्वं परतश्चैक इत्यधिमानद्वयं भवतीत्यर्थः ॥ अत्र विशेषमाह जाबालिः—'मासद्वयेऽन्तरे तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत् ॥ प्राकृतस्तत्रपूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः' इति उत्तर एव कालाधिक्यं न पूर्वस्मिन्नित्यर्थः ॥ यत्तु ब्रह्मसिद्धान्ते 'चैत्रादर्वाङ्नाधिमासः परतस्त्वधिको भवेत्' इति । तत्र चैत्रात्पूर्वमसंक्रान्तद्वये पूर्वो नाधिकः, किंतु परइत्यर्थः ॥ यच्च ज्योतिःसिद्धान्ते 'घटकन्यागते सूर्ये वृश्चिके वाथ धनिनि ॥ मकरे वाथ कुम्भे वा नाधिमासो विधीयते' । इति ॥ तत् वृश्चिकादिचतुष्टये मलमासे सति पूर्वम्, तुलाकन्यागते सूर्ये क्षयात्पूर्वं कालाधिक्यनिषेधार्थं नत्वधिकमात्रस्य । 'दशानां फाल्गुनादीनां प्रायोमाघस्य च कचित् ॥ नपुंसकत्वं भवतीत्येष शास्त्रविनिश्चयः' इति । हेमाद्रौ त्रिंशुधर्मविरोधात् मलमासेष्टकादिनिषेधानुपपत्तेश्च । 'मकरे वाथकुम्भे वा' इति दृष्टान्तार्थप्राप्त्यभावाच्च ॥

क्षयस्यागमनकालउक्तः सिद्धान्तशिरोमणौ— 'गतोऽव्यद्रिर्नदौर्गतिशककाले तिथीशैर्भविष्यत्यथाङ्गाक्षमूर्यैः । गजाद्यग्निभूमिस्तथा प्रायशोयं कुवेदेन्दुवर्षैः कचिद्भो-कुभिश्च' ॥ इति ॥ अव्ययश्चत्वारः, अद्रयः सप्त, नन्दाः नव, एषां प्रातिलोभ्येन पाते ९७४ । तैर्मिते वर्षे कश्चित् क्षयमासः पूर्वजात इत्यर्थः । तिथयः पञ्चदश १९ । ईशाणकादश १११९ । एवमिते याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः । अङ्गा ६ क्ष ९ सूर्याः १२ एकत्र १२९६ । गजाः ८ अद्रयः ७ अग्रयः ३ भूः १ एकत्र १३७८ । कुः १ वेदाः ४ इन्दुः १ एकत्र १४१ । गावः ९ कुः १ एकत्र १९ । एतैर्मिते वर्षे याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः ॥

अथ मलमासे कार्याकार्य निरूप्यते-तत्र जाबालिः 'नित्यनैमित्तिके कुर्याच्छ्राद्धं कुर्यान्मलम्लुचे ॥ तिथिनक्षत्रवारोक्तकाम्यंनैवकदाचन' ॥ अयंचकाम्यनिषेधः आरम्भसमाप्तिविषयः "असूर्या नाम ये मासान्तेषु मम संमतः ॥ व्रतानां चैव यज्ञाना-आरम्भश्चसमापनम्" इति तेनैवोक्तत्वात् ॥ असूर्याऽधिकमासादित्यर्थः । तत्र 'मण्डलं तपतेरविः' इतिवचनात् ॥ कारीर्यादेःकाम्यस्य त्वारम्भसमाप्ती भवत एवेत्यादिरन्यत्र-विस्तरः ॥ काठकगृह्येपि 'मलेऽनन्यैर्गतिं कुर्यान्नित्यां नैमित्तिकींक्रियाम्' इति ॥ तानि नैमित्तिकानि दीपिकायामुक्तानि 'यन्नैमित्तिकमग्निनष्ट्यनुगताग्न्याधानमर्चासुवा संस्कारादिविलोपने साति पुनःप्रोक्तं प्रतिष्ठादिकम्' इति ॥ गत्यन्तरयुतं तु सोमादि हेयमेव ॥

तत्रकर्तव्यान्युक्तानि कालादर्शे 'द्वादशाहं सपिण्डान्तं कर्म ग्रहणजन्मनोः । सीमन्ते पुंसवे श्राद्धं द्रावेतौ जातकर्म च । रोगे शान्तिरलभ्ये च योगे श्राद्धव्रतानि च ॥ प्रायश्चित्तिनिमित्तस्य वशात्पूर्वं परत्र च ॥' अब्दोदकुम्भमन्वादिमहालययुगादिषु । श्राद्धं दर्शं प्यहरहःश्राद्धमूनादिमासिकम् ॥ मलम्लुचान्यमासेषुमृतानां श्राद्धमाब्दिकम् । श्राद्धं तुपूर्वदृष्टेषु तीर्थेष्वेव युगादिषु ॥ मन्वादिषु च यद्दानं दानं दैनंदिनं च यत् । तिलगोभूहि रण्यानांसंध्योपासनयोःक्रिया ॥ पर्वहोमश्चाग्रयणं साग्नेरिष्टिश्चपर्वणि ॥ नित्याग्निहोत्रहो मश्चदेवतातिथिपूजनम् ॥ स्नानं च स्नानविधिनाप्यभक्ष्यपेयवर्जनम् ॥ तर्पणं वा निमित्तस्य नित्यत्वादुभयत्रच' ॥ इति ॥ एतौ पुंसवनसीमन्तौ ॥ एतच्च गर्भाधानाद्यन्नप्राश-नान्तसंस्कारोपलक्षणम् ॥ तदुक्तं दीपिकायाम् 'गर्भाधानमुखं च चौलविधितःप्राग्जा-तयागं विना कृच्छ्रेष्वाग्रयणं गजेन्द्रपुरतश्छाया मधानङ्गयोः ॥ तीर्थेदुक्षययोश्च पित्र्य-मधिके मास्येवमाद्याचरेत्' इति ॥ अलभ्ययोगेऽर्धोदयपञ्चकादौ काम्यान्यपि व्रतादीनि कार्याणीत्यर्थः ॥ पूर्वं परत्र मल शुद्धे चेत्यर्थः ॥ महालयशब्देन मघात्रयोदश्युच्यत इति माधवः ॥ दर्शश्राद्धं मलेपि कार्यम् ॥ यत्तुऋष्यशृङ्गः 'संवत्सरातिरेकेण मासो

१ यत्तु ॥ 'प्रवृत्तंमलमासात्प्राक्काम्यं कर्मासमापितम् ॥ आगते मलमासेऽपि तत्समाप्तिर्न संशयः' इति ॥ तत्सावनमासप्रवृत्तकृच्छ्रचान्द्रायणादिपरमिति माधवः । २ यस्यान्यमासेनुष्ठाने कालातिक्रम-निमित्तप्रायश्चित्तपत्तिविहितकालालाभेनलोपोवातदित्यर्थः । ३ अत्रेदमपिर्वाजम्-"महालयशब्दस्य मघात्रयोदश्यां लक्षणाव्यर्था । 'वृद्धिश्राद्धंतथा सोममग्न्याधेयं महालयम् । राज्याभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलघिते' इति भृगूक्तनिषेधस्यचकालातिपन्नमहालयविषयकत्वात् । यतः 'संसर्प आश्विनादि-षट्कएव' इति भूतेऽतीतो महालयस्तत्र प्राप्तोपि न कार्यः । किंतु तदुत्तरगौणतत्काल एवेति । यदितु 'भाद्रपदोपि संसर्पः' इति मतम् । तदा प्रत्याब्दिकादिवत्स्वकालप्राप्तो महालयो भवत्येव । एवमेव 'तथाधिमाससंसर्पमलमासादिषु द्विज । प्रथमे या कृतिर्नस्यात्' इति संसर्पपदोपादानसंगतिः ॥ "आश्विनस्यैव संसर्पत्वे तत्रोपाकर्मप्राप्तिरेव निषेधानुपपत्तेः" इति ॥ इति टीका ।

यः स्यान्मलिम्लुचः ॥ तस्मिन्त्रयोदशे श्राद्धं न कुर्यादितुसंक्षये' इति ॥ तत्काम्यदर्श
 श्राद्धविषयम् 'काम्यं नैव कदाचन' इतिवचनात् ॥ दर्शेच काम्यं श्राद्धं 'कन्यांकन्या-
 वेदिनश्च' इत्यादिना याज्ञवल्क्येनोक्तम् ॥ नित्यं तु मलेपि भवत्येव "दर्शेऽप्यहरहः
 श्राद्धं दानं च प्रतिवासरम् । गोभूतिलहिरण्यानामासेपि स्यान्मलिम्लुचे" ॥ इति
 मात्स्योक्तैरिति हेमाद्र्यादयः ॥ दिवोदासीयेपि 'अनिन्दुरिन्दुपूर्णा च हरि-
 वारो बुधाष्टमी ॥ नाधिमासे परित्याज्याःसीमन्तान्नाशने शिशोः' इति ॥ अनिन्दु-
 दर्शः ॥ 'द्विविधमप्यमाश्राद्धं न कार्यम्' इत्यपरार्कः 'अत्र यद्विहितं कर्मउत्तरेमासि
 कारयेत्' इत्युक्तेः ॥ "षष्ठ्यातु दिवसैर्मासः" इतिशुद्धमासकरणेऽपि शास्त्रार्थोपपत्ते-
 र्दर्शश्राद्धं मले न कार्यमिति प्राचीनगौडाः शूलपाणिश्च संवत्सरप्रदीपेपि-
 "एकराशिस्थिते सूर्ये यदा दर्शद्वयं भवेत् । दर्शश्राद्धं तदादौ स्यान्न परैत्र मलिम्लुचे" ।
 अत्रापि नित्यकाम्यभेदेन प्राग्व्यवस्था ॥ यद्यपि कालादर्शे 'सर्वं वार्षिकं मासद्वये
 कार्यम्' इत्युक्तम् तथापि हेमाद्रिमाधवापरार्कादिमाताप्रथमाब्दिकं त्रयोदशे
 मलमासे द्वितीयाद्याब्दिकं तु शुद्धमास एव कार्यम् । "असंक्रान्तेपि कर्तव्यमाब्दिकं
 प्रथमं द्विजैः । तथैव मासिकं श्राद्धं सपिण्डीकरणं तथा" इति हारीतोक्तेः ।
 "आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे । चतुर्दशे तु संप्राप्ते कुर्वीत पुनरा-
 ब्दिकम्" इति स्मृत्यन्तरोक्तेश्च ॥ पुनराब्दिकं द्वितीयादिवार्षिकं त्रयोदशे मासेऽस्तीति
 चतुर्दशाद्यदिने कुर्यादित्यर्थः ॥ यत्तु सत्यव्रतः 'वर्षेवर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृते-
 हनि । मलमासे न तत् कार्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा' इति ॥ तद्वितीयादिवार्षिकार्थ-
 षेयम् । 'आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे' इति पूर्वोक्तवचनात् ॥ यत्र
 द्वादशं मासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेऽधिक एवाद्याब्दिकं कार्यम् यत्रत्वधि-
 कर्मध्ये द्वादशमासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्ध एव प्रथमाब्दिकं इति
 निष्कर्षः ॥ तेन द्वितीयादिशुद्धमास एव । पृथ्वीचन्द्रोदये दिवोदासीये मदन-
 पारिजाते चैवम् ॥ मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव प्रतिसांवत्स-
 रिकं कार्यम् । यथा पैठीनसिः 'मलमासमृतानां तु श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मलमासे-
 पि कर्तव्यं नान्येषां तु कथंचन' इति ॥ हेमाद्रौ व्यासोपि- 'मलमासमृतानां तु
 सौरं मानं समाश्रयेत् । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धपिण्डोदकादिषु' ॥ अत्राधिकमृतस्य न
 द्वितीयाद्यब्देपिसौरविधिः, द्वितीयादावन्याधिकेयाब्दिकेवापूर्वनियमविधिवैरूप्यात् किंतु
 प्रथमाब्दिकस्य मले नियमात् ॥ सत्यव्रतेन तद्विन्नस्य सर्वस्याधिके प्रतिप्रसवमात्रं

१ 'मेषादिस्थे सवितरि योयो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः । चैत्राद्यःस ज्ञेयः पूर्तिद्वित्वेविमासोन्त्यः'
 इति ज्योतिः पितामहोक्तमेषाद्यधिकरणदर्शान्तत्वादिरूपस्यचैत्रत्वाददर्शद्वयेसत्त्वेत्योधिमास इति
 तदभिप्रायकमेतत् । इतिटीका । २ अपरार्कादिमतंनिरस्यतिइति टीका ॥

लाघवात् ॥ अतो न द्वितीयादौ सौरमासप्रसङ्गः । 'चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके । मासपक्ष-
तिथिस्पष्टे' इत्यादिविरोधाच्च ॥ यत्तु वृद्धवसिष्ठः 'श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते अधिमासो
भवेद्यदि । मासद्वयेपि कुर्वीत श्राद्धमेवं न मुह्यति' । यच्च व्यासः 'उत्तरे देवकार्याणि
पितृकार्याणि चोभयोः' इति तन्मासिकादिविषयम् ॥ 'यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं
चापरपक्षिकम् । मन्वादिकं तैत्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च' इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ।
तथैकं तीर्थश्राद्धं तच्च मासद्वयेपि कार्यमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः । केचित्तु-
'प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि'
इति मरीचिवचनात् 'वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेहनि । मासद्वयेपि तत्कुर्याद्व्या-
घ्रस्य वचनं यथा' इति गालवोक्तेश्च प्रत्याब्दिकं मासद्वये कार्यमित्याहुः ॥ तत्तुच्छम्
प्रतिमासं मृताहे क्रियमाणं मासिकम् । प्रतिसंवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धं इति
मरीचिवचसो मदनरत्नेन व्याख्यानात् ॥ गालवीयस्य च
मलमासकार्याणि । 'मासद्वयात्मके क्षयमासे' इति माधवेन व्याख्यानात् ॥ यच्च कैश्चि
दुक्तम् प्रथमाब्दिकं मासद्वये कार्यम् । "आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे ।
त्रयोदशे च संप्राप्ते कुर्वीतपुनराब्दिकम् ।" इति यमोक्तेः ॥ तदपिचिन्त्यम् । पुनरा-
ब्दिकं द्वितीयादिवार्षिकं त्रयोदशेऽतीतेचतुर्दशे कुर्यात् ॥ अन्यथा 'सांवत्सरं न वर्धेतश्राद्धं
तत्र मृते हनि' इति पैठीनसिविरोधः स्यात् इति । हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च ॥
एतेननवर्धेत नच्छिन्द्याच्छुद्धेपि कुर्यादेवेत्यनन्तभट्टव्याख्या मानाभावात्परास्ता ॥ पूर्व-
व्याख्यायां तु हारीतीथे प्रथमग्रहणमेवमानम् ॥ यदपि निर्णयामृते पूर्वोक्तकाला
दर्शवचनात् मलमासे श्राद्धदिनस्य वन्ध्यत्वनिरासार्थं पित्रुद्देशेन ब्राह्मणान्भोजयित्वा शुद्ध-
मासे सपिण्डकं श्राद्धं कुर्यात् 'पिण्डवर्जमसंक्रान्ते संक्रान्तौ पिण्डसंयुतम् । प्रतिसंवत्सरं
श्राद्धमेवं मासद्वयेपि च' इति वृद्धपराशरोक्तेः ॥ तदपि चिन्त्यम् । पूर्वोक्तवचनस्य
क्षयपूर्वभाव्यधिकमासविषयत्वात् । तत्र हि मासद्वये श्राद्धमुक्तम् । तदाह सत्यतपाः
'एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः । मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासेपिशस्यते' इति ॥
मासद्वयगतं पूर्वोक्तसंक्रान्तिगतं क्षयगतं च । मलमासे क्षयमासे । अपिशब्दात्पूर्वाधिमासे
चोति हेमाद्रिः । दीपिकायामपि "तत्प्राक्संग्यधिमासको यदि भवेत्तत्रत्यसांवत्सरं
तस्मिच्छुद्धतया क्षये च वचनात् कुर्याद्वयोः कोविदः" इति कालादर्शोप्येतद्विषय
एवेत्यलं बहुना ॥

१ 'स्युः पक्षद्वयगाः क्रमात्प्रतिपदाद्याश्चैत्रमासक्रमात्भूतौ माधवगौ मधौ तु मदनौ ज्येष्ठस्थिते
पर्वणी । श्राद्धे त्रिंशदमी शुभाः शुभतराः कल्पादयः शुक्लाः' इति दीपिका । २ 'असंक्रान्तेपि
कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमम्' इति हारीतवाक्ये वत्सरान्तरायवार्षिकश्राद्धस्य शुद्धमासकर्तव्यत्व एवाब्दिकस्य
प्रथमत्वं विशेषणं युज्यते इति टीका । ३ क्षयसमनन्तरपूर्वः संसर्प इत्यर्थः ॥

मलमासे वज्र्यान्युक्तानि कालादर्शं 'अनित्यमनिमित्तं च दानं च महदादिकम् ।
अग्न्याधानाध्वरापूर्वतीर्थयात्रामरेक्षणम् । देवारामतडागादिप्रतिष्ठामौ
मलमासवज्र्यानि । अत्रिवनम् ॥ आश्रमस्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निष्क्रमः । राज्य

भिषेकः प्रथमश्चूडाकर्मव्रतानिच । अन्नप्राशनमारम्भो गृहाणां च प्रवेशनम् । स्नानं
विवाहो नामातिपन्नदेवमहोत्सवः । व्रतारम्भसमाप्ती चाकाभ्यं काम्यं च पाप्मनाम् ।
प्रायश्चित्तं तु सर्वस्य मलमासे विवर्जयेत् । उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदम्नार्पणम् ।
अवरोहश्च हैमंतः सर्पाणां वलिरष्टकाः । ईशानस्य वलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम् ।
दुर्गेन्द्रस्थापनोत्थाने ध्वजोत्थानं च वज्रिणः । पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि परत्रान्यच्च दैविकम्
इति ॥ अत्र मूलवचनानि हेमाद्रिमाधवादिभ्यो ज्ञेयानि ॥ दीवोदासीयेपि-
'यात्रोत्सवं च देवादिशपथं दिव्यमेवच । मलमासे न कुर्वीत व्याघ्रस्य वचनं यथा' इति ।

मलमासेऽपि ।

वज्रविजये

अयं निर्णयः क्षयमासैपि ज्ञेयः 'रविसंक्रमहीने यो वज्र्यावज्र्यविधिः
स्मृतः । स एव तु द्विसंक्रान्तेः मलमासेऽप्युदीरितः' इति काठकृ-

ह्योक्तेः ॥ क्षयमासमृतानां प्रत्याब्दिके विशेषो हेमाद्रौ-तिथ्यर्थे प्रथमेपूर्वो
द्वितीयेर्द्धे तथोत्तरः । मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥ आब्दिकवर्धार्पणे
पिज्ञेयम् ॥ यन्मलमासे वज्र्यमुक्तं तच्छुक्रगुर्वोरस्तादिष्वपि ज्ञेयम् । तदाह बृहस्प-
तिः- 'वाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तं गते गुरौ । मलमास इवैतानि विजयेद्देवदर्श-

भृशुगुर्वस्ता

दिवज्र्यानि

नम्' इति ॥ 'अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचःस्युर्नष्टभार्गवे । मलमासेऽप्यना
वृत्ततीर्थयात्रां विवर्जयेत् । आवृत्ततीर्थे दोषाभावमात्रं नतु फलम् इति

वाचस्पतिमिश्राः । तत्र अस्मति बाधके फलहेतुत्वाक्षतेः ॥ लल्लोपि- 'नीचस्थे वक्र
संस्थेऽप्यतिचरणगते बालवृद्धास्तगे वा संन्यासो देवयात्राव्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु
दीक्षा । मौञ्जीवन्धोङ्गनानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वज्र्याः सद्भिः प्रयत्नान्निदश-
पतिगुरौ सिंहराशिस्थितेच' इति ॥ दीक्षा यागदीक्षा आगमदीक्षा च ॥ तथा 'उद्यानचू-
डाव्रतवन्धदीक्षाविवाहयात्राश्च बधूप्रवेशः ॥ तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पतौ सिंहगते
न कुर्यात्' ॥ दिवोदासीये-गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे नष्टे शुक्रे मलिच्छुचे । गृहकर्म व्रतं
यात्रां मनसापि न चिन्तयेत् ॥ अस्यापवादस्तत्रैव ब्राह्मे-मुण्डनं चोपवासश्च गौतम्यां
सिंहगे गुरौ । कन्यागते तु कृष्णायां नतु तत्तीरवासिनाम् ॥ तथा । 'आद्यासौ गौतमी

१ यत्तु 'मासः संक्रान्तिहीनोधिक इति कथितः शीघ्रमन्दप्रचारैः संसर्पोहस्पतिः स्यात्समविषमतया
चालनं तत्क्षयस्य । पूर्वैश्चन्द्रार्कयोगैर्विरहितरविसंक्रान्तितश्चालनं स्याद्वक्रस्यार्कस्य मासे यदि न चलति
वैमासयुग्मं विचिन्त्यम्' इति वटेश्वरसिद्धान्ते मासयुग्मचिन्ताभिधानम् ॥ तत्त्वशुद्धमेवेति निष्कर्षा-
नुसारीणः इति टीका ॥

सिंहगुरौगोदावरी
स्तनम् कन्या गुरौ
कुशास्तनं च ।

गंगा द्वितीया जाह्नवी स्मृता । सर्वतीर्थफलं स्नानाद्भौतम्यांसिंहगे
गुरौ ॥ संहिताप्रदीपे-‘स्यात्सप्तरात्रं गुरुशुक्रयोश्च बालत्वमद्वां
दशकं च वार्धम् । वृद्धौ सितेज्यावशुभौ शिशुत्वे शस्तौ यतस्तादुपचीय-
मानौ’ ॥ वसिष्ठः-‘अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । व्रतोद्वाहादिकार्येषु अष्टाविं
शतिवास्रान्’ ॥ बाल्यादिलक्षणमुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते-‘रविणासत्तिरन्येषां ग्रहाणा-
मस्मिन् उच्यते । ततोऽर्वाग्वार्धकं प्रोक्तमूर्ध्वं बाल्यं प्रकीर्तितम्’ इति बाल्यादिपरिमाणं च
वृत्तशते ‘बालः शुक्रो दिवसदशकं पञ्चकं चैव वृद्धः पश्चादद्वां त्रितयमुदितः पक्षमै-
न्द्र्यां क्रमेण । जीवो वृद्धः शुचिरपि तथा पक्षमन्यैः शिशू तौ वृद्धौ
गुरुशुक्रयोर्बाल्य
वार्धक्यनिर्णयः । प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम्’ ॥ पश्चिमत उदये दश दिना-
नि बालः । अस्ते पञ्चदिनानि वृद्धः । पूर्वतो दिनद्वयं बालः पक्षं च वृद्ध इत्यर्थः । जीवो
गुरुः ॥ अन्यत्रत्वन्वथोक्तम् ‘प्राक्पश्चादुदितः शुक्रः पञ्चसप्तदिनं शिशुः । विपरीतं तु
वृद्धत्वं तद्वदेव गुरोरपि’ इति ॥ एषां च पक्षाणां व्यवस्थामाह मिहिरः ‘बहवो द-
र्शिताः काला ये बाल्ये वार्धकेपि वा । ग्राह्यास्तत्राधिकाः शेषा देशभेदादुतापदि’ ॥ इति
देशभेदश्च मदनरत्ने गार्ग्यः-‘शुक्रो गुरुः प्राक्पराक्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु
सप्तरात्रम् ॥ वंगेषु हूणेषु च षट्च पञ्च शेषे च देशे त्रिदिनं वदन्ति’ इति ॥ अस्तादेरप-
वादः काशीखण्डे-‘न ग्रहास्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वरालये’ ॥ त्रिस्थलीसेतौ वाय-
व्ये-‘गोदावर्यागयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये । सुरासुरगुरुणां च मौढ्य

दोषो न विद्यते’ ॥ ग्रहणद्वये तन्निमित्तककुरुक्षेत्रयात्रादानादावित्यर्थः ॥
तद्वाह त्रिस्थलीसेतौ लल्लः-‘उपप्लवे शीतलाभानुभान्वोरर्धोदये वै कपिलाख्यषष्ठ्याम् ।
सुरासुरेज्यास्तमयेपि तीर्थे यात्राविधिः संक्रमणे च शस्तः’ । ‘नमूढदोषो न च रात्रिदोषो न
चाधिमासे न मृतिर्नमृतिः’ एवमप्युत्तरार्धं पठति ॥ इत्यलं बहुना ॥ मलमासे च
व्रतविशेषउक्तो हेमाद्रौ पात्रे-‘अधिमासे तु संप्राप्ते गुडसर्पिर्युतानि च । त्रयस्त्रिंश-
दपूपानि दातव्यानि दिनेदिने । साज्यानि गुडमिश्राणि अधिमासे नृपोत्तम । अधिमासे
तु संप्राप्ते त्रयस्त्रिंशत्तु देवताः । उद्दिश्यापूपदानेन पृथ्वीदानफलं लभेत् । मलमासे च
व्रतदानादिविशेषः । त्रयस्त्रिंशदपूपान्नं कांस्यपात्रे निधाय च । सघृतं सहिरण्यं च ब्राह्म-
णाय निवेदयेत् । विष्णुरूपी सहस्रांशुः सर्वपापप्रणाशनः । अपूपान्नप्रदानेन मम
पापं व्यपोहतु । नारायण जगद्बीज भास्करप्रतिरूपक । व्रतेनानेन पुत्रांश्च संपदं
चाभिवर्धय । यस्य हस्ते गदाचक्रे गरुडो यस्य वाहनम् । शंखः करतले यस्य स मे
विष्णुः प्रसीदतु । कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिकादिना । यो वञ्चयति भूतानि
तस्मै कालात्मने नमः । कुरुक्षेत्रमयं देशः कालः पर्वद्विजो हरिः । पृथ्वीसमामिदं

दानं गृहाण पुरुषोत्तम । मलानां च विशुद्धयर्थं पापप्रशमनाय च । पुत्रपौत्राभिवृद्धयर्थं तव दास्यामि भास्कर । मंत्रेणानेन यो दद्यान्नयस्त्रिंशदपूपकान् । प्राप्नोति विपुलां लक्ष्मीं पुत्रपौत्रादिसंपदः' इति । इति निर्णयसिन्धौ मलमासनिर्णयः ॥

पक्षनिर्णयस्तु—'दैवे मुख्यः शुक्लपक्षः कृष्णः पित्र्ये विशिष्यते' इति माधवे-
नोक्तः ॥ अथ तिथिनिर्णयः—तत्र तिथिर्द्वेधा शुद्धा विद्धा च ॥ दिने तिथ्यन्तर-
संवन्धरहिता शुद्धा । तद्रहिता विद्धा ॥ तत्र शुद्धायामसंदेहाद्विद्धा निर्णीयते । तत्र
सामान्यतो वेधमाह माधवीये पैठीनसिः 'पक्षद्वयेपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम् ।

त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः'—इति ॥ हेमाद्रि-
तिथौ वेधनिर्णयः ।

मदनरत्नादौ तु द्विमुहूर्तोऽप्युक्तः—'उदिते दैवतं भानौ पित्र्यं
चास्तमिते रवौ । द्विमुहूर्ता त्रिरहश्च सातिथिर्हव्यकव्ययोः' इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥
द्विमुहूर्तत्वं चानुकल्पः—'द्विमुहूर्तापि कर्तव्या या तिथिर्वृद्धिगामिनी' इति दक्षे-
णापिशब्दोक्तेः ॥ अयं वेधः प्रातेरेव । सायं तु त्रिमुहूर्तो वेध एव—'यां तिथिं सम-
नुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीषतिः । सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत्' इति
स्कान्दोक्तेः ॥ दीपिकापि—'त्रिमुहूर्तगा तु सकला साये' इति ॥ यानि तु—'व्रतो-
पवासस्नानादौ घटिकैकापि या भवेत् । उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके'
इत्यादीनि स्कान्दादिवचनानि तानिवैश्वानराधिकरणन्यायेनावयवस्तुत्यात्रिमुहूर्तप्रशंसा-
पराणि । तिथिविशेषे वेधविशेषः स्कान्दे—'नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पंचदशभि-
स्तथा । भूतोष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम्' इति ॥ अयं चोपवासातिरिक्त
विषय इति वक्ष्यते ॥ इति वेधः ॥ तत्र सर्वा तिथिर्यदहःकर्मकालव्यापिनी सैव ग्राह्या ।
'कर्मणो यस्य यःकालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः । तया कर्माणि कुर्वीत हासवृ-
द्धी न कारणम्' इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा युग्मवा-
क्यान्निर्णयः । तस्य पूर्वावाधेनोपपत्तेः । कर्मकालस्य प्रधानांगत्वाच्च । युग्मवाक्यं
तु निगमः । 'युग्मानियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः । रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतु-
र्दश्या च पूर्णिमा । प्रतिपद्यप्यमावास्यातिथ्योर्युग्ममहाफलम् । एतद्वचस्तं महा-
दोषं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्' इति ॥ अत्र रन्ध्रान्ताः शब्दाः द्वितीयादिनवम्यन्ततिथि-
वाचकाः । रुद्र एकादशी द्वितीया तृतीयायुता सा च द्वितीयायुतेति सप्त युग्मानी-
त्यर्थः ॥ इदंच शुक्लपक्षे । अमाप्रतिपद्युग्मस्य पूर्णिमायाश्च तत्रैव सत्त्वादिति
केचित् ॥ तत्त्वं त्वमावास्याप्रतिपद्युग्मात्कृष्णपक्षालिंगात्पक्षद्वयपरमिदम् तत्तद्विशेष-
वाक्यैः कृष्णे तिथिविशेषेपोह्यत इति ॥ दशमी तूक्ता पुराणसमुच्चये—'संपूर्णे दशमी
कार्या मिश्रिता पूर्वायाथवा' इति ॥ संपूर्णे शुक्लपक्षे त्रयोदशी तु सुमन्तुनोक्ता—
'त्रयोदशी तु कर्तव्या द्वादशीसहिता सुने' इति । कृष्णपक्षे त्वापस्तम्बः—'प्रतिपत्स-
द्वितीया स्याद्वितीया प्रतिपद्युता । चतुर्थीसंयुताया च सा तृतीया फलप्रदा । पञ्चमी च

प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद । कृष्णपक्षेष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा प्रकर्त्तव्या परविद्धा न कुत्रचित् । दशमी च प्रकर्त्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम । षष्ठ्यष्टमी-
अभावास्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी । एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वेण संयुताः' इति ।
यत्तु व्याघ्रः 'स्वर्गो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम् । स्वर्गदर्पो परौ पूज्यौ हिंसा-
स्यात् पूर्वकालिकी' इति ॥ स्वर्गः साम्यम्, दर्पो वृद्धिः, तयोः परा । हिंसा क्षयस्तत्र पूर्व-
त्यर्थः ॥ एतच्छ्रद्धादिविषयम् । 'द्वितीयादिषु युग्मानां पूज्यता नियमादिषु । एको-
दिष्टादिवृद्ध्यादौ हासवृद्ध्यादिचोदना' इति व्यासोक्तेः । नियमादिषु व्रतदानादिदेव-
कर्मसु । एकोदिष्टादितिर्वृद्ध्यादावित्यर्थः ॥ कर्मकालव्याप्त्यभावे तु कर्मोपक्रमका-
लगैव ग्राह्या 'कर्मोपक्रमकालगा तु कृतिभिर्ग्राह्या न युग्मादरः' इति दीपिकोक्तेः ॥
यानि तु 'यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः । सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्य-
यनकर्मसु' । इत्यादीनि ॥ तानि त्रिमुहूर्त्तादिस्तुतिरिति निर्णयशैली ॥

अथैकभक्तम् ॥ तत्कालः पाञ्चे 'मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः'
इति ॥ मध्याह्नश्च पञ्चधा विभक्तदिनतृतीयांशः ॥ तेन यद्यपि द्वादशदण्डानन्तरं प्राप्यते
तथापि, 'दिनार्धसमयेतीति भुज्यते नियमेन यत् । एकभक्तमिति प्रोक्तमतस्तत्स्या
द्विवैवहि' इति स्कान्दोक्तेः षोडशसप्तदशादिदण्डा मुख्यः कालः ॥ दीपिकायांतु
मध्याह्नान्त्यदले त्रिभागदिवसेस्यादेकभक्तम्' इति ॥ ततः सूर्यास्तपर्यन्तं गौणः । 'द्विवै-
वहि' इत्यस्य वैयर्थ्यापत्त्येतत्परत्वात् ॥ अत्र पूर्वेष्वुर्व्याप्तिः परेष्वुरुभयेष्वुर्व्याप्तिः तद-
भावांशव्याप्तिः । तत्रापि साम्यं वैषम्यंचेति षट्पक्षाः तत्राद्ययोरसंदेह एव । तृतीये तु
पूर्वेहि गौणमुख्यव्याप्तेः सत्त्वात्पूर्वेति आध्वः युग्मवाक्यान्निर्णय इति हेमाद्रिः ।
चतुर्थपक्षे पूर्वैव । गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् । वैषम्येणांशव्याप्तौ याधिका सा ग्राह्या ।
साम्ये पूर्वा ॥ अयं च स्वतन्त्रैकभक्तनिर्णयः । अन्याङ्गे उपवासप्रतिनिधौ तदनुसारेण
निर्णयः ॥

अथ नक्तम् । तच्च दिनानशनपूर्वरात्रिभोजनम् ॥ तत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ।
'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा' इति बत्सोक्तेः । प्रदोषस्तु 'त्रिमुहूर्तं
प्रदोषः स्याद्दानावस्तं गते सति । नक्तं तत्र तु कर्त्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः' इति
मदनरत्ने व्यासोक्तेः । तत्रापि त्रिदण्डोत्तरं कार्यम् 'सायंसंध्या त्रिघटिका
अस्तादुपरि भास्वतः' इति स्कान्दोक्तेः दण्डत्रयस्य संध्यात्वात् तत्र 'चत्वारिमानि

१ 'यो यस्य विहितः कालः कर्मणस्तदुपक्रमे । विद्यमाना भवेदङ्गं नोज्झितोपक्रमेण तु इति
बौधायनवाक्याच्च' इति टीका । २-संध्याभोजननिषेधस्य रागप्राप्तभोजनपरतयेहाप्रवृत्तेः इति टीका ।
३ 'तिथिर्यथोपवासे स्यादेकभक्तेपि सा तथा' इति सुमन्तवचनमपि उपवासप्रतिनिधौ नित्यैकभक्तपरम्
इति टीका ॥

कर्माणि संध्यायां परिवर्जयेत् । आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम्^१ इति ॥ मार्कण्डेयेन भोजननिषेधात् ॥ 'सुहृत्तानं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः । नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिप' इति माधवीये भविष्योक्तेश्च ॥ गौडास्तु-
 'प्रदोषोस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते' इति वत्सोक्तः प्रदोषः । संध्या च दिनरात्र्योः
 संधौ सुहूर्तः । 'अर्वास्तमया संध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत् । तेजःपरिहानिवशाद्भानो-
 रर्धोदयं यावत्' इति वराहोक्तैरित्याहुः ॥ तन्न । अस्य संध्यावन्दनानध्यायादिपरत्वात् ॥
 अतएव तत्र खण्डमण्डलस्य संध्यात्वमुक्तं विज्ञानेश्वरेण ॥ यच्च मदनरत्ने-^२ 'नक्तस्य
 वैधत्वाद्वागप्राप्तभोजनगोचरो निषेधः' इत्युक्तम् ॥ तन्न । विधेर्निषेधाविरोधात् ॥ अन्यथा
 कपिञ्जलानित्यत्र त्रिभ्योधिकानां हिंसनं स्यात् ॥ सायंकाले नक्तं तु दिनद्वये प्रदोष-
 स्पर्शं ज्ञेयम् । 'अतथात्वे परत्र स्यादस्ताद्वर्ग्यतो हि सा' इति जाबालिवचनात् । 'प्रदो-
 षव्यापिनी नस्यादिवा नक्तं विधीयते । आत्मनो द्विगुणा छाया मन्दीभवति भास्करे ।
 तन्नक्तं नक्तमित्याहुन नक्तं निशि भोजनम्' इति स्कान्दाच्च ॥ यत्यादीनामपि
 सायाह्ने 'नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः । यतिश्च विधवा चैव कुर्या-
 त्तत्सदिवाकरम्' इति तत्रैव स्मृत्यन्तरात् ॥ इदमपुत्रविधुरोपलक्षणम् ॥ पुत्रवतस्तु
 रात्रावेव ॥ 'अनाश्रमोप्याश्रमी स्यादपत्नीकोपि पुत्रवान्' इति संग्रहोक्तेः ॥
 सौरनक्तं तु दिवैव 'त्रिमुहूर्त्तस्पृगेवाहिः निशिचैतावतीतिथिः । तस्यां
 नक्तप्रदोषादिनिर्णयः । सौरं भवेन्नक्तमहन्येव तु भोजनम्' इति सुमन्तूक्तेः ॥ हरिनक्ते
 विशेषः स्कालादर्शे स्कान्दे 'उदयस्था सदा पूज्या हरिनक्तव्रते तिथिः' इति ॥
 अन्यनक्तं तु संक्रान्त्यादावपि रात्रावेव । निषेधस्य रागप्राप्तभोजनगोचरत्वेन वैधावाध-
 कत्वात् ॥ दिनद्वयव्याप्तौ परा 'उभयोर्यदि वा तिथ्योः प्रदोषव्यापिनी तिथिः । तत्रोत्तरत्र
 नक्तं स्यादुभयत्रापिसा यतः' इति कालादर्शे जाबालिवचनात् ॥ अन्यपक्षेषु एक भ-
 क्तवन्निर्णयः ॥ अत्र विशेषो मदनरत्ने गारुडे-^३ 'हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहार-
 लाघवम् । अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजी षडाचरेत्' ॥ अग्नि कार्यं व्याहृतिहोमः ॥
 इति नक्तम् ॥ अयञ्चिते तु विशेषवचनाभावात् पक्षे उपवासे प्राप्ते उपवासवन्निर्णयः ॥

अथ नक्षत्रव्रतकालनिर्णयः ॥ विष्णुधर्मे-^४ 'उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमि-
 याद्रविः । युज्यते यत्र वा तारा निशीथे शनिना सह' इति ॥ माधवीये स्कान्दे
 'तत्रैवोपवसेदक्षे यन्निशीथादधोभवेत् । उपवासे यद्वक्षं स्यात्तद्धि नक्तैकभक्तयोः' ॥

अथ व्रतपरिभाषाः ॥ तत्राधिकारिणो मदनरत्ने भविष्ये 'अनग्रयस्तु ये
 विप्रास्तेषां श्रेयो विधीयते । व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथानृप' अनग्रिग्रहणमुपवास-

१ 'एकभक्तायाचितयोर्था विंशतिघटिकावधिः । सा तिथिः सकला ज्ञेया नक्ते सायाह्नसंगता'
 इति विशेषवचनान्निर्णय इति मयूखे ॥ भृत्यभार्यादिभ्योपि न याचितव्यमित्यन्यत्र विस्तरः ॥

विषयम् । अतएव देवलः 'आहिताग्निरनङ्गांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः । अनन्त एव निध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्रताम्' ॥ एकादश्यादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः ॥ शूद्रस्याप्यधिकारः- 'शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति । वेदमन्त्रस्वधास्वाहावष- दकारादिभिर्विना' इतिव्यासोक्तेः ॥ प्राच्यास्तु वैश्यशूद्रयोर्द्वित्रात्राधिकोपवासनि- पेयः । 'वैश्याः शूद्राश्च ये मोहादुपवासं प्रकुर्वते । त्रिरात्रं पंचरात्रं वा तेषां व्युष्टिर्न विद्यते । चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्ये शूद्रे विधीयते । त्रिरात्रं तु न धर्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवादिभिः' ॥ इतिहे- माद्रौ वचनादित्याहुः ॥ यावदुक्तनिषेधइत्यन्ये । तत्त्वं तु प्रकरणान्महातपोविषय इति उपवसानाधिकारि युक्तम् ॥ एवं स्त्रीणामपि । यत्तुस्कान्दे- 'नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो निर्णयः । न व्रतं नाप्युपोषणम् । भर्तृशुश्रूषयैवेता लोकानिष्ठान् व्रजन्ति हि ।

यद्वेभ्यो यच्चपित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियां च । तस्यार्थं वै सा फलं नान्य- चित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव' । आदित्यपुराणे- 'नारी खल्वननुज्ञाता भर्ता वापि सुतेन वा । विफलं तद्भवेत्तस्या यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम्' इति । और्ध्वदेहिकं पारलौकिकम् तद्भर्तृननुज्ञाविषयम् । 'भार्या पत्युर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत्सदा' इति कात्यायनोक्तेः ॥ अत्र विशेषो हरिवंशे- 'स्नानं च कार्यं शिरसस्ततः फलमवाप्नुयात् । स्नात्वा स्त्री प्रातरु- त्याय पतिं विज्ञापयेत्सती' ॥ तथा- 'गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा । गोशृङ्ग- दक्षिणं सिक्त्वा प्रगृहीयाच्च तज्जलम्' । औदुम्बरं ताम्रमयम् । 'ततो भर्तुः सती दद्या- त्स्नातस्य प्रयतस्य च । आत्मनश्चाभिषेक्तव्यं ततः शिरसितज्जलम् । उपवासेषु कर्त्तव्य- भेदाद्धि व्रतकेषु च' इति । सर्वव्रतेषु संकल्पविधिश्च भारते- गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारि- पूर्णमुदङ्मुखः । उपवासं तु गृहीयाद्यद्वा संकल्पयेद् बुधः' ॥ हस्तेनैवेत्यर्थः ॥

अथ व्रतारम्भकालः ॥ मदनरत्नेगार्ग्यः- 'अस्तगे च गुरौ शुक्ले बाले वृद्धे मलिम्लुचे । उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत्' ॥ रत्नमालायाम्- 'सोमसौ- म्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः । भातुभौमशनिवासरेषु च प्रोक्तमेव खलु कर्म सिध्यति' ॥ तथा- 'विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः । सर्ववृत्तिस्तु व्यतिपातनामा सर्वोप्यरिष्टः परिघस्य चार्धम् । तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञे नवपंचशूले । गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः' ॥ संग्रहे- 'कृष्णेऽग्निदिशयोरूर्ध्वं सप्तमीभूतयोरधः । शुक्ले वेदेशयोरूर्ध्वं भद्रा प्राग्व- सुपूर्णयोः' ॥ श्रीपतिः- 'नसिद्धिमायातिकृतं च विष्टयां विषारिघातादिकम्- त्रसिद्धम्' ॥ व्यवहारसमुच्चये- 'दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिका पञ्चकपरं हरिद्यो- सप्तम्यां द्विदशघटिकान्ते त्रिघटिकम् । तृतीयाराकायां खयम् २० घटिकाभ्यः परमवं शुभं विष्टेः पुच्छं शिवीतिथिचतुर्थ्योस्तु विरमे' ॥ तत्रैव- 'सर्पिणी तु सिते पक्षे

व्रतारम्भनिर्णयः ।

कृष्णे चैवतुष्टिकी । सर्पिण्यास्तु मुखं त्याज्यं वृश्चिक्याः पुच्छमेव च ॥ माधवीये—‘विष्टेर्यदाहनि तिथेरपरार्धजातापूर्वार्धजा निशितदा शुभदा च पुच्छे’ ॥ ब्रह्मयामले—‘दिनभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिवा । न त्याज्या शुभ कार्येषु प्रादुरेवं पुरातनाः’ ॥ श्रीपतिः—‘षट् पौष्णतो द्वादश शांकराच्चपौन-
दराद्दानि नव क्रमेण । पूर्वार्धमध्यापरभागयुञ्जि चिरंतनैर्ज्यौलिषिकैः स्मृतानि’ ॥

व्रतारम्भे च विशेषो मदनरत्ने सत्यव्रतेनोक्तः—‘उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक् । सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम्’ इति ॥ देवलः—‘अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाचम्य समाहितः । सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत्’ ॥ मदनरत्ने भविष्ये—‘क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । देवपूजाग्निहवनं संतोषः स्तेयवर्जनम् । सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः’ ॥ अग्निहोमस्तद्वै-
वत्यः, व्याहृतिहोमो वेति वर्धमानः यत्तु तेनोक्तम्—‘सर्वपदमेतत्पुराणोक्तप्रकृतव्रत-
परम् । व्रतान्तरे तु विध्यन्तरसत्त्वेहोमोऽन्यथा न । अतएवैकादश्यां शिष्टानां होमाना-
चरणमिति तन्न । ‘जपो होमश्च’ इति वक्ष्यमाणैकवाक्यत्वेनास्य काम्यव्रतसमाप्तिपर-
त्वात् ॥ तत्त्वंतु साप्तदश्यस्य पशुभिन्नविन्दादिप्रकरणस्थेनेव तत्तद्व्रतविशेषहोमविधिभि-
रस्योपसंहार इति ॥ विष्णुधर्मे—‘तज्जप्यजपनं ध्यानं तत्कथाश्रवणादिकम् । तदर्चनं च तन्नामकीर्तनश्रवणादयः । उपवासकृतामेते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः’ ॥ कौर्मे—
‘बहिर्ग्रामान्त्यजान्मूर्तिं पतितं च रजस्वलाम् । न स्पृशेन्नाभिभाषेत नेक्षेत व्रतवासे’ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निपुराणे—‘स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः । पूज्याः सुवर्ण-
मग्न्याद्याः शक्त्या वै भूमिशायिना । जपो होमश्च सामान्यं व्रतान्ते दानमेव च । चतु-
विंशद् द्वादश वा पञ्च वा त्रय एव वा । विप्रा भोज्या यथाशक्ति तेभ्यो दद्याच्च दक्षि-
णाम्’ ॥ अत्र विप्रा इति पुंलिङ्गनिर्देशात् पुमांस एव भोज्याः । नतु स्त्रियः ॥ एवं सहस्रभोजनादावपि । विरूपैकशेषस्य प्रमाणान्तरं विनाऽयुक्तत्वात् ॥ अतएव ‘द्वयोर्यज-
मानयोः प्रतिपदं कुर्यात् बहुभ्यो यजमानेभ्यः’ इत्यादौ विरूपैकशेषायोगात्पत्न्यभिप्रायं
क्षिप्तं बहुत्वं वा न संभवतीत्युक्तमाचार्यैः । पार्थसारथिना च ॥ एतैकस्य ब्राह्मण-
स्यैव भोजनं परास्तम् । बहुत्वम्यैकपदश्रुत्या ब्राह्मणान्वितत्वेन भोजनान्वयाभावादि-
त्यन्यत्रविस्तरः ॥ शूद्रस्य तु प्रतिष्ठादिवा द्विप्रद्वारा व्याहृतिहोम इति वर्धमानः ॥ व्रत-
मूर्तयो व्रतदेवताप्रतिमाः ॥ प्रतिमास्वरूपं च मदनरत्ने भविष्ये—‘अनुक्तद्रव्यतत्संख्या
देवताप्रतिमा नृप । सौवर्णीं राजती ताम्री वृक्षजा मार्त्तकी तथा । चित्रजा पिष्टलेखो-

१ ‘उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ॥ उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः’ इति तल्लक्षणमुपनिषदि ।

प्रतिमास्वरूपनिर्णयः । स्था निजवित्तानुरूपतः । आमाषात्पलपर्यन्तं कर्त्तव्याशाठ्यवर्जितैः ।

तत्रैव ब्राह्मे 'आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते । मन्त्रस्य देव-
तायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः' ॥ मन्त्रानुक्तौ समस्तव्याहृतिरूपो मन्त्रः प्रजापतिश्च
देवतेति कल्पतरुः । वर्धमानधृतदेवीपुराणे- 'होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टाधिकं
भवेत् ॥ अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाप्राप्तिं विधीयते' ॥ मदनरत्ने 'अनुक्तसंख्या यत्र स्या-
च्छतमष्टोत्तरं स्मृतम्' ॥ वर्धमानधृतवृद्धशतातपः- 'उपवासं द्विजः कृत्वा ततो
ब्राह्मणभोजनम् । कुर्यात्तेनास्य सगुण उपवासोऽभिजायते' ॥

॥ व्रतोद्यापनानुक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदयेनन्दिपुराणे- 'कुर्यादुद्यापनं तस्य समाप्तौ
यदुदीरितम् । उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत् । यदिचोद्यापनं नोक्तं व्रतानु-
गुणतश्चरेत् । वित्तानुसारतो दद्यादनुक्तोद्यापने व्रते । गाश्चैव काश्चनं दद्याद्व्रतस्य परि-
पूर्त्तये' ॥ अशक्तौ नारदीये- 'सर्वेषामप्यलामे तु यथोक्तकरणं विना । विप्रवाक्यं
स्मृतं शुद्धं व्रतस्य परिपूर्त्तये । यथा विप्रवचो यस्तु गृह्णाति मनुजः शुभम् । अदत्त्वा
दक्षिणां पापः सयाति नरकं ध्रुवम्' ॥ भारते- 'वेदोपनिषदे चैव सर्वकर्मसु दक्षिणा ।
सर्वत्र तु मयोद्दिष्टा भूमिर्गावोऽथ काश्चनम्' ॥ बैजवापः- 'शिवनेत्रोद्भवं यस्मा-
द्रजतं पितृवल्लभम् । अमंगलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्' ॥ टोडरानन्दे देवीपुराणे
'व्रते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेऽपि च विशेषतः । परान्नभोजनादेवि यस्यान्नं तस्य तत्फ-
लम्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणे- 'नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः । क्षारं
क्षौरं च लवणं मधु मांसं च वर्जयेत्' । क्षारास्तु तत्रैवोक्ताः- 'तिलमुद्गाहते शैव्यं
सस्ये गोधूमकोद्रवौ । धान्यकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम् । स्विन्नधान्यं तथा
पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः' ॥ गोधूमानां तु तत्रैव प्रतिप्रसवः 'व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कला-
यः सतिलंपयः । श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः' ॥ 'कूष्मांडालावुवार्त्ताक
क्षाराद्विषयगणश्च । पालंकीज्योत्स्निकास्त्यजेत् । चतुर्भैक्षं सक्तुकणाः शाकंदधिघृतं मधु ।

श्यामाकाः शालिनीवारायावकं मूलतन्दुलम् । हविष्यव्रतनक्तादावग्नि
कार्यादिके हितम् । मधु मांसं विहायान्यद्व्रते वा हितमीरितम्' इति ॥ शमीधान्यं
माषादि । पालंकीमध्यदेशे (पोई) इति प्रसिद्धा । ज्योत्स्निका कोशातकी । मिताक्ष-
रायां गौतमः 'चतुर्भैक्षसक्तुकणयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलोदकानिर्हवीष्युत्तरो
त्तरं प्रशस्तानि पयो दधि घृतं च गव्यम्' इति ॥ अन्ये च विशेषा एकादशीचातुर्मास्या
दिप्रकरणे वक्ष्यन्ते ॥

गृहीतव्रतत्यागे तु मदनरत्ने छागलेयः- 'पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो न चरेत्काममो-
हितः । जीवन् भवति चण्डालो मृतः श्वाचाभिजायते' ॥ तत्रप्रायश्चित्तमुक्तं पृथ्वीचन्द्रो-
दयेअग्निगारुडपुराणयोः- 'क्रोधात्प्रमादालोभाद्वा व्रतमङ्गोभवेद्यदि । दिनत्रयं न

भुञ्जीत मुंडनं शिरसोथवा' इति ॥ प्रायश्चित्तस्नानादतिक्रान्तव्रतानुष्ठानं नास्तीति गम्यते ॥
यत्तु—'प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत्' । इति वचनात् । यच्चातिक्रान्तमपि व्रतं
कार्यमेवेति शूलपाणिः । तन्मध्ये लोपे व्रतशेषसत्त्वे ज्ञेयम् ॥ एतच्च शक्तविषयम् ।

अशक्तौ तु कालहेमाद्रौ पुराणान्तरे—'उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत् ।
तावद्धनादि वा दद्याद्भुक्तस्य द्विगुणं तथा' । भुक्तः कृतभोजनः ब्राह्मणभोजनं विनेति शेषः ।
'सहस्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान् ॥ कुर्याद्वादशसंख्याकान्यथाशक्त्यातुरो नरः'
इति । शुद्धितत्त्वे मात्स्ये—'उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते' ॥ मदनरत्ने
वायवीये—'द्रव्यदातोपवासस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्' ॥ तथा परार्के देवलः—'ब्रह्म-
चर्यतथा शौचं सत्यमौषधवर्जनम् । व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः' ॥ मात्स्ये—
'तस्मात्कृतोपवासेन स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप' ॥
अन्ये च नियमास्तत्र तत्रान्वेषणीयाः ॥

अथ स्त्रीव्रतेषु विशेष उच्यते । तत्र हेमाद्रौ व्रतकाण्डे गारुडे 'गन्धालंकार-
तांबूलपुष्पमालानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्' इति इदं च सप्त-
तृकोपवासविषयम् । 'अञ्जनं च सतांबूलं कुंकुमं रक्तवाससी । धारयेत्सोपवासापि अवैध-
व्यकरंयतः । विधवा यतिमार्गेण कुमारी वा यदृच्छया' इति तत्रैव भविष्योक्तेः ॥
तथा विष्णुधर्मे—'सर्वेषु तूपवासेषु पुमान्वाथ सुवासिनी । धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि
सितानि च । विधवा शुक्लवसनमेकमेव हि धारयेत्' । मत्स्ये—'पुष्पालंकारवस्त्राणि
गन्धधूपानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्' ॥ मदनरत्ने व्यासः—
'दन्तधावनपुष्पादि व्रतेष्वस्या न दुष्यन्ति' इति ॥ यद्यपीदं सर्वोपवासविषयं प्रतीयते,
तथापि शिष्टाचारात्सौभाग्याद्यर्थं क्रियमाणनवरात्रिग्रात्राष्टुपवासविषयमेव । नत्वेकाद-
श्यादिविषयम् ॥ 'असकृज्जलधानाच्च सकृत्तांबूल चर्वणात् । उपवासः प्रणश्येत् दिवास्वा-
पाच्च मैथुनात्' इत्यपरार्के देवलेन तन्निषेधात् ॥ नचास्य पुंविषयत्वेन सावकाश-
त्वात् स्त्रीणां तांबूलादि प्राप्नोतीति वाच्यम् । तांबूलादिप्रापकस्यैवैकादशीतरविषयत्वेन
वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात् ॥ यत्तु हरिवंशे—'अञ्जनं रोचनं चैव गन्धान्मुमनसस्तथा ।
व्रते चैवोपवासे च नित्यमेव विवर्जयेत् । शिरसोभ्यञ्जनं सौम्ये नैवमेतत्प्रशस्यते । न
पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता' इति, तत्तत्रैवोक्तपुण्यकव्रतविषयं नतु सर्वत्र ।
पूर्वोक्तविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ तत्रैव—'अश्रुप्रपातो रोपश्च कलहस्य कृति-

१ 'स्त्रीणां तु प्रेक्षणात्स्पर्शात्तामिः संकथनादपि । विषयते ब्रह्मचर्यं स्वदारेण तु संगमात्' । २ 'आ-
मिषं दृष्टिपानीयं गान्धर्वक्षीरमामिषम् ॥ मसूरमामिषं सस्थे फले जम्बीरमामिषम् ॥ आमिषं शुक्ति काचूर्णमार-
नालं तथामिषम्' इति स्मृत्यन्तरोक्तं । ३ 'स्मरणं कीर्तनं कौलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ संकल्पोऽथ वस्ता-
यश्च क्रियानिश्चितीरेव च ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः' ।

स्तथा । उपवासाद्ब्रतादपि सद्यो भ्रंशयति स्त्रियम्' ॥ स्त्रियमित्युपलक्षणम् । मदन-
रत्ने शिवधर्मे 'दानव्रतानि नियमा ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः । यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधि-
तस्य वृथा भवेत्' ॥

अथ सूतकादौ निर्णयः । तत्र शावमृत्याशौचयोः सर्वस्मार्तकर्मनिवृत्तिर्निव-
न्धेषु स्पष्टं ॥ गौडास्तु शौचादावपि तामाहुः- 'जानूद्धं क्षतजे जाते नित्यकर्म न
चाचरेत् । नैमित्तिकं च तदथः स्रवद्रक्तो न वाचरेत् । लौतके च समुत्पन्ने ज्वर-
कर्मणि भेषुने । धूमोद्गारे तथा वान्तौ नित्यकर्माणि संत्यजेत् । द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णं
च नैव भुक्तापि किंचन । कर्म कुर्यान्नरो नित्यं मृतके मृतके तथा' इति कालिका-
पुराणात् ॥ वस्तुतस्तु पूर्वं देवीपूजोपक्रमात्तन्मात्रविषयत्वमस्येति युक्तं प्रतीमः ।
तथा हेमाद्रौ पात्रे- 'गर्भिणीसूतिकादिश्च कुमारीवाथ रोहिणी । यदाशुद्धा तदा-
न्येन कायेतृप्रयता स्वयम्' इति ॥ पुंसोऽप्येष विधिः । लिंगस्याविवक्षितत्वात् ॥
तेन 'यस्मिन्व्रते यत्पूजादुक्तं तदन्येन कारयेत् । शारीरनियमान्स्वयं कुर्यात्' इति
हेमाद्रिव्याचख्यौ ॥ 'नवरात्रे' इति विष्णूक्तेश्च ॥ आरम्भस्तु नभवत्येव ॥
शुद्धितत्त्वे विष्णुः- 'बहुकालिकसंकल्पो गृहीतश्च पुरा यदि । सूतके मृतके चैव
व्रतं तत्रैव दुष्यति' ॥ एतस्काव्यपरम् । नित्यं त्वनारब्धमपि कार्यामिति गौडाः ॥
मदनरत्ने- 'पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः । तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चन-
विवर्जितम्' ॥ माधवीये कौर्म- 'काव्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरामृतसूतके । तत्र
काव्यं व्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्' इति ॥ एतेन साधिकाराद्ब्रताद्देवपूजादि कार्य-
मिति वर्धमानोक्तिः परास्ना ॥ प्रारब्धं पूजादि कार्यमेव ॥ नवरात्रे तु तत्रैव
विशेषं वक्ष्यामः ॥ एवं रजस्वलापि ॥ यत्तु सत्यव्रतः- 'प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां
यद्रजो भवेत् । न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कथंचन' इति ॥ तद्व्यतिनिधिना कारये-
दित्येतत्परम् ॥ तदुक्तं मदनरत्ने मात्स्ये- 'अन्तरातुरजोयोगे पूजामन्येन कार-
येत्' ॥ इति ॥

प्रतिनिधयश्च निर्णयामृते पैठीनसिः- 'भार्यापत्यव्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिर्ध-
तम् । असामर्थ्यं परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते' ॥ स्कान्देऽपि- 'पुत्रं वा विनयो-
पेनं भगिनीं भ्रातरं तथा । एवामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत्' ॥ कात्या-
यनः- 'पितृमातृभ्रातृपतिगुर्वर्थे च विशेषतः । उपवासं प्रकुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ।
मातामहादीनुद्दिश्य एकादश्यानुपोषणे । कृते ते तु फलं विप्राः समग्रं समवाप्नुयुः' ॥
मदनरत्ने प्रभासखण्डे- 'भर्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखापि च । यात्रायां
धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः । एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत्' ॥
तत्रैव वायवीये- 'स्वयं कर्तुमशक्तश्चेत्कारयति पुरोधसा' ॥ इदं च सर्ववर्णसाधार-
णम् । अविशेषात् ॥ यत्तु कश्चिन्महोक्ष आह- 'शूद्रस्य ब्राह्मणादिरेव प्रतिनि-

धिर्युक्तो न शूद्रः 'जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम् । विप्रैः संपादितं यस्य संपन्नं तस्य तत्फलम्' इति मरीचिवचनात् इति । तत्तुच्छम् । प्रव्रज्यादीनां शूद्रेऽसंभवात् 'विषये प्रायदर्शनात्' इतिन्यायेनास्य ब्राह्मणादिगोचरत्वात् ॥ यद्यपि 'उपवासो व्रतं होमस्तीर्थस्नानजपादिकम्' इति पूर्वाद्धं पाठस्तदापि स एवदोषः 'स्त्रीशूद्रपतनानिषद्' इतिमानवीयेजपनिषेधात् ॥ वस्तुतस्तु संपूर्णता वाचनमात्रमत्रोच्यते इति प्रतिनिधेः का वातैत्यलम् ॥ अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः—'काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः । काम्येषुपक्रमादूर्ध्वकैचित्प्रतिनिधिविदुः । नस्यात्प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु । सदेशकालयोर्नास्ति नारणेश्वरेव सा । नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ॥ हिरण्यकेशिसूत्रेपि—'न स्वामित्वस्य नार्यायाः पुत्रस्य देशस्य कालस्याग्नेर्देवतायाः कर्मणः शब्दस्य च प्रतिनिधिर्विद्यते' इति ॥

अथ व्रतादिसंनिपाते निर्णयः । तत्र तिथिद्वयसंनिपाते तत्रोक्तं दानहोमादिक्रमेणानुष्ठेयम् । अविरोधात् ॥ इदं पूर्वार्धेष्वेव ॥ एकमध्येन्यकाम्यकर्मारम्भस्तु नभवत्येव गुणफलादृते 'यस्य यज्ञे प्रवतेन्तरा यज्ञस्तायते तंयज्ञं निर्वृतिर्गृह्णाति' इति राणकधृतश्रुतेः । यज्ञः व्रतादिकर्ममात्रम् । अनङ्गेन व्यवधानदोषस्य सर्वत्र साम्यात् ॥ शिष्टास्तु माघकार्तिकस्नानादिमध्ये लक्षहोमतुलाभारतश्रवणाद्याचरन्ति तन्नित्यमध्ये नतु काम्यमध्ये । यत्र तु नक्तैकभक्तादौ विरोधस्तत्र प्राथम्यादेकभक्तं कार्यम् ॥ नक्तं तु परेद्युस्तत्तिथौ गौणकाले कार्यम् ॥ समकालीनविरुद्धव्रतादौ त्वेकं स्वयं कृत्वान्यद्धार्यादिना कारयेदिति माधवः । यत्र तु शिवरात्र्यादौ तिथिमध्ये पारणयाऽहि भोजनं प्राप्तम् । 'भूताष्टम्योर्दिवा भुक्त्वा रात्रौ भुक्त्वा च पर्वणि । एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्' इति तन्निषेधश्च । तत्र पारणया वैधत्वादिवैव भोजनम् । निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनविषयः ॥ एवमष्टम्यादिनक्तव्रते संक्रान्त्यादौ रवौ संकष्टचतुर्थ्या च रात्रौ भोजनम् ॥ यत्र त्वष्टम्यादौ दिवाभुजिनिषेधः संक्रमैच रात्राविति निषेधद्वयम् ॥ तत्रोपवास एव कार्यः ॥ यद्यपि पुत्रिण उपवासो निषिद्धः । तथापि 'उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित् प्रकल्पयेत्' इतिवचनार्तिकचिद्वक्षयित्वोपवासः कार्यः ॥ चान्द्रायणमध्ये एकादश्यादौ तु भोजनंकार्यमेव । चान्द्रायणस्य काम्यत्वेन नित्यबाधकत्वात् । अवाधेनगत्यसंभवाच्च । एकादश्यामेकान्तरोपवासादिपारणायां जलपारणां कृत्वोपवसेत् । 'आपो वा अशितमनशितंच' इति श्रुतेः ॥ एवं द्वा दश्यां मासोपवासश्चाद्धप्रदोषादिषु ज्ञेयम् ॥ एवं काम्यनैमित्तिकनित्यत्वादिकृतं बलाबलं स्वयमूह्यमिति दिक् ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ व्रतपरिभाषा समाप्ता ॥

अथ प्रतिपदादिनिर्णयः ॥ शुक्लप्रतिपदपराह्व्यापित्वे पूर्वा ग्राह्या । युग्मवाक्यात् 'प्रतिपत्संमुखीकार्या या भवेदापराह्विकी' इति स्कान्दोक्तेः । 'शुक्ला स्यात् प्रतिपत्तिथिः प्रथमतश्चेत्सापराह्वे भवेत्' इति दीपिकोक्तेश्च ॥ अपराह्वश्च पञ्चधा भक्ते

प्रतिपदिनिर्णयः ।

दिने चतुर्थो भागः ॥ तदभावे सायाह्व्यापिनी ग्राह्या । 'तदभावे तु सायाह्व्यापिनी परिगृह्यताम्' इति माधवोक्तेः ॥ कृष्णा तु परा । 'कृष्णा तृत्तरतोखिला' इति दीपिकोक्तेः ॥ 'कृष्णापि पूर्वैव' इत्यनन्तभट्टाः ॥ सर्वतिथिषु वर्ज्यान्युक्तानि मुहूर्तदीपिकायाम् 'कूष्माण्डं बृहतीफलानि लवणं वर्ज्यं तिलाम्लं तथा तैलं चामलकं दिवं प्रवसता शीर्षकपालान्त्रकम् । निष्पावांश्चमसूरिकान् फलमथोवृन्ताकमंजं मधु घृतं स्त्रीगमनं क्रमात् प्रतिपदादिष्वेवमाषोडश' ॥ शीर्षं नारिकेलम् । कपालम् अलावु । आन्त्रं पटोलकम् ॥ भूपालः- 'कूष्माण्डं बृहती क्षारं मूलकं पनसं फलम् । धात्री शिरः कपालान्त्रं नखचर्मतिलानि च ॥ क्षुरकर्माङ्गनासेवां प्रतिपत्प्रभृति त्यजेत्' ॥ नखं शिवी । चर्म मसूरिका ॥ 'द्वितीया तु कृष्णा पूर्वा शुक्लोत्तरा' इति हेमाद्रिः ॥ 'कृष्णा द्वितीयादिमा पूर्वाह्णे यदि सा सिता तु परतः सर्वा' इति दीपिकोक्तेः । माधवानन्तभट्टमते तु सर्वापि द्वितीया परा ॥ तथाच माधवः- 'पूर्वेष्टुरसती प्रातः परेष्टुस्त्रिमुहूर्तगा । सा द्वितीया परोपोष्या पूर्वविद्धा व्रतोन्यथा' इति ॥

द्वितीयादिनिर्णयः ।

तृतीया तु सर्वमते रंभा व्यतिरिक्ता परैव ॥ तेन युग्मवाक्यं रंभाव्रतविषयम् 'रंभा तृतीयादिनिर्णयः । ख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम । अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ गौरीव्रते तु विशेषमाह माधवः- 'मुहूर्तमात्रसत्त्वेपिदिने गौरीव्रतं परे । शुद्धादिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात्' इति ॥

चतुर्थ्यपि सर्वमते गणेशव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्यात् । 'एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका । उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः' इति माधवीये चतुर्थीनिर्णयः । बृहद्वसिष्ठोक्तेश्च ॥ 'नागचतुर्थी तु मध्याह्न्यापिनी पञ्चमीयुता च च ग्राह्या' इति निर्णयामृते माधवीये चोक्तम् । 'युगं मध्यंदिने यत्र तत्रोपोष्य फणीश्वरान् । क्षीरेणाप्याय्य पञ्चम्यां पूजयेत् प्रयतो नरः । विषाणि तस्य नश्यन्ति न तान् हिंसन्ति पन्नगाः' इति माधवीये देवलोक्तेः ॥ युगं चतुर्थी । पूर्वत्रमध्याह्न्याप्तौ पूर्वा । अन्यपक्षेषु परैव पञ्चम्यां पूजोक्तेः ॥ गणेशव्रते तृतीयायुतेव चतुर्थी । 'चतुर्थी तु तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा । कर्त्तव्या व्रतिभिर्व्रत्सगणनाथसुतोपिणी' इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तात् ॥ माधवीये तु गणेशव्रते मध्याह्न्यापिनी मुख्या । 'चतुर्थी गणनाथस्य मातृवृद्धा प्रशस्यते । मध्याह्न्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेहानि' इति बृहस्पतिवचनात् । 'प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा

मध्याह्ने पूजयेन्मृप' इति तत्कल्पेभिधानाच्च ॥ तेन परदिने सत्त्वे परा । अन्य-
था पूर्वैत्युक्तम् । वस्तुतस्तु । यत्र भाद्रशुक्लचतुर्थ्यादौ गणेशव्रतविशेषे मध्याह्नपूजोक्ता
तद्विषयाण्येव प्रागुक्तवचनानि नतु सार्वत्रिकाणि ॥ संकटचतुर्थ्यादौ बहूनां कर्मकालानां
बाधापत्तेः । तेन सर्वत्र गणेशव्रते पूर्वैवेति सिद्धम् ॥ संकष्टचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनी

संकष्टचतुर्थी
निर्णयः ।

ग्राह्या ॥ दिनद्वये सत्त्वे मातृयोगस्य सत्त्वात्पूर्वेति केचित् । अन्ये तु
दिने मुहूर्तत्रयादिरूपस्य तृतीयायोगस्याभावात् परदिने माधवोक्त-
मव्याह्नव्यापिसत्त्वात्संपूर्णत्वाच्च परेत्याचक्षते ॥ दिनद्वये तदभावे तु परैव ॥ गौरीव्रते तु-
पूर्वैव । 'गणेशगौरीबहुलाव्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः । चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवतान्तरयो-
गतः' इति मदरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ॥

पञ्चमी तु माधवमते सर्वापि पूर्वा 'चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी परया नतु । दैवे
कर्मणि पित्र्ये च शुक्लपक्षे तथासिता' इति हारीतोक्तेः । हेमाद्रिमते तु कृष्णा
पूर्वा सिता परा 'कृष्णा पूर्वयुता सिता परयुता स्यात् पञ्चमी' इति दीपिकोक्तेः ॥
वस्तुतस्तु हारीतोक्तिरुपवासविषया ॥ 'प्रतिपत्पञ्चमी चैव सावित्री भूतपूर्णिमा ।

पञ्चमीनिर्णयः ।

नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ यत्तु
पञ्चमी तु कर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद' इत्यापस्तम्बीयम् ॥
तत्स्कंदव्रतपरम् 'स्कंदोपवासे स्वीकार्या पञ्चमी परसंयुता' इति वाक्यशेषादिति माधवः
तन्नागपूजाविषयमित्यमन्तभट्टनिर्णयामृतादयः ॥ चमत्कारचिन्तामणौ च-
'पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता नागा इतरास्तु चतुर्थिका'
इति ॥ तेन नागपूजादौ परैव ॥ यत्तु मदनरत्नदिवोदासीययोः ॥ श्रावणपञ्चम्य-
तिरिक्ता पूर्वैत्युक्तम् । 'श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी ॥ तां परित्यज्य
पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिताः' इति संग्रहोक्तेः 'गणेशस्कंदयोगाभ्यां क्रमान्नागः
शुभाशुभः । मित्रामित्रे तयोः पत्रे नागानामारुखुर्बाहिणौ' इति षट्त्रिंशन्मताच्च श्रावण-

षष्ठीनिर्णयः ।

पञ्चम्यतिरिक्ताया नागपञ्चम्याश्चतुर्थीयुतत्वमुक्तम् ॥ तदुपवासादि-
विषयम् । पत्रे वाहने ।

षष्ठी सर्वमते स्कंदव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्यात् । 'नागविद्धा न कर्त्तव्या षष्ठी
चैव कदाचन' इति स्कान्दाच्च ॥ निर्णयामृते- 'षष्ठी च सप्तमी चैव वारश्चेदंशुमा-

सप्तमीनिर्णयः ।

लिनः । योगोयं पद्मको नाम सूर्यकोटिग्रहैः समः' ॥

सप्तमी पूर्वैव युग्मवाक्यात् । 'षष्ठ्या युता सप्तमी च कर्त्तव्या तात
सर्वदा' इति स्कान्दाच्च ॥

अष्टमी तु सर्वमते कृष्णा पूर्वा सिता परा । 'व्रतमात्रेष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लाष्टमी
परा' इति माधवोक्तेः ॥ 'परयुक् शुक्लाष्टमी पूर्वयुक् कृष्णा' इति दीपिकोक्तेश्च ॥

शिवशक्त्युत्सवे च कृष्णाप्युत्तरा । 'पक्षद्वयेप्युत्तरैव शिवशक्तिमहोत्सवे' इति माध-
वोक्तेः ॥ दिवोदासीये भविष्ये- 'यदा यदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेत् कचित् ।
तदा तदा हि सा ग्राह्या एकभक्ताशने नृप । संव्याकाले तथा चैत्रे प्रसुप्ते च जनार्दने ।
बुधाष्टमी न कर्त्तव्या हन्ति पुण्यं पुरातनम्' अंत्यं पद्यं हेमाद्रौ न
बुधाष्टमीनिर्णयः । धतम् ।

नवमी तु सर्वमते पूर्वा । युग्मवाक्यात् 'न कुर्यान्नवमीं तात दशम्या तु कदाचन'
इति स्कान्दाच्च ॥

नवमीनिर्णयः । दशमी तु पूर्वा परा च इति हेमाद्रिः ॥ 'कृष्णा पूर्वोत्तरा शुक्ला
दशम्येव व्यवस्थिता' इति माधवः ॥ वस्तुतस्तु मुख्या नवमीयुतैव
ग्राह्या । 'दशमी तु प्रकर्त्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम' इत्यापस्तम्बोक्तेः
यत्तु- 'संपूर्णा दशमी कार्या पूर्वया परयाथवा' इत्यंगिरसोक्तम् ।
तन्नवमीयुक्तालभे औदयिकी ग्राह्येत्येवं नेयम् ।

एकादशीनिर्णयः । अथैकादशी ॥ तत्रैकादश्युपवासो द्वेधा निषेधपरिपालनात्मको व्रत-
रूपश्च ॥ तत्राद्यः- 'न शंखेन पिबेत्तोयं न खादेत्कूर्ममृकरौ ॥ एका-
दश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि' इति कौर्मदेवलाद्युक्तेः ॥ अग्निपुराणेपि-
'गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि' इति
नचात्र पर्युदासेन व्रतविधिः, तद्धेतुव्रतादिशब्दाभावात् ॥ व्रतरूपं तु ब्रह्मवैवर्ते- 'प्राप्ते हरि-
दिने सम्यग्विधाय नियमं निशि । दशम्यामुपवासस्य प्रकुर्याद्वैष्णवं व्रतम् । इति ॥
इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम् । 'वैष्णवो वाथ शैवो वा कुर्यादेकादशीव्रतम्' इति
शिवधर्मोक्तेः । 'वैष्णवो वाथ शैवो वा सौरोप्येतत्समाचरेत्' इति सौरपुराणाच्च ॥
सोपि द्वेधा नित्यः काम्यश्च । 'उपोष्यैकादशी नित्यं पक्षयोरुभयोरपि' इति गारुडो-
क्तेः ॥ 'पक्षेपक्षे च कर्त्तव्यमेकादश्यामुपोषणम्' इति नारदोक्तेश्च नित्यता ॥ 'यदी-
च्छेद्विष्णुसायुज्यं श्रियं संततिमात्मनः । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयो-
रुभयोरपि' ॥ इति कौर्मादिषु फलश्रुतेश्च काम्यता ॥ उभयैका-
दशीव्रतं गृहस्थातिरिक्तानामेव नित्यम् ॥ गृहस्थस्य तु शुक्लायामेव व्रतं नित्यं न कृष्णा-
याम् । 'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥ वनस्थयतिधर्मोयं शुक्लामेव सदा गृही'
इति देवलोक्तेः ॥ नचानेन निषेधपालनमेव वनस्थयतिविषये उपसंहियते, न तु व्रत-
मिति वाच्यम् । अस्य पर्युदासेन व्रतविधिपरत्वात् । अन्यथा पूर्वोक्ताग्निपुराणवचने
निषेधपालने गृहस्थस्याधिकारोक्त्या विरोधः स्यात् ॥ निषेधस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन

१ 'माधवमतमेव सम्यक् । आपस्तम्बवाक्यं तु कृष्णपक्षपरम्' इति टीका ॥ २ पर्युदासः सं वि-
ज्ञेयो यत्रोत्तरपदेन नञ् ॥

विशेषानपेक्षणादुपसंहारायोगात् । अभावस्य धर्मत्वाभावाच्च ॥ तस्मादनेन सर्वेषामेकादशीव्रतविधायिनांसामान्यवाक्यानां वनस्थयतिविषये उपसंहारात् गृहस्थस्य कृष्णायां नित्यव्रतप्राप्तिः ॥ कथं तर्हि 'संक्रांत्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवासरे । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात् पुत्रवान् गृही' इति नारदादिवचनेषुकृष्णानिषेधःप्राप्त्यभावादितिचेच्छ्रूयताम्—'शयनीवोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् । सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन' इति पाद्वे गृहस्थस्य आषाढीकार्तिकीमध्यस्था या कृष्णा विहिता सा पुत्रवतो निषिध्यते ॥ अन्यकृष्णायां तु न विधिः सर्वविधीनां वनस्थयतिषूपसंहारात् निषेधः प्राप्त्यभावात् ॥ शयन्यादिवाक्यं त्वपुत्रगृहिगोचरमित्यनन्तभट्टहेमाद्राद्यादिग्रन्थाः । दीपिकापि 'असितातुशयनीवोधान्तरस्थाप्यथो न स्यात्सात्मवतोपि' इति ॥

मदनरत्ने भविष्ये—'यथा शुक्ला तथा कृष्णा द्वादशी मे सदा-
उभयैकादशयोः साम्यम् ।
प्रिया । शुक्ला गृहस्थैः कर्त्तव्या भोगसंतानवर्धिनी ॥ सुमुक्षुभिस्तथा कृष्णा न ते तेनोपदर्शिता' इति ॥ निषेधपालनं काम्यव्रतं च सर्वकृष्णायां सर्वगृहिणां भवत्येव 'पुत्रवांश्च सभार्यश्च बन्धुयुक्तस्तथैव च । उभयोः पक्षयोः काम्यव्रतं कुर्यात्तु वैष्णवम्' इति । नारदोक्तेः ॥ एतच्च सर्वं कालादर्शं उक्तम्—'विधवाया वनस्थस्य यतेश्चैकादशीद्वये । उपवासो गृहस्थस्य शुक्लायामेव पुत्रिणः । भुजेनिषेधः कृष्णायां सिद्धिस्तस्य ततो व्रते' इति ॥ प्रोच्यास्तु वैष्णवगृहस्थानां कृष्णापि नित्या । 'नित्यंभक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः । पक्षेपक्षे च कर्त्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् । सपुत्रश्च सभार्यश्च सुजनो भक्तिसंयुतः । एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि' इति नारदोक्तेरित्याहुः ॥ पुत्रशब्दश्चापत्यमात्रवचनः ॥ नारायणवृत्तौ—'पुमांस एवमेपुत्राजायेरन्' इत्यत्रापत्यमात्रवाचित्वोक्तेः ॥ 'जनयेद्बहुपुत्राणि' इति लिङ्गात् । 'पौत्री मातामहस्तेन' इति मनूक्तेः । पुत्र्या अपत्यमित्यर्थे तु "स्त्रीभ्यो ढक्" इति पौत्रेय इत्यापत्तेः । 'पुमान् पुत्रो जायते' इति च ॥

उपवासनिषेधे विशेषो वायवीये उक्तः—'उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित्प्रकल्पयेत् ॥ न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलंलभेत्' । भक्ष्यं च तत्रैवोक्तम्—'नक्तंहावष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बुचाज्यम् । यत्पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरंच' इत्यलम् । तत्र दशमीवेधो द्वेधा—अरुणोदयवेधः, सूर्योदयवेधश्चेति ॥ आद्यो गारुडे—'दशमी शेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्धि नैकादशीव्रतम्' इति । अरुणोदयस्वरूपं च माधवीये स्कान्दे—'उदयात्प्राक्चतस्रस्तु घटिका अरुणोदयः' इति ॥ यदपि—'उदयात्प्राग्यदाविप्रमुहूर्त्तद्वयसंयुता ।

अरुणोदयनिर्णयः ।

सपूर्णेकादशीनाम तत्रैवोपवसेद्गृही' इति गारुडसौधर्मादिवचनम् । यच्च भविष्ये-‘आदित्योदयवेलायाः प्राङ् मुहूर्त्तद्वयान्विता । एकादशी तु संपूर्णा विद्वान्या परिकीर्तिता’ इति ॥ तदप्युपसंहारन्यायेन दण्डचतुष्टयपरमेव हेमाद्रावप्येवम् ॥ यत्तु ब्रह्मवैवर्ते-‘चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदयनिश्चयः चतुष्टयविभागोत्र वेधादीनांकिलोदितः ॥ अरुणोदयवेधः स्यात्सार्द्धं तु घटिकात्रयम् । अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासदर्शनाद्रवेः’ महावेधोऽपि तत्रैव दृश्यते । ‘तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये बुधैः’ इति ॥ तदप्येवमवद्वारारुणोदयवेधविशेषपरमेवेति माधवीये मदनरत्ने च ॥ अन्त्यस्तुदयवेधः ॥

तथान्येपि वेधाः ॥ हेमाद्रौ माधवीये च गारुडे-‘उदयात् प्राक् त्रिघटिकाव्यापिन्येकादशी यदा । संदिग्धैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मकाङ्क्षिभिः । उदयात्प्रा-

अन्येवेधाः ।

ङ् मुहूर्त्तेन व्यापिन्येकादशी यदा । संयुक्तैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मवृद्धये’ ॥ हेमाद्रौ-रात्रेरन्त्योष्टमो भागोऽप्यरुणोदय उक्तः । ‘निशः प्रान्ते तु यामार्धे देववादित्रवादने । सारस्वतानध्ययने चारुणोदय उच्यते’ इति स्मृतेः ॥ अत्रैके-एषां सर्वपक्षाणां मुहूर्त्तद्वयेन कोडीकारात् ‘निशः प्रान्ते’ इति वचनाच्च रात्रिमानवशात्सार्धत्रिदण्डादयो ऽनेकेरुणोदयाः । तदाह हेमाद्रिः-‘सार्धघटिकात्रयोक्तिरष्टाविंशतिघटीमितरात्रिविषया । महत्तरास्तु ‘रात्रीरपेक्ष्य चतस्रो घटिकाः’-इत्युक्तम्

१-अवयवेति । अतिवेधादेररुणोदयवेधावयवत्वादरुणोदयवेधत्वमित्यर्थः । २ उदयवेध इति ॥ ‘अतिवेधादयः सर्वे ये वेधास्तिथिषु स्मृताः । सर्वेष्वेधा विज्ञेया वेधः सूर्योदये मतः’ इति वचनात् । ३-उदयात्प्राक् चतुर्दण्डत्वमरुणोदयशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम् । अतएव काम्योपवासवर्ज्यवेधवाक्ये घटिकाशब्दोपादानमित्युपोद्बलकं दर्शयति-तथेति । एकादशी त्रेधा-पूर्णा, खण्डा, विद्धा चेति भेदात् ॥ तत्र या द्वात्रिंशन्मुहूर्त्तव्यापिनी सा पूर्णा प्रतिपत्प्रभृतिः सर्वा उदयादोदयाद्रवेः । संपूर्णा ‘इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः’ इति स्कान्दे हरिवासरपर्युदासात्तत्र ‘उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता । संपूर्णेकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही’ इति गारुडात् । अत्र विशेषापेक्षायाम् ‘आदित्योदयवेलायामारभ्य षाष्टिनाडिकाः । संपूर्णेकादशी नाम कार्या धर्मफलेप्सुभिः’ इति गारुडं द्रष्टव्यम् । अरुणोदयव्यापिन्याः परदिने न्यूनत्वे खण्डा ॥ अरुणोदयाव्यापिनी तु विद्धा ‘आदित्योदयवेलायाः प्राङ् मुहूर्त्तद्वयान्विता । एकादशी तु संपूर्णा विद्धाऽन्या परिकीर्तिता ।’ इति भविष्यात् ॥ विद्धापि द्वेधा-संदिग्धा संयुक्ता च ॥ तत्र ‘पुत्रराज्यप्रसिद्ध्यर्थं द्वादस्यामुपवासयेत् । तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्’ इति विहितं काम्योपवासं संदिग्धां लक्षयित्वा तत्र निषेधति-उदयादिति ॥ ‘पुत्रपौत्रप्रसिद्ध्यर्थं द्वादस्यामुपवासयेत् । तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्’ इति विहितं काम्योपवासं संयुक्तां लक्षयित्वा तत्र निषेधति-उदयादिति ॥ एतच्च वाक्यद्वयं वैष्णवेतरविषयम् । वैष्णवान्प्रति तन्निषेधवैयर्थ्यात् ‘नैवोपोष्यं वैष्णवेन’ इति सामान्यत एव निवृत्त्यसाधारण्येन निषिद्धत्वात् ॥ इति टीका ।

इत्याहुः ॥ तत्र । अरुणोदयशब्दस्यानेकार्थत्वापत्तेः ॥ नच सुहूर्त्तद्वयमर्थः । दण्डद्वयै-
कमुहूर्त्तादिवेधानां तथाप्यनुपपत्तेः । नहि तेषां यामार्धत्वमरुणोदयत्वं चास्ति ।
सुहूर्त्तद्वयस्य यामार्द्धस्य च 'चतस्रो घटिका' इत्यनेनोपसंहाराच्च न तदर्थः । नच 'सार्द्धं
तु घटिकात्रयम्' इत्यनेनाऽपि तदापत्तिः शङ्क्या । तेन चतुर्दण्डवेधस्यैवोक्तेः । चतुर्द-
डेर्धघटीदशमीसत्त्वे हि वेधस्तदर्थः । द्विघटिकादौ तदयोगाच्च ॥ यत्तु मतम्-कियतारु-
णोदयवेध इत्यपेक्षायां सार्द्धघटिकात्रयनियमादरुणोदयेर्धघटिकातो न्यूनदशमीसत्त्वे न
दोष इति ॥ तत्तुच्छम् । द्विदंडादावपि तदापत्तेः । 'दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणो-
दयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम्' इतिगारुडे भाविष्ये च योगमात्रनिषे-
धात् ॥ नारदीयेऽपि- 'लववेधेऽपि विंशे दशम्यैकादशीं त्यजेत् ॥ सुराया बिंदुना
स्पृष्टं गंगांभ इव निर्मलम्' ॥ स्कान्देऽपि- 'कलाकाष्ठादिगत्यैव दृश्यते दशमी विभो ।
एकादश्यां न कर्त्तव्यं व्रतं राजन्कदाचन' इति । माधवोप्याह-सोऽयं कलादिवेधोऽ
रुणोदयवेधे सूर्योदयवेधे च समान इति ॥ निगमेऽपि- 'सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्य
दूषकः' इति ॥ अत एव माधवेन 'अरुणोदयाद्यदंडेऽल्पदशमीस्पर्शं संपृक्ता कृत्स्न-
घटीयोगे संदिग्धा, सुहूर्त्तव्याप्तौ संयुक्ता उदये संकीर्णा' इत्युक्त्वा । 'अरुणोदयवेलायां
दशमी यादे संगता । संपृक्तैकादशीं तां तु मोहिन्यै दत्तवान् प्रभुः' इति गोभिला-
द्युक्तेः पूर्वोक्तगारुडादेश्च सामान्यतो विशेषतश्चारुणोदयवेधो निषिद्धः ॥ यत्त्वष्टम-
भागोरुणोदय इति हेमाद्रिणोक्तम् ॥ यच्च महत्तरा रात्रीरिति तत्परमतं स्वयमेव
दूषितम् ॥ अन्तेऽप्युक्तम् । वेधतारतम्यं च दोषतारतम्यादुपपद्यत इति ॥ दोषतारतम्यं
च प्रायश्चित्ततारतम्यादवगम्यते ॥ तच्चोक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे- 'अज्ञानाद्यदि वा मोहा
त्कुर्वन्नेकादशीं नरः । दशमीशेषसंयुक्तां प्रायश्चित्तमिदं चरेत् । कृच्छ्रपादं नरश्चीर्त्वा गां
च दद्यात्सवत्सकाम् । सुवर्णस्यार्धकं देयं तिलद्रोणसमन्वितम्' ॥ विधानान्तरं तत्रैव-
ब्राह्मणान् भोजयेन्निशदां च दद्यात्सवत्सकाम् । धरणस्यार्धकं देयं तिलद्रोणमथापि
वा' इति ॥ अत्र वेधतारतम्याद्वचस्येति हेमाद्रिः । 'निशःप्रान्ते' इत्यपि दोषाधि-
क्यार्थमेव ॥ तस्माच्चतुर्घटिकात्मक एवारुणोदय इति सिद्धम् । तेन षट्पञ्चाशदण्डा-
नंतरं दशमीप्रवेशेरुणोदयवेध उक्तो भवति ॥ अंत्योऽपि तत्रैव कण्वेनोक्तः- 'उदयो-
पारिविद्धा तु दशम्यैकादशी यदि । दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवान्पाकशासनः' इति ।

१ धरणं सुवर्णं हेम चत्वारिंशन्माषैः । "तुल्या यवाम्यां काथितात्र गुञ्जा वल्लिगुञ्जो धरणं च
तेष्टौ ॥ गद्याणकस्तद्वयमिन्द्रतुल्यैर्वहैस्तथैको घटकः प्रदिष्टः" इति ज्योतिषं तु नेह प्रवर्तते । धा-
र्मिकसंप्रदायभंगापत्तेः । कृच्छ्रपादः- सत्रसगोदानोभयम्, केवलमेकैकम् । त्रिश्राद्धाणभोजनेन वैक-
ल्पिकतिलद्रोणसुवर्णार्धाम्बासमुच्चिततद्द्वयेनत्राऽधिकेन युक्तमिति चत्वारः पक्षा वेधातिवेधमहावेध-
योगेषु क्रमेण योज्याः ॥ इति टीका ।

स्मृत्यन्तरेऽपि-‘दशम्याः श्रान्तमादाय यदोदेति दिवाकरः ॥ तेन स्पृष्टं हरिदिनं दत्तं जम्भासुराय तत्’ इति ॥

तत्रारुणोदयवेधो वैष्णवविषयः । तद्वाक्येषु वैष्णवग्रहणात् ॥ तत्स्वरूपं तु माधवीये स्कान्दे-‘परमापदमपान्नो हर्षे वा समुपस्थिते । नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी ॥ विष्णवर्षिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते’ इति ॥ यद्यपि पित्रादेरागमदीक्षायां तन्मात्रस्य वैष्णवत्वं न तु पुत्रादेस्तथापि स्वपारम्पर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्तत्वं च मन्यन्ते वृद्धाः ॥ तत्त्वसागरे भविष्ये-‘यथा शुक्ला तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथेतरा । तुल्ये ते मन्यन्ते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते’ ॥ केचित्तु दशम्यां नवमीवेधमपि त्यजन्ति तत्र मूलं सृग्यम् । उदयवेधस्तु परिशेषात् स्मार्तगोचरः । तदाह माधवः-‘अरुणोदयवेधोऽत्र वेधः सूर्योदये तथा । उक्तो द्वौ दशमीवेधौ वैष्णवस्मार्तयोः क्रमात्’ ॥ हेमाद्रिस्तु केषांचिदधरात्रेऽपि दशमीवेधमाह-‘अधरात्रे तु केषांचिदशम्या वेध उच्यते । कपालवेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः ॥ नैतन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते’ इति ब्रह्मवैवर्तत् ॥ अस्यार्थः-‘अनद्यतने लङ्’ इत्यत्र ‘अतीताया रात्रेः पश्चिमयामद्वयमागाभिन्त्या रात्रेः पूर्वयामद्वयं दिवसश्च स काल एषोद्यतनः सकलः’ इत्युक्तं महाभाष्ये । स एष वर्तमानः काल एकादश्यहोरात्र उपोष्यः । तन्मध्ये दशमीप्रवेशे विद्धा सा त्याज्या । अत एव हेमाद्रौ-‘दशम्याः संगदोषेण अधरात्रात् परेण तु ॥ वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोः सदा’ ॥ इति दोषः उक्तः ॥ चतुरो यामान् दिवसस्येत्यर्थः । स्वप्ने तु रात्रेः स्त्रियामत्वात् प्रहरत्रयं पूर्वशेषः । तेन चतुर्थप्रहर एव वेधो युक्तः । सोप्यरुणोदय एव । ‘सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकः क्रमः’ इति मार्कण्डेयपुराणात् । ‘प्रत्यूषोऽ-

१ अयं हि टीकाग्रन्थः केनचिन्मूलमध्ये प्रक्षिप्तः ॥ तत्र चेत्थम्-‘हरिप्रिया इति ॥ तदनन्तरं ‘नैतन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते’ इत्यर्थम् ॥ अयमर्थः-‘अतीतरात्रेः पश्चार्धेनागामिरात्रेः पूर्वार्धेन सह दिवस अद्यतनः । स एकादश्यामुपोष्यः । तत्र दशमीप्रदेशे विद्धा । सा त्याज्या’ इति ॥ एतन्निराकरोति-‘नैतन्मम मतमिति ॥ त्रियामेति ॥ प्रथमप्रह रार्धस्य चतुर्थप्रहरार्धस्य च दिनकर्मसंबन्धितया तदन्या कथंचित्त्रियामा रात्री रात्रिकर्मणि ग्राह्येत्यर्थः ॥ एवं चापवासे दिनकर्मणि अरुणोदयमारभ्य ग्राह्या । तत्र विद्धा हेया ॥ यस्तु कपालवेधो नामधरात्रेवेधः स परेहि उपवासे न त्याज्यः किंतु दिवा संकल्पः ॥ एवं ‘दशम्याः सङ्गदोषेण अधरात्रात्परेण तु । वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोः सदा’ इति हेमाद्रौ वचनात् इति ॥ ये तु रात्रेः स्त्रियामत्वात्प्रहरत्रयपूर्वशेषः । तेन चतुर्थप्रहर एव वेधो युक्त इति वदन्ति ॥ तदाशयं त एव जानन्ति ॥ अन्येतु ‘सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकक्रमम्’ इति वचनात् ‘प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यः’ इति कोशादरुणोदयमारभ्य सूर्याशुप्रवृत्तेस्तत्रैव निषेध इति ‘नैतन्मम मतम्’ इत्यस्यार्थमाहुः ।

हर्मुखं कल्यः' इतिकोशादरुणोदयमारभ्य सूर्याशुप्रवृत्तेस्तत्रैव निषेधः । तेन मत-
भेदाद्वचस्येति केचित् ॥ कैमुतिकन्यायेनारुणोदयवेधस्यैवेयं स्तुतिरिति तु माधवः ॥
यस्तु 'दिक्पञ्चदशभिस्तथा' इति वेधः स उपवासातिरिक्तविषय इति माधवः ॥
'सर्वप्रकारवेधोयमुपवासस्य दूषकः ॥ सार्धसप्तमुहूर्तस्तु योगोयं बाधते व्रतम्' इति
निगमादित्यलम् ॥ अत्र माधवमते वैष्णवैरुणोदयविद्धा त्याज्या ॥ यदा त्वेका-
दश्येव शुद्धा सती वर्द्धते द्वादशी वा उभयं वा तदा परोपोष्या । 'एकादशी
द्वादशी बाधिका चेत्यज्यतां दिनम् ॥ पूर्वं ग्राह्यं तूत्तरं स्यादिति वैष्णवनि-
र्णयः' इति माधवोक्तेः ॥ स्मार्तैस्तु—सूर्योदयविद्धा त्याज्या ॥ 'यदा त्वेका-
दशी शुद्धा सती वर्द्धते द्वादशी च समा न्यूना वा तदा गृहस्थैः पूर्वा, यतिभिरुत्तरा
कार्या । 'प्रथमेहानि संपूर्णा व्याप्याहोरात्रसंयुता । द्वादश्यां च तथा तात दृश्यते पुनरेव
च ॥ पूर्वा कार्या गृहस्थैश्च यतिभिश्चोत्तरा विभो' इति स्कान्दोक्तेः ॥ वर्धमानो-
प्येवमेवाह ॥ उभयवृद्धौ तु शुद्धा विद्धा वा सर्वेषां परैव । 'संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते
पुनरेव सा ॥ सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि' इति नारदोक्तेः ॥ द्वादशीमात्र-
वृद्धौ तु शुद्धायां पूर्वैव । 'न चेदेकादशी विष्णौ द्वादशी परतः स्थिता । उपोष्यैकादशी
तत्र यदीच्छेत्परमं पदम्' इति नारदोक्तेः । 'द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते ।
शुद्धा पूर्वोत्तरा विद्धा स्मार्तनिर्णय ईदृशः' इति माधवोक्तेश्च ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥
यत्तु 'विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेत् । अविद्धाऽपि च विद्धा स्यात्परतो
द्वादशी यदि' इति हेमाद्रौ पाद्मवचनम् ॥ तदेकादश्या वृद्धौ ज्ञेयम् । तदुक्तं माधवे-
न 'एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्द्धते यदा ॥ तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनम्'
इति ॥ विद्धैकादश्यां द्वादशीमात्रवृद्धौ च सर्वेषां परैव तत्रैवैकादशीमात्रवृद्धौ गृहिणः पूर्वा
यतेरुत्तरा । पूर्वोक्तपाद्मोक्तेः 'एकादशीविवृद्धौ चेच्छुक्ले कृष्णे विशेषतः । उत्तरां तु
यतिः कुर्यात्पूर्वामुपवसेद्गृही' ॥ इति प्रचेतसोक्तेः । एतच्छुद्धा विद्धातुल्यमिति माधवः ॥
'त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किंचन । उपोष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रितापि
च ॥' इति स्कान्दात् । 'अविद्धानि निषिद्धैश्च न लभ्यन्ते दिनानि तु । मुहूर्तैः पञ्च-
भिर्विद्धा ग्राह्यैवैकादशी तिथिः ।' इत्यप्यशुद्धोक्तेश्च । मुहूर्तपञ्चकमरुणोदयमारभ्य
ज्ञेयम् । अन्यथोत्तरेऽहि एकादश्यभावासंभवात् ॥ यदपि हेमाद्रिणा—शुद्धसमा शुद्ध
न्यूना वा अधिकद्वादशिका चेत्सर्वेषां परैवेत्युक्तम् ॥ तदपि वैष्णवविषयम् ॥ स्मार्तानां
तु पूर्वैवेत्यविरोधः ॥

हेमाद्रिमते तूच्यते तत्र—“शुद्धा विद्धा द्वयी नन्दा त्रेधा न्यूनसमाधिकैः । षट्प्रका-
राः पुनस्त्रेधा द्वादश्यूनसमाधिकैः” इत्यष्टादशैकादशीभेदाः ॥ तत्र शुद्धा धिकन्यूनद्वाद-
शिका शुद्धाधिकसमद्वादशिका चं सकामैः पूर्वा, निष्कामैरुत्तरा कार्या । 'प्रथमेहानि
संपूर्णा' इति पूर्वोक्तस्कान्दात् । उनद्वादशिकायां तु विष्णुप्रीतिकामैरुपवासद्वयं

कार्यम् । 'संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । लुप्यते द्वादशी तस्मिन्नुपवासः कथं
 भवेत् । उपोष्ये द्वे तिथी तत्र विष्णुप्रीणनतत्परैः' इति वृद्धवाशिष्ठोक्तेः ॥ शुद्धन्यूना
 शुद्धाधिका शुद्धसमा विद्धन्यूना विद्धसमा वाधिकद्वादशिका चेत्सर्वेषां परैवेति हेमाद्रिः ॥
 मदनरत्ने तु शुद्धाधिका परा । 'संपूर्णैकादशी यत्र' इति पूर्वोक्तेः । अन्या पूर्वा । 'शुद्धा
 यदा समा हीना समा हीनाधिकोत्तरा । एकादशीमुपवसेन्न शुद्धां वैष्णवीमपि' इति
 स्कान्दात् । शुद्धा एकादशी उत्तरा द्वादशी । 'न चेदेकादशीविष्णौ' इति नारदोक्तेश्च
 यत्तु- 'अविद्धापि च विद्धा स्यात्' इति पाद्मम् । तच्छुद्धाधिकापरम् । यत्तु 'संपूर्णैकादशी
 त्याज्या परतो द्वादशी यदि । उपोष्या द्वादशी शुद्धा द्वादश्यामेवं पारणम्' इत्यादि
 तद्वैष्णवपरम् । स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्युक्तम् ॥ विद्धन्यूना समद्वादशिका तु मुमुक्षुणां पुत्र-
 वतां च परा, अन्येषां पूर्वा ॥ पुत्रवतोऽपि पूर्वैति मदनरत्ने ॥ विद्धन्यूना न्यूनद्वाद-
 शिका सैव सर्वैः कार्येति हेमाद्रिः ॥ मुमुक्षुणां परा, अन्येषां पूर्वैति मदनरत्ने ॥
 विद्धसमा समद्वादशिकोनद्वादशिका च मुमुक्षुभिः पराऽन्यैः पूर्वा कार्या 'दशमीमिश्रिता
 पूर्वा द्वादशी यदि लुप्यते । शुद्धवद्वादशी राजन्नोपोष्या मोक्षकांक्षिभिः' इति व्यासोक्तेः ।
 मोक्षकांक्षिग्रहणादन्येषां पूर्वैव 'सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः । प्रातर्भवतु वा
 मा वा यतो नित्यमुपोषणम्' इति पाद्मोक्तेः ॥ विद्धाधिका समद्वादशिका च सर्वेषां
 पूर्वैव 'पारणाहे न लभ्येत द्वादशी कलयापि चेत् । तदानीं दशमीविद्धाप्युपोष्यैकादशी
 तिथिः' इति ऋष्यशृङ्गोक्तेश्च ॥ माधवस्मते तु-अत्र गृहिणः पूर्वा, यतेरुत्तरा
 विद्धाधिका न्यूनद्वादशिका मोक्षप्राप्तयेविष्णुप्रीतिकामैः परा कार्या । गृहस्थेन
 तु नक्तं कार्यम् 'एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । उपवासं न कुर्वीत
 पुत्रपौत्रसमन्वितः' । इति कौर्मे दिनक्षये उपवासनिषेधात् ॥ 'दशम्यैकादशी-
 विद्धा द्वादशी च क्षयं गता । क्षीणा सा द्वादशी ज्ञेया नक्तं तु गृहिणः स्मृतम्'
 वृद्धशतातपोक्तेश्च ॥ गृहिणः पूर्वत्रोपवासः ॥ एकादश्याः शुद्धन्यूनत्वे
 'शुद्धसमत्वे' वा द्वादश्या न्यूनसमत्वचोरेकादश्यामुपवासः । यानि तु- 'दशम्य-
 नुगता हन्ति द्वादशद्वादशीफलम् । धर्मापत्यधनार्थेषु त्रयोदश्यां तु पारणम्' इति कौ-
 र्मादीनि दशमीवेधत्रयोदशीपारणयोः निषेधकानि तानि विहितभिन्नपराणि ॥ अत्र बृह-
 वचनानि तद्वचवस्था चाकरे ज्ञेया ॥ यत्तु कालहेमाद्रौ- 'बहुवाक्यविरोधेन संदेहो
 जायते यदा । द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यां तु पारणम्' इति मार्कण्डेयोक्तेः ।
 'संदिग्धेषु च वाक्येषु द्वादशीं समुपोषयेत्' तथा 'विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोष-
 णम् । पारणं च त्रयोदश्यामाज्ञेयं भामकी मुने' इति पाद्मोक्तेश्च वेधसंदेहे ज्योतिर्विदां
 विप्रतिपत्तौ वा परा कार्येत्युक्तम् ॥ तद्वैष्णवविषयमित्यलं बहुना ॥

१ गृहिणः पूर्वत्रोपवास इति । नक्तकाले किंचिद्वक्षणेनेति शेषः । उपवासनिषेधे तु इति वचनात् ।

अथात्रोपयुक्तं किञ्चिदुच्यते । तत्र दशम्यामेकादशीयोगे दशमीमध्ये एव भोजनं कार्यम् । 'एकादश्यां न भुञ्जीत' इति तस्या एव निमित्तत्वात् ॥ निषेधस्तु 'निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति देवलोक्तेश्च ॥ केचित्तु एकादशीव्रताङ्गत्वेन पूर्वेषुरेकभक्तविधानाद्विधिस्पष्टे च निषेधानवकाशान्न काम्यव्रताङ्गे भोजननिषेधः प्रवर्तते । तेनैकादशी मध्येपि पूर्वादिने भोजनामित्याहुः ॥

अत्राधिकारी माधवीये कात्यायनेनोक्तः—'अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिन्यूनवत्सरः । एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि' इति ॥ भविष्ये 'ब्रह्मचारी च नारी च शृङ्गामेव सदा गृही' इति ॥ यत्तु बिष्णुः—'पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति' इति । तद्भर्तृननुज्ञाविषयामिति प्रागुक्तम् ॥

उपवासासामर्थ्ये तु मार्कण्डेयकौर्मयोः—'एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन दानेन न निर्दादशिको भवेत्' । अत्र—'एकभक्तेन यो मर्त्य उपवासव्रतं चरेत्, इत्येकभक्तादिवृषवासशब्दस्तद्वर्मातिदेशार्थः । तेन तत्प्रयुक्ताः सर्वे धर्माः संकल्पमन्त्रे चैकभक्तादिपदेनोहः कार्य इति ॥ मदनरत्ने ॥ तथाऽसामर्थ्ये प्रतिनिधिना कार्येदिति प्रागुक्तम् ॥ व्रताकरणे प्रायश्चित्तमाह माधवीये कात्यायनः—'अर्के पर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमीदिवा । एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्' इति ।

अथ काम्यव्रतविधिः ॥ लघुनारदीये—'दशम्यादि महीपाल त्रिदिनं परिवर्जयेत् । गन्धतांबूलपुष्पादि स्त्रीसंभोगं महायशाः' । तत्र दशम्यां विधिः कौर्मै—'काश्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोरदृषकान् । शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम्' । तथा 'शाकं मांसं मसूरांश्च पुनर्भोजनमैथुने । दूतमत्यंबुपानं च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत् । मदनरत्ने नारदीये—'अक्षारलवणाः सर्वे हविष्यान्ननिषेविणः । अवनीतलपशयनाः प्रियासंगमवर्जिताः' ॥

व्रतव्रतान्याह हेमाद्रौ देवलः—'असकृज्जलपानाच्च सकृत्तांबूलचर्वणात् । उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्' । अशक्तौ तु मदनरत्ने देवलः 'अत्यये चाम्बुपानेन नोपवासः प्रणश्यति' । अत्यये कष्टे ॥ बिष्णुरहस्ये 'गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम् । व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतम्' ॥

एषु प्रायश्चित्तमुक्तं निर्णयामृते संग्रहे—'स्तेनर्हिसकयोः सख्यं कृत्वा स्तैन्यं च हिंसनम् । प्रायश्चित्तं व्रती कुर्याज्जपेन्नामशतत्रयम् । मिथ्यावादे दिवास्वापे बहुशोम्बुनिषेवणे । अष्टाक्षरं व्रती जप्त्वा शतमष्टोत्तरं शुचिः' । ॐ नमो नारायणायेत्यष्टाक्षरः ॥ तत्रैव पैठीनसिः—'ताम्बूलचर्वणे स्त्रीसंभोगे मांसनिषेवणे । व्रतलोपो न चेत्कुर्यात्कृष्णावद् भुजिवर्जनम्' इति । कृष्णैकादशीवद्भोजननिषेधमात्रपरिपालने तु ताम्बूलचर्वणादावापि न दोष इत्यर्थः ॥ संभोग ऋतुका-

लाङ्गन्यत्र-रेतः सेकात्मसंभोगमृतेऽन्यत्र क्षयः स्मृतः' इति कात्यायनोक्तेः ॥ हेमा-
द्रौ वसिष्ठः-उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्यादन्तधावनम् । दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्या-
मममं कुलम् । काष्ठग्रहणा-मृलोष्ठाद्यनिषेध इति हेमाद्रिः । विष्णुरहस्ये-श्राद्धो-
पवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् । गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्य विशुध्यति ।
निर्णयामृते व्यासः-वर्जयेत्पारणे मांसं व्रताहेत्यौषधं सदा' इति ।

एकादश्यां श्राद्धप्राप्तौ माधवीये कात्यायन आह 'उपवासो यदा नित्यः
श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् । मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवे-
देकादशी यदि । अभ्यर्च्य पितृदेवांश्च आजिघ्रेत्पितृसेवितम्' इति हेमाद्र्यादिसर्वानि-
बन्धेष्वप्येवम् ॥ एतेन एकादशीनिमित्तकं श्राद्धं द्वादश्यां कार्यमिति वदन्तः परास्ताः ॥
किं च महालये 'स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति' इति श्रुतं षोडशत्वम् । पौषैका-
दश्यां च मन्वादिश्राद्धम्, क्षयाहापरिज्ञाने च तत्पक्षैकादश्यां विहितं श्राद्धं बाधितमेव
न्यात् ॥ यदपि स्मृतिचन्द्रिकास्थं पठन्ति-अन्नाश्रितानि पापानि तद्भोक्तुर्दातुरेव
च ॥ मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः' इति ॥ तस्यापि रागप्राप्तभुजिगोचर-
स्य वैधं श्राद्धं गोचरयतां महत्साहसमित्यलम् ॥ योपि 'अकृतश्राद्धनिचया जलपिण्डं
विना कृताः' इति लघुनारदीये एकादश्यां श्राद्धादिनिषेधः स मातापितृभिन्नाविषयः ।
पूर्ववाक्ये तद्ग्रहणात् । निचयः प्रतिग्रहः ॥

अन्नतन्नात्याह अन्नरत्ने देवलः-सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम् ।
अन्नतन्नानि पठ्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः ॥ स्कांदेपि-अष्टौ तान्यन्नतन्नानि आपो मूलं
फलं पयः । हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥ इदं चातिसंकटविषयम् ॥
नारदीये-अनुकल्पो नृणां प्रोक्तः क्षीणानां वरवर्णिनि । मूलं फलं पयस्तोयमुपभो-
ज्यं भवेच्छुभे । न त्वेवं भोजनं कैश्चिदेकादश्यां बुधैः स्मृतम्' इति ॥ अस्यापवादः
'शयने च मदुत्थाने मत्पात्रवर्षपरिवर्तने । नरो मूलफलाहारी हृदि शल्यं ममार्पयेत्' एते
चाविरोधिनो निर्णयाः सर्वव्रतेषु ज्ञेयाः ॥ तत्रैकादश्यां संकल्पः-गृहीत्वौदुम्बरं
पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मखः । उपवासं तु गृहीयाद्यद्वा वर्येव धारयेत्' इति माधवीये
वाराहोक्तेः । मन्त्रस्तु विष्णूक्तः-एकादश्यां निराहारः स्थित्वा-
हमपरेऽहनि । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत' इति ॥
शैवादीनां तु हेमाद्रौ सौरपुराणे-सावित्र्याप्यथवा नाम्ना संकल्पं तु समाचरेत्' ॥

१ पैदानेति-अल्पमे वा निषेधे वा काष्ठानां दंतधावने ॥ पर्णादिना विशुध्येत जिह्वोल्लेखं सदैव
च ॥ व्यासः-अल्पमे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा ॥ अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्यादन्तधावनम्'
इति मनुजः ।

शिवादिगायत्र्यो यजुर्वेदे प्रसिद्धाः ॥ वाराहे-‘इत्युच्चार्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथा-
र्पयेत् ॥ ततस्तज्जलं पिबेत् । ‘अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जप्तेनाभिमन्त्रितम् । उपवासफलं
प्रेम्णुः पिबेत्पात्रगतं जलम्’ इति कात्यायनोक्तेः ॥ मध्यरात्रे उदये वा दशमीवेधे
रात्रौ संकल्प इति माधवः ॥ ‘दशम्याः सङ्गदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु । वर्जयेच्चतुरो
यामान्संकल्पार्चनयोस्तदा । विद्धोपवास्यनश्रंस्तु दिनं त्यक्त्वा समाहितः । रात्रौ संपू-
जयेद्विष्णुं संकल्पं च तदाचरेत्’ इति नारदीयोक्तेः ॥ तत्रैव पूजामभिधाय ‘देवस्य
पुरतः कुर्याज्जागरं नियतो व्रती ।’ द्वादश्यां निवेदनमन्त्र उक्तः कात्यायेन-‘अ-
ज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव’ इति ॥
नारदीये-‘ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दद्याद् दक्षिणां ततः ॥ स्कान्देपि-‘कृत्वा
चैवोपवासं तु योऽशीयाद्वादशीदिने । नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम् ।’ द्वादश्यां
च वर्ज्यान्याह बृहस्पतिः-‘दिवा निद्रा परान्नं च पुनर्भोजनमैशुने । क्षौद्रं कांस्याभिषं
तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥’ हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणे-‘पुनर्भोजनमध्यायो भार
आयासमैशुने । उपवासफलं हन्युर्दिवा निद्रा च पञ्चमी ॥’ स्कान्दे-‘परान्नं कांस्य-
ताम्बूले लोभं वितथभाषणम्’ ॥ वर्जयेदिति शेषः ॥ विष्णुधर्मे-‘असंभाष्यान्हि सं-
भाष्य तुलस्यतस्तिकादलम् । आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य शुध्यति’ ॥ बृह-
न्नारदीये-‘रजस्वलां च चाण्डालं महापातकिनं तथा । सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं
रजकादिकम् । व्रतादिमध्ये शृणुयाद्यद्येषां ध्वनिमुत्तमम् । अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्दे-
वेदमातरम्’ ॥

एतद्व्रतं सूतकोपि कार्यम् ॥ ‘सूतके सूतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्’ इति
विष्णुक्तेः ॥ तत्र त्यक्तं दानादि सूतकान्ते कार्यम् । ‘सूतकान्ते नरः स्नात्वा पूजयित्वा
जनार्दनम् । दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते’ इति मात्स्योक्तेः ॥ रजोदर्शनेपि
कार्यम् ‘एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि’ इति पुलस्त्योक्तेः ॥ यदा द्वादश्यां
श्रवणं तदा शुद्धामप्येकादशीं त्यक्त्वा तत्रैवोपवासः कार्यः । ‘शुक्ला वा यदि वा कृष्णा
द्वादशी श्रवणान्विता । तयोरेवोपवासश्च त्रयोदश्यां च पारणम्’ इति नारदीयोक्तेः
एते च नियमाः काम्यव्रते नियताः । नित्यव्रते सति संभवे कार्याः । ‘शक्तिमांस्तु पुनः
कुर्यान्नियमं सविशेषणम्’ इति कात्यायनोक्तेः ॥ अशक्तौ तु माधवीये ब्रह्मवैवर्ते
‘इति विज्ञाय कुर्वीतावश्यमेकादशीव्रतम् ॥ विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजिर्वर्जितः’ इति ॥
अथाष्टौ महाद्वादश्यः । तत्र शुद्धाधिकैकादशीयुता द्वादशी उन्मीलिनीसंज्ञा ।
द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्धते चेत्सा वज्जुली ॥ वासरत्रयस्पर्शिनी त्रिस्पृशा । अग्रे

१ तैत्तिरीयशाखायामुपनिषदन्तिके सर्वगायत्र्यो द्रष्टव्याः । २ ‘श्वशुरान्नं गुरोरन्नं मातुलान्नं तथैव
च ॥ पितृव्यन्नात्पुत्राणां परान्नं नैव दोषकृत्’ इति वचनं तु निर्मूलम् ।

पर्वणः संपूर्णाधिकत्वे पक्षवर्धिनी । पुष्यर्क्षयुता जया । श्रवणयुता विजया । पुनर्व-
सुयुता जयन्ती । रोहिणीयुता पापनाशिनी । एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् ।
अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ एकादशीद्वादशयोरेकत्वे तन्त्रेणोपवासः । पार्थक्य तु
शक्तस्योपवासद्वयम् । 'एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत्' इति विष्णुरहस्यात् ॥
अशक्तौ तु द्वादश्यामेव । 'एवमेकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्' । पूर्ववासरजं
पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्' इति तत्रैवोक्तेः ॥ यदा त्वल्पा द्वादशी तदोक्तं मात्स्ये-
'यदा भवति अल्पापि द्वादशी पारणादिने । उषःकाले द्वयं कुर्यात्प्रातर्मध्याह्निकं
तदा' ॥ नारदीयेपि-अल्पायामथ विप्रेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये । स्नानार्चनक्रियाः
कार्या दानहोमादिसंयुताः' इति ॥ संकटे तु माधवीये देवलः-संकटे विषमे प्राते
द्वादश्यां पारयेत्कथम् ॥ अद्भिस्तु पारणां कुर्यात्पुनर्भुक्तं न दोषकृत्' इति । संकटे
त्रयोदशीश्राद्धप्रदोषादौ ॥ अत्र केचिद्वाहुः-अपकर्षवाक्यान्यनाहिताग्निविषयाणि ।
अग्निहोत्रादीनां श्रौतत्वेनापकर्षायोगादिति ॥ द्वादश्यां च प्रथमपादधत्तिक्रम्य पारणं
कार्यम् 'द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः । तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णु-
तत्परः' इति निर्णयामृते मदनरत्ने च विष्णुधर्मोक्ते । अत्र केचित्संगिरन्ते । यदा
भूयसी द्वादशी, तदापि प्रातर्भुहर्तत्रये पारणं कार्यम् 'सर्वेषामुपवासानां प्रातेरेव हि
पारणम्' इति वचनात् ॥ अस्मद्दुरवस्तु-बहूनां कर्मकालानां विना कारणं वाया-
पत्तेः प्रागुक्तवचनैश्च अल्पद्वादश्यामेवापकर्षविधानापराह एव कार्यम् । प्रातःशब्दस्त
'सायं प्रातर्दिजातीनामशनं श्रुतिचोदितम्' इतिवदपराह्वाचित्वेष्युपपन्नः । च वाक्य-
वैयर्थ्यं, पुनर्भोजनसाम्यं पारणानिवृत्त्यर्थत्वात्तस्येत्याहुः ॥ प्रमादेन एकादशमुपवासा-
तिक्रमे अपराकं वाराहे-एकादशी विष्णुता चेद्वादशी परतः स्थिता । उपोष्या
द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमं पदम्' इति ॥ कैश्चित्तु 'विष्णुना चेत्' इति पठितम् ॥
अत्राविरोधिनो नियमाः सर्वत्रतेषु बोद्धव्याः । अन्ये च नवरात्रे वक्ष्यन्ते इति दिक् ॥

द्वादशीनिर्णयः । इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ एका-
दशीनिर्णयः ॥

त्रयोदशीनिर्णयः । द्वादशी तु पूर्वैव युग्मवाक्यात् । 'द्वादशी तु प्रकर्तव्या
एकादश्या युता प्रभो' इति स्कान्दाच्च ॥

त्रयोदशी तु सर्वमते शुक्ला पूर्वा कृष्णोत्तरा । 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः सितोत्थोऽथा-

१ अत्र प्रदोषप्रतम्-ब्रह्मोत्तरखण्डे-पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद्वा । घटीत्रयादस्तमया-
त्पूर्वं स्नानं समाचरेत् । शुक्लाम्बरधरो भूत्वा वाग्यतो नियमान्वितः । कृतसंख्याजपविधिः शिवपूजां
समागमेत्' इति व्रतमभिधाय 'एवमारारधयेद्देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादक्षिणाभि-
श्च तोषयेत्' इति दिनेऽनाहारकर्तृकं शिवपूजाप्रधानकं व्रतं स्मर्यते ॥ अत्र प्रदोषन्यापिनी ग्राह्या तत्रैव

सितः पश्चात्' इति दीपिकोक्तेः । 'शुक्ला त्रयोदशी पूर्वा परा कृष्णा त्रयोदशी' इति माधवाच्च ॥

चतुर्दशीनिर्णयः । चतुर्दशी सर्वमते कृष्णा पूर्वा शुक्लोत्तरा ॥ उपवासे तु इय्यपि परेति मदनरत्ने ॥

पौर्णमास्यमावास्ये तु सावित्रीव्रतं विना परे ग्राह्ये । 'भूतविद्धे न कर्त्तव्ये दर्शपूर्णं कदाचन । वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ अमायां योगविशेषमाहाऽपराकं शातातपः—'अमावास्यां भवेद्द्वारो यदा भूमिसुतस्य वै । जाद्वीस्नानमात्रेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥ अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी । चतुर्थी भौमवारेण विषुवत्सदृशं फलम्' ॥ तत्रैव व्यासः—'सिनीवाली कुहूर्वापि यदि सोमदिने भवेत् । गोसहस्रफलं दद्यात् स्नानं वै मौनिना कृतम्' ॥ हेमाद्रौ बृहन्मनुः—'श्रवणाश्विनिकृत्तिनागदैवतमस्तके ॥ यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते' ॥ नागदैवत आश्लेषा । मस्तकोमृगशिरः प्रथमपाद इत्यन्ये । स च सर्वेषाम् ॥

अथेष्टिकालः । गोभिलः—'पक्षान्ता उपवस्तव्याः, पक्षादयोऽभियष्टव्याः इति । उपवासोन्वाधानम् । तत्र मध्याह्ने तत्पूर्वं वा पर्वप्रतिपत्संधौ तद्दिने यागः । 'पूर्वाह्णे वाथ मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते । उपोष्य तत्र पूर्वद्युस्तदहर्याग इष्यते' इति-लौगाक्षिवचनात् ॥ तत्र द्वेधा विभागः—'आवर्त्तनात्तु पूर्वाह्णे ह्यपराह्णस्ततः परः । मध्याह्नस्तु तयोः संधिर्यदावर्तनमुच्यते' इति मदनरत्ने वचनात् ॥ मध्याह्नादूर्ध्वसंधौ माधवमते परेऽहि यागः 'अपराह्णेऽथ वा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते । उपोष्य तस्मिन्-

—पूजाविधानात् । प्रदोषस्त्रिमुहूर्तमित्यभिप्रायः ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा 'त्रयोदशी तु कर्त्तव्या द्वादशीसहिता मुने' इति सुमन्तूक्तिरिति मयूखकृतः ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ, तदव्याप्तौ, स्वाम्येन तदैकदेशास्पर्शे, च उत्तरा संकल्पकाले सत्त्वात् । वैषम्ये तदेकस्पर्शे तदाधिक्यवती प्राह्येति विवेचनानुसारिणः ॥ इदं च मन्दवारे कृष्णपक्षेऽतिप्रशस्तम् 'मन्दवारे प्रदोषोऽयं दुर्लभः सर्वदेहिनाम् । तत्रापि दुर्लभस्तस्मिन्कृष्णपक्षे समागतः' इति तत्रैवोक्तेः ॥ आरम्भश्च शनिप्रदोषे कार्यः 'यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता आरभेत व्रतं तत्र संतानफलसिद्धये' इति तत्रैवोक्तेः ॥ इति टीका ।

१ इध्मावर्हिः संपादनमग्निपरिग्रह इत्यादिप्रयोगप्रारंभः । २ संधाविति ॥ तत्स्वरूपं भगवत्पुत्र-गे—'अनुमत्याश्च राकायाः सिनीवाल्याः कुहूं विना ॥ एतस्यां द्विलवः कालः कुहूमात्रः कुहूः स्मृता' इति ॥ लवश्च स्मृत्यंतरे ॥ लवाक्षरचतुर्भागच्छुटिरित्यभिधीयते ॥ शुटिद्वयं निमेषोक्तो निमेषस्तु लवद्वयम् ॥ तथा चैकलब्धाक्षरोच्चारणपरिमिते काले एकः पर्वणोपरः प्रतिपदस्तदुभयं मिलितं संधिः कुह्विति क्लोकिलेनोक्तेः 'यावान्कालः समाप्यते । तत्कालसंज्ञिता चैषा अमावास्या कुहूः स्मृता' इति मात्स्यात्कुहूप्रतिप्रदोः संधिद्विगुण इति पुरुषार्थचिन्तामणिः ।

हेनोऽन्ते याग इष्यते' इति लौगाक्षिणोक्तेः ॥ हेमाद्रिस्त्वपराहसंवावपि परदिने-
प्रतिपद्युर्वाग्रे चन्द्रोदये च सति द्वितीयादिष्वत्यन्तक्षये सति पूर्वद्युर्वागः । 'पर्वणोऽंशे
द्वितीये तु यद्व्यं तु द्विजातिभिः । द्वितीयासहितं यस्माद्दूषयंत्याश्वलायनाः' इति ।
द्वितीये त्विति केषुनिकन्यायेन तुर्याशपरम् । तुरीये त्विति शूलपाणौ पाठः स्पष्टार्थ
एव । तथा- 'पुनः पञ्चदशी पूर्णा द्वितीया अयगामिनी । चरुरिष्टिरमायां स्याद्भूते कव्या-
दिकी द्वितीया' इति बौधायनवचनाच्चैतद्विज्ञानम् ॥ मदनरत्नेषि- 'चतुर्दशी चतुर्यामा
अनजाना न दृश्यते । स्मृते प्रतिपद्येत्स्यात्पूर्वा तत्रैव कारयेत्' इति ॥ यत्तु माध-
वः- 'यन्तु वाजसनेयी स्यात्तस्य संधिदिनात् पुरा । न काप्यन्वाहितिः किंतु सदा
संधिदिने हि ना' इत्याह । यच्च कालादशेष्युक्तम्- 'आवर्तनादयः संधिर्यद्यन्वाधायातदिने ।
पेन्दुरिष्टोन्वाहुविना वाजसनेयिनः' इति । यच्च मदनरत्ने- 'मध्यदिनात्स्यादहनीह य-
न्मिदं प्राक्तन्यः संधिर्यं तृतीया । सा खर्विका वाजसनेयिमत्या तस्यामुपोष्याथ परेनु-
मितिः' इति । एतत् पौर्णमासीपरमिति तत्रैव । आवर्तनोर्ध्वमर्वागस्ताद्रात्रौ वा समाप्तौ द्वे-
मध्यमादवाक समाप्ते तृतीयेत्यर्थः ॥ तत्कर्कभाष्यदेवजानीश्वरानन्तभाष्या-
दिनकालव्याख्यानप्रत्यविरोधाद्बृहानादराज्ञोपेक्ष्यम् । पौर्णमास्यां विशेषमाह कात्या-
यनः 'तीर्थेऽत्यंतं गवाधूर्ध्वं प्राक् पर्यावर्तनादवेः ॥ सा पौर्णमासी विज्ञेया सद्यःकाल-
विधौ तैः' । अमास्यां विशेषमाह बौधायनः 'द्वितीया त्रिमुहूर्ता चेत् प्रतिपद्यापरा-
द्वितीया' अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात्' । कात्यायनश्च 'यजनीयेऽहि
नोऽप्येद्राकन्यां दिशि दृश्यते । तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दंडं दद्याद्विजातये' इति । एतच्च
बौधायनवाजसनेयिविषयम् ॥ तैत्तिरीयश्रुतौ तु चन्द्रदर्शनेऽपि याग उक्तः
एषा वै सुमना नामेष्टिर्वाभ्यजानन् । पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेत्यस्मिन्नेवासमै लोकेर्धुकं
भवति इति ॥ स्मृत्यन्तरेऽपि- 'यदहः पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेति तदहर्हजन्निर्माँल्लोका-
नभ्युदेति' इति । इदं बह्वृचापस्तम्बविषयम् ॥ मदनरत्नेष्वेवम् । आपस्त-
म्बभाष्यार्थसंग्रहेष्वेवम् ॥ अतः पक्षद्वयस्य स्वस्वसूत्रादयवस्थेति तत्त्वम् ॥ 'दूषय-
न्त्याश्वलायनाः' इति तु पूर्वाह्नसंधिविषयमिति माधवः ॥

शेषपर्वणीष्टौ विशेषमाह माधवीये गार्ग्यः- 'प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदि चेष्टिः
नमाप्यते । पुनः प्रणीय कृत्स्नेष्टिः कर्त्तव्या यागवित्तमैः' । गृह्याग्नेर्नायं नियम इति
मदनपारिजातः ॥ एवं पर्वान्त्यांशः प्रतिपदश्च त्रयोऽंशा यागकाल उक्तः ॥ कश्चित्
प्रतिपद्युर्वाग्रेऽपि यागः । 'संधिर्यद्यपराह्नेस्याद्यागं प्रातः परेहनि । कुर्वाणः प्रतिपद्भागे
चतुर्यं न दुष्यति' इति बृहश्रुतातपोक्तेः ॥ एतत्पूर्णिमापरमिति मदनरत्ने
पर्वणि प्रतिपदः अयस्य बृहेश्वार्द्धं प्रक्षिप्य संधिर्ज्ञेयः । तदाह माधवः- 'वृद्धिः

१ तथा चाग्राहं संवावपि ब्राह्मणभोजनातिरेकः पदार्थः प्रतिपदि कर्त्तव्य इति हेमाद्रौ ।

प्रतिपदो यास्ति तदर्थं पर्वणि क्षिपेत् । क्षयस्वार्धं तथा क्षिप्त्वा संधिनिर्णीयत
 सदा' इति । कात्यायनोपि—'परोहि घटिका न्यूनास्तथैवाभ्यविकाश्च याः ।
 क्षिप्त्वा तदर्थं पूर्वस्मिन्हासवृद्धी प्रकल्पयेत्' इति । एवं स्मार्तस्थालीपाकेपि ज्ञेयम् ।
 तत्रेष्टिस्थालीपाकान्वाधानगृहप्रवेशनीयहोमानन्तरभाविन्यां पौर्णमास्यां प्रारम्भणीयौ
 नतु दर्शे ॥ यद्यारम्भे मलमासपौषमासगुरुशुक्रास्तादि भवति तदाप्यारम्भः
 कार्यः ॥ यानि तु 'उपरागोधिमासश्च यदि प्रथमपर्वणि । तथा मलिम्लुचे पौषे
 नान्वारम्भणमिष्यते । गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।' इति संध्रहव-
 चनानि ॥ तानि आलस्यादिनातिक्रांतशुद्धकालप्रारम्भविषयाणि ॥ 'नामकर्म च दर्शेष्टि
 यथाकालं समाचरेत् । अतिपाते सति तयोः प्रशस्ते मासि पुण्यमे' इत्यपराकैर्गर्ग-
 वचनादिति प्रयोगपारिजाते । उक्तं चैतत् प्रयोगरत्ने भट्टैः ॥ कालादर्शे तु
 'नामकर्म च जातेष्टिम्' इति पाठः । याज्ञिकास्तु—'आधानानन्तरा पौर्णमासी चेन्म-
 लमासगा । तस्यामारम्भणीयादीन्न कुर्वीत कदाचन' इति त्रिकाण्डमण्डनवचनाच्छु-
 द्धकाल एव विभ्रष्टेष्टिं कृत्वारम्भं कुर्यादित्याहुः ॥ कालादर्शे स्मृतिसंग्रहेपि—
 'आरम्भे दर्शपूर्णेष्ट्योरग्निहोत्रस्य चादिमम् । प्रतिष्ठाः पञ्चकर्माद्या मलमासे विवर्ज-
 येत्' इति ॥

अथ विकृतीष्टिः । तत्रापस्तम्बः—'यदीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेत ।
 सोमावास्यायां पौर्णमास्यां वा' इति ॥ अत्र प्रकृतितः काले सिद्धेपि सद्यःकालता
 विधेया । तृतीयया साङ्गत्वेनोक्तेः ॥ अत्र पौर्णमास्यमावास्याशब्दाभ्यांतदन्त्यक्षणौ
 गृह्यते । तेन तद्व्यहोरात्रे इत्यर्थमाह रामाण्डरः ॥ माधवोपि—'इष्ट्यादिविकृतिः
 सर्वा पर्वण्येवेति निर्णयः' इति । अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः कात्यायन-
 श्च 'आवर्तनात् प्राग्यदि पर्वसंधिः कृत्वा तु तस्मिन् प्रकृतिं विकृत्याः । तदैव यागः
 परतो यदि स्यात्तस्मिन्विकृत्याः प्रकृतेः परेद्युः' इति । धूर्तस्वाभ्यादयोप्येवमाहुः ।
 यदीष्ट्येति साङ्गाया विकृतेः पर्वकालत्वादावर्तनात् प्राक् संधौ 'संधिमभितो यजेत्'
 इति प्रकृतेः प्रतिपदि समाप्तिनियमात् प्रकृत्यनन्तरप्रतिपदि विकृत्ययोगात् पूर्वद्युर्विकृति-
 रित्युक्तम् तन्नरत्ने पार्थसारथिनां—यद्यपि 'प्रकृतेः पूर्वत्वादपूर्वमन्ते स्यात्' इत्याप-
 स्तम्बेनोक्तम् । तथापि हेतुवादेन श्रुतिमूलत्वाभावात् 'अङ्गं वा समभिव्याहारात्' इति-
 वदप्रामाण्यमिति तदाशयः ॥ आप्रयणे तु विशेषं वक्ष्यामः ॥ अन्वारम्भ-
 णीया तु चतुर्दश्यां कार्येति हिरण्यकेशिवृत्तौ मातृदत्तीये ॥ अन्येषां
 पर्वण्येव ॥

पशौ सोमे च कालान्तरमप्याह बौधायनः । 'अमावास्येन वा हविषेष्टा
 नक्षत्रेच' इति ॥ शुक्लपक्षे कृत्तिकादिविशार्वान्तेषु देवनक्षत्रेष्विति केशवस्वामी
 व्याचख्यौ ॥ चातुर्मास्येष्वपि द्वादशाहयथाप्रयोगपक्षयोर्नक्षत्रेष्वप्यारम्भः ॥ यावज्जी-

इन्द्राद्यन्तर्ग्रयोगयान्तु कालगुन्यां चैव्यां वारम्भः ॥ पशौ तु विशेषमाह कात्यायनः
 'अग्नेर्द्वौ भवति नियतं पर्वसंधिः परस्तात्कृत्वा तस्मिन्नहनिं तु पशुं सद्य एव द्व्यहं वा ।
 अग्न्याथ प्रकृतिमथ चेत् पर्वसंधिः पुरस्तात् कृत्वा तस्मिन् प्रकृतिमथ तु स्यात्पशुः सद्य
 एव । 'अधिकान्पशुस्तर्वापोर्मायेण सवर्नायेन वा समानतन्त्रो वा कार्यः' इति
 त्रिकाण्डशेषः ॥ सोमे त्वाहापस्तम्बः- 'अमावास्यायां दीक्षायजनीये वामा-
 इन्द्राद्यं यजनीये वा सुत्यमहः । पौर्णमास्यां दीक्षायजनीये वा पौर्णमास्यां यजनीये-
 नानुत्यमहः' इति ॥ लाट्यायनसूत्रेपि- 'पूर्वपक्षस्य प्रथमेहनि दीक्षेत दृष्ट्वा वा नक्षत्र-
 योगं च' इति ॥ पूर्वपक्षः शुक्लपक्षः । नक्षत्रयोगे चेति । अयमर्थः- 'चैव्यादिपुर्णिमाया-
 श्चित्रानक्षत्रयोगे दीक्षेत' इति ॥ आधानं तु पर्वणि नक्षत्रेषु चोक्तम् । तत्र पर्वनक्तम्
 'मार्गशीर्षमादधीत' इत्यादिकर्मकालव्यापि ग्राह्यम् । दिनद्वये तच्चे परं ग्राह्यम् । संकल्प-
 न्य पर्वणि लाभात् । पूर्व नक्षत्रयोगे तदेव ग्राह्यम् ॥ यत्र त्रीणि संनिपातितान्यृतुनक्षत्रं
 च पर्व तन्मृदं 'विप्रतिपदे ऋतुर्नक्षत्रं च बलीयः' इति हिरण्यकेशिसूत्रात् ॥
 ऋतुः 'वनं ब्राह्मणोर्वानादधीत' इत्यादिः ॥ रेणुकारिकायां तु 'माघादिपञ्चमासेषु
 श्रवणे वाधिने तथा । मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे आधानमथ कारयेत्' इत्युक्तम् ॥ अत्र मूलं
 मृगम् ॥ आधाननक्षत्राणि त्वापस्तम्बसूत्रे- 'कृत्तिकारोहिणीमृगशीर्षपुनर्वसुपुष्यपूर्वा-
 नक्षत्राणां तन्माघादस्तचित्राविशाखाश्रवाध्रुवाध्रवणोत्तराभाद्रपदा' इति ॥ सोमपूर्वा-
 धाने विशेषमाहापस्तम्बः- 'सोमेन यक्ष्यमाण आदधानो नर्तुन्सूक्ष्म नक्षत्रम्' इति ॥
 अत्र प्रकरणाधानकालबाधः । तेन सोमस्य वसंतकालता न बाध्यत इति रुद्रदत्त-
 वृत्तौ नारायणवृत्तौ चोक्तम् ॥ तन्वरत्ने वार्तिके च 'ते वा एते उभये अपहत-
 पाप्मानो ऋतवः । एष वा उद्यन्नादित्य एषां पाप्मनोपहन्ता । यदैवेनं कदाचन यज्ञ-
 मुपनमेदधादधीत' इत्यत्रोत्तरायणरूपं देवं दक्षिणायनरूपं च पित्र्यमित्युभयमृतुत्रयं
 सोमाधाने शतपथे विशिष्य विहितम् । तदेकवाक्यतया शाखान्तरेऽपि 'नर्तुन् सूक्ष्मं'
 इत्यत्र सोमकालबाध एव । आधानकालबाधस्य 'यदैवेनं श्रद्धोपनमेत्तदादधीत' इत्यस्यां
 शाखायां वाक्यान्तरेण सिद्धत्वात्सोमकालबाधार्थमेवेदमित्युक्तम् ॥ धूर्तस्वामी
 तु 'सोमस्यापि य ऋतुस्तस्यापि न सूक्ष्मं' इति लेखनादुभयकालबाधं मन्यते ॥
 श्रीरामांडारस्तु 'कालान्तरविधानं वा सर्वकालानादरो वा' इति पक्षद्वयमुक्त-
 वान् ॥ तत्राद्ये कृत्तिकादिकालान्तरस्य यथाधाने वसंताद्यबाधेन विधानम् । तथा
 'सोमप्युदगयनपूर्वपक्षपुण्याहसंनिपाते यज्ञकालानादेशः' इति छन्दोगसूत्रोक्तोदगयना-
 बाधेन सोमाभिर्मथिरूपकालान्तरविधानादुदगयनं त्वपेक्षत इत्युक्तम् ॥ द्वितीयपक्षे तु
 'यदैवेनं यज्ञ उपनमेत्' इति सर्वकालानादर उक्तः इति भारद्वाजसूत्रात्सर्वशब्दस्य च
 विशिष्टत्वपूर्वपक्ष इतिवद्वयोरप्रयोगात् सर्वकालबाध इति । तेन दक्षिणायनेऽपि भवतीत्यु-

क्तम् ॥ षड्गुरुभाष्ये देवत्रातभाष्ये तन्त्ररत्ने च षट्स्यपि ऋतुषु भवतीत्युक्तमिति दिक् ॥

श्राद्धे त्वमावास्या त्रेधा विभक्तदिनतृतीयांशे योपराह्णभागस्तद्व्यापिनी साग्निकग्राह्या 'पिण्डान्वाहायकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते । वासरस्य तृतीयंशे नातिसंध्यासमीपतः' इति कात्यायनोक्तेः । 'दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं' पार्वणं तत्प्रदर्शश्राद्धकालः । अपराह्णे पितॄणां च तत्र दानं प्रशस्यते' इति शातातपोक्तेश्च ॥ दिनद्वयं तत्र सत्त्वं सर्वापराह्णव्यापी दर्शो ग्राह्यः ॥ 'यद्युभयेद्युरेष विहितः सर्वापराह्णस्थितः' इति दीपिकोक्तेः ॥ यत्तु कार्णार्जिनिः 'भूतविद्धाममावास्यां मोहादज्ञानतोपि वा । श्राद्धकर्माणि यं कुर्युस्तेषामायुः ग्रहीयते' इति । तदपराह्णे चतुर्दशीवैधपरमिति श्राद्धहेमाद्रिः ॥ अपराह्णव्याप्तिपरमिति माधवः ॥ 'दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यभावंशतो व्याप्तौ च तिथिक्षये पूर्वा इति हेमाद्रिः 'यदा चतुर्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत् । अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते' इति कात्यायनोक्तेः ॥ चतुर्दश्याश्चतुर्थयामं दर्शः पूरयेत् । चतुर्दशी यामत्रयं स्यादित्यर्थः ॥ क्षीयमाणा परदिनेऽपराह्णव्यापिनी नेत्यर्थः ॥ व्यतिरेकमाह 'वर्धमानाममावास्यां लक्षयेदपरेहनि । यामांस्त्रीनधिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ।' ततः श्राद्धं च ॥ दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यादौ तिथिवृद्धौ च हारीतः 'त्रिमुहूर्ता च कर्तव्या पूर्वा खर्वा च बह्वृचैः । कुहूरध्वर्युभिः कार्या यथेष्टं सामगीतिभिः' त्रिमुहूर्ताभावे तु पूर्वा नेत्यर्थः ॥

पिण्डपितृयज्ञस्तु कात्यायनैर्यागदिनात्पूर्वेद्युः कार्यः पूर्वं वाङ्मत्वात् पिण्डपितृयज्ञः' इति तत्सूत्रात् ॥ व्याख्यातं चैतत् कर्काचार्यैः पूर्व एव पिण्डपितृयज्ञः । दर्शात् पिण्डपितृयज्ञो, न पश्चात् । कुतः अङ्गत्वात् । तथा च श्रुतिः 'तस्मात्पूर्वेद्युः पितृभ्यः क्रियत उत्तरमहर्देवान्यजन्ते' इति पूर्वेद्युः पितृभ्यो यज्ञं निपृणीय प्रातर्देवेभ्यः प्रतनुते' इति च । तेन तन्मते अङ्गमेवासौ । तदुक्तम् 'अङ्गं वा समभिव्याहारात्' इति तेन कर्कमते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पिण्डपितृयज्ञ इति ॥ श्रयनन्तभाष्ये तु 'परेद्युः' इत्युक्तम् ॥ अत्र द्वेधाप्याचारो दृश्यते ॥

आपस्तम्बानां तु परदिने मुहूर्तमपि दर्शसत्त्वे तत्रैव पितृयज्ञः । तदाह आपस्तम्बः—'अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति तदहः पिण्डपितृयज्ञं कुरुते' इति ॥ अस्य रुद्रदत्तीया व्याख्या—'पिण्डैर्युक्तः पितृयज्ञः पिण्डपितृयज्ञः । स च कर्मान्तरं न दर्शशेषः' । यथा वक्ष्यति—'पितृयज्ञः स्वकालविधानादनङ्गः स्यात्' इति । तं च 'यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति पश्चदश्यां प्रतिपदि वा तदहः कुरुते । यदहस्तयोः संधिस्तदहरित्यर्थः' इति ॥ रामाण्डारोप्याह—'पिण्डपितृयज्ञस्तु पर्वसंधिमदहोरात्रापराह्णे' इति ॥ अतः पर्वसंधिदिने पितृयज्ञः ॥ शतपथश्रुतिरपि 'यदेवैष ना पुरस्तान्न पश्चाद्दृश्य-

नेय पितृभ्यो ददाति' इति ॥ पर्वसंधिदिने हि पूर्वतः पश्चाद्वा चन्द्रो न दृश्यत एवेत्यर्थः सत्याषाढोपि पितृयज्ञं प्रक्रम्य 'दृश्यमाने तृपोष्य श्वोभूते यजते' इत्याह ॥ हेमाद्रिस्तु-अमावास्याशब्दस्थितिवचन एव । पूर्वोक्तापस्तम्बे सूत्रे यदुक्तं न पश्यन्ति इति तत्र क्षयोभिप्रेतः । अतश्चतुर्दश्यां चन्द्रमसश्च क्षीणत्वात्तद्युक्तदर्शे पितृयज्ञः 'पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान्' इति भन्तुक्तेः ॥ 'यदुक्तं यद्दृष्ट्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः । तत्क्षयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि' इति 'यदुक्तं दृश्यमानेऽपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया' इति च कात्यायनोक्तेः । 'दृश्यमानेऽप्येक' इति गोभिलोक्तेः ॥ 'यस्यां सन्ध्यागतः सोमोमृणालमिव दृश्यते । अपराह्णे क्षयस्तस्यां पिण्डानां करणं ध्रुवम्' इति हारीतोक्तेश्च । चन्द्रक्षयकालश्चोक्तः कात्यायनेन 'अष्टमं चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः । अमावास्याष्टमं तु पुनः किल भवेदणुः' इति । तेन पूर्वद्युरेव पितृयज्ञ इत्युच्यते ॥ कर्काचार्यैरपि-अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेमावास्यायाम्' इति कात्यायनसूत्रेऽदर्शनेन अय एवोक्तः 'तस्मिन् क्षीणे ददाति' इति श्रुतेः ॥ अतस्तन्मते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पितृयज्ञे सति परदिने यागोर्थात्पिण्डः ॥ तदेतत्सर्वोत्कृष्टमपि हेमाद्रिकर्कादिव्याख्यानमापस्तम्बैर्नभ्युपनमात्कातीयवौधायनादिविषयम् ॥

आश्वलायनानामपि शेषपर्वणि पिण्डपितृयज्ञः । तथा च सूत्रम्-अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः' इति ॥ अत्र नारायणवृत्तिः-अमावास्याशब्दः प्रतिपत्पञ्चदश्योः संधिवचनोप्यत्रापराह्णशब्दसम्बन्ध्यात्तद्व्यहोरात्रे वर्तते । तस्यापराह्णेहश्चतुर्थे भागे पिण्डपितृयज्ञः कार्यः । औपवसथ्ये यजनीये वाहनि ॥ यदाः त्वहोरात्रसंधौ तिथिसंधिः स्यात्तदौपवसथ्ये एवाहनि क्रियते' इति ॥ अत एव 'सुहूर्तप्रप्यमावास्या प्रतिपद्यपि चेद्भवेत् । तद्वत्तमक्षयः ज्ञेयं पर्वशेषं तु पर्ववत्' इति हेमाद्रौ वचनं पिण्डपितृयज्ञपरमुक्तं प्रयोगपारिजाते ॥ अयं च स्मार्ताग्निमता संपूर्णं दर्शं श्राद्धव्यतिपद्गेण कार्यः । व्यतिपद्गो नामोभयोः सहानुष्ठानम् । एतच्च 'स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य' इति सूत्रे वृत्तिकृतोक्तम् ॥ खण्डपर्वणि तु केचिदाहुः-पूर्वेहि पिण्डपितृयज्ञव्यतिपद्गेण श्राद्धं कृत्वा परेहि केवलः पिण्डपितृयज्ञः कार्यः' ॥ वृत्तिकृता तु-अन्वष्टक्यं च पूर्वद्युर्मासि मास्यथ पार्वणम् । काम्यामाव्युदयेष्टम्यामेकोदिष्टमथाष्टमम्' इत्युदाहृत्य पूर्वेषु चतुर्षु 'स्थालीपाकादुद्धृत्याग्नौ करणम्' इत्युक्तेर्दर्शश्राद्धस्थालीपाको नियत इति गम्यते ॥ स्थालीपाकश्च पितृयज्ञ एवेति पूर्वदिने व्यतिपद्गः प्रसिद्धः ॥ प्रयोगपारिजाते तु वार्षिकश्राद्धादेरपि व्यतिपद्ग उक्तः । किमुत दर्शश्राद्धस्य ॥

न्यायविदस्त्वाहुः । सूत्रस्य वृत्तेश्च संपूर्णदर्शविषयत्वात् खण्डपर्वणि पूर्वदिने केवलं श्राद्धं परदिने च केवलः पितृयज्ञः कार्यः ॥ अत एवोक्तं वृत्तिकृता नात्र पूर्व-

स्याग्नीपाकश्चोद्यते सर्वश्राद्धेषु प्रसङ्गादिति ॥ प्रयोगपारिजातोक्तिरप्येतद्विषयेव ॥ पूर्वदिने च श्राद्धेष्टौकरणमेव न पाणिहोमः । 'चतुर्ष्वद्येषु साग्नीनां बहौ होमो विधी-
यते । पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि' इति परिशिष्टे नियमात् ॥ न च
लौकिकाग्नौ पक्वस्य कथं गृह्याग्नौ होमः । 'नान्याग्नौ पक्वमन्याग्नौ जुहुयात्' इतिनिषे-
धात् । मैवम् । श्राद्धस्य गृह्यत्वेन स्मार्ताग्नौ पचनाग्नौ वा कर्तव्यत्वात् ॥ तस्मात्
पूर्वतुः केवलं श्राद्धं न व्यतिपद्मः ॥ इदमेव च युक्तं आहिताग्निना तु सर्वावानिनार्वा-
वानिना वा संपूर्णे खण्डे वा दर्शं श्रौताग्नौ पृथगेव पितृयज्ञः कार्यो न तु दर्शश्राद्धव्यति-
पद्मेणेति विस्तरभूतिविग्रहामः ॥ संपूर्णे दर्शं च विशेषमाह लौगाक्षिः—'पक्षान्तं
कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च जाग्रिकः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः' इति ॥
पक्षान्तं कर्मान्वावानम् । अन्वाहार्यकं दर्शश्राद्धम् ॥ अयमेव साग्नेर्जीवित्पितृकस्यपिण्ड-
पितृयज्ञकालो ज्ञेयः । तस्यापि कात्यायनेन होमान्तमनाग्नौ वा इत्याम्नात-
त्वात् ॥ पिण्डपितृयज्ञाकरणे प्रायश्चित्तमाह पराशरमाध्वग्नौ कात्यायनः—'पितृ
यज्ञाग्नौ चैव वैश्वदेवात्यग्नौ च । भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत्' इत्यलम् ॥

अकृतमनुसरायः ॥ निग्निकादिभिस्त्वाभावास्यापगह्वव्याप्यभावे तु कुतुपकाल
व्यापिनी ग्राह्या 'भूतविद्धाप्यभावास्या प्रतिपन्मिश्रितापि वा । पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भि-
र्ग्राह्या कुतुपकालिकी' इति हारीतोक्तेः ॥ इदं च निग्निकादिविषयम् 'सिनीवाली
द्विजैः कार्या साग्निकैः पितृकर्मणि । स्त्रीभिः शूद्रैः कूटैः कार्या तथा चानग्निकैर्द्विजैः ।'
इति लौगाक्षिवचनात् ॥ अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारिजाते उक्तम् ॥
कुतुपश्रापगह्वव्याप्यलाभेनकल्पः 'अपगह्वद्रव्यव्यापी यदि दर्शस्तिथिक्षये । आहिताग्नेः
सिनीवाली निग्न्यादेः कुर्मता ।' इति जायालिनाभावे विधानात् ॥ तेन साग्नीनां निग्न्यानां
वापगह्वव्यापिन्येव मुख्यम् ॥ तिथिसाम्यवृद्धिक्षयैः समव्याप्तौ खर्वादिना निर्णयः । वैषम्ये-
विकादिनद्वये पगह्वस्पर्शं कुतुपव्यापिनीति माधवः ॥ इदमेव युक्तम् ॥ हेमाद्रिमेत
कुतुपव्यापिन्येव निग्न्यादेर्मुख्या । अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारिजाते
उक्तम् । सिनीवाली दृष्टचंद्रा । तथा च व्यासः—'दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचंद्रा
कूटः स्मृता' इति ॥ पूर्वदिने परदिन एव वा तद्व्यापित्वे सैव ग्राह्या । अंशव्यापित्वे
वैषम्येविककालव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयशतः समव्याप्तौ तिथिक्षये पूर्वा वृद्धौ साम्ये
च पग । 'तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कूटः स्मृता । साम्येऽपि च कुटूज्ञेया वेद-
वेदाङ्गवेदिभिः' । इति प्रचेतोवचनात् ॥ दिनद्वये संपूर्णकुतुपव्याप्तिस्तु तिथिवृद्धा-

१ अपराहति । दिनद्वये अपराह्व स्पर्शाभावे इति याचत । २ 'स्यातां ते यदि मव्याहृत'
इति ग्रामाणिकपाठान्न कुतुपो मुख्य इति भावः । ३ कुतुपश्चेत्यादिना माधवमतं प्रदर्श्य प्रकृते
हेमाद्रिमेत इति ॥ इति टीका ।

वेव भवतीत्यनन्तरवचनात्परैवेति ॥ कुतुपस्तु-‘अहो मुहूर्तो विज्ञेया दश पञ्च च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतुपः स्मृतः’ इति मात्स्योक्तेः ॥ तुलादानपितृदेव-
प्राप्त्यर्थोपवासादौ तु परा ग्राह्येत्यन्यत्र विस्तरः ॥

दर्शं च मासिकवार्षिकादिश्राद्धप्राप्तौ कालादर्शो विशेष उक्तः ‘दर्शस्य
चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि । नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शि-
काब्दिकयोरपि’ इत्युक्त्वा । ‘संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समा-
चरेत् । निमित्तानिन्यतिश्रात्र पूर्वानुष्ठानकारणम्’ इति ॥ अत्र क्रमो निर्णयदीपे
उक्तः-‘नष्टचन्द्रे यदा काले क्षयाहदिवसो भवेत् । वैश्वदेवं क्षयश्राद्धं कुर्यात्प्राग्दर्श-
कर्मणः’ ॥ अमाश्राद्धं चानुपनीतोऽपि कुर्यात् । श्राद्धशूलपाणौ ‘अमावास्या-
ष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च’ इत्युपक्रम्य ‘एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं
स्नाधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् । भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रवासस्थोऽपि नित्यशः । शूद्रो-
ऽप्यमन्त्रवक्तुर्यादनेन विधिना बुधः’ इति मात्स्योक्तेः ॥ अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चि-

अमाश्राद्धातिक्रम- त्तमुक्तमृग्विधाने ‘न्यूषुवाचं जपेन्मन्त्रं शतवारं दिने दिने । अमा-
मे प्रायश्चित्तम् । श्राद्धं यदा नास्ति तदा संपूर्णमेति तत्’ ॥ अत्र पूर्वोक्तसाग्निकपदे-

नाहिताग्निः स्मार्ताग्निमांश्च गृह्यते । विच्छिन्नाग्निकादिश्च निराग्निकः ॥ तथा च
हेमाद्रिरग्नौकरणप्रकरणे ‘साग्निरग्नावनग्निस्तु द्विजपाणावथाप्सु वा । कुर्यादग्नौ क्रियां
नित्यं लौकिकेनेति निश्चितम्’ इति स्मृतिवाक्यमुदाहृत्य यस्त्वस्वीकृतौपासनतया
समुच्छिन्नाग्नितया भार्याविधुरतया वाग्निरहितस्तस्य द्विजपाणौ जलादौ होम इति व्याच-
क्षे ॥ मदनपारिजातेऽप्येवम् ॥ इदमेव साग्निकानग्निकस्वरूपं सर्वत्र ज्ञेयम् ॥

अथ ग्रहणं निर्णीयते ॥ तत्र चन्द्रग्रहणे यस्मिन्यामे ग्रहणं

ग्रहणनिर्णयः । तस्मात्पूर्वं प्रहरत्रयं न भुञ्जीत । सूर्यग्रहे तु प्रहरचतुष्टयं न भुञ्जीत्
‘सूर्यग्रहे तु नाश्रीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम् । चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना’ इति
माधवीये वृद्धगौतमोक्तेः ॥ ‘ग्रहणं तु भवेदिन्द्रोः प्रथमादधि यामतः । भुञ्जीता-
वर्तनात् पूर्वं प्रथमे प्रथमादधः’ इति मार्कण्डेयोक्तेश्च ॥ अधि ऊर्ध्वम् । ननु चन्द्र-
ग्रहे यामचतुष्टयनिषेध उचितो न तु सूर्यग्रहे सूर्योदयात् प्राग्भोजनाप्राप्तेः । मैवं वचनस्य
प्रथमयामे सूर्यग्रहे सति पूर्वेषुः पूर्वात्रे भोजननिषेधपरत्वात् । चन्द्रग्रहे विशेषमाह-

१ अत्र नवीनाः—यन्माधवेन हेमाद्रिणा वा ‘दिनद्वये संपूर्णा पराहव्याप्तौ संपूर्ण-
कुतुपव्याप्तौ वा परा’ इत्युक्तम् ॥ तदयुक्तम् । खर्वादिवाक्ये ‘तिथिक्षये सिनीवाली’ इतिवाक्ये
च क्षयादीनां प्राग्यतिथिगत्वात् दिनद्वयगतसमैकदेशव्याप्तिविषयकत्वेनेहाप्रवृत्तेः ॥ किं तूत्तरतिथिः
क्षये पूर्वा, वृद्धिसाम्ययोस्तूत्तरा ‘अमावास्या तु सा हि स्यादपराहद्वयेपि या । क्षये पूर्वा परा
वृद्धौ साम्येपि च परा स्मृता’ इत्युक्तेः ॥ नचेदं दिनद्वयगतसमैकदेश व्याप्तिपरम् । स्वरसतोऽ
पराहद्वयव्याप्तिरेव प्रतीतेः ॥ एवं कुतुपव्याप्तिवादीनां मतेपि ॥ इति वदन्ति ॥ इति टीका ।

माधवीये वृद्धवसिष्ठः—‘ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत्’ इति ॥ द्वयोर्ग्रस्तास्ते तु माधवीये व्यासः ‘अमुक्तयोरस्तगयोरद्यादृष्ट्वा परेर्हनि’ इति । विष्णुधर्मेऽपि ‘अहोरात्रं न भोक्तव्यं चन्द्रसूर्यग्रहो यदा । मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्’ ॥ अहोरात्रनिषेधः सूर्यग्रस्तास्ते ॥ मदनरत्ने गार्ग्यः ‘संध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ । तदहे नैव भुञ्जीत रात्रावपि कदाचन’ । सायं संध्यायां सूर्यग्रस्तास्ते पूर्वेद्दि रात्रौ च न भोक्तव्यम् । प्रातः संध्यायां चन्द्रस्य ग्रस्तास्ते पूर्वरात्रावुत्तरेद्दि च न भोक्तव्यमित्यर्थः ॥ चन्द्रग्रस्तास्ते उत्तरदिने संध्याहोमादौ न दोषः । तदाहोशनाः ‘ग्रस्ते चास्तं गते त्विन्दौ ज्ञात्वा मुक्त्यवधारणम् । स्नानहोमादिकं कार्यं भुञ्जीतेन्दूदये पुनः । एतदनाहिताग्निविषयम् । अपराह्णे व्रतोपायनीयमश्नीत’ इति कात्यायनोक्तेर्व्रतस्य श्रौतत्वेन विहितत्वेन च प्रबलत्वात् ॥ अद्विर्व्रतं कुर्यादिति निर्णयदीपः । रागप्राप्तभोजने कालनियमोयम् । तेन ज्वरादाविव न भोजनमिति कर्कानुसारिणः ॥ बालवृद्धातुराणां तु ग्रहणयामात्पूर्वमेकयामो निषिद्धः ‘सायाह्णे ग्रहणं चेत्स्यादपराह्णं न भोजनम् । अपराह्णे न मध्याह्णे मध्याह्णे न तु संगवे । भुञ्जीत संगवे चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया’ इति मार्कण्डेयोक्तेः ॥ इदं च बालादिविषयम् । ‘बालवृद्धातुरैर्विना’ इति पूर्वोक्तेः ॥ वेधकाले ग्रहणे वा पक्कमन्नं त्याज्यम् ‘सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्’ इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् ॥ शृतमिति, तदन्तरितस्योपलक्षणम् ‘नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं ग्रहपर्युषितं च यत्’ इति मिताक्षरायां वचनात् ॥ भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिर्निबन्धे मेधातिथिः—‘आरनालं पयस्तक्रं दधि स्नेहाज्यपाचितम् । मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके’ । मन्वर्थमुक्तावल्याम् ‘अन्नं पक्कमिह त्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे । वारितक्रारनालादि तिलदर्भैर्न दुष्यति’ । जले त्वदोषो गाङ्गाविषयः ‘ग्रहोषितं जलं पीत्वा पादकृच्छ्रं समाचरेत्’ इति । तत्रैव चतुर्विंशतिमतेऽन्यजलस्य दोषोक्तेः ॥ वेधकाले ग्रहणे वा भोजने प्रायश्चित्तमुक्तम् । माधवीये कात्यायनेन ‘चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुध्यति । तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति’

१ स्नात्वेति शेषः । एवं च ग्रस्ते मुक्तिस्नानमपि परेद्युरेव ब्रह्माण्डे । ‘नाश्नीयादथ तत्काले ग्रस्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ मुक्तयोश्च कृतस्नानः पश्चाद्भुज्यात्यवशेऽस्मिन्’ इति । स्ववेश्मनीति परान्ननिषेधः ॥ मुक्तावपि भोजनं महानिशातः प्रागेव ‘मुक्तके निशि भुञ्जीत यदि न स्यान्महानिशा’ इति शातातपोक्तेः । इति टीका । २ ग्रहणकाले च स्वापादि निषिद्धम् ‘सूर्येन्दुग्रहणे यावत्तावत्कुयार्जिपादिकम् । न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः’ इति वचनात् । निद्रायां जायते रोगो सूत्रे दारिद्र्यमाप्नुयात् । पुरीषे कृमियोनिः स्यान्मैथुने ग्रामसूकरः । अन्यङ्गे च भवेत्कुष्ठी भोजने स्यादधोगतिः वज्रने च भवेत्सर्पो वधे च नरकं व्रजेत्’ इति निगदोक्तेश्च ॥ इति टीका ।

ति । ग्रहणे च त्रिगत्रमेकगत्रं वोपवासः श्रेयोर्थिना कार्यः । 'एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा दत्त्वा च शक्तिः । कञ्चुकादिव सर्पस्य निवृत्तिः पापकोशतः । त्रिरात्रं समुपोष्यैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणा सह' इति हेमाद्रौ वृत्तनैः ॥ इदं च पुन्यतिरिक्तविषयम् । 'आदित्येहनि संक्रातौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । गार्ग्यं चोपवामं च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही' इति जैमिनिवचनात् । यदा तु खेयस्तास्तस्तदा पुत्रिणः प्रहृदयं हित्वा बालादिवद्भोजनं, न तूपवासः । 'सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यात्' इति वृत्तमार्कण्डेयवचनात् । 'सायाह्ने संगवेश्रीयाच्छारदे संगवादधः । मध्याह्ने परतोश्ची-
यान्नोपवामो रविग्रहं' इति स्मृतेश्चेति हेमाद्रिः शारदोऽपराह्णः ॥ माधवयते तु पुत्रिणोपि नत्रोपवान् एव 'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इति पूर्वोक्तनिषेधस्य तेनापि पालनीय-
त्वात् उपवामनिषेधस्तु व्रतरूपोपवासपरः । कृष्णैकादशीनिषेधवदिति ॥ मदनरत्ने-
ष्वप्यम् ॥ इदमेव च युक्तम् ॥ वर्धमानस्तु 'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इतिशातात-
पीयोक्तः 'सूर्याचन्द्रमग्नोलोकानक्षयान्याति मानवः' इति फलश्रुतेर्मुक्त्यदर्शने उपवासः
काम्यः । नत्वयं निषेध इत्याह ॥ तत्र । तत्र व्रतत्वेऽपि प्रागुक्तविष्णुधर्मे निषेधावश्यं
भावात् । तथा च व्यासः 'रविग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा । चूडामणिरिति
ग्यातस्मन् व्रतमनन्तकम् । वारेष्वन्येषु यत् पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । तत् पुण्यं
कोटिगुणितं योगे चूडामणौ स्मृतम्' ॥

अत्र चाद्यन्तयोः स्नानं कुर्यात् 'अस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते ।
मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते' इति हेमाद्रौ वचनात् । 'स्नानं स्यादुप-
गमादा मध्ये होमः सुरार्चनम्' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च । 'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहु-
दर्शने । सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत्, इति वृद्धवसिष्ठोक्तेश्च ॥ सचैलं मुक्ति-
स्नानपरमिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ भार्गवार्चनदीपिकायां चतुर्विंशतिमते 'मुक्तौ
यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके । स सूतकी भवेत्तावद्यावत्स्यादपरो ग्रहः' ॥ इदं च स्नान-
ममन्त्रकं कार्यामिति स्मृतिरतनावल्याम् । तत्र तीर्थविशेषो भारते 'गङ्गास्नानं न कुर्वीत
ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । महानदीषु चान्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि' ॥ महानदीष्वपि मास-
विशेषे काश्चिच्छ्रेष्ठाः 'प्रयागं देविका रेवा संनिहत्या च वारणम् । सर-
स्वती चन्द्रभागा कौशिकी तापिका तथा । सिन्धुर्गण्डिका चैव सरयूः
कर्त्तिकदिनः' । मूलं हेमाद्रौ स्पष्टम् । व्यासः- 'इन्द्रोर्लक्षगुणं पुण्यं खेर्दशगुणं ततः ।
गङ्गातोयं तु संप्राप्ते इन्द्रोः कोटी खेर्दश । गवां कोटिसहस्रस्य यत् फलं लभते नरः ।
नक्तलं लभते मर्त्यां ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ असंभवे तु माधवीये शंखः- 'वापीकूप-

१ मार्कण्डेये भागेकवर्जनं सायाह् इत्यत्र तु भागद्वयवर्जनमुक्तम् । तत्र बालादीनां भागद्वयवर्जनं
मुच्यते ॥ एकभागवर्जनं त्वनुक्त्य इति ।

तडागेषु गिरिप्रस्रवणेषु च । नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धताम्बुनि । उष्णोदकेन वा
स्नायात् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ अत्र तारतम्यमाह मार्कण्डेयः—‘शीतमुष्णोदकात्पुण्य-
मपारक्यं परोदकात् । भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् । ततोऽपि सारसं पुण्यं
ततः पुण्यं नदीजलम् ॥ तीर्थतोयं ततः पुण्यं महानद्यम्बुपावनम् । ततस्तोपि गङ्गाम्बु
पुण्यं पुण्यस्ततोऽम्बुधिः’ इति ॥ उष्णोदकमातुरविषयम् ॥ तथा—‘गोदावरी महापुण्या
चन्द्रे राहुसमन्विते । सूर्ये च राहुणा ग्रस्ते तमोभूते महामुने । नर्मदातोयसंस्पर्शं कृत-
कृत्या भवन्ति हि’ पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे—‘गावो नागास्तिला धान्यं रत्नानि
कनकं मही । संपदाय कुरुक्षेत्रे यत्फलं लभते नरः । तदिन्दुग्रहणेऽम्बोधौ स्नानाद्भवति
पद्मगुणम्’ ॥ तत्रैव सौरपुराणेऽम्बुधिसनानमुपक्रम्य ‘दानानि यानि लोकेषु विख्या-
तानि मनीषिभिः । तेषां फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः’ ॥ देवीपुराणे—‘गङ्गा
कनखलं पुण्यं प्रयागः पुष्करं तथा । कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे’ ॥ स्नाना-
संभवे स्मरणं वा कार्यम् । ‘स्मृत्वा शतकतुफलं दृष्ट्वा सर्वाघनाशनम् ॥ स्पृष्ट्वा गोमेध-
पुण्यं तु पीत्वा सौत्रामण्येर्लभेत् । स्नात्वा वाजिमखं पुण्यं प्राप्नुयादविचारतः । रविच-

ग्रहणं श्राद्धम् ।

न्द्रोपरागे च अयने चोत्तरे तथा’ इति मार्कण्डेयोक्तेः ॥ अत्र श्राद्ध-
माह ऋष्यशृङ्गः । ‘चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत् । तेनैव

सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै कर’ । भारते—‘सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने ।
अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पंके गौरिव सीदति’ ॥ विष्णुः—‘राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाच-
न्द्रतारकम्’ ॥ इदं चामात्रेण हेम्ना वा कार्यं न त्वत्नेन । ‘आपद्यन्ग्री तीर्थे च चन्द्र-
सूर्यग्रहे तथा । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धमथापि वा’ इति शातातपोक्तेरिति हेमा-
द्रिमाधवादयः ॥ अपरार्कस्तु—‘एतद्विजातीनां पाकाभावे द्रष्टव्यं तीर्थश्राद्धवत्’ ।
‘पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते’ । इति मुमन्तुक्तेः । ‘सैहिकेयो यदा सूर्य
ग्रस्ते पर्वसंधिषु । गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् । वृतेन भोजये-
द्विप्रान् घृतं भूर्मा समुत्सृजेत्’ इति वायवीयोक्तेश्चेत्याह ॥ विज्ञानेश्वरोप्याह ग्रहण-
श्राद्धे भोक्तुर्दापो दातुस्त्वभ्युदय इति । ‘मृतके मृतके भुङ्क्ते गृहीते शशिभास्करे । छायायां
हस्तिनश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत्’ इत्यापस्तम्बेन भोजननिषेधाच्च ॥ अयं च निषेधः
श्राद्धभोक्तुर्हस्तिच्छायासाहचर्यात् ॥ अत्र ग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैवामासक्रान्त्यादिनैमित्ति-
कानां सिद्धिः । ‘दाशिकालभ्ययोरपि’ इति कालादर्शोक्तेः ॥

अत्राशौचमध्येऽपि स्नानश्राद्धादि कार्यमेव । ‘मृतके मृतके चैव न दोषो राहु-
दर्शने । तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते’ । इति माधवीये वृद्धवसिष्ठोक्तेः ।

१ ‘त्रिदशाः स्पर्शसमये तृप्यन्ति पितरस्तथा । मनुष्या मध्यकाले तु मोक्षकाले तु राक्षसाः’
इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः । स्पर्शकाले करणीयमिति टीका ।

‘स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके’ इति व्याघ्रपादोक्तेश्च ॥ कालादर्शे अंगिराः-सर्वे वर्णाः सूतकेऽपि सूतके राहुदर्शने । स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीन् दानं शाठ्य-विवर्जितम् ॥ मदनपारिजातेऽप्येवम् ॥ तेन ‘स्नानमात्रं प्रकुर्वीत दानश्राद्धविवर्जितम् इति निर्मूलं वदन्तो गौडाः परास्ताः ॥ इयं च शुद्धिरविशेषान्मन्त्रदीक्षापुरश्चरणादिसर्व-स्मार्तकर्मविषया ॥ मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ रजस्वलायास्तु भार्गवार्चनदीपिकायां सूर्योदयनिबन्धे-‘न सूतकादिदोषोस्ति ग्रहे होमजपादिषु । ग्रस्ते स्नायादुदक्यापि तीर्थादुद्धृतवारिणा’ इति ॥ अत्र च ‘स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि ग्रहे रजस्वलकर्तव्यम् ।

रजस्वला । पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ।’ इत्यादि-मिताक्षरोक्तो विधिज्ञेयः । ग्रहणे रात्रावपि श्राद्धादि कार्यम् । ‘ग्रहणोद्वाहसंक्रान्ति-यात्रार्तिप्रसवेषु च । दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते’ । इत्यपराकं

ग्रहणे रात्रावपि श्राद्धविधिः । व्यासः-‘चन्द्रग्रहे तथा रात्रौ स्नानं दानं प्रशस्यते’ इति देवलोक्तेश्च ॥ यदा तु ज्योतिःशास्त्रगम्ये दिने चन्द्रग्रहो, रात्रौ च सूर्यग्रहस्तदा स्नानादि न कार्यम् । ‘सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा । तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्यादानं न च क्वचित्’ इति षट्त्रिंशन्मतात् ॥ ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ तु प्रयोगपारिजाते गोभिलः-‘दर्शं रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिक-

ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ । सुपस्थितम् । अन्नेनासंभवे हेम्ना कुर्यादामेन वा सुतः’ इति ॥ अत्र दर्शरविपितृसुतशब्दाः प्रदर्शनार्थाः । न्यायसाम्यात् ॥ तेन चन्द्रग्रहे-ऽपि सपिण्डादि वार्षिकमन्त्रादिना तद्दिन एव कार्यमिति मदनपारिजाते व्याख्या-तम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् ॥ तेन यानि ‘आमश्राद्धं प्रकुर्वीत माससंवत्सरादृते’ इति । ‘अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्वेम्ना वामेन न क्वचित्’ इति मरीचिलौगाक्ष्यादिवचना-नि, तानि ग्रहणदिनातिरिक्तविषयाणि ॥ निर्णयामृतेऽप्येवम् । यानि तु ‘ग्रहणात्तु द्वितीये ऽह्नि रजोदोषात्तु पञ्चमे’ । तथा-‘ग्रस्तोदये यदा चन्द्र प्रत्यब्दं समुपस्थितम् । तद्दिने चोपवासः स्यात् प्रत्यब्दं तु परेहनि’ । तथा-‘ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि । प्रत्यब्दं तु तदा कार्यं परेहन्येव सर्वदा । चन्द्रसूर्योपरागे च तथा श्राद्धं परेहनि’ इत्यादीनि वचनानि तानि महानिबन्धेषु काप्यनुपलम्भान्निर्मूलानि ॥ प्रत्युत पूर्वो-क्तनिबन्धेषु तद्दिन एव श्राद्धमुक्तिमित्यलम् ॥

ग्रहणादिसप्तदिनपर्यन्तं रामगोपालाद्यागमदीक्षोक्ता । शिवार्चनचन्द्रिका-यांज्ञानार्णवे ‘मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । ग्रहणाद्वापि देवेशि कालः सप्तदिनावधि’ इति ॥ रत्नसागरे-‘सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणि ॥ मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत्’ ॥ अत्र सूर्यग्रहणमेव मुख्यम् । ‘सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेपितं भवेत् । सूर्यग्रहणकालेन समो नान्यः कदाचन । न मासतिथिवारादि-

शोधनं सूर्यपर्वणि' इति तत्रैव कालोत्तरवचनात् । 'चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा
व्रतचारिणाम् । वनस्थस्य च या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्मसु' इति तत्रैव योगिनी-
तन्त्रे निषेधाच्च ॥

ग्रहणं च जन्मराश्यादौ निषिद्धम् । तदुक्तं ज्योतिषे—'त्रिषड्दशायोपगतं
नराणां शुभप्रदं स्याद्ग्रहणं रवीन्द्रोः । द्विसप्तनन्देषु सुमध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं कथितं
मुनीन्द्रैः' इति ॥ आय एकादश । नन्दा नव । इषुः पञ्च ॥ मदनरत्नेर्गर्गः—'जन्म-
सप्ताष्टरिः फाङ्गदशमस्थे निशाकरे । दृष्टोरिष्टप्रदो राहुर्जन्मक्षे निधनेऽपि च । रिः फं
द्वादशम् । अङ्का नव । निधनं सप्तमतारा ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—'यन्नक्षत्र-
गतो राहुर्गते शशिभास्करो । तज्जातानां भवेत्पीडा ये : शान्तिवर्जिताः' ॥ तत्रैव
पुराणान्तरे—'सूर्यस्य संक्रमो वापि ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे तस्य रोगो-
ऽथवा मृतिः ॥ तस्य दानं च होमं च देवार्चनजपौ तथा । उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छा-
न्तिर्भविष्यति ॥ स्वर्णेन वाथ पिष्टेन कृत्वा सर्पस्य चाकृतिम् । ब्राह्मणाय ददेत्तस्य न
रोगादिश्च तत्कृतः' ॥ जन्मनक्षत्रं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मनक्षत्रमित्युच्यते । जन्मदशमै-
कोनविंशतितारा इति केचित् । सर्पस्य तदाकारस्य राहोरित्यर्थः ॥ अद्भुतसागरे
भार्गवः—'यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते । राज्यभङ्गः सुहृन्नाशं मरणं चात्र
निर्दिशेत्' ॥ राज्यस्य नक्षत्रम् अभिषेकनक्षत्रमिति तत्रैव व्याख्यातम् ॥ भार्गवार्चन-
दीपिकायां ज्योतिःसागरे—'सौवर्णं कारयेन्नागं लेनाथ पलार्धतः । तदर्धेन तदर्धे-
न फणायां मौक्तिकं न्यसेत् । ताम्रपात्रे निधायथ घृतपुर्णे विशेषतः । कांस्ये वा कान्ति-
लोहे वा न्यस्य दद्यात्सदक्षिणम् । चन्द्रग्रहे तु रूप्यस्य बिम्बं दद्यात्सदक्षिणम् । नागं
रुक्ममयं सूर्यग्रहे । बिम्बं च हेमजम् । तुरंगरथगोभूमितिलमर्पिश्च काञ्च-
नम्' ॥ कालविवेकेऽपि—'सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं कांस्यभाज-
नम् । सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् । सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा स्वश-
क्तिः । उपरागभवक्लेशाच्छिदे विप्रायः कल्पयेत्' ॥ मन्त्रस्तु—'तमोमय महाभीमसोम-
सूर्यविमर्दन । हेमतारप्रदानेन मम शान्तिप्रदोभव । विधुंतुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दना-
च्युत । दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्गयात्' इति ॥

अत्र शान्तिरप्युक्ता हेमाद्रौ मात्स्ये—'यस्य राशिं समासाद्य भवेद् ग्रहणसंभवः ।
ज्ञानं तस्य प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् । चन्द्रोप' प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाच-
नम् । संपूज्य चतुरो विप्राञ्छुक्कुमाल्यानुलेपनैः । पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादकम् ।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सलिलान्वितान् । गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्धदगोकु-
लात् । राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् । पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं पञ्चत्वकं पञ्चपलवान् ।

१ सूर्यग्रहदीक्षायाः प्राशस्त्यपरामेदम् । अन्यथा ज्ञानार्णवधृतचन्द्रपदवैयर्थ्यापत्तेः ।

रोचनं पद्मकं शंखं कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् । शुक्तिस्फटिकतीर्थाम्बुसितसर्षपगुग्गुलून् ।
 मधुकं देवदारुं च विष्णुकान्तां शतावरीम् । बलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव च ।
 गजदन्तं कुङ्कुमं च तथैवोशीरचन्दनम् । एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्ववाहयेत्सुरान् ।
 सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।
 योसौ वज्रधरो देवः आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनः शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ।
 मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः । चन्द्रोपरागसंभूतामग्निः पीडां व्यपोहतु । यः
 कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः । यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ।
 रक्षोगणाधिपः साक्षान्नीलाञ्जनसमप्रभः । खड्गहस्तोतिभीमश्च ग्रहपीडां व्यपोहतु ।
 नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः । स जलाधिपतिर्देवो ग्रहपीडां व्यपोहतु । प्राण-
 रूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगप्रियः । वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु । यो-
 ऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः । चन्द्रोपरागकलुषं धनदोत्र व्यपोहतु । योसाविन्दु-
 धरो देवः पिनाकी वृषवाहनः । चन्द्रोपरागपापानि स नाशयतु शंकरः । त्रैलोक्ये
 यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्णुर्वरुद्राश्च दहन्तु मम पातकम् । एवमा-
 वाहयेद्देवान्मन्त्रैरेभिश्च वारुणैः । एतानेव तथा मन्त्रान्स्वर्णपट्टे विलेखयेत् । ताम्रपट्टेथ
 वालिख्य नववस्त्रे तथैव च । मस्तके यजमानस्य निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः । कलशान्
 द्रव्यसंगुक्तान्नानारूपसमन्वितान् । गृहीत्वा स्नापयेद्दृढं भद्रपीठोपरिस्थितम् । पूर्वैरेव तु
 मन्त्रैश्च यजमानं द्विजोत्तमः । अभिषेकं ततः कुर्यान्मन्त्रैर्वारुणसूक्तकैः । आचार्यं वरये-
 त्पश्चात्स्वर्णपट्टं निवेदयेत् । आचार्यदक्षिणां दद्याद्गोदानं च स्वशक्तितः । होमं वापि
 प्रकुर्वीत तिलैर्व्याहृतिभिस्तथा । दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम् । सूर्य-
 ग्रहे सूर्यनामयुक्तान्मन्त्रांश्च कीर्तयेत् । अनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत् । न तस्य
 ग्रहणे दोषः कदाचिदपि जायते २४' इति ग्रहणशान्तिः ।

भार्गवार्चनदीपिकायां ब्रह्मसिद्धान्ते- 'सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्यं स्वस्थं तैलान्बु-
 दर्पणैः । ग्रहणं गुर्विणी जातु न पश्येत् पटं विना ।' तथा

ग्रहणवीक्षणम् ।

मङ्गलकृत्येषु वेधविशेषो हेमाद्रौ- 'त्रयोदश्यादितो वर्जं दिनानां नव-
 कं ध्रुवम् । माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । प्रकारान्तरं तत्र-
 बोक्तम् 'द्वादश्यादितृतीयान्तो वेध इन्दुग्रहे स्मृतः । एकादश्यादिकः

मङ्गल वर्ज्यदिनानि ।

सौरे चतुर्थ्यन्तः प्रकीर्तितः । इदं च पूर्णग्रासे 'ज्यैहं खण्डग्रहे तयोः' इति तैत्तिरीयोक्तेः ॥
 इदं च 'ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वम्' इति नारदेन ग्रस्तास्ते विशेषोक्तेर्ग्रस्तास्तभिन्नग्रहण-
 परम् ॥ ज्योतिर्निबन्धे च्यवनः 'ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम् ।
 यावच्च रविणा भुक्त्वा भुक्तं भं दग्धकाष्ठवत् ।' अन्यानि चाग्नेयानि मण्डलान तत्फलं

१ ग्रहणपूर्वोत्तरदिनानीतिरामकल्पद्रुमः । दीपिकापि । खंडग्रहेत्वेतस्याः प्राक्पश्चाद्द्विदिननिधामिति ।

पुरश्चरणम्

वर्णविकारादिफलं च दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् ॥ पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—
‘चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः । स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं जपे-
न्मन्त्रं समाहितः । जपाद्दशांशतो होमस्तथा होमाच्च तर्पणम् । तर्पणस्य दशांशेन मार्ज-
नं कथितं किल । तत्रैव देवतारूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूज्य च । नमोन्तं मन्त्रमुच्चार्य तदन्ते
देवताभिधाम् । द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषिञ्चाम्यनेन तु । तोयैरञ्जलिना शुद्धैरोभिः सि-
ञ्चेत्स्वमूर्धनि । मार्जनस्य दशांशेन ब्राह्मणानपि भोजयेत् । जपोर्चापूर्वको होमस्तर्पणं
चाभिषेचनम् ॥ भूदेवपूजनं पञ्चप्रकारोक्ता पुरस्किया ।’ तथा ‘होमाशक्तो जपं कुर्या-
द्दोमसंख्याचतुर्गुणम् । एवंकृते तु मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा ।’

ग्रहणप्रसङ्गात् कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे प्रायश्चित्तमुच्यते । तत्रारुणस्मृतौ—‘प्रति-
कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे ग्रही कुरुक्षेत्रे न भूयः पुरुषो भवेत् । तथापि मनसः शुद्धयै प्रायश्चित्तं
प्रायश्चित्तम् । समाचरेत् । तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यादैन्दवेन समन्वितम् । सत्रेण वा यजे-
ताथ जपेद्वा लक्षसप्तकम् । वापीकूपतडागादिखननैर्विसृजेद्भनम्’ इति ॥ एतच्च ‘यद्गहि-
तेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति दानेन तपसैव च’ इति
ग्रहणेन्तारिते पूर्वसंक- मनुक्तेरुत्सर्गोत्तरं ज्ञेयमिति दिक् ॥ ग्रहणान्तरितस्य पूर्वसंकल्पितद्रव्य-
व्यतस्य द्वैगुण्यम् । स्य द्वैगुण्यं भवतीति शिष्टाः पठन्ति च । लघुब्रह्मवैवर्ते ‘दातव्यमिति
नो काश्यां वक्तव्यं कुत्रचित् क्वचित् । अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणं भवेत् ।
दर्शोत्तरं पर्वसु स्याच्छतं चन्द्रग्रहे भवेत् । सूर्यग्रहे सहस्रं तन्मरणेनन्तकं स्मृतम्’ इति ॥

अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अत्र केचिद्वैद्वत्तुल्या आहुः—ग्रहणस्य निमित्तत्वेन
तन्निश्चयस्य प्रयोजकत्वात् ज्योतिःशास्त्रादिना जातस्य ज्ञानस्य निमि-
त्तत्वे प्राप्तेऽपि ‘स्नानं दानं ततः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने । चन्द्रसूर्ये-
परागे तु यावद्दर्शनगोचरम्’ इतिजाबाल्यादिवचनेषु दृशिप्रयोगाच्चाक्षुषज्ञानस्यैवौप-
संहारन्यायेन निमित्तत्वम् । अन्यथा दृशौ लक्षणा स्यात् । तेन मेघाच्छादनेत्यादीनां
‘जन्मसप्ताष्ट’ इत्यादिनिषिद्धदर्शनानां च स्नानश्राद्धादौ नाधिकार इति ॥ कल्पतरु-
रप्याह—दर्शनशब्देन चाक्षुषज्ञानं गृह्यते न ज्ञानमात्रम् । अज्ञातस्य निमित्तत्वास्मत्त्वा-
न्निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभेन दर्शनपदवैयर्थ्यापत्तेः । तेन चाक्षुषधीयोग्यः कालः
पुण्यः । योग्यत्वं च प्रयत्नानपनेयचाक्षुषज्ञानप्रतिबन्धकराहित्यं तेन मेघच्छन्ने योग्य-
ताभावान्न स्नानादीति ॥ निर्णयामृतेप्येवम् ॥ तदेतत्तुच्छम् । यदि चाक्षुषज्ञानं
निमित्तं स्यात्तदा ‘सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा । तत्र स्नानं न कुर्वीत
दद्याद्दानं न च क्वचित्’ इतिवाक्यं व्यर्थं स्यात् । चाक्षुषज्ञानाभावेन प्राप्त्यभावात् ।
तत्पूर्वकत्वाच्च निषेधस्य ॥ नचेदं ग्रस्तास्तपरं सविचन्द्रयोस्तानन्तरं रात्रिदिवाग्रहत्वा-

दिनि वाच्यम् । तत्र पदस्य ग्रहपरत्वेऽधिकरणत्वायोगान्निमित्तपरत्वे च तद्ग्रहनिमित्त-
कस्त्रानादेरस्तात्प्रागप्यभावापत्तेः ॥ अथ तत्रेति रात्रिदिने उच्येते 'सा वैश्वदेवी इति-
बहुणभूते अपि । तत्र । तादृशमन्त्रलिङ्गाभावात् । तयोर्निमित्तत्वेऽधिकरणत्वे वाऽन्य-
प्रयुक्तस्नानाद्यभावापत्तेश्च ॥ किं च 'निकेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन । नोप-
रक्तं न वागिस्थं न मध्यं नभसो गतम्' इति मनुवचनं बाध्यते । 'दृष्टोरिष्टपदो राहुः'
इत्यादि च । न चात्र विहिते दर्शने निषेधाप्रवृत्तिवत् पर्युदसनीयतापि न युक्तेति
वाच्यम् । दर्शनस्यानुवादेन विधेयत्वाभावात् । एतच्चाग्रे वक्ष्यामः तत्त्वे वा विरुद्धत्रिक-
ट्यापत्तेः ॥ अस्तु सकृदर्शनविधानेन संकोच इति चेन्न ॥ 'मुक्तिं दृष्ट्वा ततः स्नायात्'
इति मुक्तिस्नानेपि चाक्षुषज्ञानस्य निमित्तत्वापत्तेः ॥ अस्तु किं नश्छिन्नमितिचेन्न ।
प्रस्तास्ते 'तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाभ्यवहरेच्छुचिः' इति दर्शनोत्तरं भोजनविधानादन्धस्य
पूर्ववेधकाल इव यावदर्शनं भोजननिषेधापत्तिः ॥ मध्येन्धीभूतस्य सुतरां यावच्छुः
प्राप्त्युपवासप्रसङ्गश्च । अथान्नलोलुपतया तत्र ज्ञानमात्रं विवक्ष्यते, तत्पूर्वमपि निर्लज्जेन
स्वीक्रियताम् ॥ एतेन यत् केनचिदुक्तं 'स्पर्शस्नानं च मुक्तिस्नानं यस्य दर्शनं तेनैव कार्यं
नान्येन । क्त्वाप्रत्ययेन समानकर्तृकत्वावगतेः' इति, तन्निरस्तम् ॥ का तर्हि तस्य
गतिः । दृष्टेरुद्देश्यविशेषणत्वात् ग्रहैकत्ववदविवक्षयार्थतः सिद्धज्ञानमात्रानुवादत्वे सर्वं
मुस्यम् ॥ अंगुलाद्यनादेऽयग्रहव्यावृत्त्या वा दर्शनस्यार्थवत्त्वम् ॥ न चोक्तयोग्यतापि
साध्वी दर्शनोत्तरं मेघच्छन्ने योग्यताभावापत्त्या दानाद्यभावापत्तेः ॥ तेन तत्तद्रेखा-
वच्छेदेन ज्योतिःशास्त्राऽऽवेद्यत्वमेव योग्यता ॥ किं च 'रजसो दर्शने नारी त्रिरात्रम-
शुचिर्भवेत्' इत्यत्राप्यन्धस्त्रीणामाशौचाभावप्रसङ्गः ॥ यत्तु वर्धमानेनोक्तं ज्ञानो-
त्तरं त्वधिकारो न ज्ञानकाले । स्नानकाले ज्ञानाभावात् । एवं दर्शनोत्तरं मुक्तिपर्यन्त-
मस्त्येव योग्यतेति तदपि प्रतिज्ञामात्रम् ॥ किं च प्रस्तास्ते 'तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाऽ-
भ्यवहरेच्छुचिः' इत्यादिवाक्यवैयर्थ्यापत्तिः । चाक्षुषज्ञानान्यथानुपपत्त्यैवार्थादुदये
स्नानसिद्धेः ॥ ननु मुक्तिस्नाने शास्त्रीयमेव ज्ञानं निमित्तं, न चाक्षुषम् 'चन्द्रसूर्यग्रहे
नाऽऽद्यात्तस्मिन्नहनि पूर्वतः । राहोर्विमुक्तिं विज्ञाय स्नात्वा कुर्वीत भोजनम् । इति
वृद्धगौतमेन विज्ञायेति ज्ञानमात्रोक्तेः ॥ यत्तु 'मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा
ततः परम्' इति तदपि ज्ञानमात्रपरम् । 'मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृश्यते ॥
आकलय्य तु तं कालं स्नात्वा मुञ्जीत वाग्यतः' इति गौडनिबन्धे वचनात् ॥ मैवम् । अज्ञा-
तस्य निमित्तत्वाभावेन निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभे वाक्यवैयर्थ्यात् । प्रस्तास्तेपि

१ उपरत्वेक्षणस्यासिद्धेः इति टीका । २ येन 'मा हिंस्यात्' इत्यस्याग्निषोमीयादिविधिनेव प्रकृते
दर्शनविधिना निषेकस्य प्राप्तगोचरत्वं स्यात् तदेव तु नेत्यर्थः इति टीका ॥ ३ ॥ विधेयत्वे वा उद्दे-
श्यत्वा अनुवादत्वमुक्त्यन्तरूपविरुद्धत्रिकेत्यर्थः ।

तदापत्तेश्च । किञ्च दर्शनं पुंसो विशेषणमुपलक्षणं वा ॥ नाद्यः । दर्शनाव-
च्छिन्ने काले स्नानतुलादानादेर्बाधात् । दर्शनविच्छेदे कृतमपि स्नानादि न ग्रहण-
निमित्तं स्यात् ॥ नान्त्यः ॥ 'यावद्दर्शनगोचरः' इति यावत्पदवैयर्थ्यप्रसङ्गात् ।
दृष्टग्रहस्य ग्रहणोत्तरमपि स्नानाद्यापत्तेश्च ॥ ज्ञानपक्षेऽप्येषदोषस्तुल्य इति चेत् मूर्खोऽसि ।
यदि ज्ञानवाचकं पदं श्रूयेत, ततस्तस्यान्वयो विचार्येत ॥ दृशिस्तु श्रूयत इति वैषम्यम् ॥
कथं तर्हि ज्ञानं लभ्यते । 'संक्रान्तौ स्नायात्' इतिवदर्थोदित्यवेहि ॥ अश्रुतत्वादेव नोद्दे-
श्यविशेषणविवक्षाकृतो वाक्यभेदोऽपि ॥ अस्तु तर्हि दृष्टं ग्रहणं निमित्तमिति चेत् प्रस्ता-
स्तेऽस्तोत्तरं स्नानापत्तेः ॥ विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदाच्च । तवाप्येतत्तुल्यमिति चेत् 'यावद्-
दर्शनगोचरः' इति वचनेन तन्निषेधात् ॥ तव त्वन्यग्रह इव प्रस्तास्तेऽपि स्यात् ॥ किञ्च
दर्शनस्य विधिरनुवादो वा । आद्ये ग्रहणोद्देशेन दर्शनविधिः, न तु दर्शनविशिष्टस्नान-
विधिः, उत स्नानोद्देशेन दर्शनविधिः ॥ नाद्यः ॥ ग्रहोद्देशेन स्नानविधाने दर्शन-
विधाने च वाक्यभेदात् ॥ एतेन द्वितीयोऽपि परास्तः ॥ न तृतीयः । स्नानस्याप्राप्तेः ।
दर्शनस्य निमित्तत्वेनाविधेयत्वाच्च ॥ अन्यथा सोमवमनादौ प्रसञ्जनविधिः केन वार्येत ॥
अथ नानावाक्येषु कचिद्दर्शनविशिष्टस्नानविधिः कचिच्च प्राप्तं दर्शनं निमित्तीकृत्य स्नान-
मात्रविधिः । तन्न । स्नानस्य प्रधानस्य प्राप्तौ तदङ्गदर्शनप्राप्तिः । तस्यां च निमित्ते सति
स्नानमित्यन्योन्याश्रयात् । एवं दर्शनविधौ सति तन्निमित्तकस्नानविधिः । सति च प्रधा-
नस्नानविधौ तदङ्गदर्शनविधिः । एवमधिकारे प्रयोजकत्वे च योज्यम् ॥ उक्तार्थपूर्वकाल-
त्वाविधौ चास्त्येव वाक्यभेदः । अन्यथा स्नानोत्तरमपि दर्शनमङ्गं स्यात् ॥ न द्वितीयः ॥
तत्रापि दर्शनग्रहयोर्निमित्तत्वे स्नानद्वयापत्तेः । दर्शनावृत्तौ नैमित्तिकावृत्तिप्रसङ्गात् ।
दर्शनविशिष्टग्रहस्य विशिष्टस्यानुवादे वाक्यभेदापत्तेः ॥ नच हविरार्तिवद्विशिष्टं निमित्तमिति
वाच्यम् ॥ आर्तिमात्रस्य हि निमित्तत्वे निर्निमेषाद्यार्तेरपि तत्त्वापत्तेर्नैमित्तिकत्वभङ्गाद्युक्तं
विशिष्टोद्देशत्वम् ॥ इह तु ग्रहणमात्रस्य निमित्तत्वे न काचित् क्षतिः ॥ तस्माद्दर्शनवाक्यानां
प्रस्तास्तविषयत्वादनान्यग्रहपरत्वाद्वा ज्ञानस्य चार्थतः प्राप्तेस्तदेव निमित्तम् तेन मेघा-
द्याच्छादनेऽन्धादेश्च स्नानादि भवत्येवेत्यलं वेदबाह्यैः सल्लापेन ॥ इति ग्रहणनिर्णयः ॥

अथ समुद्रस्नानम् ॥ आश्वलायनः ॥ 'समुद्रे पर्वसु स्नायादमायां च विशे-

समुद्रस्नानम् ।

षतः । पापैर्विमुच्यते सर्वैरमायां स्नानमाचरन् । भृशुभौमदिने स्नानं
नित्यमेव विवर्जयेत् ॥ भारते 'अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पृष्टव्यौ
कदाचन । अश्वत्थं मन्दवारं तु सागरं पर्वणि स्पृशेत्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये स्कांदि-
'पुनाति पर्वणि स्नानात्तर्पणैः सरितां पतिः । कदाचिदापि नैवात्र स्नानं कुर्यादपर्वणि' ।
अस्यापवादस्तत्रैव प्रभासखण्डे—'पर्वकाले च संप्राप्ते नदीनां च समागमे । सेतु-
बन्धे तथा सिन्धौ तीर्थेष्वन्येषु संयतः । एवमादिषु सर्वेषु मध्येन्ये तु स्वकर्मणि' ॥
तथा 'विना मंत्रं विना पर्वं धुरकर्म विना नरैः । कुशाग्रेणापि देवेशि न स्पृष्टव्यौ

महोदधिः' ॥ तथा 'न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्मणि' ॥ तद्विधिश्च तत्रैव
 'पिप्पलादसमुत्पन्ने कृत्ये लोकभयंकरे । पाषाणस्ते मया दत्त आहारार्थे प्रकल्प्यताम्'
 इति पाषाणं प्रक्षिप्य 'विश्वाची च घृताची च विश्वयोने विशांपते । सांनिध्यं कुरु मे
 देव मागरे लवणाम्भसि । नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपांपते । नमो जलधिरूपाय
 नदीनां पतये नमः । नमस्ते जगदाधार शंखचक्रगदाधर । देव देहि ममानुज्ञां तव
 तीर्थनिषेवणे । त्रितत्त्वात्मकमीशानं नमो विष्णुमुमापतिम् । सांनिध्यं कुरु देवेश सागरे
 लवणाम्भसि' । 'अग्निश्च योनिरनिलश्च देहे रेतोधा विष्णुरभितस्य नाभिः । एत-
 द्ब्रुकन्पाण्डवं सत्यवाक्यं ततोऽङ्गाहेत पतिं नदीनाम्' इति भारतीकृतमन्त्रान् पठित्वा
 विधिवत्स्नात्वा 'सर्वरत्नो भवाञ्श्रीमान् सर्वरत्नाकरो यतः । सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहा
 णार्घ्यं महोदधे' । इत्यर्घ्यं दत्त्वा तर्पयेत् ॥ यथोक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे
 'पिप्पलादं विकष्वं च कृतान्तं जीविकेश्वरम् । वसिष्ठं वामदेवं च पराशरमुमापतिम् ।
 वाल्मीकिं नारदं चैव वालखिल्यांस्तथैव च । नलं नीलं गवाक्षं च गवयं गन्धमादनम् ।
 जाम्बवन्तं हनूमन्तं सुग्रीवं चाङ्गदं तथा । मैन्दं च द्विविदं चैव ऋषभं शरभं तथा । रामं
 च लक्ष्मणं चैव सीतां चैव यशस्विनीम् । एतांस्तु तर्पयेद्विद्वाञ्जलमध्ये विशेषतः ।
 व्याब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमेवाभिगच्छ-
 नु' इति ॥

इति श्रीमीमांसकनारायणभट्टसूरिसूनुसामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते
 निर्णयसिन्धौ प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥



श्रीः ।

अथ निर्णयसिन्धौ ।

द्वितीयः परिच्छेदः ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ संवत्सरप्रतिपदमारभ्य 'तिथिकृत्ये च कृष्णादि व्रते शुक्लादिमेव च ॥ विवाहादौ च सौरादि मासं कृत्ये विनिर्दिशेत्' इति ब्राह्मं प्रायशोनुसृत्य तिथिनिर्णयस्तत्कृत्यं च निरूप्यते । तत्र मीनसंक्रांतौ पश्चात् षोडशं घटिकाः पुण्य-
मीनसंक्रान्तिः । कालः । रात्रौ तु निशीथात्प्राक् परतश्च संक्रमे पूर्वोत्तरादिनार्धं पुण्यम् ॥ निशीथे तु दिनद्वयं पुण्यमिति सामान्यनिर्णयादव-
सेयम् ॥

अथ तिथिनिर्णयः ॥ तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि वत्सरारंभः । तत्रौदयिकी ग्राह्या ।
चैत्रशुक्लप्रतिपत् । 'चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि ॥ शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति' । इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः ॥ दिनद्वये तद्व्याप्ताव-
व्याप्तौ वा पूर्वैव । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—'चैत्रसितप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः । उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगुलेपि पूर्वः स्यात् । यस्माच्चैत्रसितादेरुदयाद्गानोः प्रवृत्तिर-
ब्दादेः' इति ॥ 'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च ॥ पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिप-
त्सर्वदा बुधैः' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ 'चैत्रमासस्य या शुक्लप्रथमा प्रतिपद्भवेत् ॥ तद्वि ब्राह्मणः कृत्वा सोपवासस्तु पूजनम् । संवत्सरमवाप्नोति सौख्यानि भृगुनन्दन' इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मोक्तेः ॥ यदा तु चैत्रो मलमासो भवति तदा दैवकार्यस्य तत्र निषिद्धत्वाच्छुद्धे मासि संवत्सरारम्भः कार्य इति केचिदाहुः ॥ निष्कर्षस्तु 'शुक्लादे-
र्मलमासस्य सौतर्भवति चोत्तरः ।' इत्यादिवचनादग्रिमवर्षान्तःपातान्मलमासमारभ्यैव वर्षप्रवृत्तेः शुक्रास्तादाविव मलमास एव कार्य इति वयं प्रतीमः ॥ ननु शुक्रास्तादौ चैत्रशुक्लप्रतिपदन्तरस्याभावाद्युक्तं तन्मध्य एवानुष्ठानम् । मलमासे तु शुद्धप्रति-
पदन्तरस्य संभवात् । शुद्ध एव वत्सरारम्भो युक्त इति चेत् भ्रांतोसि । नहि प्रतिपदन्तरसत्त्वं प्रयोजकं द्विःकरणापत्तेः वर्षद्वयापत्तेश्च । अपि तु वत्सरारंभः स तु मलमासेपीत्युक्तं प्राक् । नहि 'चैत्रशुक्लादिर्मलमासः पूर्ववर्षेन्तर्भवति' इति ब्रह्म-
णोपि सुवचम् ॥ तत्र तैलाभ्यङ्गो नित्यः । 'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते' इति वसिष्ठोक्तेः ॥

१ वर्षेशद्वयापत्तेः । वर्षशब्दत्वापत्तेः इति प्राचीनपुस्तके ।

१: अस्यामेव नवरात्रारम्भः ॥ तदुक्तंमार्कण्डेयपुराणे-‘शरत्काले महापूजा-
क्रियते या च वार्षिकी’ इति ॥ तत्र परयुतैव ग्राह्या । ‘अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्च-
ण्डिकार्चने । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता’ इति देवीपुराणात् ॥
‘तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन । कार्तिकाश्वयुजोर्मासोश्चैत्रे मासि च
भारत’ इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः ॥ पराः परयुताः । अत्र विशेषः । पारणानिर्णयश्च
शारदन्वरात्रे वक्ष्यते । अत्र प्रपादानमुक्तमपरार्के भविष्ये-‘अतीते फाल्गुने मासि
प्राप्ते चैत्रमहोत्सवे । पुण्येद्वि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत्’ । इत्युपक्रम्य-‘ततश्चो-
त्तमर्ज्यद्विद्वान्मन्त्रेणानेन मानवः । प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता । अस्याः
प्रदानात्पितरस्तुप्यन्तु हि पितामहाः । अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम्’ इति ॥
तथा-‘प्रपां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना । प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः ।
ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः’ । तत्र मन्त्रः-‘एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्म-
विष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः’ ॥ “अनेन विधिना
यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति । प्रपादानफलं सोपि प्राप्नोतीह न संशयः” ॥ इति ।

चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुतां संपूज्य दोलोत्सवं कुर्यात् । तदुक्तं
निर्णयामृते देवीपुराणे-‘तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम् ।
कुंकुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः ॥ स्रगन्धधूपदीपैश्च दमनेन विशे-
षतः । आन्दोलयेत्ततो वत्सं शिवोमातुष्टये सदा’ इति ॥ अत्र चतुर्थीयुता ग्राह्या । ‘मुहूर्त-
मात्रमत्वेपि दिने गौरीव्रतं परे’ इति माधवोक्तेः ॥ अत्रैव सौभाग्यशयनव्रतमुक्तं
मात्स्ये-‘वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिये । सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यं पुत्र-
मुल्लेप्सुभिः ।’ इति तत्रापि परयुतैव ॥

इयं च मन्वादिरेपि । अत्रैव प्रसङ्गात्सर्वमन्वादिनिर्णय उच्यते ॥ ताश्चोक्ता दी-
पिकायाम-‘तिथ्यग्नीं न तिथींस्तिथ्यंशे कृष्णे भोजनलौग्रहः ।
तिथ्यैर्को न शिवोऽश्वोऽमीं तिथी मन्वादयो मधोः’ इति ॥ तिथिः
पूर्णिमा । अग्निस्तृतीया नेति वैशाखे नास्तीत्यर्थः । आशा दशमी । कृष्णेभः कृष्णा-
ष्टमी । अनलस्तृतीया ग्रहो नवमी । अर्का द्वादशी । नेति मार्गशीर्षे नास्तीत्यर्थः ।
शिव एकादशी । अश्वः सप्तमी । मधोश्चैत्रादारभ्यैता मन्वादय इत्यर्थः ॥ अत्र मूल-
वचनानि हेमाद्र्यादेर्ज्ञेयानि ॥ एताश्च मन्वादयो हेमाद्रिमते शुक्लपक्षस्थाः पूर्वा-
ह्निकाः कृष्णपक्षस्थाः अपराह्निका ग्राह्याः । ‘पूर्वाह्णे तु सदा ग्राह्याः शुक्ला मनुयुगा-
दयः । देवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्निकाः’ इति गारुडवचनात् ॥ ‘अथो
मन्वादि-युगादिकर्मतिथयः पूर्वाह्निकाः स्युः सिते विज्ञेया अपराह्निकाश्च बहुले’ इति
दीपिकोक्तेश्च । कालादर्शे त्वपराह्न्यापित्वं मन्वादिषूक्तं तत्त्वयुक्तमिति युगादि-

निर्णये वक्ष्यामः । अत्र च श्राद्धमुक्तं मात्स्ये—‘कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु । हायनानि द्विसाहस्रं पितृणां तृप्तिदं भवेत्’ इति । मन्वादिश्राद्धं च मलमासे सति मासद्वयेऽपि कार्यम् । ‘मन्वादिकं तैथिहिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च’ इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ॥ अत्र पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् । तदुक्तं कालादर्शे—‘विषुवायनसंक्रान्तिमन्वादिषु युगादिषु । विहाय पिण्डनिर्वापं सर्वं श्राद्धं समाचरेत्’ इति । मन्वादिश्राद्धं नित्यम् । अकरणे प्रायश्चित्तदर्शनात् । तदुक्तमृग्विधाने—‘त्वं भुवः प्रतिमन्त्रं च शतवारं जले जपेत् । मन्वादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः ॥’ इति । एवं यत्र प्रायश्चित्तवीप्सादिदर्शनं तानि षण्णवतिश्राद्धानि नित्यानि ॥ तानि तु—‘अमायुगमनुक्रान्तिधृतिपातमहालयाः । अन्वष्टक्यं च पूर्वद्युः षण्णवत्यः प्रकीर्तिताः’ इत्युक्तानि ॥ चकारादष्टकाग्रहणम् ॥

“द्वासप्ततिः पुत्रकाम्यानि श्राद्धानि । ‘षित्रोः क्षये त्वमावस्या ऋतुसंक्रान्त्यनन्तकाः । अपरपक्षे नवात्रे द्वे मन्वादिषु युगादिषु ॥ आषाढी कार्तिकी माघी वैशाखीत्यनन्तकाः । २ । १२ । ६ । १२ । १६ । २ । १४ । ४ । ४ । मिलित्वा द्वासप्ततिः”

दशावतारजयन्त्यः ।

चैत्रशुक्लतृतीयैवमत्स्यजयन्ती ॥ अत्रैव प्रसंगादशावतारजयन्त्यो निर्णीयन्ते । तत्र पुराणसमुच्चये—‘मत्स्योभूद्भुतभुग्दिने मधुसिते

कूर्मो विधौ माधव वाराहो गिरिजासुते नभसि यद्भूते सिते माधवे । सिंहो भाद्रपदे सिते हरितिथौ श्रीवामनो माधवे रामो गौरितिथावतः परमभूद्रामो नवम्यां मधोः ॥ कृष्णोऽष्टम्यां नभसि सितपरे चाश्विने यद्दशम्यां बुद्धः कल्की नभसि समभूच्छुक्लषष्ठ्यां क्रमेण ॥ अहो मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे । कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे’ इति । केचित्तु स्फुटाञ्छ्लोकान् पठन्ति । तथा—‘चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक् ॥ ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः ॥ चैत्रे कृष्णे नवम्यां तु हरिवाराहरूपधृक् ॥ नारसिंहश्चतुर्दश्यां वैशाखे शुक्लपक्षके ॥ मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां वामनो हरिः ॥ राघवश्चतुर्तीयायां रामो भार्गवरूपधृक् ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु रामो दशरथात्मजः ॥ नभस्ये तु द्वितीयायां बलभद्रोऽभवद्भारिः ॥ श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां कृष्णोऽभूलोकरक्षकः ॥ ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयायां बौद्धः कल्की भविष्यति’ इति ॥ कौङ्कुमास्तु—‘वराहपुराणस्थानि वाक्यानि पठन्ति—‘आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यां महातिथौ । जयन्ती मत्स्यनाम्नीति तस्यां कार्यमुपोषणम् ॥ नभोमासि तृतीयायां हरिः कमठरूपधृक् ॥ नभस्यशुक्लपञ्चम्यां वराहस्य जयन्तिका ॥ वैशाखे तु चतुर्दश्यां नृसिंहः समपद्यत ॥ मासि भाद्रपदे शुक्लैकादश्यां वामनो हरिः ॥ वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां भृगुद्बहः । चैत्रे नवम्यां रामोऽभूत्कौसल्यायां परः पुमान् ॥ श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां वासुदेवो जनार्दनः ॥ पौषशुक्ले तु सप्तम्यां कुर्याद्वैद्वस्य पूजनम् ॥ माघशुक्लतृतीयायां कल्किनः पूजनं हरेः ॥ प्रातःप्रातस्तु मध्याह्ने सायंसायं तथा निशि ॥ मध्याह्ने

मध्यरात्रे च सायं प्रातरनुक्रमात्' इति । तदत्र समूलत्वनिर्णये सति कल्पभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या ॥ एताश्च तदुपासकानां नित्याः । अन्येषां तु काम्याः ॥ जन्माष्टम्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः ॥

चैत्रशुक्लपञ्चमी कल्पादिः । तदुक्तं हेमाद्रौ मात्स्ये । 'ब्रह्मणो या दिन-
स्यादिः कल्पादिः सा प्रकातिता ॥ वैशाखस्य तृतीया या कृष्णा या
चैत्रशुक्लपञ्चमी । फाल्गुनस्य च ॥ पञ्चमी चैत्रमासस्य तथैवांत्या तथापरा ॥ शुक्ला त्रयो-

दशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी ॥ नवमी मार्गशीर्षस्य सप्तैताः संस्मराम्यहम् ॥
कल्पानामादयो ह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः' ॥ अत्र सर्वोपि निर्णयो मन्वादिवज्ज्ञेयः ।
हेमाद्रौ ब्राह्मे- 'शुक्लायामथ पञ्चम्यां चैत्रे मासि शुभानना ॥ श्रीब्रह्मलोकान्मानुष्यं
संप्राप्ता केशवाज्ञया ॥ अतस्तां पूजयेत्तत्र यस्तं लक्ष्मीर्न मुञ्चति' ॥

चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः ॥ तत्र नवमीयुता ग्राह्या । 'अष्टमी नवमी-
युक्ता नवमी चाष्टमी युता ।' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ अत्र भवानीया-
चैत्रशुक्लाष्टमी । त्रोक्ता काशीखण्डे- 'भवानीं यस्तु पश्येत् शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः ॥

न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत्' ॥ इति अत्रैवाशोककलिकाप्राशनमुक्तं
हेमाद्रौ लैङ्गे- 'अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ॥ चैत्रे मासि सितेष्टम्यां न ते
शोकमवाप्नुयुः' ॥ प्राशनमंत्रस्तु- 'त्वामशोकवराभीष्टं मधुमाससमुद्भवम् ॥ पिबा-
मि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुरु' इति । अत्र विशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः-
'पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी । प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत्'
इति ॥ तिथितत्त्वे कालिकापुराणे- 'चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः ॥
स्नायाद्धौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ चैत्रं तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमा-
नसः ॥ लौहित्यतोये यः स्नायात्स कैवल्यमवाप्नुयात्' ॥ लौहित्यो ब्रह्मपुत्रः ॥ मन्त्रस्तु
ब्रह्मपुत्र महाभाग शन्तनोः कुलसम्भव ॥ अमोघगर्भसंभूतं पापं लौहित्य मे हर' ॥

चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी । तदुक्तमगस्त्यसंहितायाम् । 'चैत्रे नवम्यां प्राक्-
चैत्रशुक्लनवमी । पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ ॥ उदये गुरुगौरांशोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥

मेष पूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये ॥ आविरासीत्स कलया कौसल्यायां
परः पुमान् ॥ तस्मिन् दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा ॥ तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो
मुवि' ॥ इति इयं च मध्याह्नयोगिनी ग्राह्या । 'चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ॥ सैव
मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्' इति तत्रैवोक्तेः ॥ तथा- 'चैत्रमासे नवम्यां तु जातो
रामः स्वयं हरिः ॥ पुनर्वसुवृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥ श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसु-
खप्रदायिका' ॥ तथा- 'केवलापि सदोपोष्या नवमीशब्दसंग्रहात् ॥ तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः
कार्यं वै नवमीव्रतम्' ॥ पूर्वद्युरेव मध्याह्नयोगे कर्मकालव्याप्तेः सैव ग्राह्या । दिनद्वये

मध्याह्नव्याप्तौ तदभावे वा पूर्वदिने पुनर्वस्वक्षयुक्तामपि त्यक्त्वा परैव कार्या ॥ तदुक्तं माधवीयेऽगस्तिसंहितायाम्—‘नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः । उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम्’ इति । अष्टमीविद्धा सक्तृक्षापि नोपोष्येति माधवः । रामार्चनचंद्रिकायामपि—‘विद्धैव चेदक्षयुक्ता व्रतं तत्र कथं भवेत् ॥ विद्धा निषिद्ध-श्रवणान्नवमी चेति वाक्यतः ॥ वैष्णवानां विशेषात्तु तत्र विष्णुपरैरपि ॥ दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः ॥ तदन्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम्’ इति । अत्र ‘दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्’ इति ‘तदन्येषाम्’ इति च वदन् यदा प्रातस्त्रिमुहूर्ता नवमी दशमी च क्षयवशात् सूर्योदयात् प्रागेव समाप्यते तदा स्मार्तानां तत्रैव एकादशीनिमित्तोपवासात् नवमीव्रतांगपारणालोपः स्यात् । अतोष्टमीविद्धैव स्मार्तैः कार्या । वैष्णवानां त्वरुणोदयविद्धैकादश्या हेयत्वान्न पारणालोपप्रसङ्गः इति द्वितीयैव तैः कार्येति सूचयति ॥ ‘दशमीवृद्धचभावेष्टमीविद्धाया एव मध्याह्नव्यापित्वे क्षये च वैष्णवैरपि विद्धैवोपोष्या’ इत्यर्थ-सिद्धम् ॥ इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन काम्यं नित्यं च तदुक्तं हेमाद्रावगस्तिसंहितायाम् ‘उपोषणं जागरणं पितृनुद्दिश्य तर्पणम् । तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः ॥ सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्येकसाधनः । अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । पूज्यः स्यात्सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः ॥ यस्तु रामनवम्यां तु ङ्क्ते मोहाद्विमृढधीः ॥ कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ॥ तथा—“अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ॥ व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभागभवेत् ॥ प्राप्ते श्रीराम-नवमीदिने मर्त्यो विमृढधीः ॥ उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते” ॥ अत्र केचित् ‘तदुपासकानामेवेदं नित्यं न त्वन्येषाम्’ इत्याहुः । अन्ये तु—अकरणे दोषश्रवणात् ‘तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम्’ इति पूर्वोक्तवचनाच्च जन्माष्टम्यादिवदिदमपि सर्वेषां नित्यम् । अन्यथा जन्माष्टम्यादावपि तदुपासकानामेव नित्यतां वक्तुः को वारयिता इत्याहुः ॥

अत्र विशेषो हेमाद्रावगस्त्यसंहितायाम्—‘आचार्यं चैव संपूज्य वृणुयात्प्रार्थयेन्निशि ॥ श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येहं द्विजोत्तम ॥ भक्त्याचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोसि त्वमेव च ॥’ तथा—‘स्वगृहे चोत्तरे देशे दानस्योज्ज्वलमण्डपम् ॥ शंखचक्रहनुमद्भिः प्राग्द्वारे समलंकृतम् ॥ गरुत्मच्छाङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलंकृतम् ॥ गदाखड्गगदैश्चैव पश्चिमे सुविभूषितम् ॥ पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेर्यां समलंकृतम् ॥ मध्ये हस्तचतुष्का-ढ्यवेदिकायुक्तमायतम् ॥ ततः संकल्पयेद्देवं राममेव स्मरन्मुने ॥ अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः ॥ उपास्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि ॥ इमां स्वर्णमयीं राम-प्रतिमां च प्रयतनतः ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते ॥ प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि मे ॥ अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च ॥ ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमाव्रतः ॥ निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामाङ्कस्थितजानकीम् ॥ विभ्रती

दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां महामुने ॥ वामेनाधःकरेणारादेवीमालिङ्ग्य संस्थिताम् ॥ सिंहासने राजनेत्र पलद्भयविनिर्मिते ॥ तथा-‘अशक्तो यो महाभाग स तु वित्तानुसारतः ॥ पले-
नार्धतदर्धार्धतदर्धार्धेन वा मुने ॥ सौवर्णे राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम् ॥ पार्श्वे भर-
तशत्रुघ्नौ धृतच्छत्रकराबुभौ ॥ चापद्भयसमायुक्तं लक्ष्मणं चापि कारयेत् ॥ दक्षिणांगे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ॥ मातुरंकगतं राममिन्द्रनीलसमप्रभम् ॥ पञ्चामृतस्नानपूर्वं संपूज्य विधिवत्ततः’ ॥ कौसल्यामन्त्रस्तु-‘रामस्य जननी चासि रामरूपमिदं जगत् । अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोस्तु ते ॥ नमो दशरथायेति पूजयेत्पितरं ततः’ ॥ अत्र दशावरणपञ्चावरणौदिपूजाऽन्यत्र ज्ञेया । ‘अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥ पवित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितो नय ॥ पुष्पांजलिं पुनर्दत्त्वा यामेयामे प्रपूजयेत् ॥ दिवैवं विधिवत्कृत्वा गत्रौ जागरणं ततः । ततः प्रातः समुत्थाय स्नानसंध्यादिकाः क्रियाः ॥ समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ पूर्वोक्तपद्मकुण्डे वा स्थण्डिले वा समाहितः ॥ लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरं ततः ॥ साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः । ततो भक्त्या सुसंतोष्य आचार्यं पूजयेन्मुने ॥ ततो रामं स्मरन् दद्यादेवं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ इमां स्वर्णमयीं रामप्र-
तिमां समलंकृताम् ॥ चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोहं राघवाय ते ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये-
तुष्टो भवतु राघवः । इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां भुवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः’ इति ॥ इयं मलमासे न कार्या । ‘सुजप्तमप्यजप्तं स्यान्नोपवासः कृतो भवेत्’ इति । ‘न कुर्यान्मलमासे तु महादानव्रतानि च’ । इति च माधवीये संप्रह्वचनात् ॥ ननु रामनवमीव्रतस्य नित्यत्वादेकादशीवन्मलमासेऽपि कर्तव्यता स्यादिति चेत्-अत्र ब्रूमः ॥ नैकादश्युपवासस्य व्रतत्वेन प्राप्तिः । किंतु ‘एका-
दश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि’ इत्यादिनिषेधस्य मलमासेऽपि पालनीयत्वात् । कृष्णैकादश्यां पुत्रवृद्धिण इवार्थादुपवासः प्रसज्यते । न त्विह तथेति व्रतत्वेन प्राप्ति-
र्वाच्या ॥ सा च निषिद्धेत्यप्रसङ्गः । ‘स्पष्टमासविशेषाख्या विहितं वर्जयेन्मले’ इति निषेधाच्च ॥ एवं जन्माष्टम्यादावपि बोद्धव्यम् ॥ इति रामनवमी ॥

चैत्रशुक्लैकादश्यां दोलोत्सव उक्तो ब्राह्मे-‘चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां
तु वैष्णवैः । आंदोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः’ इति ॥
चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः । ‘द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां
दमनोत्सवः । बौधायनादिभिः प्रोक्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम्’ इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः ।
‘ऊर्जे व्रतं मधौ दोला श्रावणे तन्तुपूजनम् ॥ चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः’ ॥

इति तत्रैव पाद्मवचनाच्च ॥ शिवभक्तादिभिस्तु चतुर्दश्यादौ कार्यम् ।
 चैत्रशुक्लादशी । 'तत्र स्यात्स्वीयतिथिषु बह्व्यादेर्दमनार्पणम्' इति तत्रैवोक्तेः ॥ ज्योतिः-
 प्रकाशेऽपि—'स्वस्वदेवप्रतिष्ठायां मन्त्रसंग्रहणे तथा ॥ पवित्रदमनारोपे ग्राह्या तत्तत्ति-
 थिर्बुधैः ॥' तिथयस्तु—बह्विर्विरिञ्चिर्गिरिजा गणेशः फणी विशाखो दिनकृन्महेशः ॥
 दुर्गान्तको विश्वहरिः स्मरश्च शर्वः शशी चेति तिथीषु पूज्याः' इत्युक्ताः ॥

अथागमोक्तदीक्षावतो दमनारोपणविधिः । रामार्चनचन्द्रिकायाम्—तत्रै-
 कादश्याम् । 'क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो । न मे विघ्नो भवेदत्र कुरु
 नाथ दयां मयि । सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः ॥ उपवासेन त्वां देव
 तोषयामि जगत्पते । कामक्रोधादयोप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः । अद्यप्रभृति देवेश याव-
 द्वैशेषिकं दिनम् । तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य जगत्पते' । इति देवं संप्रार्थ्य दम-
 नमादाय पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य वारिणा प्रक्षाल्याशोकमूले देवाग्रे वा । 'अशोकाय नम-
 स्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन । शोकातीं हर मे' नित्यमानन्दं जनयस्व मे' । इत्य-
 शोकम् । 'ब्रुट्यादिकालपर्यन्तः कालरूपो महाबलः । कलते चैव यः सर्वं तस्मै'
 कालात्मने नमः' ॥ इति कालम् । 'वसन्ताय नमस्तुस्यं वृक्षगुल्मलताश्रय । सह-
 स्रमुखसंवास कामरूप नमोस्तु ते' ॥ इति वसन्तम् । 'कामभस्मसमुद्धूत रतिबाष्प-
 परिप्लुत । ऋषिगन्धर्वदेवादिविमोहक नमोस्तु ते' ॥ इति दमनं च संपूज्य । 'नमोस्तु
 पञ्चबाणाय जगदाह्लादकारिणे ॥ मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते' । इति
 दमनमुपस्थाय । ॐ कामाय नम इति संपूज्य निशायां देवताग्रे पञ्चवर्णैः चन्दनेन
 वा अष्टदलं कृत्वा बहिश्चतुरस्रं तद्बहिर्वर्तुलत्रयं तद्बहिर्वृत्तं चतुरस्रं च कृत्वा तत्र कुम्भं
 संस्थाप्योपरि दमनं पूजयित्वा 'पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपते प्रभो । मदन त्वमि-
 हागच्छ सान्निध्यं कुरु ते नमः' ॥ ॐ ह्रीं कामदेवाय नमः ॐ ह्रीं रत्यै नमः इत्यावाह्य
 दिक्षु पूर्वार्धितः स्मरशरीराय नमः अनङ्गाय० मन्मथाय० कामाय० ह्रीं वसन्तस-
 खाय० स्मराय० इक्षुचापाय० पुष्पास्त्राय० नमः इति पूजयित्वा 'ॐ तत्स्वरूपाय विद्महे
 कामदेवाय धीमहि । तन्नो नंगः प्रचोदयात्' ॥ इत्यष्टोत्तरशतं संमंज्य पूजयित्वा ह्रीं
 नमः इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा । 'नमोस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे । मन्मथाय
 जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते' । इति नत्वा । 'आमन्त्रितोसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम ।
 प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव । क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ।
 प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥ निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभम् ।
 सर्वदा सर्वथा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीद मे' । इति देवं संप्रार्थ्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा अस्त्रेण चक्र-
 मन्त्रेण वा रक्षां कुर्यात् । ततः प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा पुनर्देवं संपूज्य गन्धदूर्वाक्षतयुक्तं दमनमा-
 दाय मूलमन्त्रं पठित्वा । 'देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक । हृदिस्थान् पूरयेः कामान्मम
 कामेश्वरीप्रिय । इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात् ॥ इमां सांवत्सरीं पूजां भग-

वन्परिपूरय' इति मन्त्रान्ते पुनर्मूलमन्त्रेण देवे समर्पयेत् । ततो अंगदेवताभ्यः स्वस्वमन्त्रेण दत्त्वा प्रार्थयेत् । "मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः । इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमालां यथा विष्णो कौस्तुभं सततं हृदि । तद्ब्रह्मनर्की मालां पूजां च हृदये वह । जानताजानता वापि न कृतं यत्तुवार्चनम् । तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्र-
मापते । जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ नमस्तेस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्व-
ज" ॥ मन्त्रहीनमिति च संप्रार्थ्य पञ्चोपचारैः पुनः संपूज्य नीराज्य पारयेदिति ॥ दीक्षारहितानां तु नास्त्रैव समर्पणम् ॥ अत्र च द्वादशीमतन्त्रीकृत्य परमहो ग्राह्यम् । 'पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकापि चेत् ॥ तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे ॥' इति तत्रैवोक्तेः ॥ गौणोपि काल उक्तस्तत्रैव । 'हरौ न दमनारोपः स्यान्मधौ विघ्न-
तो यदि । वैशाखे श्रावणे वापि तत्तिथौ स्यात्तदर्पणम् ॥ श्रावणावधिशुक्रास्ते कर्तव्य-
मिति नारदः' इति पाठान्तरम् ॥ इदं च मलमासे न कार्यम् । 'उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्' इति कालादर्शं मलमासवर्ज्येषु परिगणनात् । 'उपाकर्म च हव्यं च कव्यं पूर्वोत्सवं तथा । उत्तरे नियतं कुर्यात्पूर्वं तन्निष्फलं भवेत्' इति माध-
वीये प्रजापतिवचनाच्च ॥ शुक्रास्तादौ तु कार्यमेव । पूर्वोक्तवचनात् ॥ 'उपाकर्मो-
त्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् ॥ ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्तनम् । कुर्याच्छु-
क्रस्य च गुरोर्मौढ्येपीति विनिश्चयः' इति ज्योतिर्निबन्धे वृद्धगार्ग्यवचनाच्च ।
इति दमनारोपः ॥

चैत्रशुक्लत्रयोदशी ।

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंगव्रतम् । हेमाद्रौ भविष्ये-चैत्रो-
त्सवे सकललोकमनोनिवासे कामं त्रयोदशतिथौ च वसन्तयुक्तम् ।
पत्न्या सहाचर्यं पुरुषप्रवरोऽथ योषित्सौभाग्यरूपसुतसौख्ययुतः सदा स्यात् ॥' तत्र
सा पूर्वा ग्राह्या । 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः सितः' इति दीपिकोक्तेः ॥

चैत्रशुक्लचतुर्दशी ।

चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वा ग्राह्या । 'मधोः श्रावणमासस्य शुक्ल-
या तु चतुर्दशी । सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या नान्या शुक्ला कदाचन'
इति हेमाद्रौ बौधायनोक्तेः ॥ 'परा पूर्वाह्णगामिनी' इति वा पाठः । अत्र केचिद्यथा-
श्रुतमेवार्थं वर्णयन्ति ॥ "निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः । अतस्तत्र चतु-
र्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत्" इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ हेमाद्रिमाधवादिलिखनमप्ये-
वम् ॥ संप्रदायविदस्त्वाहुः "चतुर्दशी तु कतव्या त्रयोदश्या युता विभो ।" इति
स्कांदमुत्सर्गः । तदपवादश्च "तृतीयैकादशी षष्ठी शुक्लपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा न
कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता" इति नारदीयवचनम् । तदपवादश्च 'मधोः श्रावण
मासस्य' इति ॥ तत्रापवादाभावे पुनरुत्सर्गस्य स्थितिरिति न्यायेन पूर्वविद्धैव ग्राह्येति

१-परा मासान्तरवर्तिनी शुक्ला पूर्वाह्णगामिनी उत्तरविद्धा इत्यर्थः इति टीका ।

सिध्यति ॥ ब्रह्मवैवर्तं तु सामान्यरूपमन्यत्र सावकाशमिति तेन पूर्वदिने मुहूर्त्तत्रय-
वेधे पूर्वा, अन्यथोत्तरोति ॥

चैत्रशुक्लपूर्णिमा ।

चैत्रपूर्णिमा सामान्यनिर्णयात् परैव ॥ अत्र विशेषो निर्णया-
मृते विष्णुस्मृतौ—‘चैत्री चित्रायुता चेत्स्यात्तस्यां चित्रवस्त्रप्रदाने
न सौभाग्यमाप्नोति’ इति । तथा ब्राह्मे—“मंदे वार्के गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रिका ।
तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्लभेत्” इति ॥ अत्र सर्वदेवानां दमनपूजोक्ता ।
तत्रैव वायवीये—“संवत्सरकृतार्चायाः साफल्ययाखिलान्सुरान् । दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां
विशेषेण सदाशिवम्” इति । अत्र स्वीयतिथ्या समुच्चय इति केचित् । स्वीयति-
थ्यामकरणेन दमनपूजनमित्यन्ये ॥ दीक्षिततदितरविषयत्वेन व्यवस्थेत्यपरे । इयं
मन्वादिरपि साच पूर्वमुक्ता ॥

चैत्रकृष्णत्रयोदशी ।

चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महावारुणीसंज्ञो योगो गौडेषु प्रसिद्धः ।
तदुक्तं वाचस्पतिकृतौ शूलपाणौ च स्कांदे—‘वारुणेन समायुक्ता
मघौ कृष्णा त्रयोदशी ॥ गंगायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा । शनिवारसमायुक्ता
सा महावारुणीस्मृता ॥ गंगायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा । शुभयोगसमायुक्ता
शनौ शताभिषा यदि । महामहोति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् । तत्रैव ज्योतिषे-
“चैत्रासिते वारुणऋक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे ॥ योगे शुभे सा महती महत्या
गंगाजलेर्कग्रहकोटितुल्या” इति ॥ त्रिस्थलीसेतौ ब्रह्मांडपुराणे—वारुणेन समा-
युक्ता मघौ कृष्णा त्रयोदशी ॥ गंगायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः समा” इति ॥
कल्पतरौ ब्राह्मे—‘मघौ कृष्णत्रयोदश्यां शनौ शताभिषायुता । वारुणीति समाख्याता
शुभे तु महती स्मृता ॥

चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां विशेषः । पृथ्वीचंद्रोदये पुलस्त्यः “चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां

चैत्रकृष्णचतुर्दशी ।

यः स्नायाच्छिवसन्निधौ । न प्रेतत्वमवाप्नोति गंगायां तु विशेषतः”
इति ॥ अत्र पूर्वा ग्राह्या कृष्णपक्षत्वात् ॥ गौडैस्त्वेतदेव शुक्लचतुर्दश्या-
मित्येवं देवलीयत्वेन, पठितम् ॥ ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टसूरिसूनुकमलाकरभट्टकृते
कालनिर्णयसिधौ चैत्रमासः ॥

मेषसंक्रमे प्रागपरा दशदश घटिकाः पुण्यकालः रात्रौ तु प्राशुक्तम् । अत्र
धर्मघटादिदानमुक्तं पृथ्वीचंद्रोदये पाद्रे—“तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृत-
र्पणम् ॥ दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम् ॥ माधवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतु-
ष्टिम्” ॥

अथ वैशाखस्नानम् । तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुस्मृतिपादयोः—“तुलाम-
करमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते ॥ हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकना-
शनम्” इति सौरमास उक्तः ॥ अन्यत् पक्षद्वयमुक्तं तत्रैव पादौ—

“मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः । पंचदश्यां च भो वीर मेषसंक्रमणे तु वा ॥
वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्संकल्पपूर्वकम्” ।
तत्र मंत्रः । “वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे खेः ॥ प्रातः सानियमः स्नास्ये
प्रीयतां मधुसूदनः ॥ मधुहंतुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् ॥ निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं
वैशाखस्नानमन्वहम् । माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन ॥ प्रातःस्नानेन मे नाथ
फलदो भव पापहन्” इति ॥ तीर्थविशेषोपि तत्रैवोक्तः । “मेषसंक्रमणे भानोर्माधवे
मासि यत्नतः ॥ महानद्यां नदीतीर्थे नदे सरसि निर्झरे ॥ देवखातेथवा स्नायाद्यथाप्राप्ते
जलाशये ॥ दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन्” इति । संकल्पे च तत्तत्तीर्थ-
नाम ग्राह्यम् । अज्ञाने तु विष्णुतीर्थमिति वदेत् ॥ “यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य
भो द्विजाः ॥ तत्रेत्युच्चारणं कार्यं विष्णुतीर्थमिदं त्विति ॥ तीर्थस्य देवता विष्णुः सर्व-
त्रापि न संशयः” ॥ इति तत्रैवोक्तेः ।

तथान्योपि विशेषस्तत्रैव पादौ—“तुलसीकृष्णगौराख्या तयाभ्यर्च्य मधुद्विषम् । विशे-
षेण तु वैशाखे नरो नारायणो भवेत् ॥ माधवं सकलं मासं तुलस्या योर्चयेन्नरः ॥
त्रिसंध्यं मधुहंतारं नास्ति तस्य पुनर्भवः” ॥ तथा । “प्रातः स्नात्वा विधानेन माधवे
माधवप्रियम् ॥ योश्चत्यमूलमार्सिचेत्तोयेन बहुना सदा ॥ कुर्यात् प्रदक्षिणं तं तु सर्व-
देवमयं ततः । पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत्सचराचरम् ॥ योश्चत्यमर्चयेद्देवमुदकेन समं-
ततः ॥ कुलानामद्युतं तेन तारितं स्यान्न संशयः ॥ कंदूय पृष्ठतो गां तु स्नात्वा पिप्पल-
तर्पणम् ॥ कृत्वा गोविंदमभ्यर्च्य न दुर्गतिमवाप्नुयुः” । तथा “एकभक्तमथो नक्तम-
याचितमतंद्रितः ॥ माधवे मासि यः कुर्याल्लभते सर्वमीप्सितम् ॥ वैशाखे विधिना स्नानं
देवनद्यादिके बहिः ॥ हविष्यं ब्रह्मचर्यं च भूशय्यानियमस्थितिः । व्रतं दानं दमो देवि
मधुसूदनपूजनम् । अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं दहति दारुणम्” ॥ मदनरत्ने स्कांदे—
“प्रपाकार्या च वैशाखे देवे देया गलंतिका । उपानद्रयजनच्छत्रसूक्ष्मवासांसि चंदनम् ।
जलपात्राणि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च । पानकानि च चित्राणि द्राक्षारंभाफला-
न्यपि ।” तिथितत्त्वे—“ददाति यो हि मेषादौ सक्तूनंबुघटान्वितान् । पितृनुद्दिश्य
विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते” इति ॥ तथा—“वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विज-
न्मने । ददाति सुरराजेंद्र स याति परमां गतिम् ।” एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं वा
स्नायात् ॥ तदुक्तं तत्रैव पादौ—“त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां वैशाख्यां वा दिनत्रयम् । अपि

१—‘गलन्तिका संततपतद्धारमुदकपात्रम्’ इति टीका ।

सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोपि वा ॥ प्रातः स्नातः सनियमः सर्वपापैः प्रमुच्यते' । यदा तु वैशाखो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधात् मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कर्तव्याः । मासोपवासचांद्रायणादि तु मलमासे एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम्—'नियतत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत् मलिने मासोपवास-व्रतम्' इति ॥

अत्र दानविशेषः उक्तो परार्के वामनपुराणे—'गंधाश्च माल्यानि तथा वैशाखे सुर-भीणि च । देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये' ॥ एवं स्नाने कृते तस्योद्यापनं कार्यम् । तदुक्तं तत्रैव—'मासमेवं बहिः स्नात्वा नद्यादौ विमले जले । एकादश्यां च द्वादश्यां पौ-र्णमास्यामथापि वा ॥ उपोष्य नियतो भूत्वा कुर्यादुद्यापनं बुधः । मंडलं कारयेदादौ कलशं तत्र विन्यसेत् ॥ निष्केण वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः । शक्त्या वा कारयेद्देवं सौवर्ण-लक्षणान्वितम् ॥ लक्ष्मीयुक्तं जगन्नाथं पूजयेदासने बुधः भूषणैश्चंदनैः पुष्पैर्द्विपैर्नैवेद्य-संचयैः ॥ एवं संपूज्य विधिवद्रात्रौ जागरणं चरेत् । श्रोभूते कृतमैत्रोय ग्रहवेद्यां ग्रहान्य-जेत् ॥ होमं कुर्यात् प्रयत्नेन पायसेन विचक्षणः । तिलाज्येन यवैर्वापि सर्वैर्वापि स्वश-क्तितः ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा । प्रतद्विष्णुरनेनैव इदं विष्णुरनेन वा ॥ व्रतसंपूर्तिसिद्ध्यर्थं धेनुमेकां पयस्विनीम् । पादुकोपानहौ छत्रं गुरवे व्यजनं तथा ॥ शय्यां सोपस्करां दद्याद्दीपिकां दर्पणं तथा । ब्राह्मणान् भोजयेत्त्रिंशत्तेभ्यो दद्याच्च दक्षि-णाम् ॥ कलशाच्च जलसंपूर्णांस्तेभ्यो दद्याद्यवांस्तथा । एवं कृते माधवस्य चोद्यापन-विधौ शुभे ॥ फलमाप्नोति सकलं विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्' । एतावत्यशक्तौ तत्रैवो-क्तम्—'वैशाख्यां विधिना स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् दश ॥ कृसरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः' इति ॥

वैशाखशुक्लतृतीया ।

वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीयोच्यते । सा पूर्वाह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयेपि तद्व्याप्तौ परैव । तदुक्तं निर्णयामृते नारदीये—'वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणीयुता । दुर्लभा बुधवारेण सोमेनापियुता तथा ॥ रोहिणी बुधयुक्तापि पूर्वविद्धा विवर्जिता । भक्त्या कृतापि मांधातः पुण्यं हंति पुराकृतम् । गौरीविनायको-पेता रोहिणीबुधसंयुता । विनापि रोहिणीयोगात्पुण्यकोटिप्रदा सदा' । इति ॥

युगादिनिर्णयः ।

इयं युगादिरपि सा चोक्ता रत्नमालायाम्—'माघे पंचदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी । तृतीया माघवे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः' इति ॥ यत्तु गौडाः—'माघस्य पौर्णमास्यां तु घोरं कलियुगं स्मृतम्' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ 'वैशाखमासस्य च वा

१—'निषेधादिति । 'आरब्धकर्म यत्किञ्चित्तत्तु कार्यं मलिम्लुचे' इत्यनुवृत्तिवचनाच्च इत्यपि द्रष्टव्यम्—इति टीका । २ मंडपमिति पाठः ।

तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे । नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पंचदशी च माघे ॥ इति विष्णुपुराणे । चकारेण तमिस्रपक्षानुषंगेपि पूर्वानुरोधात् पौर्णमास्येव ज्ञेया । द्वे शुक्ले इत्यादिकं तु निर्मूलमित्याहुः । तत्र 'दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम्' इति भविष्यविरोधात् । एतेन ब्राह्मणानुसारात् पूर्णिमायामेव युगादिश्राद्धं वदन् शूलपाणिः परास्तः । तेन कल्पभेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम् । एतेन 'कार्तिके नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा' इति बृहन्नारदीयव्याख्यातम् । निर्मूलत्वोक्तिर्नारदीयाज्ञान-कृता । अत्र श्राद्धमुक्तं मात्स्ये- 'कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु । हाय-नानि द्विसाहस्रं पितृणां तृप्तिदं भवेत्' इति । भारतेपि- 'या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु मानवः । स्नात्वा हुत्वा च दत्त्वा च जप्त्वा नन्तफलं लभेत्' इति श्राद्धेपि पूर्वाह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'पूर्वाह्ने तु सदा कार्याः शुक्ला मनुयुगादयः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्निकाः' इति पाद्मोक्तेः । 'द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादि क्वयो विदुः ॥ शुक्ले पौर्वाह्निके ग्राह्ये कृष्णे चैवापराह्निके' इति हेमाद्रौ नारदीयवचनाच्च । दीपिकापि- 'अथो मन्वादियुगादिकर्मतिथयः पूर्वाह्निकाः स्युः सिस्ते विज्ञेया अपराह्निकाश्च बहुले' इति ॥ स्मृत्यर्थसारेपि- 'युगादिमन्वा-दिश्राद्धेषु शुक्लपक्षे उदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । कृष्णपक्षेऽपराह्नव्यापिनी' इति ॥ दिवोदासीये गोभिलः- 'वैशाखस्य तृतीयां यः पूर्वविद्धां करोति वै । हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा' इति ॥ गोविंदाणवैष्येवम्- 'तेनेयं पूर्वाह्न-व्यापिनी । दिनद्वये तत्त्वे परैवेति धर्मतत्त्वविदो हेमाद्र्यादयः ॥ अनन्तभट्टस्तु- 'सर्वैधृतिर्व्यतीपातो युगमन्वादयस्तथा ॥ सम्मुखा उपवासे स्युर्दानादावन्तिमाः स्मृताः' इत्याह । दानादाविति श्राद्धसंग्रहः । उपवासस्त्वग्रे वक्ष्यते । हेमाद्रावप्येवम् । माधवस्तु 'व्यतीपातः श्राद्धेऽपराह्नव्यापी ग्राह्यः' इत्याह स्मृत्यर्थसारे तु- 'कुतुपकालयोगी' ऋयुक्तम् ॥ यत्तु मार्कण्डेयः- 'शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्ने श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । कृष्णपक्षा-पराह्ने हि रौहिणं तु न लब्धयेत्' ॥ रौहिणो नवमो मुहूर्तः ॥ अत्र शुक्लपक्षयुगादिश्राद्धं पूर्वाह्ने कार्यमिति शूलपाणिः । निर्णयामृतादयस्तु- 'कालादर्शोऽमाश्राद्धमापराह्णिकमुक्त्वा 'एष मन्वंतरादीनां युगादीनां विनिर्णयः' इत्युक्तत्वात् । 'द्वे शुक्ले' इत्यादि-वचनं विष्णुपूजनविषयम् । श्राद्धे त्वापराह्निक्येवेति व्यवस्थां जगदुः सेयं पूर्वोक्तानेकवचोविरोधात् 'पूर्वाह्ने दैविकं कुर्यात्' इत्यादिवचनादेव सिद्धे वचनवैय-थ्याच्च स्वाच्छेद्यविलसितमात्रमित्युपेक्षणीया ॥ किंच । कालादर्शोक्तिर्न्यायमूल-वचोमूला वा । नाद्यः- 'युगादिश्राद्धस्यामाश्राद्धविकृतित्वेन न्यायतोपराह्नव्याप्तावपि वचनेन तस्य बाधात् । नांत्यः- 'अतिदेशादेवापराह्नप्राप्तेर्वचनवैयथ्यात् । 'अप्राप्ते शास्त्र-मर्थवत्' इति न्यायात् तेन यदि कालादर्शोक्तेः कथंचिच्छ्रद्धाजाड्येन समाधित्सा

तर्हि न्यायप्राप्तकृष्णपक्षयुगादिविषयत्वेन सा व्यवस्थापनीयेति दिक् पूर्वाह्णस्तत्र द्वेधा । भक्तदिनपूर्वार्द्धः । द्वेधा भक्तदिनांशकोत्र गदितः प्राह्णापराह्णौ इति दीपिकोक्तेः माधवादयोप्येवम् ॥

अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये-वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च । गंगा-
तोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः । तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् ।
यवान् दद्याद्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान् इति अत्र दानविशेषस्तत्रैव भविष्ये इमां
प्रक्रम्य 'उदकुम्भान्तसकनकान्तसान्नान्तसर्वरसैः सह । यवगोधूमचणकान् सक्तुदध्योदनं
तथा ॥ ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते' इति देवीपुराणेपि-तृतीयायां तु
वैशाखे रोहिण्यृक्षे प्रपूज्य तु । उदकुम्भप्रदानेन शिवलोके महीयते' ॥ मंत्रस्तु-एष
धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्तृप्यंतु पितरोपि पितामहाः । गंधो-
दकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुम्भं फलान्वितम् ॥ पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु' इति ।
अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात्-अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा । युगादिषु च
सर्वेषु पिंडनिर्वपणादृते' इति हेमाद्रौ पुलस्त्यवचनात् ॥ अत्र रात्रिभोजने प्राय-
श्चित्तमृग्विधाने-रात्रौ भुक्ते वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु । अभिस्ववृष्टिमन्त्रं च जपेद-
शनपातके' इति । अपरार्के यमः-कृतोपवासाः सलिलं ये युगादिदिनेषु च ।
दास्यंत्यन्नादिसहितं तेषां लोका महोदयाः' इति वैशाखे मलमासे साति तत्रैव युगादिः
कार्यः । तथा च हेमाद्रौ ऋष्यशृंगः-दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु ।
उपाकर्माणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः' इति । एतदशहरादिकं वृषादिसंक्रमे इष्टम् ।
'कन्याचन्द्रे वृषे रवौ' इत्यादिसौरमासोक्तेरित्यर्थः ॥ कालादर्शोपि-अब्दोदकुम्भ-
मन्वादिमहालययुगादिषु' इति मलमासकर्तव्येषु परिगणनाच्च । महालयशब्देन माघ-
त्रयोदश्युच्यते इति माधवः । स्मृतिचंद्रिकायां तु-मासद्वये कर्तव्यमित्युक्तम् ।
'यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम् ॥ मन्वादिकं तैर्धिकं च कुर्यान्मासद्वयेपि
च' इति । अपरपक्षः कृष्णपक्षः न तु महालयः । तस्य तत्र निषेधात् । मदनरत्नेपि
मरीचिः-प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत् प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च
तन्मासोरुभयोरपि' इति । प्रतिवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धमिति स एव व्याचख्यौ ।
अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने-न यस्य द्यावामंत्रं च शतवारं तदा
जपेत् ॥ युगादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः' इति । अत्र समुद्रस्नानं प्रश-
स्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये सौरपुराणे-युगादौ तु नरः स्नात्वा विधिवल-
वणोदधौ । गोसहस्रप्रदानस्य कुरुक्षेत्रे फलं हि यत् । तत्फलं लभते मर्त्यो भूमि
दानस्य च ध्रुवम्' इति । अयं निर्णयः सर्वयुगादिषु बोद्धव्यः । इति युगादि-
निर्णयः ॥

इयमेव तृतीया परशुरामजयन्ती । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं भार्ग-
वार्चनदीपिकायां स्कांदभविष्ययोः-‘वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ ।
निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः । स्वोच्चगैः षडग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते ।
रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम्’ इति । दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ
च परा अन्यथा पूर्वैव । तदुक्तं तत्रैव भविष्ये-‘शुक्ला तृतीया वैशाखे शुद्धोपोष्या दिन-
द्वये । निशायाः पूर्वयामे चेदुत्तरान्यत्र पूर्विका’ इति ॥

वैशाखशुक्लसप्तम्यां गंगोत्पत्तिः ॥ तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये
वैशाखशुक्लसप्तमी ।
ब्राह्मे-‘वैशाखे शुक्लसप्तम्यां जहनुना जाह्नवी पुरा ॥ क्रोधात् पीता
पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात् दक्षिणात् ॥ तां तत्र पूजयेद्देवीं गंगां गगनमेखलाम्’ इति । अत्र
शिष्टाचारान्मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वाः पूर्वा
युगमवाक्यात् ॥

वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ ज्योतिःशास्त्रे-
वैशाखशुक्लद्वादशी ।
‘पंचाननस्यौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे । पाशाभि-
धाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः ॥ अस्मिंस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदा-
नेन सर्वं परिहाय पापम् । सुखमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः’ इति ।
पंचाननः सिंहः । पाशाभिधाना तिथिर्द्वादशी । करभो हस्तः ॥

वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयन्ती । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं
हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे-‘वैशाखे शुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां निशामुखे ।
वैशाखशुक्लचतुर्दशी ।
मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्यं मम संतु-
ष्टिकारणम्’ इति । दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा । विषमव्याप्तौ त्वधिक-
व्याप्तिमती दिनद्वयेष्वव्याप्तौ परा । परदिने गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् । पूर्वदिने च तद-
भावात् । यत्तु-‘ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले’ इत्युपक्रम्य ‘परिधाय
ततो वासो व्रतकर्म समारभेत्’ इति तत्रैवोक्तम् । तत्संकलपरूपव्रतोपक्रमविषयम् ।
न त्वेतावता मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति भ्रमितव्यम् । पूर्वोक्तवचनविरोधात् । ‘वैशाखस्य
चतुर्दश्यां सोमवारेनिलक्षके । अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः’ इति टोडरा-
नन्दे स्कांदात् । ‘कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायम्’ इति पूर्वोक्तपुराणसमु-
च्चयवचनाच्चेति केचित् ॥ तत्त्वं तु पूर्ववचसामनाकरत्वेन निर्मूलत्वात् । हेमाद्रौ
नृसिंहपुराणे-‘मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम्’ इत्युपक्रम्य ‘स्वातीनक्षत्र-

१-‘वैशाखे मासि शुद्धायां तृतीयायां भगीरथः । ब्रह्मलोकात्त्रिपथगां पृथिवीतलमानयत्’ इति
व्रतहेमाद्रौ ।

योगे च शनिवारे तु मद्रव्रतम् ॥ सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः ॥ सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम् । एतदन्यतरे योगे मद्दिनं पापनाशनम् ॥ केवलेपि प्रकर्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम् । अन्यथा नरकं यांति यावच्चंद्रदिवाकरम्' इत्युक्त्वा 'ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले' इत्यादिना मध्याह्न एव व्रतविधानाच्चतुर्दश्युत्तरार्धे वणिजे करणे मध्याह्ने च स्पष्टं जन्म प्रतीयते । संध्यायां जन्म तु काप्यनुक्तेर्मौख्यकृतम् ॥ तद्वशान्निर्णयश्च हेय एवेति । इयमेव योगविशेषेणातिप्रशस्ता । तदुक्तं तत्रैव—'स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे च मद्रव्रतम् । सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभते दैवयोगतः । एभिर्योगैर्विनापि स्यान्मद्दिनं पापनाशनम् ॥ सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोस्ति मद्रव्रते । मद्रक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः' ॥ तथा—'सिंहः स्वर्णमयो देवो मम संतोषकारकः' ॥ तथा—'विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लब्धयेत्पापकृन्त्रः । स याति नरकं घोरं यावच्चंद्रदिवाकरम्' ॥ इदं च संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च । अथात्र विशेषः—मध्याह्ने मृद्धोमयतिलामलकस्नानं कृत्वा 'नृसिंह देवदेवेश तव जन्मदिने शुभे । उपवासं करिष्यामि सर्वभोगविवर्जितः' इति मंत्रेण संकल्पं कृत्वा आचार्यं वृत्वा सायंकाले—'हैमी तु तत्र मन्मूर्तिः स्थाप्या लक्ष्म्यास्तथैव च । पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥ यथाशक्ति तथा कुर्याद्विचाराद्यविवर्जितः' इत्युक्तम् । नृसिंहमूर्तिं शक्त्या कृतं सुवर्णसिंहं च कलशोपरि संपूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः पुनः संपूज्य 'नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकांत जगत्पते ॥ अनेनार्चाप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः' इत्याचार्याय दत्त्वा 'मदंशे ये नरा जाता ये जनिष्यन्ति चापरे ॥ तांस्त्वमुद्धर देवेश दुस्तराद्भवसागरात् ॥ पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखांबुवारिभिः ॥ तीव्रैश्च परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥ करावलंबनं देहि शेषशायिञ् जगत्पते ॥ श्रीनृसिंह रमाकांत भक्तानां भयनाशन ॥ क्षीराम्बुधिनिवासिस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन । व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव' इति प्रार्थयेदिति संक्षेपः ॥

वैशाखपौर्णमास्यां विशेषोपरार्के जावालिनोक्तः—'श्रुतान्मुदकुंभं च वैशाख्यां च विशेषतः । निर्दिश्य धर्मराजाय गोदानफलमाप्नुयात् ॥ सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पंच च ॥ तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति' इति । उदकुंभदानमन्त्रस्त्वक्षय्यतृतीयाप्रकरणे उक्तः । भविष्येपि—'वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोतीव पूजिताः । स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पांडुनन्दन' ॥ अत्र कृष्णाजिनदानं कार्यम् । तथा च विष्णुः—'कृष्णाजिने तिलान् कृष्णान् हिरण्यं मधुसर्पिषी ॥ ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्' इति ॥ इति कमलाकरभट्टकृते कालनिर्णयसिन्धौ वैशाखमासः समाप्तः ॥

वृषसंक्रान्तौ पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्यकालः ॥ रात्रौ संक्रमे सति प्रागेवोक्तम् ।
 ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतमुक्तं माधवीये भविष्ये-‘भद्रे कुरुष्व
 यत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम् ॥ ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नाता नियमत-
 तत्परा’ इति ॥ सा पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥ ‘बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी ॥ कृष्णा
 धृमी च भूता च कर्तव्या संमुखी तिथिः’ इति स्कान्दोक्तेः ।

ज्येष्ठशुक्लदशमी । तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे-‘ज्येष्ठे
 मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ॥ हरते दश पापानि तस्माद्दश-
 हरा स्मृता’ इति ॥ वाराहेपि-‘दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेहनि ॥ अवतीर्णा
 यतः स्वर्गाद् हस्तर्क्षे च सरिद्धरा ॥ हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता’ इति ॥
 स्कान्दे तु दश योगाः उक्ताः । तथा-‘ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्त-
 योः ॥ व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचन्द्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्य-
 ते’ इति ॥ अत्र बुधभौमयोः कल्पभेदेन व्यवस्था । इयं च यत्रैव योगबाहुल्यं सैव
 ग्राह्या । योगाधिक्ये फलाधिक्यात् । ज्येष्ठे मलमासे सति तत्रैव दशहरा कार्या न तु
 शुद्धे । ‘दशहरासु नेत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु’ । इति हेमाद्रौ ऋष्यशृङ्गोक्तेः ॥
 तथा स्कान्दे-‘यां कांचित्सरितं प्राप्य दद्याद्वर्षं तिलोदकम् ॥ मुच्यते दशभिः पापैः
 स महापातकोपमैः’ ॥ अत्र विशेषः काशीखण्डे-‘ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रति-
 पदं तिथिम् । दशाश्वमेधके स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ एवं सर्वासु तिथिषु क्रमस्त्रायी
 नरोत्तमः । आशुक्लपक्षदशमीं प्रतिजन्माघमुत्सृजेत्’ ॥ तथा-‘लिङ्गं दशाश्वमेधेशं
 दृष्ट्वा दशहरातिथौ ॥ दशजन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नात्र संशयः’ । तथा च भवि-
 ष्योत्तरकाशीखण्डयोः-‘निशायां जागरं कृत्वा समुपोष्य च भक्तितः ॥ पुष्पैर्गन्धैश्च
 नैवेद्यैः फलैश्च दशसंख्यया ॥ तथा दीपैश्च तांबूलैः पूजयेच्छूद्रयान्वितः ॥ स्नात्वा
 भक्त्या तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः ॥ दशप्रसृतिकृष्णांश्च तिलान् सपिंश्च वै जले ॥
 गुडपिंडान् सक्तुपिंडान् दद्याच्च दशसंख्यया ॥ ततो गंगातटे रम्ये हेम्ना रूप्येण वा
 तथा । गंगायाः प्रतिमां कृत्वा वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम् । संस्थाप्य पूजयेद्देवीं तदलाभे
 मृदापि च । अथ तत्राप्यशक्तश्चेद्विखेत् पिष्टेन वै भुवि ॥ वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुर्यात्
 पूजां विशेषतः । नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा । भगीरथं च नृपतिं हिम-
 वन्तं नगेश्वरम् ॥ गन्धपुष्पादिभिः सम्यग्यथाशक्ति प्रपूजयेत् । दशप्रस्थांस्तिलान्दद्या-
 द्दशसंख्यागवीस्तथा ॥ प्रस्थः षोडशपलानि । पलं तु-‘मुष्टिमात्रं पलं स्मृतम्’ इति
 महार्णवे उक्तम् । ‘मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान् ॥ हंसकारंडवक्त्रचक्रटिट्टि-
 भस्सरिस्तान् । कारयित्वा यथाशक्ति स्वर्णेन रजतेन वा ॥ तदलाभे पिष्टमयानभ्यर्च्य-
 कुसुमादिभिः ॥ गंगायां प्रक्षिपेदाज्यदीपांश्चैव प्रवाहयेत् ॥ पुष्पाद्यैः पूजयेद्भद्रां मन्त्रे-
 णानेन भक्तितः’ ‘ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै नमोनमः’ ॥ ‘इति

मन्त्रं तु यो मर्त्यो दिने तस्मिन् दिवानिशम् । जपेत्पञ्च सहस्राणि दशधर्मफलं लभेत् ॥
 काशीखण्डे त्वन्यो मन्त्र उक्तः । 'नमः शिवायै प्रथमं नारायण्यै पदं ततः । दश-
 हरायै पदमिति गङ्गायै मन्त्र एष वै ॥ स्वाहान्तः प्रणवादिश्च भवेद्विंशक्षरो मनुः ॥
 पूजादानं जपो होमोऽनेनैव मनुना स्मृतम्' इति ॥ अत्र गंगास्तोत्रपाठमपि दशवारं
 कुर्यात् । तदुक्तं भविष्ये—'तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः ॥ यः पठे-
 दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः । सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्य यत्नतः' इति ।
 स्तोत्रं च प्रतिपदादिदशमीपर्यंतं दिनवृद्धिसंख्यया पठनीयमिति शिष्टाः ॥ अत्र च सर्वो-
 ऽपि विस्तरः स्तोत्रादि च भट्टकृतत्रिस्थलीसेतोरवधेयः ॥ विस्तरभीतेस्तु न लि-
 ख्यते ॥ एवं कुर्वतः फलमुक्तं काशीखण्डे—'एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविव-
 र्जितः ॥ उपवासी वक्ष्यमाणैर्दशपैः प्रमुच्यते ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि
 लीयते' इति च । अस्यां सेतुबन्धरामेश्वरस्य प्रतिष्ठादिनत्वाद्विशेषेण पूजा कार्या ।
 तदुक्तं स्कान्दे सेतुमाहात्म्ये—'ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः । गगानन्दे
 व्यतीपाते कन्याचन्द्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे सेतुमध्ये लिङ्गरूपधरं हरम् ॥ रामो वै
 स्थापयामास शिवलिङ्गमनुत्तमम्' इति । इति दशहरा ॥

ज्येष्ठशुक्लैकादशी निर्जला । तत्र निर्जलमुपोष्य विप्रेभ्यो
 जलकुंभान् दद्यादिति निर्णयामृते उक्तम् । मदनरत्ने स्कान्दे—
 'ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा ॥ निर्जलं समुपोष्यात्र जलकुंभान्
 सशर्करान् । प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसंनिधौ' ॥

ज्येष्ठपौर्णमास्यां सावित्रीव्रतम् । तदुक्तं स्कान्दभविष्ययोः—'ज्येष्ठे मासि
 सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे' इत्युपक्रम्य—'व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवा-
 रात्रिं स्थिरा भवेत्' इति अन्तेप्युपसंहृतम् ॥ 'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे
 पूर्णिमायां तथा व्रतम् । चीर्णं पुरा महाभक्त्या कथितं ते मया नृप' इति ॥ दाक्षिणा-
 त्याश्चैतदेवादियन्ते ॥ एतच्चावामास्यायामप्युक्तं निर्णयामृते भविष्ये—'अमायां च
 तथा ज्येष्ठे वटमूले महासती ॥ त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत्' इति ॥
 मदनरत्ने त्विदं वाक्यम् । 'पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे' इति पठित्वा ज्येष्ठपौर्णमास्या-
 मुक्तम् । तथा—'अशक्तौ तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रियः । अयाचितं चतुर्दश्याम-
 मायां समुपोषणम्' इति । तच्च पाश्चात्या आद्रियन्ते । हेमाद्रिसमयोद्योतादिषु तु
 भाद्रपदपूर्णिमायामुक्तं तच्च नेदानीं प्रचरति । गौडास्तु—'मेघे वा वृषभे वापि सावित्री
 तां विनिर्दिशेत् ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीमर्चयन्ति याः ॥ वटमूले सोपवासा न
 ता वैधव्यमाप्नुयुः' इति पराशरोक्तेश्चतुर्दश्यां प्रदोषे व्रतम् । दिनद्वये तद्व्याप्तौ परैवे-
 त्याहुः । तन्निर्मुलम् ॥ अत्र पूर्णिमामावास्ये पूर्वविद्धे ग्राह्ये । 'भूतविद्धा न कर्तव्या

अमावास्या च पूर्णिमा ॥ वर्जयित्वा नरश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्' इतिब्रह्मवैवर्तात् ॥
स्कान्देपि-‘भूतविद्धा सिनीवाली न तु तत्र व्रतं चरेत् ॥ वर्जयित्वा तु सावित्रीव्रतं तु
शिखिवाहन' इति । मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तेपि-‘प्रतिपत्पञ्चमी भूतसावित्री वटपू-
णिमा ॥ नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः' इति । यदा त्वष्टादशघटिका चतुर्दशी
तदा परा ग्राह्या । ‘पूर्वविद्धैव सावित्रीव्रते पञ्चदशीतिथिः । नाड्योऽष्टादश भूतस्य स्युश्चे
त्तच्च परेऽहनि' इति माधवोक्तेः ॥ वस्तुतस्तु-‘भूतोष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां
तिथिम्' इत्यस्य व्रतांतरे सावकाशत्वाद्विशेषप्रवृत्तपूर्वविद्धाविधायकवचनेन तस्य बाधाद-
ष्टादशनाडीवैधेपि पूर्ववैत्ययं पन्थाः साधुः । अत्र पूर्णिमानुरोधेनैव यथा त्रिरात्रिसंपात्ति-
र्भवति तथा त्रयोदश्यादि ग्राह्यम् तस्याः प्रधानत्वात् ॥ अयं निर्णयोऽमायामपि ज्ञेयः ।
पारणं तु पूर्णिमांते कार्यम् ॥

अथ स्त्रीव्रतेषु विशेषाः परिभाषायामुक्ताः । अत्र विशेषो भविष्ये-‘गृहीत्वा
वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रं युधिष्ठिर । ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते । सावित्रीप्रतिमां
कुर्यात्सौवर्णां वापि मृन्मयीम् । साध्यं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यदीपकैः । रजन्या कंठसू-
त्रैश्च शुभैः कुंकुमकेशरैः ॥ पूजयेत्' इति शेषः रजनी हरिद्रा कण्ठसूत्रं सौभाग्यतन्तुः ।
'सावित्र्याख्यानकं वापि वाचयित द्विजोत्तमैः ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते विमले ततः ॥
तामपि ब्राह्मणे दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत्' इति । मन्त्रस्तु-‘सावित्रीयं मया दत्ता
सहिरण्या महासती । ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम् ॥ व्रतेनानेन राजेन्द्र
वैधव्यं नाप्नुयात् कचित्' इति ॥

ज्येष्ठपौर्णमास्यां विशेष आदित्यपुराणे-‘ज्येष्ठे मासि तिलान् दद्यात् पौर्ण-
मास्यां विशेषतः ॥ अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तत्प्राप्नोति न संशयः' ॥ विष्णुरपि-‘ज्येष्ठी
ज्येष्ठायुता चेत्स्यात्तस्यां छत्रोपानत्प्रदानेन नराधिपत्यमाप्नोति' इति ॥ हेमाद्रौ ज्यो-
तिषे-‘ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा ॥ पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्येष्ठी
अकीर्तिता' इति । इयं मन्वादिरपि । सा पौर्वाहिकी ग्राह्या । विशेषस्तु चैत्रे उक्तः । तथा-
उपरार्के वामनपुराणे-‘उद्धुक्कम्भाम्बुदानं च तालवृन्तं सचन्दनम् ॥ त्रिविक्रमस्य प्री-
त्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासि तु' । इति ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ
ज्येष्ठमासः समाप्तः ॥

मिथुनसंक्रान्तौ पराः षोडश घटिकाः पुण्यकालः ॥ रात्रौ तु प्रा-
गेवोक्तम् ॥ आषाढशुक्लद्वितीयायां रथोत्सवः । तदुक्तं तिथितत्त्वे
स्कान्दे-‘आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुण्यसंयुता ॥ तस्यां रथे स-
मारोप्य रामं वै भद्रया सह ॥ यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत् द्विजान्

मिथुनसंक्रान्तिनिर्णयः ।

आषाढशुक्लद्वितीया ।

वहून्' ॥ तथा—ऋक्षाभावे त्रिथौ कार्या यात्रासौ मम पुण्यदा' ॥
 आपाढशुक्लदशमी । आपाढशुक्लदशमी पौर्णमासी च मन्वादिः । सा च पूर्वाह्नव्यापिनी
 ग्राह्येति प्रागुक्तम् आपाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं
 कुर्यात् । तदुक्तं भविष्ये—‘आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती ॥

संगमे नहि भोक्तव्यं द्वादशद्वादशीर्हरेत्' ॥ अस्यार्थः—आपाढभाद्रपदकार्तिकशुक्लद्वाद-
 शीष्वनुराधाश्रवणरेवतीयोगे पारणं न कुर्यादिति अत्र यद्यप्येतावदेवोक्तं तथाप्यनुराधाप्र-
 थमपाद एव वर्ज्यः । तदुक्तं विष्णुधर्मे—‘मैत्राघपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे
 प्रतिबोधमेति ॥ श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिं प्रबोधं परिवर्तवर्ज्यम्' इति । वस्तुतस्तु
 पूर्ववचनमिदं च निर्मूलम् ॥

अत्रैव विष्णुशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ ब्राह्मे—‘एकादश्यां तु शुक्लायामा-
 पाढे भगवान् हरिः । भुजंगशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा' इति ॥ कल्पतरौ यमः—
 ‘क्षीराब्धौ शेषपर्यंके आपाढ्यां संविशेद्धरिः ॥ निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजये-
 त्सदा ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षिप्रमेवं व्यपोहति ॥ हिंसात्मकैस्तु किं तस्य यज्ञैः कार्यं
 महात्मनः । प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन केशवः' ॥ टोडरानन्देऽपि स्कांदे—
 ‘आपाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वप्नमहोत्सवम् ॥' अयं द्वादश्यामप्युक्तः । ‘आभाका-
 सितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती ॥ आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्तनोत्सवाः ॥ निशि स्वापौ
 दिवोत्थानं संध्यायां परिवर्तनम्' अन्यत्र पादयोगेऽपि द्वादश्यामेव कारयेत् ॥ आभाका-
 ख्येषु मासेषु मिथुने माधवस्य च ॥ द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्वापावर्तनोत्सवाः' इति
 भविष्योक्तेः । ‘द्वादश्यां साधिसमये नक्षत्राणामसंभवे । आभाकासितपक्षेषु शयनावर्त-
 नादिकम्' इति वाराहोक्तेः । द्वादश्यामित्यत्रापि पारणाहोमात्रं विवक्षितम् । ‘पारणाहे
 पूर्वरात्रे घंटादीन्वादयेन्मुहुः' इति रामार्चनचंद्रिकोक्तेः । अत्रैकादशीद्वादश्योर्देशभे-
 देन व्यवस्था ॥ इदं च मलमासे न कार्यम् । ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम्

इतः कालादर्शे निषेधात् ॥ यदपि ‘एकादश्यां तु गृहीयात्संक्रान्तौ
 अस्य मलमासे निषेधः । कर्कटस्य च ॥ आपाढ्यां वा नरो भक्त्या चातुर्मास्यव्रतक्रियाम्' इति
 हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्ते तदपि मलमासे सति द्रष्टव्यम् । ‘मिथुनस्थो यदा भानुरमावास्या
 द्वयं स्पृशेत् ॥ द्विरापाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे' इति तत्रैव मोहचूलो-
 चरोक्तेः ।

अत्रैव चातुर्मास्यव्रतारम्भ उक्तो भारते—‘आपाढे तु सिते पक्षे एकादश्यामु-
 पोषितः । चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद्यत्किंचिन्नियतो नरः' इति अस्य नित्यत्वं तत्रैवोक्तम् ।
 ‘वार्षिकांश्चतुरो मासान् बाहयेत् केनचिन्नरः । व्रतेन नो चेदाप्नोति किल्बिषं वत्सरो-
 द्रवम् ॥ असंभवे तुल्यैकेऽपि कर्तव्यं तत् प्रयत्नतः' इति । तेनापाढशुक्लैकादश्यां द्वादश्यां

पौर्णमास्यां वाऽऽरम्भः । समाप्तिस्तु कार्तिकशुक्लद्वादश्यामेव । तदुक्तं हेमाद्रौ भारते
 'चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्
 इति । अस्यारम्भः शुक्रास्तादावपि कार्यः । 'न शैशवं न मौढ्यं च शुक्रगुर्वेन वा तिथेः ॥
 खंडत्वं चितयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः' इति हेमाद्रौ वृद्धगार्ग्योक्तेः । इदं च द्वितीया-
 द्यारम्भविषयम् । प्रथमारम्भस्तु न भवत्येव । आशौचमध्येपि द्वितीयाद्यारम्भो भवति ।
 'अशुचिर्वा शुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान् ॥ व्रतमेतन्नरः कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः'
 इति भार्गवार्चनदीपिकायां स्कांदोक्तेः । 'आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु मत-
 कम्' इति विष्णुवचनाच्च ॥ यत्तु 'असंक्रान्तं तथा मासं देवे पित्र्ये च कर्मणि ॥
 मलमासमशौचं च वर्जयेन्मतिमान्नरः' इति हेमाद्रौ चातुर्मास्यप्रकरणे भविष्यवचनं
 तत् पूषानुमन्त्रणमन्त्रवदसंबद्धं मध्ये पठितमिति ज्ञेयम् । अन्यथा पित्र्यस्य पूर्वोक्तस्य
 विवाहादेश्च चातुर्मास्ये व्रते कः प्रसंगः । प्रकरणनिवेशेपि वा प्रथमारम्भविषयं ज्ञेयम् ॥
 केचित्तु प्रतिवर्षं चातुर्मास्यव्रतप्रयोगाणां भिन्नत्वादाशौचादिपाते द्वितीयादिप्रयोगो न
 भवत्येवेत्याहुः ॥ तन्न ॥ 'प्रतिवर्षं च यः कुर्यादेवं वै संस्मरन् हरिम् ॥ देहांतेतिप्रदीप्तेन
 विमानेनार्कवर्चसा ॥ मोदते विष्णुलोकेसौ यावदाभूतसंप्लवम्' इति हेमाद्रौ भविष्ये
 वचनादित्यास्तां विस्तरः ॥

इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम् । 'शिवे वा भक्तिसंयुक्तो भानौ वा गणनायके ॥
 कृत्वा व्रतस्य नियमं यथोक्तफलभाग्भवेत्' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ व्रतग्रहणप्रकारस्तु
 हेमाद्रौ भविष्ये—'महापूजां ततः कुर्यादेवदेवस्य चक्रिणः । जातीकुसुममालाभिर्मन्त्रे-
 णानेन पूजयेत् ॥ सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् । विबुद्धे च विबुद्धयेत प्रसन्नो
 मे भवाच्युत ॥ एवं तां प्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा स्वयं नरः प्रभाषेताग्रतो
 विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥ चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनावधि ।
 इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेच्युत ॥ इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।
 निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव ॥ गृहीतेस्मिन्व्रते देव पञ्चत्वं याद मे भवेत् ॥
 तदा भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ गृहीतेस्मिन् व्रते देव यद्यपूणे मृतो ह्ययम् ॥
 तन्मे भवतु संपूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन' इति ॥

तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपरिचर्यायां च भविष्ये—'श्रावणे वर्ज-
 येच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा । दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत्' इति स्का-
 न्देपि चातुर्मास्यकल्पे—'चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्णिनाम् । प्रथमे मासि

१—इदं चेति ॥ निषिद्धस्यास्तादेः सामान्यतः प्रतिप्रसवे गौरवाद्धितीयारम्भपरत्वमित्यर्थः ॥
 वस्तुतस्तु वर्षभेदेपि व्रतैक्ये मानाभावात् सर्वोपि प्रथमारम्भ एवेति ॥ अत एव बहुषु पुस्तकेषु 'इदं
 च' इत्यादि पाठो न दृश्यते इति टीका ॥

चातुर्मास्ये नियमाः शा- कर्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरैः ॥ द्वितीये मासि कर्तव्यं दधिब्रतमनुत्त-
 कव्रतादि च । मम् ॥ पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थेऽपि निशामय । द्विदलं बहुबीजं च
 वृन्ताकं च विवर्जयेत् ॥ नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः । जम्बीरं राजमा-
 षांश्च मूलकं रक्तमूलकम् । कूष्माण्डं चेक्षुदण्डं च चातुर्मास्ये त्यजेद् बुधः ॥ तथा-
 'विशेषाद्भद्रीं धात्रीं कूष्माण्डं तित्तिडीं त्यजेत् । जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं कथंचित् काय-
 शोधनम्' इति । तीर्थसौख्ये स्कांदि- 'वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्रसृप्ते वै जनार्दने ।
 मंचखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः ॥ अनृतौ वर्जयेद्धार्या मांसं मधु परौदनम् । पटोलं
 मूलकं चैव वृन्ताकं च न भक्षयेत् ॥ अभक्ष्यं वर्जयेद् दूरान्मसूरं सितसर्षपम् । राजमा-
 षान् कुलित्थांश्च आशुधान्यं च सन्त्यजेत् ॥ शाकं दधि पयो माषान् श्रावणादिषु
 सन्त्यजेत् ॥ अत्र त्यजेदिति वर्जनसंकल्परूपः पर्युदासो ज्ञेयः । व्रतोपक्रमात् ॥
 अत्र केचित्- 'शाकारव्यं पत्रपुष्पादि' इत्यमरकोशस्य शक्यतेऽशितुमनेनेति शाक
 इति क्षीरस्वामिना व्याख्यानात् व्यञ्जनमात्रस्य निषेधमाचक्षते ॥ अन्ये
 तु शाकशब्दस्य पत्रादिदशविधशाके योगरूढत्वात् योगाच्च रूढेर्बलीयस्त्वात् सू-
 पादीनामपि त्यागापत्तेश्च तत्प्रत्याचक्षते । तेन 'मूलपत्रकरीराग्रफलकांडाधिरूढकाः ।
 त्वक् पुष्पं कवचं चेति शाकं दशविधं स्मृतम्' इति क्षीरस्वामिनोक्तस्य शाकस्य
 निषेध इति । अधिरूढकः अंकुरः ॥ वस्तुतस्तु 'तत्तत्कालोद्भवाः शाका वर्जनीयाः
 प्रयत्नतः । बहुबीजमबीजं च विकारीं च विवर्जयेत्' इति भविष्यवचनात्तत्कालोत्प-
 न्नानां दशविधशाकानां निषेधः । अत्र तत्तत्कालोद्भवजातिर्विवक्षिता । तेनातपादिशोषि-
 तानां वर्षातरोद्भवानामपि निषेधः । अत्र तत्तत्कालोद्भवत्वमात्रं विवक्षितं न तु तन्मात्र-
 कालोद्भवत्वं गौरवात् । तेनान्यकालोद्भवानां तत्कालोद्भवानां च विवादीनां निषेधः ।
 अत्र तत्तत्कालोद्भवा इति वीप्सावशात् स्वस्वकालोद्भवानां सर्वेषां निषेध इति निष्कर्षः ।
 बहुबीजमित्यनेकबीजमिति केचित् । इतरावयवापेक्षया बीजावयवा यत्र बहवस्तदि-
 त्यन्ये ॥ अबीजं कन्दलादि । वस्तुतस्तु इदं महानिवन्धे स्वभावान्निर्मूलमेव ॥
 आचारप्रदीपे- 'वृन्ताकं च कर्लिंगं च बिल्वौदुम्बरभिस्सटाः । उदरे यस्य जीर्यते
 तस्य दूरतरो हरिः' ॥ तथापराकं देवलः- 'ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम् ।
 व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः' ॥

आमिषाणि चोक्तानि रामार्चनचंद्रिकायां पात्रे- 'प्राण्यंगचूर्णं चर्माम्बु
 जम्बीरं बीजपूरकम् ॥ अयज्ञशिष्टं माषादि यद्विष्णोरनिवेदितम् । दग्धमन्नं मसूरं च
 मांसं चेत्यष्टधाभिषम् ॥ रुच्यं तत्तद्देशलभ्यं सुप्ते देवे विवर्जयेत्' । पात्रे कार्तिक-

१-शाकवर्जनसंकल्पः । २-भिस्सटा दग्धान्नम् । 'भीस्सटेति पाठे'-भीस्सटं श्लेष्मातकमिति
 धन्वन्तारिनिघण्टुः इति टीका ।

माहात्म्ये-‘गोछागीमहिषीदुग्धादन्यद् दुग्धादि चामिषम् । धान्ये मसूरिकाः प्रोक्ता
अन्नं पर्युषितं तथा ॥ द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा । ताम्रपात्रस्थितं गव्यं
जलं पल्लवसंस्थितम् ॥ आत्मार्यं पाचितं चान्नमामिषं तत् स्मृतं बुधैः’ ॥ तथा
‘निष्पावान् राजमाषांश्च मसूरं संधितानि च ॥ वृन्तार्कं च कर्लिंगं च सुप्ते देवे विव-
र्जयेत्’ ॥ सन्धितानि लवणशाकादीनि ॥

तत्रैव विष्णुधर्मे-‘चतुर्ष्वपीह मासेषु हविष्याशी न पापभाक्’ ॥ हविष्याणि
तु पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये-‘हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः ।
कलायकं गुनीवारवास्तुकं हिलमोचिका । षष्टिकां कालशाकं च मूलकं केमुकेतरम् ॥
कंदः सैधवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी । पयोऽनद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकी । पिप्पली
जीरकं चैव नागरंगं च तिन्त्रिणी ॥ कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् । अतै-
लपकं सुनयो हविष्याणि प्रचक्षते’ इति ॥ सितास्विन्नं अनूष्मपकं धान्यं च तंडु-
लाः ॥ केमुकं ‘केमुता’ इति प्राच्येषु प्रसिद्धः कंदः ॥ ‘कलायस्तु सतीनकः’ इत्य-
मरः । ‘वटुरी’ इति प्रसिद्धं धान्यम् । मदनरत्नेष्वेवम् ॥ अगस्तिसंहितायां
हैमन्ताद्युक्त्वा-‘नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा । आम्रमामलकं चैव पनसं
च हरीतकी । व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्वते बुधाः’ ॥

अन्यान्यपि व्रतान्युक्तानि हेमाद्रौ भविष्ये-‘स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं
सुदृढव्रतः ॥ गृहीयान्नियमानेतान् दन्तधावनपूर्वकान् ॥ तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्क-
र्तृणां पृथक्पृथक् ॥ मधुरस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ॥ तैलस्य वर्जनाद्राजन्
सुन्दरांगः प्रजायते ॥ कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशः प्रजायते ॥ योगाभ्यासी भवेद्यस्तु
स ब्रह्मपदमाप्नुयात् । ताम्बूलवर्जनाद्रोगी रक्तकंठश्च जायते ॥
व्रतमेदेन फलविशेषाः । घृतत्यागाच्च लावण्यं सर्वस्निग्धतनुर्भवेत् । शाकपत्राशनाद्रोगी अप-
क्कादोऽमलो भवेत् ॥ भूमौ प्रस्तरशायी च विप्रो मुनिवरो भवेत् । एकांतरोपवासेन
ब्रह्मलोके महीयते ॥ धारणान्नखरोम्णां च गंगास्नानफलं लभेत् । मौनव्रती भवेद्यस्तु
तस्याज्ञाऽऽस्वलिता भवेत् । भूमौ भुंक्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् । प्रदक्षिणाशतं
अस्तु करोति स्तुतिपाठकः । हंसयुक्तविमानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ अयाचितेन
प्राप्नोति पुत्रान् धर्म्यान्विशेषतः । षष्ठाक्षकालभोक्ता यः कल्पस्थायी भवेदिति ॥ पर्णेषु
यो नरो भुंक्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् । गुडवर्जी नरो दद्यात्तद्भृतं ताम्रभाजनम् ॥ सहिरण्यं
नरश्रेष्ठ लवणस्याप्ययं विधिः । सुप्ते देवे तु यो विष्णोः शिवस्याङ्गणमर्चयेत् ॥
पंचवर्णैस्तु यो नित्यं स्वस्तिकैः पञ्चकैस्तथा । स याति रुद्रलोकं हि गाणपत्यम-
वाप्नुयात्’ ॥

अथैषां समाप्तौ कार्तिक्यां दानानि । ‘एकमुक्तव्रते दंपती संपूज्य धेनुर्देया ।
नक्ते वस्त्रयुगम् । एकांतरोपवासे गौः । भूशयने शय्या । षष्ठकालभोजने गौः । व्रीहि-

गोधूमादित्यागे हैमव्रीह्यादि । कृच्छ्रे गोयुग्मम् । शाकाशने गौः पयोव्रते च ।
दधिमधुघृतव्रतेषु वासो गौश्च । ब्रह्मचर्ये स्वर्णमूर्तिः । ताम्बूलव्रते वासोयुगम् । मौने
घृतकुम्भो वस्त्रयुगं घण्टा च ॥ देवाग्रे रंगमालिकाकरणे धेनुहैमपद्मं च । दीपिकाव्रते
दीपिका वासोयुगं च । भूमिभोजने पर्णभोजने च कांस्यपात्रं गौश्च । चतुष्पथदीपे
गोघ्रासे च गोवृषौ । प्रदक्षिणशते वस्त्रम् । अनुक्तेषु स्वर्णं गौश्च । इत्यादि हेमाद्रौ
ज्ञेयम् । तथा च भार्गवार्चनदीपिकायां पाद्मे—‘शयनीबोधिनीमध्ये शमीदूर्वाप-
मार्गकैः ॥ भृंगराजेन देवांस्तु नार्चयेत् कदाचन’ ॥ हेमाद्रौ पाद्मे—‘आषाढादिच-
तुर्मासानभ्यङ्गं वर्जयेन्नरः ॥ समाप्तौ च पुनर्दद्यात्तिलतैलयुतं घटम् ॥ आषाढादिच-
तुर्मासं वर्जयेन्नखकृन्तनम् ॥ वृताकं गृह्णन् चैव मधुसर्पिर्घटान्वितम् ॥ कार्तिक्यां तत्
पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्’ ॥ अन्यान्यपि केशकर्तनादिवर्जनसंकल्पानुरूपाणि
पृथ्वीचन्द्रोदये ज्ञेयानि । टोडरानन्दे स्कान्दे—‘एकान्तरं द्वयन्तरं वा कुर्यान्मा-
सोपवासकम् । अनोदनं फलाहारं नक्तव्रतमथापि वा’ ॥

अत्रैव तत्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायां भविष्ये—‘शयन्यां चैव
बोधिण्यां चक्रतीर्थं तथैव च । शंखचक्रविधानेन वद्विपूतो भवेन्नरः’
तत्तमुद्राधारणम् । इति । “अतस्तत्तनूर्न तदामो अश्नुते” इति ऋग्वेदात् । ‘सहोवाच

याज्ञवल्क्यस्तस्मात् पुमानात्महिताय हरिं भजेत् । सुश्लोकमौर्लेर्वर्माण्यग्निना संदधते’
इति शतपथश्रुतेः । ‘प्रतद्विष्णो अब्जचक्रे सुतप्ते जन्मांभोधी तर्तवे चर्षणीन्द्राः ॥ मूले
बाह्वोर्दधन्ये पुराणा तु लिङ्गान्यंगे तप्तायुधान्यर्पयन्ते’ इति सामवेदात् ॥ अग्निहोत्रं
तथा नित्यं वेदस्याध्ययनं तथा । ब्राह्मणस्य तथैवेदं तत्तमुद्रादिधारणम्’ इति पद्मपु-
राणाच्चेति । ‘ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः । शंखमुद्रांकिततनुस्तुलसी-
मक्षरीधरः ॥ गोपीचन्दनलिप्तांगो दृष्टश्चेत्तदधं कुतः’ ॥ इति काशीखण्डात् ॥
तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकातो ज्ञेयः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयादयस्तु—‘यस्तु संतप्तशंखादिलिङ्गचिह्नतनुर्नरः ॥ ससर्वयातना-
भोगी चांडालो जन्मकोटिपु ॥ द्विजं तु तप्तशंखादिलिङ्गाङ्किततनुं नरः ॥ संभाष्य रौरवं
आति यावदिन्द्राश्चतुर्दश’ इति बृहन्नारदीयोक्तेः ॥ ‘शंखचक्रायङ्गनं च गीतनृत्त्या-
दिकं तथा ॥ एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद्विजन्मनः । शंखचक्रे मृदा यस्तु कुर्या-
त्तप्तायसेन वा । स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥ यथा इमशानजं काष्ठमनर्हं
सर्वकर्मसु । तथा चक्रांकितो विप्रः सर्वकर्मसु गर्हितः’ ॥ तथा—‘शिवकेशवयोरङ्गाञ्छूल-
चक्रादिकान् द्विजः ॥ न धारयेत् मतिमान्वैदिके वर्त्मनि स्थितः’ इति विष्णवाश्वला-
यनादिवचनादृग्वेदादिश्रुतीनामन्यार्थत्वादन्यश्रुतीनां चासत्त्वात् चक्रादिधारणं शूद्र-
विषयमित्यूच्यते ॥ नृत्यं चोदरार्थं निषिद्धमिति श्रीधरस्वामी यद्यपि निषेधस्य प्राप्ति-
सापेक्षत्वाद्विधिं विना च तदयोगादुपजीव्यविरोधेन ‘न तौ पशौ करोति’ इतिवद्विकल्पो

युक्तस्तथापि 'एकजातेरयं धर्मः' इत्यनेन सामान्यवाक्यानामुपसंहारात् द्विजातिनिषेधो नित्यानुवाद इति तदाशयः ॥ अत्र शिष्टाचार एव संकटपाशनिःसरणमृणिरिति संक्षेपः ॥

आषाढपौर्णमास्यां कोकिलाव्रतमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये- 'आषाढपौर्णमास्यां तु संध्याकाले ह्युपस्थिते ॥ संकल्पयेन्मासमेकं श्रावणे प्रत्यहं ह्यहम् ॥

कोकिलाव्रतम् ।

स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्यस्थिता सती ॥ भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम्' इति ॥ अस्य नक्तव्रतत्वात् सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥

अत्रैव शिवशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ वामनपुराणे- 'पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे ॥ वैयाघ्रे च जटाभारं समुद्रग्रथ्याहिवर्ष्मणा' ।

शिवशयनोत्सवः ।

मदनरत्नेष्वेवम् । इयं च प्रदोषव्यापिनी । अत्रैव व्यासपूजोक्ता । तत्र त्रिमुहूर्ता चेत् परैवेति संन्यासपद्धतौ । 'त्रिमुहूर्ताधिकं ग्राह्यं पर्वक्षौरप्रणामयोः' ॥ इति वचनात् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मज-

व्यासपूजा ।

दिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ आषाढ मासः समाप्तः ॥

कर्कसंक्रान्तौ पूर्वं त्रिंशद्दंडाः पुण्यकालः । सूर्योदयोत्तरं संक्रमे तु परत एव पुण्यं

कर्कसंक्रांतिः ।

रात्रौ तु निशीथात् प्राक् परतश्च संक्रमेऽपराकं हेमाद्रचनन्तभट्टा-दिमते पूर्वोत्तरदिनयोः पञ्चनाड्यः पुण्यकालः । 'धनुर्मीनावतिक्रम्य

कन्यां च मिथुनं तथा । पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमते रविः ॥ दिनान्ते पञ्चनाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः ॥ उदयेपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि' इति

स्कान्दोक्तेः ॥ पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभित्रसंक्रांतिपरं वक्ष्यमाणवचोविरोधादित्युक्तं मदनरत्ने । तेनायमर्थः-रात्रौ पूर्वभागे मकरे उदये पंच नाड्यः पुण्यकालः । रात्रावपरभागे कर्कटे दिनान्ते पंचनाड्यः पुण्यकालः । विषुवतोस्तु

पूर्वदिने पश्चापरदिने च पञ्चेति वाक्यान्तरानुरोधात् । तेन हेमाद्रिमाध्वयोः सर्ववचनानां चाविरोधः । माध्वमते तु- 'अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रांतौ दक्षिणायने । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः' इति वृद्धगाग्योक्तेः । 'मिथुनात् कर्क-

संक्रांतिर्यदि स्यादंशुमालिनः ॥ प्रभाते वा निशीथे वा तदा पुण्यं तु पूर्वतः' इति भविष्योक्तेश्च पूर्वदिन एव पुण्यं दक्षिणात्यास्त्वेतदेवाद्वियन्ते । अत्र रात्रावपि स्नाना-

दि भवतीत्युक्तं प्राक् । अत्र दानोपवासादि पूर्वमुक्तम् । तथा कर्के केशादिकर्तनं निषिद्धम् । 'कुम्भे कर्कटेके वापि कन्यायां कार्मुके खौ । रोमखण्डं गृहस्थस्य पितृन् प्राशयते यमः' इति सुमन्तुवचनादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः ॥

१-गृहस्थेति वर्णादिव्युदासः । जीवत्पितृकस्यापि व्युदास इति केचित् । उपरते लक्षणापत्त्या तस्य न व्युदास इत्यन्ये । 'धनुःकुम्भौ द्विधा कृत्वा पूर्वभागं परित्यजेत् । कर्कटस्यान्तिमं भागं कन्यां तु सकलां त्यजेत्' इत्यपि केचित् । इति टीका ।

अथ नदीनां रजोदोषः । हेमाद्रावत्रिः—‘सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्व-
 लाः॥ न स्नानादीनि कर्माणि तासु कुर्वीत मानवः’॥ इदं च क्षुद्रनदीषु ।
 नदीनां रजोदोषः । ‘सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्ज-
 यित्वा समुद्रगाः’ इति व्याघ्रोक्तेः । मात्स्ये त्वगस्त्योदयावधित्वमुक्तम् । ‘यावन्नो-
 देति भगवान् दक्षिणाशाविभूषणः । तावद्रजोमहानद्यः करतोयाः प्रकीर्तिताः’ ॥
 करतोया अल्पतोयाः । तथा कात्यायनः—‘याः शोषमुपगच्छन्ति ग्रीष्मे कुसरितो
 भुवि । तासु प्रावृषि न स्नायादपूर्णं दशवासरे’ ॥ इदं चापदि । स्मृतिसंग्रहे—‘धनुः-
 सहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते । न ता नदीशब्दवहा गतास्ताः परिकीर्तिताः’ ॥
 महानदीषु तु भविष्ये उक्तम्—‘आदौ तु कर्कटे देवि महानद्यो रजस्वलाः । त्रिदिनं च
 चतुर्थे हि शुद्धाः स्युर्जाह्नवी यथा’ । महानद्यश्च ब्राह्मे—‘गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च
 वेणिका । तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः ॥ भागीर-
 थी नर्मदा च यमुना च सरस्वती । विशोका च विहस्ता च विन्ध्य-
 स्योत्तरसंस्थिताः । द्वादशैता महानद्यो देवर्षिक्षेत्रसंभवाः’ ॥ मदनरत्ने पुराणान्तरे—
 ‘महानद्यो देविका च कावेरी वंजरा तथा । रजसा तु प्रदुष्टाः स्युः कर्कटादौ ज्यहं नृप ॥
 कात्यायनः—‘कर्कटादौ रजोदुष्टा गौमती वासरत्रयम् । चन्द्रभागा सती सिन्धुः शरयू-
 र्नर्मदा तथा’ ॥ इदं गंगाद्यतिरिक्तविषयम् । ‘गंगा च यमुना चैव पुक्षजाता सरस्वती ।
 रजसा नाभिभूयंते ये चान्ये नदसंज्ञिताः ॥ शोणसिंधुहिरण्याख्याः कोकलोहितधर्वराः ।
 शतद्रूश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः ॥’ इति देवलोक्तेः । यत्तु—‘प्रथमं कर्कटे
 देवि ज्यहं गङ्गा रजस्वला’ इत्यादिवचनं तज्जाह्नवीभिन्नगोदावर्यादिगङ्गान्तरपरमिति मद-
 नरत्ने । अन्ये त्वन्तर्गतर्जोविषयम् । ‘गङ्गा धर्मद्रवः पुण्या यमुना च सरस्वती । अ-
 न्तर्गतर्जोदोषाः सर्वावस्थासु चामलाः’ ॥ इति निगमोक्तेः । तरिवासीनां तु रजोदोषो
 नास्ति । ‘न तु तर्तीरवासिनाम्’ इति निगमोक्तेः । रजोदुष्टमपि जलं गङ्गाजलयोगे
 पावनम् । ‘गङ्गाम्भसा समायोगाद् दुष्टमप्यम्बु पावनम्’ इति मात्स्योक्तेः ॥ नूतन-
 कूपादौ तु योगियाज्ञवल्क्यः—‘अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका । भू-
 मेर्नवोदकं चैव दशरात्रेण शुद्ध्यति’ ॥ इति । क्वचित्त्वदोषमाह व्याघ्रपादः—‘अभावे
 कूपवापीनामनपायिपयोभृताम् । रजोदुष्टेपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति’ ॥ गौडा-
 स्तु—‘अन्येनापि समुद्धृते’ इति द्वितीयपाठे पाठः तेनोद्धृते न दोषः । तथा च तासु स्ना-
 नं नेति प्रागुक्तमित्याहुः । वसिष्ठोपि—‘उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च ॥
 चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते’ इत्यलं विस्तरेण ॥

श्रावणशुक्लतृतीया ।

श्रावणशुक्लतृतीया मधुसूक्त्या । मधुसूक्ता गुर्जरेषु प्रसिद्धा ॥ सा परयुता ग्राह्येति दिवोदासः । श्रावणशुक्लचतुर्थी पूर्वयुता । 'मातृवि-

श्रावणशुक्लचतुर्थी ।

द्धो गणेश्वर' इत्यादिवचनात् । श्रावणीशुक्लपञ्चमी नागपूजादौ परैवेति सामान्यनिर्णये उक्तम् । चमत्कारचिन्तामणौ-पञ्चमी

नागपञ्चमी ।

नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुविता नागा इतरा सचतुर्थिकाः ॥ इति । 'श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी ।

तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिताः स्मृताः ॥ इति ॥ मदनरत्नेभिधानाच्च । तेन परैवेति । अत्र विशेषः हेमाद्रौ भविष्ये-श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप । द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः ॥ पूजयेद्विधिवद्दीर दधिदूर्वाङ्कुरैः कुशैः । गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥ ये तस्यां पूजयन्तीह नागात् भक्तिपुरःसराः । न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कुत्रचित् ॥ इति । श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिघ्नतं प्रागु-
क्तम् । तक्रादीनां त्वनिषेधः । तत्र दधिव्यवहाराभावादिति वक्ष्यते ।

श्रावणशुक्लद्वादश्यां

दधिघ्नतम् ।

अत्रव विष्णोः पवित्रारोपणमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये-श्रा-
वणस्य सिते पक्षे कर्कटस्य दिवाकरे । द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारो-

पवित्रारोपणम्

पणं स्मृतम् ॥ द्वादश्यां श्रावणे वापि पञ्चम्यामथवा द्विज । आनुकू-
ल्येषु कर्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा' इति शिवे तु तत्रैव कालोत्तरे-

'आषाढान्ते चतुर्दश्यां नभस्यनभसोस्तथा । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोः समम्' इति ॥ अन्यदेवतानां तु वक्ष्यते । अधिवासनं तु दीपिकायाम् । 'गोदोहान्तरिते काले पूर्वैश्वर्वाधिवासनम्' इति । गौणकालो रामार्चनचंद्रिकायाम्-पवित्रारोपणं विघ्नाच्छ्रावणे न भवेद्यदि । कार्तिक्यवधि शुक्रास्ते कर्तव्यमिति नारदः ॥ 'हेमरौ-
प्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः । कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः ॥ कृ-
त्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् । तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः ॥ सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम् । साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाच-
रेत् । साधारणपवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत् ॥ उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम् ॥ कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात् षट्त्रिंशद्ग्रन्थि शोभनम् ॥ षट्त्रिंशच्च चतुर्विंश-
द्वादशेति च केचन ॥ चतुर्विंशद्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदुः ॥ हेमाद्रौ विष्णु-
रहस्ये त्वन्यथोक्तम्-अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुःपञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिरेवाथ ज्येष्ठ-
मध्यकनीयसम् ॥ अधमं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रं द्वितीयकम् । प्रलम्बतो जानुमात्रं प्रतिमायां निगद्यते ॥ शिवपवित्रं तु तत्रैव शैवागमे-एकाशीत्यथ वा सूत्रैस्त्रिंशता वाष्टयुक्त्या । पञ्चाशता वा कर्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ॥ द्वादशाङ्गुलमानानि व्या-
सादष्टाङ्गुलानि वा । लिङ्गविस्तारमानानि चतुरङ्गुलकानि च' इति ॥ अधिकारिणोपि

तत्रैव विष्णुरहस्ये—‘ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्री शूद्र एव च । स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम् ॥ तथा—अतो देवेति मन्त्रेण द्विजो विष्णौ निवेदयेत् ॥ शूद्रस्य मूलमन्त्रो वा येन वा पूजयेद्भारिम् ॥ एतच्च नित्यम्—‘न करोति

विधानेन पवित्रारोपणं तु यः । तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिपवित्रारोपणम् ।

सत्तम । तस्माद्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः । वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः’ इति तत्रैवोक्तेः ॥ देवताविशेषे तिथयोपि तत्रैव—‘धनदश्च रमा गौरी गणेशः सोमराड् गुहः । भास्करश्चण्डिकाम्बा च वासुकिश्च तथर्वयः । चक्रपाणिर्ह्यनङ्गश्च शिवो ब्रह्मा तथैव च ॥ प्रतिपत्प्रभृतिष्वेताः पूज्यास्तिथिषु देवताः ॥ यथोक्ताः शुक्लपक्षे तु तिथयः श्रावणस्य च’ इति ॥ यथा हेमाद्रौ कालोत्तरे—‘चतुर्दश्यामथाष्टम्यां सर्वसाधारणं तु तत्’ इति ॥

तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकायां यथा—‘ततस्तानि पवित्राणि वैणवे पटले शुभे । संस्थाप्य शुचिवस्त्रेण पिधाय पुरतो न्यसेत् ॥ अरत्निसंमितां वेणीं कुर्यात् षट्त्रिंशता कुशैः । क्रियालोपविधातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो ॥ मयैतत् क्रियते देव तव

तुष्ट्यै पवित्रकम् । न मे विघ्नो भवेदेव कुरु नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः । उपवासेन देव त्वां तोषयामि

जगत्पते ॥ कामक्रोधादयोप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः । अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम् ॥ तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य नमोस्तु ते’ ॥ इति देवं संप्रार्थ्य कुंभं संस्थाप्य तत्र वंशपात्रे—‘ॐ सांवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः ॥ विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोस्तु ते’ ॥ अनेन मूलेन चावाह्योत्तममध्यमकनिष्ठेषु विष्णुब्रह्मरुद्रान् सत्त्वरजस्तमांसि वेदत्रयं वनमालायां प्रकृतिं चावाह्य त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ग्रन्थिषु क्रिया पौरुषी वीरा विजया ईशा अपराजिता मनोन्मनी जया भद्रा मुक्तिश्चेत्यावाह्य संपूज्य ‘ॐ संवत्सरकृताचार्याः संपूर्णफलदोपि यत् । पवित्रारोपणायैतत्कुरु कंधर ते नमः ॥ विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् । सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम्’ इति देवकरे मङ्गलसूत्रं बद्ध्वा देवं संपूज्य निमन्त्रयेत् । ‘आमन्त्रितोसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निध्यं कुरु केशव ॥ क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥ निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातरेतत् पवित्रकम् । सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीद मे’ ॥ ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा रात्रौ जागरणं कुर्यादिति अधिवासनम् । प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा गन्धदूर्वाक्षतयुतं पवित्रमादाय—‘ॐ देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् । पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । पवित्रकं कुरुष्वद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् । शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर’ ॥ मूलसंपुटितेनानेन दत्त्वांगदेवताभ्यो नाम्ना समर्प्य महानैवेद्यं दत्त्वा नीराज्य मणिविद्रुममालाभिरित्यादिभिर्दमनारोपणोक्तमन्त्रैः प्रार्थयित्वा गुरवे ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वा स्वयं धार-

येत् । तथा-‘मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत्तथा । देवे तं सूत्रसंदर्भं देशकालविवक्षया । अकरणे तु तत्रैव-‘पवित्रारोपणं काले न करोति कथंचन । तदायुतं जपेन्मन्त्रं स्तोत्रं वापि समाहितः ॥’ इत्युक्तम् । इति पवित्रारोपः । श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ग्राह्या ॥ अत्र वक्तव्यो विशेषश्चैत्रचतुर्दश्यामुक्तः ॥

अथोपाकर्म । तत्र बह्वृचानां प्रयोगपारिजाते शौनकः-‘अथातः श्रावणे मासे

उपाकर्म ।

श्रवणक्षयुते दिने । श्रावण्यां श्रावणे मासि पञ्चम्यां हस्तसंयुते ॥

दिवसे विदधीतैतदुपाकर्म यथोदितम् । अध्यायोपाकृतिं कुर्यात्तत्रौ-

पासनवद्दिना ॥’ इति । अत्र पौर्णमास्युपसंहारन्यायेन यजुर्वेदिपरेति हेमाद्रिः । अत्र हस्तयुक्ता पञ्चम्युक्ता । कारिकापि-‘तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते ।’ इति । केवलपञ्चम्यां हस्तयुतेन्यस्मिन् दिने इति तु हेमाद्रिः । उपासनवद्दिनेति तु ‘कर्मद्वयमिदं केचिल्लौकिकाग्नौ प्रकुर्वत’ इति कारिकोक्तलौकिकाग्निना विकल्पते । तत्र ‘अप्यध्याप्यैरन्वारब्धः’ इति सूत्रात् । सशिष्यत्वे तदधिकारिकस्याचार्याग्नौ ‘नान्यस्याग्रावन्यो जुहुयात्’ इति निषेधाल्लौकिक एव । तदभावे तु स्मार्त इति निगर्वः । यद्यपि दीपिकायाम्-‘वेदोपाकृतिरोषधिप्रजनने पक्षे सिते श्रावणे’ इति शुक्लपक्षोपि सर्वेषां मुख्यकालत्वेनोक्तः । वक्ष्यमाणगार्ग्यवचनेन छांदोगान् प्रति विहितस्य तस्याविरोधिनः सर्वान् प्रतिप्रवृत्तिश्च । तथापि श्रावणमाससंवन्धस्य सूत्रोक्तत्वात् । कृष्णपक्षेपि कार्यमिति वृद्धाः । तथा च सूत्रम्-‘अर्थातोऽध्यायोपाकरणमोषधीनां प्रादुर्भावे श्रावणेन श्रावणस्य पञ्चम्यां हस्तेन वा’ । अत्र श्रावणो मुख्योऽन्ये गौणाः । तत्प्राथम्यात् । तस्याहर्द्वययोगे हेमाद्रौ व्यासः-‘धानिष्ठासंयुतं कुर्याच्छ्रावणं कर्म यद्भवेत् । तत् कर्म सकलं ज्ञेयमुपाकरणसंज्ञितम् ॥ श्रावणेन तु यत् कर्म ह्युत्तराषाढसंयुतम् । संवत्सरकृतोध्यायस्तत्क्षणादेव नश्यति’ इति ॥ गार्ग्योपि-‘उदयव्यापिनीत्वेव विष्ण्वर्क्षं चंद्रिकाद्वयम् ॥ तत्कर्म सफलं ज्ञेयं तस्य पुण्यं त्वनन्तकम्’ ॥ इति पूर्वैरुत्तराषाढयोगे परेद्युः श्रावणाभावे घटिकाद्वयन्यूने वा पञ्चम्यादौ कार्यम् । न तु पूर्वविद्धायां संगवमात्रे । अपवादाभावात् किंच परेद्युः संगवास्पर्शं निषिद्धपूर्वाग्रहणे किं मानम् । संगववाक्यं श्रावणवाक्यं चेति चेत् तर्हि ग्रीहिवाक्यादश्वशफवाक्याच्च माषमिश्राणामप्युपादानं स्यादिति महत्पाण्डित्यम् निषेधानुप्रवेशान्नैरपेक्ष्यवाधा । नेति चेत् । इहापि तुल्यम् ॥ एतेन पर्वाप्यौदयिकं व्याख्यातम् निषेधानुप्रवेशस्योभयत्र तुल्यत्वात् ।

श्रावणयुतादिने संक्रांत्यादौ तु-‘उपाकर्म न कुर्वन्ति क्रमात्सामर्ग्यजुर्विदः ॥ ग्रहसंक्रांतियुक्तेषु हस्तश्रावणपर्वसु’ ॥ इति हेमाद्रौ निषेधात् पञ्चम्यादयो ग्राह्याः ।

१ अथ काचित्कः पाठः इति टीका ।

मदनरत्नेपि—‘याद् स्याच्छ्रावणं पर्वं ग्रहसंक्रान्तिदूषितम् । स्यादुपाकरणं शुक्लपञ्चम्यां श्रावणस्य तु’ ॥ स्मृतिमहार्णवे—‘संक्रान्तिग्रहणं वापि यदि पर्वणि जायते । तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते’ ॥ तत्रापि प्रयोगपारिजाते वृद्धमतु-कात्यायनौ—‘अर्धरात्रादधस्ताच्चैत्संक्रान्तिग्रहणं तदा । उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषकृत्’ ॥ इति मदनरत्ने गार्ग्योपि—‘यद्यर्धरात्रादर्वाक् तु ग्रहः संक्रम एव च । नोपाकर्म तदा कुर्याच्छ्रावण्यां श्रवणेपि वा’ ॥ एतेन ग्रहणसंक्रान्तिकाले श्रवणसत्त्वे एव निषेधो नार्वागिति मूर्खशंका परास्ता । ग्रहविशिष्टानां हस्तश्रवणपर्वणां प्रत्येकं निषेधे तद्युतोपाकर्मनिषेधे च विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात् । पञ्चम्यां संक्रान्तौ निषेधाभावापत्तेश्च । तेनार्धरात्रात् पूर्वं ग्रहसंक्रमसत्त्वे एवोपाकर्मनिषेधो न तद्योगे एव । यत्तु—‘प्रतिपन्मिश्रिते नैव नोत्तराषाढसंयुते । श्रवणे श्रावणं कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते’ ॥ इति प्रतिपन्मिश्रनिषेधकं वचनं तन्निर्मूलम् ।

अत्र च । ‘वेदोपाकरणे प्राप्ते कुलीरे संस्थिते रवौ । उपाकर्म न कर्तव्यं कर्तव्यं सिंह-युक्तके’ ॥ इति वचनं देशान्तरविषयम् । ‘नर्मदोत्तरभागे तु कर्तव्यं सिंहयुक्तके । कर्कटे संस्थिते भानावुपाकुर्यात्तु दक्षिणे’ ॥ इति बृहस्पतिवचनादिति प्रयोगपारिजातेनो-क्तम् । पराशरमाधवीयेष्वेवम् । सामगानां सिंहस्थरवावुक्तेस्तद्विषय इदं पुरोडाशचतु-र्धाकरणवदुपसंहियते । तेषामेव देशव्यवस्था न तु बह्वृचादिपरम् । तेषां सूत्रे चांद्रश्रा-वणोक्तेः । सौरै पञ्चम्ययोगात् इति तु वयं पश्यामः यत्तु कालादर्शे—‘अध्यायाना-मुपाकर्म श्रावण्यां तैत्तिरीयकाः । बह्वृचाः श्रवणे कुर्युः सिंहस्थोर्को भवेद्यदि । सह-स्तशुक्लपञ्चम्यां वातग्रहणसंक्रमे । असिंहार्के प्रौष्ठपद्यां श्रवणेन व्यवस्थया’ इति तेन्मूलालेखनाच्चिन्त्यम् । श्रावणे सस्यानुद्रमादौ तु बह्वृचपरिशिष्टे ‘अवृष्ट्यौषधय-स्तस्मिन्मासे तु न भवन्ति चेत् । तदा भाद्रपदे मासि श्रवणेन तदिष्यते’ इति ‘तत्राप्य-नुद्रमे तु कुर्यादेव तद्वाषिकमित्याचक्षते’ इति सूत्रात् । वर्षर्तौ भवं वार्षिकम् ।

एतच्च शुक्रास्तादावापि कार्यम् । ‘उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्’ ।

इति दमनारोपे लिखितवचनात् । ‘नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते’ ॥ इति प्रयोगपारिजाते संग्रहोक्तेः । ‘पर्वणि ग्रहणे सति पूर्वं त्रिरात्रादिवे-धाभावं वक्तुमिदम् । तेन पर्वणि ग्रहणेपि चतुर्दश्यां श्रवणे कार्यमिति हेमाद्रिः । अस्ते प्रथमारम्भस्तु न भवति । ‘शुरुभार्गवयोर्मौढये वाल्ये वा वार्द्धकेपि वा । तथाधिमास-

१ तन्मूलालेखनात्सूत्रविरोधाच्च चिन्त्यम् । सूत्रे हि ‘श्रवणस्य’ इति चांद्रमास एवोक्तो न सौरः । तस्य पञ्चम्यभावात् । श्रुतिलक्षणान्यामुभयपरत्वे वृत्तिद्वयविरोधात् इति पुस्तकान्तरेऽधिकः पाठः ।

प्रथमश्रावणी ।

संसर्पमलमासादिषु द्विजे । प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कृतं कर्म विनाश-
कृतं ॥ इति तत्रैव कश्यपोक्तेः । अत्र प्रथमारम्भे वृद्धिश्राद्धं
कुर्यादिति नारायणवृत्तौ । एतच्चाधिमासे न कार्यम् । 'उपाकर्म तथोत्सर्गः प्रसवा-
होत्सवाष्टकाः । मासवृद्धौ परे कार्या वर्जयित्वा तु पैतृकम्' इति ज्योतिःपराशरोक्तेः ।
'उत्कर्षः कालवृद्धौ स्यादुपाकर्मादिकर्मणि । अभिषेकादिवृद्धीनां न तूत्कर्षो युगादिषु' ॥
इति कात्यायनोक्तेश्च । यत्तु- 'उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः' । इति ऋष्य-
शृङ्ग वचनं तत्सामगविषयम् । तेषां सिंहाक एवोक्तेः ॥

एतच्चापराह्णे कार्यम् । 'उपाकर्मापराह्णे स्यादुत्सर्गः प्रातरेव तु' । इति ।
'अध्यायानामुपाकर्म कुर्यात्कालेऽपराह्णिके । पूर्वाह्णे तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः' ॥
इति च हेमाद्रौ गोभिलोक्तेः । वस्तुतस्तु- 'भवेदुपाकृतिः पौर्णमास्यां पूर्वाह्ण एव
तु' । इति प्रचेतसो वचनात् । पूर्ववाक्यं सामविषयम् । तेषामपराह्ण एवोक्तेरित्यनुपदं
वक्ष्यते । दीपिकापि- 'अस्य तु विधेः पूर्वाह्णकालः स्मृतः' इति । याजुषास्तु
पर्वणि कुर्युः तच्चापस्तम्बैरौदयिकं ग्राह्यमन्यैस्तु पूर्ववत् । 'पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणे
तैत्तिरीयकाः । वहवृचाः श्रावणे कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते' ॥ इति गार्ग्योक्तेः । 'संप्रा-
प्तवाञ्छुतीर्ब्रह्मा पर्वण्यौदयिके पुनः । अतो भूतदिने तस्मिन्त्रोपाकरणमिष्यते' ॥ इति
कालिकापुराणाञ्च । 'अथ चेदोपसंयुक्ते पर्वणि स्यादुपाक्रिया । दुःखशोकामय-
ग्रस्ता राष्ट्रे तस्मिन् द्विजातयः' ॥ इति मदनरत्ने हेमाद्रौ गार्ग्येण दोषोक्तेः ।
अत्र शिंगाभट्टीये विशेषः । 'श्रावणः श्रावणं पर्वसंगवस्पृश्यदा भवेत् । तदैवौदयिकं
कार्यं नान्यदौदयिकं भवेत्' ॥ पराशरमाधवीयेपि गार्ग्यः- 'श्रावणी पौर्णमासी
तु संगवात् परतो यदि । तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्यदौदयिकी भवेत्' ॥

कर्मकालमाह कालादर्शं निगमः- 'श्रावण्यां प्रोष्ठपद्यां वा प्रतिपत् षण्मुहूर्तकैः ।
विद्धा स्याच्छन्दसां तत्रोपाकर्मोत्सर्जनं भवेत्' ॥ अत्र पौर्णमासी श्रावणहस्तयोरुपलक्ष-
णम् । तेन तावपि संगवस्पृशौ । 'उदये संगवस्पर्शे श्रुतौ पर्वणि चार्कभे । कुर्युर्नभस्यु-
पाकर्म ऋग्यजुःसामगाः क्रमात्' ॥ इति पृथ्वीचन्द्रः । तेनोदयसंगवोभयव्या-
पिनी मुख्या । परेद्युः संगवाभावे पूर्वद्युर्भयाभावे चैकैकसत्त्वे पूर्वद्युश्चतुर्दशीविधनिषेधा-
त्सामान्यवाक्यादौदयिकी कर्मपर्याप्ता ग्राह्या न पूर्वा । संगवनिमित्तपूर्वविद्धापवादाभा-
वात् । नान्यदौदयिकी इत्यस्य पूर्वविद्धापरत्वाभावात् । तेन भाद्रादौ कालान्तरे स्यान्न
तु निषिद्धे । नहि ब्रीह्यलाभे निषिद्धमाषग्रहणं युक्तम् । अत एव परेद्युः संगवव्याप्तौ पूर्व-
विद्धानिषेधः । तदभावे तु न । इति मूर्खव्यवस्थाप्ययुक्ता विधिवैषम्यात् । माषनिषे-
धेपि तथापत्तेश्च । पूर्वविद्धावचनसत्त्वे हि सा युज्यते । एवं श्रावणेपि ज्ञेयम् । 'विष्णवर्क्षे

घटिकाद्वयम्' इति पूर्वोक्तविरोधात् । तेन प्राशस्त्यमात्रपरमिदम् । तत्त्वं तु एतच्छ्रद्धाधिकपरम् । तेन यथाग्निहोत्रादौ सायंप्रातःकालवाधे सामान्ये जीवनावच्छिन्नकाले दर्शादौ वानुष्ठानम् । यथा वा व्रीह्यश्वशफाद्यभावे यागाक्षितनिषिद्धवर्जद्रव्येण । तथात्र संगवाभावे निषिद्धवर्जकर्मपर्याप्तौ दायिके कालान्तरे वानुष्ठानं न तु कदाचिन्निषिद्धे ॥ अपवादाभावे उत्सर्गस्यैव प्राप्तेः । कात्यायनादीनां तु दिनद्वये पूर्वाह्नव्याप्तौ एकदेशस्पर्शे वा पूर्व्वेति हेमाद्रिः । यदपि—'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्व्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्वलेर्दिनम्' ॥ इति । ब्रह्मवैवर्तः । तद्ब्रह्मपवित्रश्रवणकर्मादिदेवकर्मविषयम् इति हेमाद्रिः ॥ अत एव वचनात् कुलधर्मव्रतादावपि पूर्व्वेव मदनरत्नेष्वेवम् । मदनपारिजातेपि पूर्व्वविद्धायां श्रावण्यां वाजसनेयिनामुपाकर्मेत्युक्तम् ॥

मदनरत्ने तु—'पर्व्वण्यौ दायिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः' । इति बह्वृचपारिशिष्टात् बह्वृचान् प्रति कर्मविधानार्थप्रवृत्तेः । तत्र तैत्तिरीयककर्मविध्ययोगात् पूर्व्वोक्तकालिकापुराणादौ सामान्यत औदयिकपर्व्वप्राप्तेस्तन्निषेधेन बह्वृचानां श्रवणविधिना तैत्तिरीयकपदमनुवादत्वात् तस्य च प्राप्त्यधीनत्वात् प्राप्तेश्च यजुर्वेदिमात्रपरत्वात् सर्व्वयजुर्वेद्युपलक्षणार्थं अवयुत्यानुवादो वा न तु विधायकं येन विशेषविधिनोपसंहारः स्यात् । अनुवादत्वाल्लक्षणा न दोषः । अन्यथा त्वौदयिकपर्व्वविशिष्टोपाकर्मोद्देशेन कर्तृविधौ कर्तृविशिष्टे वा औदयिकपर्व्वविधौ वाक्यभेदापत्तेः । तस्मात्तैत्तिरीयकपदाविवक्षया सर्व्वयजुर्वेदिनामौदयिकमेव पर्व्वेत्युक्तं तत्र । न तावत् पारिशिष्टे बह्वृचान् प्रत्येव विधिः । 'धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तत्वाष्ट्रऋक्षसमन्वितम्' । इत्यादि तदुदाहृते एव पारिशिष्टे वेदान्तधर्मविधीनां दर्शनात् । नाप्यनुवादोयं कालिकापुराणात् बह्वृचादीनामपि तदापत्तेः । कुर्युरित्यस्य विधित्वेन तस्यैवार्थवादत्वेनैतत्प्राप्तानुवादित्वाच्च । न च तैत्तिरीयकाणां गृह्ये तद्विधिरस्ति येनानुवादः स्यात् । न च वाक्यभेदः । तैत्तिरीयकमात्रस्य कर्ममात्रस्य वा उद्देश्यत्वायोगेन हविरार्तिवदष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीतेतिवच्चागत्या विशिष्टस्योद्देशत्वात् । अन्यथोत्तरार्धे बह्वृचपदस्याप्यविवक्षापत्त्या श्रवणस्य सर्व्वसाधारण्यापत्तेः । तस्माद्धेमाद्रिमतमेव युक्तम् । इति दिक् । इदं च शिष्यानध्यापयत । आवसथ्येग्रौ अनध्यापयतो नाधिकार इति कर्कः ॥ श्रावण्यामपि ग्रहणादिदुष्टायां कातीयभिन्नैः प्रौष्ठपद्यां कार्यम् । तैस्तु श्रावणपञ्चम्याम् । 'संक्रान्तिर्ग्रहणं वापि पौर्णमास्यां यदा भवेत् । उपाकृतिस्तु पञ्चम्यां कार्या वाजसनेयिभिः' ॥ इति स्मृतिमहार्णवे वाजसनेयिग्रहणात् इति हेमाद्रिः ॥ इदं च सूत्रोक्तकालपरत्वात् बह्वृचपरमपि सांख्यायनैस्तु हस्ते कार्यम् । आपस्तम्बैराथर्व्वणैश्च प्रौष्ठपद्याम् । यत्तु बौधायनः—'श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्यम्' इत्युक्ते तत् प्रौष्ठपद्यामपि दोषे आषाढ्यां कार्यमित्येवमर्थम् । तच्छाखीयविषयं वा ॥

सामगास्तु श्रावणे हस्ते कुर्युः 'बह्वृचाः श्रवणे चैव हस्तर्क्षे सामवेदिनः' इति निर्णयामृते गोभिलोक्तेः । सोप्युत्तरः । 'धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तं त्वाष्ट्रऋक्षसमन्वितम् । श्रावणं कर्म कुर्वीरन् ऋग्यजुःसामपाठकाः' ॥ इति मदनरत्ने परिशिष्टोक्तेः । गार्ग्योपि-'सिंहे रवौ तु पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णेऽविवरे बहिः । छन्दोगा मिलिताः कुर्युरुत्सर्गं स्वस्वछन्दसाम् ॥ शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मापराह्निकम्' । इति अविवरे ग्रहादिदोषहीने । विचरेदिति पाठोऽज्ञानकृतः । पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णे उत्सर्गः । अपराह्निकमुपाकर्मात्यन्वयः । अन्यस्तु विशेषः पूर्वमेवोक्तः । प्रयोगपारिजाते गोभिलः-'उपाकर्मात्सर्जनं च वनस्थानामपीष्यते । धारणाध्ययनाद्भ्रत्वाद्गृहिणां ब्रह्मचारिणाम् ॥ उत्सर्जनं च वेदानामुपाकरणकर्म च । अकृत्वा वेदजप्येन फलं नाप्नोति मानवः' ॥ सर्वथा लोपे तु कृच्छ्र उपवासश्च । 'वेदोदितानां नित्यानाम्' इति मनुना भोजनोक्तेः । एवमुत्सर्गेऽपि ॥

अथ प्रसंगादत्रैवोत्सर्जनमुच्यते । तच्च पौषमासे रोहिण्यां उत्सर्जनम् ।

तत्कृष्णाष्टम्यां वा कार्यम् । 'पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा । जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः' ॥ इति याज्ञवल्क्योक्तेः । श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां चोपाकृतौ क्रमेण पौषशुक्लप्रतिपदि वा कार्यम् । 'अर्धपञ्चमान्मासानधीय' इति तैनेवोक्तेः । अर्धः पञ्चमो येषु सार्धचतुर इत्यर्थः ॥ यत्तु हारीतः-'अर्धपञ्चमान्मासानधीत्योर्ध्वमुत्सृजेत् । पञ्चाथ षष्ठान्वा' इति । तदाषाढयुपाकर्मविषयम् । बोधायनास्तु पौष्यां माघ्यां वा कुर्युः 'पौष्यां माघ्यां चोत्सृजेत्' इति तत्सूत्रात् । तैत्तिरीयेस्तु तैष्यां कार्यम् 'तैष्यां पौर्णमास्यां रोहिण्यां वा विरमेत्' इति तत्सूत्रात् । बह्वृचैस्तु माघ्यां कार्यम् । 'अध्यायोत्सर्जनं माघ्यां पौर्णमास्यां विधीयते' । इति कारिकोक्तेः ॥ कातीयास्तु भाद्रपदे कुर्युः । 'उत्सर्गश्चेति नन्दादितिथ्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा' इति कात्यायनोक्तेः ॥ सामगास्तु सिंहाके पुष्ये कुर्युः । तथा च 'सिंहे रवौ तु' इति गार्ग्यवचनं पूर्वमुक्तम् । सर्वैरुपाकर्मदिने वा कार्यम् । 'पुष्ये तूत्सर्जनं कुर्यादुपाकर्मदिनेऽथवा' । इति हेमाद्रौ खादिरगृह्योक्तेः । यदा सिंहस्थे सूर्ये सति तन्मध्यहस्तनक्षत्रात् प्राक् पुष्यः कर्कटस्थो भवति तदा तस्मिन् पुष्ये उत्सर्गं कृत्वा तदुत्तरहस्ते उपाकर्म सामगाः कुर्युः । 'मासे प्रौष्ठपदे हस्तात् पुष्यः पूर्वं भवेद्यदा । तदा च श्रावणे कुर्यादुत्सर्गं छन्दसां द्विजः' ॥ इति तत्रैव परिशिष्टोक्तेः ॥ अत्र द्वावपि सौरौ मासौ ज्ञेयौ तेषां सौरस्यैवोक्तेः ॥

अत्र विशेषमाह कार्णाजिनिः-'उपाकर्माणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य च । ऋषीन् दर्भमयान् कृत्वा पूजयेत्तर्पयेत्ततः ॥' इति । उपाकर्मण्युत्सर्गे च त्रिरात्रं पक्षिणीमहोरात्रं वानध्याय इति मिताक्षरायामुक्तम् । अत्र नदीनां रजोदोषा नास्ति । उपाकर्माणि चोत्सर्गे रजोदोषो न विद्यते ।' इति गार्ग्योक्तेः ॥

रक्षाबन्धनम् ।

अत्रैव रक्षाबन्धनमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये—‘संप्राप्ते श्रावणस्या-
न्ते पौर्णमास्यां दिनोदये । स्नानं कुर्वीत मतिमाञ्छुतिस्मृतिविधानतः॥

उपाकर्मादिकं प्रोक्तमृषीणां चैव तर्पणम् । शूद्राणां मन्त्ररहितं स्नानं दानं च शस्यते ॥
उपाकर्मणि कर्तव्यं ऋषीणां चैव पूजनम् । ततोपराह्णसमये रक्षापोटलिकां शुभाम् ॥
कारयेदक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हर्मभूषितैः ॥’ इति । अत्रोपाकर्मानन्तर्यस्य पूर्णातिथौ
वार्षिकस्यानुवादो न तु विधिः । गौरवात् प्रयोगविधिभेदे च क्रमायोगाच्छूद्रादौ तदयो-
गाच्च । तेन परेद्युरुपाकरणेपि पूर्वैद्युरपराह्णे तत्करणं सिद्धम् । इदं भद्रायां न कार्यम् ।
‘भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा । श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति
फाल्गुनी ॥’ इति संप्रहोक्तेः । तत्सत्त्वे तु रात्रावपि तदन्ते कुर्यादिति निर्णयामृते ।
इदं प्रतिपद्यतायां न कार्यम् । ‘नन्दायां दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च । भद्रायां
गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते ॥’ इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् । भविष्ये—
‘उपलिप्ते ग्रहमध्ये दत्तचतुष्के न्यसेत्कुम्भम् । पीठे तत्रोपविशेद्राजामात्यैश्च सुमुहूर्ते ।
तदनु पुरोधा नृपते रक्षां बध्नीत् मन्त्रेण ॥’ इदं रक्षाबन्धनं नियतकालत्वात् भद्रावर्ज्य-
ग्रहणदिनेपि कार्यं होलिकावत् । ग्रहसंक्रान्त्यादौ रक्षानिषेधाभावात् । ‘सर्वेषामेव वर्णा-
नां सूतकं राहुदर्शने ।’ इति तत्कालमात्रनिषेधाच्च । ‘त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां
नवकं ध्रुवम् । माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥’ इति यो निषेधः सोऽप्यनियत-
कालीनकर्मपर एव नत्वन्यत्र । अन्यथा होलिकायां का गतिः । अत एव ‘नित्ये
नैमित्तिके जप्ये होमयज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते ॥’
इति । नियतकालीने तदभाव इति दिक् । उपाकर्मणि तद्दिनभिन्नपरं तत्र तन्निषेधा-
दित्युक्तं प्राक् । मन्त्रस्तु—‘येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामपि
बध्नामि रक्षे मा चल मा चल’ ॥ ‘ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च मानवैः । कर्तव्यो
रक्षिताचारो द्विजान् संपूज्य शक्तितः ॥’ इति ॥

हयग्रीवोत्पत्तिः ।

अत्रैव हयग्रीवोत्पत्तिः । तदुक्तं कल्पतरौ—‘श्रावण्यां
श्रवणे जातः पूर्वं हयशिरा हरिः । जगाद सामवेदं तु सर्वकल्मषनाश-
नम् ॥ स्नात्वा संपूजयेत्तं तु शङ्खचक्रगदाधरम् ॥’

श्रवणाकर्मनिर्णयः ।

अत्राश्वलायनेन श्रवणाकर्मोक्तम् । ‘श्रावण्यां पौर्णमास्यां
श्रवणाकर्म’ इति । तत्रास्तमययोगिनी ग्राह्या । ‘अस्तमिते स्थालीपाकं
श्रपयित्वा’ इति सूत्रात् । अत एवेष्टौ निशीष्टौ दर्शप्रयोगान्तःपातनियमात्तदङ्गैः
प्रसङ्गसिद्धिरुक्ता द्वादशे । अन्यथापरेद्युःप्राप्तौ कः प्रसङ्गः प्रसङ्गस्य याज्ञिकास्तु
पूर्णिमादर्शशब्दयोः पर्वान्त्यक्षणवदहोरात्रवाचित्वात्तत्रैव कर्मकालव्याप्तिर्ग्राह्येति विकृतिः-

त्वाच्छेषपर्वेच्छन्ति । श्रावणादिमासचतुष्टयकृष्णपक्षाद्वितीयासु अ-
कृष्णद्वितीयायामशून्य-
व्रतम् । शून्यव्रतम् । तत्र चन्द्रोदयव्यापिनी । दिनद्वये सत्त्वे परोति निर्ण-
यामृते । इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ श्रावणमासः ॥

सिंहे पराः षोडशघटिकाः पुण्यकालः । अन्यत् पूर्ववत् । अत्र
सिंहसंक्रान्तिः । गोप्रसवेऽद्भुतसागरे नारदः—‘भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सं-

प्रसूयते । मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः । तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते
शुभम् । प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राज-

सर्षपैः । आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः ॥’ व्याहृतिभिश्चायं
गोप्रसवे शान्तिः । होमः । सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।’ इति । तथा—

‘सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत् । पौषे च महिषी सूते दिवैवाश्वतरी तथा ।
तदानिष्टं भवेत् किञ्चित्छान्त्यै शान्तिकं चरेत् । अस्य वामेति सूक्तेन तद्विष्णोरिति
मंत्रतः । जुहुयाच्च तिलाज्येन शतमष्टोत्तराधिकम् । मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथा
युतम् ॥ श्रीसूक्तेन ततः स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः । मध्यरात्रे निशीथे वा यदा
गौः क्रन्दते सदा । ग्रामे वा स्वगृहे वापि शान्तिकं पूर्ववद्दिशेत् ॥’ एवं श्रावणे वडवा-
प्रसवो दिने निषिद्धः । तदुक्तमथर्ववेदिनां गार्ग्यपरिशिष्टे—‘माघे बुधे च महिषी
श्रावणे वडवा दिवा । सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः’ ॥ इति अत्र तदुक्ता-

भा० कृ० तृतीया । मृताख्या शान्तिः कार्या ।

कज्जलीसंज्ञा ।

भा० कृष्णचतुर्थी
बहुला ।

भाद्रकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञा सा परा ग्राह्येति दिवोदासीये
उक्तम् । वचनं तु हरितालिकाप्रकरणे वक्ष्यामः—भाद्रकृष्णचतुर्थी
बहुलाख्या मध्यदेशे प्रसिद्धा । सा सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिन-
द्वये सत्त्वे पूर्वा ग्राह्या । ‘गौर्याश्चतुर्थी वटधेनुपूजा दुर्गार्चनं दुर्भरहोलिके च । वत्सस्य
पूजा शिवरात्रिरेताः परान्विता घ्नन्ति नृपं सराष्ट्रम्’ ॥ इति दिवोदासीये वचनात् ।
‘अत्र वत्सपूजायाः पृथगुपादानाद्धेनुपूजाशब्देन बहुलाख्या गृह्यते’ इति स एव व्याच-
रव्यौ । मदनरत्नेष्वेवम् । अत्र गोपूजा यवान्नाशनं च तत्रैवोक्तम् । भाद्रकृष्णषष्ठी
हलषष्ठी । सा सप्तमीयुतेति दिवोदासः । भाद्रकृष्णसप्तम्यां
शीतलाव्रतम् । तत्र पूर्वा ग्राह्येति हेमाद्रौ ।

हलषष्ठी ।

शीतलासप्तमी ।

अथ जन्माष्टमी ।

श्रीतलासप्तमी ।

अथ जन्माष्टमी । सा च कृष्णादिमासेन भाद्रपदकृष्णाष्टमी ।
‘तथा भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे । अष्टाविंशतिमे जातः
कृष्णोऽसौ देवकीसुतः’ ॥ इति कल्पतरौ ब्रह्मोक्तेः । अत्रेदं
माधवमतम् । अष्टमी द्वेधा । जन्माष्टमी जयन्ती चेति । तत्राद्या
क्रैवलाष्टमी । ‘ये न कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । ते भवन्ति नराः प्राज्ञ-

व्याला व्याघ्राश्च कानने' ॥ इति स्कांदात् । 'दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रो-
हिणीकला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्' ॥ इति पुराणान्तरात् । 'श्रावणे
बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः' ॥ इति
भविष्योक्तेश्च केवलाष्टम्या एवोपोष्यत्वावगतेः । सैव रोहिणीयुक्ता जयन्ती । 'कृष्णा-
ष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी यदि । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता उपोष्या सा प्रय-
त्नतः' ॥ इति वह्निपुराणात् । 'अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणी ऋक्षसंयुता । भवेत्
ऋषपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता' ॥ इति विष्णुरहस्यादिवचनाच्च ॥
ज्योतिरादिवत्संज्ञया कर्मभेदः ॥ रोहिणीयोगश्चाहोरात्रं मुख्यः । निशीथमात्रे मध्यमः ।
दिवसादावधमः । 'अहोरात्रं तयोर्योगो ह्यसंपूर्णो भवेद्यदि । मुहूर्तमप्यहोरात्रे योगश्चेत्ता-
मुपोषयेत्' ॥ इति वसिष्ठसंहितोक्तेः । 'अर्धरात्रे तु योगोयं तारापत्युदये सति ।
नियतात्मा शुचिः स्नातः पूजां तत्र प्रवर्तयेत्' ॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः । 'वासरे वा
निशायां वा यत्र स्वल्पापि रोहिणी । विशेषेण नभोमासे सैवोपोष्या मनीषिभिः' ॥
इति पुराणान्तराच्च । विशेषेणेति श्रुतेर्भाद्रपदेऽपीदम् । 'श्रावणे वा नभस्ये तु' इति
वक्ष्यमाणात् । गौडास्तु-निशीथ एव रोहिणीयोगे जयन्ती नान्यथेत्याहुः । तन्न ।
'वासरे निशायां' इति विरोधात् । योगविशेषादुणात् फलमित्यन्ये । तेष्यकरणे दोष-
श्रुतेरुपेक्ष्याः ॥

तत्र जन्माष्टमीव्रतं नित्यं पूर्वोक्तवचनेषु अकरणे निन्दाश्रुतेः । 'वर्षेवर्षे तु या नारी
कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । न करोति महाप्राज्ञ व्याली भवति कानने' ॥ इति स्कांदे
वीप्साश्रुतेश्च । 'न करोति नरो यस्तु' इति पूर्वमुक्तेरत्र स्त्रीलिङ्गमतन्त्रम् । मदन-
रत्ने स्कांदे त्वत्र फलमप्युक्तम् । 'जन्माष्टमीव्रतं ये वै प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः । कार-
यन्त्यथवा लोकाल्लक्ष्मीस्तेषां सदा स्थिरा ॥ सिध्यन्ति सर्वकार्याणि कृते जन्माष्टमी-
व्रतम्' ॥ इति ॥

जयन्तीव्रतं तु नित्यं काम्यं च । 'महाजयार्थं कुरुतां जयंतीं मुक्तयेनव । धर्म-
मर्थं च कामं च मोक्षं च मुनिपुङ्गव ॥ ददाति वाञ्छितानर्थान् ये चान्येष्यतिदु-
र्लभाः' ॥ इति स्कांन्दादौ फलश्रुतेः । 'शूद्रान्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्य भोजने ।
तत् पापं लभते कुन्ति जयन्तीविमुखोनरः ॥ न करोति यदा विष्णोर्जयन्तीसंभवं
व्रतम् । यमस्य वशमापन्नः सहते नारकीं व्यथाम्' ॥ इत्यकरणे निन्दाश्रुतेश्च । यदा च
पूर्वेद्युः परेद्युर्वा रोहिणीयोगस्तदा जन्माष्टमी जयन्त्यामन्तर्भूता ज्ञेया । न तु जन्माष्ट-
मीव्रतं पृथक्कार्यम् । विष्णुशृङ्खलवत् । तदुक्तं माधवेनैव- 'यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्यो
योगो जन्माष्टमी तदा ॥ अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादक्षयोगप्रशस्तितः' ॥ इति ।
मदनरत्ननिर्णयामृतगौडमैथिलमतेष्वेवम् । हेमाद्यादयस्तु- 'रोहिणीसंयुतो-
पोष्या सर्वावौघविनाशिनी । अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं कलया वा यदा भवेत् ॥ जयन्ती नाम

सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी' । इत्यग्निपुराणादर्धरात्र एव रोहिणीयोगस्य प्राश-
स्त्यात् । मुहूर्तमपि लभ्येतेत्यादीनां चार्धरात्रयोगेष्युपपत्तेर्न जयन्तीव्रतं भिन्नम् ।
तत्त्वं तु हेमाद्रिमतेपि जयन्तीव्रतं भिन्नमेव । 'उदये चाष्टमी' इत्यस्य तेन जयन्ती-
परत्वोक्तेः । किंच 'रोहिण्यामर्धरात्रे च यदा कृष्णाष्टमी भवेत् । तस्यामभ्यर्चनं शौरे-
हन्ति पापं त्रिजन्मजम्' ॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः । 'समायोगे तु रोहिण्यां निशीथे
राजसत्तम । समजायत गोविंदो बालरूपी चतुर्भुजः ॥ तस्मात्तं पूजयेत्तत्र यथावित्तानु-
रूपतः' ॥ इति ब्रह्मपुराणाच्चार्धरात्रस्य कर्मकालत्वमवसीयते । अतः 'कर्मणो यस्य
यः कालः' इत्यादिवचनात् पूर्वत्रैव प्राप्तेः परदिने सतोपि रोहिणीयोगस्य न प्रयोजक-
त्वम् । अन्यथा बुधवारादेरपि तत्त्वापत्तेः । किं च जयन्तीशब्दो रात्रिविशेषवचनः ।
'अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी । मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः' ॥
इति ब्रह्माण्डपुराणात् । तेन तद्योगिरोहिण्यां गौणत्वान्न व्रतभेदः । यत्तु- 'वासरे
वा निशायां वा' इति तत्कैमुतिकन्यायेन निशीथयोगस्यैव स्तुत्यर्थं पूर्वदिनेऽर्धरात्रयो-
गाभावे प्राशस्त्यार्थम् । यद्यपि 'दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला । रात्रि-
युक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्' ॥ इत्यनेन रोहिणीयोगाभावेऽर्धरात्रव्याप्तेर्ग्राह्यतोक्ता
तथापि यस्मिन् वर्षे जयन्तीयोगो नास्ति तत्र जयन्तीव्रतलोपे प्राप्ते अष्टमीमात्रेपि जय-
न्तीव्रतं कार्यमित्येवंपरमिति तदाशयः । अत्र हि- 'सत्रायापूर्य विश्वजिता यजेत् । एषा-
मसम्भवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः' ॥ इति ब्रह्मोहिणीयोगाभावे विधानात् तत्कार्यापत्तिः
स्यात् । अत एवोक्तम्- 'जयन्ती नाम शर्वरी' इति ।

यत्र स्कान्दे- 'उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि । भवते बुधसंयुक्ता प्राजा-
पत्यर्क्षसंयुता ॥ अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वाथ वा न वा' ॥ इति । यच्च पाद्मे- 'प्रेत-
योनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं तु तैः । यैः कृता श्रावणे भासि अष्टमी रोहिणीयुता ।
किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः । किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा' ॥
इति तद्दानादिविषयम् ॥ उपवासाश्रवणादित्यनन्तभट्टः । जयन्तीपरमिति हेमाद्रिः ।
उदये चन्द्रोदय इति केचित् । तन्न । चन्द्रोदयसत्त्वसन्देहात् । 'नवमी सकला' इत्य-
योगान्मानाभावाच्च । तेन पूर्वद्युः सप्तमीवेधे परदिने सूर्योदये घटिकापि ग्राह्या । पूर्ववि-
द्वाष्टमीति पाद्मोक्तेरिति युक्तम् । अतो न व्रतभेदो नाप्यन्तर्भाव इत्युचिवान् ।
गौडास्तु- 'नवमीक्षयपरमिदं वचनम् । 'नवमी सकला यदि' इति विशिष्योक्तेः ।
एतत्पूर्वदिने जयन्त्यभावपरमित्याहुः । जयन्त्यादिसर्वापवादोयमिति चूडामण्यादयः ।
वयं तु सत्यं व्रतभेदः । लोकास्तु जन्माष्टमी मेवानुतिष्ठन्ति । न हि 'श्रावणे वा नभस्ये
वा रोहिणीसहिताष्टमी । यदा कृष्णा नरैर्लब्धा सा जयन्तीति कीर्तिता ॥ श्रावणे न
भवेद्योगो नभस्ये तु भवेद् ध्रुवम्' ॥ इति माधवीये वसिष्ठसंहितोक्तावापि भाद्रे
जयन्ती केनापि क्रियते । अतः पूर्वद्युरेवोपवासः । यद्वा गुणात्फलम् । 'सप्तमे ब्रह्मवर्च-

सकाममुपनयेत्' इतिवदित्यन्ये तन्न । नित्यत्वानुपपत्तेः । अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव मास इत्यन्ये तन्न । एकवाक्ये उभयनिर्देशे वाशब्दद्वयायोगात् । अतो जयन्तीव्रतस्यापि नित्यत्वादुपवासद्वयं कार्यमिति ब्रूमः । अत एव हेमाद्रिमदनरत्नादौ जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च भिन्नमुक्तम् । भिन्नकालत्वात्सर्वथा तावदन्तर्भावो नेति सिद्धम् । यदपि पूर्वा परा वाल्पापि रोहिणीयुतैव कार्येति ग्रन्थानां तत्त्वं प्रतीयते तदपि जयन्तीपरमेव । इदं च काम्यमेवेत्यनन्तभट्टः । तद्दूषणं हेमाद्रौ ज्ञेयम् । नित्यं काम्यमिति तु बहवः ॥

ननु यथा विष्णुशृङ्खलयोगेन श्रवणद्वादशीवामनजयन्त्यादिसर्वसिद्धिः । यथा वैकादशी स्वल्पापि परा तथा 'कलाकाष्ठासुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः । नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता न हि' ॥ इत्यादि वचनादर्धोदयादिवद्योगाधिक्ये फलाधिक्यात् परैव जन्माष्टमी युक्तेति चेत् वार्तामात्य । न हि तत्र व्रतभेदो द्वयोर्नित्यत्वं द्वयोरकरणे दोषो वा श्रुतः । इह त्वेतैस्त्रिभिर्हेतुभिः संज्ञाभेदाद्धर्मभेदात्कालभेदाच्चोपवासभेदः स्पष्ट एव । एकदैवत्वाच्छ्रवणद्वादशीवन्न पारणालोपदोषोपि । तेन व्रतद्वयमेव युक्तम् । द्वयोरपि नित्यत्वात् । केचित्तु—'त्रेतायां द्वापरे चैव राजन् कृतयुगे तथा । रोहिणीसहिता चेयं विद्वद्भिः समुपोषिता ॥ अतः परं महीपाल संप्राप्ते तामसे कलौ । जन्मना वासुदेवस्य भविता व्रतमुत्तमम्' इति हेमाद्रौ वद्विपुराणात् । कलौ जन्माष्टमीव्रतमेव न जयन्तीव्रतमित्याहुः ॥ तन्न । 'तामसे कलौ' इत्युक्तेः । परमश्रेयो-हेतोरस्य कलौ पापिनां दुर्लभत्वमुच्यते । तेन कलौ तामसा न करिष्यन्ति । किं तु धन्या एवेत्यर्थः । अन्यथा 'शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगे कलौ' । इत्यादौ विधिकल्पनापत्तेः ॥

अत्र निशीथवेध एव ग्राह्यः । पूर्वोक्तवचनेषु तस्यैव मुख्यकालत्वोक्तेः । 'अष्टमी शिवरात्रिश्च ह्यर्धरात्रादयो यदि । दृश्यते घटिका या सा पूर्वविद्धा प्रकीर्तिता' ॥ इति माधवीये पुराणान्तरात् । 'अर्धरात्रे तु रोहिण्यां यदा कृष्णाष्टमी भवेत् । तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्' ॥ इति भविष्योक्तेः । 'अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्यर्धे दृश्यते यदि । मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम्' ॥ इति वशिष्ठसंहितोक्तेश्च ॥

तत्राष्टमी द्वेधा रोहिणीरहिता तद्युता च । आद्यापि चतुर्धा । पूर्वेष्वरेव निशीथयोगिनी परेष्वरेवोभयेद्युनुभयेद्युश्चेति । तत्राद्ययोरसन्देह एव कर्मकालव्याप्तेः । 'जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्' ॥ इति भृगूक्तेश्च ॥ अस्मात्केवलरोहिण्युपवासोपि सिद्धः । अन्त्ययोः परैव । प्रातःसंकल्पकालव्याप्तेराधिक्यात् । 'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी' । इति ब्रह्मवैवर्त्ताच्च । एवमंशतः समव्याप्तावपि विषमव्याप्तौ त्वाधिक्येन निर्णयः ॥

रोहिणीयुतापि चतुर्धा । पूर्वेंद्युरेव निशीथे रोहिणीयुता परेद्युरेवोभयेद्युरनुभये-
द्युश्च । अत्राप्याद्ययोरसंदेहः । 'कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणीसाहिताष्टमी' । इति
पाद्मोक्तेः । 'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्' । इति गारुडाच्च । 'सप्तमीस-
हिताष्टम्यां निशीथे रोहिणी यदि । भविता साष्टमी पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ' । इति
वह्निपुराणाच्च । द्वितीये त्वसंदेह एव । तृतीयपक्षे परैव । 'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयु-
ताष्टमी । सऋक्षापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी' ॥ इति ब्रह्मवैवर्तात् । चतुर्थ्यापि
त्रेधा । पूर्वेंद्युर्निशीथेष्टमी परेहि रोहिणी परेह्यष्टमी पूर्वेंहि रोहिणी । उभयेद्युरभयस्य
निशीथसंवन्धो वा इति । आद्ये परेद्युर्जयन्तीयोगस्य सत्त्वात् परैवेति माधवः । तदुक्तं
तेनैव 'यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्ययोगो जन्माष्टमी तदा । अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादृक्षयो-
गप्रशस्तितः' ॥ इति । पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने । मुहूर्तमपि संयुक्ता
संपूर्णा साष्टमी भवेत् ॥ कलाकाष्ठासुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः । नवम्यां सैव
ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता न हि' ॥ इति पाद्मोक्तेश्च । हेमाद्रिस्त्वाह-'अष्टम्याः
प्राधान्यात्तस्याश्च पूर्वेंद्युः कर्मकालव्यापित्वात् पूर्वैव । पाद्मं तु पूर्वेंहि निशीथेष्टम्यभावे
ज्ञेयम् । अन्तर्भावोक्तिस्तु पूर्वदन्ध्रणमात्रमिति । अन्ये तु पूर्वविद्धाष्टमीवाक्येन जन्मा-
ष्टम्यां सूर्योदये सप्तमीविधनिषेधात् कलाघटीमात्राप्यौदयिकी ग्राह्या । 'कार्या विद्धापि
सप्तम्या' इति जयन्तीपरम् । 'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्' । इत्येकवाक्य-
त्वात् । तत्रापि द्वयोर्नित्यत्वात्कालभेदाच्चोपवासद्वयं भवत्येव । यदा तु केवलाष्टमी
शुद्धाधिका तदा त्यागहेतोः सप्तमीविधस्याभावात् पूर्वैव । यदि वा विद्धन्यूना तदा पर-
दिने ग्राह्यतिथेरभावात् पूर्वैव । एवं सर्वाण्यौदयिकवाक्यानि सप्तमीविधपराणि । 'जन्मा-
ष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि । विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमाचरेत्' ॥ इति
व्यासोक्तेर्विद्धायाः क्षये शुद्धनवम्यामुपवासः । दशमीविधे द्वादश्युपवासवदित्याहुः । ते
निर्मूलत्वादुपेक्ष्याः । 'मुहूर्तमपि संयुता' इति रोहिणीयोगे त्याज्यत्वोक्तेः । तिथ्यन्त-
पारणवाक्यानां निर्विषयत्वापत्तेः । न च जयन्तीपराणि शुद्धाधिकापराणि वा तानि ।
भृग्व्याद्यैः पूर्वविद्धाष्टम्यामपि तिथ्यन्ते पारणोक्तेः । तेन 'कलाकाष्ठा' इति वाक्यान्तर-
वशाज्जयन्तीपरमेतत् ॥

तत्त्वं तु अष्टम्याः कर्मकालव्याप्तेः । 'दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणी-
कला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणन्दुसंयुताम्' ॥ इति । पूर्वोक्तवाक्यै रोहिणीयोगा-
भावे ग्राह्यत्वोक्तेर्वचनात् कर्मकालव्यापिनीं त्यक्त्वा पूर्वा परा वाल्पापि रोहिणीयुता
ग्राह्या । माधवमदनरत्ननिर्णयामृतानन्तभट्टगौडमैथिलग्रन्थादिष्वप्येवमिति ।
युक्तं तु उपवासद्वयं कार्यम् । द्वयोर्नित्यत्वादिति तु वयम् । अन्त्ययोः परैव । 'सप्तमी-
संयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम । प्राजापत्यं द्वितीयेहि मुहूर्तार्द्धं भवेद्यदि ॥ तदाष्ट-
यामिकं पुण्यं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा' ॥ इति स्कान्दात् । 'मुहूर्तेनापि संयुक्ता संपूर्णा

साष्टमी भवेत् । किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा' ॥ इति पाद्माञ्चेति दिक् । निम्बादित्योपासकास्तु जन्माष्टमीरामनवमीशिवरात्र्यादौ पूर्वोद्दि कर्मकालीनां तिथिं त्यक्त्वा त्रिद्विमुहूर्ता परैव तिथिर्ग्राह्या । 'उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरूपोषणे । निम्बार्को भगवान्येषां वाञ्छितार्थफलप्रदः' ॥ इति हेमाद्रौ मात्स्योक्तमुक्तिसप्तमीव्रते भविष्योक्तेरित्याहुः । तन्न । 'यदि द्वितीये दिवसे तु ऋक्षतिथ्योर्युतिः स्यान्न तदोपवासः । 'पूर्वे प्रकुर्याद्विषसे द्वितीये दिने शभक्तोऽथ तदा व्रतोद्यमः' ॥ इति मात्स्यवाक्येन तत्रैव उपसंहारात्सर्वार्थत्वेन मानाभावात् ऋक्षतिथ्योर्हस्तसप्तम्योः । अन्यथा ऋषिपञ्चम्यादौ तदापत्तिः । शिष्टाचाराच्चेति चेत् न । तस्य न्यायवचोविरोधेन हेयत्वात् । इदानीं कापि निम्बार्कोपासनाभावाच्चेति

जन्माष्टमीपारणम् ।

संक्षेपः ॥

पारणं तु—'तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम् । तस्मात् प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम् ॥ ' इति ब्रह्मवैवर्तात् । 'तिथ्यृक्षयोर्यदा छेदो नक्षत्रान्तमथापि वा । अर्धरात्रेथ वा कुर्यात्पारणं त्वपरेहनि' ॥ इति हेमाद्रौ वचनाच्चाध्वरात्रेप्युभयान्ते न्यतरान्ते वेति मुख्यः पक्षः । 'सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते । ' इति ब्रह्मवैवर्त त्वन्यविषयं दिने मुख्यकाललाभेऽन्यतरान्ते वा ज्ञेयम् । गौडास्तु—'न रात्रौ पारणं कुर्याद्वते वै रोहिणीव्रतात् । तत्र निश्यपि तत्कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम्' ॥ इति ब्रह्माण्डपुराणाद्रात्रौ सार्धप्रहरमध्ये कार्यमित्याहुः 'महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं मध्ययामयोः' तथा—'मध्यमप्रहरमात्रे विज्ञेया तु महानिशा' । इति स्मृत्यन्तरात् । कल्पतरौ मदनरत्ने चैवम् । कामधेनौ गर्गस्तु—'महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम्' । इत्याह । वृद्धशातातपस्तु—'महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमयामयोः' । इत्याह । वेदपाठपरमेतदित्यन्ये । महानिशायामन्यतरान्ते तृतीयदिने पारणम् । 'अपरेहनि' इति पारणोत्तरदिनपरत्वात् । उभयान्तापेक्षणादित्याहुः । तत्त्वं तु महानिशातोर्वागन्यतरान्तलाभे महानिशानिषेधः । महानिशायामेव लाभे तत्रैव पारणमिति । दिवोदासस्तु—'रजनीप्रहरं यावत् प्रवृत्तिः कर्मणो मता । पारणं तावदेष्टं प्रमादान्न भवेद्यदि' ॥ इति स्कान्दादूर्ध्व निषेधमाह तन्निर्मूलम् । अशक्तौ तु बह्निपुराणे—'भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारत पारणम्' । इति । गारुडे विष्णुधर्मे च—'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत् । तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम् ॥' अशक्तौ तु—तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामद्वयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा' ॥ स एवोत्सवान्त इति कालादर्शोक्तेश्चेति संक्षेपः ।

अष्टम्यां विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—'ततोष्टम्यां तिलैः स्नातो नद्यादौ विमले जले । सुदेशे शोभनं कुर्यादेवक्याः सूतिकाग्रहम् ॥ तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता । काञ्चनी राजती ताम्री पैतली मृण्मयी तथा ॥ वाक्षीं मणिमयी चैव वर्णकै-

लिखिताथ वा । सर्वलक्षणसंपूर्णा पर्यंके च पटावृते ॥ देवकीं तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे
 सृतिकागृहे । प्रस्तुतां च प्रसृतां च स्थापयेन्मञ्चकोपरि ॥ मां तत्र बालकं सुप्तं पर्यंके
 स्तनपायिनम् । यशोदां तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सृतिकागृहे ॥ तद्वच्च कल्पयेत्पार्थ प्रसूतव-
 रकन्यकाम् । कश्यपो वसुदेवोयमदितिश्चैव देवकी ॥ शेषो वै बलभ-
 द्रोयं यशोदा क्षितिरेन्वभूत् । नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः ॥
 गौर्वेनुः कुञ्जरश्चैव दानवाः शस्त्रपाणयः । लेखनीयाश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्वदे ॥
 इत्येवमादि यत्किञ्चिच्छक्यते चरितं मम । लेखयित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तितत्परः ॥
 मन्त्रेणानेन कौन्तेय देवकीं पूजयेन्नरः ॥ गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणा-
 निनादैः शृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरकृतकैरैः किंकैः सेव्यमाना । पर्यंके स्वास्तुते या मुदित-
 तरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता जयाति सुतनया देवकी कान्तरूपा ॥
 पादौ संवाहयन्ती श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके । निषण्णा पंकजे पूज्या नमो देव्यै श्रिये
 इति ॥ अर्धरात्रे वसोर्धारां पातयेद्बुडसर्पिषा । नाडीवर्धापनं षष्ठी नामादेः करणं मम ॥
 ततो मन्त्रेण वै दद्याच्चन्द्रायार्घ्यं समाहितः । शंखे तोयं समादाय सपुष्पकुशचन्दनम् ॥
 जानुभ्यां धरणीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् । क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ॥
 गृहाणार्घ्यं शशांकेदं रोहिण्या सहितो मम । ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां
 पते । नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् ॥ यथा पुत्रं हरिं लब्ध्वा प्राप्ता ते
 निर्वृतिः परा । तामेव निर्वृतिं देहि सुपुत्रं दर्शयस्व मे' ॥ इति देवक्यर्घ्यः ॥ 'ततः
 पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा यामेयामे प्रपूजयेत् । प्रभाते ब्राह्मणाञ्च शक्त्या भोजयेद्भक्तिमान्नरः ॥
 ओं नमो वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्ज-
 येत् ॥ ' इदं प्रतिमासकृष्णाष्टम्यामप्युक्तं मदनरत्ने वह्निपुराणे- 'प्रतिमासं च ते
 पूजामष्टम्यां यः करिष्यति । मम चैवाखिलान् कामान् स संप्राप्स्यत्यसंशयम्' ॥ तथा
 'अनेन विधिना यस्तु प्रतिमासं नरेश्वर ॥ करोति वत्सरं पूर्णं यावदागमनं हरेः ॥ दद्या-
 च्छय्यां सुसंपूर्णां गोभी रत्नैरलंकृताम्' ॥ इति जन्माष्टमीव्रतम् ।

कुशग्रहणम् ।

भाद्रामावास्यायां कुशग्रहणमुक्तं हेमाद्रौ हारीते च- 'मासे
 नभस्यमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः । अयातयामास्ते दर्भा विनियो-
 ज्याः पुनःपुनः' ॥ नभाः श्रावणः । तेन दर्शान्तमासे जन्माष्टम्यनन्तरं दर्शो लभ्यते ।
 मदनरत्ने तु 'मासे नभस्येमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः' इति मरीचिवाक्यमुक्त-
 म् । नभस्यो भाद्रपदः । तेन महालयान्तर्गतदर्शो लभ्यते । अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्या-
 मेक एव दर्श इत्यन्ये ।

हरितालिकाव्रतम् ।

भाद्रपदशुक्लतृतीयायां हरितालिकाव्रतम् । तत्र परा ग्राह्या
 'सुहूर्तमात्रसत्त्वोपि दिने गौरीव्रतं परे । शुद्धाधिकायामप्येवं गणयो

गप्रशंसनात्' ॥ इति माधवीक्तेः । चतुर्थीयुक्तायां फलाधिक्यं माधवीये आपस्तम्बः—चतुर्थीसहिता या तु सा तृतीया फलप्रदा । अवैधव्यकरा स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ॥ द्वितीयायोगे प्रत्यवायमाह स एव—'द्वितीयाशेषसंयुक्तां या करोति विमोहिता । सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः' ॥ इति । 'आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका । चतुर्थीमिश्रितां स्त्रीभिर्दिवानक्ते विधीयते ॥ तृतीया नभसः शुक्ला मधुश्रावणिका स्मृता । भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका' ॥ इति दिवोदासोदाहृतवचनाच्च ॥

वरदचतुर्थी ।

भाद्रशुक्लचतुर्थी वरदचतुर्थी । सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप' । इति हेमाद्रौ भविष्ये । तत्रैव पूजोक्तेः । मदनरत्नेष्वेवम् । परदिने एवांशेन साकल्येन वा मध्याह्नव्याप्त्यभावे सर्वपक्षेषु पूर्वा ग्राह्या । तथा च बृहस्पतिः—'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत् परेहनि' ॥ इति । 'मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थी गणनायके । मध्याह्ने परतश्चेत्स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते' ॥ इति माधवीये स्मृत्यन्तराच्च । तत्र गणेशरूपं स्कान्दे—'एकदन्तं शूर्पकर्णं नागयज्ञोपवीतिनम् । पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम्' ॥ इति । इयं रविभौमयोरतिप्रशस्ता । 'भाद्रशुक्लचतुर्थी या भौमेनार्केण वा युता । महती सात्र विघ्नेशमर्चित्वेष्टं लभेन्नरः' ॥ इति निर्णयामृते वाराहोक्तेः ॥

अत्र चन्द्रदर्शनं निषिद्धम् । तथा चापराके मार्कण्डेयः—'सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् । मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा' ॥ इति । चतुर्थ्यां न पश्येदित्यन्वयः । प्रधानक्रियान्वयलाभात् । तेन चतुर्थ्यामुदितस्य पञ्चम्यां न निषेधः । गौडा अप्येवमाहुः । पराशरोपि—'कन्यादित्ये चतुर्थ्यां तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम् । मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा ॥ तदोपशान्तये—'सिंहः प्रसेनमिति वै पठेत्' । इति । श्लोकस्तु विष्णुपुराणे—'सिंहः प्रसेनमवधीर्त्सिहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः' ॥ इति ॥

ऋषिपञ्चमीव्रतम् ।

भाद्रपदशुक्लपञ्चमी ऋषिपञ्चमी । सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः' । इति माधवीये हारीतोक्तेः । दिनद्वये तत्त्वे हेमाद्रिमते परा । 'सिता परयुता स्यात् पञ्चमी' इति दीपिकोक्तेः । माधवमते पूर्वा । 'सर्वत्र पञ्चमी पूर्वा' इत्युक्तेः । युग्मवाक्यान्निर्णयस्तु युक्तः । ऋषिपञ्चमी षष्ठीयुतैवेति दिवोदासः । अत्र ऋषीन् प्रतिमासु पूजयित्वाऋष्टभूमिजशाकेन वर्तनम् । एवं सप्तवर्षाणि कृत्वा सप्तकुम्भेषु प्रतिमासु संपूज्य परेहि तत्तन्मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तिलान् हुत्वा सप्त ब्राह्मणान् भोजयेदिति निर्णयामृते ।

सूर्यपृष्ठी ।

भाद्रशुक्लषष्ठी सूर्यपृष्ठी सा सप्तमीयुतैवेति दिवोदासः । 'शु-
 क्राभाद्रपदे षष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनम् । प्राशनं पञ्चगव्यस्य अश्वमे-
 धफलाधिकम्' ॥ इति वचनात् । कल्पतरौ भविष्ये- 'येयं भाद्रपदे मासि षष्ठी स्या-
 द्भरतर्षभ । योस्यां पश्यति गाङ्गेयं दक्षिणापथवासिनम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापैस्तु मुच्यते
 नात्र संशयः' ॥ गाङ्गेयः स्वामिकार्तिकेयः ।

मुक्ताभरणम् ।

भाद्रपदशुक्लसप्तम्यां मुक्ताभरणव्रतम् ॥ तत्र सप्तमी पूर्वायुता
 ग्राह्या । 'पण्मुन्योः' इति युग्मवाक्यात् । भाद्रपदशुक्लाष्टमी दूर्वा-
 ष्टमी सा पूर्वा ग्राह्या । 'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धा
 तु कर्तव्या शिवरात्रिर्वलेदिनम्' ॥ इति हेमाद्रौ बृहद्यमोक्तेः । 'शुक्लाष्टमी-
 तिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत् । दूर्वाष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधी-
 यते' इति पुराणसमुच्चयाच्च । यत्तु- 'मुहूर्ते रौहिणेष्टम्यां पूर्वा वा यदि वा
 दूर्वाष्टमी । परा । दूर्वाष्टमी तु सा कार्या ज्येष्ठां मूलं च वर्जयेत् ॥ इति तत्रैव परा
 कार्येत्युक्तम् । तत्पूर्वदिने ज्येष्ठादियोगे द्रष्टव्यम् । 'दूर्वाष्टमी सदा
 त्याज्या ज्येष्ठा मूलक्षसंयुता' तथा- 'ऐंद्रक्षे पूजिता दूर्वा हंत्यपत्यानि नान्यथा । भर्तुरा-
 युर्हरा मूले तस्मात्तां परिवर्जयेत्' ॥ इति तत्रैव तन्निषेधात् । इदमगस्त्योदये
 कन्यार्के च न कार्यम् । 'शुक्लाभाद्रपदे मासि दूर्वासंज्ञा तथाष्टमी । सिंहार्क एव कर्तव्या
 न कन्यार्के कदाचन ॥ सिंहस्थे सौत्तमा सूर्येनुदिते मुनिसत्तम' ॥ इति मदनरत्ने
 स्कांदोक्तेः । 'अगस्त्ये उदिते तात पूजयेदमृतोद्भवाम् । वैधव्यं पुत्रशोकं च दश
 वर्षाणि पंच च' इति तत्रैव दोषोक्तेश्च । भाद्रपदशुक्लाष्टम्यामगस्त्योदये भाविनि सति
 पूर्वकृष्णाष्टम्यामेव कुर्यादिति हेमाद्रिः । दीपिकाप्येवम् । इदं च व्रतं स्त्रीणां नि-
 त्यम् । 'या न पूजयते दूर्वा मोहादिह यथाविधि । त्रीणि जन्मानि वैधव्यं लभते नात्र
 संशयः ॥ तस्मात्संपूजनीया सा प्रतिवर्षं वधूजनैः' । इति । पुराणसमुच्चयात् । यदा
 ज्येष्ठादिकं विनाष्टमी न लभ्यते तदा तत्रैवोक्तम् । 'कर्तव्या चैकभक्तेन ज्येष्ठा मूलं यदा
 भवेत् । दूर्वामभ्यर्चयेद्भक्त्या न वन्ध्यं दिवसं नयेत्' ॥ इति । अत्र विधिर्मदनरत्ने
 भविष्ये- 'शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम । स्थाप्य लिंगं ततो गंधैः पुष्पैर्धूपैः
 समर्चयेत् ॥ दध्यक्षतैर्द्रिजश्रेष्ठ अर्घ्यं दद्यात्त्रिलोचने । दूर्वाशमीभ्यां विधिवत्पूजयेच्छुद्ध-
 यान्वितः' ॥ मन्त्रस्तु- 'त्वं दूर्वेमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः । सौ-
 भाग्यं संततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि
 महीतले । तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरम्' ॥ इति । अत्रानग्निपक्वं भक्षयेत् ।
 'अनाग्निपक्कमश्रीयादन्नं दधिफलं तथा । अक्षारलवणं ब्रह्मन्नश्रीयाब्मधुनान्वितम्' ॥ इति
 तत्रैव भविष्योक्तेः ॥ भाद्रपदेधिमासे सति निर्णयदीपेस्कान्दे- 'अधिमासे तु संप्राप्ते
 नभस्य उदये मुनेः । अर्वाग्दूर्वाव्रतं कार्यं परतो नैव कुत्रचित्' ॥

दूर्वापूजा ।

अत्रैव ज्येष्ठापूजोक्ता माधवीये स्कान्दे—‘मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठार्क्षसंयुता । रात्रिस्तस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्’ ॥ इति ॥

इयं ज्येष्ठायोगवशेन पूर्वा परा वा ग्राह्या । दिनद्वययोगे परा । पूर्वोद्दि रात्रियोगे पूर्वैव । ‘नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः । मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठार्क्षसंयुता ॥ रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्’ । इति तत्रैवोक्तः । अस्यापवादः—‘यस्मिन् दिने भवेज्ज्येष्ठा मध्याह्नादूर्ध्वमप्यणुः । तस्मिन् हविष्यं पूजा च न्यूना चेत्पूर्ववासरे’ ॥ इति । इदं केवलतिथौ नक्षत्रे चोक्तम् । तत्रार्घ्यं केवलतिथौ कार्यम् । अंत्यं केवलर्क्षे । तदुक्तं मात्स्ये—‘प्रत्याब्दिकं तिथावुक्तं यज्ज्येष्ठादैवतं व्रतम् । प्रतिज्येष्ठाव्रतं यच्च विहितं केवलोडुनि ॥ तिथावेवाचरेदार्यं द्वितीयं केवलर्क्षतः । इति । अत एव मद-नरत्ने भविष्ये नक्षत्रमात्रे उक्तम् । ‘मासि भाद्रपदे पक्षे शुक्ले ज्येष्ठा यदा भवेत् । रात्रौ जागरणं कृत्वा एभिर्मन्त्रैश्च पूजयेत्’ ॥ इति । दाक्षिणात्यास्तृक्ष एव कुर्वन्ति । हेमाद्रौ स्कान्देपि—‘मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठार्क्षसंयुते । यस्मिन्कस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्’ ॥ इति । तथा—‘मैत्रेणावाहयेद्देवीं ज्येष्ठायां तु प्रपूजयेत् । मूले विसर्जयेद्देवीं त्रिदिनं व्रतमुत्तमम्’ ॥ इति । मन्त्रस्तु—एहोहि त्वं महाभागे सुरासुर-नमस्कृते । ज्येष्ठे त्वं सर्वदेवानां मत्समीपगता भव’ ॥ इत्यावाह्य । ‘तामग्निवर्णाम्’ इति संपूज्य । ज्येष्ठायै ते नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते नमोनमः । शर्वायै ते नमस्तुभ्यं शांकर्यै ते नमोनमः ॥ ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे ब्रह्मिष्ठे सत्यवादिनि । एहोहि त्वं महाभागे अर्घ्यं गृह्य सरस्वति, ॥ इत्यर्घः ॥

भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां श्रवणयोगराहितायां पारणं कुर्यात् । ‘आभाकासितपक्षेषु’ इति । दिवोदासोदाहृतवचनात् । ‘उपोष्यैकादशीं मोहात् पारणं श्रवणे यदि । करोति हंति तत्पुण्यं द्वादशद्वादशीभवम्’ ॥ इति तत्रैव स्कान्दाच्च ॥ अस्य तत्रैव प्रतिप्रसवः । मार्कण्डेयः—‘विशेषेण महीपाल श्रवणं वर्धते यदि । तिथिक्षये न भोक्तव्यं द्वादशीं लंघयेन्न हि’ ॥ इति । केचित्तु—‘यदा त्वपरिहार्यो योगस्तदा श्रवणनक्षत्रे त्रेधा विभक्ते मध्यमविंशतिघटिकायोगं त्यक्त्वा पारणं कार्यम् । तदुक्तं विष्णुधर्मे—‘श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम्’ । इति । केचिच्चतुर्धा विभज्य मध्यपादद्वयं वर्ज्यमाहुः । अत्र मूलं चिन्त्यम् ।

अत्रैव विष्णुपरिवर्तनोत्सवं कुर्यात् । संध्यायां विष्णुं संपूज्य प्रार्थयेत् । मन्त्रस्तु तिथितत्त्वे उक्तः । ॐ ‘वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव ॥ पाश्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव’ ॥ इति । अत्रैव शक्रध्वजोत्थापनमुक्त-मपरार्के गर्गेण । द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रौष्ठपदे तथा । शक्र-सुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासवे’ ॥

इयमेव श्रवणद्वादशी । तत्रैकादश्यां द्वादशीश्रवणयोगे सैवोपोष्या । 'एका-
 दशी द्वादशी च वैष्णव्यमपि तत्र चेत् । तद्विष्णुशृङ्खलं नाम विष्णु-
 श्रावणद्वादशीव्रतम् । सायुज्यकृद्भवेत्' ॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः । नारदीयेऽपि- 'संस्पृश्यै-
 कादशीं राजन् द्वादशीं यदि संस्पृशेत् । श्रवणं ज्योतिषां श्रेष्ठं ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥
 द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं यदि । स एव वैष्णवो योगो विष्णुशृङ्खलसंज्ञितः' ॥
 इति हेमाद्रौ मास्योक्तेश्च । दिनद्वये द्वादशी श्रवणयोगेपि पूर्वा । निर्णयामृते
 त्वस्य पूर्वार्धमन्यथा पठितम् । 'द्वादशी श्रवणर्क्षं च स्पृशेदेकादशीं यदि' । इति । तेन हेमा-
 द्रिमते एकादश्याः श्रवणयोगाभावोपि तदुक्तद्वादशीयोगमात्रेण विष्णुशृङ्खलं भवति ।
 निर्णयामृतमते तु- 'श्रवणस्यैकादशीद्वादशीभ्यां योग एव विष्णुशृङ्खलं नान्यथोति ।
 यदा निशीथानन्तरं सूर्योदयावधि द्विकलामात्रमपि श्रवणर्क्षं भवति तदापि पूर्वैव । तदुक्तं
 तत्रैव नारदीये इमां प्रकृत्य- 'तिथिनक्षत्रयोर्योगो योगश्चैव नराधिप । द्विकलो यदि
 लभ्येत स ज्ञेयो ह्यष्टयामिकः' ॥ इति । 'द्वादशी श्रवणस्पृष्टा कृत्स्ना पुण्यतमा तिथिः ।
 न तु सा तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते' ॥ इति मदनरत्ने मात्स्याच्च । दिवोदासी
 ये तु- 'रात्रेः प्रथमपादे चेच्छ्रवणं हरिवासरे । तदा पूर्वासुपवसेत् प्रातर्भान्ते च पारणम्'
 इत्युक्तम् । इदं तु निर्मूलत्वात्पूर्वविरोधाच्चोपेक्ष्यम् । इयं बुधवारेऽतिप्रशस्ता । 'बुधश्रवण
 संयुक्ता सव चेद्वादशी भवेत् । अत्यन्तमहती सा स्यादत्तं भवति चाक्षयम्' ॥ इति
 हेमाद्रौ स्कान्दात् । यानि तु पठन्ति- 'उत्तराषाढसंयुक्ता श्रोणा मध्याह्नापि वा ।
 आसुरी सैव तारा स्याद्वन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रोणा द्वादशिका-
 युता । विश्वर्क्षसंयुता सा च नैवोपोष्या शुभेप्सुभिः' ॥ इत्यादीनि विष्णुधर्मस्कांद-
 भविष्यादीनि वचनानि तानि निर्मूलानि । यदपि स्मृत्यर्थसारे- 'उदयव्यापिनी
 ग्राह्या' इत्युक्तम् । यच्च बृहन्नारदीये 'उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशीव्रते' । इति
 तद्यदा शुद्धाधिका द्वादशी परदिन एवोदये श्रवणयोगः पूर्वोहि च तद्विन्ने कालयोगस्त-
 त्परम् । दिनद्वये उदययोगे पूर्वैव । बहुकर्मकालव्याप्तेरित्युक्तम् मदनरत्ने । यदा त्वेका-
 दश्येव श्रवणयुता न द्वादशी तदापि पूर्वैव । 'यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं
 कचिद् । एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता' ॥ इति मदनरत्ने नारदीयो-
 क्तेः । यदा परैवर्क्षयुता तदा परा । तत्र शक्तेनोपवासद्वयं कार्यम् । 'एकादशीमुपोष्यैव
 द्वादशीं समुपोषयेत् । न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्देवतं हरिः' ॥ इति भविष्योक्तेः ॥
 यत्तु विष्णुधर्मे- 'पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रतान्ते विप्रभोजनम् । असमाप्ते व्रते पूर्वं नैव
 कुर्याद् व्रतान्तरम्' ॥ इति । तेदेतद्विन्नपरम् । अत्र गौडाः- 'शृणु राजन् परं काम्यं
 श्रवणद्वादशीव्रतम्' । इति स्थूलशीर्षवचनात् काम्यमेवेदम् । तेनाशक्तस्य नित्यैका-
 दशीव्रतमेवेति मन्यते । द्वादश्यामुपवासेन शुद्धात्मा नृप सर्वशः । चक्रवर्तित्वमतुलं सं-
 ग्रामोत्थुत्तमां श्रियम् ॥ इति गौडनिबन्धे मार्कण्डेयोक्तेश्च । दाक्षिणात्यास्तु-

‘एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषणात् । व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्
इति वराहवामनपुराणोक्तेः । श्रवणद्वादशीव्रतमेवेत्याहुः । भुक्तेति फलाद्याहारपरं
न त्वन्नपरम् । ‘अन्नाश्रितानि पापानि’ इति निषेधात् । ‘उपवासद्वयं कर्तुं न शक्नोति
नरो यदि । प्रथमोहि फलाहारी निराहारोऽपरेहानि’ ॥ इति दिवोदासीये भविष्यो-
क्तेश्च । अशक्तौ तु गृहीतैकादशीव्रतो यस्तं प्रत्युक्तं मात्स्ये । द्वादश्यां शुक्लपक्षे च
नक्षत्रं श्रवणं यदि । उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यां पूजयेद्धरिम्’ ॥ इति पूजयेन्न
तूपवसेदित्यर्थः । अगृहीतैकादशीव्रतश्चेकादश्यां भुक्त्वा द्वादश्यामुपवसेत् । ‘एवमेका-
दशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् । पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्’ ॥ इति
नारदीयोक्तेः ॥

‘पारणं तूभयान्तेऽन्यतरान्ते वा कुर्यात् । ‘तिथिनक्षत्रनियमे तिथिभान्ते च पार-
णम्’ । इति स्कान्दात् । ‘तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत् । पारणं तु न
कर्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः’ ॥ इति नारदीयादिति हेमाद्रिः । यद्यप्यत्र नक्षत्र-
मात्रान्तेऽपि पारणं प्रतिभाति तथापि तिथिमात्रान्ते ज्ञेयम् । न त्वृक्षान्ते । तिथिम-
ध्येऽपि—‘याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः । ऋक्षान्ते पारणं कुर्याद्विना
श्रवणरोहिणीम्’ ॥ इति । विष्णुधर्मे—श्रवणान्तमात्रे पारणनिषेधात् । रोहिण्यां तु
‘भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि’ इति वह्निपुराणात् । तदन्तेऽप्यस्तु न त्वत्रैवमस्तीति न ऋक्षा-
न्तोऽनुकल्प इति मदनरत्ने । असंभवे तु ‘तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदि-
तम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा’ ॥ इति ज्ञेयम् । यत्तु मदनरत्ने—
द्वादशीवृद्धौ श्रवणवृद्धौ वा श्रवणान्त एव पारणं कुर्यात् । ‘पारणं तिथिवृद्धौ तु
द्वादश्यामुडुसंक्षयात् । वृद्धौ कुर्यान्नयोदश्यां तत्र दोषो न विद्यते’ ॥ इति वह्निपुराणा-
दित्युक्तं तत्प्रकरणादेतस्यामेव श्रवणयुक्तैकादश्यां विहितं विजयैकादशीव्रतपरं न तु
श्रवणद्वादशीपरमिति मदनरत्ने । गौडास्तु श्रवणद्वादशीपरमाहुः । अत्र विधि-
र्मदनरत्ने विष्णुधर्मे—‘तस्मिन् दिने तथा स्नानं यत्र कचन संगमे’ । तथा—‘दध्यो-
दनयुतं तस्यां जलपूर्णं घटं द्विजे । वस्त्रसंवेष्टितं दत्त्वा छत्रोपानहमेव च ॥ न दुर्गतिं-

मवाप्नोति गतिमग्न्यां च विन्दति’ ॥ मन्त्रस्तु भविष्ये—घटे जनार्द-

श्रवणद्वादशीविधिः ।
नपूजामभिधाय—‘नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक । अधौघसं-
क्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥ प्रीयतां देवदेवेशो मम संशयनाशनः’ । इति ॥

वामनावतारनिमित्तोपवासस्तु व्रतहेमाद्रौ भविष्ये—‘द्वाद-
श्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रवणेन युधिष्ठिर । सर्वपापप्रशमनः सर्वसौ-
ख्यप्रदायकः ॥ एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेन समन्विता । विजया सा तिथिः
प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा’ ॥ इत्युपक्रम्य—‘अथ काले बहुतिथे गते सा गुर्विणी

भवेत् । सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम् ॥ इत्युक्त्वा-‘एतत्सर्वं समभवदेका-
दश्यां युधिष्ठिर । तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वथा विजया तिथिः ॥ एषा व्युष्टिः समाख्याता
एकादश्यां मया तव ॥ पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता’ ॥ इत्युपसंहारादेका-
दश्यामेव व्युष्टिः फलम् ॥

भागवतेष्टमस्कन्धे तु द्वादश्यां वामनोत्पत्तिरुक्ता-‘श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां
सुहृर्तोभिजिति प्रभुः । ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन्
मध्यंदिनगतो नृप । विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः’ ॥ श्रोणायां चन्द्रे ।
अभिजिच्छ्रवणप्रथमोऽंशः । गौडा अप्येवम् । अत्र कल्पभेदाद्व्यवस्था । तद्विधिश्च
हेमाद्रौ वद्विपुराणे-‘नदीनां संगमे स्नायादर्चयेदत्र वामनम् । सौवर्णवस्त्रसंयुक्तं

द्वादशांगुलमुच्छ्रितम् ॥’ ततो विधिवत्संपूज्य-‘हिरण्येन पात्रेण
वामनपूजाविधिः ।

दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः । नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ तुभ्य-
मर्घ्यं प्रयच्छामि वालवामनरूपिणे । नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे ॥ महा-
हरिपुस्कन्धधृतस्कन्धाय चक्रिणे । नमः शार्ङ्गसीरबाणपाणये वामनाय च ॥ यज्ञभु-
वङ्कुलदात्रे च वामनाय नमोनमः । देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे ॥ प्रभवे सर्व-
देवानां वामनाय नमोनमः । एवं संपूजयित्वा तं द्वादश्यामुदये रवेः ॥ शृंगारस-
हितं तं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् । वामनः प्रतिगृह्णाति वामनोऽहं ददामि ते । वामनं सर्वतो-
भद्रं द्विजाय प्रतिपादये ॥’ इति । अनन्तभट्टोप्याह-‘श्रवणद्वादश्यां जनार्दनना-
मा विष्णुः पूज्यते । श्रवणैकादश्यां वामनावतारः’ इति । श्रवणयुतशुक्लैकादश्यलाभे
तु दशमीविद्वापि श्रवणयुता कार्या । ‘दशम्यैकादशी यत्र सा नोपोष्या भवेत्तिथिः ।
श्रवणेन तु संयुक्ता सा चेत्स्यात्सर्वकामदा ॥’ इति वद्विपुराणादित्युक्तं मदनरत्ने ।
पूजा च मध्याह्ने कार्या । ‘अहो मध्ये वामनो रामरामौ’ इति पूर्वोक्तवचनात् ॥

अत्रैव दुग्धव्रतं संकल्पयेत् । तदुक्तम् । ‘दुग्धमाश्वयुजे मासि’ इति ।

दुग्धव्रतम् ।

अत्रेदं चिन्त्यते । दुग्धव्रते पायसादि वर्ज्यं न वेति । नेति केचित् ।
नाहि प्रकृतिवर्जने विकारवर्जनं युक्तम् । दधिघृतादीनामपि वर्जनापत्तेः । नच यत्र
प्रकृतिरसोपलम्भस्तद्वर्जनमिति वाच्यम् । मांसविकारस्यौष्ठदध्योदनश्चावर्जनापत्तेः ।
तस्माद्दध्यादिकं पायसादि मक्ष्यमिति । अत्र प्रब्रूमः । यत्र विकारे प्रकृतिरसोपलं-
भस्तत्प्रत्यभिज्ञा वा तत्र विकारस्यापि निषेधः । अस्ति च मांसविकारे मांसप्रत्यभिज्ञा
मांसत्वानपायात् । यत्तु औष्ठदध्यादेरनिषेधापत्तिरिति । तत्र । औष्ठमिति विकारस्त-
द्धितेन निषेधात् । तथा च विज्ञानेश्वरः-‘औष्ठमेकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ।’
इत्यत्र औष्ठमिति विकारतद्धिताच्छकृन्मूत्रादीनामपि निषेध इत्याह । नन्वेवं ‘संघिन्य
निर्दशावत्सांगोपयः परिवर्जयेत् ।’ इति संघिन्यादिकीरनिषेधेपि दध्यादिग्रहणं स्यात् ।
सत्यम् । प्राप्तं वचनेन परं निषेधः । तदाहापराकै शंखः-‘क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि

तद्विकाराशने बुधः । सप्तरात्रं व्रतं कुर्यात् प्रयत्नेन समाहितः ॥' इति व्रतं गोमूत्रया-
वकम् । तस्मात्पायसे दुग्धरसोपलम्भाद्वर्जनम् । अत एवामिक्षायां दधिसत्त्वेपि माधुर्यो-
पलम्भात् पयोरूपत्वमुक्तं मीमांसकैः । तदुक्तं—'पय एव घनीभूतमामिक्षेत्यभिधीयते ।'
इति । दध्यादिषु तु तदभावादवर्जनमिति । एवं दध्यादिव्रते न तत्कादीनां निषेधः ।
उक्तोभयहेत्वभावादिति केचित् । पूर्वोक्तशंखवचनात्सर्वविकारनिषेध इति युक्तं प्रतीमः ॥
इति दुग्धव्रतम् ।

अनन्तव्रतम् ।

भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतम् । तत्र त्रिमुहूर्ताप्यौदयिकी
ग्राह्येति माधवः तदुक्तम्—'उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्यानन्तव्रते तिथिः'
इति 'मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्' इति कथायां श्रवणात् । 'उपरि हि देवेभ्यो धारयति'
इतिवद्विधिकल्पनात् । 'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः' । इति माधवीय-
वचनात् । 'मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या' इति तु दिवोदासः । प्रतापमार्तण्डेप्येवम् ।
इदमेव च युक्तम् । निर्णयामृते तु—'घटिकामात्राप्यौदयिकी' इत्युक्तम् । 'तथा
भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम । पौर्णमास्याः समायोगे व्रतं चानन्तकं चरेत् ॥'
इति भविष्योक्तेः ॥ 'मुहूर्तमपि चेद्भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी । संपूर्णां तां विदुस्तस्यां
पूजयेद्विष्णुमध्ययम्' ॥ इति स्कान्दाच्चेति अत्र मूलं चिन्त्यम् । द्व्यहौ औदयिकत्वे
पूर्णत्वात्पूर्वेति युक्तम् । तत्त्वं तु विध्यर्थवादयोर्भिन्नार्थत्वे एकवाक्यतायोगात् । संदिग्धेषु
एकवाक्यत्वात् इति न्यायेन पूर्वा परा वा मध्याह्नव्यापिन्येव मुख्या । माधवस्तु
सामान्यवाक्यान्निर्णयं कुर्वन् भ्रान्त एव । अनन्तव्रतस्य पुराणान्तरेष्वभावान्निबन्धान्त-
रेष्वभावाच्च वचनं निर्मूलमेवेति ।

अथागस्त्यार्घ्यम् । तत्कालो व्रतहेमाद्रौ भविष्ये—'कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वै
सप्तमे दिने।कन्यायां समनुप्राते ह्यर्धकालो निवर्तते' ॥ तेन उदयोत्तरमपि सप्तदिनमध्ये
इत्यर्थः ॥ यत्पाद्वे—'आसप्तरात्रादुदयाद्यमस्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण । यावत्समाः
सप्तदशाथवा स्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित् । यमस्यागस्त्यस्य । उदयकालश्च दिवो-
दासीये उक्तः । 'उदेति याम्यां हरिसंक्रमाद्रवेरेकाधिके विंशतिमेत्यगस्त्यः । स सप्तमेस्तं
वृषसंक्रमाच्च प्रयाति गर्गादिभिरभ्यभाणि' ॥ अत्र विधिर्विष्णुरहस्ये—'काशपुष्पमयी
रम्यां कृत्वा मूर्तिं तु वारुणैः । प्रदोषे विन्यसेत्तां तु पूर्णकुम्भे स्खलंकृताम् ॥ कुम्भस्थां
पूजयेत्तां तु पुष्पधूपविलेपनैः । दध्यक्षतबलिं दद्याद्रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम्' ॥ पूजा च
वक्ष्यमाणार्घ्यमन्त्रेण कार्या । 'प्रभाते तां समादाय यायात्पुण्यं जला-
शयम् । निशावसाने तां पश्यञ्ज जलान्ते प्रतिमां मुनेः ॥ अर्घ्यं दद्या-
दगस्त्याय भक्त्या सम्यगुपोषितः' ॥ मात्स्ये तु—'अंगुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्या-
यतबाहुदण्डम्' । पूर्वं काशमयीत्वमशक्तौ—'चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्ता-

अगस्त्यपूजा ।

कुसंस्युतानि । सकाशपुष्पाक्षतशुक्तियुक्तमंत्रेण दद्याद्विजपुंगवाय ॥ धेनुं बहुक्षीरवतीं
च दद्यात्सवस्त्रघंटाभरणां द्विजाय ॥ भविष्ये-‘विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रनिधापितैः ।
सौवर्णरूप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन वा ॥ मूर्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्यां धरणीं गतः’ ॥
विष्णुरहस्ये-‘अगस्त्यः खनमानेति पठन्मन्त्रमिमं मुनेः । अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय शूद्रे
मंत्रविधिस्त्वयम् ॥ काशपुष्पप्रतीकाशं वह्निमारुतसंभव । मित्रावरुणयोः पुत्रं कुम्भयोने
नमोस्तुते ॥ विध्यवृद्धिक्षयकरमेघतोयविषापह । रत्नवल्लभं देवेश लंकावासं नमोस्तु ते ॥
वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा । लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योसौ तस्मै नमोऽनमः ॥
येनोदितेन पापानि विलयं याति व्याधयः । तस्मै नमोस्त्वगस्त्याय सशिष्याय च पुत्रिणे ॥
अगस्त्यः खनमानेति विप्रोर्घ्यं विनिवेदयेत् । राजपुत्रि महाभागे ऋषिपतिं वरानने ॥
लोपामुद्रे नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम् । दत्त्वैवमर्घ्यं कौरव्यं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥
अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या नमोगस्त्यमहर्षये । ऐहिकामुष्मिकीं दत्त्वा कार्यसिद्धिं व्रजस्व
मे ॥ विसर्जयित्वागस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत् । अगस्त्यो मे मनस्थोस्तु अगस्त्यो-
स्मिन् घटे स्थितः ॥ अगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः ॥ दानमन्त्रः-
‘अगस्त्यः सप्तजन्माघं नाशयत्वावयोरयम् । अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने’ ॥
प्रतिग्रहमन्त्रः विष्णुरहस्ये-‘त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसम् । होमं कृत्वा
ततः पश्चाद्वर्जयेन्मानवः फलम् ॥’ होमश्चाहर्षमन्त्रेणाज्येन भविष्ये-‘दत्त्वाहर्षं सप्त-
वर्षाणि क्रमेणानेन पाण्डव । ब्राह्मणः स्याच्चतुर्वेदः क्षत्रियः पृथ्वीपतिः ॥ वैश्ये
च धान्यनिष्पत्तिः शूद्रश्च धनवान् भवेत् । यावदायुश्च यः कुर्यात्स परं ब्रह्म गच्छति’
इत्यगस्त्यार्घ्यम् ।

भाद्रपदपौर्णमास्यां भाद्रपौर्णमास्यां प्रपितामहात्परांस्त्रीनुद्दिश्य श्राद्धं कार्यम् । तदुक्तं
श्राद्धम् । हेमाद्रौ ब्राह्ममार्कण्डेययोः-‘नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिग-
त्वे खौ । पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा’ ॥ इति । नांदीमुखत्वं चोक्तं ब्राह्मे-
‘पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः ॥ तेभ्यः
पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः । ते तु नांदीमुखा नांदी समृद्धिरिति कथ्यते ॥’
एतच्च ‘प्रत्यब्दम्’ इत्युक्तेः । पक्षश्राद्धपक्षे सकृन्महालयपक्षे चावश्यकमिति प्रयोगपा-
रिजाते । अत्र मातामहा अपि कार्याः । ‘पितरो यत्र पूज्यंते तत्र मातामहा अपि’ । इति
धौम्योक्तेः । पितृशब्दस्य च जनकपरत्वे बहुवचनविरोधेन पितृभावापन्नपरत्वात् । वार्षिके
तु वचनान्निवृत्तिः । न च जीवत्पितृकस्यान्वष्टकायां मातृश्राद्धे तदापत्तिः । इष्टापत्तेः ।
अत एव स उक्तश्राद्धेषु स्वमातृमातामहयोर्दद्यादिति मदनरत्नकालादर्शौ । एतज्जीवत्पि-
तृकश्राद्धे वक्ष्यामः । केचित्तु-अजहलक्षणया पित्रादयो यत्र तत्र मातामहस्तेनात्र नेत्या-
हुः ॥ नचात्र नाम्ना नांदीश्राद्धधर्मातिदेशः । वैष्णवादिशब्दवद्देवतापरस्य कर्मनामत्वा-
भावात् । नापि नांदीमुखत्वं पितृविशेषणम् । पारिभाषिकत्वादिति दिक् । तथा

निर्णयदीपे गार्ग्यः—‘पौर्णमासीषु सर्वासु निषिद्धं पिण्डपातनम् । वर्जयित्वा प्रौष्ठपर्दां यथा दर्शस्तथैव सा’ इति ॥ इति श्रीमीमांसक रामकृष्णभट्टात्मजभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ भाद्रपदमासः समाप्तः ॥

कन्यासंक्रांतिनिर्णयः ॥ कन्यासंक्रमे पराः षोडश घटिकाः पुण्याः शेषं प्राग्वत् ।

अथ महालयः । तत्र पृथिवीचन्द्रोदये बृद्धमनुः ‘आषाढीमवधिं कृत्वा पंचमं पक्षमाश्रिताः । कांक्षंति पितरः क्लिष्टा अन्न मप्यन्वहं जलम्’ ॥

अथ महालयः ।

कन्यायोगे पुण्यतमत्वमाह शाटचायनिः—‘कन्यास्थार्कान्वितः पक्षः

सोत्यन्तं पुण्यमुच्यते’ इति । अत्र विशेषमाह बृद्धमनुः—‘मध्ये वा यदि वाप्यन्ते यत्र कन्यां व्रजेद्रविः ॥ स पक्षः सकलः श्रेष्ठः श्राद्धषोडशकं प्रति’ तथा ब्रह्माण्ड-मार्कण्डेययोः—‘कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च । पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते’ । तथा तत्रैव षोडशदिनान्युक्तानि ‘कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश । ऋतुभिस्तानि तुल्यानि देवो नारायणोऽब्रवीत्’ ॥ अत्र हेमाद्रिः षोडशत्वं त्रेधा व्याचख्यौ । तिथिवृद्ध्या पक्षस्य षोडशदिनात्मकत्वं श्राद्धवृद्ध्यर्थमेकः पक्षः । भाद्रपदपूर्णिमया सहेति द्वितीयः । आश्विनशुक्लप्रतिपदा सहेति तृतीयः ॥ अन्त्य एव तु युक्तः । ‘अहः षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह ॥ चन्द्रक्षयाविशेषेण सापि दर्शात्मिका स्मृता’ इति देवलोक्तेः ॥ तत्र पञ्चपक्षाः तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे—‘आश्वयुक्कृष्ण-पक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिनेदिने । त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा’ । दिनेदिने इति पक्षपर्यंतत्वमुक्तम् । त्रिभागहीनमिति पञ्चम्यादिपक्षः । त्रिभागमिति दशम्यादि-पक्षः । त्रिभागहीनमिति चतुर्दशीसहितप्रतिपदादिचतुष्टयवर्जनाभिप्रायेणेति कल्पतरुः ॥ अत्र दिनपदं तिथिपरं वीप्सया तत्पक्षीयतिथित्वं श्राद्धव्याप्यतावच्छेदकम् । तेन-पञ्चदशतिथिव्यापि श्राद्धं सिद्धयति । तेन चतुर्दशीनिषेधोऽन्यकृष्णपक्षपर इति गौडाः ॥ तन्न । ‘श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये’ ॥ इत्यादिविरोधात् । यच्च कश्चित् पूरणप्रत्ययलोपेन तृतीयभागहीनं षष्ठ्यादिपक्षतृतीयभागमेकादश्यादि त-दर्थं त्रयोदश्यादि उत्तरोत्तरं लघुकालोक्तेरिति ॥ तन्न । गौतमादिवचनेन मूलकल्पना-लाघवात् । पक्षमित्यनन्वयापत्तेश्च । ‘पञ्चम्यूर्ध्वं च तत्रापि दशम्यूर्ध्वं ततोप्यति’ इति वि-ष्णुधर्मोक्तेः । षष्ठ्याद्येकादश्यादिपक्षावपि ज्ञेयाविति तत्त्वम् ॥ कालादर्शोपि—‘पक्षा-द्यादि च दर्शांतं पञ्चम्यादि दिगादि च । अष्टम्यादि यथाशक्ति कुर्यादापरपक्षिकम्’ ॥ पक्षादिः प्रतिपत् । दिग् दशमी । दर्शांतमिति सर्वत्र ॥ गौतमोपि—‘अथापरपक्षे श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात्पञ्चम्यादि दर्शांतमष्टम्यादि दशम्यादि सर्वस्मिंश्च’ इति ॥ तथैकस्मिन्नपि दिने श्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ नागरखंडे—‘आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे । यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे । तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्’ इति । अत्र शक्ताशक्तपरा व्यवस्थेति प्राश्नः ॥ तन्न । तद्वाचकपदाभावात् त्रयोदश्यादिपक्ष एव

नित्यः । तत्रैव निंदाश्रुतेः । ब्राह्मे-एवकारेण तस्यैव पञ्चमपक्षायोगव्यवच्छेदोक्तैरिति गौडाः ॥ तत्र । 'एकस्मिन्नपि' इति विरोधात् । तेन फलभूयार्थिनान्यानि कार्याणीति तत्त्वम् ॥ तत्र चतुर्दशीश्राद्धाभावे पञ्चम्यादिदशम्यादिपक्षौ तत्सत्त्वे षष्ठ्याद्येकादश्यादिकौ । एवं चतुर्दश्यभावे द्वादश्यादिः । तत्सत्त्वे त्रयोदश्यादिरिति व्यवस्था ॥

विधवायास्तु विशेषः स्मृतिसंग्रहे- 'चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि ॥ स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च । ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥' तथा- 'श्वश्रूणां च विशेषेण मातामह्यास्तथैव च' इति ॥ अशक्तौ तु स्मृतिरत्नावल्याम्- 'स्वभर्तृप्रभृतिभिः स्वपितृभ्यस्तथैव च । विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता' ॥ विधवा स्वयं संकल्पं कृत्वान्यद्ब्राह्मण-द्वारा कारयेदित्युक्तम् प्रयोगपारिजाते ॥

सकृन्महालये च वर्ज्यतिथ्याद्युक्तम् । पृथिवीचन्द्रोदये प्रयोगपारिजातादिषु । वशिष्ठः- 'नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ॥' जन्मभं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मानि ॥ वृद्धगार्ग्यः- 'प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्र्यक्षे भार्गवे तथा । यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति' ॥ प्राजापत्यं रोहिणी । पौष्णं रेवती । पित्र्यं मघा । अन्यान्यपि प्रत्यारादीनि तत्रैव ज्ञेयानि । केचित्तु- 'नन्दा-श्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे । गण्डे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेऽसुभिः' ॥ इति संग्रहात् । नन्दा प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः । अश्वः सप्तमी । कामस्त्रयोदशी । आरो भौमः । भृगुः शुक्रः । अग्निभं कृत्तिका ॥ कालभं भरणी । तत्र पिण्डास्त्याज्या इत्याहुः । तत्र मूलं मृग्यम् । एतच्च सकृन्महालयविषयम् । 'सकृन्महालये काम्ये पुनः श्राद्धेऽखिलेषु च । अतीतविषये चैव सर्वमेतद्विचिन्तयेत्' ॥ इति पृथिवीचन्द्रोदये नारदोक्तेः ।

अस्यापवादो हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च- 'अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां कक्षमध्यके । तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विचारयेत्' ॥ पराशरमाधवीये मदन-पारिजातादिषु चैवम् । निर्णयदीपिकायां तु- पितृमृताहे निषिद्धदिनेपि सकृन्महालयः कार्य इत्युक्तम् । 'आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे । मृताहनि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः ॥ तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्' । इति नागर-खण्डोक्तेः । 'या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते । सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः ॥ तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विना शौचं यहच्छया । पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तिं नैव कारयेत् ॥ अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकादिने यदा । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि' ॥ इति कात्यायनोक्तेश्च । अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

तथा पक्षश्राद्धकरणेपि न नन्दादिषु पिण्डनिषेध इत्याह पराशरमाधवीये कार्णाजिनिः- 'नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कार्यं दिनेदिने । नैव नन्दादिवर्ज्यं

स्यान्नैव निंद्या चतुर्दशी' ॥ इति । अत्र श्राद्धमित्येकवचनात् 'दिनेदिने' इति वीप्सावशाच्च सोमयागवदेकस्याभ्यासेनैकप्रयोगपरमिदम् । अतः 'प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्' । इति याज्ञवल्कीयं प्रयोगभेदपरं न तु पञ्चम्यादिपक्ष-विषयम् । 'प्रतिपत्प्रभृतिषु' इति विशिष्योक्तेः । निर्णयदीपे पृथ्वीचन्द्रोदये मदनपारिजाते चैवम् । अन्यकृष्णपक्षपरं याज्ञवल्कीयम् । एतत्परत्वेनैव निंद्या चतुर्दशी इति विरोधादिति गौडास्तन्न । 'श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये ।' इति विरोधात् । तत्त्वं तु—'तिथिनक्षत्रवारादिनिषेधो य उदाहृतः । स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नानुषङ्गकृते ह्यसौ' ॥ इति दिवोदासीये वृद्धगाग्योक्तेस्तन्निमित्ते पक्षा-तरे च ज्ञेयः । सकृन्महालये तु वचनान्निषेधः । अन्यत्र कोपि न निषेधः । कार्णार्जिनिस्मृतेरिति । अतो नन्दादौ सपिण्डश्राद्धे पुत्रवतोप्यधिकारः । अत्रिरपि—'महा-लये क्षयाहे च दर्शे पुत्रस्य जन्मनि । तीर्थेपि निर्वपेत् पिण्डान् रविवारादिकेष्वपि' ॥ पूर्वोक्तनन्दानिषेधस्तु मृताहातिक्रमे सकृन्महालये पौर्णमास्यादिमृतश्राद्धे तन्निमित्ते च ज्ञेयः । यत्तु स्मृत्यर्थसारे—'विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् । पिण्डदानं मृदा-स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्' ॥ इति । तस्यात्रापवादो दिवोदासीये बृहस्पतिः—'तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयागे महालये । पिण्डदानं प्रकुर्वीत युगादिभरणीमधे ॥ महा-लये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेहानि । कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा' ॥ इति निर्णयदीपे तु नन्दानिषेधः प्रत्यहं भिन्नश्राद्धविषयः । षोडशाहव्यापिश्राद्धप्रयोज-कत्वे तु प्रत्यहं पिण्डदानं कार्यमेवेत्युक्तम् । तदयमर्थः संपन्नः । षोडशाहव्यापिश्राद्धैक्ये न पिण्डनिषेधः । मृताहे सकृन्महालयेपि तथा इति केचित् । तत्रापि निषेधस्तु युक्तः प्रत्यहं श्राद्धभेदेपि व्यतीपातादौ तथा । अन्यमृताहातिक्रमे महालयातिक्रमे च पिण्डनिषेधः ।

संन्यासिनां तु द्वादश्यां श्राद्धं कार्यम् । 'यतीनां च वन-संन्यासिनां महालयः ।

स्थानां वैष्णवानां विशेषतः । द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेष-षतः' ॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये संग्रहोक्तेः । अत्र पक्षे श्राद्धाकरणे गौणकालमाह हेमाद्रौ यमः—'हंसे कन्यासु वर्षास्थे शाकेनापि गृहे वसन् । पञ्चम्योरन्तरे दद्याद्दु-भयोरपि पक्षयोः' ॥ आश्विनकृष्णशुक्लपञ्चम्योर्मध्य इत्यर्थः । तत्राप्यसंभवे भविष्ये—'येयं दीपान्विता राजन् ख्याता पंचदशी भुवि । तस्यां दद्यान्न चेदत्तं पितृणां वै महा-लये' ॥ तत्राप्यसंभवे भारते—'यावच्च कन्यातुल्योः क्रमादास्ते दिवाकरः । शून्यं प्रेत-पुरं तावद् वृश्चिको यावदागतः' ॥ ब्राह्मे—'वृश्चिके समातिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह । निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम्' ॥ यत्तु जातूकर्ण्यः—'आकांक्षन्ति स्म पितरः पञ्चमं पक्षमाश्रिताः । तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम्' ॥ इति तत्फलातिशयहानिपरम् । 'कन्यां गच्छतु वा न वा' इति तुर्यपादे वा पाठः । तेन

कन्यायोगे प्राशस्त्यमात्रम् । अतः श्राद्धविवेकोक्तं श्राद्धद्वयं हेयम् । इदं च श्राद्ध-
मन्त्रेनैव कार्यं नामान्नादिना । 'मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम् । आपन्नोपि
न कुर्वीत श्राद्धमानेन कर्हिचित्' ॥ इति स्मृतिदर्पणे गालवोक्तेः ।

अथात्र देवताः संग्रहे- 'ताताम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहाद्वित्रयं सस्त्रि स्त्रीतन-
यादितातजननी स्वभ्रातरस्तत्त्रियः । ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग्जायापिता सद्गुरुः
शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे' ॥ अस्यार्थः-तातत्रयी पितृत्रयी ।
अंवात्रयी च ।

स्मृत्यर्थसारेपि महालये मातृश्राद्धं पृथक् प्रशस्तमिति अत्र विशेषः । स्मृति
दर्पणे गालवः- 'अनेका मातरो यस्य श्राद्धे चापरपक्षिके । अर्घ्यदानं पृथक्कुर्यात् ।
पिण्डमेकं तु निर्वपेत् । जीवन्मातृकस्तु सापत्नमातुरेकोद्दिष्टं कुर्यान्न पार्वणम् । श्राद्ध-
दीपकलिकायां तु पार्वणमुक्तम् । 'अन्वष्टक्यं च यन्मातुर्गयाश्राद्धं महालयम् । पितृ-
पत्नीषु च श्राद्धं कार्यं पार्वणवद्भवेत्' ॥ इति बृहन्मनूक्तेः । सस्त्रीति मातामहानां
सपत्नीकत्वेपि विभवे सति मातामहीनां पृथक्कार्यम् । 'महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्ट-
कासु च । ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रौष्ठे मघासु च' ॥ इति निगमोक्तेः । हेमाद्रि-
मते त्वत्र नवदैवत्यमेव । 'महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । नवदैवत्यमन्त्रेष्टं
शेषं षट्पौरुषं विदुः' ॥ इति विष्णुधर्मोक्तेः । तातभ्राता पितृव्यः । जननीभ्राता
मातुलः । तत्त्रियः । पितृव्यस्त्री । मातुलानी । भ्रातृजायाः पितृष्वसृमातृष्वसृस्व-
भगिन्योपत्यभर्तयुक्ताः । तेन सापत्यायै सधवायै इति प्रयोगो ज्ञेयः । एतासु सतीषु
न तद्भर्त्रादेर्दानम् । द्वारलोपात् । जायापिता स्वशुरः स्वशूरप्यत्रोपलक्ष्यः । अत्र मू-
लं स्मृतिचन्द्रिकायां ज्ञेयम् । अत्र पार्वणैकोद्दिष्टव्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ पुरणान्तरे-
'उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः । स्वशुरभ्रातृतत्पुत्रपुत्रातिर्विकल्प्यपोषकाः ॥
भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः ॥ पितरौ पितृपत्नीनां पितुर्मातुश्च या स्वसा ।
सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये ॥ एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः' इति ॥
इतरेषां पित्रादीनां पार्वणमर्थसिद्धम् । अत्र क्रमान्यत्वेत्याचाराद्व्यवस्था । अशक्तौ तु
पृथिवीचन्द्रोदये चतुर्विंशतिमते- 'एकस्मिन् ब्राह्मणे सर्वानाचार्यादीन् प्रपूजयेत् ।
दश द्वादश वा पिण्डान् दद्यादकरणं न तु' ॥ एकोद्दिष्टस्वरूपं चाह याज्ञवल्क्यः-
'एकोद्दिष्टं देवहीनमेकाध्वैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत्' ॥ इति ।
अत्रैकपाको वैश्वदेवतन्त्रपिण्डं बर्हिश्चैकमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ।

अत्र पाणिहोमः पिण्डाश्च द्विजान्तिक इत्याह प्रयोगपारिजाते आचार्यः-

पाणिहोमः । 'काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् । चतुर्विंशे करे होमः पिण्डाश्चात्र
द्विजान्तिके' ॥ इति पार्वणैकोद्दिष्टयोः स्मृत्यन्तर्गते तु अग्निसमीप एव

अत्र धूरिलोचनौ वैश्वदेवौ । 'आपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ' । इति हेमाद्रावादित्यपुराणात् । अत्र प्रतिदिनं भिन्नप्रयोगत्वाद्दक्षिणाभेदो वा प्रयोगैक्यादन्ते एव वा दक्षिणेति हेमाद्रौ उक्तम् एतच्च संन्यस्तपितृकादिना जीवत्पितृकेणापि कार्यम् 'वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥' इति कात्यायनोक्तेः । यत्तु कौण्डिन्यः—'दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च ॥' इति तत्संन्यस्तापित्राद्याति रिक्तविषयम् । काम्यश्राद्धपरं वा । अत्र बहु वक्तव्यं श्रीपितृकृतजीवत्पितृकानिर्णये ज्ञेयम् ॥ एतच्च जीवत्पितृकेण पिण्डरहितं कार्यम् । 'मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पितृकः कुर्याद्दुर्विणीपतिरेव च' ॥ इति दक्षेण तस्य पिण्डनिषेधात् । अन्वष्टक्यमातृवार्षिकादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः । तथा छागलेयः । 'पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथंचन । सांकल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः' । सांकल्पस्वरूपं च वक्ष्यते ॥

अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं पक्षश्राद्धे प्रतिदिनं श्राद्धोत्तरम् । सकृन्महालये तु परेहि कार्यम् । तदुक्तं नारदीये—'पक्षश्राद्धं यदा कुर्यात्तर्पणं तु दिनेदिने । सकृन्महालये चैव परेहनि तिलोदकम्' ॥ गगोपि—'पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम्' इति । तथा प्रयोगपारिजाते गर्गः—'कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पितृणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहोपि तर्पणम् ॥ सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ।' इदं निषिद्धदिनेपि कार्यम् । 'तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा' । इति स्मृत्यर्थसारोक्तेः । 'तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम्' ॥ इति स्मृतिरत्नावल्यां वचनाच्च ।

एतच्च श्राद्धं मलमासे न कार्यम् । तदाह भृगुः—'वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम् । राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलंघिते' ॥ इति हेमाद्रौ नागर-स्वण्डे—'नभो वाथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् । सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पंचमः ॥' एतच्च पित्रोर्मरणे प्रथमाब्दे कृताकृतमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः ॥

इदं च नित्यं काम्यम् । 'पुत्रानायुस्तथारोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा । प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा श्राद्धं कामान् सुपुष्कलान् ॥' इति जाबाल्युक्तेः । 'वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरौ देवतैः सह । निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥' इति कार्ष्णाजिनि-वचनाच्च । तदतिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—'दुरो अश्वस्य मन्त्रं च दशमासं द्विमासयोः । महालयं यदा न्यूनं तदा संपूर्णमेति तत्' ॥ इति द्विमासयोः कन्यातुल्यो-र्महालयश्राद्धं यदाहीनमित्यर्थः ॥

अत्र भरण्यां श्राद्धमतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथिवीचन्द्रोदये
भरणीश्राद्धनिर्णयः ।
मात्स्ये—'भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता । अस्यां श्राद्धं कृतं

येन स गयाश्राद्धकृद्भवेत् ॥ पृथिवीचन्द्रोदये श्रीधरीये बृहस्पतिः नभस्यापर-
पक्षस्य द्वितीया यदि याम्यभे । तृतीया चाग्निताराभिः सहिता प्रीतिदा
कपिलाषष्ठी । पितुः ॥

एतत्पक्षे षष्ठी योगविशेषेण कपिलासंज्ञा । तदुक्तं वाराहे-‘नभस्यकृष्णपक्षे
तु रोहिणीपातभूसुतैः । युक्ता षष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता ॥ व्रतोप-
वासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत् । कपिलां च द्विजाग्न्याय दत्त्वा क्रतुफलं
लभेत् ॥ पुराणसमुच्चये-‘भाद्रे मास्यसिते पक्षे भानौ चैव करे स्थिते । पाते
कुजे च रोहिण्यां सा षष्ठी कपिला भवेत् ॥ अत्र दर्शातत्वेन महालयो भाद्रपद-
कृष्णपक्षो ज्ञेय इत्युक्तं निर्णयामृते हेमाद्रौ च ॥ हस्तार्कस्तु फलातिशयार्थः ।
‘संयोगे तु चतुर्णां वै निर्दिष्टा परमेष्ठिना’ । इति तत्रैवोक्तेः । अत्र विशेषो
हेमाद्रौ स्कादे-‘देवदारुं तथोशीरं कुंकुमैलां मनःशिलाम् । पत्रकं पद्मकं यष्टिमधु-
गव्येन पेषयत् ॥ क्षीरेणालोड्य कल्केन स्नानं कुर्यात्समंत्रकम् । आपस्त्वमासि
देवेश ज्योतिषां पतिरेव च ॥ पापं नाशय मे देव वाङ्मनःकायकर्मजम् । पंचगव्य-
कृतस्नानः पञ्चभंगैस्तु मार्जयेत् ॥ पंचभंगैः पञ्चपलवैः । तथा-‘रत्नैर्नानाविधैर्युक्तं
सौवर्णं कारयेद्रविम् । शक्तितस्तु पलादूर्ध्वं तदर्धं कर्षतोपि वा ॥ सौवर्णमरुणं कुर्या-
न्नौकां चैव तथा रथम् ॥’ तथा-‘अल्पवित्तोपि यः कश्चित्सोपि कुर्यादिमं विधिम् ॥’
प्रभासखंडे-‘स्थापयेद्व्रणं कुंभं चन्दनोदकपूरितम् । रक्तवस्त्रयुगच्छत्रं ताम्रपात्रेण
संयुतम् ॥ रथो रौक्मपलस्यैव एकचक्रः सुचित्रितः । सौवर्णपलसंयुक्तां मूर्तिं सूर्यस्य
कारयेत् ॥’ ततः सूर्यं कपिलां च षोडशोपचारैः संपूज्य दद्यात् । ‘दिव्यमूर्तिर्जगच्च-
भुर्द्वादशात्मा दिवाकरः । कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ॥ यस्मात्त्वं कपिले
पुण्या सर्वलोकस्य पावनी । प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव’ ॥ इति विशेषांतरं
तत्रैव ज्ञेयमिति दिक् ॥

इयमेव चन्द्रषष्ठी । सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । उभयत्र तथात्वे पूर्वा तदुक्तं
भविष्ये-‘तद्भाद्रपदे मासि षष्ठ्यां पक्षे सिते तरे । चन्द्रषष्ठीव्रतं
कुर्यात्पूर्ववेधः प्रशस्यते ॥ चन्द्रोदये यदा षष्ठी पूर्वाह्णे चापरेहनि ।
चन्द्रषष्ठ्यसिते पक्षे सैवोपोष्या प्रयत्नतः’ ॥ इति ॥

अष्टम्यामाश्वलायनेन मघावर्षसंज्ञं श्राद्धमुक्तम् । ‘एतेन माघ्यावर्षं प्रोष्ठपद्या
माघ्यावर्षसंज्ञं अपरपक्षे’ इति इदं सप्तम्यादिषु त्रिष्वहःसु कार्यमिति नारायण-
श्राद्धम् । वृत्तिः । हरदत्तस्तु मघायुक्तवर्षासु भवं त्रयोदशीश्राद्धमिति व्याच-
ख्यौ । पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-‘आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे गया माघ्याष्टमी स्मृता ।
त्रयोदशी गजच्छाया गयातुल्या तु पैतृके ॥’

आश्विनकृष्णाष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम् । तत्र निर्णयामृते पुराणसमु-
 च्चये—‘श्रियोर्चनं भाद्रपदे सिताष्टमीं प्रारभ्य कन्यामगते च सूर्ये ।
 महालक्ष्मीव्रतम् । समापयेत्तत्र तिथौ च यावत्सूर्यस्तु पूर्वार्धगतो युवत्या’ ॥ इति तत्रैव—
 ‘कन्यागतेर्के प्रारभ्य कर्तव्यं न श्रियोर्चनम् ॥ हस्तप्रान्तदलस्थेर्के तद्व्रतं न समापयेत् ॥
 पूजनीया गृहस्थानामष्टमी प्रावृषि श्रियः । दोषैश्चतुर्भिः संत्यक्ता सर्वसंपत्करी तिथिः ॥
 तथा—‘पुत्रसौभाग्यराज्यायुर्नाशिनी सा प्रकीर्तिता । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्याज्या कन्या
 गते रवौ ॥ विशेषेण परित्याज्या नवमी दूषिता यदि ।’ इति । दोषचतुष्टयं तत्रैवोक्तम् ।
 ‘त्रिदिने चावमे चैव अष्टमीं नोपवासयेत् । पुत्रहा नवमी विद्धा स्वप्नी हस्तोर्ध्वगे रवौ’ ॥ इति ।
 त्रिदिनावभदिनलक्षणं च रत्नमालायाम्—‘यत्रैकः स्पृशति तिथिद्वयावसानं वारश्चेदवम-
 दिनं तदुक्तमार्यैः । यः स्पर्शाद्भवति तिथित्रयस्य चाह्वां त्रिद्युस्पृक्कथितमिदं द्वयं च नेष्टम् ॥
 एते च सर्वे निषेधाः प्रथमारंभविषयाः । मध्ये तु सति संभवे ज्ञेयाः । व्रतस्य षोडशा-
 ब्दसाध्यत्वेन मध्ये त्यागायोगात् । इयं चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । तत्रैव पूजाद्युक्तेः ।
 परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्तव्यापित्वे परैव कार्या । अन्यथा पूर्वैव । ‘पूर्वा वा पर-
 विद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा । त्रिमुहूर्तापि सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी’ ॥ इति
 मदनरत्ने निर्णयामृते च संग्रहोक्तेः । ‘अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः ॥
 तदा तस्यां तिथौ कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा’ ॥ इति वचनाच्चेति संक्षेपः ॥ इति
 महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः ॥

अथ नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् । तत्र कात्यायनः—अन्वष्टकासु नवभिः
 पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् । पित्रादिमातृमध्यं च ततो मातामहांतकम्’ ॥
 अन्वष्टकाश्राद्धम् । पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्माण्डे—‘पितृणां प्रथमं दद्यान्मातृणां तदनंतरम् ।
 ततो मातामहानां च अन्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः ॥’ श्राद्धहेमाद्रौ छागलेयः—‘केवलास्तु
 क्षये कार्या वृद्धावादौ प्रकीर्तिताः । अन्वष्टकासु मध्यस्था नान्त्याः कार्यास्तु मातरः ॥’
 दीपिकायां तु मातृश्राद्धमादौ कार्यमित्युक्तम् । ‘मातृयजनं त्वन्वष्टकास्वादितः’ इति ।
 हेमाद्रौ ब्राह्मेपि—‘अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते’ । इति । अत्र शाखाभेदेन
 व्यवस्थेति पृथ्वीचन्द्रोदयः । जीवात्पितृकाविषयमिति निर्णयदीपः ॥ इदं च जीवात्पि-
 तृकेणापि कार्यम् । तदुक्तं निर्णयामृते मैत्रायणीयपरिशिष्टे—‘आन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ
 सत्यां यच्च मृतेहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवाति ॥’ यद्यपि जीवात्पितृकस्य
 पञ्चान्वष्टका अवश्यं कर्तव्यास्तथाप्यशक्तस्येयमावश्यक्ये । ‘प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके
 भविष्यति’ इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः । ‘सर्वासामेव मातृणां श्राद्धं कन्यागते
 रवौ । नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा यतः’ ॥ इति सुतेनावश्यकत्वोक्तेश्च । अत्र
 सर्वासामित्युक्तेः स्वमातरि जीवन्त्यामपि सपत्नमातृभ्यो दद्यात् । तन्मरणे सति
 तस्यै ताभ्यश्च दद्यादित्युक्तम् । जीवात्पितृकनिर्णये गुरुभिः । अत्र सर्वासां नाम-

निर्देशेनैको ब्राह्मणोर्ध्वः पिण्डश्च । नामैक्ये तु द्विवचनादिप्रयोग इत्यक्तं नारा-
यणवृत्तौ ॥ अन्वष्टकाश्राद्धं तद्यागश्च गोभिलीयानां मध्यमायामेव न सर्वासु ।
'आन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ' ॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात् । अत्र
भर्तृमरणोत्तरं पूर्वमृतमातृश्राद्धं न कार्यमिति केचिदाहुः पठन्ति च । 'श्राद्धं नवम्यां
कुर्यात्तन्मृते भर्तारि लुप्यते' । इति तदेतन्निर्मूलत्वान्मूर्खप्रतारणमात्रम् । श्राद्धदीपक-
लिकायां ब्राह्मे- 'पितृमातृकुलोत्पन्ना याः काश्चित् मृताः स्त्रियः । श्राद्धार्हा मातरो
ज्ञेयाः श्राद्धं तत्र प्रदीयते' ॥ इति । अत्र देशाचाराद्व्यवस्था ।

इदं चानुपनीतिनापि कार्यम् । तदुक्तं श्राद्धशूलपाणौ मात्स्ये- 'अमावास्या-
ष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च' । इत्यभिधाय 'एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं
साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् । भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोपि नित्यशः । शूद्रोऽप्य-
मन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः' ॥ इति तेन साग्रेवेदेमिति परास्तम् । अन्वष्टकातः
पृथगेवेदं मातुः श्राद्धमित्यपि परास्तम् । लाघवेन मूलैक्यादष्टकापदाविशेषाच्च । तेना-
न्यत्रान्वष्टकाश्राद्धस्यांगस्याप्यत्र प्रधानत्वं वचनात् । अन्वेष्टेरिवराजसूयांतर्गतायाः ।
'एतयान्नाद्यकामं याजयेत्' इति फलार्थत्वम् । अत्र अष्टकान्वष्टका पूर्वानुरोधात् ।
तथात्रिपुराणे- 'अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेहनि । अत्र मातुः पृथक्श्राद्ध-
मन्यत्र पतिना सह' ॥ आपस्तम्बानां त्वष्टकासु च वृद्धौ चेत् इति भाष्यकारैः
पाठादष्टकायां मातृकाश्राद्धम् । छन्दोगैस्त्वत्र मातृमातामहश्राद्धे न कार्यं किं तु
त्रिपुरुषमेव । 'न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते । कर्षुसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं
श्राद्धषोडशम् ॥ प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिंडाः स्युः षडिति स्थितिः' इति छन्दोगप-
रिशिष्टात् । अन्वष्टकासु तेषां कर्षुविधानादिति शूलपाणिः । यत्तु- 'तमिस्रपक्षे
नवमी पुण्या भाद्रपदे हि या । चत्वारः पार्वणाः कार्याः पितृपक्षे मनीषिभिः' ॥ इति ।
तद्देशाचारतो व्यवस्थितं ज्ञेयम् । इदं जीवत्पितृकेणापि सपिण्डं कार्यम् । हेमाद्रौ
विष्णुधर्मोत्तरे- 'अन्वष्टकासु च स्त्रीणां श्राद्धं कार्यं तथैव च' । इत्युपक्रम्य 'पिण्ड-
निर्वपणं कार्यं तस्यामपि नृसत्तम्' । इति वचनं श्राद्धविधिना पिण्डदाने प्राप्ते पुनस्त-
त्कीर्तनं यस्य जीवत्पितृकगर्भिणीपतित्वादिना पिण्डदानं निषिद्धम् । तस्य तत्प्राप्त्यर्थ-
मिति श्रीतात्पर्यचरणाः ।

अत्र सुवासिनीभोजनमुक्तं मार्कण्डेयपुराणे- 'मातुः श्राद्धे तु संप्राप्ते ब्राह्म-
णैः सहभोजनम् । सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत्' ॥ 'भर्तुरग्रे मृता नारी
सह दाहेन वा मृता । तस्याः स्थाने नियुञ्जीत विप्रैः सह सुवासिनी' ॥ तत्रैव मदाल-

१-भर्तुरिति । विवाहश्राद्धे सुवासिन्या अनावश्यकत्वार्थम् । एतदेव मातुराब्दिकादिसमस्तश्राद्धे
सुवासिनीप्रापकम् । सह दाहेनेति । तच्च सहदग्धाया मातुराब्दिकादाविव नवमीश्राद्धमपि प्राप-
यति । इति टीका ।

सावाक्यम्—‘स्त्रीश्राद्धे पुत्रदेयाः स्युरलंकाराश्च योषिते । मञ्जीरमेखलादामर्कणिका-
कंकणादयः’ ॥ इति । अत्राशक्तावनुकल्पमाहाश्वलायनः—‘अनदुहो यवसमाहरेदग्निना
वा कक्षमुपोषेदेषामेष्टकेति न त्वेवानष्टकः स्यात्’ इति । हेमाद्रौ पि-
अशक्तौ अनुकल्पः । तामहः—‘अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वाञ्श्राद्धमकु-
र्वाणो नरकं प्रतिपद्यते’ । अकरणे च प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—‘एभिर्द्युभिर्जपेन्मंत्रं
शतवारं तु तद्दिने ॥ आन्वष्टक्यं यदा न्यूनं संपूर्णं याति सर्वथा’ । इति । एतत्पक्षे द्वा-
दश्यां विशेषः । पृथिवीचन्द्रोदये वायवीये—‘संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्या-
द्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं तु तत्’ ॥ इति ।

मघात्रयोदशी ।

अथ त्रयोदशीश्राद्धम् । तत्र चन्द्रिका—‘त्रयोदशी भाद्रपदी कृ-
ष्णा मुख्या पितृप्रिया । तृप्यन्ति पितरस्तस्यां स्वयं पञ्चशतं समाः ॥
मघायुतायां तस्यां तु जलाद्यैरपि तोषिताः । तृप्यन्ति पितरस्तद्दर्शणामयुतायुतम्’ ॥
प्रयोगपारिजाते शंखः—‘प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् । प्राप्य श्राद्धं
तु कर्तव्यं मधुना पायसेन च ॥ प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा । नृणां श्राद्धे
सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ एतन्नित्यमपि । पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—
‘प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी’ इत्युक्त्वा ‘एतांस्तु श्राद्धकालान्वैः नित्यानाह
प्रजापतिः । श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते’ ॥ इत्युक्तः । एतच्चाविभक्तरपि पृथ-
क्कार्यम् । तथा च हेमाद्रौ—‘विभक्ता वाविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक् सुताःमघासु च
ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना’ ॥ इति । अपरार्के वायवीये—‘हंसे हस्तस्थिते या
तु मघायुक्ता त्रयोदशी । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छायाकुंजरस्य तु ॥ अत्र च ‘अपि नः
सकुले भूयाद्यो नो दद्यान्नयोदशीम् । पायसं मधुसर्पिभ्यां प्राक्छाये कुंजरस्य च ॥
इति विष्णुमनुवचने केवलत्रयोदशीश्रुतेर्मघागुण इति कल्पतरुः । शूलपाणिस्तु-
केवलवाक्यानामर्थवादत्वाद्वधौ च मघायोगश्रुतेर्विधिलाघवात् विशिष्टमेव निमित्तमित्या-
ह । वस्तुतस्तु—‘मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन च । एष नो दास्यति श्राद्धं
वर्षासु च मघासु च’ ॥ इति । वसिष्ठवचने केवलमघाश्रुतेर्विनिगमकाभावादुभयं
भिन्नानिमित्तम् । पूर्वोक्तवचनाच्च योगाधिक्ये फलाधिक्यम् । अत एव याज्ञ-
वल्क्यः—‘तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः’ । इति त्रयोदशीश्राद्धं नित्यम् ।
अन्यत्काम्यम् । ‘अत्र त्रयोदश्यां बहुपुत्रा युवमारिणस्तु भवन्तीत्यापस्तंबोक्तेर्युवमा-
रित्वमपत्यदोषं सहिष्णोरपत्यमात्रार्थिनः स्मृत्यन्तरोक्तेर्धनार्थिनो वाधिकार इति
कल्पतरुः । अपत्यनिन्दया तदर्थिनां नाधिकारात् । ‘फलान्तरकामस्यैवाधिकारः’ इति
हलायुधः । एतत् पिण्डरहितं कार्यम् । ‘मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः । ससं-

तानो नैव कुर्यान्नित्यं ते कवयो विदुः' ॥ इति बृहत्पराशरोक्तेः । इदं मलमासेपि कार्यम् । 'मघात्रयोदशीश्राद्धं प्रत्युपस्थितिहेतुकम् । अनन्यगतिकत्वेन कर्तव्यं स्यान्म-
लिम्बुचे ॥ इति काठकगृह्योक्तेः यानि तु अंगिराः- 'त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः श्राद्धं
कुरुते नरः । पंचत्वं तस्य जानीयाज्ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम्' ॥ वामनपुराणे- 'त्रयोदश्यां
तु वै श्राद्धं न कुर्यात् पुत्रवान् गृही' । इत्यादीनि वचनानि तानि पुत्रवद्विषयाणि वा म-
महालयस्य भिन्नत्रयोदशीविषयाणि वा काम्यश्राद्धविषयाणि वा सपिण्डकश्राद्धविषयाणि
वेति केचित् । हेमाद्रिप्रमुखास्त्वेकवर्गश्राद्धविषयाणि । 'श्राद्धं नैवैकवर्गस्य त्रयो-
दश्यामुपक्रमेत् । न तृप्तास्तत्र ये यस्य प्रजा हिंसन्ति तस्य ते' ॥ इति काष्ण्णाजिनि-
स्मृतेः । यद्यपि 'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि' । इति धौम्योक्तेन केवलपितृ-
वर्गस्य प्राप्तस्तथापि व्यामोहादिप्राप्तनिषेधोयमित्याहुः ॥ वयं तु पश्यामः । पुत्रव-
द्विषयाण्येवेति । 'असंतानस्तु यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता त्रयोदशी । संतानयुक्तो यः कुर्यात्तस्य
वंशक्षयो भवेत्' ॥ इति हेमाद्रौ नागरखण्डोक्तेः । पूर्ववाक्यमप्यसंतानस्यैकवर्गनि-
षेधकमिति । अत्र मघात्रयोदशीमहालययुगादिश्राद्धानां तन्त्रेण प्रयोगः । नतु प्रसङ्ग-
सिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥

कृष्णचतुर्दशी ।

अथ चतुर्दशी । पृथ्वीचन्द्रोदये प्रचेताः- 'वृक्षारोहणलोहाद्यैर्वि-
द्युज्जलविषाग्निभिः । नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये तेषां शस्ता शतुर्दशी' ॥
ब्राह्मे- 'युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः । तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्ति-
मभीप्सता ॥ नागरखण्डे- 'अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा । श्राद्धं तेषां
प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप' ॥ एतच्च 'प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्वन्धनप्रपतनैश्चे-
च्छताम्' इति गौतमोक्तदुर्मरणोपलक्षणं एकयोगनिर्देशात् । 'सर्वेषां तुल्यधर्माणामे-
कस्यापि यदुच्यते । सर्वेषां तत्समं ज्ञेयमेकरूपा हि ते स्मृताः' ॥ इत्युशनसोक्तेश्च ।
तच्च कृतक्रियाणामेवेति वक्ष्यामः । मरीचिः- 'विषशस्त्रापदाहितिर्यग्राह्यणघातिनाम् ।
चतुर्दश्यां क्रियाः कार्या अन्येषां तु विगर्हिताः ॥ अत्र ब्राह्मणघाती तेन हतो न तु
ब्रह्महा । तस्य पतितत्वादिति शूलपाणिः । अत्रोद्देश्यविशेषणस्याविवक्षितत्वात् ।
स्त्रीणामपि शस्त्रादिहतानामेकोद्दिष्टं कार्यम् । न पार्वणमिति श्रीदत्तोपाध्यायः । 'इदं
विषादिहतानामेव न प्रसवादिमृतानाम्' इति वाचस्पतिः । यत्तु शाकटायनः-
'जलाग्निभ्यां विपन्नानां संन्यासे वा गृहे पथि । श्राद्धं कुर्वीत तेषां वै वर्जयित्वा चतु-
र्दशीम्' ॥ इति तत् प्रायश्चित्तार्थजलादिमृतविषयमित्याकरे उक्तम् । अत एव वैध-
त्वात् सहगमनेपि न कार्यमिति हेमाद्रिः । एतच्च दैवयुक्तमेकोद्दिष्टं कार्यमित्युक्तं
प्रयोगपारिजाते । प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं विधानतः । दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं
पितृणामक्षयं भवेत् ॥ तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत् पुत्रदारधनक्षयः । एकोद्दिष्टं दैवयुक्तमि-
त्येवं मनुरब्रवीत् ॥ भविष्येपि- 'समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य च । चतुर्दश्यां

तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं महालये ॥ चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते । एकोद्दिष्टविधानेन तत् कार्यं शस्त्रघातिनः ॥ इति । संवत्सरप्रदीपे हारीतः—‘विश्वेदेवांश्च तत्रापि पूजयित्वादितोऽमलान् । ये वै शस्त्रहतास्तेषां श्राद्धं कुर्यादतद्रितः’ ॥ अत्रैकोद्दिष्टवचनानां निर्मूलत्वम् । समूलत्वेपि पार्वणाशक्तपराणि । विष्ण्वादिवचनैः प्रकरणात् कृष्णपक्षीयपार्वणावगतेरिति शूलपाणिस्तत्र । वाक्येन प्रकरणस्य बाधात् । पित्रादीनां पार्वणं भ्रात्रादीनामेकोद्दिष्टमिति गौडावाचस्तत्र । पितुरित्यनेन विरोधात् । विशेषवाक्यवैयर्थ्यापत्तेश्च । अत्र शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यामिति नियमो न तु चतुर्दश्यामेव शस्त्रहतस्येति । ‘श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये ॥’ इति कालादर्शात् । वार्षिकादीनामकरणापत्तेश्च । तेन महालये एव दिनांतरे पार्वणं मातामहादितृप्त्यर्थं कार्यमेव । पितामहोपि शस्त्रहतश्चेदेकोद्दिष्टद्वयं कार्यम् । तदुक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यंतरे—‘एकस्मिन् द्वयोर्वैकोद्दिष्टम्’ इति । त्रिषु शस्त्रहतेषु पार्वणमेव कार्यम् ॥

यत्तु देवस्वामिनोक्तं त्रिष्वपि शस्त्रहतेषु पृथगेकोद्दिष्टत्रयं कार्यम् । न तु पार्वणमाहत्य वचनाभावादिति । तदयुक्तम् । ‘पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रैर्यातास्त्वनुक्रमात् । स भूते पार्वणं कुर्यादाब्दिकानि पृथक्पृथक्’ ॥ इति बृहत्पराशरोक्तेः । ‘एकस्मिन्वा द्वयोर्वापि विद्युच्छस्त्रेण वा हते । एकोद्दिष्टं सुतः कुर्यान्नयाणां दर्शवद्भवेत्’ इति स्मृत्यन्तराच्चेति पृथिवीचन्द्रोदये उक्तम् । अपराकं हेमाद्रौ चैवम् ॥ यस्तु अत्रैव शस्त्रादिना हतस्तस्य वार्षिकमेव पार्वणमेकोद्दिष्टं वा कार्यं न तु श्राद्धद्वयम् । प्रसङ्गसिद्धेरिति पृथिवीचन्द्रोदये । अत्र श्राद्धाकरणेऽग्रिमापरपक्षे दिनान्तरे पार्वणेनैव कार्यमिति तत्रैवोक्तम् । यद्यपि ‘शस्त्रविप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः । आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥’ इति छागलेयाद्यैः शस्त्रादिहतानां श्राद्धं निषिद्धे तथापि प्रमादमृतानां श्राद्धार्हत्वात् कार्यम् । वृद्धादिभिन्नबुद्धिपूर्वमृतानां तु न कार्यम् । यत्तु ‘चतुर्दश्यां तर्पणीया लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।’ इति ब्राह्मे तद्रौणमिति शूलपाणिः । लक्षणायां मानाभावात् । ‘पतितेनापि कर्तव्यं कर्तव्यं पतितस्य च’ । इति गयादिविशेषविधिबलात् पतितानामपि कार्यमिति नव्यगौडाः । तत्त्वं तु समत्वमागतस्य इत्यादिवशात् कृतक्रियाणां कार्यं नान्येषामिति वयं प्रतीमः ॥ यत्तु मनुः—‘न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकाग्नौ विधीयते । न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्विधीयते’ ॥ इति । अत्र पूर्वार्द्धं हेतुत्वेनोक्तम् ॥ तद्यथाश्रुतमेव मन्वते पृथ्वीचन्द्रोदयादयः । आहिताग्नेः पिण्डपितृयज्ञकल्पेन श्राद्धनिषेधार्थमिदं न तु साकल्यादेरपीत्यस्मदुरवः । कृष्णपक्षश्राद्धमन्यदिनेषु प्राप्तमाहिताग्नेर्दर्शे नियम्यत इति तु वयम् । दर्शेन पार्वणेन विना श्राद्धं न । तेन कापि वार्षिकादावेकोद्दिष्टं नेति हरिहरः । इति चतुर्दशी ।

गजच्छाया ।

अमायां विशेषमाहापराकं यमः-‘हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता । सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोब्रवीत् ॥ वनस्पतिगते सोमे छाया या प्राङ्मुखी भवेत् । गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥ भारते-‘अजेन सर्वलोहेन वर्षासु नियतव्रतः । हस्तिच्छायासु विधिवत् कर्णव्यजनवीजितम् ॥ श्राद्धं दद्यादिति शेषः ॥

दौहित्रप्रतिपत् ।

आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रस्य मातामहश्राद्धमुक्तम् । हेमाद्रौ संग्रहे च-‘जातमात्रोपि दौहित्रो विद्यमानेपि मातुले । कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते ॥ इति । इयं संगवव्यापिनी ग्राह्येति निर्णय-दीपे उक्तम् । ‘प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रत्वेकपार्षणम् । श्राद्धं मातामहं कुर्यात्सपिता संगवे सदा ॥ जातामात्रोपि दौहित्रो जीवत्यापि च मातुले । प्रातःसंगवयोर्मध्ये आर्य-स्य प्रतिपद्भवेत् ॥ इति वचनात् । अत्र समूलत्वं विमृश्यम् । इदं च मलमासे न कार्यम् । ‘स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले’ । इति निषेधात् । इदं च जीवत्पितृके-णैव कार्यमिति शिष्टाः । इदं च शिष्टाचारात्सपिण्डकं कार्यमिति केचित् । पिण्ड-रहितं तु युक्तम् । जीवत्पितृकस्य-‘मुंडनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पि-तृकः कुर्याद्दुर्विणीपतिरेव च’ ॥ इति दक्षेण पिण्डनिषेधात् । आन्वष्टक्यवद्विशेषवचनाभावा-च्चोति संक्षेपः ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ महालयनिर्णयः ॥

अथ नवरात्रारम्भः ।

अथाश्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारम्भः । तन्निर्णयस्तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे-सुमेधा उवाच । ‘शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि चण्डिकापूजनक्रमम् । आश्विनस्य सिते पक्षे प्रतिपत्सु शुभे दिने’ इत्युप क्रम्योक्तम् । ‘शुद्धे तिथौ प्रकर्तव्यं प्रतिपच्चोर्ध्वगामिनी । आद्यास्तु नाडिकास्त्यक्त्वा षोडश द्वादशापि वा ॥ अपराह्णे च कर्तव्यं शुभसंततिकांक्षिभिः’ ॥ इदं चापराह्णयोगि-न्याः प्राशस्त्यं द्वितीयदिने प्रतिपदभावे ज्ञेयम् । तथा तत्रैव देवीपुराणे डामरतंत्रे च देवीवचः-‘अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपत् पूजने मम । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादि-गुणान्विता ॥ आद्याः षोडश नाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः । कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवम् ॥ मार्कण्डेयदेवीपुराणयोः-‘पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत् प्रति पदाश्विनी । नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता ॥ देशभंगो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं चोपजायते । नंदायां दर्शयुक्तायां यत्र स्यान्मम पूजनम्’ ॥ इति । स्कादिपि-‘प्रति-पद्याश्विने मासि सा शुद्धा शुभदा भवेत् । भाद्रपंचदशी कृष्णा तथा युक्ता न शस्यते ॥ विरुद्धफलदा सा हि पुत्रदारभयावहा’ । इति । तथा-‘वर्जनीया प्रयत्नेन अमायुक्ता तु पार्थिव । द्वितीयादिगुणैर्युक्ता प्रतिपत्सर्वकामदा ॥’ तथा देवीपुराणे-‘यो मां पूज-यते नित्यं द्वितीयादिगुणान्विताम् । प्रतिपच्छारदीं ज्ञात्वा सोऽनुते सुखमव्ययम् ॥ यदि

कुर्यादमायुक्तां प्रतिपत् स्थापने मम । तस्य शापायुतं दत्त्वा भस्मशेषं करोम्यहम् ॥
 आग्रहात्कुरुते यस्तु कलशस्थापनं मम । तस्य संपट्टिनाशः स्याज्ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ॥
 अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपञ्चडिकार्चने । धनार्थिभिर्विशेषेण वंशहानिश्च जायते ॥ न
 दर्शकल्या युक्ता प्रतिपञ्चडिकार्चने ॥ उदये द्विमुहूर्तापि ग्राह्या सोदयदायिनी ॥ इति ।
 देवीपुराणे—‘या चाश्वयुजि मासे स्यात् प्रतिपद्द्रयान्विता । शुक्ला ममार्चनं तस्यां
 शतयज्ञफलप्रदम् ॥’ रुद्रयामले—‘अमायुक्ता सदा चैव प्रतिपन्निदिता मता ॥ तत्र
 चेत् स्थापयेत्कुंभं दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम् ॥ प्रतिपत्सद्वितीया तु कुंभारोपणकर्मणि’ ।
 इति । यद्यपि रुद्रयामलं डामरं च निर्मूलं तथाप्यविरोधात् प्रचाराच्च तद्वचनानि
 लिख्यन्ते । तिथितत्त्वे देवीपुराणेपि—प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत् । प्रातः-
 प्रातश्च संपूज्य प्रातरेव विसर्जयेत् ॥’ तत्रैव—‘शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षि-
 की । सा कार्योदयगामिन्यां न तत्र तिथियुग्मता ॥’ तथा—‘कुहकाष्टोपसंयुक्तां
 वर्जयेत्प्रतिपत्तिथिम् ॥ राज्यनाशाय सा प्रोक्ता निदिता चाश्वपूजने’ ॥ इति । एषु
 वचनेषु कलशस्थापनग्रहणात् तदेव प्रथमदिने निषिध्यते न तृपवासादि । तस्य—
 ‘प्रतिपद्यप्यमावास्या’ इति युग्मवाक्यात् । ‘शुक्ला स्यात् प्रतिपत्तिथिः प्रथमतः’ इति ।
 दीपिकोक्तेः । ‘शुक्लपक्षे दर्शविद्धा’ इति माधवोक्तेश्च । पूर्वादिने प्राप्तस्य बाधे माना-
 भावादिति केचित् ॥ वस्तुतस्तु पूर्वोक्तवाक्येषु चण्डिकार्चनपूजाग्रहणादुपवासादेश्चाङ्ग-
 त्वात् प्रधानदेवीपूजादावपि परेति युक्तम् ॥ कलशस्थापनग्रहणं तूपलक्षणम् । अत एव
 देवलः—‘व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत् । सा तिथिस्तदिने पूज्या विपरीता तु
 पैतृके’ ॥ इति । अत्र घटिका मुहूर्त इति गौडाः । यदा तु पूर्वादिने संपूर्णा शुद्धा च
 भूत्वा परदिने वर्धते तदा संपूर्णत्वादमायोगाभावाच्च पूर्वैव । यानि च द्वितीयायोगनिषेध-
 कानि वचनानि केचित् पठन्ति तान्यपि शुद्धाधिकानिषेधपराणि । परदिने प्रतिपदो-
 त्यन्तासत्त्वे तु दर्शयुतापि पूर्वैव ग्राह्या तदाह लल्लः—‘तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणं तिथिः
 प्रमाणं तिथिरेव साधनम्’ ॥ इति यानि तु ‘अमायुक्ता प्रकर्तव्या’ इत्यादीनि नृसिंह-
 प्रसादे वचनानि तानि समूलत्वे सत्येतद्विषयाणि । अत्रेदं तत्त्वम् । पूर्वोक्तवाक्यानां
 सर्वेषां हेमाद्र्याद्यलिखितत्वेन निर्मूलत्वात्तैश्चान्यनिर्णयस्यानुक्तेः सामान्यनिर्णयात्
 पूर्ववत्प्राप्तावपि गौडनिबन्धेषु विशेषनिर्णयादौदयिकी ग्राह्या । तत्रापि ‘घटिका’
 इत्यस्य द्विमुहूर्तस्तुतिवोक्तेर्द्विमुहूर्ता ग्राह्या । ‘उदिते दैवतं भानौ’ इत्यत्र ‘द्विमुहूर्ता त्रिरहश्च’
 इति औदयिक्या द्विमुहूर्तत्वनियमात् । तेन ‘उदये द्विमुहूर्तापि’ इत्याद्यनुसारोपि ‘मुहूर्त-
 मात्रा कर्तव्या’ इति द्विमुहूर्तस्तुतिः । अन्यथा द्विमुहूर्तविधिवैयर्थ्यात् । केचित्तु ‘मुहूर्त-
 मात्रा’ इति वचनात्ततो न्यूनत्वे परा नेत्याहुः । गौडा अप्येवम् । अत्र देवीपूजैव प्रधा-
 नम् । उपवासादि त्वङ्गम् । ‘अष्टम्यां च नवम्यां च जगन्मातरमम्बिकाम् । पूजयित्वा-

शिवने मासि विशोको जायते नरः' ॥ इति हेमाद्रौ भविष्ये तस्या एव फलसं-
न्धात् । 'नवमीतिथिपर्यंतं वृद्ध्या पूजाजपादिकम्' । इति तत्रैव देवीपुराणात् ।
'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी' । मार्कण्डेयपुराणाच्च । पूर्ववचनादष्टमी
नवमी पृजैव प्रधानमन्यत्सर्वमंगामेति गौडाः । एकाहपक्षोऽपि कालिकापुराणे-
'यस्त्वेकस्यामथाष्टम्यां नवम्यामथ साधकः । पूजयेद्भद्रां देवीं महाविभवविस्तरैः' ॥
इति तत्त्वं तु-राजसूयेन्ययागैः समप्रधानायाः सहिताया अप्येष्टेष्टेः एतयान्नाद्यकामं
याजयेदित्येकत्वान्मध्ये विधानाच्च यथा फलार्थो बहिःप्रयोगस्तथा नवरात्रमध्यस्थाया
अष्टम्या नवम्या वा फलार्थः पृथक् प्रयोगः । रूपनारायणधृतदेवीपुराणे-'महान-
वम्यां पृजेयं सर्वकामप्रदायिका । सर्वेषु चैव वर्णेषु तव भक्त्या प्रकीर्तिता ॥ कृत्वाप्नोति
यशोराज्यपुत्रायुर्वनसंपदः' ॥ सा च काम्या नित्या च । 'एवमन्यैरपि तथा देव्याः कार्यं
प्रपूजनम् । विभूतिमतुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायिकाम्' इति 'यो मोहादथ वालस्याद्देवीं दुर्गा-
महोत्सवे । न पूजयति दम्भाद्वा द्वेषाद्वाप्यत्र भैरव ॥ क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टाञ्जि-
ह्वति वै ॥' इति कालिकापुराणे फलनिन्दाश्रुतेः । 'वर्षे वर्षे विधातव्यं स्थापनं च
विसर्जनम् । इति तिथितत्त्वे देवीपुराणाच्च ॥

अत्रोपवासादिकमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये-'एवं च विंध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः ।
एकभक्तेन नक्तेन तथैवावाचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थानेस्थाने पुरेपुरे । गृहेगृहे
शक्तिपरैर्ग्रामेग्रामे वनेवने ॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्ति-
युक्तैर्मल्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः' ॥ इति । यत्तु रूपनारायणीये भविष्ये-'एवं नाना-
म्लेच्छगणैः पूज्यते सर्वदस्युभिः' । इति तत्तामसपूजापरम् । विना मन्त्रैस्तामसी स्याः
त्किरातानां तु संमता' । इति तत्रैवोक्तेः । मदनरत्ने देवीपुराणेपि-'कन्यासंस्थे
रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् । अयाची ह्यथवैकाशी नक्ताशी वाथवाम्बुदः ॥
भूमौ शयीत चामंज्य कुमारीर्भोजयेन्मुदा । वस्त्रालंकारदानैश्च संतोष्याः प्रतिवासरम् ॥
बालं च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांसमाषवत् । त्रिकालं पूजयेद्देवीं जपस्तोत्रपरायणः' ॥ इति
नन्दिका प्रतिपत्तिथिः । इति मैथिलाः । पृष्ठीति गौडाः । तच्च पूजनं रात्रौ कार्यम् ।
'आश्विने मासि मेघान्ते माहिषासुरमर्दिनीम् । निशामु पूजयेद्भक्त्या सोपवासादिकः
क्रमात्' ॥ इति देवीपुराणात् । संग्रहेपि-'आश्विने मासि मेघान्ते प्रतिपद्या तिथिर्भवेत् ।
तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ देवीं च पूजयेत् ॥ रात्रिरूपा यतो देवी दिवा-
रूपो महेश्वरः । रात्रिं त्रतमिदं देवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ सर्वकामप्रदं नृणां

रात्रिपूजानिर्णयः ।

१ इदं तु चिन्त्यम् । एतयेति सर्वनाम्ना प्रकृतपरामर्शाद्युक्तोऽवेष्टेरेव बहिःप्रयोगः न त्विह तथा
परामर्शकं किंचिदास्ति अष्टम्यां नवम्योः पृथगग्रे पूजाविधानादेतद्वचनस्य तदेकवाक्यता संभवति ।
'शरत्काले महापूजा' इति मार्कण्डेयं तु न नित्यत्वव्यञ्जकम् वाप्ताद्यभावात् । इति टीका ।

सर्वशत्रुनिवर्हणम् । रात्रिव्रतमिदं तस्य रात्रौ कर्तव्यतेष्यते ॥ नक्तव्रतमिदं यस्मादन्यथा नरके गतिः । इत्यादि वचनाच्च रात्रिव्रतत्वमेवाभिप्रेत्य माधवेनोक्तम् तस्य नक्तव्रतत्वादिति । न तु रात्रिभोजनात् । ननु—‘मासि चाश्वयुजे शुक्ले नवरात्रे विशेषतः । संपूज्य नवदुर्गा च नक्तं कुर्यात्समाहितः ॥ नवरात्राभिधं कर्म नक्तव्रतमिदं स्मृतम् । आरम्भे नवरात्रस्य’ इत्यादि स्कान्दात् माधवोक्तेश्च नक्तमेव प्रधानमिति चेन्न । ‘नवरात्रोपवासतः’ इत्यादेरनुपपत्तेः । तेन पाक्षिकनक्तानुवादोऽयम् । (नित्यानित्यसंयोगविरोधात् । न ह्यग्निहोत्रे दशमपक्षे प्राप्तस्य दध्ना जुहोतीत्यस्येन्द्रियकामहोमेनुवादो घटते । नित्यवदनुवादायोगादित्युक्तं वार्तिके तथात्रापि । तेनात्र तद्वदेव गुणात् फलमिति ज्ञेयम् ॥) ननु रात्रेः कर्मकालत्वे तद्व्यापिनी पूर्वेव प्रतिपत् प्राप्नुयात् । मैवम्—‘न्यायतः प्राप्तावपि पूर्वोक्तवचनैर्वाधात् । यथा पूर्वेद्युः कर्मकालव्यापिनिमपि त्यक्त्वा स्वल्पापि पौर्व रामनवमीति प्रागुक्तम् । यथा वा निशीथे सतीमपि पूर्वा जन्माष्टमीं त्यक्त्वा रोहिणीयुक्ता परैवेति माधवेनोक्तं तथात्रापि दन्तुतस्तु रात्रेः कर्मकालत्ववचसां हेमाद्र्याद्यखिलात् समूलत्वं विवृश्यमेव । ‘त्रिकालं पूजयेत्’ इत्यादि पूर्वविरोधाच्च । माधवोक्तिस्तु पाक्षिकनक्तानुवाद इत्युक्तम् । तस्मात्सर्वपक्षेषु परैव प्रतिपदिति सिद्धम् । अत्र केचिन्नवरात्रशब्दो नवाहोरात्रपरः । ‘वृद्धौ समाप्तिरष्टम्यां हासे माप्रतिपन्निशि । प्रारम्भो नवचण्ड्यास्तु नवरात्रमतोर्थवत्’ ॥ इति देवीपुराणादित्याहुस्तन्न । अतिहासवृद्धचोर्न्यूनाधिकत्वापत्तेः । अत्र मूलाभावाच्च तेन तिथिवाच्येवायम् । तदुक्तं—‘तिथिवृद्धौ तिथिहासे नवरात्रमपार्थक्यम् । अष्टरात्रे न दोषोऽयं नवरात्रतिथिक्षेपे’ । इति स च नवरात्रशब्दः कचिदुक्षणया कर्मवाची । यथा—‘प्रारम्भो नवरात्रस्य’ इत्यत्रेति किं ॥

प्रतिपदि च वैधृत्यादियोगनिषेधो भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे—‘त्वाष्ट्रवैधृतिर्युक्ता चेत् प्रतिपच्चण्डिकार्चने । तयोरन्ते विधातव्यं कलशारोपणं गुह’ ॥ इति चित्रावैधृतिर्युक्तापि द्वितीयायुक्ता चेत्सैव ग्राह्येत्युक्तम् । दुर्गोत्सवे—‘भद्रान्विता चेत् प्रतिपत्तु लभ्यते विरुद्धयोगैरपि संगता सती । सैवापराह्णे विबुधैर्विधेया श्रीपुत्रराज्यादिविवृद्धिहेतुः’ ॥ इति । यदा तु वैधृत्यादिपरिहारेण प्रतिपन्न लभ्यते तदोक्तं तत्रैव कात्यायनेन । ‘प्रतिपद्याश्विने मासि भवो वैधृतिचित्रयोः । आद्यपादौ परित्यज्य प्रारभेन्नवरात्रकम्’ ॥ इति । भविष्येपि—‘चित्रावैधृतिरसम्पूर्णा प्रतिपच्चेद्भवेन्नृप । त्याज्या ह्यंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनम्’ ॥ इति । रुद्रयामलेपि—‘वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनम् । तस्मान्न स्थापयेत् कुम्भं चित्रायां वैधृतौ तथा ॥ सम्पूर्णा प्रतिपदेव चित्रायुक्ता यदा भवेत् । वैधृत्या वापि युक्ता स्यात्तदा मध्यादिने रवौ । अभिजित्तु मुहूर्तं यत्तत्र स्थापनमिष्यते’ ॥ इति चित्रादिनिषेधे मूलं चिंत्यम् । इदं कलशस्थापनं रात्रौ न कार्यम् । ‘न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्’ । इति

मात्स्योक्तेः । 'भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दश नाडिकाः । प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु' ॥ इति विष्णुधर्मोक्तेश्च । रुद्रयामले- 'स्नानं माङ्गलिकं कृत्वा ततो देवी प्रपूजयेत् । शुभाभिर्मृत्तिकाभिश्च पूर्वं कृत्वा तु वेदिकाम् । यवान्वै वापयेत्तत्र गोधूमैश्चापि संयुतान् । तत्र संस्थापयेत्कुम्भं विधिना मन्त्रपूर्वकम् । सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं मृन्मयजं तु वा' । इति ॥

अथ पूजाविधिः ॥ स च जयन्तीमंत्रेण नवाक्षरेण कार्यः । तदुक्तं दुर्गाभक्तिरत्नदिप्यां देवीपुराणे- 'कुर्याद्देव्यास्तु मन्त्रेण पूजां क्षीरघृतादिभिः' । इत्युक्त्वा 'जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवाधात्री स्वधा स्वाहा नमोस्तु ते ॥ अनेनैव तु मंत्रेण जपहोमौ तु कारयेत्' । इति । 'ॐ दुर्गे दुर्गे राक्षिणी स्वाहा' इति नवाक्षरः । तत्र प्रतिपदि प्रातरभ्यङ्गं कृत्वा देशकालौ संकीर्त्य ममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वाप-च्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसंततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रु-पराजयसदभीष्टसिद्धयर्थं शारदनवरात्रप्रतिपदि विहितकलशस्थापनदुर्गापूजाकुमारीपूजादि कारिष्ये इति संकल्प्य 'महीद्यौः' इति भूमिं स्पृष्ट्वा 'ओषधयः समु' इति यवान्निक्षिप्य 'आकलशेषु' इति कुम्भं संस्थाप्य 'इमं मे गङ्गे' इति जलेनापूर्य । 'गन्ध-द्वाराम्' इति गन्धम् 'या औषधीः' इति सर्वौषधीः, 'काण्डात् काण्डात्' इति दूर्वाः, 'अश्वत्ये वो' इति पञ्च पलवान्, 'स्योना पृथिवि' इति सप्तमृदः, 'याः फलिनीः' इति फलम्, 'स हि रत्नानि' इति पञ्च रत्नानि, हिरण्यं क्षिप्त्वा- 'युवा सुवासाः' इति वस्त्रेणावेष्ट्य 'पूर्णादर्वि' । इति पूर्णपात्रं निधाय, । तत्र वरुणं संपूज्य, जीर्णायां नूतनायां वा प्रतिमायां दुर्गामावाह्य पूजयेत् । तद्यथा-पूर्वोक्तं मंत्रमुक्त्वा, 'आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदनि । पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये ॥ सर्वतीर्थ-मयं वारि सर्वदेवसमन्वितम् । इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवगणैः सह ॥ दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । वलिं पूजां गृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह' ॥ इत्यावाह्य पूर्वोक्तमन्त्रेण षोडशोपचारैः पूजयित्वा माषभक्तवलिं कूष्माण्डादिवलिं वा निवेदयेत् ॥

ततः कुमारीपूजा तदुक्तं हेमाद्रौ स्कांदे- 'एकैकां पूजयेत् कन्यामेकवृद्ध्या तथैव च । द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवकं तु वा ॥ तथा- 'नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्यं द्विगुणेन तु । एकवृद्ध्या लभेत् क्षेममेकैकेन श्रियं लभेत् ॥ एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत् । गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते' ॥ तेन द्विवर्षामारभ्य दशवर्षापर्यन्ता एव पूज्या न त्वन्याः । तासां च क्रमेण कुमारिका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चण्डिका शाम्भवी दुर्गा सुभद्रा इति नामभिः पूजा कार्या । आसां च प्रत्येकं पूजामंत्राः फलविशेषाश्च तत्रैव ज्ञेयाः । सामान्यतस्तु 'मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम् । नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम् ॥ एवमभ्यर्चनं

कुर्यात् कुमारीणां प्रत्यन्ततः । कंचुकैश्चैव वस्त्रैश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्भोजयेत् पायसादिभिः । तथा—‘ग्रन्थिस्फुटितशीर्णाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्गिताम् । जात्यन्धां केकरां कार्णीं कुरुपां तनुरोमशाम् ॥ संत्यजेद्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम् ॥ तथा—‘ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम् । लाभार्थे वैश्यवंशोत्थ्यां सुतार्थे शूद्रवंशजाम् ॥ दारुणे चान्त्यजातानां पूजयेद्विधिना नरः’ । इति ।

अत्र वेदपारायणमप्युक्तं रुद्रयामले—‘एवं चतुर्वेदविदो विप्रान् सर्वान् प्रसादयेत् । तेषां च वरणं कार्यं वेदपारायणाय वै’ ॥ इति । तथा—‘एकोत्तराभिवृद्ध्या तु नवमी यावदेव हि । चण्डीपाठं जपेच्चैव जापयेद्वा विधानतः ॥’ तिथितत्त्वे वाराहीतन्त्रे—‘प्रणवं चादितो जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत्’ । अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपूरुषः ॥ आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं प्रजपेत्सुधीः । हस्तसंस्थापनादेव यस्माद्वै विफलं भवेत् ॥ स्वयं च लिखितं यच्च शूद्रेण लिखितं भवेत् । अब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि विफलं भवेत् ॥ ऋषिच्छन्दादिकं न्यस्य पठेत् स्तोत्रं विचक्षणः । स्तोत्रं न दृश्यते यत्र प्रणवं तत्र विन्यसेत् ॥ सर्वत्र पाठ्ये विज्ञेयस्त्वन्यथा विफलं भवेत्’ । एवं नवमीपर्यन्तं प्रत्यहं कुर्यात् । अत्र विशेषो हेमाद्रौ देवीपुराणे—‘यदाद्ये दिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम् । द्विगुणं तद्वितीये द्वि त्रिगुणं तत् परेहनि ॥ नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम्’ । इति । एतेन नवरात्रे पूजैव प्रधानम् । उपवासादि त्वङ्गमिति गम्यते । तिथिद्वासे तु तिथिद्वयनिमित्तं पूजादि महालयश्राद्धवदेकादिने आवृत्त्या कार्यम् । वृद्धौ तद्वदेवावृत्तिः । ततो नवरात्रोपवासादिसंकल्पं कुर्यात् । स्वस्याशक्तावन्येन वा पूजादि कारयेत् । ‘स्वयं वाप्यन्यतो वापि पूजयेत् पूजयीत वा’ । इति तरङ्गिण्यां देवीपुराणात् । इदं च देवीपूजनं शुक्रास्तादावपि कार्यम् । तदुक्तं धर्मप्रदीपे—‘नष्टे शुके तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ । कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः’ ॥ इति । मलमासे तु वचनाभावान्न भवतिः ।

अत्र साश्वस्याश्वपूजनमुक्तम् । मदनरत्ने देवीपुराणे—‘आश्वयुक्शुक्लप्रीतिपत्स्वातीयोगे शुभे दिने । पूर्वमुच्चैःश्रवा नाम प्रथमं श्रियमावहत् ॥ तस्मात्साश्वैर्नरेस्तत्र पूज्योसौ श्रद्धया सह । पूजनीयाश्च तुरगा नवमी यावदेव हि ॥ शान्तिः स्वस्त्ययनं कार्यं तदा तेषां दिनेदिने । धान्यं भलातकं कुष्ठं वचा सिद्धार्थकास्तथा ॥ पञ्चवर्णेन सूत्रेण ग्रन्थि तेषां तु बन्धयेत् । वायव्यैर्वारुणैः सौरैः शक्तैर्मन्त्रैः सवैष्णवैः ॥ वैश्वदेवैस्तथाग्रेयैर्होमः कार्या दिनेदिने ।’ कल्पतरौ त्वेतदग्रेन्यदपि । ‘ज्येष्ठे योगे पुरा तत्र गजाश्चाष्टौ महाबलाः । पृथिवीमवहन् पूर्वं सशैलवनकाननाम् ॥ कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोथ वामनः । सुप्रतीकोन्नतो नीलस्तस्मात्तांस्तत्र पूजयेत् । शक्रादक्षात्समारभ्य नवम्यन्तं च पूर्ववत् ॥’ अश्ववद्धोमादित्यर्थः ॥

अथ प्रतिपदादि-

विशेषः।

अथ प्रतिपदादिषु विशेषो दुर्गाभक्तितरंगिण्यां भविष्ये-
 'केशसंस्कारद्रव्याणि प्रदद्यात् प्रतिपदिने । पक्वतैलं द्वितीयायां केश-
 संयमहेतवे' ॥ पट्टादोरमिति गौडपाठः । 'दर्पणं च तृतीयायां सिन्दूरालक्तकं तथा ।
 मधुपर्कं चतुर्थ्यां तु तिलकं नेत्रमण्डनम् ॥ पञ्चम्यामङ्गरागं च शक्त्यालंकरणानि च ।
 षष्ठ्यां विल्वतरौ बोधं सायं संध्यासु कारयेत् ॥ सप्तम्यां प्रातरानीय गृहमध्ये प्रपूज-
 येत् । उपोषणमथाष्टम्यामात्मशक्त्या च पूजनम् ॥ नवम्यामुग्रचण्डायाः पूजां कुर्या-
 द्दलिं तथा । संपूज्य प्रेषणं कुर्याद्दशम्यां सारवोत्सवैः । अनेन विधिना यस्तु देवीं
 प्रीणयते नरः ॥ स्कन्दवत् पालयेद्देवीं तं पुत्रधनकीर्तिभिः ॥' कृत्यतत्त्वार्णवे लैङ्गे-
 'कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वाद्र्भेपि वा । नवम्यां बोधयेद्देवीं महाविभवविस्तारैः ॥
 शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोक्षणम् । प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेत्सुशुभैर्जलैः ॥
 षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत विल्ववृक्षेधिवासनम् । सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपो-
 षणम् ॥ पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्दलिः । विसर्जनं दशम्यां तु क्रीडाकौतु-
 कमंगलैः' ॥ अत्र नवम्यां बोधनासामर्थ्ये षष्ठ्यां बोधनमिति स्मार्ताः । फलभू-
 मार्यिनः समुच्चय इत्यन्ये । नवम्यां मन्त्रः कालिकापुराणे-'इषे मास्यसिते पक्षे
 नवम्यामार्द्रमे दिवा । श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत् पूजां करोम्यहम् ॥' अत्र स्त्रीव्रते
 विशेषः परिभाषायां ज्ञेयः ॥

अथाशौचे विशेषो निर्णयामृते विश्वरूपनिबन्धे-'आश्विने शुक्लपक्षे तु
 प्रारब्धे नवरात्रके । शावाशौचे समुत्पन्ने क्रिया कार्या कथं बुधैः ॥ सूतके वर्तमाने च
 तत्रोत्पन्ने सदा बुधैः । देवीपूजा प्रकर्तव्या पशुयज्ञविधानतः ॥ सूतके पूजनं प्रोक्तं दानं
 चैव विशेषतः । देवीमुद्दिश्य कर्तव्यं तत्र दोषो न विद्यते' ॥ इति । कालादर्शे
 विष्णुरहस्येऽपि-'पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः । तत् कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्च-
 नविवर्जितम्' ॥ इति गौडनिबन्धे तिथितत्त्वेऽप्युक्तम् । आश्विनकृष्णनवम्यादि,
 शुक्लप्रतिपदादि, षष्ठ्यादि, सप्तम्यादि, चैकं कर्म । अतश्च मध्ये आशौचपातेपि न
 दोषः । 'संकल्पो व्रतसत्रयोः' इति विष्णूक्तेरिति । आरब्धं स्वयमेव कार्यम् । अनारब्धं
 त्वन्येन कारयेदिति दिवोदासः । रजस्वला त्वन्येन कारयेत् । सूतकादिवद्विशेष-
 वचनाभावात् ॥ स्त्रीणां च नवरात्रे ताम्बूलादिचर्वणं भवति । तदुक्तं व्रतहेमाद्रौ
 मारुडे-'गन्धालंकारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावन-
 मञ्जनम्' ॥ इति । एतत्समर्तकोपवासविषयम् । अन्यश्चात्र विशेषः परिभाषायामुक्तः ।

उपाङ्गललिताव्रतम् ।

आश्विनशुक्लपञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतं महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धम् ।
 तत्र यद्यपि कथायां कालविशेषो नोक्तस्तथापि 'रात्रौ जागरणं कुर्या-
 द्भीतिवादिन्ननिःस्वनेः' । इति रात्रौ जागरोक्तेः शक्तिपूजाया रात्रौ प्राशस्त्याच्च रात्रिव्या-

पिनी ग्राह्येति केचित् । वस्तुतस्तु वचनं विना रात्रिपूजायां मानाभावात् । जागरस्य चाङ्गत्वाद्युगमवाक्यात् 'भुक्त्वाजागरणे नक्ते चन्द्राद्यर्घ्यव्रते तथा । ताराव्रतेषु सर्वेषु रात्रि-योगो विशिष्यते' ॥ इति कालहेमाद्रौ वचनाच्च पूर्वविद्धा ग्राह्या । रात्रिशब्दः पूर्वविद्धा-वचन इति हेमाद्रिः । अस्य च भुक्त्वा जागरणरूपत्वादिति साधुः प्रतीमः । भुक्त्वा जागरणं यत्रेत्येकं पदं तस्मिन् व्रते इत्यर्थः । अन्यथा भुक्त्वेत्यसङ्गतेः । दिवोदासी-येप्येवम् ॥

आश्विनशुक्लपक्षे मूलनक्षत्रे पुस्तकेषु सरस्वतीस्थापनम् ।
सरस्वत्यावाहनम् ।

यथोक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे—'मूलेषु स्थापनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम् । उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत् ॥ इति । रुद्रयामलेपि—'मूलऋक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती । पूजयेत् प्रत्यहं देव यावद्वैष्णवमृक्षकम् ॥ नाध्या-पयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन । पुस्तके स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः ॥' संग्रहे—'आश्विनस्य सिते पक्षे मेधाकामः सरस्वतीम् । मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् ॥ मूलस्याद्यपादे आवाहनमिति शिष्टाः ॥ श्रवणाद्यपादे च विसर्जयेत् । आदिभागो निशायां तु श्रवणस्य यदा भवेत् । संप्रेषणं तदा देव्या दशम्यां च महोत्सवः ॥' इति चिन्तामणौ ब्रह्माण्डपुराणात् ।

अथ षष्ठी ॥ गौडनिबन्धे देवीपुराणे—'ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां
षष्ठी ।

षष्ठ्यां बिल्वभिर्मन्त्रणम् । सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम् ॥ पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम् । उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छि-वाम् ॥ श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।' कालिकापुराणे—'बोधयेद्विल्व-शाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च । सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहत्य प्रतिपूजयेत् ॥ पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् । जागरं च स्वयं कुर्याद्बलिदानं महानिशि ॥ प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत् । विसर्जनं दशम्यां तु कुर्यादै सारवोत्सवैः ॥ घूलिकर्दमनिक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥' अत्र सर्वत्र तिथिनक्षत्रयोगादरो मुख्यः कल्पः । तदभावे तु तिथिरेव ग्राह्या । 'तिथिः शरीरं देवस्य तिथौ नक्षत्रमाश्रितम् । तस्मात्तिथिं प्रशंसन्ति नक्षत्रं न तिथिं विना ॥' इति विद्यापतिलिखितवचनात् । 'तिथिनक्षत्रयोयोगे द्वयोरेवानुपालनम् । योगाभावे तिथि-ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि' ॥ इति तत्रैव देवलोक्तेश्च ॥

अत्र च पत्रीप्रवेशात्पूर्वैद्युः सायंकाले षष्ठ्यभावे तत्पूर्वदिनेधिवासनं कार्यम् । सायं-कालेत्यन्तासवे त्वधिवासनलोपः । 'षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेधिवासनम्' । इति पूर्ववचनादिति कल्पतरुः । सायं श्रुतिः फलातिशयमात्रार्था न तु कर्मलोप इत्या-चार्यचूडामणिः । अत्र क्रमः बिल्वसमीपं गत्वा देवीं बिल्वं च संपूज्य प्रार्थयेत् ।

तत्र मन्त्रः—‘रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च । अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्या-
स्त्वयि कृतः पुरा ॥ अहमत्याश्रितः षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः । श्रीशैलशिखरे
जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः । नेतव्योसि समागच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः’ ॥ इति ।
एवं देवीमविवास्य परदिने निमन्त्रितविल्वशाखापत्रीप्रवेशपूजां कुर्यात् ॥ तदुक्तं
हेमाद्रौ लिंगे—‘मूलाभावे तु सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत् । युग्माभ्यां नवविल्वस्य

फलाभ्यां शाखिकां तथा ॥ तथैव प्रतिमां देव्याः स्नात्वाभ्युक्ष्य प्रवेश-
देव्याः पत्रिकापूजां । येत् ॥’ अत्र चोपवासपूजादावौदयिकी सप्तमी ग्राह्या । न तु युग्म-

वाक्यात् पूर्वा । युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया । खेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथि-
युग्मता ॥ इति कृत्यतत्त्वार्णवोदाहृतवचनात् । ‘भगवत्याः प्रवेशादि विसर्गांताश्च याः
क्रियाः । तिथाबुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद् बुधः ॥ इति तिथितत्त्वेनन्दिकेश्वर
पुराणाञ्च दुर्गाभक्तिरङ्गिण्यामप्येवम् । तत्रापि घटिकातो न्यूनत्वे परा न कार्या ।
‘व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत्’ । इति देवलोक्तेरिति गौडाः । दाक्षि-
णात्यास्तु पूर्ववचनमदृष्ट्वा युग्मवाक्यात् पूर्वा कुर्वन्ति । पत्रिकापूजा च पूर्वाह्ने एव
कार्या न तु मूलानुरोधान्मध्याह्नादाविति कृत्यतत्त्वार्णवे उक्तम् । पत्रिकास्तु—
‘रम्भा कवी हरिद्रा च जयन्ती विल्वदाडिमौ । अशोको मानवृक्षश्च धान्यादिनवपत्रि-
काः’ ॥ इति तत्रैवोक्ताः । अस्यामेव सप्तम्यां देवीत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ ।
प्रतिपदादिनवतिथिषु उपवासकरणासामर्थ्ये सप्तम्यादिदिनत्रये वा कुर्यात् । तदाह
धौम्यः—‘आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम् । प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च
नवमी भवेत् ॥ त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम् ॥’ अत एव हेमाद्रौ देवी-
पुराणे मङ्गलाव्रते । ‘आश्विने वाथ वा माघे चैत्रे वा श्रावणेपि वा । कृष्णाष्टम्यादि
कर्तव्यं व्रतं शुक्लावधिं हरेः ॥ यावच्छुक्लाष्टमी शक्र उपोष्या तु विधानतः । दानं होमो
जपः पूजा कन्या भोज्यास्तथान्वहम् ॥ महाभैरवरूपेण अस्थिमालाधराश्च ये । पूजनी-
या विशेषेण वस्त्रैर्ग्रामपुरादिषु ॥’ इति मासचतुष्टयेभिधाय अन्यत्रापि ‘अथवा नव-
रात्रं च सप्तमं च त्रिकं दिवा । एकभक्तेन नक्तेनायाचितोपोषितैः क्रमात्’ ॥ इति ।
‘पूजयेताश्विने शक्र यावच्छुक्लाष्टमी भवेत् । सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति शक्तो नास्त्यत्र
संशयः’ ॥ इत्युक्तं दिवैत्येकरात्रमुक्तम् । गोविन्दार्णवे ॥ देवीपुराणे—‘नवरात्रव्रते
शक्तास्त्रिरात्रं चैकरात्रकम् । व्रतं चरति यो भक्तस्तस्मै दास्यामि वाञ्छितम्’ ॥ इति ।
तत्रापि सप्तम्याः पूजने पूर्वोक्तो निर्णयः । अत्र तिथियौगपद्ये तन्त्रेणोपवासः । तिथि-
द्वयनिमित्तं पूजादिकं तु भेदेन ।

अत्र विशेषो निर्णयामृते भविष्ये—‘सप्तम्यां नवगेहानि दारुजानि नवानि
च । एवं वा वित्तभावेन कारयेत्सुसमाहितः ॥ दुर्गागृहं प्रकर्तव्यं चतुरस्रं सुशोभनम् ।
तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तां समां शुभाम् ॥ तस्यां सिंहासनं क्षौमं कम्बलाजिन-

संयुतम् । तत्र दुर्गा प्रतिष्ठाप्य सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ भुजैश्चतुर्भां रुचिरैर्दशभिर्वा विभू-
षिताम् । तप्तहाटकवर्णाभां त्रिनेत्रां शशिशेखराम् ॥ अनेककुसूमाकीर्णां कपर्देन सुशो-
भिताम् । नितम्बविम्बसन्नद्धकिंकिणीक्वाणनादिनीम् ॥ शूलचक्रदण्डशक्तिवज्रचापा-
सिधारिणीम् । घण्टाक्षमालाकरकपानपात्रलसत्कराम् ॥ तदग्रे छिन्नशिरसं माहिषं
रुधिराद्भुतम् । निःसृतार्धतनुं कण्ठनाले चर्मासिधारिणम् ॥ देवीधृतकरग्रीवं शूलेनोरसि
ताडितम् ॥ नागपाशेन विक्षिप्तं हर्यक्षेणापि विद्रुतम् ॥ वमद्गुधिरवक्त्रेण धुन्वतोर्ध्वं सटा-
च्रुषा । सर्वतो मातृचक्रेण सेव्यमानां सुरैस्तथा । इति । 'तत्र देवी प्रकर्तव्या हैमी
वा राजती तथा । मृदाक्षीं लक्षणोपेता खड्गे शूले च पूजयेत्' ॥ वार्क्षी दारुमयी ॥

देवीमूर्तिस्थापने विशेषो दुर्गाभक्तिरङ्गिण्यां देवीपुराणे—'याम्यास्या
शुभदा दुर्गा पूर्वास्या जयवर्धिनी । पश्चिमाभिमुखी नित्यं न स्थाप्या सौम्यदिङ्मुखी' ॥
प्रतिमाभावे विशेषस्तत्रैव—'हैमराजतमृदातुशैलचित्रार्पितापि वा । खड्गे शूलेर्चिता
देवी सर्वकामफलप्रदा ॥ यद्यद्यस्यायुधं प्रोक्तं तस्मिंस्तां प्रति पूजयेत् । देवी भक्त्या-
र्चिता पुंसां राज्यायुःसुतसौख्यदा' ॥ कृत्यतत्त्वार्णवे कालिकापुराणे—'लिङ्गस्थां
पूजयेद्देवीं मण्डलस्थां तथैव च । पुस्तकस्थां महादेवीं पावके प्रतिमासु च ॥ चित्रे च
त्रिशिखे खड्गे जलस्थां वापि पूजयेत् । बिल्वपत्रैर्यजेद्देवीं तथा जातीप्रसूनकैः ॥ नाना-
पिष्टकनैवैधैर्धूपदीपैर्मनोहरैः । भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ॥ भगलिङ्गक्रिया-
भिश्च प्रीणयेद्धरचंडिकाम् । परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपत्यपि ॥ तस्य क्रुद्धा
भगवती शापं दद्यात्सुदारुणम्' । चित्रमृन्मयादौ स्नानाद्यसंभवे तत्रैवोक्तम् । 'अन्तिके
स्थापिते खड्गे स्नापयेद्दर्पणेथ वा' । इति ॥

अथ सप्तमीपूजाविधिः । 'प्रतिपद्युक्ताविधिना फलसंकीर्तनान्ते नवपत्रिकामृन्म-

सप्तमीपूजा ।

यदुर्गापूजाबलिदानानि करिष्ये' इति संकल्प्य पूर्वनिमन्त्रितविल्वस-

मीपं गत्वा संपूज्य 'आगच्छ सर्वकल्याणि' इति पूर्वोक्तमन्त्रं पठित्वा
'बिल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं शङ्करप्रिय । गृहीत्वा तव शाखां च देवीपूजां करोम्य-
हम् ॥ शाखाछेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो । गृहीत्वा तव शाखां च पूज्या
दुर्गेति च स्मृतिः ॥ उत्तिष्ठ पत्रिके देवि सर्वकल्याणहेतवे । पूजां गृहाण सकलाम-
स्माकं वरदा भव ॥ मेरुमन्दरैकैलासहिमवच्छिखरे गिरौ । जातः श्रीफलवृक्ष त्वमम्बि-
कायाः सदा प्रियः' ॥ इति संप्रार्थ्य 'ॐ हुं छिंधि फट्फट्' 'ॐ फट् स्वाहा' इति
छित्त्वा संपूज्य 'ॐ चामुण्डे चलचल' इति वाद्यघोषेण देवीं तां च गृहं प्रवेश्य
'आरोपितासि दुर्गे त्वं मृन्मय्यां श्रीफलेपि च । स्थिरा नितान्तं भूत्वा च गृहे त्वं
कामदा भव' इति स्थिरीकृत्य रम्भादिपत्रिकाः पंचगव्येन च पंचामृतेन च स्नापयित्वा
वस्त्रेणावेष्ट्य स्थापयेत् । इतः पूर्ववत्संकल्पं कृत्वाऽक्षतानादाय देवीमावाहयेत् । तत्र
मन्त्रः । 'आवाहयाम्यहं देवि मृन्मयां श्रीफले तथा । कैलासशिखरादेवि विंध्याद्रेहिम-

पर्वतात् ॥ आगत्य विल्वशाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिम् । स्थापितासि मया दुर्गे
 पूजये त्वां प्रसीद मे ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते । दुर्गे दुर्गस्वरूपासि
 मुरतेजोमयेचिते । सदानन्दकरे देवि प्रसीद मम सिद्धये ॥ एहोहि भगवत्यम्ब शत्रुक्ष-
 यजयप्रदे । भक्तितः पूजयामि त्वां दुर्गे देवि सुराचिते ॥ पल्लवैश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च
 सुमनोहरैः । पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे ॥ दुर्गे देवि इहागच्छ सांनिध्य-
 मिह कल्पय । यज्ञभागान् गृहाण त्वं योगिनीकोटिभिः सह ॥ इति ततो मूलमन्त्रेण
 पाद्यादिगन्धान्तोपचारैः 'अमृतोद्भवं च श्रीवृक्षं शंकरस्य सदा प्रियम् । विल्वपत्रं प्रय-
 च्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि' ॥ इति विल्वपत्रम् । 'ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदाप्रि-
 यम् । तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये' ॥ इति द्रोणपुष्पं निवेद्य धूपादिदक्षिणान्तां
 पूजां मूलेन कृत्वा प्रार्थयेत् । ॐ महिषाघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । आयुरारो-
 ग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते ॥ कुङ्कुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते । विल्वपत्रकृ-
 तापीडे दुर्गेहं शरणं गतः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं
 देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥ 'सर्वमंगलमङ्गल्ये' इति च संप्रार्थ्य पत्रिकाः पूजयेत् ॥
 कदल्यां ब्रह्माणीम् । दाडिमे रक्तदन्तिकाम् । धान्ये लक्ष्मीम् । हरिद्रायां दुर्गाम् । माने
 चामुण्डाम् । कवौ कालिकाम् । विल्वे शिवाम् । अशोके शोकरहिताम् । जयन्त्यां का-
 त्तिकीं चावाह्य संपूज्य दुर्गायै वलिं दद्यात् ॥ अत्र शस्त्रादिपूजा वक्ष्यते ॥ ततः स्तुतिं
 वदेत् । तदुक्तं शिवरहस्ये- 'दुर्गा शिवां शांतिकरीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः प्रियाम् । सर्व-
 लोकप्रणेत्रीं च प्रणमामि सदाशिवाम् ॥ मङ्गलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां
 कलाम् । विश्वेश्वरीं विश्वमातां चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ सर्वदेवमयीं देवीं सर्वरोगभ-
 षापहाम् । ब्रह्मेशविष्णुनमितां प्रणमामि सदा उमाम् ॥ विन्ध्यस्थां विन्ध्यनिलयां
 दिव्यस्थाननिवासिनीम् । योगिनीं योगमातां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ ईशानमा-
 तरं देवीमीश्वरीमीश्वरप्रियाम् । प्रणतोस्मि सदा दुर्गा संसारार्णवतारिणीम् ॥ य
 इदं पठते स्तोत्रं शृणुयाद्वापि यो नरः । स मुक्तः सर्वपापैस्तु मोदते दुर्गया सह ॥'

अथ महाष्टमी । सा च परयुता । 'शुक्लपक्षेष्टमी चैत्रशुक्लपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा

महाष्टमीव्रतम् । न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता' ॥ इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ मदनरत्ने स्मृ-

तिसंग्रहे- 'शरन्महाष्टमीपूजा नवमीसंयुता सदा । सप्तमीसंयुता नित्यं
 शोकसंतापकारिणी ॥ जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता तु महाष्टमी । इन्द्रेण निहतो जम्भ-
 स्तस्माद्दानवपुंगवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमीमिश्रिताऽष्टमी । वर्जनीया प्रयत्नेन
 मनुजैः शुभकांक्षिभिः ॥ सप्तमीं शल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोपि वा । महाष्टमीं प्रकुर्वाणः
 नरकं प्रतिपद्यते ॥ सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्टमी भवेत् । तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौ-
 त्रक्षयप्रदम् ॥ तथा- 'पुत्रान्हन्ति पशून्हन्ति हन्ति राष्ट्रं सराजकम् । हन्ति जातानजातांश्च
 सप्तमीसहिताष्टमी' ॥ तेन नात्र त्रिमुहूर्तवेधः । तदा घटिकामात्राप्यौदयिकी ग्राह्या ।

‘व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत् ।’ इति देवलोक्तेः । गौडा अप्येवमाहुः । अत एवोक्तं भोजराजेन—‘नच सप्तमी शल्यसमोपहता’ इति इयं भौमेऽतिप्रशस्ता । ‘अष्टम्यामुदिते सूर्ये दिनान्ते नवमी भवेत् । कुजवारो भवेत्तत्र पूजनीया प्रयत्नतः ॥’ इति मदनरत्ने वचनात् ॥ ‘सप्तमी शल्यसंविद्धा वर्जनीया सदाष्टमी ॥ स्तोकापि सा महापुण्या यस्यां सूर्योदयो भवेत्’ इति मदनरत्ने स्मृतिसमुच्चयवचनात् । अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता ।’ इति पाद्मवचनाच्च ।

इयमेव मूलयुक्ता चेन्महानवमीसंज्ञा ॥ ‘आश्वयुक्शुक्लपक्षे याष्टमी मूलेन संयु-
ता ॥ सा महानवमी प्रोक्ता त्रैलोक्येपि सुदुर्लभा’ ॥ इति हेमाद्रौ
महानवमी । स्कांदात् ॥ मूलयुक्तापि सप्तमीयुता चेत्याज्यैवेत्युक्तं निर्णयामृते

दुर्गोत्सवे—‘मूलेनापि हि संयुक्ता सदा त्याज्याऽष्टमी बुधैः । लेशमात्रेण सप्तम्या अपि स्याद्यदि दूषिता ॥’ इति । महाष्टमी पूर्वेषुः पूर्वाह्णव्यापित्वे पूर्वा अन्यथा परैवेति निर्णयदीपमतम् । एतच्च तुच्छत्वादुपेक्ष्यम् रूपनारायणधृते देवीपुराणे—‘सप्तमीवेधसंयुक्ता यैः कृता तु महाष्टमी । पुत्रदारधनैर्हीना भ्रमन्तीह पिशाचवत् ॥’ यत्तु ‘सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतो याष्टमी भवेत् । तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेहानि ॥’ इति विश्वरूपनिबन्धवचनं तदाश्विनकृष्णाष्टमीविषयम् । ‘कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वाष्टमीदिने । नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥’ इति देवीपुराणे । तत्रापि पूजोक्तैरिति हेमाद्रौ निर्णयामृते चोक्तम् । यानि तु ‘भद्रायां भद्रकाल्याश्च मध्ये स्यादर्चनक्रिया । तस्माद्वै सप्तमीविद्धा कार्या दुर्गाष्टमी बुधैः ॥’ इति । यच्च मोहचूलोत्तरे ब्राह्मे च—‘आश्विनस्य सिताष्टम्यामर्धरात्रे तु पार्वती । भद्रकाली समुत्पन्ना पूर्वाषाढासमायुता ॥’ इति । तथा—‘तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी । प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनी कोटिभिः सह’ ॥ इति । यच्च मदनरत्ने—‘महाष्टम्याश्विने मासि शुक्ला कल्याणकारिणी । सप्तम्यापि युता कार्या मूलेन तु विशेषतः’ ॥ इति तानि परदिनेऽष्टम्यभावविषयाणीति मदनरत्ने उक्तम् । यत्तु तत्रैव परदिनेष्टमीसत्त्वेपि पूर्वविद्धाविधायकं वचनम् । ‘यदाष्टमीं तु संप्राप्य ह्यस्तं याति दिवाकरः । तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेहानि ॥ दुर्भिक्षं तत्र जानीयान्नवम्यां यत्र पूज्यते’ । इति तत् परदिने दशम्यां नवम्यभावविषयम् । यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेहानि । तदाष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्यां सहितां नृप’ ॥ इति तत्रैव स्मृतिसंग्रहोक्तेः । उत्तरास्तितथयो यत्र क्षयं यांति नराधिप । दूर्वाष्टमीं तदा कुर्यादन्यथा त्वशुभं भवेत् ॥ इति दुर्गोत्सवोक्तेश्चेति मदनरत्ने । वस्तुतस्तु इदं वचनद्वयमष्टमीनवम्योः सूर्योदयद्वयसंबन्धपरम् । ‘अत एव नवमी च’ इति चकारादष्टमी च ॥ तिथय इति बहुवचनादष्टमी नवमी दशम्युक्ता ॥ अन्यथा पूर्वोक्तविरोधादिति दिक् ॥

यत्तु 'अहं भद्रा च भद्राहं नावयोरन्तरं क्वचित् । सर्वसिद्धिं प्रदास्यामि भद्रायामर्चिता ह्यहम्' ॥ इति देवीपुराणे तद्विष्टिकरणमध्ये पूजाविधानार्थम् । 'विष्टिं त्यक्त्वा महाष्टम्यां मम पूजां करोति यः । तस्य पूजाफलं न स्यात्तेनाहमवमानिता ॥ इति तत्रैवोक्तेरिति निर्णयामृते । तथा कालिकापुराणे-'सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् । पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्भलिः' ॥ इति । अष्टम्युपवासश्च पुत्रवता न कार्यः । 'उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत् । यथातथा वा पूतात्मा त्रिती देवीं प्रपूजयेत्' ॥ इति तत्रैवोक्तेः । रूपनारायणीये ब्राह्मे-'अतोर्थं पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः । उपोषितैर्वैश्वपमाल्यरत्नानुलेपनैः ॥ पशुभिः पानकैर्हृद्यै रात्रौ जागरणेन च । दुर्गागृहे च शस्त्राणि पूजितव्यानि पण्डितैः ॥ वाद्यभांडानि चिह्नानि कवचान्यायुधानि च' ॥

अत्र विशेषो हेमाद्रौ निर्णयामृते भविष्ये-'आश्वयुक्शुक्लपक्षस्य अष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा ॥ कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेष्टमीयुता मूलनक्षत्रसंयुक्ता सा महानवमी स्मृता ॥ नवम्यां पूजिता देवी ददात्यभिमतं फलम् । सा पुण्या सा पवित्रा च सा धन्या सुखदायिनी ॥ तस्यां सदा पूजनीया चामुंडा मुंडमालिनी' ॥ सदेत्युक्तेर्नित्यतापि । 'तस्यां ये द्रव्यपयुज्यन्ते प्राणिनो महिषादयः ॥ सर्वे ते स्वर्गंति यान्ति घ्नतां पापं न विद्यते । यावन्न चालयेद्वात्रं पशुस्तावन्न हन्यते ॥ न तथा वलिदानेन पुष्पधूपविलेपनैः । यथा संतुष्यते मेवैर्महिषैर्विन्ध्यवासिनी ॥ एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभुक्तेन नक्तेन स्वशक्त्या याचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थानेस्थाने पुरेपुरे । गृहेगृहे भक्तिपरैर्ग्रामेग्रामे वनेवने ॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुतैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥ स्त्रीभिश्च कुरुशार्दूल तद्विधानमिदं शृणु । जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् लौहाभिसारिकं कर्म कारयेद्यावदष्टमी' ॥ इति ॥

लौहाभिसारिककर्मविधानं तत्रैवोक्तम् । 'प्रागुदक्प्रवणेदेशे पताकाभिरलंकृतम् । मण्डपं कारयेद्दिव्यं नवसप्तकरं परम्' ॥ षोडशहस्त-
लौहाभिसारिकं कर्म । मित्यर्थः । 'आग्नेय्यां कारयेत् कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् । मेखलात्रयसंयुक्तं योन्याश्वत्थदलाभया ॥ राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च । आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्यत्राधिवासयेत् ॥ ततस्तु ब्राह्मणः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः । ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्जुहुयाद् घृतम् ॥ शस्त्रास्त्रमन्त्रैर्होतव्यं पायसं घृतसंयुतम् । हुतशेषं तुरंगाणां राजानमुपहारयेत् ॥ लौहाभिसारिकं कर्म तेनैव ऋषिभिः स्मृतम् । घृतपल्पयनानश्वान् गजांश्च समलंकृतान् ॥ भ्रामयेन्नगरे नित्यं बन्दिघोषपुरःसरम् । प्रत्यहं नृपतिः स्नात्वा संपूज्य पितृदेवताः ॥ पूजयेद्वाजचिह्नानि फलमाल्यविलेपनैः । यस्याभिसरणाद्राज्ञो विजयः समुदाहृतः ॥ पूजामन्त्रान् प्रवक्ष्यामि पुराणोक्तानहं तव । यैः पूजिताः प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशो बलम्' ॥

अथ मन्त्रा विष्णुधर्मोत्तरोक्ताः ॥ छत्रस्य । 'यथाम्बुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्धराम् । तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये' ॥ चामरस्य । 'शशाङ्ककरसंकाश क्षीरडिण्डीरपाण्डुर । प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरदुर्लभ' ॥ अश्वानां वृद्धचर्यं रेवं-
तपूजनमहं करिष्ये । 'सूर्यपुत्र महाबाहो छायाहृदयनन्दन । शान्तिं कुरु तुरंगाणां रेवन्ताय नमोनमः' ॥ अनेन मन्त्रेण पूजा ।

अथाश्वस्य । 'गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः । ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सो-
मस्य वरुणस्य च ॥ प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धय त्वं तुरंगमान् । तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां
तपसा तथा ॥ रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च । स्मर त्वं राजपुत्रं त्वं कौस्तुभं च
मणिं स्मर ॥ यां गतिं ब्रह्महा गच्छेन्मातहा पितृहा तथा । भ्रूणहानृतवादी च क्षत्रि-
यश्च पराङ्मुखः ॥ सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत् पश्यन्ति दुष्कृतम् । व्रजाश्व तां गतिं क्षिप्रं
तच्च पापं भवेत्तव ॥ निष्कृतो यदि गच्छेथा युद्धाध्वनि तुरंगम । रिपून्विजित्य समरे
सह भ्रात्रा सुखी भव' ॥ इति ।

अथ ध्वजस्य । 'शक्रकेतो महावीर्यं श्यामवर्णार्चयाम्यहम् । पत्रिराज नमस्तेस्तु
तथा नारायणध्वज ॥ काश्यपेयारुणभ्रातर्नागारे विष्णुवाहन । अप्रमेय दुराधर्ष रणे
देवारिसूदन ॥ गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि संनिहितो यतः । सारवन्त्यायुधान्यत्र रक्ष त्वं
च रिपून् दह' ॥

अथ पताकायाः । 'हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः । नागकिन्नरगन्धर्व-
यक्षभूतगणग्रहाः ॥ प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह । शक्रः सेनापतिः स्कन्दो
वरुणश्चाश्रितास्त्वयि ॥ प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्य-
रिभिरायुधानि समंततः ॥ पतंतूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा । हिरण्यकशिपोर्युद्धे
युद्धे देवासुरे तथा ॥ कालनेमिवधे यद्वद्यद्वत्रिपुरघातने । शोभितासि तथैवाद्य शोभया-
स्मांश्च संस्मर ॥ नीलाञ्ज्वेतानिमान् दृष्ट्वा नश्यंत्वाशु नृपारयः । व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः
शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ॥ पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रिश्च या स्मृता । दह त्वाशु रिपून्
सर्वान्पताके त्वं मयार्चिता' ॥

अथ गजस्य—'कुसुदैरावणौ पद्मः पुष्पदंतोथ वामनः । सुप्रतीकोज्जनो नील एतेष्टौ
देवयोनयः ॥ तेषां पुत्रांश्च पौत्रांश्च वनान्यष्टौ समाश्रिताः ॥ मंदो भद्रो मृगश्चैव गजः
संकीर्ण एव च । वनेवने प्रसूतास्ते यूथानि सुमहांति च ॥ पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदि-
त्याः समरुद्रणाः । भर्तारं रक्ष नागेन्द्र स्वामिवत् प्रतिपाल्यताम् ॥ अवाप्नुहि जयं युद्धे
गमने स्वस्ति नो व्रज । श्रीस्ते सोमाद्भलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोनिलात् ॥ स्थैर्यं मेरो-
र्जयं रुद्राद्यशो देवात् पुरन्दरात् । युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः ॥ अश्विनौ
सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा' । इति ॥

अथ खड्गमन्त्रः । 'असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः । श्रीगर्भो विजय-
श्च धर्मधारस्तथैव च ॥ एतानि तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा । नक्षत्रं कृत्तिका ते
तु गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ रोहिण्यश्च शरीरं ते दैवतं च जनार्दनः । पिता पितामहो देवस्त्वं
मां पालय सर्वदा । नीलजीमूतसंकाशस्तीक्ष्णदंष्ट्रः कृशोदरः । भावशुद्धोमर्षणश्च अतिते-
जास्तथैव च ॥ इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषासुरः । तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै
खड्गाय ते नमः' ॥

अथ छुरिकायाः 'सर्वायुधानां प्रथमं निर्मितासि पिनाकिना । शूलयुधाद्विनि-
ष्कृष्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभम् । चंडिकायाः प्रदत्तानि सर्वदुष्टनिर्वर्हिणी । तथा विस्तारिता
चासि देवानां प्रतिपादिता ॥ सर्वसत्त्वाङ्गभूतासि सर्वाशुभनिर्वर्हिणी । छुरिके रक्ष मां
नित्यं शान्तिं यच्छ नमोस्तुते' ॥

अथ कट्टारकपूजा ॥ 'रक्षांगानि गजात्रक्ष रक्ष वाजिधनानि च । मम देहं
सदा रक्ष कट्टारक नमोस्तु ते' ॥ कट्टारको मध्यदेशे कटारीति प्रसिद्धा ।

अथ धनुःपूजा- 'सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन । चाप मां समरे रक्ष साकं
शखरैरिह ॥ धृतं कृष्णेन रक्षार्थं संहाराय हरेण च । त्रयीमूर्तिगतं देवं धनुरस्त्रं
नमाम्यहम्' ॥

अथ कुन्तपूजा । 'प्रास पातय शत्रुस्त्वमनया नाकमायया । गृहाण जीवितं तेषां
मम सैन्यं च रक्षताम्' ॥

अथ चर्मपूजा- 'शर्मप्रदस्त्वं समरे चर्म सैन्ये यशोद्यमे । रक्ष मां रक्षणीयोहं ताप-
नेय नमोस्तु ते' ॥

अथ कनकदण्ड मन्त्रः ॥ 'प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंरक्षणाय च । ब्रह्मणा
निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये ॥ यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः । ताडयस्व
रिपुन्सर्वान् हेमदण्ड नमोस्तु ते' ॥

अथ दुंदुभिमन्त्रः । 'दुंदुभे त्वं सपत्नानां घोरो हृदयकम्पनः । भव भूमिपसै-
न्यानां तथा विजयवर्धनः ॥ यथा जीमूतशोषेण प्रहृष्यति च वर्हिणः । तथास्तु तव
शब्देन हवोस्माकं मुदावहः ॥ यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोभिजायते । तथात्र तव
शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्विषो रणे' ॥

अथ शंखमन्त्रः । 'पुण्यस्त्वं शंख पुण्यानां मंगलानां च मंगलम् । विष्णुना वि-
वृत्तो नित्यमतः शान्तिप्रदो भव' ॥

अथ सिंहासनमन्त्रः । 'विजयो जयदो जेता रिपुघाती शुभंकरः । दुःखहा धर्मदः
शान्तः सर्वारिष्टविनाशनः ॥ एते वै संनिधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः । तेन सिंहासनोति
त्वं दैवैर्मन्त्रैश्च गीयसे ॥ त्वयि स्थितः शिवः शान्तस्त्वयि शक्रः सुरेश्वरः । नमस्ते सर्वतोभद्र

भद्रदो भव भूपतेः ॥ त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोस्तु ते । तथैव कर्मचिह्नानि स्वानि
पूज्यानि शिल्पिभिः ॥ लौहाभिसारिकं कर्म कृत्वैवं मंत्रपूर्वकम् । नियमं कृत्वा तथा-
श्रम्यां पूर्वाह्ने स्नानमाचरेत् ॥ कुंकुमचंदनचम्पकचतुरामैः शैलपिष्टैश्च । चर्चितगात्रां
देशं कुमुदैरभ्यर्चयेद्बहुभिः ॥ कुमुदैः सपद्मपुष्पैः सधूपदीपैः सनैवेद्यैः । मांसैर्बल्युप-
हारैर्मङ्गलशब्दैः समुच्छलितैः ॥ विहितच्छत्रैर्यानैः स्यन्दनसितशस्त्रधारिजनलोकैः । तुष्टैः
पश्वन्नादि च निवेद्यते सर्वमेव भगवत्यै ॥ दुर्गा सा पूजनीया च ताहिने द्रोणपुष्पकैः ।
ततः खड्गं नमस्कृत्य शस्त्राणां वधसिद्धये ॥ इच्छेत विजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मने नृपः ।
पुनः पुनः प्रणम्यार्यां संस्मरन् हृदये शिवाम् ॥ सर्वं कृत्वेति कौरव्य अष्टम्यां जागरं
निशि । नटनर्तकगीतैश्च कारयेच्च महोत्सवम् ॥ एवं हृष्टैर्निशां नीत्वा प्रभाते
अरुणोदये । घातयेन्महिषान्मेषानग्रतो नतकंधरान् ॥ शतमर्धशतं वापि तदर्धं वा यथे-
च्छया । सुरासववृत्तैः कुम्भैस्तर्पयेत् परमेश्वरीम् ॥ कापालिकेभ्यस्तद्देयं दासीदास-
जने तथा । ततो पराह्लसमये नवम्यां वै रथे स्थिताम् ॥ भवानीं भ्रामयेद्राष्ट्रे स्वयं राजा
सशब्दवान् । कश्चिच्चोपोषितो वीरो विधृतोन्येन खड्गवान् ॥ भूतेभ्यस्तु बलिं दद्यान्मन्त्रे-
णानेन सामिषम् । सरक्तं सजलं चान्नं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ॥ त्रींस्त्रीन्वारान्समूहं
दिग्विदिक्षु किरेद्वलिम् ॥

मन्त्रश्च—‘बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा । मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः

पन्नगा ग्रहाः ॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः । डाकिन्यो
बलिदानविधिः । यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥ जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा नागा

विद्याधरा नगाः । दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥ जगतां शान्तिकर्तारो
ब्रह्माद्याश्च महर्षयः । आ विघ्नं मा च मे पापं मा संतु परिपंथिनः ॥ सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च
भूतप्रेताः सुखावहाः’ । इति । इति महाष्टमी ॥

महानवमी तु पूर्वयुता ग्राह्या । पूर्वोक्तवचनात् । ‘नवमी दुर्गात्रते श्रावणी’ इति

दीपिकोक्तेः । ‘श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धा
महानवमी । प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्’ ॥ इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेश्च । भवि-

ष्येपि—‘आश्वयुक्शुक्लपक्षे तु अष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी नाम त्रैलोक्येपि
सुदुर्लभा’ ॥ इति । मूलमुपलक्षणम् । ‘दुर्गापूजा तु नवमी मूलवृक्षत्रयान्विता । महती
कीर्तिता तस्यां दुर्गा महिषमर्दिनी’ ॥ इति मदनरत्ने लैङ्गात् । अत्र पूजयेदि-
त्यग्रे शेषः । यानि तु सा—‘कार्योदयगामिन्यां तिथाबुदयगामिन्याम्’ इत्यादिप्रागु-
क्तानि । तानि नवमीभिन्नतिथिपराणि । नवम्यां विशेषोक्तेः । वेधश्च मुहूर्तत्रये-
णैव ज्ञेयः । यद्यपि हेमाद्रिमते मुहूर्तद्वयात्मापि वेधोस्ति । तथापि सूर्योदय एव

सः ॥ सायं तु त्रिमुहूर्त एव । तदुक्तं दीपिकायां-‘त्रिमुहूर्तगा तु सकला सायं’ इति । माधवोपि-‘सायं तूत्तरया तद्वन्मनूयया न तु विद्ध्यते’ इति । तेन त्रिमुहूर्तयोगे पूर्वा नवमी । पूर्वोक्तवचनात् । ‘न कुर्यान्नवमीं तात दशम्यां तु कदाचन’ । इति स्कान्दे परानिषेधाच्च । त्रिमुहूर्तयोगाभावे तु निषिद्धापि परैव कार्येति निष्कर्षः ॥

यत्तु ‘नवम्यां च जपं होमं समाप्य श्रवणोपि वा’ । इति संग्रहोक्तेः । ‘व्रतं च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः’ इति देवीपुराणाच्च । नवम्यां होमबल्यादि विहितं तत्र ‘आश्वयुक्शुक्लनवमी मुहूर्तं वा कला यदि । सा तिथिः सकला ज्ञेया लक्ष्मीविद्याजयार्थिभिः ॥’ इति सौरपुराणात् । ‘सूर्योदये परं रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि । बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र देशे शुभावहम् ॥ बलिदाने कृतेऽष्टम्यां पुत्रभङ्गो भवेन्नृप ।’ इति मदनरत्ने देवीपुराणाच्च । बल्यादौ परा कार्या । उपवासादौ तु पूर्वैति मदनरत्ने उक्तम् । प्रतापमार्तण्डेऽप्येवम् । यत्तु ‘अष्टम्यां बलिदानेन पुत्रनाशो भवेद् ध्रुवम्’ इति कालिकापुराणे । तत्संधिपूजापरम् । ‘अष्टमीनवमीसंधौ तृतीया खलु कथ्यते’ । इति तत्रैव तदुक्तेः । कामरूपनिबन्धे-‘अष्टम्याः शेषदण्डश्च नवम्याः पूर्वं एव च । तत्र या क्रियते पूजा विज्ञेया सा महाफला ॥’ अष्टमीमात्रे भवत्येव । ‘आश्विने पूजयित्वा तु अर्धरात्रेऽष्टमीषु च । घातयन्ति पशून् भक्त्या ते भवन्ति महाबलाः’ ॥ तथा ‘कन्यासंस्थे रवावीशे शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् । सोपवासो निशाद्धं तु महाविभवविस्तरैः ॥’ तथा । ‘पशुघातश्च कर्तव्यो गवयाजवधस्तथा’ । इति रूपनारायणीये देवीपुराणात् । तत्रैव भविष्ये-‘तस्मादियं महापुण्या नवमी पापनाशिनी । उपोष्या सुप्रयत्नेन सततं सर्वपार्थिवैः ॥’ निर्णयदीपे तु-‘महानवमी परादिने पराह्वय्यापित्वे परा अन्यथा पूर्वा । ‘आवर्तनात् पूर्वकाले नवमी स्यात् परेहनि । दुर्गाचां तत्र पूर्वैशुः पूर्वाह्णे त्वष्टमी यदि’ ॥ इति धौम्यवचनादित्युक्तम् । अस्य तु शारदानवमीविषयत्वं समूलत्वं च विमृश्यम् । यानि तु ‘नन्दायां ज्वलते वह्निः पूर्णायां पशुघातनम् । भद्रायां गोकुलक्रीडा तत्र राज्यं विनश्यति’ ॥ इति । ‘नवम्यामपराह्णे तु बलिदानं प्रशस्यते । दशमीं वर्जयेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥’ इति । ‘नन्दायां दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च ॥ भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते’ ॥ इति ब्रह्मवैवर्तनारदादिवचनानि तानि शुद्धाधिकनिषेधपराणि इति मदनरत्ने । तथा कालिकापुराणे-‘नवम्यां बलिदानं तु कर्त्तव्यं वै यथाविधि । जपं होमं च विधिवत् कुर्यात्तत्र विभूतये ॥’ केचित्तु ‘पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्’ । इति पूर्वोक्तदेवीपुराणादष्टम्यां होममाहुः । अन्ये तु द्विविधवाक्यवशादष्टम्यामारभ्य नवम्यां समापयन्ति । समुच्च-

यस्तु युक्तः । रुद्रयामले तु विकल्प उक्तः । तच्च निर्मूलम् । दुर्गाभक्तिरङ्गि-
ण्यादिगौडग्रन्थेष्वपि नवम्यां होम उक्तः ॥

होमे च विशेष उक्तो डामरतन्त्रे—‘पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुद्धैर्विमिश्रितम् ।
होमयेद्विधिवद्भक्त्या दशांशेन नृपोत्तम ॥ रुद्राध्याये यथा होमं मन्त्रेणैकेन साधयेत् ।
तथा स्तोत्रजपे होमं श्लोकैकैकेन साधयेत् ॥ यद्वा सप्तशतीजप्यहोममन्त्रो नवाक्षरः’ ।
‘ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे’ इति न ॥ क्षरः इति केचित् । पूजोक्तो ग्राह्य इति तु युक्तम् ।
रुद्रयामलेपि—‘प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा । किंशुकैः सर्पपैः पूगैर्लाज-
द्वार्वाकुरैरपि ॥ यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा । रक्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च
मनोहरैः ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयात्सर्वद्रव्याणि च क्रमात् । नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो
देव्या इतीति च ॥’ इति । रहस्ये तु—‘प्रतिश्लोकं च जुहुयात् पायसं तिलसर्पिषा’ ।
इत्युक्तम् । दुर्गाभक्तिरङ्गिण्यां तु तिलैर्जयन्तीमन्त्रेण च होम उक्तः । ‘पुरश्चर-
णकार्ये तु विल्वपत्रयुतैस्तिलैः ।’ इति कालिकापुराणाद्विल्वपत्रैश्चेति स्मार्तास्तत्र ॥
अत्र मानाभावात् ॥

अथ बलिदानम् ॥ तत्राश्वमेधछागमहिषस्वमांसानामुत्तरोत्तरं प्राशस्त्यम् । फल-
विशेषश्चान्यतोवसेय इति दिक् ॥ बलिप्रकारस्तु देवीपुराणे—‘कन्या-

बलिदानम् ।

सस्थ रवौ शक्र शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् । द्रोणपुष्पैश्च विल्वाम्रजातीपु-
न्नागचंपकैः ॥ पञ्चाब्दं लक्षणोपेतं गन्धपुष्पसमन्वितम् । विधिवत् कालिकालीति
जप्त्वा खड्गेन घातयेत् ॥ ‘ॐ कालिकालि यज्ञेश्वरि लोहदण्डायै नमः’ इति मन्त्रः ॥
‘तदुत्थरुधिरं मांसं गृहीत्वा पूतनादिषु’ । आदिशब्दात् । चरकीविदारीपापराक्षस्यः ।
‘नैर्ऋतेभ्यः प्रदातव्यं महाकौशिकमन्त्रितम्’ । मन्त्रस्तु वक्ष्यते ॥ तथा—‘तस्याग्रतो
नृपः स्नायात्कृत्वा शत्रुं तु पैष्टिकम् । खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात् स्कन्दविशाखयोः’ ॥
अशक्तौ ब्राह्मणेन च कूष्माण्डादिभिर्बलिदानं कार्यम् । तदुक्तं कालिकापुराणे—
‘कूष्माण्डभिक्षुदण्डं च मांसं सारसमेव च । एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमाः
सदा’ ॥ रुद्रयामलेपि—‘छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वा मनोहरम् । वस्त्रसंवेष्टितं
कृत्वा छेदयेच्छुरिकादेना’ ॥ तथा—‘ब्राह्मणेन सदा देयं कूष्माण्डं बलिकर्मणि ।
श्रीफलं वा सुराधीश छेदं नैव तु कारयेत्’ ॥ छेदे विकल्पः । ‘माषान्नेन बलिर्देव्यो
ब्राह्मणेन विजानता’ । कालिकापुराणे—‘उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा ।
निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ।
प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ॥ चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्मिनाशनम् ।
चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोस्तु ते ॥ यज्ञार्थे बलयः सृष्टाः स्वयमेव
स्वयंभुवा । अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे बधोऽवधः ॥ ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण नं

बलिं मत्स्वरूपिणम् । चिन्तयित्वा न्यसेत् पुष्पं मूर्ध्नि तस्य तु भैरव ॥ रसना त्वं
चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधकः । ह्रीं ह्रीं खड्गेति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं च पूजयेत् ॥ पूज-
यित्वा ततः खड्गं ओं हुं फडिति मन्त्रकैः ॥ गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद्बलिमुत्तमम् । ॐ
ह्रीं ह्रीं ह्रीं कौशिकीति रुधिरणाप्यायतामिति ॥ बलिदाने तु दुर्मायाः सर्वत्रायं विधिः
स्मृतः ॥' मत्स्यसूक्ते- 'नवम्यां पूर्ववत् पूजा कर्तव्या भूतिमिच्छता । दक्षिणां वस्त्र-
गुम्भं च आचार्याय निवेदयेत् ।'

चण्डीविधानम् ।

अथात्र प्रसङ्गाच्छतचण्डीविधानमुच्यते रुद्रयामले- 'शत-
चण्डीविधानं च प्रोच्यमानं शृणुष्व तत् । सर्वोपद्रवनाशार्थं शतचण्डीं
समारभेत् ॥ षोडशस्तंभसंयुक्तं मण्डलं पल्लवोज्ज्वलम् । वसुकोणयुतां वेदीं मध्ये कुर्या-
न्निभागतः ॥ पक्षेष्टकाचितां रम्यामुच्छ्राये हस्तसंमिताम् । तत्र वर्णरजोभिश्च कुर्यान्म-
ण्डलकं शुभम् ॥ पञ्चवर्णवितानं च किंकिणीजालमण्डितम् । आचार्येण समं विप्रान्
वरयेदशमुवतात् ॥ ईशान्यां स्थापयेत् कुम्भं पूर्वोक्तविधिना चरेत् । वारुण्यां च प्रकर्त-
व्यं कुण्डं लक्षणलक्षितम् ॥ मूर्तिं देव्याः प्रकुर्वीत सुवर्णस्य पलेन वै । तदर्धेन तदर्धेन
तदर्धेन महामते ॥ अष्टादशभुजां देवीं कुर्याद्वाष्टकरामपि । पट्टकूलयुगच्छन्नां देवीं मध्ये
निधापयेत् ॥ देवीं संपूज्य विधिवज्जपं कुर्युर्दश द्विजाः । शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं
नवार्णवम् ॥ चण्डीं सप्तशतीं मध्ये संपुटोयमुदाहृतः । एकं द्वे त्रीणि चत्वारि जपेद्दिन-
चतुष्टयम् ॥ रूपाणि क्रमशस्तद्वत् पूजनादिकमाचरेत् । पञ्चमीदिवसे श्रातहोमं कुर्या-
द्विधानतः ॥ गुडूचीं पायसं दूर्वा तिलाञ्च शुक्लान्यवानपि । चण्डीपाठस्य होमं तु प्रति-
श्लोकं दशांशतः ॥ होमं कुर्याद् ग्रहादिभ्यः समिदाज्यचरून् क्रमात् । हुत्वा पूर्णाहुतिं
दद्यादग्नेभ्यो दक्षिणां क्रमात् । कपिलां गां नीलमणिं श्वेताश्वं छत्रचामरे । अभिषेकं ततः
कुर्युर्यजमानस्य ऋत्विजः ॥ एवं कृतेमरेशान सर्वसिद्धिः प्रजायते' ॥

सहस्रचण्डी ।

अथ सहस्रचण्डी सा च तत्रैवोक्ता- 'सहस्रचण्डी विधिवच्छृणु
विष्णो महामते । राज्यभ्रंशे महोत्पाते जनमारे महाभये ॥ गजमारेऽ
श्वमारे च परचक्रभये तथा । इत्यादिविविधे दुःखे क्षयरोगादिजे भये ॥ सहस्रचण्डिका
पाठं कुर्याद्वा कारयेत्तथा । जापकास्तु शतं प्रोक्ता विशद्वस्तश्च मण्डपः ॥ भोज्याः
सहस्रं विप्रेन्द्रा गोशतं दक्षिणां दिशेत् । गुरवे द्विशुणं देयं शय्यादानं तथैव च । सप्त-
धान्यं च भूदानं श्वेताश्वं च मनोहरम् । पञ्चनिष्कमिता मूर्तीः कर्तव्या वार्धमानतः ॥
अष्टादशभुजा देवी सर्वायुधविभूषिता । अवारितान्नं दातव्यं सहस्रं प्रत्यहं प्रभो ॥ शतं
वा नित्यताहारः पयःपानेन वर्तयेत् । एवं यश्चण्डिकापाठं सहस्रं तु समाचरेत् ॥ तस्य
स्यात् कार्यसिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा' ॥ इति । एतद्वयं यद्यपि महानिवन्धेषु
नास्ति तथापि प्रचरद्रूपत्वादुक्तमिति दिक् ॥

वाराहीतंत्रे—‘संकटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्सामये तथा । जातिभ्रंशे कुलोच्छेदेऽ-
प्यायुषो नाश आगते ॥ वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये । तथैव त्रिविधोत्पाते
नथा चैवोपपातके ॥ कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः संपद्यते शुभम् । श्रेयोवृद्धिः शतावृत्ता-
द्राज्यवृद्धिस्तथापरा ॥ मनसा चिन्तितं देवि सिद्धयेदष्टोत्तराच्छतात् । सहस्रावर्तना-
लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा ॥ भुक्त्वा मनोरथान् कामान्नरो मोक्षमवाप्नुयात् । चण्ड्याः
शतावृत्तिपाठात्सर्वाः सिद्धयन्ति सिद्धयः’ ॥ इति शतचण्डीसहस्रचण्डीविधिः ।

अथ नवरात्रपारणानिर्णयः ॥ सा च दशम्यां कार्या । ‘आश्विने मासि शुक्ले

नवरात्रपारणा ।

तु कर्तव्यं नवरात्रकम् । प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् । त्रि-
रात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यां हि यथाक्रमम्’ । इति हेमाद्रौ धौम्य-
वचनात् । ‘नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम्’ । इति प्रागुक्तवचनैर्नवमी-
पर्यन्तं प्रधानभूतपूजाद्युक्तेरुपवासादेश्चाङ्गत्वेन तत्पर्यन्तत्वात् । आदिशब्देनोपवासोक्ते
पूर्वोक्तत्रिरात्रव्रते नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च । न च पारणान्तत्वेन त्रिरात्रत्वम् ।
विष्णुत्रिरात्रादौ तथा प्रसक्तेः । न चात्रोपवासे मानाभाव इति वाच्यम् । ‘एवं
च विन्ध्यवासिन्या नवरात्रोपवासतः । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥
पूजनीया जनैर्देवी स्थानेस्थाने पुरेपुरे’ । इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः । नवरात्र-
समाख्यातो नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च । ननु तिथिहासेऽष्टावप्युपवासा भवन्तीति
कथं समाख्या । तेन कर्मविशेषे नवरात्रशब्दो रूढः । अत एवोक्तं देवीपुराणे—
‘तिथिवृद्धौ तिथिहासे नवरात्रमपार्थक्यम्’ इति चेन्न । तिथिहासेपि नवतिथीनामुपो-
ष्यत्वान्नवरात्रत्वाक्षतेः । एतेन रात्रीणां प्राधान्यात् हासे अमामादाय नवत्वमिति
मुखोक्तिः परास्ता । यत्तु देवीपुराणे—‘कन्यासंस्थे खौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दि
काम् । अयाची ह्यथ वैकाशी नक्ताशी वाथवा वद’ ॥ इति व्रतचतुष्टयमुक्तं तल्लौहाभि-
सारिकविषयम् । तस्य ‘जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् । लौहाभिसारिकं
कर्म कारयेद्यावदष्टमी’ इति भविष्येऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेः ॥ रूपनारायणेन तु नन्दादि-
व्रतप्रयोगं पृथगेवोक्त्वा तस्य नवम्यां पारणमुक्तम् । यदपि निर्णयदीपे—‘आश्विने
शुक्लपक्षे तु नवरात्रमुपोषितः । नवम्यां पारणं कुर्याद्दशमीमिश्रिता न चेत् ॥ दशमी-
मिश्रिता यत्र पारणे नवमी भवेत् । दुःखदारिद्र्यदा ज्ञेया तथा व्रतविनाशिनी’ । इति
ब्राह्मनाम्ना लिखितं वचनम् । यच्च रुद्रयामले इति वदन्ति—‘अष्टम्या सह कार्या
स्यान्नवमी पारणादिने । यो मोहाद्दशमीविधो नवम्यां चण्डिकां यजेत् ॥ पारणं च
प्रकुर्याद्वै तस्य पुण्यं निरर्थकम् । नवम्यां पारिता देवी कुलवृद्धिं प्रयच्छति ॥ दशम्यां
पारिता देवी कुलनाशं करोति वै । तस्मात्तु पारणं कुर्यान्नवम्यां विबुधाधिप’ ॥ इत्या-
दीनि तानि यदि समूलानि तदा लौहाभिसारिकनन्दादिव्रतचतुष्टयविषयाणि । तस्याऽष्टमी-
पर्यन्तमेवोक्तेरित्युक्तं प्राक् । अन्यथा महाष्टम्यां परविद्धायां पारणाविधाने पूर्वनिबन्धे-

विंगोयो दुर्वारः स्यात् यानि तु कैश्चिदलिखितानि नवम्यां पारणाविधायकानि वचनानि तानि हेमाद्र्यादिविरुद्धत्वान्निर्मूलानि । समूलत्वेऽपि यदा दिनद्वये नवमी तदा द्वितीयदिन उपोष्य तिथ्यन्ते पारणा न किंतु नवमीमध्ये कार्येत्येव नेयानि शिवरात्रि-पारणावत् ॥

अत्र केचित्पारणाहे सूतकादिप्राप्तौ तदतिक्रम्य पारणां कुर्यादित्याहुस्तन्मन्दम् । 'काम्योपवासे प्रकृति त्वन्तरा मृतसूतके । तत्र काम्यव्रतं कुर्यादानार्चनविवर्जितम्' ॥ इति माधवीये कौर्मोक्तेः । 'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमचने जपे । प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्' ॥ इति विष्णुवचनाच्चाशौचमध्येऽपि तत्कर्तव्यतावगतेः ॥ पारणांतत्वाद् व्रतस्य । प्रारम्भस्तु तेनैवोक्तः । 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नांदीमुखविवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥' इति । रुद्रयामलेऽपि- 'सूतके पारणा कुर्यान्नवम्यां होमपूर्वकम् । तदन्ते भोजयेद्विप्रान् दानं दद्याच्च शक्तितः' ॥ इति । तदन्ते सूतकान्ते । एवं स्त्रीभिरपि रजोदर्शनमध्ये कर्तव्यमेव पारणम् । 'संप्रवृत्तेऽपि रजसि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्' ॥ इति माधवीये ऋष्यशृङ्गवचनात् । द्वादशीव्रतमित्युपलक्षणम् 'प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्राजो भवेत् । न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन' ॥ इति तत्रैव सत्यव्रतवचनात् किंच-एकादश्यादौ पञ्चषाशौचपाते मासान्ते पारणापात्तिः मासोपवासान्ते पञ्चषाशौचपाते जीवनासंभवश्च । यत्तु 'नियमस्था यदा नारी प्रपश्येदन्तरा रजः । उपोष्यैव तु ता रात्रीः स्नात्वा शेषं चरेद् व्रतम्' ॥ इत्यङ्गिरोवचनम् । यच्च हारीतवचनम्- 'नियमस्था व्रतस्था स्त्री रजः पश्येत् कथंचन । त्रिरात्रं तु क्षिपेदूर्ध्वं व्रतशेषं समापयेत्' ॥ तद्विधोपवासविषयम् । तासां तत्र भोजननिषेधादिति केचित् । वयं तु प्रागुक्तसत्यव्रतवचने दीर्घतपसामिति विशेषणोपादानात् द्वादशीव्यतिरिक्तसकलैकाहोपवासविषयोऽयं निषेधः । त्रिरात्रनवरात्रादिदीर्घव्रतेषु तु रजोमध्य पारणा इति ब्रूमः । आशौचमध्ये सर्वापि पारणा भवति प्रागुक्तकौर्मवचनादिति सिद्धम् । अथ चोपवासपारणानिर्णयः सर्वव्रतेषु बोद्धव्य इत्यलं भूयसा ॥

दशम्यां देवीं विसर्जयेत् तदुक्तं दुर्गाभक्तिरङ्गिण्यां देवीपुराणे- 'ततः प्रातः

पूजयित्वा दशम्यां विधिपूर्वकम् । संप्रेषणं तु कर्तव्यं गीतवादित्रनिः-
दशम्यानिर्णयः ।
स्वनैः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि

-ब्राह्मणभोजनं भूयस्यादिदानं च सूतकान्ते इत्यर्थः । रामचन्द्रभट्टास्तु-नवरात्रे होमस्य पूजा-रूपत्वेन मुख्यत्वात्तस्य चानन्यसाध्यत्वेनाशौचेऽसंभवात् । 'न तु दानार्चनं जपम्' इति निषेधात्तत्समा-र्तिं विना च नियमरूपोपवाससमाप्त्यसंभवादाशौचान्ते होमादि कृत्वा पारणं कार्यम् । यैस्तु होमो न क्रियते, तेषां सूतकादिमध्ये पारणं भवेदित्याहुरिति टीका । २ केचिदित्यरुचिः-निषेधस्य राग-प्राप्तगोचरत्वेन वैधपारणागोचरत्वायोगात् । विधवाया भोजननिषेधादर्शनाच्चेतीति टीका ।

सर्वकामांश्च देहि मे ॥ महिषाग्निमहामाये चामुंडे मुंडमालिनि । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि
देवि नमोस्तु ते ॥ इति संप्रार्थ्य देवीं तु तत उत्थापयेद् बुधः । 'उत्तिष्ठ देवि चंडेशि
शुभां पूजां प्रगृह्य च । कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह ॥ गच्छगच्छ परं
स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके । व्रज स्रोतो जलं वृद्धयै स्थायीतां च जले त्विह' ॥ इति
जलं नीत्वा दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते । संवत्सरे व्यतीते तु पुनराग-
मनाय वै ॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम् । रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज-
स्वस्थानमुत्तमम्' ॥ इति जले प्रवाहयेत् ॥

इयमेव विजयादशमी । सा च द्वितीयदिने श्रवणयोगाभावे
विजयादशमीनिर्णयः । पूर्वा ग्राह्या । तदुक्तं हेमाद्रौ स्कांदे—'दशम्यां तु नरैः सम्यक्
पूजनीयाऽपराजिता । ऐशानीं दिशमाश्रित्य अपराह्णे प्रयत्नतः ॥ या पूर्णा नवमी-
युक्ता तस्यां पूज्यापराजिता । क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः ॥ नवमीशे-
षयुक्तायां दशम्यामपराजिता । ददाति विजयं देवी पूजिता जयवर्धिनी' ॥ तथा
'आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेन्नरः । एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम् ॥'
इति । यदा तु पूर्वदिने श्रवणयोगाभावः, परादिने चाल्पापि तद्योगिनी, तदा परैव ।
तथा च हेमाद्रौ व्रतकाण्डे कश्यपः—'उदये दशमी किञ्चित्सम्पूर्णैकादशी यदि ।
श्रवणर्क्षे यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा ॥ श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो
यतः । उल्लङ्घयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो नराः' ॥ इति । कालेपराह्णे । परदिनेऽपराह्णे
श्रवणाभावे तु सर्वपक्षेषु पूर्वैव । मदनरत्नेऽप्येवम् । ज्योतिर्निबन्धे रत्नकोशे
च नारदः—'ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्तः किञ्चिदुद्भिन्नतारकः । विजयो नाम कालोऽयं सर्व-
कार्यार्थसिद्धिदः ॥ इषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् । श्रवणेनापि संयुक्तां
राज्ञां पट्टाभिषेचने ॥ सूर्योदये यदा राजन् दृश्यते दशमी तिथिः । आश्विने मासि
शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः' ॥ अत्रायं निर्गलितोर्थः । अपराह्णे मुख्यः कर्मकालः ।
तत्रैव पूजायुक्तेः । प्रदोषे गौणः । तत्र दिनद्वयेऽपराह्णव्यापित्वे पूर्वा प्रदोषव्याप्तेराधि-
क्यात् । दिनद्वये प्रदोषव्यापित्वे परा । अपराह्णव्याप्तेराधिक्यात् । इदं शुद्धतिथौ अन्य-
काले श्रवणस्तु रोहिणीवदप्रयोजकः । दिनद्वयेऽपराह्णस्पर्शे तु पूर्वा । तत्रापि परादिनेऽप-
राह्णे श्रवणसत्त्वे परैवेति दिक् ॥

अत्र विशेषो भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये—'शमयिक्तं जगन्नाथं भक्ताना-
मभयंकरम् । अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेच्च ततः पुनः ॥' शमीमन्त्रस्तु हेमाद्रौ गोप-
थब्राह्मणे—'अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च । दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रप-
द्येहं शमीं शुभाम्' ॥ तथा भविष्ये—'शमी शमयते पापं शमी लोहितकंटका ।
धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया ।

तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते' ॥ इति । तथा 'गृहीत्वा साक्षतामाद्रां शमीमूल-
मतां मृदम् । गीतवादित्रनिर्वोषैरानयेत्स्वगृहं प्रति ॥ ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः
सह' । इति ॥ अत्रैव बलिनीराजनमुक्तं कृत्यरत्ने-तत्र मन्त्रः । 'चतुरङ्गबलं
मह्यं निररिष्टं व्रजत्वह । सर्वत्र विजयोमेस्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि' ॥ इति । गौडनि-
बन्धे ज्योतिषे-'कृत्वा नीराजनं राजा बलवृद्धयै यथाक्रमम् । शोभनं खञ्जनं पश्ये-
ज्जलगोगोष्ठसंनिधौ' ॥ अस्य फलानि शुभाशुभदेशाश्च तत्रैव ज्ञेयाः ॥

आश्विनपौर्णमा-
सीनिर्णयः ।

आश्विनपौर्णमासी परा ग्राह्या । 'सावित्रीव्रतमन्तरेण भवतोऽमा-
पौर्णमास्यौ परे' । इति दीपिकोक्तेः । अत्र विशेषस्तिथितत्त्वे
लैङ्गो-'आश्विने पौर्णमास्यां तु चरेज्जागरणं निशि । कौमुदी सा समाख्याता कार्या
लोकैर्विभृतये ॥ कौमुद्यां पूजयेद्धक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थितम् । सुगंधिर्निशि सद्देष अक्षैर्जा-
गरणं चरेत्' ॥ तथा-'निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागतीतिभाषिणी । तस्मै वित्तं
प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः' ॥ इति ॥

अत्रैवाश्वयुजिकर्मोक्तमाश्वलायनेन-'आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्म' इति तच्छेष-
पर्वणि कार्यम् । विकृतित्वात्तत्र पूर्वाह्नव्यापिनी ग्राह्या । दैवकर्मत्वात् । आग्रयणं तु पर्वणि
कार्यम् । 'शरद्याग्रयणं नाम पर्वणि स्यात्तदुच्यते' । इति शौनकोक्तेः ॥ तत्रापि
शेषपर्वणि कार्यमिति प्रागुक्तम् । तच्च 'ब्रीहिभिरिष्ट्वा ब्रीहिभिरेव यजेत यवेभ्यो यवै-
रिष्ट्वा यवैरेव यजेत ब्रीहिभ्यः' इति श्रुत्या दर्शपूर्णमासयोरेककर्मत्वेनैकद्रव्यनियमादर्श-
ष्ट्याः परं पौर्णमासेष्ट्याश्च प्राग्भवतीति हेमाद्र्यादयः । 'दर्शेष्ट्याः परमुक्तमाग्रय-
णकं प्राक्पौर्णमासाच्च तत्' इति दीपिकोक्तेश्च । तच्चाग्रयणं त्रेधा । ब्रीह्याग्रयणं
यवाग्रयणं श्यामाकाग्रयणं चेति । एषां कालः श्रुतौ-'गृहमेधी ब्रीहियवाभ्यां शरद्वस-
न्तयोर्यजेत श्यामाकैर्नीवारैर्वर्षास्वाप्तकालेनान्येन पुराणैर्वा' इति । आपस्तम्बोपि-
'वर्षासु श्यामाकैर्यजेत शरदि ब्रीहिभिर्वसन्ते यवैर्यथर्तु वेणुयवैः' इति । तत्रापि
श्यामाकाग्रयणमनित्यम् । इतरे तु अनाहिताग्नेर्नित्ये यवाग्रयणं च कार्यमिति स्मार्त-
वृत्तावुक्तत्वात् । सूत्रे ब्रीहियवदेवतासंबद्धानामत्र मन्त्राणामाम्नानाच्च । आहिताग्नेस्तु
यवाग्रयणस्याप्यनित्यत्वम् । 'अपि वा क्रिया यवेषु' इति सूत्रात् । यद्वा ब्रीह्याग्रय-
णेन समानतन्त्रता । 'श्यामाकैस्तु प्रस्तरं कुर्यान्नाग्रयणम् । यदि वा तदपि समानतन्त्रम्'
इत्यादि नारायणवृत्तौ परिश्रमवतां सुलभमित्यलम् ॥

इदं च पर्वाभावे शुक्लपक्षे देवनक्षत्रे कृत्तिकादिविशाखान्ते कार्यमिति स्मृत्यर्थसारे
उक्तम् । बौधायनीये केशवस्वामिनाप्येवमुक्तम् । परिशिष्टे-'श्यामाकैर्ब्रीहिभि-
श्चैव यवैश्चान्योन्यकालतः । प्राग्यष्टुं युज्यतेवश्यं न ह्यत्राग्रयणात्ययः' ॥ त्रिका-
ण्डमण्डनोप्येवम् । यदा त्वेतदाश्विनपौर्णमास्यां क्रियते तदैककालत्वादाश्वयुजी-

कर्मणोऽस्य च समानतन्त्रता भवति तदेतद्वृत्तिकृता 'एकवर्हिर्दिग्भाज्य' इति सूत्रे स्पष्टमुक्तम् । अस्याकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृतिचन्द्रिकायां कात्यायनेन—'नित्य-यज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च । अनिष्टा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥ भोजने पाततान्नस्य चरुवैश्वानरो भवेत्' । कारिकापि—'अकृताग्रायणोऽश्वीयान्नवान्नं यदि वै नरः । वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा ॥' इति । ऋग्विधाने तु—'समिन्द्र रायामन्त्रं च वर्षेवर्षे जपेच्छतम् । आग्रयणं यदा न्यूनं तदा संपूर्णमेति तत्' ॥ इत्युक्तम् । एतच्चापदि मलमासे कार्यमन्यथा नेति प्रागुक्तम् । अन्योप्याहिताग्न्यादि विशेषः । शौनकादेर्ज्ञेयः इत्यलं बहुना ॥ इति । इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निणयासन्धावाश्विनमासः ॥

अथ कार्तिकमासः ॥ तुलासंक्रमे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्याः । रात्रौ तु प्रागुक्तम् ।

कार्तिकस्नानम् ।

अथ कार्तिकस्नानम् । तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुस्मृति-पाद्वयोः—'तुलामकरमेषु प्रातःस्नानं विधीयते । हविष्यं ब्रह्मचर्यं

च महापातकनाशनम्' ॥ इति सौरमास उक्तः । प्राच्याश्चैतदेवादियन्ते । दक्षिणा-त्यास्तु—'आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् । कार्तिकस्य व्रतानीह तस्यां वै प्रारभेतसुधीः' ॥ इति पाद्वोक्तेः ॥ भार्गवार्चने च—'प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामा-श्विनस्य तु मानवः । प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत यावत् कार्तिकभास्करः' ॥ इति विष्णुर-हस्योक्तेः । हेमाद्रावादित्यपुराणे—'पूर्ण आश्वयुजे मासि पौर्णमास्यां समा-हितः' । इत्युक्त्वा । 'मासं समग्रं परया च भक्त्या समाप्यते कार्तिकपौर्णमास्याम्' । इत्यन्तेभिधानाच्चाश्विनशुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वारभ्य कार्तिकशुक्लद्वादश्यां पौर्ण-मास्यां वा समापयेदित्याहुः । मदनपारिजाते विष्णुः—'कार्तिकं सकलं मासं नित्य-स्नानी जितेन्द्रियः । जपन् हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते' ॥ अत्र देशविशेषः पाद्वे—कार्तिकं प्रक्रम्य ॥ 'कुरुक्षेत्रे कोटिगुणो गंगायामपि तत्समः । ततोधिकः पुष्करे स्यात् द्वावत्यां च भार्गव ॥ पुण्याः पुर्यश्च सप्तैवं मुनयो मथुराधिका । दुर्लभः कार्तिको विप्रा मथुरायां नृणामिह ॥ यत्रार्चितः स्वकं रूपं भक्तेभ्यः संप्रयच्छति' । इति । इदं च स्नानं काशीस्थपञ्चनदेऽप्यतिप्रशस्तम् । 'शतं समास्तपस्तप्त्वा कृते यत् प्राप्यते फलम् । तत् कार्तिके पञ्चनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते ॥ कार्तिके बिंदुतीर्थे यो ब्रह्मचर्यपरायणः । स्नास्यत्यनुदिने भानौ भानुजातस्य भीः कुतः' ॥ इत्यादि काशी-खण्डोक्तेः । भानुजो यमः ॥

इदं च प्रातःस्नानं संध्यां च कृत्वा कार्यम् । तेन विनेतरकर्मानधिकारादिति वर्धमानः । यद्यपि प्रातःसंध्यायाः सूर्योदये समाप्तिः, तथापि वचनबलादनुदि-तहोमवद्भविष्यति । स्नानमंत्रश्च तत्रैव—'कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन

प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य मौनी स्नायाद् व्रती नरः ।
इति । अर्घ्यमन्त्रोपि तत्रैव । 'व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम । गृहा-
णार्घ्यं मया दत्तं दनुजेंद्रनिषूदन ॥ नित्यनैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने । गृहा-
णार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ इमौ मन्त्रौ समुच्चार्य योऽर्घ्यं मह्यं प्रयच्छति ।
सुवर्णरत्नपुष्पांबुपूर्णशंखेन पुण्यवान् ॥ सुवर्णपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः' ।
इति । एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ ज्यहं स्नायात् । 'वाराणस्यां पंचनदे ज्यहं स्नातास्तु
कार्तिके । अमी ते पुण्यवपुषः पुण्यभाजोतिनिर्मलाः ॥' इति काशीखंडोक्तेः ॥

अथ मालाधारणम् ॥ तत्र स्कान्दे द्वारकामाहात्म्ये- 'निवेद्य केशवे मालां
तुलसीकाष्ठसंभवाम् । वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ न जह्यात्तु-
लसीमालां धात्रीमालां विशेषतः । महापातकसंहर्त्री धर्मकामार्थदायिनीम् ॥'
विष्णुधर्मे- 'स्पृशेत्तु यानि लोमानि धात्रीमाला कलौ नृणाम् । तावद्वर्षसहस्राणि
वेकुण्ठे वसतिर्भवेत् ॥ मालायुग्मं तु यो नित्यं धात्रीतुलसिसंभवम् । वहते कण्ठदेशे तु
कल्पकोटि दिवं वसेत् ॥ तुलसीकाष्ठसंभूते माले कृष्णजनप्रिये । विभर्मि त्वामहं कण्ठे
कुरु मां कृष्णवल्लभम् ॥ एवं संप्राप्त्य विधिवन्मालां कृष्णगलेऽर्पिताम् । धारयेत्का-
र्तिके यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम्' ॥ इति । अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

तथा काशीखण्डे- 'कार्तिके मासि मे यात्रा यैः कृता भक्तितत्परैः । बिन्दुतीर्थ-
कृतस्नानस्तेषां मुक्तिर्न दूरतः' ॥ भार्गवाचर्यनदीपिकायां नृसिंहपुराणे- 'अगस्त्य-
कुमुदेवं योऽर्चयेच्च जनार्दनम् । दर्शनात्तस्य देवर्षेर्नरकं नाश्नुते नरः ॥ विहाय सर्व-
पुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् । कार्तिके योर्चयेद्भक्त्या वाजपेयफलं लभेत् ॥ स्कान्दे
कार्तिकमाहात्म्ये- 'मालतीमालया विष्णुः केतक्या चैव पूजितः । समाः सहस्रं
सुप्रीतो भवेत्ते मधुसूदनः' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये पात्रे- 'कार्तिके नार्चितो यैस्तु कमलैः
कमलैः । जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे' ॥ तथा- 'कार्तिके केशवे
पूजा येषां नाम्ना सुतैः कृता । ते निर्भर्त्स्य रवेः पुत्रं वसन्ति त्रिदिवे सदा ॥ तुलसी
दललक्षणे कार्तिके योर्चयेद्भरिम् ॥ पत्रेपत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम्' ॥ तथा
स्कान्दे कार्तिकमाहात्म्ये- 'धात्रीच्छाये तु यः कुर्यात्पिण्डदानं महामुने । मुक्तिं
प्रयान्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य तु ॥ धात्रीफलविलिप्तांगो धात्रीफलविभूषितः ।
धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ॥ धात्रीच्छायां समाश्रित्य योर्चयेच्चधारिणम् ।
पुष्पपुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः' ॥ तथा स्कान्दे- 'कार्तिके मासि विप्रेन्द्र
धात्रीवृक्षोपशोभिते । वने दामोदरं विष्णुं चित्रान्नैस्तोषयेद्विभुम् ॥ मूलेन पायसेनाथ
होमं कुर्याद्विचक्षणः । ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः' ॥ इति ॥

तथा कार्तिके द्विदलव्रतं प्रागुक्तम्- 'कार्तिके द्विदलं त्यजेत्' इति । पात्रेपि
कार्तिकमाहात्म्ये- 'राजिकामाढकं चैव नैवाद्यात् कार्तिकव्रती । द्विदलं तिलतैलं च

तथान्यन्मतिदूषितम्' ॥ स्कान्देपि—'कार्तिके वर्जयेत्तद्वद् द्विदलं बहुवीजकम् । माषमुद्गमसूराश्च चणकाश्च कुलित्यकाः ॥ निष्पावा राजमाषाश्च आढक्यो द्विदलं स्मृतम् । नूतनान्यपि जीर्णानि सर्वाण्येतानि वर्जयेत्' ॥ अत्र केचिदुत्पत्तिसमये दलद्वयं यस्य भवति । तद्धतपूर्वगत्या द्विदलमित्युच्यत इत्याहुः । उदाहरन्ति च । 'बीजमेव समुद्भूतं द्विदलं चाङ्कुरं विना । दृश्यते यत्र सस्येषु द्विदलं तन्निगद्यते' ॥ इति । अन्ये तु लक्षणायां मानाभावाच्चनस्य निर्मूलत्वात् द्विदलात्मकं यस्य स्वरूपं तदेव वर्जयेदित्याहुः । तथा नारदीये—'कार्तिके वर्जयेत्तैलं कार्तिके वर्जयेन्मधु । कार्तिके वर्जयेत् कांस्यं कार्तिके शुक्तसंधितम्' ॥ कांस्यं तत्पात्रभोजनम् । शुक्तं पर्युषितम् । संधितं लवणशाकः । तत्रैव 'कार्तिके विष्णुमूर्त्यग्रे दीपदानादिवं व्रजेत्' । तथा 'कार्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मविमोचनी' । तथा 'कार्तिके कृच्छ्रसेवी यः प्राजापत्यपरोऽथवा । एकान्तरोपवासी वा त्रिरात्रोपोषितोपि वा ॥ षड् वा द्वादश पक्षे वा मासं वा वरवाणिनि । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ उपवासेन भैक्षेण व्रजेत परमं पदम्' ॥ अन्येपि नियमाः प्रागुक्ताः ॥

ग्राह्यमुक्तं स्कान्दे—'ब्रीहयो यवगोधूमाः प्रियंगुतिलशालयः । एते हि साचिकाः प्रोक्ताः स्वर्गमोक्षफलप्रदाः' ॥ काशीखण्डे—'ऊर्जे यवान्नमश्रीयाद्देवान्नमथ वा पुनः ॥ वृताकं सूरणं चैव शूकशिबीश्च वर्जयेत्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये पात्रे—'नोजो बन्ध्यो विधातव्यो व्रतिना केनाचित् क्वचित्' । तथा नारदीये—'अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम् । तिर्यग्योनिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा' ॥ अन्यान्यपि ताम्बूल-तैलकेशकर्तनादिवर्जनसंकल्परूपाणि प्रागुक्तानि ॥

तथा कार्तिके आकाशदीप उक्तो निर्णयामृते पुष्करपुराणे—'तुलायां तिल-
तैलेन सायंकाले समागते । आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं हरिं प्रति-
आकाशदीपः । महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसंपदम्' । इति । तद्विधिश्च हेमाद्रा-

वादित्यपुराणे—'दिवाकरेस्ताचलमौलिभूते गृहादद्वारे पुरुषप्रमाणम् । यूपकृतिं यज्ञिय वृक्षदारुमारोप्य भूमावथ तस्य मूर्ध्नि ॥ यवाङ्गलच्छिद्रयुतास्तु मध्ये द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकासु । कृत्वा चतस्रोऽष्टदलाकृतीस्तु याभिर्भवेदष्टदिशानुसारी ॥ तत्कर्णिकायां तु महाप्रकाशो दीपः प्रदेयो दलगास्तथाष्टौ । निवेद्य धर्माय हराय भूम्यै दामोदरायाप्यथ धर्मराज्ञे ॥ प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पितृभ्यः प्रेतेभ्य एवाथ तमःस्थितेभ्यः' । इति । अपराकै त्वन्यो मन्त्र उक्तः । यथा । 'दामोदराय नमसि तुलायां लोलया सह प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोनंताय वेधसे' ॥

इति । कार्तिककृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी । सा चन्द्रोदयव्यापि-
करकचतुर्थी । नी ग्राह्या । दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा तत्रैव पूजाद्यान्नात् ।

कार्तिककृष्णद्वादशी गोवत्ससंज्ञा । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तत्त्वे
पूजा । युग्मवाक्यात् । 'वत्सपूजा वटश्चैव कर्तव्या प्रथमेहनि' । इति
गोवत्सद्वादशम् ।

निर्णयामृतेऽभिधानाच्च । अत्र विशेषो मदनरत्ने भविष्ये- 'सव-

त्सां तुल्यवर्णा च शीलिनीं गां पयस्विनीम् । चंदनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् ।
अर्घ्यं ताम्रमये पात्रे कृत्वा पुष्पाक्षतैस्तिलैः । पादमूले तु दद्याद्द्वै मन्त्रेणानेन पाण्डव ।
आंगिदार्णवसंभूते सुरासुरनमस्कृते । सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोनमः ॥ ततो माषा-
दिसंसिद्धान् वटकान्विनिवेदयेत् । सुरभि त्वं जगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता ॥ सर्वदेव-
मये ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस । ततः सर्वमये देवि सर्वदेवैरेलंकृते ॥ मातर्भमाभिलषितं
सफलं कुरु नन्दिनि' । इति प्रार्थयेत् । तथा- 'तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं युधि-
ष्ठिर । गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि तर्कं च वर्जयेत्' । ज्योतिर्निबन्धे नारदः- 'आश्वि-
ने कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु । तिथिषूक्तः सर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः ॥
नीराजयेयुर्देवास्तु विप्रान् गाश्च तुरंगमान् । ज्येष्ठाच्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च यो-
षितः' ॥ इति । निर्णयामृते स्कान्दे- 'कार्तिकस्य सिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे
यमदीपं वहिर्दद्यादपमृत्युर्बिनश्यति ॥ मन्त्रस्तु- 'मृत्युना पाश-

यमदीपः ।

दण्डाभ्यां कालेन श्यामया सह । त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्री-

यतां मम' ॥ इति ।

कार्तिककृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते चन्द्रोदयेऽभ्यङ्गं कुर्यात् । तदुक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते

अभ्यङ्गस्नानम् ।

च भविष्योत्तरे- 'कार्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यामिनोदये । अवश्यमेव
कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः' ॥ इति चन्द्रः । मदनरत्ने 'विधूदये' इति

पाठः । 'दिनोदये' इति पाठात् सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्तं स्नानं वदतां गौडानां तदनुसारिणां चाज्ञ-
तैव । 'पूर्वविद्धचतुर्दश्यां कार्तिकस्य सिते तरे । पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात् प्रयत्नतः' ॥
इति । स्मृतिदर्पणेपि- 'चतुर्दशी चाश्वयुजश्च कृष्णा स्वात्यर्थमुक्ता च भवेत् प्रभाते ।
स्नानं समभ्यज्य नरैस्तु कार्यं सुगन्धतैलेन विभूतिकापैः ॥ इति । पृथ्वीचन्द्रोदये
पात्रे- 'आश्वयुक्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां विधूदये । तिलतैलेन कर्तव्यं स्नानं नरकभी-
रुणा' ॥ इति । 'कर्तव्यं मङ्गलस्नानं नरैर्निरयभीरुभिः' । इति कालादर्शे पाठः ।
उभयत्राश्वयुगित्यमावास्यान्तमासमभिप्रेत्योक्तम् । तथा- 'तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपा-
वल्याश्चतुर्दशीम्' । प्राप्येति शेषः । 'प्रातः स्नानं तु यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति' ।
इति । दिनद्वयेपि चन्द्रोदये चतुर्दशीसत्त्वे तदभावेप्यरुणोदये संपूर्णे खण्डे वा
दिनद्वये चतुर्दशीसमत्वे च पूर्वदिनेऽभ्यङ्गं कुर्यात् । 'पूर्वविद्धचतुर्दश्याम्'
इति वचनात् । पूर्वदिने परदिन एव वा सत्त्वे सैव ग्राह्या । दिनद्वयेप्यसत्त्वे
अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या । 'पक्षे प्रत्यूषसमये' इत्युक्तेः । वक्ष्यमाणवचना-
च्च । तदभावे तु चतुर्दशीहासं पूर्वेषुः प्रवेश्य पूर्वैर्द्वि त्रयोदशीमध्य एवा-

भ्यङ्गं कुर्यादिति दिवोदासः ॥ केचिदत्र वचनमपि साधकत्वेन वदन्ति 'तिथ्यादौ तु भवेद्यावान् हासो वृद्धिः परेहनि । तावान् ग्राह्यः स पूर्वधुरदृष्टोपि स्वकर्मणि' ॥ इति तन्मन्दम् । नहीदं वचनं पूर्वदिनस्यापूर्वं ग्राह्यत्वं विधत्ते । नक्तैकभक्तजन्माष्टम्यादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे सर्वत्र पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वप्रसङ्गात् किंतु यत्रैकभक्तादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे वाक्यान्तरेण न्यायेन वा पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वमुक्तम्, तत्र मुख्यकाले तत्तिथेरभावेऽपि तत्रैवानुष्ठानबोधकमिदम् । न चात्र तदस्तीति यत्किंचिदेतत् । तेन चतुर्थयामगामिनी ग्राह्या । अत एव सर्वज्ञनारायणः—'तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयात्पुरा । यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते' ॥ इति 'मृगांकोदयवेलायां त्रयोदश्यां यदा भवेत् । दर्शं वा मंगलस्नानं दुःखशोकभयप्रदम्' ॥ इति कालादर्शं त्रयोदशीनिषेधाच्च । तेनायमर्थः । यथाग्निहोत्रे यावज्जीवं सायंप्रातःकालेषु व्याप्यकालस्य गुरुत्वं तथात्र चतुर्दशीचतुर्थयामारुणोदयचन्द्रोदयानामुत्तरोत्तरस्य व्याप्यत्वाद्गुरुत्वमिति यदपि दिवोदासीये—'त्रयोदशी यदा प्रातः क्षयं याति चतुर्दशी । रात्रिशेषे त्वमावास्या तदाभ्यङ्गे त्रयोदशी' ॥ इति वचनं तद्धेमाद्रिनिर्णयामृताद्यलिखितत्वेन निर्मूलम् । समूलत्वेपि न चतुर्दश्याः सूर्योदयासंबन्धित्वरूपः क्षयोत्र विवक्षितः । सूर्योदयात् प्राक् समाप्तौ चन्द्रोदयकालसत्त्वे च तथैवाङ्गीकारात् । किंतु अभ्यङ्गकालात् प्राक् समाप्तिरूपोऽत्र हासः क्षयशब्देन विवक्षितः । स चारुणोदयात् चतुर्थयामाद्या प्राक् यदा हासस्तत्परमिदम् । अत एव सर्वज्ञनारायणेन चतुर्थयाममात्रे स्नानमुक्तम् ॥ तथा चोदाहृतम् 'तथा कृष्णचतुर्दश्याम्' इति । ज्योतिर्निबन्धे नारदोपि—'इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि । ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावली भवेत् ॥ कुर्यात्संलग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम् ॥' ये तु त्रयोदशीमध्ये स्नानमाहुस्तेषामाशयं न विद्म इत्यलं भूयसा ॥ यदपि 'अरुणोदयतोऽन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः । तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येवं न संशयः ॥' इति दिवोदासीये भविष्यवचनम् । तन्मुख्यकालेऽरुणोदये चतुर्दश्यभावेऽपि तत्रैव स्नातव्यमित्येवंपरमिति सर्वं सिद्धम् । चतुर्धटिकात्मकोऽरुणोदय इति तत्रैवोक्तम् ।

मदनरत्ने पाद्मे—'अपामार्गमथो तुंवी प्रपुन्नाटमथापरम् । भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै' ॥ प्रपुन्नाटश्चक्रमर्दः । मन्त्रस्तु—'सितालोष्टसमायुक्त सकण्टकदलान्वित । हर पापमपामार्गं भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ॥' इति अस्यामेव प्रदोषे दीपान् दद्यादित्युक्तम् । हेमाद्रौ स्कान्दे—'ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान् । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च' ॥ इति । दिवोदासीये ब्राह्मे—'अमावास्याचतुर्दश्योः प्रदोषे दीपदानतः । यममार्गाधिकारेभ्यो मुच्यते कार्तिके नरः' ॥ खण्डतिथौ तु पूर्वेहि प्रदोषे दीपान् दत्त्वा परेद्युः स्नायादिति दिवोदासीये उक्तम् । अत्र नरकोद्देशेन चतुर्वर्तियुक्तं दीपदानं कार्यम् । तत्र मन्त्रः । 'दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीतये

मया । चतुर्वर्तिसमायुक्तः सर्वपापापनुत्तये' ॥ तत्रैव लेंगे-‘माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तत्र दिने नरः । प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते’ ॥ अत्र यमतर्पणमुक्तं मदनपारिजाते वृद्धमनुना-‘दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम्’ ॥ मदन-रत्ने ब्राह्मे-‘अपामार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि । ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य

यमतर्पणम् ।

नामभिः ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चांतकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औदुंबराय दध्राय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः’ ॥ इति तर्पणप्रकारस्तु हेमाद्रौ-‘एकैकेन तिलैर्मिश्रान् दद्यात्रींस्त्रीञ्जलाञ्जलीन् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति’ ॥ तथा मदनरत्ने स्कांदे-‘दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलैः सव्यं समाहितः । देवतीर्थेन देवत्वात्तिलैः प्रेता-धिपो यतः’ ॥ तथा-यज्ञोपवीतिनाथेति । इदं जीवत्पितृकेणापि कार्यम् । ‘जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः’ । इति पाद्मोक्तेः । अत्र भीष्मतर्पणमप्युक्तं दिवोदासी-ये तत्प्रकारस्तु माघे वक्ष्यते इति नरकचतुर्दशी ॥

कार्तिकामावास्या ।

कार्तिकामावास्यायां प्रातरभ्यङ्गं कुर्यात् तदुक्तं कालादर्शे-‘प्रत्यूष आश्वयुगदर्शे कृताभ्यङ्गादिमंगलः । भक्त्या प्रपूजयेद्देवीमलक्ष्मीविनिवृत्तये’ ॥ अस्य व्याख्याने आदिशब्दात्पञ्चत्वगुदकस्नानादेरुपसंग्रहः । तदुक्तं पुष्करपुराणे-‘स्वा-ब्नीस्थिते स्वाविन्दुर्यदि स्वातिगतो भवेत् । पञ्चत्वगुदकस्नायी कृताभ्यङ्गविधिर्नरः ॥ नीराजितो महालक्ष्मीमर्चयञ् श्रियमश्नुते’ अश्वयुगदर्श इति दर्शशब्दः प्रत्यूषस्वातियु-क्ततिथिपरः । तदुक्तं ब्राह्मे-‘ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां तिथिषु स्वातिऋक्षगे । मानवो मंगलस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते’ ॥ तत्रैव-‘इषे भूते च दर्शे च कार्तिकप्रथमे दिने । यदा स्वाती तदाभ्यङ्गस्नानं कुर्याद्दिनोदये’ ॥ कश्यपसंहितायां तु दीपावलिदर्शं प्रक्रम्य ‘इन्दुक्षयेपि संक्रान्तौ खौ पाते दिनक्षये । तत्राभ्यङ्गो न दोषाय प्रातः पापाप-नुत्तये’ ॥ इति । स्वातीयोगं विनाऽप्यभ्यङ्ग उक्तः । मात्स्ये-‘दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता’ ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये-‘दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात् । प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात् ॥ दीपवृक्षाश्च दातव्याः शक्त्या देवगृहेषु च ॥’ तत्रैवाभ्यङ्गमभिधाय ‘एवं प्रभातसमये त्वमावास्यां नराधिप । कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ॥ दीपान् दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथा-विधि । स्वलंकृतेन भोक्तव्यं सितवस्त्रोपशोभिना ॥’ अयं प्रदोषव्यापी ग्राह्यः । ‘तुला-संस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः । उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितृणां मार्गदर्शनम्’ । इति ज्योतिषोक्तेः । दिनद्वये सत्त्वे परः । ‘दण्डै-

लक्ष्मीपूजनविधिः ।

करजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेषुः परेऽहनि सुखदात्रिका’ ॥ इति तिथितत्त्वे ज्योतिर्वचनात् । दिवोदासीये तु प्रदोषस्य कर्मकालत्वात् । ‘अर्ध-

रात्रे भवेत्येव लक्ष्मीराश्रमितुं गृहान् । अतः स्वलंकृता लिप्ता दीपैर्जाग्रज्जनोत्सवाः ॥
सुधाधवलिताः कार्याः पुष्पमालोपशोभिताः । इति ब्राह्मोक्तेश्च । प्रदोषार्धरात्र-
व्यापिनी मुख्या । एकैकव्याप्तौ परैव । प्रदोषस्य मुख्यत्वादर्थरात्रेनुष्ठेयाभावाच्च । यस्तु
‘अपराह्णे प्रकर्तव्यं श्राद्धं पितृपरायणैः । प्रदोषसमये राजन् कर्तव्या दीपमालिका ॥’
इति क्रमः स सम्पूर्णतिथावेव प्राप्तेरनुवादो न विधिः । तत्तत्कर्मकालव्याप्तेर्वलवत्त्वात्सं-
पूर्णतिथौ प्राप्त्या खण्डतिथावप्राप्त्या विध्यनुवादविरोधाच्चेत्युक्तमत्रैव । दर्शे पररात्रे-
ऽलक्ष्मीनिःसारणमुक्त मदनरत्ने भविष्ये-‘एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्धलो-
चने । तावन्नगरनारीभिः शूर्पण्डिडिमवादनैः ॥ निष्कास्यते ग्रहस्थाभिरलक्ष्मीः स्व-
गृहाङ्गणात् ।

कार्तिकशुक्लप्रतिपदि गोक्रीडनमुक्तं निर्णयामृते । अस्या-
कार्तिकशुक्लप्रतिपत् ।

मेव रात्रौ बलेः पूजोक्ता हेमाद्रौ भविष्ये-‘कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ
दैत्यपतेर्वलेः । पूजां कुर्यान्नृपः साक्षाद्भूमौ मण्डलके शुभे ॥ बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं
वर्णकैः पञ्चरंगकैः । गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् ॥ लोकश्चापि गृह-
स्यांतः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः । संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैस्तु पूजयेत् ॥
मन्त्रस्तु पाद्मे-‘बलिराज नमस्तुभ्यं दैत्यदानववन्दित । इन्द्रशत्रोऽमराराते विष्णु-
सान्निध्यदो भव ॥’ इति । तथा ‘बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन । यानि
तान्यक्षयाण्याहुर्मयैवं संप्रदर्शितम् ॥’ इति । तदेतत् पूर्वविद्धप्रतिपदि कर्तव्यम् । ‘पूर्व-
विद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्वर्लेदिनम् । इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः । माधवोपि-
‘बल्युत्सवं च पूर्वद्युरपवासवदाचरेत् ।’ इति । निर्णयामृतैपि-‘या कुहूः प्रतिप-
न्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृपः । पूजनात्रीणि वर्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः ॥’ इति ।
तथा-‘भद्रायां गोकुलक्रीडा स देशो वै विनश्यति’ । भद्रायां द्वितीयायाम् । तथा ‘प्रति-
पद्यग्निकरणं द्वितीयायां तु गोर्चनम् । क्षेत्रच्छेदं करिष्येत वित्तनाशं कुलक्षयम्’ । इति ।
तथा ‘प्रतिपददर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम् । परविद्धेषु यः कुर्यात् पुत्रदारधनक्षयः ॥’
इति देवलवचनाच्च । एते च विधिप्रतिषेधाः । पूर्वदिने प्रतिपदः सायाह्नव्यापित्वे
द्वितीयदिने चन्द्रदर्शनसम्भवे च ज्ञेयाः । ‘गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः ।
सोमो राजा पशून्हन्ति सुरभिः पूजकांस्तथा ॥’ इति पुराणसमुच्चयात् । दिन-
द्वये सायाह्नव्यापित्वे तु परैव ग्राह्या । ‘वर्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्धत्रियामिका ।
द्वितीयावृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते ॥’ इति । तथा ‘त्रियामगा दर्शति-
थिर्भवेच्चेत्सार्धत्रियामा प्रतिपद्विद्धौ । दीपोत्सवे ते मुनिभिः प्रदिष्टे अतोऽन्यथा
पूर्वयुतेविधेये ॥’ इति पुराणसमुच्चयादिति निर्णयामृतकारः । सार्धत्रिया-
मिकेत्यनेन चन्द्रदर्शनाभाव उक्तः । द्वितीयायाः पंचमा विभक्तीदिनचतुर्थीशरूपाप-
राह्नव्याप्तावेव चन्द्रदर्शनसंभवात् । वयं त्वेतद्वचनद्वयं पूर्वविद्धासंभवे वेदितव्यमिति

ब्रूमः । दिनद्वये प्रतिपदः सायाह्नव्याप्त्यभावे तु पूर्वैव । रात्रौ बलिपूजाविधानेन कर्मका-
ह्नव्यापित्वात् । परदिने चन्द्रोदये तन्निषेधादिति दिक् ॥

मदनरत्ने तु पूर्वविद्धायां गोक्रीडा । नीराजनमंगलमालिके तूत्तरत्र कार्ये ।
'कार्तिके शुक्लपक्षे तु विधानाद्वितयं भवेत् । नारीनीराजनं प्रातः सायं मङ्गलमालिका ॥
यदा च प्रतिपत्स्वल्पा नारीनीराजनं भवेत् । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मंगलमालि-
काम्' ॥ इति ब्राह्मोक्तेः । 'लभ्यते यदि वा प्रातः प्रतिपद् घटिकाद्वयम् । तस्यां नीरा-
जनं कार्यं सायं मंगलमालिका' ॥ इति भविष्योक्तेः । 'प्रातर्वा यदि लभ्येत प्रतिपद्
घटिका शुभा । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मंगलमालिकाम् ॥ कार्तिके शुक्लपक्षादौ
त्वमावास्या घटीद्वयम् । देशभंगभयान्नैव कुर्यान्मङ्गलमालिकाम्' ॥ इति देवीपु-
राणाच्चेत्युक्तम् । अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे-बलिप्रतिपदं प्रक्रम्य-'तस्मिन्द्यूतं
प्रकर्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः । तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ॥
पराजयो विरुद्धश्च लाभनाशकरो भवेत् । दयिताभिश्च सहितैर्नैया सा च भवे-
न्निशा ॥' इति ॥

अत्र गोवर्धनपूजादि चोक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते च स्कांदे-'प्रातर्गोवर्धनं
पूज्य द्यूतं चापि समाचरेत् । भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चावाहदोहनाः' ॥ गोवर्ध-
नश्च गोमयेन कार्योश्च त्रेण वा । मंत्रस्तु 'गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारण ॥
बहुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव' ॥ गोमंत्रस्तु 'लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरू-
पेण संस्थिता । वृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु' ॥ तत्रैव स्कांदे-'ततोऽपरा-
ह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत । मार्गपालीं प्रवध्नीयाजुंगे स्तंभेथ
पादपे ॥ कुशकाशमर्यां दिव्यां लंबकैर्बहुभिर्मुने । दर्शयित्वा गजा-
नश्वान् सायमस्यास्तले नयेत् ॥ कृतहोमे द्विजैर्द्रैस्तु वध्नीयान्मार्गपालिकाम् । नम-
स्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ मार्गपालि नमस्तेस्तु सर्वलोकसुखप्रदे । विधेयैः
पुत्रदाराद्यैः पुनरोहि व्रतस्य मे ॥ नीराजनं च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम् । राजानो
राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः ॥ मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः स्युः सुखा-
न्विताः ॥ तत्रैवादित्यपुराणे-'कुशकाशमर्यां कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् । तामे-
कतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथान्यतः । गृहीत्वा कर्षयेयुस्तां यथासारं मुहुर्मुहुः । जयोत्र
हीनजातीनां जयो राजस्तु वत्सरम्' ॥ इति ॥

यमद्वितीया ।

यमद्वितीया तु प्रतिपद्युता ग्राह्येत्युक्तं निर्णयामृतादौ ।
यमद्वितीया मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा चेति हेमाद्रिः । अत्र विशेषो
हेमाद्रौ स्कान्दे-'ऊर्जशुक्लद्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद्यमम् । स्नानं कृत्वा भानुजायां
यमलोकं न पश्यति' ॥ इति 'ऊर्जं शुक्ले द्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः । वेष्टितः

किन्नरैर्हृष्टैस्तस्मै यच्छति वाञ्छितम् ॥' तथा भविष्ये-‘प्रथमा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदेतरा । तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्तिके भवेत् ॥ श्रावणे कलुषा नाम तथा भाद्रे च गीर्मला । आश्विने प्रेतसंचारा कार्तिके याम्यका मता’ ॥ इत्युक्त्वा प्रथमायां व्रतं द्वितीयायां सरस्वतीपूजा तृतीयायां श्राद्धमुक्त्वा चतुर्थ्यामुक्तम् । ‘कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर । यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ॥ अतो यमद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता । अस्यां निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो नरैः ॥ स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिर्वर्द्धनम् ॥ दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः । स्वर्णालंकारवस्त्रान्नपूजासत्कारभोजनैः ॥ सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रतिपन्नकाः’ ॥ प्रतिपन्नाः मातृभगिन्य इति हेमाद्रिः । ‘पितृव्यभगिनीहस्तात् प्रथमायां युधिष्ठिर । मातुलस्य सुताहस्ताद्वितीयायां तथा नृप ॥ पितुर्मातुः स्वसुः कन्ये तृतीयायां तयोः करात् । भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम् ॥ सर्वास्तु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम् ॥ यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः संभोजितः प्रतिजगत्स्वसृसौहृदेन । तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति रत्नसुखवान्यमनुत्तमं सः’ ॥ गौडास्तु-‘यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत् । अर्घ्यश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः’ ॥ मन्त्रः-‘एह्येहि मार्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश । भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते’ ॥ भ्रातस्तवानुंजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम् । प्रीतये यमराजस्य यमुनायां विशेषतः’ ॥ ज्येष्ठाग्रजातेति वदेदिति स्मार्ताः । इत्यन्नदानमित्यप्याहुः । ब्रह्माण्डपुराणेपि-‘या तु भोजयते नारी भ्रातरं युगमेकं तिथौ । अर्घ्येच्चापि तांबूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ भ्रातुरायुक्षयो राजन् न भवेत्तत्र कर्हिचित्’ इति ॥

कार्तिकशुक्लनवमी ।

कार्तिकशुक्लनवमी युगादिः । सा पौर्वाहिकी ग्राह्या । शुक्लपक्षस्थत्वात् । अत्रापि पिण्डराहितं श्राद्धं कर्तव्यम् । अन्यत् प्रागुक्तम् ।

विष्णुत्रिरात्रव्रतम् ।

अत्रैव विष्णुत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ पाद्रे-‘कार्तिके शुक्लनवमीवाप्य विजितेन्द्रियः । हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभुम् ॥

पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् । एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम्’ ॥ इति ॥

का० शु० एकादश्यां
भीष्मपञ्चकम् ।

कार्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपञ्चकव्रतमुक्तं नारदीये-‘अतो नरैः

प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् । कार्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः । एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम्’ । इति तद्विधिस्तु गोमयेन स्नात्वा मौनी पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्विष्णुं संस्त्राप्य संपूज्य पायसं निवेद्य द्वादशाक्षरमष्टोत्तरशतं जप्त्वा । ॐ नमो विष्णवे इति षडक्षरेण घृताक्तान् यवान् व्रीहींश्चाष्टोत्तरशतं

हुत्वा भूमौ स्वप्यात् । एवं पंचदिनेषु कुर्यात् । विशेषस्त्वाद्येहि हरेः पादौ कमलैः संपूज्य त्रिगोमयं प्राश्यम् । द्वितीयेहि विल्वपत्रैर्जानुनी संपूज्य गोमूत्रम् । त्रयोदश्यां भृंगराजेन नाभिं संपूज्य क्षीरम् । चतुर्दश्यां करवीरैः स्कंधं संपूज्य दधि । पौर्णमास्यां होमान्ते लोहीं पापप्रतिमां खड्गचक्रहस्तां कृष्णवस्त्रेण वेष्टितां प्रस्थतिलोपरिस्थां कृत्वा धर्मराजनामभिः करवीरैः संपूज्य । 'यदन्यजन्मानि कृतमिह जन्मानि वा पुनः । तत्सर्वं प्रशमं यातु मत्पापं तव पूजनात् ॥ ' इति पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा कृष्णप्रतिमां च संपूज्य विप्राय दात्वा विप्रान् संभोज्य दक्षिणां दत्वा पञ्चगव्यं प्राश्य पौर्णमास्यां नक्त भुंजीतेति लघुनारदीये । पञ्चगव्यप्राशनं षडक्षरेणेति हेमाद्रिः हेमाद्रौ भविष्ये तु शाकैर्मुन्यन्त्रवां पञ्चाहं वर्तनमुक्तम् अन्तेप्युक्तम् 'यद्भीष्मपंचकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशी-प्रभृतिपञ्चदशीनिरुद्धम् । मुन्यन्नभोजनपरस्य नरस्य तस्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा' ॥ इति । तथा पाद्मे- 'पञ्चाहं पञ्चगव्याशी भीष्मायार्घ्यं च पञ्चसु । अहःस्वापि तथा दद्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत' ॥ 'सत्यव्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने । भीष्मायैतद्दाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥ वैयाघ्रपद्यगोत्राय इति च । 'सव्येनानेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम्' । इति ।

का० शु० द्वादशी ।

कार्तिकशुक्लद्वादश्यां रेवतीनक्षत्रयोगरहितायां पारणं
कार्यम् । तदुक्तम्- 'आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । संगमे न हि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीर्हरेत्' ॥ इति । यदा तु रेवतीयोगरहिता द्वादशी सर्वथा न लभ्यते, तदा रेवत्याश्रुतुर्थपादं वर्जयेत् । वचनं तु प्रागुक्तम् ॥ लघुनारदीये 'कार्तिके शुक्लपक्षस्य कृत्वा चैकादशीं नरः । प्रातर्दत्त्वा शुभान् कुम्भान् प्रयाति हरिमन्दिरम्' ॥ मदनरत्ने वाराहे- 'एकादशी सोमयुक्ता कार्तिके मासि भामिनि । उत्तराषाढसंयोगे अनन्ता सा प्रकीर्तिता ॥ तस्यां यत् क्रियते भद्रे सर्वमानन्त्यमश्नुते' ॥ अस्यामेव रात्रौ देवोत्थापनमुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे- 'एकादश्यां च शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम् । प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः' ॥ इति । मदनरत्ने भविष्ये- 'कार्तिके शुक्लपक्षे तु एकादश्यां पृथासुत । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेद् द्विजः' ॥ रामार्चनचन्द्रिकादौ तु द्वादश्यामुक्तम् 'पारणाहे पूर्वरात्रे घण्टादीन्वादयेन्मुहुः' । इति । अत्र देशाचारतो व्यवस्था । 'तत्रैव देवदेवस्य स्नानं पूर्वं महद्भवेत् । महापूजां ततः कृत्वा देवमुत्थापयेत्सुधीः' ॥ मन्त्रास्तु वाराहपुराणे उक्ताः- ॐ 'ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निर्कुबेरसूर्यः सोमादिभिर्वीन्द्रतवन्दनांग । बुद्धयस्व देवेश जगन्निवास मंत्रप्रभावेण सुखेन देव ॥ इयं तु द्वादशी देव प्रबोधार्थं विनिर्मिता । त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते । त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् । उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव । गता मघा वियञ्चैव निर्मलं निर्मला दिशः । शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव ॥ इदं विष्णुरिति प्रोक्तो मन्त्र

उत्थापने हरेः ' ॥ इति । एवं देवमुत्थाप्य तदग्रे चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिं कुर्यात् । तदुक्तं भारते—'चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः । कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्' ॥ लघुनारदीये—'चातुर्मास्यव्रतानां च समाप्तिः कार्तिके स्मृता' ॥ मन्त्रश्च निर्णयामृते सनत्कुमारेणोक्तः—'इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो । न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन' ॥ इति ।

अथ वाराहोक्तो बोधनीविधिः एकादश्यां रात्रौ कुम्भे घृतपात्रोपरि हैमं माष-
मितं मत्स्यं पंचाशतेन संस्नाप्य कुंकुमपीतवस्त्रयुगपद्वाद्यैः संपूज्य मत्स्यादिदशावतारान्
संपूज्य जागरं कृत्वा प्रातर्देवमाचार्यं च वस्त्राद्यैः संपूज्य 'जगदादिर्जगद्रूपो जगदा-
दिरनादिमान् । जगदाद्यो जगदद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः' ॥ इति नत्वं
दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति ॥ तथा ब्राह्मे—'महातृयरेवे रात्रौ भ्रामये
त्स्यन्दने स्थितम् । उत्थितं देवदेवेशं नगरे पार्थिवः स्वयम् ॥ चतुरो वार्षिकान्-
मासान् नियमं यस्य यत् कृतम् । कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्व्याज्जत्तया सदक्षिणम्' ॥
यस्य भक्ष्यस्य नियमः कृतस्तद्व द्रव्यं दद्यादित्यर्थः । इदं शुक्रास्तादावपि कार्यम् ।
आशौचे तु पूजामन्येन कारयेत् । कार्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च मन्वादिः । सा
पौर्वाहिकी ग्राह्या । अन्यत् प्रागुक्तम् ।

कार्तिकशुक्लचतुर्दशी वैकुण्ठसंज्ञा । सा विष्णुपूजायां रात्रिव्यापिनी ग्राह्या
दिनद्वये तद्व्याप्तौ निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं हैमाद्रौ भविष्ये—
'कार्तिकस्य सिंते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप । सोपवासस्तु संपूज्य हरिं रात्रौ जितेंद्रियः' ॥
इति । अस्यामेव विश्वेश्वरप्रतिष्ठादिनत्वात्तत्प्रीत्यर्थं यदोपवासादि क्रियते तदारुणोदय-
व्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं त्रिस्थलीसेतौ सनत्कुमारसंहितायाम् 'वर्षे च हेमल-
म्बाख्ये मासे श्रीमति कार्तिके । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति ॥ महादेवतियौ
ब्राह्मे सुहूर्ते मणिकर्णिके । स्नात्वा विश्वेश्वरो देव्या विश्वेश्वरमपूजयत्' ॥ इति । तत्पूर्वादिने
चोपवासः कार्यः । 'ततः प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम् । दण्डपाणेर्महाधाम्नि
नवेऽस्मिन्कृतपारणः ॥' इति तत्रैवोक्तेः । शिवरहस्येपि पूजाजागराद्युक्तम् ।
'ततोऽरुणोदये जाते स्नात्वा स्नात्वा च भस्मना । संध्यां समाप्य विश्वेशं मामभ्यर्च्य
यथाविधि ॥ मद्भक्तान् भोजयामासुर्ऋषयो बुभुजुस्ततः' ॥ इति ॥

अत्र कार्तिकव्रतोद्यापनं पाद्रे कार्तिकमाहात्म्ये उक्तम्—'अथोर्जव्रतिनः सम्यगु-
द्यापनविधिं शृणु । ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ तुलस्या उपरिष्ठात् कुर्या-
न्मण्डपिकां शुभाम् । तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च ॥ तस्योपरिष्ठात् कलशं पञ्चर-
त्नसमन्वितम् । पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्या-
दिमङ्गलैः । ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥ त्रिंशन्मितानथैकं वा

स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् । अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम् ॥ ततो गां कापिलां दद्यात् पूजयेद्विधिवद्गुरुम् ॥ इति ।

कार्तिकी पौर्णमासी परा ग्राह्या । 'अमापौर्णमास्यौ परे' इति दीपिकोक्तेः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे- 'पुण्या महाकार्तिकी स्यार्जीवेन्द्रोः कृत्तिकासु च' ॥ तथा 'आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवति क्वचित् । महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा ॥ यदा तु याम्यं भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित् । तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप । सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा' ॥ इति । पाद्मे- 'विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः । स योगः पद्मको नाम पुष्करेष्वपि दुर्लभः ॥ पद्मकं पुष्करे प्राप्य कापिलां यः प्रयच्छति । स हित्वा सर्वपापानि वैष्णवं लभते पदम्' ॥ यमः- 'कार्तिक्यां पुष्करे स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते । माघ्यां स्नातः प्रयागे तु मुच्यते सर्वकिल्बिषैः' ॥ अस्यामेव सायंकाले मत्स्यावतारो जात इत्युक्तं पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये- 'वरान् दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपी भवेत्ततः । तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम्' ॥ इति । अत्र त्रिपुरोत्सव उक्तो भार्गवार्चनदीपिकायाम्- 'पौर्णमास्यां तु संध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः । दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये ॥ कौटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ॥ दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्ति नित्यं श्वपचा हि विप्राः' ॥ अत्र वृषोत्सर्गोत्तिप्रशस्तः । तदुक्तं मात्स्ये- 'कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं सभाचरेत् । शैवं पदमवाप्नोति शिवब्रह्मिदं स्मृतम्' ॥ इति । अत्र कार्तिकेयदर्शनमुक्तं काशीखण्डे- 'कार्तिक्यां कृत्तिकायोगेयः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् । सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः' ॥ ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे कार्तिकमासः ॥

वृश्चिके पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्याः । शेषं प्राग्वत् । मार्गशीर्षकृष्णाष्टमी काला-

कालाष्टमी ।

ष्टमी । सा च रात्रिव्यापिनी ग्राह्या । मार्गशीर्षसिताष्टम्यां कालभैरवसंनिधौ । उपोष्य जागरं कुर्वन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥' इति काशीखण्डाद्रात्रिव्रतत्वावगतेः । 'रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्तव्या संमुखी तिथिः' । इति ब्रह्मवैवर्ताच्च । दिनद्वयं शतो रात्रिव्याप्तावुत्तरैव । भैरवोत्पत्तेः प्रदोषकालीनत्वादिति केचित्तन्न । शिवरहस्ये- मध्याह्ने भैरवोत्पत्तेः श्रवणात् । तथा च तत्रैव- 'नित्ययात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते खौ' । इत्युपक्रम्य ब्रह्मणा रुद्रेवज्ञाते उक्तम्- 'तदोग्ररूपादनवान्मत्तः श्रीकालभैरवः । आविरासीत्तदा लोकान् भीषयन्नखिलानपि' ॥ इति । अत्रोपवास एव प्रधानमित्युक्तं तत्रैव- 'उपोषणस्याङ्गभूतमर्घ्यदानमिह स्मृतम् । तथा जागरणं रात्रौ पूजा यामचतुष्टये' ॥ संध्यायामपि पूजैवोक्ता । तेन मध्याह्नव्यापिनी युक्ता । दिनद्वयं शतः संपूर्णायां वा तद्व्याप्तौ पूर्वैव । पूर्वोक्तवचनात् । पारणा

तु प्रातरेव 'यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा' । इति वचनात् । अत्र च कालभै-
रवपूजोक्ता त्रिस्थलीसेतौ—'कृत्वा च विविधां पूजां महासंभारविस्तरैः । नरो मार्ग-
सिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमुत्सृजेत् ॥' तथा 'तीर्थे कालोदके स्नात्वा कृत्वा तर्पणम-
त्वरः । विलोक्य कालराजानं निरयादुद्धरेत् पितृन् ॥' इति । इयं च कार्तिक्यनन्तरा
गौणचान्द्राभिप्रायेण ।

मार्गशीर्षशुक्लपञ्चम्यां नागपूजोक्ता हेमाद्रौ स्कान्दे—'शुक्ला मार्गशिरे पुण्या
श्रावणे या च पञ्चमी । स्नानदानैर्बहुफला नागलोकप्रदायिनी' ॥
मार्ग० शु० ५ नागपञ्चमी । इति । इयं नागपूजायां षष्ठीयुतैव ग्राह्या । 'पञ्चमी नागपूजायां
कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका' ॥ इति मदनरत्ने
वचनात् ।

मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी चम्पाषष्ठीति महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धा । सोत्तरयुता ग्राह्या ।
चम्पाषष्ठी । 'षण्मुन्योः' इति युग्मवाक्यात् । 'पूर्वाह्नेषु दैविकं कुर्यात्' इति वच-
नादस्य च दैवकर्मत्वात् । इयमेव योगविशेषेण चम्पेत्युच्यते । तदुक्तं
ब्रह्माण्डपुराणे मल्लारिमाहात्म्ये—'मार्गे भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी वैधृतिसंयुता । रवि-
वारेण संयुक्ता चम्पेतीह प्रकीर्तिता' ॥ इति । 'विशाखाभीमयोगेन सा चम्पेतीह
कीर्तिता' । इति मदनरत्ने पाठः । 'मार्गशीर्षमले पक्षे षष्ठ्या वारंऽशुमालिनः ।
शततारागते चन्द्रे लिङ्गं स्यादृष्टिगोचरम्' ॥ इति । इयं च योगवशेन पूर्वा परा वा
कार्या । चम्पाषष्ठी सप्तमीयुतेति दिवोदासः । इयमेव स्कन्दषष्ठी सा पूर्वयुता ।
'कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं
भवेत्' ॥ इति श्रुक्तेः परेऽद्वि रात्रावाद्ययाममध्ये पारणासंभवे इदम् । अन्यथोत्तरैवेति
दिवोदासः । अब्दपर्यन्तं षष्ठीषु । 'सेनाविदारक स्कन्द महासेन महाबल ॥ रुद्रो-
भाग्निज षड्भुक् गङ्गागर्भ नमोस्तु ते' । इति राजतं स्कन्दं संपूज्य विप्राय दद्या-
दिति दिवोदासः ॥

मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचविमोचनी तीर्थे श्राद्धं त्रिस्थलीसेतौ भट्ट-
चरणैरुक्तम् । तस्य प्राप्तपैशाच्यस्वपित्राद्युद्देश्यकत्वे पार्वणत्वादपराह्ण-
मार्ग० शु० १४ । व्यापिनी ग्राह्या । अज्ञातनामपिशाचाद्युद्देश्यकत्वे त्वेकोद्दिष्टत्वात् ।
मध्याह्नव्यापिनीति । कुलधर्मव्रतादौ तृत्तरैव । 'चैत्रनभोगतेतरसिता स्यादूर्ध्वा' इति
दीपिकोक्तेः ॥

मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्पत्तिः । तदुक्तं स्कान्दे सद्वाद्रिखण्डे—
"मार्गशीर्षे तथा मासि दशमेऽद्वि मुनिर्मले । मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां
यज्ञस्य वासरे ॥ आनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम् । तं विष्णु-

मागतं ज्ञात्वा अत्रिर्नामाकरोत्स्वयम् ॥ दत्तवान् स्वस्य पुत्रत्वाद्दत्तात्रेय इतीश्वरः ॥”
इति । इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येति वृद्धाः ॥

मार्गशीर्षपौर्णिमानन्तराष्टमी अष्टका । एवं पौषादिमासत्रयेऽपि हेमन्तशिशिरयो-
अष्टका ।
श्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा’ इत्याश्वलायनोक्तेः ।

‘एकस्यामष्टम्यां वै कार्या’ इति हरदत्तः । क्वचित् पंचम्यप्युक्ता
‘प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यति ।’ इति पाद्मवचनात् । तत् पूर्वसप्तमीषु
पूर्वेषुः । तत्परनवमीष्वन्वष्टकासु च श्राद्धमुक्तं कालादर्शे-‘मार्गशीर्षे च पौषे च
माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने । कृष्णपक्षे च पूर्वद्व्युन्वष्टक्यं तथाष्टका ॥’ इति । यत्तु विष्णुः-
‘अमावास्यास्तिस्त्रोऽष्टकास्तिस्त्रोऽन्वष्टकाः’ । इति । यच्च कौर्मे-‘अमावास्याष्टका-
स्तिस्त्रः पौषमासादिषु त्रिषु ।’ इति । तच्चतुर्थ्यामनावश्यकत्वार्थम् । ‘या चाप्यन्या
चतुर्थी स्यात्तां च कुर्यात् प्रयत्नतः’ । इति वायुब्रह्माण्डपुराणात् । ‘श्राद्धमेते-
ष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते’ । इति विष्णुक्तेरिति शूलपाणिः । शाखाभेदा-
द्वयवस्थेति तत्त्वम् । वायुब्रह्माण्डयोः-‘आद्यापूपैः सदा कार्या मांसैरन्या सदा
भवेत् । शाकैः कार्या तृतीया स्यादेव द्रव्यगतो विधिः ॥’ पौषादिः क्रमः । अन्वष्टका
तु प्रागेव निर्णीता । तत्राष्टम्यपराह्णव्यापिनी ग्राह्या । ‘अथाच्छादनपर्यन्तं श्राद्धं
पार्वणवद्भवेत्’ । इत्याश्वलायनकारिकोक्तेरपराह्णकालत्वाच्च पार्वणस्य । पूर्वद्व्यु-
ष्टकाश्राद्धयोस्तु अष्टम्यनुरोधेन निर्णयः । अत एव सूत्रम्-‘पूर्वेषुः पितृभ्यो दद्यात्’ ।
‘अपरेद्व्युन्वष्टक्यम्’ इति च । अत्र कामकालौ विश्वेदेवौ । ‘इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षावष्टम्यां
कामकालौ’ इति सायणीये शङ्खोक्तेः । अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तमृगि-
धाने । ‘एभिर्द्युभिर्जपेन्मन्त्रं शतवारं तु तद्दिने । अन्वष्टक्यं यदा न्यूनं संपूर्णं याति
सर्वथा’ ॥ इति । अशक्तौ त्वाश्वलायनः-‘अथ श्वोभूतेष्टकाः । पशुना स्थालीपा-
केन चाप्यनडुहोयवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषामेष्टकेति न त्वेशानष्टकः स्यात्’ ।
इति । मार्गशीर्षादिषु मलमासे सति तत्राष्टका न कार्या । चतुर्णामिति ग्रहणादित्युक्तं
नारायणवृत्तौ । तथा काठकगृह्येऽपि-‘महालयाष्टकश्राद्धोपाकर्माद्यापि कर्म यत् ।
स्पष्टमासविशेषाख्या विहितं वर्जयेन्मले’ ॥ इति । मार्गादिरविवारेषु काम्यं व्रतमुक्तं
हेमाद्रौ । तत्र भक्ष्याण्युक्तानि सौरधर्मे संग्रहे-‘पत्रत्रित्वं तुल-
माघे रविवारव्रतम् ।
स्यास्त्रिफलमथ घृतं मार्गशीर्षादिभक्ष्यं मुष्टीनां त्रिस्तिलानां त्रिपल-
दधि तथा दुग्धकं गोमयं च । त्रित्वं तोयाञ्जलीनां त्रिमरिचक्रमथो त्रिःपलाः सक्तव-

१-एवं चाश्वलायनभिन्नानां केषांचित्कालानुनाष्टम्यां सर्वासु सप्तमीषु श्राद्धाकरणेऽपि न दोषः ।
‘स्वाशाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं तु यः । कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम्’ ॥ इत्युक्ते-
रिति टीका ।

स्युर्गोमूत्रं शर्करासद्विविरिति विधिना भानुवारे क्रमेण ॥' इति । इति श्रीकमलाकर-
भट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे मार्गशीर्षमासः समाप्तः ॥

धनुःसंक्रमे पराः षोडश घटिकाः पुण्याः । अन्यत्प्राग्वत् । अत्रोत्सर्जननिर्णयो
धनुःसंकान्तिः । वक्तव्योपाकर्मप्रसंगात् प्रागेवोक्तः । कल्पतरौ भविष्ये—'पौषे
पौषाष्टमी । मासे यदा देवि शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत् । तस्यां स्नानं जपो
होमस्तर्पणं विप्रभोजनम् ॥ मत्प्रीतये कृतं देवि शतसाहस्रिकं भवेत्' । अत्रैव रोहिण्या-
द्रायोगे पुण्यतमत्वं तत्रैव ज्ञेयम् । पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः सा चोक्ता प्राक् । पौषपौर्णि-
मानन्तराः सप्तम्यष्टमीनवम्योऽष्टकाद्याः प्रागुक्ताः ।

पौषामावास्यायामर्धोदयो योगविशेषः । तदुक्तं मदनरत्ने महा-
भारते—'अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत् पौषमाघयोः । अर्धोदयः स
पौषैकादशी अर्धोदयः । विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः ॥' इति । पौषमाघयोर्मध्यवर्तिनी पौर्णिमास्यु-
त्तरामावासेत्यर्थ इति भट्टाः । मदनरत्ने पुष्यस्य च माघस्य वेत्यर्थ उक्तस्तत्र ।
हेमाद्रिविरोधात् । तत्र हि माघ एवोक्तः । तथा—'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ
कदाचन' । इति । इदमर्धमन्यनिबन्धेष्वभावाच्चिर्णयामृतमात्रोक्तेर्निर्मूलमेव । तेन
हेमाद्र्यादिमते रात्रावर्धोदयो भवत्येव । केचित्तु—'किंचिदूनो महोदयः' इत्याहु-
स्तन्निर्मूलम् । हेमाद्रौ मदनरत्ने च स्कान्दे—'माघामायां व्यतीपाते आदित्ये विष्णु-
दैवते । अर्धोदयं तदित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समम्' ॥ तत्रैव 'माघमासे कृष्णपक्षे
पंचदश्यां रवेर्दिने । वैष्णवेन तु ऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे' ॥ व्रतं कुर्यादित्यग्रेऽन्वयः ।
तत्रैव 'ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णीः पलसंख्यया । प्रतिमास्तु प्रकर्तव्यास्तदर्धेन द्विजो-
त्तम ॥ सार्धं शतत्रयं शम्भोर्द्रोणानां तिलपर्वतः । कर्तव्यौ पर्वतौ विष्णुरुद्रयोः पूर्वसं-
ख्यया' ॥ शम्भुरत्र ब्रह्मा । 'शय्यात्रयं ततः कुर्यादुपरकरसमन्वितम्' ॥ तिलैर्होमं
कृत्वा प्रतिमां दद्यादित्युक्तं स्कान्दे—'अर्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गंगासमं जलम् । शुद्धा-
त्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसंमिताः । यत्किंचिदीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम्' ॥
इति ॥

अत्र दानविशेषो निर्णयामृते स्कान्दे—'चतुःषष्टिपलं मुख्यममत्रं तत्र कारयेत् ।
चत्वारिंशत्पलं वाथ पंचविंशतिरेववा' ॥ अमत्रं पात्रम् । तच्च कांस्यमयमित्युक्तं तत्रैव
'एवं सुघटितं कार्यं कांस्यभाजनमुत्तमम्' । इति । तथा 'निधाय पायसं तत्र पद्म-
मष्टदलं लिखेत् । पद्मस्य कर्णिकायां तु कर्षमात्रं सुवर्णकम् ॥ तदभावे तदर्धं वा
तदर्धं वापि कारयेत् । भूमौ तु तण्डुलैः शुद्धैः कृत्वाष्टदलमुत्तमम् ॥ अमत्रं स्थापये

१—वस्तुतस्तु 'दिवैव योगः शस्तोऽयमुषःकालेऽपि वा यदि । न तु रात्रौ स विज्ञेयो नैर्धर्मपुरा-
यणैः' ॥ इति नागरखण्डाद्रात्रौ योगो निर्मूल एवेति नव्याः । इति टीका ।

तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । तेषां पूजा ततः कार्या श्वेतमाल्यैस्तु शोभनैः ॥ वस्त्रादिभि-
रलंकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् । मन्त्रस्तु-‘सुवर्णपायसामत्रं यस्मादेतन्नयीमयम् ।
आपत्तेस्तारकं यस्मात्तद् गृहाण द्विजोत्तम । समुद्रमेखलां पृथ्वीं सम्यग्दातुश्च यत्फ-
लम् । तत्फलं लभते मर्त्यः कृत्वेदं दानमुत्तमम्’ ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते
निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे पौषमासः ॥

अथ माघस्नानम् । तत्र विष्णुः-‘तुलामकरमेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत् ।

हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघस्नाने महाफलम्’ ॥ इति सौरमासः उक्तः ।
माघस्नानम् ।

ब्राह्मे तु सावन उक्तः ॥ ‘एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समार-
भेत् । द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा शुक्लपक्षे समापनम्’ ॥ इति । पाद्मेपि-‘पौषस्यै-
कादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः । मासमात्रं निराहारस्त्रिकालं स्नानमाचरेत् ॥
त्रिकालमर्चयेद्विष्णुं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः । माघस्यैकादशीं शुक्लां यावद्विद्याधरोत्तम’ ॥
इति । त्रिकालस्नानं मासोपवासविषयम् । निराहार इत्युक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदये त्व-
न्यथोक्तम् । विष्णुः-‘दर्श वा पौर्णमासीं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत् । पुण्यान्यहानि
त्रिंशत् मकरस्थे दिवाकरे’ ॥ इति । अत्र दर्शमिति शुक्लादिमुख्यचान्द्राभिप्रायेण ।
अयं तु पक्षो नेदानीं प्रचरति ॥

अत्राधिकारिणो भविष्ये-‘ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । बाल-
वृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः ॥ स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम् ॥’
पाद्मे-‘सर्वधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप’ । ब्राह्मे-‘उष्णोदकेन वा स्नान-
मशक्ते सति कुर्वते । दृढेषु सर्वगात्रेषु उष्णोदं न विशिष्यते’ ॥ वैष्णवाभृते गौडनि-
बन्धे च स्कान्दे-‘पौष्यां तु समतीतायां यावद्भवति पूर्णिमा । माघमासस्य तावद्धि
पूजा विष्णोर्विधीयते ॥ पितृणां देवतानां च मूलकं नैव दापयेत् । ब्राह्मणो मूलकं
मुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ अन्यथा याति नरकं क्षत्रविद्शूद्र एव च । वर्जनीयं

प्रयत्नेन मूलकं मदिरोपमम्’ ॥ यदा तु माघो मलमासो भवति तदा
माघे मलमासे ।

काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वये स्नानं तन्नियमाश्च कार्याः ।
मासोपवासचान्द्रायणादि तु मलमास एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम् । ‘निय-
तत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत् । मलिने मासोपवासव्रतम्’ । इति । मासो-
पवासपदं चान्द्रायणादेरुपलक्षणम् ॥

स्नानारम्भे च मन्त्रो विष्णुनोक्तः-‘तत्र चोत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् ।
माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येहं देव माधव ॥ तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति संकल्प्य
चेतसि’ ॥ इति । प्रत्यहं मन्त्रश्च पाद्मे-दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय
च । प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम् ॥ मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दा-
च्युत माधव । स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नाया-

न्मौनसमन्वितः' । इति । प्रत्यहं सूर्यायार्घ्यम् । मन्त्रस्तु पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे-‘सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा' ॥ इति ॥

स्नानकालश्च सूर्योदयः । त्रिस्थलीसेतौ-‘मकरस्थे खौ यो हि न स्नात्यभ्युदिते खौ' । इति । ‘माघमासे रटन्त्यापः किंचिदभ्युदिते खौ' । इति च पाद्मवचनात् । ‘संप्राप्ते माघमासे तु तपस्विजनवल्लभे । क्रोशन्ति सर्ववारीणि समुद्रच्छति भास्करे ॥ पुनीमः सर्वपापानि त्रिविधानि न संशयः' । इति नारदीयोक्तेः । ‘यो माघमास्युषसि सूर्यकराभितप्ते स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे । उद्धृत्य सप्तपुरुषान् पितृमातृवंश्यान् स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोसौ' ॥ इति भविष्योत्तरवचनाच्च । ब्राह्मे त्वरुणोदय उक्तः । ‘अरुणोदये तु संप्राप्ते स्नानकाले विचक्षणः । माघवांग्रियुगं ध्यायन् यः स्नाति सुरपूजितः ॥' इति । तथा ‘अरुणोदयमारभ्य प्रातः कालावधि प्रभो । माघस्नानवतां पुण्यं क्रमात्तत्रावधारणा ॥ उत्तमं तु सनक्षत्रं मध्यमं लुप्ततारकम् । सवितर्युदिते भूप ततोहीनं प्रकीर्तितम्' । इति । तेनात्र शक्यपेक्षया व्यवस्था । इदं च स्नानं प्रयागेऽतिप्रशस्तम् । ‘काश्याः शतगुणं प्रोक्तं गङ्गायमुनसंगमे । सहस्रगुणिता सापि भवेत् पश्चिमवाहिनी ॥ पश्चिमाभिमुखी गङ्गा कालिद्या सह संगता । हन्ति कल्पकृतं पापं सा माघे नृप दुर्लभा' ॥ इत्यादि पाद्मादि-वचनेभ्यः । विस्तरस्तु मत्पितामहकृतप्रयागसेतौ ज्ञेयः । ब्राह्मे-‘यत्र कुत्रापि यो माघे प्रयागस्मरणान्वितः । करोति मज्जनं तीर्थे स लभेद्वाङ्मज्जनम्' ॥ तथा समुद्रेऽप्यतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे-‘माघे मासि च यः स्नायाच्चैरन्तर्येण भावतः । पौण्डरीकफलं तस्य दिवसेदिवसे भवेत्' ॥ माघस्नानं काम्यमेवेति भट्टाः ॥ विष्ण्वादिवाक्ये सदावश्यशब्दान्नित्यत्वावगतेर्नित्यकाम्यमिति तु युक्तम् । मासपर्यन्तं स्नानासंभवे तु ज्यहमेकाहं वा स्नायात् । ‘महामार्घी पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम्' । इति लिङ्गात् । ‘अस्मिन् योगे त्वशक्तोपि स्नायादपि दिनत्रयम् । प्रयागे माघमासे तु ज्यहं स्नातस्य यत्फलम् ॥ नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि' । इति पाद्मादिवचनात् । अत्र मकरसंक्रमो रथसप्तमी माघी ज्यहमित्येकै । माघशुक्लदशम्यादीत्यन्ये । मकराद्यज्यह इत्यपरे । माघमासाद्यज्यह इति केचित् । त्रयोदश्यादीति बहवः । ‘महामार्घी पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम्' । इति पाद्मोक्तेः । एतस्यार्थवादत्वाद्यत्किंचिद्दिनत्रयमिति भट्टाः । तत्त्वं तु ‘संदिग्धेषु वाक्यशेषात्' इति न्यायात्रयोदश्या द्येवेति । प्रयागं विनापि पाद्मे-‘अस्मिन्योगे त्वशक्तोपि स्नायादपि दिनत्रयम्' । इति ।

माघस्नाने नियमास्तु नारदीये-‘न वह्निं सेवयेत् स्नातो ह्यस्नातोपि वरानने । होमार्थं सेवयेद्बह्निं शीतार्थं न कदाचन ॥ अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः ।

त्रिभागस्तु तिलानां हि चतुर्थः शर्करान्वितः । अनभ्यंगी वरारोहे सर्वमासं नयेद्व्रती ॥
तथा 'अप्रावृतशरीरस्तु यः कष्टं स्नानमाचरेत् । पदेपदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः' ॥
तथा 'शंखचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत् । वह्निं हुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाशनो भवेत् ॥
भूशय्याब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् । अशक्तो ब्रह्मचर्यादा स्वेच्छा सर्वत्र कथ्य-
ते' ॥ तथा 'तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी । तिलमुक् तिलदाता च षट्-
तिलाः पापनाशनाः' ॥ इति । प्रयागासंभवे काश्यां दशाश्वमेधोत्तरस्थप्रयागतीर्थे स्ना-
नमुक्तं काशीखण्डे—'काश्युद्भवे प्रयागे ये तपसि स्नान्ति मानवाः । दशाश्वमेधजनितं
फलं तेषां भवेद् ध्रुवम्' ॥ इति ।

स्नानोत्तरं मदनपारिजाते विष्णुः—'काष्ठमौनान्नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।
अवश्यमेव कर्तव्यं माघस्नानमिति श्रुतिः' ॥ भविष्ये—'तैलमामलकाश्चैव तीर्थं देयास्तु
नित्यशः । ततः प्रज्वालयेद्बहिं सेवनार्थं द्विजन्मनाम् ॥ एवं स्नानावसाने तु भोज्यं देयम-
वारितम् । भोजयेद्द्विजदांपत्यं भूषयेद्ब्रह्मभूषणैः ॥ कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि
च । चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटास्तथा ॥ उपानहौ तथा गुप्तमोचकौ पापमोचकौ ।
अनेन विधिना दद्यान्माधवः प्रीयतामिति' ॥ पाद्मे—'भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलसम-
न्वितम्' ॥ तथा—'अन्नं चैव यथाशक्त्या देयं माघे नराधिप । सुवर्णरक्तिकामात्रं दद्या-
द्देवदे तथा' ॥ माघान्ते तु विशेषो नारदीये—'माघावसाने सुभगे षड्सं भोजनं स्मृ-
तम् । सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः ॥ दंपत्योर्वाससी सूक्ष्मे सप्तधान्यसमन्वि-
ते । त्रिंशत्तु मोदका देयाः शर्करातिलसंयुताः' ॥ इति । अत्र 'एकादशीविधानेन व्रतस्यो-
द्यापनं तथा' । इति । पाद्मवचनात् पूर्वेद्भि उपवासपूजनादि कृत्वा परेऽद्भि तिलचवर्ज्यै-
रष्टोत्तरशतं होमं कृत्वा 'सवित्रे प्रसवित्रे च—' इति पूर्वोक्तं मन्त्रमुक्त्वा । 'दिवाकर जग-
न्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते । परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते' ॥ इति समापये-
दिति संक्षेपः ॥

मकरसंक्रान्तौ हेमाद्रिमते परतः चत्वारिंशद् घटिकाः पुण्याः । 'त्रि-
शत्कर्काटके नाड्यो मकरे तु दशाधिकाः' । इति ब्रह्मवैवर्तात् । मा-
धवमते तु विंशतिः । 'त्रिंशत् कर्काटके पूर्वा मकरे विंशतिः पराः' । इति बृद्धवसिष्ठो-
क्तेः ॥ यदा तु सूर्यास्तात् पूर्वं संक्रांतिर्भवति, तदोभयमते पूर्वमेव पुण्यकालः । रात्रौ तु
प्रदोषे निर्शाथे वा मकरसंक्रमे माधवमते द्वितीयदिन एव पुण्यम् । 'यद्यस्तमयवेलाय
मकरं याति भास्करः । प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेहनि' ॥ इति बृद्धगार्ग्य-
वचनात् । अस्तमयं प्रदोषः । प्रदोषे पूर्वात्रे ॥ 'कार्मुकं तु परित्यज्य श्वषं संक्रमते रविः
प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि' इति भविष्योक्तेश्च ॥ 'तदाभोगः परेऽहनि' इति
हेमाद्रौ पाठः । कालादर्शनिर्णयामृतमदनपारिजातादयोप्येवमूचुः । दा-

क्षिणात्याश्चैतदेवाद्वियन्ते । यत्तु हेमाद्रिणाद्यो वाशब्दो यथार्थे द्वितीयस्तथार्थे । यथा प्रदोषे पूर्वद्युस्तथार्धरात्रे परेऽह्नीत्युक्तम् । तस्मै नमोस्तु । तेन परेऽह्नि पुण्यं वक्तुं प्रदोषे इति दिनद्वये पुण्यनिरासार्थमर्धरात्रग्रहणम् । हेमाद्रिस्मृत्यर्थसारानन्तभट्टादिमते तु निशीथात् पूर्वं पश्चाच्च संक्रान्तौ पूर्वदिने परदिने वा पुण्यम् । 'धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा । पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमणं यदा ॥ दिनान्ते पश्चानाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः । उदयेपि तथा पंच दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ' इति स्कान्दवचनात् । पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभिन्नविषयम् । पूर्वोक्तवचोविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् । 'षडशीतिमुखेऽतीति अतीति चोत्तरायणे' । इत्यादिविरोधाच्च तेन पूर्वैकवाक्यतयायमर्थः । रात्रौ पूर्वभागे मकरसंक्रमे परेऽह्नि उदये पंच नाड्यः पुण्याः । रात्रावपरभागे कर्कसंक्रमे पूर्वदिनान्ते पश्च नाड्य इति । एवं सर्वेषामविरोधः । मकरे सामान्येन परदिने पुण्यत्वेपि पुण्यातिशयार्थमिदम् । यत्तु देवल्यज्ञपाश्वर्यौ । 'आसन्ने संक्रमं पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः । रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्यथ नो दिवा' ॥ इति । अत्र माधवः । अयने दिवा जाते तदर्थं पुण्यम् । कर्के पूर्वं मकरेन्त्यम् । एतन्मध्यंदिनायतपरमिति । हेमाद्रिस्तु रात्रौ विषुवत्यासन्नदिनार्धं पुण्यम् । अयने त्वासन्नदिनं पुण्यम् । दिने इति पाठे उभयत्र दिनार्धं पुण्यमित्याह । एतदेवोक्तं दीपिकायाम्—'अथायनत्रयः पश्चान्निशीथाद्भवेद्यत्नासन्नमहस्तदर्थमथवापुण्यम्' । इति । तत्त्वं तु आसन्नसंक्रममित्यस्य विषुवत्प्रेवान्वयः । अयने रात्रौ सति दिने पुण्यम् । कस्मिन्नित्यपेक्षायां कर्के पूर्वेऽह्नि मकरे परेऽह्नि इति वाक्यान्तरवशादर्थे उच्यमाने न कोपि विरोधः । यत्वनन्तभट्टः—'अथ संक्रमणं भानोर्निशीथात् प्राग् यदा भवेत् । अयनं विषुवं तत्र प्राग्दिनान्तिमनाडिकाः ॥ पश्च पुण्यतमाः पश्चान्निशीथाच्चेद्भवेत्तथा । आद्याः परदिनस्यापि तद्वदित्येष निर्णयः ॥ ' इति । अपराकर्केऽप्येवम् । 'अस्तं गते यदा सूर्ये झषं याति दिवाकरः । प्रदोषे वार्धरात्रे वा तदा पुण्यं दिनद्वयम्' ॥ इति बौधायनवचनाद्दिनद्वयं वा पुण्यकालः । 'तदा पुण्यं दिनान्तरम्' इति मदनरत्ने पाठः । गुर्जरप्राच्योदीच्यास्त्विदमेवाद्वियते । अत्रापि पूर्ववद्व्याख्येयम् । तिथितत्त्वादयो गौडग्रंथास्तु प्रदोषार्धरात्रिभिन्ने रात्रेः पूर्वभागे पूर्वदिने परभागे च परदिने पुण्यमन्यसंक्रान्तिवत् विशिष्य तयोर्निर्देशात् । प्रदोषश्च 'प्रदोषोस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते' । इति वत्सोक्त इत्याहुस्तत्र । 'अस्तं गते' इति त्रितयवैयर्थ्यापत्तेः । अतः प्रदोषपदेन तद्विज्ञैव रात्रिरुच्यते । अत एव 'यावन्नोदयते रविः' इति वृद्धगार्ग्यादिभिर्दक्षिणायने पूर्वरात्रौ संक्रमे पूर्वदिनमुक्तम् । वत्सोक्तिरप्यध्ययनादिपरा । इह तु त्रिमुहूर्त एव प्रदोषः ।

मकरे दानविशेषो हेमाद्रौ स्कांदे—'धेनुं तिलमयीं राजन् दद्याद्यश्चोत्तरायणे । सर्वान् कामानवाप्नोति विन्दते परमं सुखम्' ॥ विष्णुधर्मे—'उत्तरे त्वयने विप्रा वस्त्रदानं

महत्फलम् । तिलपूर्णमनङ्गाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते ॥ ' इति । शिवरहस्येपि-
'तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्धर्तनं शुभैः । तिला देयाश्च विप्रेभ्यः सर्वदैवोत्तरायणे ॥
निलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवगृहे शुभाः' । कल्पतरौ कालिकापुराणे-'होमं तिलैः
प्रकुर्वीत सर्वदैवोत्तरायणे । तान् यो देवाय विप्रेभ्यो हाटकेन समं ददेत् ॥ उत्तरायण-
मासाद्य नरः कस्मात्स शोचति' । तथा । मकरे रात्रावपि श्राद्धादि भवतीत्युक्तं प्राक् ॥

माघामायां योगविशेषोर्धोदयः प्रागेवोक्तः । माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणमुक्तं
हमाद्रा यमेन-'अनर्काभ्युदिते काले माघकृष्णचतुर्दशी । स्नातः
सतप्य तु यम सर्वपापैः प्रमुच्यते' ॥ इति ॥

माघकृष्णा १४

माघशुक्लचतुर्थी तिलचतुर्थी । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । 'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु
नक्तव्रतपरायणः । ये त्वां हुंढेर्चयिष्यन्ति तेर्च्याः स्युरसुरद्रुहाम्' ॥ इति काशी-
खण्डात् । माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन् काले उपोषितः । अर्चयित्वा
तु यो देवि जागरं तत्र कारयेत्' ॥ इति त्रिस्थलीसेतौ लैङ्गाच्च ।

मा० शु० ४

इयमेव कुन्दचतुर्थी सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । 'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु कुन्दपुष्पैः
सदाशिवम् । संपूज्य यो हितः काशीं समाप्नोति श्रियं नरः' ॥ इति कालादर्शं
कौर्मोक्तेः ॥

माघशुक्लपञ्चमी श्रीपञ्चमी । तदुक्तं हेमाद्रौ वाराहे-'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु
वरमाराध्य च श्रियः । पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यात्समृद्धये' ॥
श्रीपञ्चमी । इयं माधवमते पूर्वा । हेमाद्रिमते परा । चैत्रशुक्ले श्रीपञ्चमीति

दिवोदासः ॥

माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमी । सा अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या । 'सूर्यग्रहणतुल्या तु
शुक्ला माघस्य सप्तमी । अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम्' ॥
रथसप्तमी । इति चन्द्रिकायां विष्णुवचनात् । 'अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघ-
स्य सप्तमी । प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा' ॥ इति वचनाच्च । यत्तु दिवो-
दासीये-'अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रिर्महाभरः । द्वादशी वत्सपूजायां सुखदा
प्राग्युता सदा' ॥ इति षष्ठीयुतत्वमुक्तम् । तद्यदा पूर्वोद्धि घटिकाद्वयं षष्ठीसप्तमी च
परेद्युः क्षयवशादारुणोदयात् पूर्वं समाप्यते तत्परं ज्ञेयम् । तत्र षष्ठ्यां सप्तमीक्षयं

१ एवं माघशुक्लपञ्चम्यां रतिकामपूजादिर्वसन्तोत्सवः कार्यः । 'माघमासे सुरश्रेष्ठ शुक्लायां पञ्च-
मीतिथौ । रतिकामौ तु संपूज्य कर्तव्यः सुमहोत्सवः ॥ दानानि च प्रदेयानि तेन तुष्यति माधवः' ॥
इति पुराणसमुच्चयात् । मध्याह्नः कर्मकालः पूजाव्रतत्वादिति टीका ।

प्रवेश्यारुणोदये स्नानं कार्यम् । मदनरत्ने भविष्योत्तरे—‘माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा । कुर्यात्स्नानार्घ्यदानाभ्यामायुरारोग्यसंपदः’ ॥ अत्र विधि-
र्भविष्ये—‘स्नात्वा षष्ठ्यामेकभुक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् । रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम् ॥ तथा जलं प्रक्रम्य ‘न केन चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समा-
चरेत् । सौवर्णे राजते पात्रे भक्त्यालाबुमयेथ वा ॥ तैलेन वर्तिर्दातव्या महारजन-
रञ्जिता’ ॥ महारजनं कुसुम्भम् । ‘समाहितमना भूत्वा दत्त्वा शिरसि दीपकम् ।
भास्करं हृदये ध्यात्वा इमं मंत्रमुदीरयेत् ॥ नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये
नमः । वरुणाय नमस्तेस्तु हरिवास नमोस्तु ते ॥ जले परिहरेद्दीपं ध्यात्वा संतर्प्य
देवताः’ । इति । ‘चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् । मध्ये शिवं सपत्नीकं
प्रणवेन च संयुतम्’ ॥ पूर्वादिदलेषु रविभानुविवस्वद्भास्करसवित्रकंसहस्रकिरणसर्वा-
त्मकान् संपृज्य गृहं गच्छेदिति । स्नानमन्त्रश्च काशीखण्डे—‘यद्यज्जन्मकृतं पापं
मया सप्तसु जन्मसु । तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ॥ एतज्जन्मकृतं
पापं यच्च जन्मान्तराजितम् । मनोवाकायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः ॥ इति सप्तविधं
पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके ॥ सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि ॥ एतन्मन्त्रत्रयं
जप्त्वा स्नात्वा पादोदके नरः । केशवादित्यमालोक्य क्षणान्निष्कलुषो भवेत्’ ॥

दिवोदासीये मदनरत्ने च इक्षुदण्डेन जलं चालयित्वा सप्तार्कपत्राणि बदरी-
पत्राणि च शिरसि निधाय पूर्वोक्तिर्मन्त्रैः स्नात्वा तिलपिष्टमयापूपैः हेमं सूर्यं संपूज्य
विप्राय दद्यात् । अर्घ्यमन्त्रो मदनरत्ने—‘सप्तसप्तिवह प्रीत सप्तलोकप्रदीपन । सप्तमी-
सहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर’ ॥ ततः ‘जननी सर्वलोकानां सप्तमी सप्तसप्तिके । सप्त-
व्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमण्डले’ ॥ इति प्रार्थयेत् । सौरागमे—‘अर्कपत्रैः सबदरै-
र्दूर्वाक्षतसचन्दनैः । अष्टाङ्गविधिना चार्घ्यं दद्यादादित्यतुष्टये’ । अत्र दानविशेषो
मदनरत्ने भविष्ये—‘ताम्रपात्रे यथाशक्त्या मृन्मये वाथ भक्तिमान् । स्थापयेत्तिल-
पिष्टं च सघृतं सगुडं तथा ॥ काञ्चनं तालकं कृत्वा अशक्तस्तिलपिष्टजम् । संछाद्य
रक्तवस्त्रेण पुष्पैर्धूपैरथार्चयेत्’ ॥ दानमन्त्रस्तु—‘आदित्यस्य प्रसादेन प्रातःस्नानफ-
लेन च । दुष्टदौर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम् ॥’ तालकं कर्णाभरणमिति तत्रै-
वोक्तम् । दीपमात्रमिति हेमाद्रौ तत्रैव भविष्योत्तरे—‘एवंविधं रथवरं रथवाजियुक्तं
हेमं च हेमशतदीधितिना समेतम् । दद्याच्च माघसितसप्तमिवासरे यः सोसंगचक्रगति-
रेव महीं भुनक्ति’ ॥ इयं मन्वादिपि । इयं च शुक्लपक्षस्थत्वात् पौर्वाहिकी ग्राह्या ।
यदा माघो मलमासो भवति तदा मासद्वये मन्वादिश्राद्धं कुर्यात् । ‘मन्वादिकं पैतृकं च
कुर्यान्मासद्वयेपि च’ । इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ॥

माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी । तदुक्तं हेमाद्रौ पात्रे—‘माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम् । श्राद्धं च ये नरः कुर्युस्ते स्युः संततिभागिनः’ ॥
भीष्माष्टमी । इति । भारतेपि—‘शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् ।

संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति’ ॥ इति धवलनिबन्धे स्मृतिः—‘अष्टम्यां तु सिते पक्षे भीष्माय तु तिलोदकम् । अन्नं च विधिवद्दद्यात् सर्वे वर्णा द्विजातयः’ ॥ सर्ववर्णोक्तेः ‘द्विजातयः’ इति संबोधनम् । तर्पणमन्त्रस्तत्रैव । ‘भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः । आभिरद्भिरवाप्नोति पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् ॥ वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च । अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मिणे ॥ वसूनामवताराय शंतनोरात्मजाय च । अर्घ्यं ददामि भीष्माय आवालब्रह्मचारिणे’ ॥ इति । एतज्जीवत्पितृकस्यापि भवति । ‘जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः’ । इति पात्रोक्तेरिति जीवत्पितृकनिर्णये पितृचरणैरुक्तम् ॥ एतच्चापसव्येन कार्यमिति दिवोदासीये । अत्र श्राद्धं काम्यं तर्पणं च नित्यम् । ‘ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दंष्टुर्भीष्माय नो जलम् । संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम’ ॥ इति मदनरत्ने वचनात् । माघशुक्ला-

भीष्मद्वादशी ।

द्वादशी । भीष्मद्वादशी ‘त्वया कृतमिदं वीर तव नाम्ना भविष्यति । सा भीष्मद्वादशीत्येवा सर्वपापहरा शुभा’ ॥ इति हेमाद्रौ

पात्रवचनात् । इयं पूर्वयुता युग्मवाक्यात् ॥ माघी पूर्णिमा परेत्युक्तं प्राक् । तथा

माघी १५ ।

हेमाद्रौ पात्रे—‘माघस्थयोश्च जीवेन्द्रार्महामाघीति कथ्यते’ । तत्रैव ज्योतिषे—‘मेघपृष्ठे तथा सौरिः सिंहे च गुरुचन्द्रमाः । भास्करः

श्रवणक्षेत्रं च महामाघीति सा स्मृता’ ॥ तथा भविष्ये—‘वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः । स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन’ ॥ तथा—‘तिलपात्राणि देयानि कञ्जुकाः कम्बलास्तथा’ । इति ॥

माघपूर्णिमानन्तराष्टमी माघी अष्टका तन्निर्णयः । पूर्वैद्युरन्वष्टकानिर्णयश्च पूर्वमुक्तः । मलमासे चैता न भवन्तीत्येतत्सर्वं मार्गशीर्षप्रकरणेऽभिहितम् । तथा चतसृष्वष्टकास्वशक्तावेषा आवश्यकी । ‘हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा’ इत्याश्वलायनाक्ते तथा माघाष्टकां प्रक्रम्य—‘तामेकाष्टकेत्याचक्षते’ इत्यापस्तम्बवचनाच्चेत्यादि प्रयोगपारिजाते ज्ञेयम् ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे माघमासः समाप्तः ॥

कुम्भसंक्रान्तिः । कुम्भे षोडश घटिकाः पुण्याः । शेषं प्राग्वत् । फाल्गुनकृष्णा-
सीताष्टमी । ष्टम्यां विशेषः कल्पतरौ—‘फाल्गुनस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां

१—माघशुक्लद्वादशीति माघशुक्लैकादशत्यर्थः । वाक्ये द्वादशीपदस्यैकादश्यर्थत्वादिति टीका ।

महीपते' ॥ इत्युपक्रम्य । 'जाता दाशरथेः पत्नी तस्मिन्नहानि जानकी । उपोषितो
रघुपतिः समुद्रस्य तटे तदा ॥ रामपत्नी च संपूज्या सीता जनकनन्दिनी' ॥

फाल्गुनकृष्णचतुर्दशी शिवरात्रिः । सा च केषुचिद्वचनेषु प्रदोषव्यापिनी ग्राह्ये-
त्युक्तम् । केषुचिन्निशीथव्यापिनी । तत्राद्या माधवीये- 'त्रयोदश्य-
शिवरात्रिः । स्तगे सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु । भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं
चरेत्' ॥ स्मृत्यन्तरेपि । 'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिश्चतुर्दशी । रात्रौ जाग-
रणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत्' ॥ अत्र प्रदोषो रात्रिः । उत्तरार्धं तस्या हेतुत्वोक्तेः ।
कामिकेपि- 'आदित्यास्तमये काले अस्ति द्वेधा चतुर्दशी । तद्रात्रिः शिवरात्रिः
स्यात्सा भवेदुत्तमोत्तमा' ॥ इति । द्वितीयापि तत्रैव नारदसंहितायाम्- 'अर्धरात्रि-
युता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी । शिवरात्रिव्रतं तत्र सोऽवमेधफलं लभेत्' ॥ स्मृत्य-
न्तरेपि- 'भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा । शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं
तथा' ॥ इति ॥ ईशानसंहितायाम्- 'माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि ।
शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः' ॥
इति । 'अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । तत्तिथोवव कुर्वीत शिवरात्रिव्रतं व्रती ॥
'नार्धरात्रादयश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । नैव तत्र व्रतं कुर्यादायुरैश्वर्यहानितः' ॥
अर्धरात्रश्च द्वितीययामान्त्यतृतीययामाद्यवटीद्वयरूप इति माधवः । वचनं तूक्तं प्राक् । एवं
सति पूर्वेंद्युरेवोभयव्याप्तौ पूर्वैव । 'त्रयोदशी यदा देवि दिनभक्तिप्रमाणतः । जागरे शिवरात्रिः
स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी' ॥ इति स्कांदोक्तेः । दिनभुक्तिरस्तमयः । 'जयन्ती शिवरात्रिश्च
कार्ये भद्रजयान्विते' । इति स्कान्दाच्च । दिनद्वये निशीथव्याप्तौ हेमाद्रिमते पूर्वा ।
'अर्धरात्रात् पुरस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः'
इति पाञ्चवचनात् । मदनरत्नेष्वेवम् । गौडा अप्येवमाहुः ।

निर्णयामृते तु सर्वापि शिवरात्रिः प्रदोषव्यापिन्येव । अर्धरात्रवाक्यानि कैमु-
तिकन्यायेन प्रदोषस्तावकानीत्युक्तं तत्र । अर्धरात्रस्य पूर्वं कर्मकालत्वोक्तेः । परदिन-
प्रदोषनिशीथोभयव्याप्तिसत्त्वात्परैवेति तु माधवः । इदमेव च युक्तं प्रतीमः । परेद्युः
प्रागुक्तार्धरात्रस्यैकदेशव्याप्तौ पूर्वेंद्युः संपूर्णतद्व्याप्तौ च सत्येपि पूर्वेंद्युः संपूर्णव्याप्तेः
पूर्वैव । 'व्याप्यार्धरात्रं यस्यां तु लभ्यते या चतुर्दशी । तस्यामेव व्रतं कार्यं मत्प्रसा-
दार्थिभिर्नरैः ॥ तदूर्ध्वाधोनिता भूता सा कार्या व्रतिभिः सदा' ॥ इति माधवधृते-
शानसंहितोक्तेः । पूर्वेंद्युर्निशीथस्य परेद्युः प्रदोषस्येत्येकैकव्याप्तौ तु पूर्वैव । जयायो-
गस्य प्राशस्त्यात् । तच्चोक्तं नागरखण्डे- 'माघफाल्गुनयोर्मध्ये असिता या चतुर्दशी ।
अनङ्गेन समायुक्ता कर्तव्या सा सदा तिथिः' ॥ इति । पाञ्चे- 'अर्धरात्रात् परस्ता-
च्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः' ॥ इति ।

स्कान्देऽपि-‘भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा । शिवरात्रिर्त्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा’ ॥ इति । ‘महतामपि पापानां दृष्टा वै निष्कृतिः परा । न दृष्टा कुर्वतां पुंसां कुहूयुक्तां तिथिं शिवाम्’ ॥ इति स्कान्दे दर्शयोगस्य निन्दितत्वाच्च । यदा चतुर्दशी पूर्वद्युर्निशीयादूर्ध्वं प्रवृत्ता परेद्युश्च निशीयादर्वागेव समाप्ता तदा परेद्युरेकव्याप्तिसत्त्वात् परैव । ‘माघासिते भूतदिनं हि राजन्नुपैति योगं यदि पञ्चदश्याः । जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्याच्छिवस्य रात्रिं प्रियकृच्छिवस्य’ ॥ इति वचनात् । एवं दिनद्वये प्रदोषव्याप्यभावे निशीथव्याप्तिसत्त्वात्पूर्वैव । तेन दिनद्वये निशीथव्याप्तौ प्रदोषव्याप्त्या निर्णयः । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ निशीथेन निर्णयः । एकैकव्याप्तौ तु निशीथेन निर्णय इति । इयं च रविभौमसोमवारेषु शिवयोगे चातिप्रशस्ता । हेमाद्रौ तीर्थखण्डे लैङ्गे-‘फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः । कृत्तिवासेश्वरं लिंगमर्चयन्ति शिवं शुभे ॥ ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम्’ ॥

शिवरात्रिपारणानिर्णयः । शिवरात्रिपारणे तु विरुद्धवाक्यानि दृश्यन्ते । स्कान्दे-‘कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वावेदैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्’ ॥ इति ॥ तिथिमध्येऽपि पारणं स्कान्दे उक्तम् ॥ ‘उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम् । कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते वाथ वा न वा ॥ ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै । संस्नातानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते ॥ तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु । तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद्विना शिवचर्दशीम्’ ॥ इति अत्र यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तौ तदन्ते तदूर्ध्वगामिन्यां तु प्रातस्तिथिमध्य एवेति हेमाद्रिमाधवादयो व्यवस्थामाहुः । तत्र । ‘तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा’ ॥ इत्यादिसामान्यवचनैरेव व्यवस्थानिद्वेष्टुमयविधवाक्यवैयर्थ्यार्पितेः । वयं तु तिथ्यन्ते पारणं भवेदिति कृष्णाष्टम्यादिविषयमेव न तु शिवरात्रिविषयम् । तदुपादानं तु पूर्वयुतत्वमात्रकथनार्थम् । कथमन्यथा स्कान्दे एव शून्यहृदयवाक्यवत्तिथिमध्ये पारणविधानं घटते तस्मात् ‘विना शिवचतुर्दशीम्’ इति पर्युदस्तत्वाच्छिवरात्र्याः सर्वप्रकारेषु तिथिमध्य एव पारणेति ब्रूमः शिष्टाचारोप्येवमेव । दीपिकायां तु रात्रा वपि तिथ्यन्त एवोक्तम् । व्रततिथेरन्ते निशीथेपि वाऽश्रायादिति । मदनरत्नकालादर्शयोस्तु-‘सा ह्यस्तमयपर्यन्तं व्यापिनी चेत्परेहनि । दिवैव पारणं कुर्यात्पारणे नैव दोषभाक्’ ॥ इत्युक्तं तत्र । तिथिमध्ये पारणविधानान्निषेधे फलायोगाच्च । तिथ्यन्तानपेक्षणादोषाप्रसक्त्या चतुर्थपादासंगतेः । तेनेदं शिवरात्रिभिन्नव्रतपरं ज्ञेयम् ॥

इदं च व्रतं संयोगपृथक्कन्यायेन नित्यं काम्यं च । तथा च माधवीये स्कान्दे-‘परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिः परात्परम् । न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ॥

जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः' । इत्यकरणे प्रत्यवायश्रवणात् । 'वर्षेवर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता । शिवरात्रौ महादेवं नित्यं भक्त्या प्रपूजयेत्' ॥ इति वीप्साश्रुतेः । 'अर्णवो यदि वा शुष्येत् क्षीयते हिमवानपि । चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम्' ॥ इति वचनाच्च नित्यता । 'मम भक्तस्तु यो देवि शिवरात्रिमुपोषकः । गणत्वमक्षयं दिव्यमक्षयं शिवशासनम् ॥ सर्वान् भुक्त्वा महाभो गांस्ततो मोक्षमवाप्नुयात्' । इति स्कान्दात् । 'द्वादशाब्दिकमेतत्स्याच्चतुर्विंशान्दिकं तु वा' । इति तत्रैवैशानसंहितावचनात् काम्यता । तत्रैव 'शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् । आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥' अत्र जागरोपवासपूजाः समुदिताः । व्रतं न तु प्रत्येकम् समुदितानां फलसंबन्धात् । यत्तु 'अथवा शिवरात्रिं च पूजाजागरणैर्नयेत्' । तथा । 'अखंडितव्रतो यो हि शिवरात्रिमुपोषयेत् । सर्वान् कामानवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ कश्चित् पुण्यविशेषण व्रतहीनोपि यः पुमान् । जागरं कुरुते तत्र स रुद्रसमतां व्रजेत्' ॥ इत्यादिस्कांदं तदनुकल्पत्वादशक्तपरम् ॥

माघेतरप्रतिमासशिवरात्रिस्तु शिवरात्रिशब्दस्य माघकृष्णचतुर्दश्यामेव रूढत्वात् । 'माघमासस्य शेषे या प्रथमा फाल्गुनस्य च । कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता' ॥ इति हेमाद्रौ वचनाच्च । नायं निर्णयस्तत्रेति रात्रौ यामचतुष्टये पूजा विधानाद्यस्मिन् दिने अधिका रात्रिव्याप्तिः सा ग्राह्या । साम्ये तु पूर्व्वेति हेमाद्रिरुचिवांन् । वस्तुतस्तु प्रतिमासकृष्णचतुर्दश्यामपि 'सर्वकामप्रदं कृष्णचतुर्दश्यां शिवव्रतम्' इत्युपक्रम्य । चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम् । इति हेमाद्रौ कालोत्तरे शिवरात्रिशब्दप्रयोगात् । कौण्डपायिनामयनाग्निहोत्रे नैत्यकाग्निहोत्रधर्मा इव तद्धर्मप्राप्तिः स्यादेव । अतः प्रदोषनिशीयोभयव्याप्यैव निर्णय इति वयं प्रतीमः । अस्यास्मो हेमाद्रौ स्कान्दे—'आदौ मार्गशिरे मासि दीपोत्सवदिनेपि वा । गृहीयान्माघमासे वा द्वादशैवमुपोषयेत्' ॥ तथा 'दीपोत्सवे तथा माघे कृष्णा या तु चतुर्दशी । द्वादशेष्वपि मासेषु प्रकुर्यादिह जागरम् ॥ एवं द्वादशवर्षेषु द्वादशैव तपोधनान्' ॥ वर्येदिति शेषः । चतुर्दश वा विप्रान् आचार्यं च वृत्वा 'कुम्भोपरि न्यसेदेवमुमया सहितं शिवम् । सौवर्णेप्यथवा रौप्ये वृषभे संस्थितं शुभे' ॥ इत्युक्तम् । हैर्मां मूर्तिं संपूज्य

स्थिरं चरं वा लिंगं पञ्चामृतसहस्रशतपञ्चाशत्तदर्धान्यतरकुम्भैः संस्नाप्य उद्यापनविधिः ।

संपूज्य जागरं कृत्वा परेद्युस्तिलान् सहस्रं शतं वा हुत्वा विप्रेभ्यो वस्त्राणि द्वादश गाश्च दत्त्वा आचार्याय धेनुं शय्यां च दत्त्वा विप्रान् भोजयेदिति मदनरत्ने उक्तम् ॥

माघमावस्या युगादिः । तदुक्तम् । 'माघमासे त्वमावस्या' इति । अन्यत् प्राग्वत् । तथान्योपि विशेषो विष्णुपुराणे—'माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन । ऋक्षेण कालः स परः पितृणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ' ॥ इति ।

वारुणं शतभिषक् । इदं च कुम्भादित्ये ज्ञेयमिति हेमाद्रिः । भारते-‘काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन् भवेत्तु भूपाल तदा पितृभ्यः । दत्तं तिलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः’ ॥ इति ॥

फाल्गुनपौर्णमासी होलिका । सा च सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या । ‘सायाह्ने होलिकां कुर्यात् पूर्वाह्ने कीडनं गवाम्’ ॥ इति वचनादिति निर्णयामृते उक्तम् ।
होलिकानिर्णयः । ज्योतिर्निबन्धे तु-‘प्रतिपदभूतभद्रासु यार्चिता होलिका दिवा । संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति सा द्रुतम् ॥ प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पौर्णिमा फाल्गुनी सदा । तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे’ ॥ इति नारदवचनात् । प्रदोषव्यापिनीत्युक्तम् । हेमाद्रौ मदनरत्ने च भविष्ये-‘अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे । गोमयेनोपलिप्ते च सचतुष्के गृहाङ्गणे’ ॥ इत्यादिना तत्रैव तद्विधानाच्च । तेनेयं पूर्वविद्धा-‘श्रावणी दुर्गनवमी पूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिर्वेलेदिनम्’ । इति बृहद्यमब्रह्मवैवर्तोक्तेश्च । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परैव । पूर्वदिने भद्रासत्त्वात्तत्र च होलिकानिषेधात् । तदुक्तं निर्णयामृते मदनरत्ने च पुराणसमुच्चये-‘भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै । नगरस्य च नवेशा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।’ तथा-‘भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा । श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी’ ॥ तथा-‘दिनार्धात् परतोपि स्यात् फाल्गुनी पूर्णिमा यदि ॥ रात्रौ भद्रावसाने तु होलिका दीप्यते तदा’ ॥ इति यदा तु पूर्वदिने चतुर्दशी प्रदोषव्यापिना परदिने च क्षयवशात्सायाह्नात् प्रागेव पूर्णिमा समाप्यते तदा पूर्वदिने संपूर्णरात्रौ भद्रासत्त्वात्तत्र च तन्निषेधात् परेऽहनि प्रतिपद्येव कुर्यात् । ‘सार्धयामत्रयं वा स्यात् द्वितीयदिवसे यदा । प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा सा होलिका स्मृता ॥’ इति भविष्यवचनादिति निर्णयामृतकारः । मदनरत्नेष्वेवम् ॥ यत्तु-‘वह्नौ वह्निं परित्यजेत्’ इति भविष्ये । वह्नौ होलिकायां वह्निं प्रतिपदं वर्जयेदित्यर्थः । तदुक्तं भिन्नविषयमिति तत्रैवोक्तम् । अन्ये तु तस्यां भद्रामुखं त्यक्तेत्यर्थः । ‘प्रदोषव्यापिनी चेत्स्याद्यदा पूर्वदिने तदा ॥ भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम्’ ॥ इति नारदवचनात् । ‘निशागमे प्रपृ-

१-ब्राह्मे-‘फाल्गुनस्यापरे पक्षे कुम्भस्थे दिवसाधिपे । जीवे धनुषि योगे च शोभने रविवासरे ॥ पुष्यर्क्षे यदि संपूर्णा गोविन्दद्वादशी मता’ ॥ तिथितत्त्वे ‘फाल्गुने शुक्लपक्षे स्यात्पुष्यर्क्षे द्वादशी यदि । गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी ॥ गोविन्दद्वादशीं प्राप्यागच्छेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् । विनायासेन राजेन्द्र मुक्तः सायुज्यमाप्नुयात् ।’ अत्र श्रीगोविन्दं संपूज्योपवासं कुर्यात् । ‘उपोष्य च जगन्नाथं नमोऽर्च्यपुरुषोत्तमम्’ । इत्युक्तेः । गङ्गास्नाने मन्त्रः-पाद्मे-‘महापातकसंधानि यानि पापानि सन्ति वै । गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्वि’ ॥ इति टीका ।

ज्येत होलिका सर्वदा बुधैः । न दिवा पूजयेद्दण्डां पूजिता दुःखदा भवेत् ॥ इति दिवोदासीये वचनात् । 'यामत्रयोर्ध्वयुक्ता चेत्प्रतिपत्तु भवेत्तिथिः । भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होली मनीषिभिः' ॥ इति विद्याविनोदेभिधानाच्च भद्रामुखं विहाय पूर्वदिनं एव कार्येत्याहुः । भद्रामुखं तु 'नाड्यस्तु पञ्च वदनं गलकस्तथैका' इति रत्नमालोक्तं ज्ञेयम् । शिष्टाचारोप्येवमेव ।

अत्र चेच्चन्द्रग्रहणं तदा ततोर्वाङ् निशि भद्रावर्जपौर्णमास्यां होलिकादीपनम् । अथ परेऽहि ग्रस्तोदयस्तदा पूर्वदिने भद्रावर्ज रात्रौ चतुर्थयामे विष्टिपुच्छे वा होलिका कार्या । ग्रहोत्तरं प्रतिपत्सत्त्वात्तत्पूर्वं च दिवा होलानिषेधादिति दिवोदासचन्द्रप्रकाशौ । वस्तुतस्तु परदिने प्रदोषे पौर्णमासीसत्त्वे कर्मकालस्पर्शं चतुर्थयामादिगौणकालग्रहणे मानाभावाद्भद्राभावाच्च ग्रहणकाल एव होला कार्या । न च 'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्' ॥ इति निषेधात् कथं सूतके होलेति वाच्यम् । तस्योत्तरार्धशेषत्वात् । पूजामन्त्रस्तु—'अमृक्पाभयसन्त्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः । अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव' ॥ इति । (यत्तु वार्तिककारैर्होलिका आचारप्राप्तेत्युक्तम् । तत्र हेमाद्रचाद्युदाहृतभविष्यवचनान्यसिद्धानीति ? कृत्वा चिन्ता ज्ञेया । आत्यधिकरणवत्) । हुताशिनी मलमासे न भवति ॥ इयं मन्वादिरपि । सा तु पौर्वाह्निकी ग्राह्या । मलमासे सति मन्वादिश्राद्धं मासद्वये कार्यमित्युक्तं प्राक् । कृत्यचिन्तामणौ ब्राह्मे—'नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् । फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥'

'चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसन्तोत्सवः । सा चौदयिकी ग्राह्या । 'प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ' । इति भविष्योक्तेः । दिनद्वये तथात्वे पूर्वा । 'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । पूर्वविद्वैव कर्त्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः' ॥ इति वृद्धवसिष्ठवचनात् । अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—'चैत्रे मासि महाबाहो पुण्ये तु प्रतिपदिने । यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ॥ न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप' ॥ इति । तथा 'प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ । कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः ॥ वन्दयेद्धोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशान्तये' ॥ मन्त्रश्च—'वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ॥ अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव' ॥ इति । अत्र चूतकुसुमप्राशनमुक्तं नविधिः । तत्रैव पुराणसमुच्चये—'वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च । संप्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषोत्थ समाः सुखी स्यात्' ॥ मन्त्रस्तु 'चूत मग्न्यं वसन्तस्य माकन्द कुसुमं तव । सचंदनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये' ॥ इति ।

चैत्रामावास्या मन्वादिः । सा चापराह्णव्यापिनी ग्राह्या ।
चैत्रामावास्या । कृष्णपक्षस्थत्वात् । इति फाल्गुनमासः समाप्तः ॥

एवं निरूपितमिदं गहनं तु कालतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् ॥
तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोस्मि तेषु ॥ १ ॥

मया सद्वासद्वा यदिह गदितं मन्दमतिना
किमेतच्छक्यं बाध्यवसितुमपि स्वल्पमतिना ।
तदेवं यत्किञ्चिद्गदितमिह विख्यातमहिमा
प्रतापोयं सर्वो विकसति तु पित्रोश्चरणयोः ॥ २ ॥

यो भाट्टतन्त्रगहनार्णवकर्णधारः
शास्त्रान्तरेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता ॥
योत्र श्रमः किल कृतः कमलाकरेण

प्रीतोमुना तु सुकृती बुधरामकृष्णः ॥ ३ ॥

इति श्रीमन्नारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टसुतादिनकरभट्टानुजभट्टकमलाकरकृते

निर्णयसिन्धौ संवत्सरकृत्यानिरूपणं नाम द्वितीयपारिच्छेदः समाप्तः ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



॥ श्रीः ॥

अथ निर्णयसिन्धौ ।

तृतीयः परिच्छेदः पूर्वार्धम् ।

अथ प्रकीर्णकनिर्णयः ॥

श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकरसंज्ञितः ॥

निरूप्य तिथिकृत्यं तु प्रकीर्णं वक्तुमुद्यतः ॥ १ ॥

तत्रादौ संस्कारेषु गर्भाधानम् । तत्र प्रथमरजोदर्शने दुष्टमासग्रहणसंक्रमादिफलं
गर्भाधानम् । तत्र शान्त्यादि च पितृकृतं भट्टकृतप्रयोगरत्ने ज्ञेयम् । किञ्चित्तू-
च्यते । मदनरत्ने नारदः—‘अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि ॥

परिधस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ संध्यासूपप्लवे विष्ट्यामशुभं प्रथमार्त्तवम् ॥
रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी । पतिव्रता क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥
वैधव्यं सुतलाभश्च मैत्रं शत्रुविवर्द्धनम् । मित्रलाभः शत्रुवृद्धिः कुलर्द्धिर्बन्धुनाशनम् ॥
मरणं वंशवृद्धिश्च निराहारः कुलक्षयः । तेजश्च सुतनाशश्च कुलहानिस्तिथिक्रमात् ॥
गर्गः—‘सुभगा चैव दुःशीला बन्ध्या पुत्रसमन्विता । धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसंतान-
मोदिनी ॥ सुपुत्रा चैव दुष्पुत्रा पितृवैश्मरता सदा । दीना प्रजावती चैव पुत्राढ्या
चित्रकारिणी ॥ साध्वी पतिप्रिया नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी ॥ स्वकर्मनिरता हिंसा पुण्य-
पुत्रादिसंयुता । नित्यं धनचयासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता ॥ मूर्खा चाज्ञा पुण्यवती दस-
क्षादेः क्रमात्फलम् ॥’ नारदः—‘कुलीरवृषचापान्त्यन्त्युक्कन्यातुलाघटाः । राशयः
शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्त्तवे’ । गर्गः—‘सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद् दृढवस्त्रा पतिव्रता ॥
क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥ दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा ॥
नीलाम्बरधरा नारी पुष्पिता विधवा ततः ॥ वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात्
समाश्वेतकन्यकाश्चेति फलं स्यात् प्रथमार्त्तवे’ ॥

अथ स्त्रीसंसर्गवर्जनमाह वसिष्ठः—‘प्रभूतदोषे यदि दृश्यते तत् पुष्पं तदा
शान्तिकर्म कार्यम् । विवर्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमुत्तमोद्भि ॥’ ज्योति-
र्निबन्धे वसिष्ठः—‘आद्यतौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः कुयुक्पापवारा रिक्तामा-
काष्टषष्ठ्यः पितृपरसदने रात्रिसंध्यापराह्णाः । मिश्रोऽग्रा मूलतीक्ष्णं विवरमनरुणाल्पा-
धिकास्त्रंगराष्ट्रोत्पातः पापस्य लग्नं न सदरुणजरत्नीलरक्ताम्बरं च ॥ आद्यतौ दुर्भगा

१ ‘संमार्जनीकाष्ठतृणादिशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् । तल्पोपभोगे तपसि स्थिता
चेष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात्’ ॥ इति प्रथमे रजसि सर्वमिदमिति संस्कारमयूखे ।

नारी विष्कम्भे चेद्रजस्वला । वन्ध्या चैवातिगण्डे च शूले शूलवती भवेत् ॥ गण्डे तु पुंश्चली नारी व्याघाते चात्मघातिनी । वज्रे च स्वैरिणी प्रोक्ता पाते च पतिघातिनी ॥ परिधे मृतवन्ध्या च वैधृतौ पतिमारिणी ॥ शेषाः शुभावहा योगा यथानाम फलप्रदाः ॥

शान्तिमाह प्रयोगपारिजाते शौनकः—‘सार्तवानां तु नारीणां शान्तिं वक्ष्यामि शौनक । पञ्चमेहि चतुर्थे वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ तस्मिन्नहनि कर्तव्य ऋतुहोमो विधाननः । आचार्यं वरयेत्प्राज्ञो भुवनेश्वरितुष्टये ॥ होमार्थं च जपार्थं च वरयेद्विजो बहून् । यजमानो द्विजैः सार्धं शान्तिहोमं समाचरेत् ॥ गृहादीशानदिग्भागे देवतापूजनाय च ॥ द्रोणप्रमाणधान्येन व्रीहिराशित्रयं भवेत् । कुम्भत्रयं न्यसेद्राशौ तन्तुवस्त्रादिवेष्टितम् ॥ पूरयेत्तीर्थसलिलैः प्रतिकुम्भं पृथक्पृथक् । सूक्तेनाथ नवर्चेन प्रसुव आप इत्यथ । ऋचायाः प्रवतस्तद्द्रव्याय्या च ततः क्रमात् ॥ मध्यकुम्भे क्षिपेद्धान्यमौषधानि च हेम च ॥ ततश्च पञ्चरत्नानि गन्धपुष्पाक्षतादिकान् । औषधानि च वक्ष्यन्ते मुनिभिः शान्तिकारणात् ॥ उदुम्बरः कुशो दूर्वा राजीववटविल्वकाः । विष्णुक्रान्ताथ तुलसी बर्हिषं शंखपुष्पिका ॥ शतावर्यश्वगन्धा च निर्गुण्डी सर्षपद्रवम् । अपामार्गं पलाशश्च पनसो जीवकस्तथा ॥ प्रियंगवश्च गोधूमा व्रीहयोऽश्वत्थ एव च । क्षीरं दधि च सर्पिश्च पद्मपत्रं तथोत्पलम् ॥ कुरण्टकत्रयं गुंजा वचाभद्रकमुस्तकाः । द्वात्रिंशदौषधानीह यथासम्भवमाहरेत् ॥ मृत्तिकाश्चौषधादीनि तन्मन्त्रेण क्षिपेत् क्रमात् । कुम्भोपरि न्यसेत्पात्रं कांस्यं मृद्रेणुताम्रजम् ॥ भुवनेश्वरीं न्यसेत्तत्र इन्द्राणीं च पुरन्दरम् । जपेद्वायत्रीमाहोमाच्छ्रीसूक्तं च जपेत्ततः ॥ स्पृशन्वै दक्षिणं कुम्भं ऋत्विगेको जपेदथ । चत्वारि रुद्रसूक्तानि चतुर्मन्त्रोत्तराणि च ॥ संस्पृशन्नुत्तरं कुम्भं श्रीसूक्तं रुद्रसंख्यया । शन्न इन्द्राग्निसूक्तं च तत्रैव संस्पृशन्जपेत् ॥ कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं समाचरेत् । दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन धृतेन च ॥ तिसृभिश्चैव दूर्वाभिरेकैका चाहुतिर्भवेत् । अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥ गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम् । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा समुद्रादूर्मिसूक्ततः ॥ सन्ततामाज्यधारान्तां पूर्णाहुतिमथाचरेत् । अथाऽभिषेकं कुर्वीत प्रतिकुम्भस्थितोदकैः ॥ आपोहिष्ठेति नवभिः सूक्तेन च ततः परम् । इन्द्रो अङ्गत्वेनैव पावमानैः क्रमेण तु ॥ उभयं शृण्वच्चैनं स्वस्तिदाविश एकया । त्रैयम्बकेन मन्त्रेण जातवेदस एकया ॥ समुद्रज्येष्ठा इत्यादि त्रायन्तां च त्रिभिः

१--प्रथमदिननिर्णयस्तु पारिजाते चतुर्विंशतिमते—‘पूर्वाशयोस्तु रात्रौ चेज्जननं मरणं रजः ॥ दृष्टं पूर्वदिनादिव तृतीये तूत्तरेहनि ॥ केचिद्विवादिते सूर्ये जननं मरणं तथा । रजो वा दृश्यते स्त्रीणां यस्याहस्तस्य शर्वरी । अमरे त्वर्धरात्रात्प्राङ् मृतौ रजसि सूतके । पूर्वमेव दिनं प्राङ्मुखं चेदुत्तरेहनि’ ॥ इति । अत्र देशाचारतो व्यवस्था । इति संस्कारकौस्तुभः ।

क्रमात् । इमा आपस्तृचैर्नैव देवस्यत्वेति मन्त्रतः ॥ मन्त्रेणाथ तमीशानं त्वमग्ने रुद्र इत्यथ । तमुष्टुहीतिमन्त्रेण भुवनस्य पितरं तथा ॥ याते रुद्रेति मन्त्रेण शिवसंकल्पमन्त्रतः । इन्द्र त्वा वृषभं पञ्चमन्त्रैश्चैवाभिषेचयेत् ॥ धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च भूषणम् । सदक्षिणमनडाहं प्रदद्याद्बुद्रजापिने ॥ महाशान्तिं प्रजप्याथ ब्राह्मणान् भोजयेदथ ॥' इति । नारदः—'तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः । प्रत्येकाष्टशतं चैव गायत्र्या जुहुयात्ततः ॥ स्वर्णगोभूतिलान्दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये ।' प्रकारान्तरं मदनरत्ने ज्ञेयम् । विस्तरभयान्नोच्यते । ग्रहणे रजोदर्शने तु जातकर्मप्रस्तावे शान्तिं वक्ष्यामः ॥

अथ प्रथमतो विशेषः स्मृतिचन्द्रिकायाम्—'प्रथमतो तु पुष्पिण्याः पतिपुत्रवतीः क्रियाः । अक्षतैरासनं कृत्वा तस्मिंस्तमुपवेशयेत् ॥ हरिद्रागन्धपुष्पादीन्दद्युस्ताम्बूलकं स्रजम् । दीपैर्नीराजनं कुर्यात्सदीपे वायस्येदृहे ॥ लवणापूपमुद्गादि दद्यात्ताभ्यः स्वशक्ति-तः ॥' इति । द्वितीयाद्युष्टुषु तन्नियमानाह मदनपारिजाते दक्षः—'अञ्जनाभ्यञ्जने स्नानं प्रवासं दन्तधावनम् । न कुर्यात्सार्त्तवा नारी ग्रहाणामीक्षणं तथा' ॥ अत्रिरपि—'वर्जयेन्मधु मांसं च पात्रे खर्वे च भोजनम् । गन्धं माल्यं दिवास्वापं ताम्बूलं चास्य शोधनम् ॥ दग्धे शरावे भुञ्जीत पेयं चाञ्जलिना पिबेत् ॥' मदनरत्ने हारीतः—'रजः प्राप्ता चेदधः शयीत भूमौ काष्णार्घसे पाणौ मृन्मये वाश्रीयात्' इति । विष्णुधर्मे—'आहारं गोरसानां च पुष्पालंकारधारणम् । अञ्जनं कंकतं गन्धान् पीठशय्याधिरोहणम् ॥ अग्निसंस्पर्शनं चैव वर्जयेच्च दिनत्रयम् ॥' तथा प्रथमतोः पूर्वं स्त्रीगमनं न कार्यम् ॥ 'प्राग्रजोदर्शनात्पत्नी नेयाद्भत्वा पतत्यधः । व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात्' ॥ इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेः । एतत्तु दशवर्षात्प्राग्ज्ञेयम् । प्रथमतो गमने गौतमेन विशेषो दर्शितः—'गौरीमपि च रत्यर्थं गच्छेत्पुरुष आकुलः । अन्यथा वीर्यपातो हि सहस्रकुलपातकः' । अन्यथापि तदिच्छया भवतीति विज्ञानेश्वरः । तत्र ऋतौ गमनमाह याज्ञ-

१ स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् । स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नानान्न शुद्ध्यति ॥ सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेन्नान्यस्य कस्यचित् । अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ॥ इति याज्ञवल्क्योपि । मलवद्वाससा न संवदेत । न सहासीत नास्या अन्नमद्यात् । ब्रह्महत्यायै द्वेषा वर्णं प्रतिमुच्चास्ते अथो खल्वाह—अभ्यञ्जनं वाव स्त्रिय अन्नमभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यम् काममन्यदिति । यामलवद्वासं संभवन्ति यस्ततो जायते सोभिषस्तो । यामरण्ये तस्यै स्तेनः यां पराचीं तस्यै ह्रीत मु-ख्यप्रगल्भाः या स्नाति तस्या अप्सु मारुकः । या अभ्यङ्गे तस्यै दुश्चर्मा । याथ लिखते तस्यै खल-तिरपस्मारी याङ्क्ते तस्यै काणः । या दंतो धावते तस्यै श्यावदन् । या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी या कृणत्ति तस्यै क्लीबः । या रज्जुं सृजति तस्या उद्वन्धुकः । या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादकः । या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः । तिलो रात्रीर्व्रितं चरेदञ्जलिना वा पिबेत् । अखर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथाय । इति तैत्तिरीयसंहिता । २ दन्तान् इति पाठः ।

वल्क्यः-‘षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्’ । इति । अनृतावप्याह गौतमः-‘ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्’ । इति । मनुः-‘ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । तासामाद्याश्चतसस्तु निन्दितैकादशी तु या ॥ त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ’ मदनरत्ने देवलः-‘तस्मात्त्रिरात्रं चाण्डालीं पुष्पितां परिवर्जयेत् ॥ ’ तत्र तिथ्यादीनाह श्रीधरः-‘षष्ठ्यष्टमीं पंचदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा । शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशांकार्कासितेन्दु-जानाम् ॥’ उभयत्र पक्षद्वये । आर्यो गुरुः । सितः शुक्रः । इन्दुजो बुधः । ‘विष्णुप्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभागिनिशेषकार्ये । पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रा दित्याश्च मध्यमफला विफलाः स्युरन्ये’ ॥ विष्ण्वादिदैवत्यनक्षत्रात्युपक्रान्तानि रत्नमालायाम्-‘भेशा दस्रयमाग्निधातृशशिनः शर्वोदितिर्वाकपतिः । कद्रूजाः पितरो भगोर्यमरवित्वष्टाह्वयो मारुतः ॥ शक्राग्नी त्वथ मित्र इन्द्रनिर्ऋती तोयं च विश्वे विधिर्गोविन्दो वसवोम्बुपादचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥ ’ उत्तराशब्देनोत्तरात्रयम् ॥ अत्र मूलस्य पूज्यत्वमुक्तम् । याज्ञवल्क्येन तु-‘एवं गच्छन् स्त्रियं क्षीमां मघां मूलं च वर्जयेत् । ’ इत्युक्तम् ॥ तेन पूर्वत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

अत्र समासु पुत्रा विषमासु कन्येति ज्ञेयम् ‘युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोयुग्मासु रात्रिषु, इति हेमाद्रौ शंखोक्तेः । तत्राप्युत्तरात्तराः प्रशस्ताः तदाहापस्तम्बः । ‘तत्राप्युत्तरा प्रशस्ता’ इति । तत्रैव व्यासः-‘रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः ॥ पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः ॥ सप्तम्याअप्रजा योषिदष्टम्यामीश्वरः पुमान् । नवम्यां सुभगा नारी दशम्यां प्रवरः सुतः ॥ एकादश्यामधर्मा स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः । त्रयोदश्यां सुता पापा वर्णसंकरकारिणी ॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च आत्मवेदी दृढव्रतः । प्रजायते चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां पतिव्रता ॥ आश्रयः सर्वभूतानां षोडश्यां जायते पुमान्’ । इति । अत्र चतुर्थादिननिषेधेपि ‘स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः ॥ इति भारतीोक्तेः । ‘चतुर्थेहनि स्नातायां युग्मासु वा गर्भं संदधानि’ इति हारीतीोक्तेर्विकल्पो ज्ञेयः । तत्रापि ‘स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेहनि शस्यते ॥ गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथंचन’ ॥ इत्यापस्तम्बोक्तेर्व्यवस्था ज्ञेया ॥

१-क्षामां लब्धाहारादिना कृशामित्यर्थः । अत एव बृहस्पतिः पुंसयोराहारविशेषं निमित्तमाह-‘स्त्रियाः शुक्राधिके स्त्री स्यात्पुमान् पुंसोधिके भवेत् । तस्माच्छुक्रविवृद्धयर्थं स्निग्धं भक्ष्यं च भक्षयेत् ॥ लब्धाहारां स्त्रियं कुर्यादेवं संजनयेत्सुतम्’ । इति । २-यदा युग्मास्वपि रात्रिषु शोणिताधिक्यं तदा ह्येव भवति पुरुषाकृतिः । अयुग्मास्वपि शुक्राधिक्ये पुमानेव ह्युपाकृतिः । कालस्य निमित्तत्वात् शुक्रशोणितयोश्चोपादानकारणत्वेन प्राबल्यात्तस्मात्क्षामा कर्तव्येति मिताक्षरायाम् ।

प्रभासखण्डे मरीचिः—‘शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेहि स्नानेन स्त्री रजस्वला । दैवे कर्मणि पिव्ये च पञ्चमेहनि शुद्धयति’ ॥ श्रौतकर्ममध्ये रजस्वला चेत्तत्र चतुर्थदिनेप्याधिकारः—
‘अथ यदा त्रिरात्रिणी स्यादथैनामुपहूयेत्’ इत्यापस्तम्बसूत्रात् । ‘चतुर्थेहनि गोमूत्रमिश्रा-
भिरद्भिः स्नाता वासोयोक्रजालानि मन्त्रैर्धारयेत्’ इति सोमैप्युक्तम् । एवं सर्वत्र श्रौतक-
र्मणीति धूर्तस्वामिरामाण्डारादयः ॥

अत्र सर्वासु युग्मासु गमनमावश्यकं युग्मास्विति बहुवचननिर्देशादिति विज्ञाने-
श्वरः । तच्चैकस्यां रात्रौ सकृदेव कार्यम् । ‘सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान्’
इति याज्ञवल्क्योक्तेः । इदं चर्तौ गमनमन्यकाले प्रतिबन्धादिना गमनासंभवे श्राद्धे-
कादश्यादावपि कार्यम् । ‘ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्’ इति याज्ञवल्क्यो-
क्तेः । व्याख्यातं चेदं मिताक्षरायां यत्र श्राद्धादौ ब्रह्मचर्यं विहितं तत्राप्यर्तौ गच्छ-
तो न ब्रह्मचर्यस्खलनदोषः इति । पर्वाणीति बहुत्वेनाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणमिति च ॥
मदनरत्नेप्येवम् । यत्तु हेमाद्रौ शिवरहस्ये—‘दिवाजन्मदिने चैव न कुर्यान्मै-
थुनं व्रती । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोर्थी न च पर्वसु’ इति । तदनृतुविषयम् ।
‘ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्’ इति मनूक्तेः । दर्शादौ तु न भवत्येव पर्व-
णां पर्युदस्तत्वात् । माधवीये तु—‘ऋतुकालं नियुक्तो वा नैव गच्छेत्स्त्रियं क्वचित् ।
तत्र गच्छन्समाप्नोति ह्यनिष्टफलमेव तु ॥ इति वृद्धमनूक्तेः । श्राद्धे ब्रह्मचर्यं नियत-
मित्युक्तम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् । एतत्सति संभवे ज्ञेयम् । अनेकभार्यस्यतुयौ-
गपथे हेमाद्रौ कश्यपः—‘यौगपथे तु तीर्थानां विवाहक्रमशो व्रजेत् । रक्षणार्थमपुत्रां
वा ग्रहणक्रमशोपि वा’ ॥ इति । ग्रहणमृतुग्रहणम् ॥ ऋग्विधाने—‘विष्णुर्योनिं जपे-
त्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभिर्व्रती । गर्भाधानं ततः कुर्यात्सुपुत्रो जायते ध्रुवम् ॥

अगमने दोषमाहपराशरः—ऋतुस्नातां तु यो भार्या संनिधौ नोपगच्छति । घोरायां
भूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥’ अस्यापवादमाह मदनरत्ने

ऋतावगमने ।

व्यासः—‘व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु । ऋतुकालेपि

नारीणां भूणहत्या प्रमुच्यते ॥ वृद्धां बन्ध्यामसद्वृत्तामनपत्यामपुष्पिणीम् । कन्य
च बहुपुत्रां च वर्जयेन्मुच्यते भयात् ॥’ वृद्धां गतरजस्काम् । गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे
प्रायश्चित्तमाह पारिजाते आश्वलायनः—‘गर्भाधानस्याकरणात्तस्यां जातस्तु
दुष्यति । अकृत्वा गां द्विजे दत्त्वा कुर्यात्पुंसवनं पतिः ॥’ गर्भाधानं च मलमासशुरु-
शुक्रास्तादावपि कार्यम् । ‘उत्सवेषु च सर्वेषु सीमन्तऋतुजन्मसु । सुरासुरेज्ययोश्चैव
मौढ्यदोषो न विद्यते’ ॥ इति ज्योतिर्निबन्धे भृगूक्तेः । ऋतौ गमने पराशरः—
‘ऋतौ तु गर्भशक्तित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् । अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपूरी-
षवत्’ ॥ स्त्रीणां तु न स्नानम् । ‘उभावप्यशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ । शयना-
दुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान्’ ॥ इति वृद्धशातातपोक्तेः ॥

अत्र कश्चिद्विशेष उच्यते । तत्र रात्रौ रजसि जननादौ च रात्रि त्रिभागां कृत्वा
 ऋतां स्त्रिया अस्पृश्यत्व-आद्यभागद्वयं चेत्पूर्वदिनं ग्राह्यम् । परतस्तूत्तरमिति मिताक्षरायाम् ।
 निर्णयः । यत्तु-‘प्रागर्द्धरात्रात्प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वदिनं ग्राह्यम्’ इत्युक्तम् । तत्र

देशाचाराद्व्यवस्था । तथा सप्तदशदिनपर्यन्तं पुनः रजोदृष्टौ स्नानमात्रम् । अष्टादशे एक
 रात्रम् ॥ ऊनविशेषे द्वयहः । विंशतिप्रभृतित्रिरात्रमिति तत एव ज्ञेयम् । यत्तु-‘चतुर्दश-
 दिनादवर्गशुचित्वं न विद्यते’ । इति । तत्र स्नानप्रभृतित्वमभिप्रेतम् । एतच्च यस्या विं-
 शतिदिनोत्तरं प्रायशो रजस्तत्रैव यस्यास्त्वर्वाक् प्रायशो रजोदर्शनं तत्रोक्तं स्मृत्यर्थ-
 सारे । त्रयोदशदिनादूर्ध्वं प्रायो रजोवतीनामेकादशदिनात्प्रागशुचित्वं नास्ति । एकादश
 दिने एकरात्रं द्वादशे द्विरात्रम् ऊर्ध्वं त्रिरात्रमिति । प्रयोगपारिजातेष्वेवम् ॥ रोग-
 जे तु तत्रैव विशेषः संग्रहे-‘रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्तते । नाशुचिस्तु भवे-
 त्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम्’ ॥ इति । कर्माधिकारस्तु रजोनिवृत्तावेव ॥ ‘साध्वाचारा न
 तावत्स्यात्स्नातापि स्त्री रजस्वला । यावत्प्रवर्तमानं हि रजो नैव निवर्तते’ ॥ इति श्राद्ध-
 हेमाद्रौ शंखोक्तेः । तत्रापि स्वकालेऽशुचिरेवेत्याह ऋष्यशृङ्गः-‘रोगजे वर्तमानेपि

काले निर्याति कालिकम् । तस्मात्कालेऽप्रमत्ता स्यादन्यथा संकरो
 रजस्वलापरस्परस्पर्शे । भवेत् ॥’ तथा-‘रजस्वलाया रजस्वलान्तरस्पर्शेऽकामतः स्नानम् ।

कामत उपवासः पञ्चगव्याशनं च । असवर्णानां तु ब्राह्मण्याः क्षत्रियादिस्पर्शे क्रमेण
 कृच्छ्राद्धपादोनकृच्छ्रकृच्छ्राणि । क्षत्रियादीनां तु कृच्छ्रपाद एव । क्षत्रियादीनां हीनव-
 र्णस्पर्शे त्रिरात्रमुपवासः । वैश्याशूद्रयोः पूर्व्या स्पर्शेऽहोरात्रं द्विरात्रं च । एतच्च का-

मतः । अकामतश्च प्राक् शुद्धेरशनम् । अकामतश्चाण्डालादिस्पर्शेऽप्यन-
 चाण्डालादिस्पर्शे । शनमेव प्राक्शुद्धेः । कामतस्तु प्रथमेद्वि त्र्यहः द्वितीये द्वयहस्तृतीये

एकाहः । श्वस्पर्शे तु द्वयह एकाहो वा । भुञ्जानायाश्चाण्डालादिस्पर्शे षड्रात्रम् । उच्छि-
 श्रयोः स्पर्शे तु कृच्छ्र इत्यादि मिताक्षरायां ज्ञेयम् । स्मृत्यर्थसारे तु सर्वत्र
 बालापत्यायाः स्पर्शे स्नाने कृते भुक्तिः पश्चादनशनप्रत्याम्नाय इति । स्नानविधिं चाह
 पराशरः-‘स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला । पात्रान्तरिततोयेन स्नानं
 कृत्वा व्रतं चरेत् ॥ सित्कगात्रा भवेदद्भिः साङ्गोपाङ्गा कथंचन । न वस्त्रपीडनं कुर्या-
 न्नान्यद्वासश्च धारयेत्’ ॥

अथ रजस्वलास्नानं दैवज्ञवल्लभः-‘ब्रह्मानुराधाश्विनसौम्यभेषु हस्तानिलारवण्ड-

लवासवेषु । विश्वार्यमक्षोत्तरभाद्रभेषु वराङ्गनास्नानविधिः प्रदिष्टः ॥’
 रजस्वलास्नानम् । ज्वरे तूशनाः-ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता । कथं

तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ॥ चतुर्थेहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां
 स्त्रियम् । सा सचैलावगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत् ॥ दश द्वादशकृत्वो वा

आचामेच्च पुनःपुनः । अन्ते च वाससां त्यागः ततः शुद्धा भवेत्तु सा ॥' इति । इदं चातुरमात्रे ज्ञेयम् । 'आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ।' इति पराशरोक्तेः । रजसोऽज्ञाने तु पराशरमाधवीये प्रजापतिः—'अविज्ञाते मले सा च मलवद्वसना यदि । कृतं गृहेषु दुष्टं स्याच्छुद्धिर्न स्यान्निरात्रतः' ॥ देवजानीये कारिका-याम्—'उच्छिष्टा तु द्विजातीनां रजः स्त्री यदि पश्यति । उपवासमधोच्छिष्टे ऊर्ध्वो-च्छिष्टे ज्यहं क्षिपेत् ॥'

अथ पुंसवनम् । प्रयोगपारिजाते जातूकर्ण्यः—'द्वितीये वा तृतीये वा मासि

पुंसवनं भवेत् । व्यक्ते गर्भे भवेत्कार्ये सीमन्तेन सहाय वा ॥' बृह-

पुंसवनम् ।

स्पतिः—'तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टेरन्यत्रशोभनम् । गृष्टेश्चतुर्थे मासे तु षष्ठे मास्यथवाष्टमे' ॥ सकृत्प्रसूता गृष्टिः । एतेन प्रतिगर्भमपि भवतीति ज्ञायते । बह्वृचकारिकापि—'कर्ता स्याद्देवरस्तस्या यस्याः पत्युरसंभवः । आवर्त्तत इदं कर्म प्रतिगर्भमिति स्थितिः ॥' ब्राह्मे—'गर्भाधानादिसंकर्ता पिता श्रेष्ठतमः स्मृतः । अभावे स्वकुलीनः स्याद्बाधवोऽन्यत्र गोत्रजः ॥' मदनरत्ने सत्यव्रतः—'मृतो देशान्तर-गतो भर्ता स्त्री यद्यसंस्कृता । देवरो वा गुरुर्वापि वंश्यो वापि समाचरेत् ॥' हेमाद्रौ यमः—'प्रथमे मासि द्वितीये वा यदा पुंनक्षत्रेण चंद्रमा युक्तः स्यादिति ।' वराहः—'हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यः । पुंसंज्ञकेषु कार्येष्वेतानि शुभानि धिष्ण्यानि ॥' अनुराधापि पुनक्षत्रम् ॥ 'अनूराधान् हविषा वर्धयन्तः' । इति श्रुतेः । गर्गोपि—'पुन्याम श्रवणस्तिष्यो हस्तश्चैव पुनर्वसुः । अभिजित्यौष्ठपाञ्चैव अनूराधा तथाश्वयुक् ॥' नृसिंहः—'रिक्तां पर्व च नवमी त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः ।' ज्योति-र्निबन्धे वसिष्ठः—'मृत्युश्च सौरेस्तनुहानिरिन्दोर्मृतप्रजा पुंसवने बुधस्य । काकी च बन्ध्या भवतीह शुके स्त्री पुत्रलाभो रविभौमजीवैः ॥' अनवलोभनस्याप्ययमेव कालः । दीपिकायां तु—'चतुर्थेऽनवलोभनम्' इत्युक्तम् ॥

अथ सीमन्तः । हेमाद्रौ वैजवापः—अथ सीमन्तोन्नयनम् । चतुर्थे पञ्चमे

षष्ठे च इति । वसिष्ठः—'चतुर्थे सप्तमे मासि षष्ठे वाप्यथवाष्टमे' ।

रजस्वलान्नम् ।

हेमाद्रौ शंखः—'गर्भस्पन्दने सीमन्तोन्नयनं यावद्वा न प्रसवः ।'

कार्णाजिनिः—'गर्भलम्भनमारभ्य यावन्न प्रसवस्तदा । सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छंखस्य वचनं यथा ॥' मासश्चात्र सौरः सावनो वा । कालविधाने—'चतुर्थे षष्ठाष्टममासभाजि सौरेण गर्भे प्रथमं विधेयम् ॥ सीमंतकर्म द्विजभामिनीनां मासेऽष्टमे विष्णुर्बलिं च कुर्यात् ॥' वसिष्ठः—'चतुर्थे सावने मासि षष्ठे वाप्यथवाष्टमे ।' ज्योतिर्निबन्धे नारदः—'अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे ॥' कालविधाने—'सीमन्ते तिष्य-हस्तादितिहरिशशभृत्पौष्णविध्युत्तराख्याः पक्षच्छिद्रं च रिक्ता पितृतिथिमपहाया-पराः स्युः प्रशस्ताः ।' अदितिः पुनर्वसुः । पक्षच्छिद्रं चाह वसिष्ठः—'चतुर्दशी

चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा । षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राद्वयाः स्मृताः ॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः । भूता ५ ४ ८ मनु १४ तत्त्वां २५ क ९ दश १० शेषास्तु शोभनाः' ॥ कालनिर्णये-‘शुभसंस्थे निशानाथे चतुर्थी च चतुर्दशीम् । पौर्णमासीं प्रशंसन्ति केचित्सीमन्तकर्मणि ॥’ बृहस्पतिः-‘पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना । चतुर्दशी चतुर्थी च शुक्लपक्षे शुभप्रदे ॥’ नारदः-विप्रक्षत्रिययोः कुर्याद्विवा सीमन्तकर्म तत् । वैश्यशूद्रकयोरेतद्विवानिश्यपि केचन ॥’ वाराः पूर्वोक्ता एव ।

एतच्च सकृदेव कार्यमिति विज्ञानेश्वरः-‘सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता ।’ इति देवलोक्तेः । सकृत्प्रतिगर्भं वा कार्यमिति हेमाद्रिः-‘सकृच्च कृतसंस्कारा सीमन्तेन द्विजस्त्रियः । ययं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत्’ ॥ इति हारीतोक्तेः । ‘सीमन्तोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते । केचिद्गर्भस्य संस्कारान् प्रतिगर्भं प्रयुञ्जते’ इति हेमाद्रौ विष्णुवचनाच्च । स एव ‘स्त्री यज्ञकृतसीमन्ता प्रसवेत्तु कथं-
सीमन्तेभोजने चन ॥ गृहीतपुत्रा विधिवत्पुनः संस्कारमर्हति ॥’ सीमन्ते भोजने प्रायश्चित्तम् । प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये धौम्येन ‘ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । जातकर्मनवश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’ ऋग्विधाने तु-‘अराइवेज्जपेन्मन्त्रं शतवारं न संशयः । सीमन्ते च यदा भुंक्ते मुच्यते किल्बिषा-त्तदा ॥’ इति ।

अथ गर्भिणीतत्पतिधर्माः । वराहः-‘सामिषमशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्ज-
येदतः प्रभृति’ गृह्यकारिकायाम्-‘अङ्गारभस्मास्थिकपालचुल्लीं शूर्पादिकेषूपविशेन्न नारी । सोलूखलाढ्ये दृषदादिके वा यन्त्रे तुषाढ्ये न तथोपविष्टा ॥ नो मार्जनीगोमयपिण्डकादौ कुर्यान्न वारिण्यवगाहनं सा । अङ्गारभूत्या न नखैर्लिखेत्स्मां कलिं वपुर्भङ्गमथो न कुर्यात् ॥ नो मुक्तकेशी विवशाथ वा स्याद् भुंक्ते न संध्यावसरे न शेते । नामङ्गलं वाचमुदीरयेत्सा शून्यालयं वृक्षतलं न यायात्’ ॥ विष्णुधर्मोत्तरे-‘कटुतीक्ष्णकषायाणि अत्युष्ण-लवणानि च । आयासं च व्यवायं च गर्भिणी वर्जयेत्सदा ॥’ हेमाद्रौ कौण्डिन्यः-‘मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पितृकः कुर्याद्दुर्विण्णपतिरेव च ॥’ मिताक्षरायाम्-‘उदन्वतोम्भसि स्नानं नखकेशादिकर्त्तनम् । अन्तर्वर्त्याः पतिः कुर्वन्नप्रजा जायते ध्रुवम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे-‘गयायां पिण्डदानस्य न कदाचिन्निराक्रिया ॥’ अत्र काले दानप्रत्ययस्मृतेर्निषिद्धकालस्यैवापवादो न तु जीवत्पितृकगर्भिणीपत्याशौचादिनिमित्तस्य । निमित्तसंयो-स्य कालसंयोगाद्भेदे नापवादाभावात् । अग्निहोत्रे यावज्जीवत्कालपरत्वाभावात् । अन्यथाशौचेपि गयायात्राश्राद्धं च स्यात् । यत्र तु निमित्तसंयोगस्यापवादो यथाशौ-

चेन्निहोत्रादेः । यथा वा जीवात्पितृकस्यापवादो मातुर्गयान्वष्टकादौ तत्र तदेव भवति नान्यदिति संक्षेपः ॥

प्रयोगपारिजाते कश्यपः—‘गर्भिणी कुञ्जराश्वादिशैलहर्म्याधिरोहणम् । व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोहणं त्यजेत् ॥ शोकं रक्तविमोक्षं च साध्वसं कुकुटासनम् । व्यवसायं दिवास्वापं रात्रौ जागरणं त्यजेत् ॥ मदनरत्ने स्कान्दे—‘हरिद्रां कुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥ केशसंस्कारकवरीकरकर्णविभूषणम् ॥ भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती वर्जयेद्गर्भिणी नहि ॥’ बृहस्पतिः—‘चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे गर्भिणी यदा । यात्रा नित्यं विवर्ज्या स्यादाषाढे तु विशेषतः ॥’ याज्ञवल्क्यः—‘दौर्हृदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यं मरणं चापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ॥’ दौर्हृदं गर्भिणीप्रियम् । तत्रैवाश्वलायनः—‘वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद्गर्भिणीपतिः । श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्द्ध्वं नान्यत्र वेदवित् ॥’ श्राद्धं तद्भोजनमिति प्रयोगपारिजातः । कालविधाने मुहूर्त्तदीपिकायां च—‘क्षौरं शवानुगमनं नखकृन्तनं च युद्धादि वास्तुकरणं त्वतिदूरयानम् । उद्वाहमौपनयनं जलधेश्च गाहमायुःक्षयार्थमिति गर्भिणिकापतीनाम् ॥’ रत्नसंग्रहे गालवः—‘दहनं वपनं चैव चोलं वै गिरिरोहणम् । नाव आरोहणं चैव वर्जयेद्गर्भिणीपतिः ॥ अव्यक्तगर्भापतिरब्धियानं मृतस्य वाहं क्षुरकर्मसङ्गम् । तस्यां तु यत्नेन गयादितीर्थं यागादिकं वास्तुविधिं न कुर्यात् ॥ प्रव्यक्तगर्भा वनिता भवेन्मासत्रयात्परम् । षण्मासात्परतः सृतिर्नवमेरिष्टवासिनी’ ॥

अथ सूतिकागृहप्रवेशः । गर्गः—‘रोहिण्यैन्दवपौष्णेषु स्वातीवरुणयोरपि ।

पुनर्वसौ पुष्यहस्तधनिष्ठान्युत्तरासु च ॥ मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाश्विन्यां सृति-
सूतिकागृहप्रवेशः । कागारवेशनम् ।’ एतच्च संभवे । ‘प्रसूतिसमये काले सद्य एव प्रवेश-

येत् ।’ इति वसिष्ठोक्तेः । तच्च नैर्ऋत्यां कार्यम् । ‘वारुण्यां भोजनगृहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम् ।’ इति वसिष्ठोक्तेः । विष्णुधर्मे—‘दशाहं सूतिकागारमायुधैश्च विशेषतः । वद्विना तिन्दुकालातैः पूर्णकुम्भैः प्रदीपकैः ॥ मुसलेन तथा वारिवर्णकैश्चित्रितेन च ।’ इति ॥

अथ जातकर्म । पारिजाते वसिष्ठः—‘श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमा-

चरेत् ॥ मनुः—‘प्राङ् नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते’ । वर्द्धनं

जातकर्म ।

छेदनम् । हेमाद्रौ वैजवापः—‘जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म

यथाविधि । दैवादतीतकालं चेदतीते सूतके भवेत् ॥’ पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—

‘अच्छिन्ननाभि कर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि ।’ पुत्रपदेन कन्यापि गृह्यते । तदाह तत्रैव ।

कार्णाजिनिः—‘प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । स्नात्वाऽनन्तरमात्मीयान्

पितृन् श्राद्धेन तर्पयेत् ॥ एतच्च रात्रावपि कार्यम् । 'पुत्रजन्मनि यात्रायां शर्वयां दत्तमक्षयम् ।' इति तत्रैव व्यासोक्तेः । वैजवापः- 'जातमात्रकुमारस्य जातकर्म विधीयते । स्तनप्राशनतः पूर्वं नाभिकर्तनतोपि वा ॥' एतेन नैमित्तिकमपीदं जातेष्विदं शौचान्ते कार्यमिति शङ्का परास्ता । 'जाते कुमारे पितृणामामोदात्पुण्यं तदहः ।' इति हारीतोक्तेश्च । अत्र श्राद्धमामेन हेम्ना वा कार्यमित्युक्तम् । पृथ्वीचन्द्रोदय आदित्यपुराणे- 'जातश्राद्धे तु पक्वान्नं न दद्याद्वाह्येष्वपि ।' इति । हेमाद्रिस्तु- 'पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान् । न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन् ॥' इति संवर्तोक्तेर्हेम्नैवेत्याह । एतच्च जननाशौचे मरणाशौचे च कार्यमित्याह मिताक्षरायां प्रजापतिः- 'आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुं स्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥' केचित्तु- 'मृताशौचस्य मध्ये तु पुत्रजन्म यदा भवेत् । आशौचापगमे कार्यं जातकर्म यथाविधि ॥' इति स्मृतिसंग्रहोक्तेराशौचान्ते कार्यमित्याहुः । स्मृत्यर्थसारेपि विकल्प उक्तः- 'मृदुध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेषामुदयेषु च । गुरौ शुक्रेथ वा केन्द्रे जातकर्म च नाम च ॥' मृदादिलक्षणमाह श्रीधरः- 'रोहिण्युत्तरभं स्थिरं गिरिशमूलेन्द्रोरगा दारुणं क्षिप्रं चाश्विदिनेशपुण्यमनलेन्द्राग्नी तु साधारणम् । उग्रं पूर्वमघान्तकं मृदुगति त्वाष्ट्रान्त्यमैत्रं चरं विष्णुस्वातिशतोद्भवस्वदितयः कुर्युः स्वसंज्ञाफलम् ॥' अत्र सर्वत्र जातकर्म नामकर्मादावुक्तकालातिक्रमे नक्षत्रादिकं ज्ञेयम् । 'देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि । अनस्तगेज्येन्दुसिते तत्कार्यं चोत्तरायणे इति मदनरत्ने नारदोक्तेः । बृहस्पतिरापि- 'मुख्यालम्बे विधिज्ञेन विधिश्रित्योऽप्रमादतः । नक्षत्रतिथिलग्नानां विचार्यैवं पुनः पुनः ॥' सूतके सन्ध्यादौ विशेषं वक्ष्यामः ॥

अथ जन्मनि दुष्टकालाः । तत्र गण्डान्तः । ज्योतिर्निबन्धे नारदः- 'पूर्वानन्दारख्ययोः तिथ्याः सन्धिनाडीद्वयं तथा । गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु । कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः । गण्डान्तमन्तरालं स्याद्धटिकार्थं मृतिप्रदम् ॥ सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वन्त्यषोडशांशाभसन्धयः । तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञकाः ॥' रत्नमालायाम्- 'पौष्णाश्विन्योः सार्पपिज्यर्क्षयोश्च यच्च ज्येष्ठाभूलयोरन्तरालम् । स्याद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकाले ष्वनिष्टम् ॥' रत्नसंग्रहे नवनीतारिष्टे- 'सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते । वर्जयेद्दर्शनं स्नावं तच्च षाण्मासिकं भवेत् ॥ तिथ्यर्क्षगण्डे पितृमातृनाशोलग्रे तु संधौ तनयस्य नाशः । सर्वेषु नो जीवति हन्ति बन्धून् जीवन् पुनः स्याद्दुवारणाश्वः ॥' अथैषां दानमुत्तरगाग्ये- 'तिथिगण्डे त्वनङ्गाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते । काश्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति ॥ उत्तरे तिलपात्रं स्यात्पुण्ये गोदानमुच्यते । अजाप्र-

दानं त्वाष्ट्रे स्यात्पूर्वाषोढ च काञ्चनम् ॥ उत्तरापुण्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च । कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्राकरजां बुधः ॥

अथाश्लेषाफलम् । 'मूर्द्धास्यनेत्रगलकांसयुगं च बाहू हज्जानुगुह्यपदमित्यहिदेहभागः । बाणादिनेत्रहुतभुक्श्रुतिनागरुद्रषण्णन्दपञ्चशिरसः क्रमशस्तु नाड्यः ॥ राज्यं पितृक्षयो मातृनाशः कामक्रियारतिः । पितृभक्तो बली स्वघ्नस्त्यागी भोगी धनी क्रमात्' ॥

अथ ज्येष्ठाफलं ब्रह्मयामले—'ज्येष्ठादौ जननी माता द्वितीये जननी पिता । तृतीये जननी भ्राता स्वयं माता चतुर्थके ॥ आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत् । सप्तमे चोभयकुलं ज्येष्ठभ्रातरमष्टमे ॥ नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके' । इति

अथ मूलफलमल्लाटः—'अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेत्तु बालकम् । समाष्टकं पिताथ वा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥ तदाद्यपादके पिता द्वितीयके जनन्यथ । धनक्षयस्तृतीयके चतुर्थकः शुभावहः ॥ प्रतीपमन्त्यपादतः फलं तदेव सार्पमे' ॥ अभुक्तमूलं त्वाह वृद्ध-
वासिष्ठः—'ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् । अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्र जातं शिशुं त्यजेत् ॥' केचिज्ज्येष्ठान्त्यमूलाद्यं च पादमभुक्तमूलमाहुः । कश्यपसंहितायां त्वन्यथोक्तम् । मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः । मातरं स्वं तृतीयोर्थान् सुहृदं तत्तुरीयजः ॥ फलं तदेव सार्पक्षं प्रतीपं त्वन्त्यपादतः' ॥

अथ मूलवृक्षे जयार्णवे—'मूलं स्तंभं त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा । वेदाश्च मुनयश्चैव दिशश्च वसवस्तथा ॥ नन्दा बाणा रसा रुद्रा मूलभेदः प्रकीर्तितः ॥ मूले मूलविनाशाय स्तम्भे हानिर्धनक्षयः । त्वचि भ्रातृविनाशाय शाखा मातृविनाशकृत् ॥ पत्रे सपरिवारः स्यात्पुष्पेषु नृपवल्लभः । फलेषु लभते राज्यं शिखायामल्पजीवितम्' ॥ अन्यत्र त्वन्यथोक्तम्—'मूले सप्तघटीषु मूलहननं स्तम्भेष्टसु स्वक्षयं त्वग्दिग्बन्धविनाशनं च विटपे रुद्रैर्हतो मातुलः ॥ पत्रेकैः सुकृती तु बाणकुसुमे मंत्री फले सागरे राजा वह्निशिखाल्पमायुरिति सन्मूलाङ्घ्रिपे स्यात्फलम्' ॥ भूपालवल्लभः—'वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिवि स्थितं युग्मतुलाङ्गनान्त्ये । पातालगं मेघधनुःकुलीरनक्रेषु मर्त्येष्विति संस्मरन्ति ॥ स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले चेद्वनागमः । मर्त्यलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत्' ॥

वासिष्ठः—'नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रादवश्यं श्वशुरं निहन्ति । तदन्यपादे जानितो निहन्ति तस्योत्क्रमेणाहिभवे कलत्रम् ॥ सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैवताराजनिता तु देवरम् । पुरन्दरक्षं जनितः सुतस्तथा स्वस्याग्रजं हन्ति न पुत्रिता यदि ॥' प्रयोगपारिजाते—'मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनाम् । माहेन्द्रजाग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा' ॥ नृसिंहप्रसादे—'धवाग्रजं हन्ति सुरेन्द्रजाता तथैव पत्न्या भगिनीं पुमांश्च । द्विदैवजा देवरमाशु हन्याद्भार्यानुजामाशु निहन्ति सूनुः ॥ पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् । तथा भार्यास्वसारं वा शालकं वा द्विदैवजः ॥ कन्यक

देवरं हन्ति विशाखान्त्यसमुद्भवा । आद्यपादत्रये नैव आद्यमे तु पुमान् भवेत् ॥ न
हन्यादेवरं कन्या तुलामिश्रा द्विदैवजा । तदक्षान्तोद्भवा वर्ज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छवत् ॥
चित्राद्यर्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये । जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते
मातापित्रोर्भ्रातरं जालनाशम् ॥ द्विमासं चोत्तरादोषः पुष्ये चैव त्रिमासकः । पूर्वाषाढा-
ष्टमे मासि चित्रा षाण्मासिकं फलम् ॥ नवमासं तथाश्लेषा मूले चाष्टकवर्षकम् । ज्येष्ठा
पञ्चदशे मासि पुत्रदर्शनवर्जिता' ॥

वसिष्ठः-‘व्यतीपातेङ्गहानिः स्यात्परिधे मृत्युमादिशेत् । वैधृतौ पितृहानिः स्यान्न-
ष्टेन्दावन्धतां व्रजेत् ॥ मूले समूलनाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ भवेत् । विकृताङ्गश्च हीन-
श्च संध्ययोरुभयोरपि ॥ पर्वण्यापि प्रसूतौ च सर्वारिष्टभयप्रदः । तद्वत्सदन्तजातश्च पाद-
जातस्तथैव च ॥ विपरीतप्रसूतौ तु नाभिनालेन वेष्टितः । राष्ट्रस्य नृपतेश्चैव स्वस्यापि च
विनाशकः ॥ तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत ग्रहाणां क्रूरचेतसाम् ॥’ गर्गः-‘कृष्णां चतुर्दशीं
षोढा कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् । द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये हन्ति मातरम् ॥ चतुर्थे मातु-
लं हन्ति पंचमे वंशनाशनम् । षष्ठे तु धननाशः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ॥ तस्मात्सर्व-
प्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः’ ॥

अथ पित्रोर्नक्षत्रे जन्मदोषः । तत्र देवकीर्तिः-‘यद्येकस्मिन् धिष्ण्ये जायन्ते
दुहितरोऽथ वा पुत्राः । पितुरन्तकरा ह्येते यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात्’ ॥ गर्गः-‘एकस्मि-
न्नेव नक्षत्रे भात्रोर्वा पितृपुत्रयोः । प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चितम्’ ॥ शौनकः
‘ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते । व्याधिषीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥
इत्थं संजायते यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः’ ॥ शान्तिस्तु-‘तदक्षधिपते रूपं सुवर्णेन
प्रकल्पयेत् । सूर्यग्रहे सूर्यरूपं हैमं चन्द्रं तु राजतम् ॥ राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विच-
क्षणः । त्रयाणां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत्’ ॥ नागः सीसम् । आकृष्णेनाप्या-
यस्व स्वर्भानोरिति पूजामन्त्राः । नक्षत्रदेवतायास्तन्मन्त्रेण । संपूज्य तु यजेत्सूर्यं समि-
द्धिश्चार्कसम्भवैः । चन्द्रग्रहे च पालाशैर्दूर्वाभी राहुमेव च ॥ समिद्धिर्ब्रह्मवृक्षस्य भेशाय
तद्दोषनिवारणार्थं जुहुयाद्बुधः । आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः ॥ पञ्चगव्यैः
शान्त्यादिविधिः । पञ्चरत्नेः पञ्चत्वक्पञ्चपलवैः ॥ जलैरौषधिकलैश्च अभिषेकं
समाचरेत् । मन्त्रैर्वारुणसंभूतैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः ॥ इमंमैगंगे पुरतस्तत्वायामीतिम-
न्त्रकैः । यजमानस्ततोदद्याद्भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् ॥’ इति ॥

मात्स्ये-‘अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा । विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसव-
कास्तथा ॥ अमानुषा अमुण्डाश्च अजातव्यजनास्तथा । हीनांगा अधिकांगाश्च जायन्ते
यदि वा स्त्रियः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः । विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य
च विनिर्दिशेत् ॥ निर्वासयेत्तां नगरात्ततः शान्तिं समाचरेत् ॥’ पाद्मे-‘उपरि प्रथमं
यस्य जायन्ते चं शिशोर्द्विजाः । दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ॥ द्वितीये च

तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा । यदा दन्ताश्च जायन्ते मासे चैव महद्भयम् ॥ मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव च । गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्थापयेद्विज ॥ तदभवे तु धर्मज्ञ काञ्चने वा वरासने । सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्वीजैः पुष्पैः फलैस्ततः ॥ पञ्चगव्येन रत्नैश्च पताकाभिश्च भार्गव । स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥ सप्ताहं चात्र कर्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् । भद्रासने निवेश्यैनं मृद्धिर्मूलैः फलैस्तथा ॥ सर्वौषधैः सर्वगन्धैः सर्ववीजैस्तथैव च । स्नापयेत्पूजयेच्चात्र वह्निं सोमं समीरणम् ॥ पर्वतांश्च तथाख्यातान् देवदेवं च केशवम् । एतेषामेव जुहुयाद् घृतमग्नौ यथाविधि ॥ ब्राह्मणानां तु दातव्या ततः संपूज्य दक्षिणा ॥ ब्रह्मयामले—‘प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरुर्ध्वं बालस्य चेद्भवेत् । क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा । दध्योदनेन संपूर्णं पात्रं दद्याच्छिशोः करे ॥ समन्त्रं भाजनं दत्त्वा स पश्येन्मातुलः शिशुम् । सालंकारं सख्यं च शिशुमालिङ्ग्य सादरम् ॥ तत्र मन्त्रः—‘रक्ष मां भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलं कुलम् । गृहीत्वा भाजनं सात्रं प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नां च स्वमातरम् । मय्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरंजीव मया सह ॥ एवं कृते विधाने तु विघ्नः कोपि न जायते’ । इति ।

अथ त्रिकप्रसवशान्तिः । शान्तिसर्वस्वे—‘सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुतौ यदि । मातापित्रोः कुलस्यापि तदानिष्टं महद्भवेत् ॥ ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत् । तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविर्वर्जितः ॥ जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने । आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः । पूजयेद्धान्यराशिस्थं कलशोपरि शक्तितः ॥ पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्द्रुसंख्यया । रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः ॥ द्विज एको जपेद्भोमकाले शुचिसमाहितः । आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा । देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् ॥ ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्र भयामहे । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः ॥ अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् । हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा ततः ॥ आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् । प्रतिमां गुरवे दत्त्वा उपस्कारसमन्वितः ॥ ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् । एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते ॥’ इति । अन्येषु मूलाष्टकेषु शान्त्यादि प्रयोगपारिजाते मत्कृते शान्तिरत्ने च ज्ञेयम् ॥

मिताक्षरायां मार्कण्डेयः—‘रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः । रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः ॥ पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः । रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके’ ॥ व्यासः—‘सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः । तासां यागनिमित्तं तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता ॥ प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे

चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥ अपराकें ब्राह्मे-‘कन्याश्चतस्रो राकाद्या वातघ्नी चैव पञ्चमी क्रीडनार्था च बालानां षष्ठी च शिशुरक्षिणी ॥ खड्गे तु पूजनी या वै वैश्यैर्ब्राह्मणैर्दिजातिभिः’ ॥ राकानुमतिः सिनीवाली कुहूरिति चतस्रः कन्याः इत्यर्थः ॥

अथ दत्तकपुत्रपरिग्रहविधिः ॥ पारिजाते शौनकः-‘अपुत्रो मृतपुत्रो वा

पुत्रार्थं समुपोष्य च । वाससी कुण्डले दत्त्वा उष्णीषं चांगुलीय-

दत्तकग्रहणविधिः ।

कम् ॥ बन्धून्नेन संभोज्य ब्राह्मणांश्च विशेषतः । अन्वाधानादि

यत्तत्र कृत्वाज्योत्पवनान्तकम् ॥ दातुः समक्षं गत्वा तु पुत्रं देहीति याचयेत् । दाने समर्थो दातास्मै येयज्ञेनेतिपञ्चभिः ॥ देवस्यत्वेतिमन्त्रेण हस्ताभ्यां परिगृह्य च । अङ्गा-
दङ्गेत्यृचं जप्त्वा आघ्राय शिशुमूर्धनि॥गृहमध्ये तमाधाय चरुं हुत्वा विधानतः । यस्त्वा-
हृदेत्यृचा चैव तुभ्यमग्रक्रुचैकया ॥ सोमोदददित्येताभिः प्रत्यृचं पञ्चभिस्तथा ॥ स्विष्ट-
कृदादिहोमं च कृत्वा शेषं समापयेत् ॥ स च । ‘ब्राह्मणानां सपिण्डेषु कर्तव्यः पुत्र-
संग्रहः । तदभावेऽसपिण्डो वा अन्यत्र तु न कारयेत्’ ॥ मिताक्षरादौ तु व्याहृति-
भिराज्येन होम उक्तः । स च होमोत्तरं जलपूर्वकं देयः । न वाङ्मात्रेण । ‘व्याहृ-
तिभिर्हुत्वा प्रतिगृह्णीयादिति’ । वसिष्ठोक्तेः । ‘माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः
पुत्रमापदि । सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्त्रिमः सुतः’ ॥ इति मन्त्रोक्तेः ॥

तत्रैव वसिष्ठः-‘न त्वैकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा । न स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रति-
गृह्णीयाद्वा । अन्यत्रानुज्ञानवद्भर्तुः’ । इति । इदं च भर्तृसत्त्वे । अन्यथा ‘दद्यान्माता
पिता वा यं स पुत्रो दत्त्रिमः स्मृतः ।’ इति वत्सव्यासवचोविरोधः स्यात् । दानं
प्रतिग्रहोपलक्षणम् यत्तु समन्त्रकहोमस्य पुत्रप्रतिग्रहाङ्गत्वात् । व्याहृत्यादिमन्त्रपाठे
च स्त्रीशूद्रयोरनधिकारात् । तयोर्दत्तकपुत्रो न भवत्येवेति शुद्धिविवेके रुद्रधरे-
णोक्तम् । वाचस्पतिश्चैवमेवाह तन्न । भर्तुर्नुज्ञया स्त्रिया अपि प्रतिग्रहोक्तेः ।
यद्यपि मेधातिथिना भार्यात्ववददृष्टरूपं दत्तकत्वं होमसाध्यमुक्तम् । स्त्रियाश्च होमासं-
भवस्तथापि व्रतादिवद्विग्रहद्वारा होमादि कारयेदिति हरिनाथादयः । संबन्धतत्त्वे-
प्येवम् । एवं शूद्रस्यापि । ‘स्त्रीशूद्राश्च सधर्माणः’ इति स्मृतेः । अत एव
शूद्रकर्तृकहोमो विग्रहारेव पराशरेणोक्तेः । ‘दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य
जुहुयाद्विः । ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत्’ ॥ अत्र माधवाचार्यः-
‘यो विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय तदीयं हविः शान्तिपुष्ट्यादिसिद्धये वैदिकैर्मन्त्रैर्जुहोति तस्य
विप्रस्यैव दोषः । शूद्रस्तु होमफलं लभेतैव’ इति व्याचक्षे ॥

दत्तके विशेषः कालिकापुराणे-‘पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते ।
आचूडान्तं न पुत्रः सः पुत्रतां याति चान्यतः ॥ चूडोपायनसंस्कारा निजगोत्रेण वै
कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥ ऊर्ध्वं तु पञ्चमादृषान्न दत्ताद्याः

सुता नृप । गृहीत्वा पञ्चवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत् ॥ पञ्चमोर्ध्वं तु स्वदानेच्छोरेव दानं न चान्यथा । विक्रयं चैव दानं च न नेयाः स्युरनिच्छवः ॥ दाराः पुत्राश्च सर्वस्वमात्मनैव तु योजयेत् । इति हेमाद्रिमाधवधृतव्यासदक्षादिवचनात् । यच्च याज्ञवल्क्यः—‘स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते’ । इति । तदध्वं स्वदानानिच्छुपुत्रपरम् । तन सर्वस्वदाने स्वदानेच्छुदारपुत्रदानं सिद्धम् । यत्तु—विश्वविदधिकरणं षष्ठे । तत्र पुत्रादीनां ज्ञातित्वेन स्वशब्दवाच्यत्वात् पुत्रत्वेन दानमाशंका निराकृता । जन्यपुंस्त्वस्य दानेनानिष्पत्तेः । दासत्वेन दानं भवत्येव । तस्माद्यथेष्टविनियोगार्हत्वं स्वत्वं भवत्येव । पत्रे स्वत्वाभावं वदन् । पुत्रक्रयविक्रयादि शुनःशेषविक्रयादिश्रौतलिङ्गादासक्रयविक्रयादिव्यवहारायोगात् मूर्ख एव । ‘यो न हि ग्रभायारणः सुशेवोन्वोदर्योमनसामंतवाउ’ इति श्रुतौ ॥ दत्तकनिषेधः ॥ सोप्यौरसातिशयार्थः । अन्यथा शुनःशेषादिप्रतिग्रहश्रौतलिङ्गविरोधापत्तेः । ‘उपेयां तव पुत्रताम्’ इत्युक्तेः । इदं च श्रौतलिङ्गं स्वयंदत्तक्रीतपरम् । न दत्तकपरम् ॥ द्वादशविधपुत्रमव्ये । ‘दत्तात्मा तु स्वयंदत्तः, क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः’ । इति याज्ञवल्क्येन तयोर्दत्तकाद्भेदोक्तेः । तयोश्च ‘दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः’ । इति कलौ निषेधात्तेन संस्कारोत्तरं स्वयंक्रीतो न भवति । तदुत्तरं दत्तको न भवत्येवेति सिद्धम् ॥

अथ यमलयोः संस्कारक्रमार्थं ज्येष्ठकनिष्ठभाव उच्यते । मनुः—‘पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः । कथं तयोर्विभागः स्यादिति चेत्संशयो यमलसंस्कारे ज्येष्ठक- निष्ठत्वम् । भवेत् । सदृशः स्त्रीप्रजातानां पुत्राणामविशेषतः । न मातृतो ज्येष्ठचमस्ति जन्मतो ज्येष्ठचमुच्यते’ ॥ तेन कनिष्ठायां पूर्वजात एव ज्येष्ठो न ज्येष्ठायां पश्चाज्जात इत्यर्थः । स एव श्राद्धाधिकारी । ‘जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् । यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता’ ॥ देवलः—‘यस्य जातस्य यमयोः पश्यन्ति प्रथमं मुखम् । संतानः पितरश्चैव तस्मिञ्ज्येष्ठ्यं प्रतिष्ठितम्’ ॥ भागवते तु—‘द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वैशविपर्ययात् ।’ इत्युक्तेः पश्चादुत्पन्नस्य ज्येष्ठचमुक्तम् । अत्र देशाचारतो व्यवस्था । पूर्वमेव तु युक्तं गर्भाष्टम इत्यादौ विशेषनिर्देशे एव गर्भग्रहणं नान्यत्र । अन्यथा तद्वैयर्थ्यात् ॥

अथ सूतिकास्नानम् ॥ ज्योतिषे—‘करेन्द्रभाग्यानिलवासवान्त्यमैत्रेन्दवाश्विधु- वभेद्वि पुंसाम् । तिथावरित्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानाविधिं मुनीन्द्राः’ ॥

अथ नामकर्म । मदनरत्ने बृहस्पतिः—‘द्वादशे दशमे वापि जन्मतोपि त्रयोद- शे । षोडशे विंशतौ चैव द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात्’ ॥ याज्ञवल्क्यः—‘अहन्येकादशे नाम’ । हेमाद्रौ भविष्ये—‘नामधेयं दशम्यां तु द्वा-

दृश्यां मामि केचन । अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः ॥ 'दशम्याम-
तातायामिति ज्ञेयम् । 'आशौचापगमे नामधेयम्' इति विष्णूक्तेः' । गृह्यपरि-
शिष्टेपि- 'जननादशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम् । व्युष्टेऽतीते ।
ज्योतिर्निबन्धे गर्गः- 'अमासंक्रान्तिं विष्ट्यादौ प्रासकालेपि नाचरेत्' ॥ अधिरः-
'मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक्स्वातीधनिष्ठाच्युतप्राजेशाश्विशशांकपौष्णदिनकृतपुण्येषु
राशौ स्थिरे । छिद्रां पञ्चदशीं विहाय नवमीं शुद्धेष्टमे भार्गवज्ञाचार्यामृतपादभागादिवसे
नामानि कुर्याच्छिशोः ॥' मनुः- 'शर्मान्तं ब्राह्मणस्य स्यादशर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्' ॥ 'मदनरत्ने नारदीये- 'सूतकान्ते
नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम् । नाम पूर्वं तु मासस्य मङ्गलं सुसमाक्षरैः ॥' तत्रैव
गार्ग्यः- 'मासनाम गुरोर्नाम दद्याद्बालस्य वै पिता ॥' स्मृतिसंग्रहे- 'कृष्णो न-
न्तोच्युतश्चक्री वैकुण्ठोय जनार्दनः । उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वामुदेवस्तथा हरिः ॥ योगीशः
पुंडरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ॥' अत्र मार्गशीर्षादिश्रैत्रादिर्वा क्रम इति । मदनर-
त्ने- 'तन्मासनाम प्रथमं दद्यात्संबुध्य चैव हि । देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥
सर्वापणानां पुण्यानां चिह्नार्थं योषितां नृणाम् । काव्यानां च कवीनां च पश्वादीनां च
सर्वशः ॥ राजप्रासादवास्तूनां नामकर्म विशिष्यते ॥ नाक्षत्रमपि नाम कार्यम् ॥ 'अ-
भिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनात् ।' इत्याश्वलायनोक्तेः ।
'कुलदेवतानाक्षत्रसंबद्धं पिता नाम कुर्यात्' । इति मदनरत्ने शंखोक्तेः ॥ तच्च नक्षत्र-
पादाक्षराद्याक्षरं कुर्यादित्युक्तं परिशिष्टे- 'तदक्षरादिकं नाम यस्मिन् धिष्ये यदक्षरम् ।'
इति । सुदर्शनभाष्ये तु- 'रोममृज्येचिषु वृद्धिरादौ घ्रान्त्ये च वान्त्ये श्रवशाश्वयुधु ।
शेषेषु नाम्नोः कपरः स्वरोन्त्यः स्वाप्पोरदीर्घः सविसर्ग इष्टः ॥' इत्युक्तम् । घ्रान्त्येति
प्रोष्ठपदेत्यत्रादौ घ्रात्परे च वृद्धिः प्रोष्ठपाद इति । अन्त्यमपभ्रणीशब्दः श्रुताबुक्तः । तत्र
श्रवणादौ च वादिवृद्धिः । 'अपभ्रणआपभ्रण' इत्यादि । मदनरत्ने वसिष्ठः- 'ज-
न्माहे द्वादशाहे वा दशाहे वा विशेषतः । उत्तरोरवतीहस्तमूलपुण्याः सवारुणाः ॥ श्रव-
णादिति मैत्रं च स्वाती मृगशिरस्तथा । प्राजापत्यं धनिष्ठा च प्रशस्ता नामकर्मणि ॥'

अथ दोलारोहः । पारिजाते बृहस्पतिः- 'दोलारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वाद-
शेपि वा । षोडशे दिवसेवापि द्वाविंशे दिवसेपि वा' ॥ ज्योतिर्नि-
बन्धे- 'करत्रये वैष्णवेतीषु दितिद्वये वाश्विनकध्रुवेषु । कुर्याच्छिशूनां

१-एवं च-रौहिणः, रवैतः, माघः, मार्गशीर्षः, ज्यैष्ठः, चैत्रः, प्रौष्ठपादः, आपभ्रणः-अपभ-
रणः, श्रावणः-श्रवणः, शातभिषजः-शातभिषक्, आश्वयुजः-आश्वयुक्-अश्वयुक्, श्रविष्ठः,
फल्गुनः, अनुराधः, तिष्यः, आश्लेषः, हस्तः, विशाखः, आषाढः, कृत्तिकाः, बहुलः, आर्द्रकः, मूलकः,
स्वातिः, पुनर्वसुः, इत्येवं सप्तविंशतिनक्षत्रनाम्ना सिद्धिरिति संस्कारकौस्तुभागतोर्थः ।

नृपतेश्च तद्वद्वान्दोलनं वै सुखिनो भवन्ति' ॥ तत्रैव । 'आन्दोलाशयने पुंसो द्वादशो दिवसः शुभः । त्रयोदशस्तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा ॥ अन्यस्मिन् दिवसे चेत्स्या-
त्तिर्यगारये प्रशस्यते' ॥

दुग्धपानम् ।

अथ दुग्धपानम् । नृसिंहः—'एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शंखेन पाययेत् । अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयरात्रिषु ॥

अथ कर्णवेधः । मदनरत्ने वसिष्ठश्रीधरौ—'मासे षष्ठे सप्तमे वाष्टमे वा वेधयौ कर्णौ द्वादशे षोडशेहि । मध्येनाह्नः पूर्वभागे न रात्रौ नक्षत्रं द्वे द्वे तिथी वर्जयित्वा' । अत्र जन्ममासो वर्ज्यः । ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—

कर्णवेधः ।

'मासे षष्ठे सप्तमे वाष्यष्टमे मासि वत्सरे । कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुःश्रीविवृद्धये ॥' मदनरत्ने—'प्रथमे सप्तमे मासि अष्टमे दशमेथवा । द्वादशे च तथा कुर्यात्कर्णवेधं शुभावहम् ॥' हेमाद्रौ व्यासः—'कार्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेपि वा । कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥' श्रीधरः—'हरिहयकरचित्रासौम्यपौष्णोत्तरायणदितिवसुषु घटालीसिंहवर्ज्ये सुलभे । शशिशुबुधकाव्यानां दिने पर्वरिक्तारहिततिथिषु शुद्धे नैवने कर्णवेधः ॥' मदनरत्ने बृहस्पतिः—'द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी । द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने ॥ सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवेश्ययोः । शूद्रस्य चायसी सूची मध्यमाष्टाङ्गुलात्मिका ॥' हेमाद्रौ देवलः—'कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेषग्रजन्मनः । तदृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः ॥' शंखः—'अंगुष्ठमात्रं सुपिरौ कर्णौ न भवतो यदि । तस्मै श्राद्धं न दातव्यं दत्तं चेदा-
सुरं भवेत् ॥'

अथ ताम्बूलभक्षणम् । चण्डेश्वरः—'सार्धमासद्वये दद्यात्ताम्बूलं प्रथमं शिशोः ।

ताम्बूलभक्षणम् ।

कर्पूरादिकसंमिश्रं विलासाय हिताय च ॥ मूलार्कचित्रकरतिष्यहरीन्द्र भेषु पौषे तथा मृगशिरोदितिवासवेषु । अर्केन्दुजिवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलभक्षणविधिर्मुनिभिः प्रादिष्टः ॥'

अथ निष्क्रमणम् । ज्योतिर्निबन्धे—'तृतीये वा चतुर्थे वा मासि निष्क्रमणं भवेत् ॥' यमः—'ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम् चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥' अत्र—'सूर्येन्द्रोः कर्मणी ये

निष्क्रमणम् ।

च तयोः श्राद्धं न विद्यते' । इति छन्दोगपरिशिष्टात् । 'छन्दोगानां निष्क्रमणे

१—इदं च वाक्यं परिसंख्याविधया । 'शिशोर्विवर्धनं कार्यं यावदाभरणक्षमम् ।' इति संस्कारकौ-
स्तुभोक्तविष्णुधर्मोक्तवाक्यतो यथेच्छाभरणानुकूलेनांगुष्ठाधिकाच्छिद्रनिरासार्थम् । न तु विधयाऽङ्गुष्ठमात्र
च्छिद्रविध्यर्थम् । तथा सति सूर्येच्छायाप्रवेशानुकूलच्छिद्रनियामकं देवलवाक्यवैयर्थ्यापत्तिः ।

वृद्धिश्चादं नास्ति इति कल्पतरुः । व्यासः-‘मित्रे पुष्यपुनर्वसुप्रथमभे पौष्णेनुकूले विधौ हस्ते चैव सुरेश्वरे च मृगभे तारासु शस्तासु च । कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोर्बुधगुरौ शुके विरिक्ते त्रिथौ कन्याकुम्भतुलामृगारिभवने सौम्यग्रहालोकिते’ ॥ मदनरत्ने-‘अन्नप्राशनकाले वा कुर्यान्निष्क्रमणक्रियाम् ॥’ विष्णुधर्मे-‘दिगीशानां दिने तत्र तथा चन्द्रार्कयोर्द्विजैः । पूजनं वासुदेवस्य गगनस्य च कारयेत् ॥ बहिर्निष्कासयेद्देहा-च्छखपुण्याहनिस्वनेः । चन्द्रार्कयोर्दिगीशानां दिशां च गगनस्य च । निक्षेपार्थमिमं दक्षि ते मे रक्षन्तु सर्वदा ॥ अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवारात्रमथापि वा । रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ॥’ माधवीये मार्कण्डेयः-‘अग्रतोऽथ प्रविन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्वशः । शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत् लक्षणम् ॥ प्रथमं यत्सप्तशेद्बालस्ततो भाण्डं स्वयं तदा । जीविका तस्य बालस्यतेनैव तु भविष्यति’ ॥ इति ।

अथोपवेशनम् । प्रयोगपारिजाते पाद्रे विष्णुधर्मे च-‘पञ्चमे च तथा मासि

उपवेशनम् ।

भूमौ तमुपवेशयेत् । तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमोऽप्यत्र विशेषतः ॥ उत्तरात्रि-
तयं सौम्य पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम् । प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्र-
भम् ॥ वाराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा द्विजम् । रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे ॥ आयुः-
प्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरीप्रिये । अचिरादायुषस्त्वस्य ये केचित्पारिपन्थिनः ॥
जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् । वरेण्याशेषभूतानां माता त्वमसि कामधुक् ॥
अजरा चाप्रमेया च सर्वभूतनमस्कृता । चराचराणां भूतानां प्रतिष्ठानाव्यया ह्यसि ॥
कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम्’ ॥

अथान्नप्राशनम् । पारिजाते नारदः-‘जन्मतो मासि षष्ठे स्यात्सौरेणा-

अन्नप्राशनम् ।

न्नाशनं परम् । तदभावेष्टमे मासि नवमे दशमोपि वा ॥ द्वादशे वापि
कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम् ॥ संवत्सरे वा संपूर्णे केचिदिच्छन्ति
पंडिताः’ ॥ मदनरत्ने लौगाक्षिः-‘षष्ठेऽन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा ।’ इति ।
शंखः-‘संवत्सरेऽन्नप्राशनमर्थसंवत्सरे वा’ इति । ज्योतिर्निबन्धे नारदः-‘षष्ठे
वाप्यष्टमे मासि पुंसां स्त्रीणां तु पञ्चमे । सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं
शुभम् ॥ रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीममाम् । त्यक्तान्यतिथयः प्रोक्ताः
सितजीवन्नवासराः ॥ चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना’ ॥ श्रीधरः-
‘आदित्यतिथ्यवसुसौम्यकरानिलाश्विचित्राजविष्णुवरुणोत्तरपौष्णमित्राः । बालान्नभो-
जनविधौ दशमेऽविशुद्धे छिद्रां विहाय नवमीं तिथयः शुभाः स्युः ॥’ वसिष्ठः-
‘बालान्नभुक्तौऽन्नवन्धने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ये । शुभं त्वानिष्टं सततं विवाहे
सीमन्तयात्रादिषुः मङ्गलेषु ॥’ मार्कण्डेयविष्णुधर्मयोः-‘ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं
चन्द्राकौ च दिगीश्वरान् । भुवं दिशश्च संपूज्य हुत्वा बहौ तथा चरुम् ॥ देवतापुरतस्तस्य

धात्र्युत्सङ्गतस्य च । अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे सकाञ्चनम् ॥ मध्वाज्यदधिसं-
युक्तं प्राशयेत्पायसं तु वा ॥' इति ॥

अथाब्दपूर्तिर्व्यवहारनिर्णये- 'नवाम्बरधरो भूत्वा पूजयेच्च चिरायुषम् । मार्क-

अब्दपूर्तिः ।

ण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत्प्रयतस्तथा ॥ ततो दीर्घायुषं व्यासं रामं
द्रौणिं कृपं बलिम् । प्रह्लादं च हनूमन्तं विभीषणमथार्चयेत् ॥ स्वन-
क्षत्रं जन्मतिथिं प्राप्य संपूजयेन्नरः । षष्ठां च दधिभक्तेन वर्षेवर्षे पुनःपुनः' ॥ तिथि-
तत्त्वे एतन्नामभिस्तिलहोमोप्युक्तः । आदित्यपुराणे- 'सर्वैश्च जन्मादिवसे स्नातैर्म-
ङ्गलवारिभिः । गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ स्वनक्षत्रं च पितरौ तथा देवः
प्रजापतिः । प्रतिसंवत्सरं यत्नात्कर्त्तव्यश्च महोत्सवः' ॥ कृत्याचिन्तामणौ- 'गुडदुग्ध-
तिलान्दद्याद्धस्ते ग्रन्थौ च बन्धयेत् । गुग्गुलुं निम्बसिद्धार्थदूर्वागोरोचनादिकम् ॥
संपूज्य भानुविघ्नेशौ महर्षिं प्रार्थयेदिदम् । चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ॥
रूपवान् वित्तवान्श्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा । मार्कण्डेय नमस्तेस्तु सप्तकल्पान्तजीवन ॥
आयुरारोग्यसिद्धयर्थं प्रसीद भगवन् मुने । चिरञ्जीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवर
द्विज ॥ कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम् ॥ मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पा-
न्तजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्धयर्थमस्माकं वरदो भव । सतिलं गुडसमिश्रमञ्जल्यर्धमितं
पयः ॥ मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये ॥' इति पयः पिबेत् । तिथितत्त्वे
स्क्रान्दे- 'खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वगमौ तथा । आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ
विवर्जयेत् ॥' तत्रैव दीपिकायाम्- 'कृतान्तकुजयोर्वारि यस्य जन्मतिथिर्भवेत् । अनृ-
क्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदेपदे ॥' कृतान्तः शनिः ॥ 'तस्य सर्वेषां धिक्खानं गुरुदेवाग्नि-
पूजनम्' ॥ वृद्धमनुः- 'मृते जन्मानि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा । अस्पृश्यस्पर्शने
चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥' अत्र जन्मतिथिरौदयिकी ग्राह्या । 'युगाद्या वर्षवृद्धिश्च
सप्तमी पार्वतीप्रिया । रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥' इति कृत्यतत्त्वार्णवे
वचनात् । विशेषो मत्कृतशुद्धधर्मे ज्ञेयः ।

अथ कटिसूत्रम् । प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे- 'प्रतिसंवत्सरन्तर्क्षे वक्ष्ये नृणां विधिं

कटिसूत्रम् ।

परम् । दत्त्वा गोभूहिरण्यादि तथा स्वर्णादिनिर्मितम् ॥ वध्नीयात्काटि-
सूत्रं च वासःसंगृह्य नूतनम् । दूर्वाङ्कुरैरथाज्येन चरुणा वा पिनाकि-
नम् । आयुष्यहोमं कृत्वा च तर्पयेत् पितृदेवताः ॥'

अथ चौलम् ॥ प्रयोगपारिजाते षड्गुरुशिष्यः- 'जाताधिकाराजन्मादि

चौलम् ।

तृतीये द्वे तु चौलकम् । आद्येन्द्रे कुर्वते केचित्पञ्चमेन्द्रे द्वितीयके ॥
उपनीत्या सहैवेति विकल्पाः कुलधर्मतः ॥' बृहस्पतिः- 'तृतीयेन्द्रे
शिशोर्गर्भाजन्मतो वा विशेषतः । पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रियाः पुंसोपि वा समम्' ॥ तत्रैव
नारदः- 'जन्मतस्तु तृतीयेन्द्रे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः ॥ पञ्चमे सप्तमे वापि जन्मतो

मध्यमं भवेत् ॥ अधमं गर्भतः स्यात् नवमैकादशोपि वा ॥' इति ॥ पारिजाते बृहस्प-
तिः-‘उत्तरायणगे सूर्ये विशेषात्सौम्यगोलके । शुक्लपक्षे शुभं प्रोक्तं कृष्णपक्षे शुभेतरत् ॥
अशुभान्यत्रिभागः स्यात्कृष्णपक्षे त्रिधाकृते ॥’ तत्रैव वसिष्ठः-‘द्वित्रिपञ्चमसप्तम्या-
मेकादश्यां तथैव च । दशम्यां च त्रयोदश्यां कार्यं क्षौरं विजानता ॥’ नृसिंहीये-
‘षष्ठ्यष्टमी चतुर्थी च नवमी च चतुर्दशी । द्वादशी दर्शपूर्णं द्वे प्रतिपच्चैव निन्दिताः ॥’
वसिष्ठः-‘खेरङ्गारकस्यैव सूर्यपुत्रस्य चैव हि । निन्दिता दिवसाः क्षौरे शेषाः कार्य-
कराः स्मृताः ॥’ ज्योतिर्निबन्धे बृहस्पतिः-‘पापग्रहाणां वारादौ विप्राणां शुभदं
रवौ । क्षत्रियाणां क्षमासूनौ विद्यूद्राणां शनौ शुभम् ॥ हस्ताश्विषणुपौष्णाश्च श्रविष्ठा-
दित्यपुष्यभम् । सौम्यचित्रे नवक्षौरे उत्तमा नव तारकाः ॥ त्रिण्युतराणि वायव्यं रोहि-
णी वारुणं तथा । क्षौरे षण्मध्यमाः प्रोक्ताः शेषा द्वादश गर्हिताः ॥ निधने जन्मनक्षत्रे
वैनाशे चन्द्रभेष्टमे । विपत्कारे वधे क्षौरं प्रत्यरे च विवर्जयेत् ॥’ अत्र लग्नशुद्धिरन्ये च
योगाः ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयाः । अन्ये च विशेषाः स्मश्रुकर्मनिर्णये वक्ष्यन्ते ॥

एतच्च शिशोर्मातरि गर्भिण्यां न कार्यम् । तदाह ज्योतिर्निबन्धे मदनरत्ने च
वृद्धगार्ग्यः-‘पुत्रचूडाकृतौ माता यदि सा गर्भिणी भवेत् । शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति
तस्मात्क्षौरं विवर्जयेत् ॥’ अस्यापवादमाह तत्रैव नारदः-‘सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडा-
कर्म न कारयेत् । पश्चाद्वात प्रागथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ यदि गर्भविपत्तिः
स्याच्छिशोर्वा मरणे यदि । सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते ॥’ बृहस्पतिः-
‘गर्भिण्यां मातरि शिशोः क्षौरकर्म न कारयेत् । व्रताभिषेके एवं स्यात्कालो वेदवत्तेष्व-
पि ॥’ अभिषेकः समावर्तनम् । ‘गर्भिण्यामपि पञ्चमासपर्यन्तं न दोषः’ इत्युक्तम् ।
मुहूर्तदीपिकायां गर्गेण-‘पञ्चममासादूर्ध्वं मातुर्गर्भस्य जायते मृत्युः’ इति ।
मदनरत्ने बृहस्पतिः-‘पुत्रचूडाकृतौ माता गर्भिणी यदि वा भवेत् । विपद्यते गुरु-
स्तत्र दम्पती शिशुरवदतः ॥ गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म तु । पञ्चमासादधः
कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥’ गर्गः-‘ज्वरस्योत्पादनं यस्य लग्नं तस्य न कारयेत् ।
दोषनिर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥’ लग्नमिति मङ्गलोपलक्षणम् । ज्योति-
र्गर्गः-‘विवाहोत्सवयज्ञेषु माता यदि रजस्वला । तदा स मृत्युमाप्नोति पञ्चमं दिवसं
विना ॥’ वसिष्ठः-‘यस्य माङ्गलिकं कार्यं तस्य माता रजस्वला ।’ अर्थं तदेव ।
तत्रैव बृहस्पतिः-‘प्राप्तमभ्युदयश्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि । पत्नी रजस्वला चेत्स्यान्न
कुर्यात्तत्पिता तदा ॥ पितेति कर्तृमात्रोपलक्षणम् । संकटे तु वाक्यसारे उक्तम् ।
‘अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे ह्युपस्थिते । श्रियं संपूज्य विधिवत्ततो मङ्गलमाचरेत् ॥’

एतच्च मण्डनोत्तरं कार्यम् । ‘न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्द-
भेदः’ । इति मदनरत्ने वसिष्ठोक्तेः । तत्रैव कात्यायनः-‘कुले ऋतुत्रयादर्वाङ्
मण्डनान्न तु मुण्डनम् । प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलत्रयम् ॥’ तथा वृद्धमनुः-

‘एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥’
आशौचे तु संग्रहे—‘संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते । कूष्माण्डाभिर्घृतं हुत्वा गां च
दद्यात् पयस्विनीम् ॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् ॥’ इति । ज्योतिर्निबन्धे-
‘षष्ठेब्दे षोडशे वर्षे विवाहाब्दे तथैव च । अन्तर्वत्न्यां च जायायां नेष्यते मुण्डनं क्वचित् ॥’
अन्योपि विशेषो वक्ष्यते । दीपिकायाम्—‘न चूडाजन्मभाप्रेयदारुणेषु शनौ कुजे ।
प्रतिपद्भद्रारिक्तासु विद्यारम्भस्तु पञ्चमे ॥’

प्रयोगरत्ने—‘मध्ये शिरसि चूडा स्याद्वासिष्ठानां तु दक्षिणे । उभयोः पार्श्वयोरत्रि-
कश्यपानां शिखा मता ॥’ माधवीयेप्येवम् । आपस्तम्बस्त्वाह—‘तूष्णीं केशा-
न्विनीय यथार्थं शिखानिदधाति । यथार्थं प्रवरः संख्यया तासां मध्यशिखावर्ज-
मुपनयने वपनं कार्यम् । प्रतिदिशं प्रवपति’ इत्युपनयने तेनैवोक्तेः । ‘रिक्तो वा एषो
न पिहितो यन्मुण्डस्तस्म तदपिधानं यच्छिखा’ इति श्रुतेः । ‘विशिखो व्युप-
वीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्’ । इति निषेधाच्च । सत्रे तु वचनात्सशिखं वपनमिति
सुदर्शनभाष्ये उक्तम् । यत्तु—‘कुमारा विशिखा इव’ इति लिङ्गं तच्छन्दोगपरम् ।
अपराकैर्मदनरत्ने च लौगाक्षिः—‘दक्षिणतः कमुञ्जा वसिष्ठानामुभयतोत्रिकश्यपा-
नां मुण्डा भृगवः । पञ्चचूडा अङ्गिरसो वाजिमेके मंगलार्थं शिखिनोऽन्ये यथाकुलधर्मं
वा इति । कमुञ्जा शिखा । वाजिः केशपङ्क्तिः । स्मृतिदर्पणे—‘एका शिखा दक्षि-
णतो वसिष्ठगोत्रस्य पञ्चाङ्गिरसो भृगोस्तु । नैका शिखा कश्यपगोत्रजानां शिखोभय-
त्रापि यथाकुलं च’ ॥ एतच्छूद्रातिरिक्तविषयम् । ‘शूद्रस्यानियताः केशवेशाः’ इति
वसिष्ठोक्तेः । यत्तु पाद्मे—‘न शिखी नोपवीती स्यान्नोच्चरेत्संस्कृतां गिरम् ।’ इति शूद्र-
मुपक्रम्योक्तम् । तदसच्छूद्रस्येति केचित् । विकल्प इति तु युक्तम् । अत एव हारातः
‘स्त्रीशूद्रौ तु शिखां छित्त्वा क्रोधाद्वैराग्यतोपि वा । प्राजापत्यं प्रकुर्यातां निष्कृतिर्नान्यथा
भवेत् ॥ एतत् परिग्रहपक्षे । अत्र देशभेदाद्वचस्थेति दिक् ॥

ज्योतिर्निबन्धे—‘नर्मदोत्तरदेशे तु सिंहस्थे देवमन्त्रिणि ॥ शुभकम न कुर्वीत
निषेधो नास्ति दक्षिणे’ ॥ अत्र भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये—‘निवृत्ते चूड-
होमे तु प्राङ् नामकरणात्तथा । चरेत्सांतपनं भुक्त्वा जातकर्मणि चैव हि ॥ अतोऽन्येषु
तु संस्कारेषूपवासेन शुद्ध्यति’ ॥ एते संस्काराः स्त्रीणाममन्त्रकाः कार्याः । होमस्तु सम-
न्त्रकः । इति प्रयोगपारिजाते । आश्वलायनोपि—‘होमकृत्यं तु पुंवत्स्यात्स्त्रीणां
चूडाकृतावपि’ । इति । मनुरपि—‘अमन्त्रका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः’ । इति ।
होमोप्यमन्त्रक इत्येके संस्काराः स्त्रीणामहोमकास्तूष्णीं स्युरिति स्मृत्यर्थसारे । होमो
नेति वृत्तिकृत् ॥

अथ विद्यारम्भः । मदनरत्ने नृसिंहः—‘अक्षरस्वीकृतिं कुर्यात् प्राप्ते पञ्चम-
 हायने । उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भमासं विवर्जयेत् ॥ ’ दीपिकायाम-
 विद्यारम्भः । ‘वर्षे पजन्यके काले षष्ठीं रिक्तां शनिं कुजम् । अनध्यायान्विना नत्वा
 देवं ग्रन्थकृतं गुरुम् ॥’ श्रीधरः—‘हस्तादित्यसमीरमित्रपुरुजित्पौष्णाश्विचित्राच्युते-
 ष्वाराक्यंशदिनोदयादिरहिते राशौ स्थिरे चोभये ॥ पक्षे पूर्णानिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां
 विहायाष्टमीं षष्ठीमष्टमशुद्धभाजि भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः ॥ ’ विष्णुधर्मोत्तरे—‘पूज-
 यित्वा हरिं लक्ष्मीं तथा देवीं सरस्वतीम् । स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां विद्यां च विशेषतः ॥
 एतेषामेव देवानां नाम्ना तु जुहुयाद् घृतम् । दक्षिणाभिर्द्विजेन्द्राणां कर्तव्यं चात्र पूज-
 नम् ॥ ’ इति ॥

अथ धनुर्विद्या । दीपिकायाम—‘अदितिगुरुयमार्कस्वातिचित्राग्नपिज्यध्रुवहरि-
 वसुमूलेष्विन्दुभागान्त्यभेषु । शनिशशिवध्वारे विष्णुबोधेपि पौषे सुस-
 मयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम् ॥
 धनुर्विद्या ।

अथानुपनीतस्य विशेषः गौतमः—‘प्राशुपनयनात्कामचारवादभक्षाः ’ इति ।
 ‘भक्षणं लशुनादेरपि’ इति हरदत्तः । अपरार्के वृद्धशातातपः—
 अनुपनीते विशेषः । ‘शिंशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम् । रजस्वलादिसंस्पर्शं
 स्नानमेव कुमारके ॥ प्राक् चूडाकरणाद्बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः । कुमारकस्तु विज्ञेयो
 यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ॥ ’ आपस्तम्बोपि—‘अन्नप्राशनात् प्रयतो भवत्यासंवत्सरादि-
 त्येके’ इति गौतमोपि—‘न तदुपस्पर्शनादाशौचम्’ । तस्यानुपनीतस्य चाण्डालादि-
 स्पृष्टस्यापि स्पर्शान्न स्नानम् । इदं च षष्ठवर्षात् प्राक् ऊर्ध्वं तु स्नानं भवत्येव । ‘बालस्य
 पञ्चमाद्वर्षाद्रक्षार्थं शौचमाचरेत्’ इति स्मृतेः । कामचारादिकेप्येवम् । ‘ऊनैकादशवर्षस्य
 पञ्चवर्षात् परस्य च । चरेद्गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ अतो बालतरस्यास्य
 नापराधो न पातकम् ॥’ इति स्मृतेरिति हरदत्तः । स्मृत्यर्थसारेप्येवम् ॥

अथोपनयनम् । आश्वलायनः—‘गर्भाष्टमेष्टमे वाब्दे पञ्चमे सप्तमोपि वा ।

उपनयनम् ।

द्विजत्वं प्राप्नुयाद्विप्रो वर्षे त्वेकादशे नृपः ॥ ’ मनुः—‘ब्रह्मवर्चसका-
 मस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनो-
 ष्टमे ॥’ विष्णुः—‘षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य सप्तमे । अष्टमे सर्वकामस्य नवमे
 कान्तिमिच्छतः ॥ ’ आपस्तम्बः—‘गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयति’ । बहुवचनं गर्भषष्ठ-
 गर्भसप्तमयोः प्राप्त्यर्थमिति सुदर्शनभाष्ये । केचित्तु—विप्रस्य षष्ठं न मन्यन्ते ।
 आपस्तम्बः—‘अथ काम्यानि सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं
 दशमेऽन्नाद्यकाममेकादश इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकाममुपनयेत्’ । गौणकालमाह मनुः—
 ‘आ षोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । आ द्वाविंशाच्छत्रबन्धोरा चतुर्विंशते-

विंशः ॥ ज्योतिर्निबन्धे—‘अग्रजा बाहुजा वैश्याः स्वावधेरुर्ध्वम्वदतः । अकृतोपनयाः सर्वे वृषला एव ते स्मृताः’ ॥

गर्गः—‘विप्रं वसन्ते क्षितिपं निदावे वैश्यं धनान्ते व्रतिनं विदध्यात् । माघादिशुक्लान्तिकपञ्चमासाः साधारणा वा सकलद्विजानाम् ॥’ हेमाद्रौ ज्योतिषे—‘माघादिषु च मासेषु मौक्षी पञ्चमु शस्यते ॥’ कालादर्शे वृद्धंगार्ग्यः—‘माघादिसप्तदशके तु मेखलाबन्धनं मतम् । चूडाकरणमन्त्रं च श्रावणादौ विवर्जयेत् ॥’ मैत्रेयसूत्रेपि—‘वसन्तो ग्रीष्मः शरत् इत्यृतवो वर्णानुपूर्व्येण माघादिषण्मासा वा सर्ववर्णानामेतदुदगयनमनयोर्विकल्पः ।’ इति । अत्रेदं तत्त्वम्—नात्र वसन्तेनोत्तरायणस्य संकोचः । श्राद्धदर्शस्यापराह्णविधिनैवाधाने वसन्तादेः । कृत्तिकादिने च सायंप्रातर्विधिना यावज्जीवविधेरिव युक्तः । आद्ययोः परस्परव्यभिचारान्नियमः । अंत्ये निमित्ते साङ्गकर्मोक्तेः कालापेक्षा । इह तूत्तरायणं विना वसन्तस्याभावान्नानियमः न वा निमित्तत्वम् । न चैकं वृणीत इतिवदव्युत्थानुवादः । तद्वद्वाक्यभेदापरिहारात् । उत्तरायणविधिवैयर्थ्यात्वनुकल्पोपमिति । माघ आदिर्येषां पञ्चानां एवं षट् ।

पारिजाते बृहस्पतिः—‘क्षपचापकुलीरस्थो जीवोप्यशुभगोचरः । अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु’ ॥ वृत्तशते—‘न जन्माधिषण्ये न च जन्ममासे न जन्मकालीयदिने विदध्यात् । ज्येष्ठे न मासि प्रथमस्य सूनोस्तथा सुताया अपि मङ्गलानि ॥’ राजमार्तण्डः—‘जातं दिनं दूषयते वसिष्ठो ह्यष्टौ च गर्गो नियतं दशात्रिः । जातस्य पक्षं किल भागुरिश्च शेषाः प्रशस्ता खलु जन्ममासि ॥ जन्ममासे तिथौ भे च विपरीतदले सति । कार्यं मङ्गलमित्याहुर्गर्गभागवशौनकाः ॥ जन्ममासनिषेधेपि दिनानि दश वर्जयेत् । आरभ्य जन्मदिवसाच्छुभाः स्युस्तिथयोपरे ॥’ ग्रन्थान्तरे—‘व्रते जन्मत्रिस्वारिस्थो जीवोऽपीष्टोऽर्चनात्सकृत् । शुभोत्तिकाले तुर्याष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात् ॥ शुद्धिर्नैव गुरोर्यस्य वर्षे प्राप्तेष्टमे यदि । चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम् ॥ जन्मभादष्टमे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ । मौक्षीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ’ ॥ नारदः—‘बालस्य बलहीनोपि शान्त्या जीवो बलप्रदः । यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते चोपनायनम्’ ॥ शान्तिश्चाग्रे वक्ष्यते ॥

ज्योतिर्निबन्धे नृसिंहः—‘तृतीया पञ्चमी षष्ठी द्वितीया चापि सप्तमी । पक्षयोरुभयोश्चैव विशेषेण सुपूजिताः ॥ धर्मकामौ सिते पक्षे कृष्णे च प्रथमा तथा । शुक्लत्रयोदशीं केचिदिच्छन्ति मुनयस्तथा’ ॥ टोडरानन्दे वसिष्ठः—‘नैमित्तिकमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपदिनम् । मेखलाबन्धने शस्तं चौले वेदव्रतेष्वपि । प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे न पूर्वा परसंयुता ॥’ एतदतीतकालस्यार्तस्य बटोरुपनयनविषयम् । ‘प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे कदाचिच्छुभगे विधौ । चन्द्रे बलयुते लग्नवर्षाणामपि लङ्घने’ ॥ इति व्यासोक्तेरित्याहुः एवं सप्तम्यपि । तस्या गलग्रहत्वोक्तेः ॥

बृहस्पतिः-‘शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना’ ॥ तथा-‘मिथुने संस्थिते भानौ ज्येष्ठमासो न दोषकृत् ॥’ मदनरत्ने नारदः-‘विनर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलग्रहे । अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥’ अपराह्णस्त्रिधाविभक्त-दिनतृतीयांश इत्युक्तं तत्रैव । वसन्ते गलग्रहो न दोषायेत्यर्थः । नारदः-‘कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादि दिनत्रयम् । त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः ॥’ वसिष्ठः-‘पापांशकगते चन्द्रे अरिनीचस्थितेपि च । अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ अनध्यायस्य पूर्वद्युस्तस्य चैवापरेहनि । व्रतबन्धं विसर्गश्च विद्यारम्भं न कारयेत् ॥’ राजमार्त्तण्डः-‘आरम्भानन्तरं यत्र प्रत्यारम्भो न सिद्ध्यति । गर्गादिमुनयः सर्वे तमेवाहुर्गलग्रहम् ॥’ ज्योतिर्निबन्धे-‘अष्टकासु च सर्वासु युगमन्वन्तरादिषु । अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदास्वपि ॥’ सोपपदास्तु स्मृत्यर्थसारे-‘सिता ज्येष्ठे द्वितीया च अधिने दशमी सिता । चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः ॥’ एवं प्रदोषस्वरूपमाह गोभिलः-‘षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रौ ननाडिका । प्रदोषमिव कुर्वीत तृतीया तु न यामिका ॥’ ज्योतिर्निबन्धे व्यासः-‘या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य । कृष्णे तृतीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥’ अत्रापि कृष्णप्रतिपदज्ज्ञेयम् । यत्तु बृहद्भाग्यः-‘अनध्याये प्रकुर्वीत यस्तु नैमित्तिको भवेत् । सप्तमी माघशुक्ले तु तृतीया चाक्षया तथा ॥ बुधत्रयेन्दुवाराश्च शस्तानि व्रतबन्धने’ ॥ इति तत्प्रायश्चित्तार्थोपनयनविषयम् । ‘स्वाध्यायवियुजो घृताः कृष्णप्रतिपदादयः । प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेखलाबन्धने मता’ ॥ इति तैत्तिरीयैरिति निर्णयामृतकालादर्शौ-‘यद्यप्यथोपेतपूर्वस्येत्युक्ता अनिरुक्तं परिदानं कालश्चेत्याश्वलायनेन पुनरुपनयने कालनियम उक्तस्तथापि निमित्तान्तरमेव सः । तदानीमकरणे तु पूर्वोक्तकालो ज्ञेयः । प्रतिवेदमुपनयने कालनियम इति तु युक्तम् । गर्गः-‘ग्रहे रवीन्द्रोखनिप्रकम्पे केतूद्गमोलकापतनादिदोषे । व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयो दशाहानि वदन्ति केचित् ॥’ संकटे तु ॥ चण्डेश्वरः-‘दाहे दिशां चैव धराप्रकम्पे वज्रप्रपातेऽथ विदारणे च । केतौ तथोल्कांशुकणप्रपाते ज्यहं न कुर्याद् व्रतमङ्गलानि ॥’ तत्रैव-‘वेदव्रतोपनयने स्वाध्यायाध्ययने तथा । न दोषो यजुषां सोपपदास्वध्ययनेपि च ॥’

हेमाद्रौ ज्योतिषे-‘हस्तत्रये पुण्यधनिष्ठयोश्च पौष्णाश्विसौम्यादिति विष्णुभेषु । शस्ते तिथौ चन्द्रवलेन युक्ते कार्यौ द्विजानां व्रतबन्धमोक्षौ ॥’ ज्योतिर्निबन्धे नारदः-‘श्रेष्ठान्यर्कत्रयान्त्येज्यचन्द्रादित्युत्तराणि च । विष्णुत्रयाश्विमित्राब्जयोनिभान्युपनायने ॥’ बृहस्पतिः-‘त्रिषूक्तेषु रोहिण्यां हस्ते मैत्रे च वासवे । त्वाष्ट्रे सौम्यपुनर्वसोरुत्तमं ह्युपनायनम् ॥’ ज्योतिर्निबन्धे-‘पूर्वाहस्तत्रये सार्पश्रुतिमूलेषु बहवृचाम् । यजुषां पौष्णमैत्राकार्दित्यपुण्यमृदुध्रुवैः ॥ सामगानां हरीशार्कवसुपुण्यो-

त्तराश्विभैः । धनिष्ठादिति मैत्राकैष्विन्दुपौष्णेष्वथर्वणाम् ॥' राजमार्तण्डस्तु-ब्राह्मणस्य पुनर्वसुं निषेधयति । 'ताराचन्द्रानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि । पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति ॥'

ज्योतिर्निबन्धे नारदः- 'सर्वेषां जीवशुक्रज्ञवाराः प्रोक्ता व्रते शुभाः । चन्द्राकौ मध्यमौ ज्ञेयौ सामबाहुजयोः कुजः ॥ शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं तथा । शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते ॥' शाखाधिपाश्च रत्नसंग्रहे- 'ऋगथर्व-सामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः । जीवसितौ विप्राणां क्षत्रस्यारोष्णगू विशां चन्द्रे ॥ इति पारिजाते बृहस्पतिः- 'बहवृचानां गुरोर्वारे यजुर्वेदजुषां बुधे । सामगानां धरासूनोरथर्वविदुषां रवेः ॥ अत्र लग्नशुद्ध्यादि दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् । विस्तरभ-यान्नोच्यते ॥

लल्लः- 'व्रतेहि पूर्वसंध्यायां वारिदो यदि गर्जति । तद्दिने स्यादनध्यायो व्रतं तत्र विवर्जयेत् ॥' ज्योतिर्निबन्धे- 'नान्दीश्राद्धं कृतं चेत्स्यादनध्यायस्त्वकालिकः । तदोपनयनं कार्यं वेदारम्भं न कारयेत् ॥' एतद्बहवृचातिरिक्तानाम् ॥ तेषां तद्दिने वेदारम्भाभावात् । अतस्तेषामुपनयनं न भवत्येव । ऐतरेयोपनिषदि मृगादिज्येष्ठान्तं वर्षर्तुः । तं विना वर्षादौ त्रिरात्रमनध्यायः इति वेदभाष्ये उक्तम् । एतच्च प्रातःस्तनिते सायं स्तनितं तु दिवैव चरुं श्रपयित्वा सायंसंध्योत्तरं होमं कुर्यात् । 'न संध्या-गर्जिते काले न वृष्टयुत्पातदूषिते । ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वं चेन्न निवर्तते ॥ ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वमन्नं न दुष्यति' ॥ इति संग्रहोक्तेः प्रयोगरत्ने भट्टचरणाः ॥

अत्र शान्तिरप्युक्ता नृसिंहप्रसादे- 'ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं यदि । तदा विघ्नकरं ज्ञेयं बटोरध्ययनस्य तत् ॥ तस्य शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियज्ञौ भवेत् ॥ सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान् पठेत् प्रज्ञाविवृद्धये । गायत्री चैव मन्त्रः स्यात् प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा ॥ धेनुं सवत्सकान् दद्यादार्चाय पयस्विनीम् । ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत्' ॥

उपनयने चाधिकारिणः माधवीये बृद्धमनुनोक्ताः- 'पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः । उपायनेधिकारी स्यात् पूर्वाभावे परः परः ॥' प्रयोगरत्ने- 'पितैवोपनयेत् पुत्रं तदभावे पितुः पिता । तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सादरः ॥ पितेति विप्रपरं न क्षत्रियादेः । तेषां पुरोहित एव । उपनयनस्य दृष्टार्थत्वात् । तेषां चाध्यापनेऽनधिकारात् अत्र पितृव्यस्य ज्येष्ठभ्रात्रभावेधिकारः । 'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्व-संस्कृतैः' ॥ इति याज्ञवल्क्योक्तेः । तेनेदमाविभक्तपरम् । पूर्वं तु विभक्तपरम् । मातृ रजोदोषे तु प्रागुक्तम् ।

अथ षण्ठमूकादीनां विशेषः ॥ प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे- 'ब्राह्मण्यां ब्राह्म-णाज्जातो ब्राह्मणः स इति श्रुतिः । तस्मान्न षण्ढबधिरकुब्जवामनपद्भुषु । जडगद्गद-

रोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु ॥ मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये । ध्वस्तपुं-
स्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् ॥ मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्यायिति केचित् प्रचक्षते ।
कर्मस्वनधिकाराच्च पातित्यं नास्ति चेतयोः ॥ तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा ॥
संस्कारमन्त्रहोमादीन् करोत्याचार्य एव तु । उपनेयांश्च विधिवदाचार्यस्य समीपतः ॥
आनीयाग्निसमीपं वा सावित्रीं स्पृश्य वा जपेत् । कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कार-
येत् ॥ एवमेव द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्डगोलकौ ॥ इति । स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् ।
कुण्डगोलकयोः संस्कार्यत्वं श्राद्धे निषेधश्च क्षेत्रजपुत्रविषयः । अन्यस्य 'विन्ना-
स्वेष विधिः स्मृतः' इति वचनात् । अब्राह्मण्येनोपनयनाद्यप्राप्तेरित्यपरार्कः ।

उपनयनं च कुमारं भोजयित्वा कार्यम् । 'प्रागेवैनं तदहर्भोजयन्ति' इति मदन-
पारिजाते गोभिलोक्तेः । गायत्र्युपदेशश्चेत्तरतोऽग्नेः कार्यः । 'उत्तरेणाग्निमुपविशतः ।
प्राङ्मुख आचार्यः । प्रत्यङ्मुख इतरोऽधीहि भोः' इति शाङ्ख्यायनसूत्रोक्तेः । यद्यपि
कात्यायनेन 'अथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखाय' इत्युक्ता- 'दक्षिणत-
स्तिष्ठत आसीनाय वैके' इति विकल्प उक्तः ॥ तथापि कात्यायनामेव सः बह्वृ-
चानां तूत्तर एव वेदैक्यात् । भिक्षायां विशेषमाह कात्यायनः- 'मातरमेवाग्ने भिक्षेत्' ।
पराशरमाधवीये- 'मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां
प्रथमं या चैनं न विमानयेत् ॥'

अथ संस्कारलोपे शौनकः- 'आरभ्याधानमाचौलात् कालेतीते तु कर्मणाम् ।

संस्कारलोपे ।

व्याहृत्याग्निं तु संस्कृत्य हुत्वा कर्म यथाक्रमम् ॥ एतेष्वेकैकलोपे तु
पादकृच्छ्रं समाचरेत् । चूडायामर्धकृच्छ्रं स्यादापदि त्वेवमीरितम् ॥

अनापदि तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत् ॥' पारिजाते कात्यायनः- 'लुप्ते कर्मणि
सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते । प्रायश्चित्ते कृते पश्चाल्लुप्तं कर्म समाचरेत् ॥' स्मृत्यर्थ-
सारे चैवम् । कारिकायां तु- 'प्रायश्चित्ते कृतेतीते लुप्तं कर्म कृताकृतम् ।' इत्युक्तम् ।
'प्रायश्चित्ते कृते पश्चादतीतमपि कर्म वै । कार्यमित्येक आचार्या नेत्यन्ये तु विपश्चितः ॥
इति त्रिकाण्डमण्डने तु- 'कालातीतेषु कार्येषु प्राप्तवत्स्वपरेषु च । कालातीतानि कृत्वैव
विदध्यादुत्तराणि तु ॥' तत्र सर्वेषां तन्त्रेण नान्दीश्राद्धं कुर्यात् । देशकालकर्त्रैक्यात् ।
'गणशः क्रियमाणानां मातृणां पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादि-
षु ॥' इति छन्दोगपरिशिष्टात् । एतद्ब्रह्मनामपत्यानां युगपत्संस्कारकरणविषयमिति
बोपदेवः । अतीतसंस्काराणां युगपत्करण इत्यन्ये । तत्रापि चौलस्योपनीत्या
सहेतिपक्षे उपनीतिदिन एवानुष्ठानं न पूर्वदिने । सहत्वस्य दिवसैक्ये सन्निकृष्टतरत्वात्
वृद्धाचारोऽप्येवम् ।

उपनीतिदिने मध्याह्नसन्ध्यामाह पारिजाते जैमिनिः- 'यावद्ब्रह्मोपदेशस्तु तावत्सं-
ध्यादिकं च न । ततो मध्याह्नसन्ध्यादि सर्वं कर्म समाचरेत् ॥' इति । ब्रह्म गायत्री । यत्त

वचनम्—‘उपायने तु कर्तव्यं सायसंध्ये उपासनम् । आरभेद्ब्रह्मयज्ञं तु मध्याह्ने तु परेऽ-
हनि ॥’ इति । तच्छाखान्तरविषयमिति पारिजातः । विकल्प इति युक्तं पश्या-
मः । उपनयनाग्निस्त्रिरात्रं धार्यः । ‘अहमेतमग्निं धारयन्ति’ इत्यापस्तम्बोक्तेः ।
बौधायनसूत्रे तु सदा धारणमप्युक्तम् ‘उपनयनादिरग्निष्टोमौपासनमित्याचक्षते ।
पाणिग्रहणादित्येके नित्यो धार्यानुगतो निर्मन्थ्यः’ । इति । इदं जातारणिपक्षे । अन्यथा
मन्थनासम्भवात् । ब्रह्मयज्ञे विशेषमाह तत्रैव जौमिनिः—‘अनुपाकृतवेदस्य कर्तव्यो
ब्रह्मयज्ञकः । वेदस्थान तु सावित्री गृह्यते तत्समासतः ॥’ इति । येषां तद्दिन एव वेदा-
रंभस्तेषां नेदमिति दिक् ॥

अथ ब्रह्मचारिधर्माः । याज्ञवल्क्यः—‘मधुमासाञ्जनोच्छिष्टशुष्कस्त्रीप्राणिहिं-

ब्रह्मचारिधर्माः ।

सनम् । भास्करालोकनाश्लीलपारिवादादि वर्जयेत् ॥’ मनुः अभ्यंगमञ्जनं
चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ।’ वर्जयेदिति प्रकृतम् । पारिजाते कौर्मै—

‘नादर्शं चैव वीक्षेत नाचरेदन्तधावनम् । गुरुच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामतः ॥’
एतन्निषिद्धमध्वादिविषयम् । अन्यस्य गुरुच्छिष्टस्य सर्वदा प्राप्तेः । ‘स चेद्व्य-
धीयीत कामं गुरोश्छिष्टं भेषजार्थं सर्वं प्राश्नीयात्’ इति वसिष्ठोक्तेः । ज्येष्ठ-
भ्रातुरित्यपि ज्ञेयम् । ‘पितृज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोज्यम्’ इत्यापस्तम्बोक्तेः । गुरु-
पुत्रे तु स्मृत्यन्तरे उक्तम् । गुरुवदुरुपुत्रः स्यादन्यत्रोच्छिष्टभोजनात् ॥’ प्रचेताः—
‘ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् । यातिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च
विवर्जयेत् ॥’

यमः—‘मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः । कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी
त धारयेत् ॥ अग्नीन्धनं भैक्ष्यचर्यामधःशय्यां गुरोर्हितम् ।’ कुर्यादिति शेषः ।

मेखलामाहाश्वलायनः—‘तेषां मेखला मौञ्जी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्यावी
वश्यस्य’—इति । आचार्यः—‘त्रिवृता मेखला कार्या त्रिवारं स्यात्समावृता । तद्वन्धय-
स्त्रयः कार्याः पञ्च वा सप्त वा पुनः ॥’ मनुः—‘मौञ्जी त्रिदत्समा श्लक्ष्णा कार्या
विप्रस्य मेखला । त्रिवृता ग्रंथिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ मौञ्ज्यभावे तु कर्तव्या
कुशाश्मन्तकवस्त्रजैः ।’ अत्र प्रवरसंख्यानियम इति वृद्धाः ॥

अथ दण्डाः मनुः—‘ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ । पैप्पलोदुम्बरौ
वैश्यो दण्डानर्हति धर्मतः’ ॥ एषामभावे गौतमः—‘यज्ञियो वा सर्वेषां मूर्धललाटनासा-
प्रमाणः’ इति ।

अजिनमाहाश्वलायनः—‘अहतेन वाससा संवीतमैणेयेन वाजिनेन ब्राह्मणं रौर-
वेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम्’ इति । यद्यप्यैणेयशब्देन मृगीचर्मैवोच्यते ‘एण्या ठञ्ज’ इति
पाणिनिस्मृतेः । ‘ऐणेयमेण्याश्चर्मद्यमेणस्यैणसुभे त्रिषु’ ॥ इति अमरकोशाच्च ।

तथापि 'कृष्णरुरुवस्तान्यजिनानि' इति शंखोक्तेः ॥ 'सर्वेषां वा रौरवम्' इति यमो-
क्तेश्च मृगचर्मणा सह विकल्पो ज्ञेयः । वस्त्राजिनयोस्तु विकल्पः । 'वार्पासं वा विकृ-
तम्' इति गौतमोक्तेः ॥

अथ यज्ञोपवीतम् । मनुः- 'कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृतम् ॥'

यज्ञोपवीतम् ।

पारिजाते देवलः- 'कार्पासक्षौमगोवालशणवल्वतृणादिकम् । यथा-
संभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥ शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहतांगु-
लिमूलेक । आवर्त्य पण्णवत्या तत्रिगुणं कर्त्य यत्नतः ॥ अब्लिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षा-
ल्योर्ध्ववृतं त्रिवृतम् । अप्रदक्षिणमावृत्य सावित्र्या त्रिगुणाकृतम् ॥ ततः प्रदक्षिणावर्त्तं समं
स्यान्नवसूत्रकम् । त्रिगवेष्ट्य दृढं बद्ध्वा ब्रह्मविष्णुशिवरत्नमेतत् ॥' तन्नवतन्तु कार्यम् ।
'सावित्र्या त्रिगुणं कुर्यान्नवसूत्रं तु तद्भवेत्' इति तेनैवोक्तेः ॥ छन्दोगपरिशिष्टे-
त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् । त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ॥
ऊर्ध्ववृतं दक्षिणं करमूर्ध्वं कृत्वा वलितम् ॥ भृगुः- 'वामावर्तवलितं त्रिगुणं कृत्वा दक्षि-
णावर्तवलितं त्रिगुणं कार्यम् ।' स एकस्तन्तुरेवं त्रितन्तुकमित्यर्थः । कात्यायनः-
पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् । तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं नचोच्छि-
तम् ॥' वसिष्ठः- 'नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपःक्षयः । तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुप-
वीतं विचक्षणः ॥' पारिजाते देवलः- 'उपवीतं बटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते । एक-
मेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥' स एव- 'बहूनि वायुष्कामस्य' तत्र मन्त्र-
माह स एव- 'यज्ञोपवीतमिति वा व्याहृत्या वापि धारयेत् ॥' हेमाद्रौ- 'यज्ञोपवीते द्वे
धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि । तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावे तदिष्यते ॥' देवलः-
'सावित्र्या दशकृत्वोद्भिर्मंत्रिताभिस्तदुक्षयेत् । विच्छिन्नं चाप्यधोयातं भुक्त्वा निर्मितमु-
त्सृजेत् ॥' मनुः- 'मेखलामाजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि
गृहीतान्यानि मन्त्रतः ॥'

अथैतल्लोपे प्रायश्चित्तम् । मनुः- 'अकृत्वा भैक्ष्यचरणमसमिध्य च पावकम् ।
अनानुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥' अमत्या आपदि त्यागे तु याज्ञवल्क्यः-
'भैक्ष्याग्निकार्ये त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमनानुरः । कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् ॥
उपस्थानं ततः कुर्यात्समासिश्चन्त्वने तु ॥' मन्त्रास्तु मिताक्षरायां ज्ञेयाः ।
सकृदलोपे तु ऋग्विधाने- 'मानस्तोके जपन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालोपे । अग्निकार्यं विना
भुक्तौ न पापं ब्रह्मचारिणः ॥' स्मृत्यर्थसारे तु- 'संध्याग्निकार्यलोपे स्नात्वाऽष्टसहस्रं जपः ।
भिक्षालोपेऽष्टशतम् । अभ्यासे द्विगुणम् । पुनः संस्कारश्चेत्युक्तम् ॥ अपराकं संवर्तः-
'यः संध्यां चैव नोपास्ते अग्निकार्यं यथाविधि । गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा
समाहितः ॥'

अग्निकार्यं संध्यादये कार्यम् । 'अग्निकार्यं ततः कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि' । इति याज्ञवल्क्योक्तेः । सायमेव वा । 'सायमेव वाग्निमिन्धीतेत्येके' इति लौगाक्षिणोक्तेः ॥ पारिजाते वृद्धशातातपः 'ब्रह्मचारी तु योश्नीयान्मधु मांसं तथैव च । प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥' ऋग्विधाने—'तं वो विद्या जपेन्मन्त्रं लक्षं चैव शिवालये । ब्रह्मचारी स्वधर्मेषु न्यूनं चेत् पूर्णमेति तत्' ॥

स्त्रीसङ्गे तु मनुः—'अवकीर्णी तु कामेन गर्दभेन चतुष्पथे । स्थालीपाकविधानेन यजेद्वै निर्वहति निशि' ॥ विस्तरस्तु मिताक्षरादौ ज्ञेयः । उपवीतनाशे तु हारीतः—'मनोव्रतपतीभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा पुनः प्रतीयात् ॥' तत्रैव मरीचिः—'ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विष्णुत्रे कुरुतेथ वा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्धयति ॥' मनुः—'भोशब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोभिवादने । आयुष्मान् भव सौम्योति वाच्यो विप्रोभिवादने ॥ आकारश्चास्य नाम्नोन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥' शर्मन्निति नकारात् पूर्वं इत्यर्थः अभिवादने प्रत्यभिवादानादौ विशेषः स्मृत्यर्थसारे पारिजातादौ ज्ञेयः । यमः—'ज्यायानपि कनीयांसं संध्यायामभिवादयेत् विना शिष्यं च पुत्रं च दौहित्रं दुहितुः पतिम् ॥

अथ पुनरुपनयनम् । पारिजाते शातातपः—'लशुनं गृह्णन् जग्ध्या पलाण्डुं च तथा शुनम् । उष्ट्रमानुषकेभाश्वरासभीक्षीरभोजनात् ॥ उपायनं पुनः कुर्यात्तत्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः' । इति हेमाद्रौ वृद्धमनुः—'जीवन्यादि समागच्छेद् घृतकुम्भे निमज्ज्य च । उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत्' तत्रैव पाद्मे—'प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनः संस्कारमर्हति ॥' चन्द्रिकायां बौधायनः—

'सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यन्तवासिनः । अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च गत्वा संस्कारमर्हति ॥' हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे वृद्धगौतमः—'खरमुष्ट्रश्च महिषमनङ्गाहमजं तथा । वस्तमारुह्य सुवजः क्रोशे चान्द्रं विनिर्दिशेत् ॥' मार्कण्डेयः—'खरमारुह्य विप्रस्तु योजनं यदि गच्छति । तत्तकृच्छ्रत्रयं प्रोक्तं शरीरस्य विशोधनम् ॥ पुनर्जन्म प्रकुर्वीत घृतगर्भविधानतः' । मदनरत्ने मिताक्षरायां च स्नानमात्रमुक्तम् ॥ मनुः—'अज्ञानात्प्राप्य विष्णुत्रं सुरासंसृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णाद्विजातयः' ॥ मिताक्षरायां पराशरः—'यः प्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्यातो विनिर्गतः । अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेन्निकीर्षति ॥ सञ्चरेन्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च । जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात्' ॥

बौधायनसूत्रे—'अथोपनीतस्य व्रतानि भवन्ति नान्यस्योच्छिष्टं भुञ्जीतान्यत्र पितृज्येष्ठाभ्यां न स्त्रिया सह भुञ्जीत मधुमांसश्चाद्धसूतकान्नानि दशासंधिनीक्षीरं छत्राकानि र्यासौ विलापनं गणान्नं गणिकान्नमित्येतेषु पुनः संस्कारः' ॥ प्रतिषिद्धदेशगमनमित्येके । अथाप्युदाहरन्ति—'सौराष्ट्रसिन्धुसौवीरमवन्तीं दक्षिणापथम् । एतानि ब्राह्मणो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति' ॥ अथ पुनः संस्कारं व्याख्यास्यामो देवयजनप्रभृत्यग्निमुखात् कृत्वा पाला

शीं समिधमाज्येनाऽङ्क्ताभ्याधाय वाचयति । पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः० कामाः स्वाहेति ॥ अथाव्रत्यप्रायश्चित्ते जुहोति यन्म आत्मनो मिदाभूत् ० पुनरग्निश्चक्षुरदादिति द्वाभ्याम् । अथ पक्वाज्जुहोति । 'सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त० घृतेन स्वाहेति' अथाज्याहुतीरुपजुहोति- 'येन देवाः पवित्रेणेति' तिसृभिः 'अनुच्छन्दसं स्विष्टकृत्प्रभृति सिद्धमाधेनुवरदानात्' अथापरमापरिधानात् कृत्वा पालाशीं समिधमाधायाथाव्रत्य प्रायश्चित्ते जुहोत्यथ व्याहृतीर्जुहोति । अथापरो ब्राह्मणवचनादेव सावित्र्या शतकृत्वो घृतमभिर्मज्य प्राश्य कृतप्रायश्चित्तो भवति । गुरोर्वाप्युच्छिष्टं भुञ्जीताथाप्युदाहरन्ति ॥ 'वपनं दक्षिणादानं मेखलादण्डमजिनभैक्ष्यचर्याव्रतानि च निवर्तन्ते पुनः संस्कार-कर्मणि' इति ॥

आश्वलायनगृह्येपि- 'अथोपेतपूर्वस्येत्यादिना पुनःसंस्कार उक्तः । तथा पित्रादिव्यतिरेकेण ब्रह्मचारिणः प्रेतकर्मकरणे पुनरुपनयनमित्यपरार्कादयः ॥ त्रिस्थली-सेतौ- 'कर्मनाशाजलस्पर्शात्करतोयाविलङ्घनात् । गण्डकीबाहुतरणात् पुनःसंस्कारमर्हति ॥' गौडास्तु- 'करतोयाजलस्पर्शात्कर्मनाशाविलङ्घनात्' इतिपठन्ति तत्र ॥ दानधर्मेषु करतोयास्नाने प्राशस्त्योक्तेः । 'करतोये सदानीरे सरिच्छेष्टेति विश्रुते ॥ आप्लावयसि पौराणां पापं हर करोद्भवे' ॥ इति स्मृतिदर्पणचन्द्रिकालिखितस्नानमन्त्राच्च । पराशरः- 'अजिनं मेखला दंडो भैक्ष्यचर्याव्रतानि च ॥ निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि' । हरदत्तस्तु- 'य एकं वेदमधीत्यान्यं वेदमध्येतुमिच्छति तस्य पुनरुपनयनम् । तेन प्रतिवेदमुपनयनं कर्तव्यम्' इत्याह । अन्ये नैतन्मन्यन्ते 'सर्वेभ्यो वै देवेभ्यः सावित्र्यानूच्यते इत्यापस्तम्बोक्तेः ॥

तद्विधिः कारिकायाम्- 'वेदान्तरमधीत्यैव ऋग्वेदं ये त्वधीयते । उपनीतिरियं तेषामलंकरणवर्जिता ॥ यद्वैतदुपनीतस्य प्रायश्चित्तं यदा भवेत् । कृताकृतं च वपनं मेधाजननमेव च ॥ मेधाजननसद्भावे व्रतचर्या भवेदिह । अनुप्रवचनीयश्च तदभावे द्वयं न हि ॥ परिदानं न कार्यं स्यान्निमित्तानन्तरं त्विदम् । पूर्वस्या वाचयेत्स्थाने तत्सवितुर्वृणी महे' ॥ इति । यत्तु हारीतः- 'द्विविधाः द्वियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च । तत्र ब्रह्मवादिर्नानामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्या' इति । 'सद्यो वधूनामुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः' इति । तद्युगान्तरविषयम् । 'पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीवन्धनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा ॥' इति यमोक्तेः ॥

१-वेदानामित्यनेन वेदाङ्गानां शास्त्राणां चाध्यापने न दोषः । अध्ययने तु वेदानामपि न दोषः इति सूच्यते । अन्यथा विवाहप्रकरणोक्ततत्तन्मन्त्रपाठस्य वधूकर्तृकस्यानुपपत्तेः । किंच 'यज्ञे कर्मणि पुनर्नापिभाषन्ते' इति महाभाष्योक्त्या यज्ञकर्मण्यपशब्दभाषणनिषेधे पतिकृत्विगाद्युक्तसंस्कृतशब्दस्या-बोधे सकलं कर्मैव भ्रष्टं स्यात् । वस्तुतस्तु अनेन वाक्येन नारीणामुपदेष्टृत्वं निषिध्यते नोपदेश्यत्वमिति ।

अथानध्यायाः । पारिजाते बृहस्पतिः 'प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्याम्पर्वणो-

अनध्यायाः ।

द्रयाः । श्वेनध्यायेद्यशर्वर्यां नाधीयत कदाचन ॥ ' नारदः—'अयने

विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु

युगादिषु ॥ ' निर्णयामृते—'चातुर्मास्यद्वितीयासु मन्वादिषु युगादिषु । अनध्यायस्तु

कर्तव्यो या च सोपपदा तिथिः ॥ ' गर्गः—'शुचावूर्जतपस्ये च या द्वितीया विधुक्षये ।

चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ' स्मृत्यर्थसारेपि—'आषाढीकार्तिकी-

फाल्गुनीसमीपस्थाद्वितीयासु च' इति । मनुः—'उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं

स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥' इति । उत्सर्गे तु—'मनूक्तपक्षि-

ण्यहोरात्राभ्यान्त्रयहस्य विकल्पः ।' इति विज्ञानेश्वरः । अष्टकाशब्देन सप्तम्या-

दित्रयं ज्ञेयम् । 'तिस्रोष्टकास्त्रिरात्रमन्त्यामेके' इति गौतमोक्तेः । 'ऋत्वन्तास्त्रिति

सौरऋत्वन्तासु चान्द्रान्तस्य पर्वत्वेनैव निषेधसिद्धेः ।' इति सर्वज्ञनारायणः ।

एते नित्याः ।

नैमित्तिकानप्याह याज्ञवल्क्यः—'त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यविगुरुबन्धुषु ।

उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा ॥ संध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपा-

तने । समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥ पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसू-

तके । ऋतुसंधिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जार-

मूषकैः । कृतेन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये ॥' ग्रहणे द्युनिशोक्तावापि ग्रस्तास्ते त्र्यह-

मित्युक्तं प्राक् ॥

स्मृत्यर्थसारे तु—'रात्रौ तु ग्रहे तिस्रो रात्रीः दिवा च त्र्यहम्' इत्युक्तम् । ऋतुः

सौरः । भुक्त्वेत्युत्सवविषयम् । 'ऊर्ध्वं भोजनादुत्सवे' इति गौतमोक्तेः । श्राद्धिकम-

हैकोद्दिष्टभिन्नम् । तत्र तु त्र्यहमिति मनुः । स्मृत्यर्थसारे चैवम् ॥ यत्तु—'पश्चाद्य-

न्तराये त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च ।' इति गौतमोक्तं तत् । प्रथमाध्ययने ।

याज्ञवल्क्यः—'श्वक्रोष्टृगर्दभोलूकसामवाणार्तनिःस्वने । अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशान-

पतितान्तिके ॥ देशेऽशुचावात्मानि च विद्युत्स्तनितसंष्टवे । भुक्त्वाद्रपाणिरम्मोन्तरर्धरात्रे-

त्रिमारुते ॥ पांसुप्रवर्षे दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च

गृहमागते ॥ खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षगिरिरोहणे । सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालि-

कान् विदुः ॥ बाणो वंशः । शततन्तुर्वीणेति हरदत्तः । अमेध्याः सूतिकादयः । स्तनितं

गर्जः । वर्षातोन्त्यत्र गर्जवृष्टिविद्युतां यौगपद्ये आकालिकः । वर्षासु तात्कालिक इति नारा-

यणः । संध्यागर्जे तु हारीतः—'सायंसंध्यास्तनिते रात्रिः । प्रातःसंध्यास्तनितेऽ

होरात्रं रात्रौ विद्युत्पररात्र्यवाधिः ।' 'विद्युति नक्तं चापररात्रात्' इति गौतमोक्तेः ।

'तृतीयदिनांशोत्तरं तु सर्वरात्रम्' इत्याह स एव । त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमिति

अर्धरात्रे मध्ययामद्वयमिति विज्ञानेश्वरः । मध्यदण्डचतुष्टये इति निर्णयामृते ।
 मनुः-‘न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे । न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा
 न सूतके ॥ रुधिरं च श्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥’ कौर्म-‘श्लेष्मातकस्य च्छायायां
 शालमलेर्मधुकस्य च । कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्तयोः ॥’ मनुः-‘शयानः
 प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसस्थिकाम् । नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥’
 प्रौढपादः पादोपरिपाददाता । आसनारूढपादो वेति हरदत्तः । सोपपदास्वपि
 प्रागुक्तम् । स्मृत्यर्थसारे-श्रवणद्वादशीमहाभरण्योः प्रेतद्वितीयायां रथसप्तम्यामाकाशे
 शवदर्शने चाहोरात्रम् । असपिण्डे गुरौ मृते त्रिरात्रम् । आचार्ये उपाध्याये च
 पक्षिणी । आचार्यभार्यापुत्रशिष्येष्वहोरात्रम् । अग्न्युत्पाते गोविप्रमृतौ त्रिरात्रम् ।
 अयने विषुवे च पक्षिणी । अकालवृष्टौ च । आरण्यमार्जारसर्पनकुलपञ्चनखादेरन्त-
 रागमने त्रिरात्रम् । आरण्यश्वसृगालादिवानररजकादौ द्वादशरात्रम् । खरवराहोष्ट्र-
 चाण्डालसूतिकोदक्याशवादौ मासम् । गोगवयाजानास्तिकादौ त्रिमासम् । शश-
 मेषश्वपाकादौ षण्मासम् । गजगण्डसारससिंहव्याघ्रमहापापिकृतघ्नादावब्दमनध्यायः ।
 शोभनदिने चानध्यायः । विवाहप्रतिष्ठोद्यापनादिष्वासमाप्तेः सगोत्राणामनध्यायः ।
 ‘उदयेस्तमये चापि मुहूर्तत्रयगामि यत् । तद्दिनं तदहोरात्रं चानध्यायविदो विदुः ॥’
 ‘केचिदाहुः क्वचिदेशे यावत्तद्दिननाडिकाः तावदेव त्वनध्यायो तत्तन्मिश्रे दिनान्तरे ॥

प्रदोषं त्वाह प्रजापतिः-‘षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषे
 न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिका ॥’ निर्णयामृते गर्गः-‘रात्रौ यामत्रयादवाक्
 सप्तमी वा त्रयोदशी । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ रात्रौ नवसु नाडीषु
 चतुर्थी यदि दृश्यते । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥’ कौर्म-‘अन-
 ध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः । न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत् ॥’ शौन-
 कः-‘नित्ये जपे च काम्ये च क्रतौ पारायणेपि च । नानध्यायोस्ति वेदानां ग्रहणे
 ग्राहणे स्मृतः ॥ इत्यनध्यायाः ॥

अथ महानाम्न्यादिव्रतम् । श्रीधरः-‘तिथिनक्षत्रवारांशवर्गोदयनिरीक्षणम् ।

चौलवत्सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च ॥’ एषां लोपे शौनकः-
 महानाम्न्यादिव्रतम् । ‘व्रतानि विधिना कृत्वा स्वशाखाध्ययनं चरेत् । अकृत्वाभ्यस्यते येन
 स पापी विधिघातकः ॥ प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाज्याहुतीः शतम् । हुत्वा चैव तु
 गायत्र्या स्नायादित्याह शौनकः ॥’ स्मृत्यर्थसारे तु ‘त्रीन् षट् द्वादश वा कृच्छ्रान्
 कृत्वा पुनर्व्रतं चरेत् ।’ इत्युक्तम् ॥

अथ समावर्तनम् । सुरेश्वरः-‘भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते । तारा-

चन्द्रविशुद्धौ च स्यात्समावर्तनक्रिया ॥’ बौधायनसूत्रे तु-‘रोहिण्यां
 समावर्तनम् । तिष्ये उत्तरयोः फाल्गुन्योर्हस्ते चित्रायामैन्द्रे विशाखायां वा स्नायात्’

इत्युक्तम् ॥ वसिष्ठः—‘स्नानं माध्याह्नकाले तु होरायां कारयेच्छुभम् । पूर्वाह्ने तदभावे तु कुर्यात्स्नानं यथाविधि ॥’ ‘सर्व ऋतवो विवाहस्य’ इति सूत्रात् । यदा दक्षिणायने विवाहरतदा समावर्तनमपि तत्रैव । अन्यथोदगयने समावर्तने—‘अनाश्रमी न तिष्ठेत’ इति विरोधः स्यादित्युक्तं सुदर्शनभाष्ये । एतच्च ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम् । तदाह बौधायनः ‘शौचसंध्यादर्भभिक्षाग्निकार्यराहित्यकौपीनोपवीतमेखलादण्डाजिनधारणे दिवास्वापच्छत्रपादुकास्रग्विधारणाङ्गोद्वर्तनानुलेपनाञ्जनघृतनृत्यगीतवाद्याभिरतौ ब्रह्मचारी कृच्छ्रत्रयं चरेत् । महाव्याहृतिहोमं पाहित्रयो-दशहोमं च कुर्यात् । समावर्तनोत्तरं पूर्वमृतानां त्रिरात्रमाशौचं कार्यम् । ‘आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥’ इति मनूक्तेः । आदिष्टी ब्रह्मचारीति विज्ञानेश्वरः । ब्रह्मचर्ये यदि कश्चिन्न मृतस्तदा त्रिरात्रमध्ये विवाहः कार्योऽन्यथा नेति सिद्धयति । जनने तु सत्यपि न त्रिरात्रम् । तत्रातिक्रान्तशौचाभावादुदकं दत्त्वेति वचनाच्चेति दिक् । तत्रापि विकल्पः । पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोन्ते स्याद्भयं वा ब्रह्मचारिणाम् ॥’ इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥

स्नातकव्रतान्याह व्यासः—‘यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम् । छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ ॥ रौक्मे च कुण्डले वेदः कृतकेशनखः शुचिः’ । वेदो दर्भबटुः । मनुः—‘उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् । उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥’ अन्यान्यपि बह्वृचगृह्यस्मृत्यादिभ्यो ज्ञेयानि ॥

अथ छुरिकाबन्धः । ज्योतिर्निबन्धे नारदः—‘छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक् करग्रहात् । विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे ॥ जीवे शुक्ले च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते । मौञ्जीबन्धक्षतिथिषु कुजवर्जितवासरे ॥’ संग्रहे—‘शूद्राणां राजपुत्राणां मौञ्ज्यभावेऽस्त्रबन्धनम् । मौञ्जीबन्धोक्ततिथ्यादौ कार्यं भौमदिनं विना ॥’

अथ विवाहः । याज्ञवल्क्यः—‘अविष्टुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्गहेत् । अनन्य-पूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥ अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानां पंगोत्रजाम्’ । लक्षण्यां बाह्याभ्यन्तरलक्षणैर्युक्ताम् । बाह्यानि काशी-खण्डादौ प्रसिद्धानि ॥ आन्तराण्याश्वलायनोक्तानि—‘अष्टौ पिण्डान्कृत्वा’ इत्यादीनि ॥

१—ऋषीणामियमार्षी, अर्षी गोत्रा पृथ्वी येषु ग्रामेषु ते आर्षगोत्राः, समाना आर्षी गोत्रा येषां तानि समानार्षगोत्राणि—कुलानि तत्र जाता समानार्षगोत्रजा तद्विज्ञाम् । समानार्षी गोत्रजामित्यर्थः ॥ गोत्रप्रवराध्यायप्रसिद्धगोत्रस्यैव ग्रहणेऽत्रार्षपदं व्यर्थं स्यात् ।

मनुः-‘असपिण्डो च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सां प्रशस्ता द्विजातीनां दारक-
र्मणि मैथुने ॥’ दत्रिममातुर्गृहीता अपि सपिण्डा सगोत्रा । तत्कुलनिवृत्तये चकारान्मातु-
रगोत्रा दत्तस्य पितुर्जनककुले पितुरसगोत्रापि सपिण्डत्वान्निषिद्धेत्यन्यश्चकार असपिण्डां
सापिण्डचराहिताम् । तच्चैकशरीरावयवान्वयेन भवति । एकस्य हि पितु-
मातुर्वा शरीरस्यावयवाः पुत्रपौत्रादिषु साक्षात्परम्परया वा शुक्रशोणिता-
दिरूपेणानुस्यूताः । यद्यापि पत्न्याः पत्या सहः भ्रातृपत्नीनां च पस्परं नैतत्सम्भवति
तथापि आधारत्वेनैकशरीरावयवान्वयोस्त्येव । ‘अस्थिभिः अस्थीनि’ इति मन्त्रलिं-
गात् । एकस्य हि पितृशरीरस्यावयवाः पुत्रद्वारा तास्वाहिता इति मदनरत्ने पारि-
जातविज्ञानेश्वरादयः । वाचस्पतिशुद्धिविवेकशूलपाण्यादिगौडमैथि-
लादयोप्येवम् । श्रुतावपि-‘एतत् षाट्कौशिकं शरीरम् । त्रीणि पितृतस्त्रीणि
मातृतोऽस्थिस्नायुमज्जानः पितृतस्त्वङ्मासरुधिराणि मातृतः’ इति । ‘प्रजामनु प्रजा-
यसे’ इति च ।

चन्द्रिकारार्कमैधातिथिमाधवादयस्तु-एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यम् ।
‘लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं
साप्तपौरुषम्’ इति मात्स्योक्तेः । न च पितृव्यादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम् । तत्कर्तृ-
कश्राद्धे दैवतैक्येन तत्सत्त्वात् । देवदत्तकर्तृकश्राद्धे हि ये देवताभूतास्तेषां मध्ये यः
कश्चिदन्यकर्तृकश्राद्धेऽनुप्रविशति तेषां सापिण्ड्यम् । तद्भार्याणामपि भर्तृकर्तृकश्राद्धे
सहाधिकारित्वेन तदन्वयात् । ‘एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके’ इति
स्मृतेश्च । श्रुतीनां च वैराग्यार्थत्वात्तस्य सापिण्ड्यनिमित्तत्वे मानाभावात् । न च
मातुलादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम् । मातामहरूपदैवतैक्यात् । ननु गुरुशिष्यादेरपि
श्राद्धदेवतात्वात्सापिण्ड्यत्वं स्यात् । किं बहुना ‘सर्वाभावे तु नृपतिः कारयेत्तस्य
रिक्थतः’ इति मार्कण्डेयपुराणाद्राज्ञोपि श्राद्धकर्तृत्वात्सापिण्ड्यप्रसंगः । सत्यम् ॥
‘पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ।’ इति याज्ञवल्क्यवचनेन मातापितृसम्बन्ध
एव तत्सत्त्वात् । ऊर्ध्वं सापिण्ड्यं निवर्तत इति शेषः ॥ ननु पञ्चमत्वाद्यत्र नियम्यते न
मातृतः इत्यादिवाक्यमेतत् । मैवम् । मातृकुले पञ्चमत्वस्य पितृकुले सप्तमत्वस्य च बोधने
तुल्यत्वात् पौरुषेयत्वाददोष इति चेत् । तुल्यमन्यत्रापि । अन्यकर्तृके राज्ञस्तपितृणां वा
देवतात्वाभावाच्च । किंच । अवयवान्वयपक्षे यथा योगरूढ्या परिहारस्तथेहापि तेन मातृ-
कुले पितृकुले चैकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यमित्याहुः तेनैकस्य पित्रादयः षट्-
पुत्रादयश्च षट् सपिण्डा भवन्ति ।

अथ केचिदुभयतः सापिण्ड्यनिवृत्तावेवोद्गाहो नान्यथेत्याहुः । शुद्धचिन्तामणिवाच-
स्पतिहरिदत्तादयस्तु सगोत्रत्ववत्सापिण्ड्यस्य सप्रतियोगिकत्वेन संयोगवदुभयनिरू-

प्यत्वात् । एकतो निवृत्तावन्यतो निवृत्तेरावश्यकत्वान्मूलपुरुषमारभ्याष्टमो वरो मूलपुरुष-
मारभ्य द्वितीयातृतीयादिकां कन्यासुद्वहेदित्याहुः । शिष्टास्तु-न वधूवरयोः स्वतः सा-
पिण्डचं किंतु कूटस्थसंततित्वात्तत्सापिण्डचेनैव । अतोष्टमवरं प्रति कन्याया असापिण्डचे-
पि कन्यायाः कूटस्थेन सापिण्डचात्तत्संततित्वाद्द्वस्तां प्रति सपिण्ड एवेत्यविवाहः ।
सापिण्डचासापिण्डचयोः प्रतियोगिभेदेनाविरोधादित्याहुः । इदमेव च युक्तम् । आशौ-
चेप्येवं सापिण्डचं ज्ञेयम् । यत्र तु मध्ये विच्छिन्नमपि सापिण्डचं मण्डूकप्लुतिवत्पुनरनु-
वर्तते । यथा कूटस्थात्पञ्चम्योः कन्ययोः पुत्रौ तत्र निवृत्तिः । तदपत्ययोस्त्वनुवृत्तिस्त-
त्रापि न सापिण्डचासापिण्डचयोर्दोषः । संबन्धिभेदात् । तेन तत्र न विवाहः ।

अत्र कूटस्थमारभ्य गणना कार्या । तदुक्तम्-‘वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि
सप्तमः । पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्डचं निवर्तते ॥’ इति । कूटस्थो मूलपुरुषः । विश्व-
रूपनिबन्धे-‘एवमुक्तप्रकारेण पितृबन्धुषु सप्तमात् । ऊर्ध्वमेव विवाह्यत्वं पञ्चमान्मा-
तृबन्धुतः । संतानो भिद्यते यस्मात् पूर्वजादुभयत्र च । तमादाय गणेद्धीमान् वरं याव-
च्च कन्यकाम्’ ॥ स्मृतितत्त्वे नारदः-‘आसप्तमात् पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः पितृमातृतः ।
अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा’ ॥ अत्र बन्धुभ्य इति पञ्चमीनिर्देशात् पितुः पि-
तृष्वसृपुत्रात्सप्तमी मातुः पितृष्वसृपुत्राच्च पञ्चमीमपि त्यजेत् । एवमन्यबन्धुषु ज्ञेयम् ।
तत्रापि त्रिगोत्रात्येयैर्वागपि विवाहं कुर्यात् । वक्ष्यमाणवचनात् । त्रिगोत्रगणना च मा-
तामहगोत्रापेक्षया । न तु स्वापेक्षया । अन्यथा पितुः पितामहदुहितुर्दोहित्री पुत्री परिणेत्या
स्यात् । वध्वा मातामहगोत्रापेक्षया तु त्रिगोत्रान्तर्गतेन विवाहप्रसङ्ग इति संबन्धत-
त्त्वादयो गौडग्रन्थाः । संबन्धविवेके शूलपाणिरप्याह । ‘पञ्चमात्सप्तमाच्चावागपि
त्रिगोत्रान्तरिता विवाह्या । असंबद्धा भवेन्मातुः पिण्डेनैवोदकेन वा । सा विवाह्या द्विजा-
तीनां त्रिगोत्रान्तरिता च या’ ॥ इति बृहन्मनूक्तेः । ‘सन्निकर्षोपि कर्तव्यं त्रिगोत्रात्
परतो यदि’ इति । देवलोक्तेश्चेति । एतच्च दाक्षिणात्या न मन्यन्ते । यत्तु वसिष्ठः-
‘पञ्चमी सप्तमीश्चैव मातृतः पितृतस्तथा ।’ इति । यच्च विष्णुपुराणम्-‘पञ्चमी मा-
तृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम् । गृहस्थ उद्वहेत्कन्यां न्याय्येन विधिना नृप’ ॥ इति तत्प-
ञ्चमी सप्तमीमतीत्येति व्याख्येयम् ‘पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया । क्रियापरा
अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः’ ॥ इत्यपरार्के मरीचिवचनात् । हारलतायां
शंखलिखितौ-‘सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी । पिण्डश्चोदकदानं च आशौ-
चश्च तदानुगम्’ । गोत्रं सन्तानम् । आशौचं तानभिव्याप्य गच्छतीत्यर्थः ॥

शुद्धिविवेके शुद्धिचिन्तामणौ च ब्राह्मे-‘सर्वेषामेव वर्णानां विज्ञेया साप्तपौरु-
षी । सपिण्डता ततः पश्चात्समानोदकधर्मता ॥ ततः कालवशात्तत्र विस्मृतौ नामगो-
त्रतः । समानोदकसंज्ञा तु तावन्मात्रापि नश्यति ॥’ सप्तोर्ध्वं त्रयः सोदकाः । ततो गोत्र-
जाः । तत्रैव ब्राह्मे-‘अविभक्तधनास्त्वेते सपिण्डाः परिकीर्तिताः ॥’ तेन विभक्तधना-

भावे विभक्तः सापिण्डो धनहारी नान्यथा इत्यर्थः । तेन विवाहे आशौचे धनग्रहणे च त्रिधा सापिण्ड्यम् । यत्तु-‘पञ्चमीं मातृतः परिहरेत्सप्तमीं पितृतस्त्रीन्मातृतः पञ्च पितृतो वा ।’ इति पैठीनसिस्मृतौ त्रीनित्यनुकल्प इति माधवोक्तेः । ‘पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा । दशाभिः पुरुषैः ख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् ॥ उद्धरेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम् ॥ पञ्चमीं तदभावे तु पितृपक्षेप्ययं विधिः ॥ सप्तमीञ्च तथा षष्ठीं पञ्चमीं च तथैव च । एवमुद्वाहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः ॥ तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्योऽङ्गिरा यमः ॥’ ‘यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्धरेत् । नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्देदाच्चैतत्प्रदृश्यते ॥’ इति चतुर्विंशतिमतात् । ‘चतुर्थीमुद्धरेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमोपि वा । पराशरमते षष्ठीं पञ्चमो न तु पञ्चमीम् ॥’ इति पराशरोक्तेश्चानुकल्पत्वेनापि पञ्चम्यादिपरिणयनं कार्यमिति प्रतीयते । अत्र हि तदभावे इति स्पष्टमेवानुकल्पत्वमुक्तम् । तत्र यथाश्रुतं ज्ञेयम् । पूर्वोक्तमरीचिवचोविरोधात् । वस्तुनि विकल्पासंभवात् । ‘पञ्चमात्सप्तमाद्धीनां यः कन्यामुद्धरेद्विजः । गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैवमुद्धरन् ॥’ इति विष्णुक्तेः । पराशरस्य मूलाभावाच्च । तस्मान्मदनपारिजाताद्युक्तदिशा दत्तकसापत्नसम्बन्धाह्यनुप्रवेशे ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिसापिण्डविषये वा पूर्वोक्तानि नेयानि । न त्वनुकल्प इति श्रमितव्यम् ।

यत्तु स्मृतिचन्द्रिकामाधवादय आहुः-‘तृतीये संगच्छावहै, चतुर्थे संगच्छावहै’ इति शतपथश्रुतेः । ‘तृतां जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयीवपामिव’ इति । गर्भे नु नौ जनिता दम्पतीकविति च मन्त्रवर्णात् । ‘मातृष्वसुतां केचित्पितृष्वसुसुतां तथा विवहन्ति कचिद्देशे संकोच्यापि सापिण्डताम् ॥’ इति शातातपोक्तेश्च मातुलकन्योद्वाहोपि कार्यः । यद्यपि पितृष्वसृकन्योद्वाहोपि प्राप्तस्तथापि ‘अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु ।’ इति निषेधाद्वचनान्तरेण तदुद्वाहस्याविधानाच्च न कार्यः । अयं तु दाक्षिणात्यशिष्टाचारात् कार्य इति । न च पूर्वोक्तश्रुतीनामर्थवादमात्रता । मानान्तरेणासिद्धौ ‘उपारि हि देवेभ्यो धारयति’ इतिवदनुवादानुपपत्त्या विधिकल्पनात् । यत्तु शातातपः-‘मातुलस्य सुता-मृद्धा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’ यच्च मनुः-‘पैतृष्वसेयी भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुरास्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ एतास्तिस्त्रस्तु भार्यायै नोपयच्छेत् बुद्धिमान् ॥’ यच्च व्यासः ॥ ‘मातुः सापिण्डाद्यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः ।’ इति तद्गान्धर्वादिविवाहोद्वाहमातृविषयम् । तत्र पितृगोत्रानिवृत्तेः । अत एव मार्कण्डेयपुराणम्-‘गान्धर्वादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित् ।’ इति । ब्राह्मादिविवाहे तु परिणयैवेति । भट्टसोमेश्वरोपि-‘तृतीयेऽध्याये वाक्यपादे मातुलकन्योद्वाहमुद्वाह्यत्वं स्मृतिविरोधेनाचारप्राप्तस्यास्य वार्तिकबाधोक्तावपि पूर्वोक्तश्रौतलिङ्गबली-

यस्त्वादस्य कर्तव्यतामाह । तदेतद्वत्तकस्य पालकदत्त्रिममातृसोदरकन्याविषयत्वेनासवर्ण-
मातुलकन्याविषयत्वेन युगान्तरपरत्वेन चोपपन्नमपि अविचारितरमणीयं यथा तथास्तु
तथापि कलौ तावन्निषिद्धमेव । 'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा' इत्यादि
पुराणात् । माधवीये ॥ बौधायनोप्यस्य निन्दामाह- 'पञ्चधा विप्रतिपत्तिर्दक्षि-
णतस्तथोत्तरत ऊर्णाविक्रयोनुपेतेन स्त्रिया च सह भोजनं पर्युषितभोजनं मातुलपितृष्व-
सृदुहितृपरिणयनमिति' । अथोत्तरतः सीधुपानादिकमुक्त्वा इतर इतरस्मिन् कुर्वन्
दुष्यति इतर इतरस्मिन्निति भट्टसोमेश्वरेणापि स्मृतिविरुद्धानां मातुलकन्योद्वाहादी-
नामस्माद्वचनादप्रामाण्यमित्युक्तम् । बृहस्पतिरपि- 'उदूह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता
द्विजैः । मत्स्यादाश्च नराः पूर्वं व्यभिचारस्ताः स्त्रियः ॥ उत्तरे मद्यपाश्चैव स्पृश्या नृणां
रजस्वलाः ।' इत्यनाचारत्वमाह ॥ अत एव हेमाद्रौ मातस्ये कर्णाटकादीनां तत्कारिणां
श्राद्धे निषेधः । बोपदेवेनापि लिखितं ब्राह्मम्- 'यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वै वृषली-
पतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम् ॥' इति । तस्मान्मातुतः पञ्च
पितृतः सप्त त्यक्तोद्वाहेदिति सिद्धम् ॥

संबन्धविवेके सुमन्तुः- 'ब्राह्मणानामेकपिण्डस्वधानामादशमाद्वर्गविच्छित्तिर्भवति ।
आसप्तमाद्रिकथविच्छित्तिर्भवति । आतृतीयात्पिण्डविच्छित्तिरन्यथा पिण्डशौचक्रिया-
विच्छेदाद्ब्रह्मतुल्यो भवति' । अस्यार्थमाह शूलपाणिः- 'जीवत्पित्रादित्रिकस्य
वृद्धप्रपितामहादयस्त्रयः श्राद्धदेवतात्वात्पिण्डभाजो भवन्ति । तदूर्ध्वं त्रयो नवपुरुषपर्यन्ता
लेपभाजः । श्राद्धकर्ता च दशम इति दशमादूर्ध्वं सापिण्डचनिवृत्तिः । दशमादित्युपल-
क्षणम् । तेन पितृपितामहजीवने नवपुरुषपर्यन्तं पितृजीवने चाष्टपुरुषपर्यन्तं सापि-
ण्डयमिति ज्ञेयम् ॥ अपुत्रधनग्रहणे संनिहिताभावे सप्तपुरुषपर्यन्तप्रधिकारः ।
धनग्राहिणमारभ्य तृतीयः पौत्रः तदूर्ध्वं श्राद्धविच्छेदः । अन्यथा धनहारित्वे
ऽपुत्रश्राद्धाकरणे ब्रह्महत्येत्यर्थः । आतृतीयादित्यनूढकन्याविषयम् । 'अप्रत्तानां तु-
स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वसिष्ठोक्तेः । एतच्चाशौचविषयं सापिण्डयं
न तु विवाहादौ तत्र पूर्वोक्तवचनैः पञ्चमत्वसप्तमत्वनियमादिति मेधातिथि-

१-कलावपि येषां कुले देशे अनुकल्पत्वेन सापिण्डयसंकोचः परम्परया समागतः तेषां तादृ-
शसंकोचेन विवाहे न दोषः । अस्ति च भार्यात्वोत्पत्तिः । अन्येषां तैः सह व्यवहारे नैव दोषः ।
हेमाद्र्यादौ श्राद्धनिषेधोपि स्वकुलदेशे परम्परयाऽनागतसापिण्डयसंकोचेन कृतविवाहविषय एवेति
बोध्यम् । इति संस्कारकौस्तुभः । ग्रन्थकर्तुराशयस्तु परम्पराशब्दोपादानेन पितृपितामहादिभिः सर्वै-
र्मातुलकन्यैव परिणीता इति व्याख्यानसम्भवे प्रथमं तदाचारप्रवर्तके प्रत्यवायं को निवारयिता ।
मध्येऽकस्मान्मातुलकन्याया अपरिणये परम्परोच्छेद इति । २-निरामिषश्राद्धनिन्दाप्रदर्शकेनानेन
वाक्येनापि कलिभिन्नयुगेऽपि मातुलकन्योद्वाहनं निषिध्यते ।

प्रमुखा दाक्षिणात्याः । वाग्दानोत्तरमेतदिति शुद्धिविवेकः । मातृकुलविषयं कानूनिकन्यकाविषयं चैतत् । अन्यथा 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् । प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं ग्राह देवः प्रजापतिः' ॥ इति कौर्मण विरोधः स्यादिति रत्नाकरस्मृतितत्त्वादिति गौडग्रन्थाः । युक्तं चैतत् । अन्यथा कन्योत्पत्तौ पुरुषत्रयपर्यन्तमेव सूतकं स्यान्नोर्ध्वम् ॥

सापत्नमातामहकुले त्वाह मिताक्षरायां शंखः- 'यद्येकजाता बहवः पृथक्क्षेत्राः पृथक्जनाः । एकपिण्डाः पृथक्शौचाः पिण्डस्त्वावर्तते त्रिषु ॥ पृथक्क्षेत्राः भिन्नजातीयस्त्रीषु जाताः । पृथक्जनाः सजातीयभिन्नमातृषु जाताः । अत्र त्रिपुरुषं सापिण्ड्यमिति विज्ञानेश्वरो व्याचख्यौ । पृथ्वीचन्द्रोदये सापिण्ड्यदीपिकायां चैवम् । मदनपारिजाते तु-पृथक्क्षेत्रजाः भिन्नमातृजाः पृथक्जनाः भिन्नजातीयाः । एतद्विजातीयसापत्नमातृकुले चतुःपुरुषं सापिण्ड्यम् । 'पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा ॥' इति वसिष्ठोक्तेः । सप्तमीमिति ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिदारोत्पन्नपितृकुलविषयं चेत्युक्तं तत्स्वकपोलकल्पितत्वात् ग्रन्थान्तरविरोधाच्च निर्मूलम् । 'पितृपत्न्यः सर्वा मातरः' इत्युक्ता सुमन्तुना 'तदपत्यानि भागिन्यानि' इति पृथङ्निषेधाच्च । अन्यथा सापिण्ड्यत्वेन निषेधात् सपत्नमातुलत्वादिनिर्देशो व्यर्थः । अत एव तेन स्मृति कौमुद्यां सर्वसापत्नमातामहकुलपरत्वेन तथैव शंखवचनं व्याख्यातम् । तेन वासिष्ठं 'पञ्चमीं सप्तमीमतीत्य' इति व्याख्येयम् । तस्मात् प्राच्येव व्याख्या युक्ता । प्रयोगरत्ने भट्टैः स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु च सपत्नमातामहकुले यावदुक्तं वाचनिकमेव सापिण्ड्यमुक्तम् । यथाह सुमन्तुः- 'मातृपितृसंबन्धा आसप्तमादविवाह्या भवन्ति । आपञ्चमादन्येषां पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तद्भगिन्यो मातृष्वसारस्तद्दुहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिन्यानि । अन्यथा संकरकारिणः स्युस्तथाध्यापयितुरेतदेव' इति । आपञ्चमादिति मातृकुले त्रिगोत्रान्तरितविषयं वेति प्राच्याः । मातृस्ये- 'समानप्रवरा चैव शिष्यसंततिरेव च । ब्रह्मदातुर्गुरोश्चैव संततिः प्रतिषिध्यते ॥' तद्भगिन्यो मातृष्वसार इति तु आकरे न पठितम् । कचिद्वचनादविवाहः । यथा गृह्यपरिशिष्टे- 'अविरुद्धसंबन्धामुपगच्छेत' इत्युक्ता विरुद्धसंबन्धः स्वयमेवोक्तः । 'यथा भार्यास्वसुर्दुहिता पितृव्यपत्नीस्वसा च' इति । बौधायनः- 'मातुः सपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् । पितृव्यपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत्' ॥ अतो मातृष्वसुः सापत्नपुत्रकन्याप्यविवाह्या । 'सापत्नमातृकुलजाम्' इति मदनपारिजातोक्तेरिति केचित् ।

केचित्तु- 'ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः' इति मनूक्तेस्तत्पत्न्याः मातृत्वात्पितुर्मातामहत्वाज्ज्येष्ठभ्रातृपत्नीभगिनी न विवाह्या । तथा- 'उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता ।' इति मनूक्तेर्गुरुणा त्रिपुरुषं सापिण्ड्यं सखापि निर्वाप्यः । अतस्तेषां कन्या

नोदाह्याः । 'गायत्र्या उपदेष्टुश्च कन्यां नैवोद्वहेद्विजः । गुरोश्च कन्यां शिष्यो वा तत्स-
त्त्यापि नेष्यते ॥ पुरुषत्रयपर्यन्तं भ्रात्रादेर्नैतदिष्यते । वाक्सम्बन्धकृतानां तु स्नेह-
सम्बन्धभागिनाम् ॥ विवाहोत्र न कर्तव्यो लोकगर्हा प्रसज्यते ॥' इति वचनाच्चे-
त्याहुः । तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

दत्तकविषये तूच्यते । तत्र गौतमः—'ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातृ-
बन्धुभ्यः' । पञ्चमादिति बन्धुग्रहणान्न दत्तकमात्रपरमिदम् । किन्तु सन्तानेपि । एतत्
क्षेत्रजादिसर्वद्वयामुष्यायणपरमिति हरदत्तः । अत्र स्मृतिचन्द्रिका—'नियोगाय
उत्पादयति तस्माद्बीजिनोप्यूर्ध्वं सप्तमादित्यर्थः' इति । दत्तकस्य जनकविषयमेतदिति
सापिण्ड्यमीमांसायाम् । तेन दत्तकस्य जनककुले साप्तपौरुषं जननीकुले पञ्चपौरुषं
सापिण्ड्यम् । 'दत्तक्रीतादिपुत्राणां बीजवस्तुः सापिण्डता । सप्तमी पञ्चमी चैव गोत्रित्व-
पालकस्य च ।' बृहन्मनूक्तेः । 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेश्च । पालकापितृकुले तु पञ्च-
पुरुषम् । तथा चापराकं पैठीनसिः—'त्रीन्मातृतः पञ्च पितृतः पुरुषानतीत्योद्वहेत्'
इति । एतत्स एव व्याचख्यौ दत्तकादीन् पुत्रान् पितृपक्षतो निवृत्तपिण्डगोत्रार्षेयान्प्रत्येत-
दुच्यते पञ्च पितृत इति नान्यान् प्रतीति । यत्तु वृद्धगौतमः—'स्वगोत्रेषु कृता ये
स्युर्दत्तक्रीतादयः सुताः । विधिना गोत्रमायान्ति न सापिण्ड्यं विधीयते ॥' यच्च
वसिष्ठः—'अन्यशाखोद्भवो दत्तः पुत्रश्चैवोपनायितः । स्वगोत्रेण स्वशाखोक्तविधिना
स्यात्स्वशाखभाक् ॥' इति । यच्च नारदः—'धर्मार्थं वर्धिताः पुत्रास्तत्तद्गोत्रेण पुत्रवत् ।
अंशपिण्डविभागित्वं तेषु केवलमीरितम् ॥' तत्पालककुले साप्तपौरुषं सापिण्ड्यं न इत्ये-
वंपरम् । न तु सर्वथा सापिण्ड्यनिषेधपरमिति सापिण्ड्यमीमांसायाम् । मदनपा-
रिजातादपि दत्तकानुप्रवेशेऽल्पं सापिण्ड्यं प्रतिभाति । तथाहि तेन त्रीनतीत्येत्युदा-
हृत्य यस्य माता दत्तपुत्री प्रतिगृहीत्रा पुत्रीकृता तस्याः प्रतिगृहीतृकुले त्रीनतीत्येति ।
पञ्च पितृतः इति यस्य दत्तपुत्रः पिता तस्य दत्तस्य यजनककुलं तद्विषयमित्युक्तम् ।
वस्तुतस्तु पूर्ववचसां महानिबन्धेषु काप्यनुपलम्भादपराकारादिलेखनाभावात् । पूर्वोक्त-
व्यवस्थायाश्च प्रातिभज्ञानतुल्यत्वाद्यैरेतल्लिखितं तेषामेव शोभते ।

मम तु पालककुले एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वरूपं साप्तपौरुषमेव सापिण्ड्यम् ।
'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्जनककुलेपि तावदेव । 'त्रीन् मातृतः' इत्यादि तु सवर्ण-
सापत्नमातृकुलपरम् । 'यद्येकजाता बहवः' इतिशांखैकवाक्यत्वादिति युक्तं प्रति-
भाति । अत एवास्व द्वयामुष्यायणत्वं हेमाद्रिप्रवरमञ्जरीवृत्तिकृन्नारायणा-
दिभिरुक्तम् । भट्टसोमेश्वरेणापि—'पृथायाः कुन्तिभोजस्य पालककन्यात्वेपि ऊर्ध्वं
सप्तमात् पितृबन्धुबीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्दत्तमायाः पृथायाः जनकस्य शूरसेनस्य
कुलेपि साप्तपौरुषं पालककुलेपि तावदेव सापिण्ड्यमुक्तमपि वा कारणग्रहणे

इत्यत्र । सापिण्ड्यदीपिकायां तु दत्तक्रीतादीनां जनकगोत्रेणोपनयने कृते जनक-
कुले साप्तपौरुषं सापिण्ड्यम् । पालकमातापितृकुले त्रिपुरुषम् । पिण्डनिर्वापान्नि-
र्वाप्यलक्षणं त्रिपुरुषं सापिण्ड्यम् । पालकगोत्रेणोपनयने तत्कुले साप्तपौरुषमित्युक्तं
तत्र । 'चूडोपायनसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा
दास उच्यते' ॥ इति कालिकापुराणादुपनयनोत्तरं दत्तकनिषेधात् । त्रिपुरुष-
मित्यत्रापि मूलं मृग्यमित्यलं बहुना ॥

मातापितृद्वारकसापिण्ड्यवतीनां कन्यानामियं संख्या रामवाजपेयिनोक्ता ।
'उद्बोद्धुः पितरौ पितृश्च पितरौ तज्जन्मकृद्दम्पती द्वंद्वं तस्य चतुष्कमष्ट च ततोप्यस्य
क्रमात् षोडश । वंशारम्भकदम्पतीप्रामितिरित्याप्तकक्षं रदा एकैकान्वयकन्यकाः
पितृकुले त्वाप्तकक्षं ब्रुवे ॥ यद्यप्येकस्य बहवः सुताः स्युस्तदपीह तु । सम्बन्धसा-
म्यादेकैकगणितेत्यवधार्यताम् ॥ एकस्मान्मिथुनात्सुतोऽथ दुहिता द्वंद्वद्वयं तद्व्यात्त-
स्माद्वंद्वचतुष्कमष्ट च ततोऽतः षोडशाऽतो रदाः ॥ यावत्सप्तमकक्षमग्निऋतवः कन्या
इहैकान्वये ता दन्तैर्गुणिता रसैकसदृशो वंशे सपिण्डाः पितुः ॥ मातुर्जन्मददम्पती
च मिथुनं द्वंद्वं तयोः सागरास्तस्याः पञ्चमकक्षमष्टमितिरित्येकान्वयः पुंसुते ।
द्वन्द्वाद्वन्द्वयुगं भतोऽप्य इतोऽष्टौ पञ्चकक्षं शरक्षोण्यः सप्तगुणाः शराभ्रविधवो मातुः
सपिण्डाः कुले ॥ कुलद्वयस्य कन्यकायुता मिथः सपिण्डकाः । हिमांशुदृग्धरादृशो
विवाहकर्मवर्जिताः ॥' इति एतच्च सर्ववर्णसाधारणम् । सर्वत्र सापिण्ड्यसद्भावादिति
विज्ञानेश्वरोक्तेः । 'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतः क्रमात् । सपिण्डता निव-
र्तेत सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥' इति हरनाथधृतदेवलवचनाच्च । सम्बन्धतत्त्वे
सुमन्तुः- 'पितृष्वसुसुतां मातृष्वसुसुतां मातुलसुतां मातृसगोत्रां समानार्थी विवाह्य
चान्द्रायणं चरेत्परित्यज्यैनां मातृवद्विभृयात्' इति दिक् । ऋषेरिदमार्थं प्रवरः ।
गोत्रं प्रसिद्धम् । समाने आर्षे गोत्रे यस्य तस्माज्जाता या न भवति ताम् ॥

अथ संक्षेपेण गोत्रप्रवरनिर्णयः । तौ च भिन्नौ निषेधे निर्मितम् ।

गोत्रप्रवरनिर्णयः । 'सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत्' इति आपस्तम्बोक्तेः । 'अ-

समानप्रवरैर्विवाहः' इति गौतमोक्तेश्च । तत्र गोत्रलक्षणमाह

प्रवरमञ्जरीं बौधायनः- 'विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः । अत्रिर्वसिष्ठः
कश्यप इत्येत्ये सप्त ऋषयः । सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टभानां यदपत्यं तद्गोत्रम्' इति ।
यद्यपि केवलभार्गवेष्वार्षिषेणादिषु केवलाङ्गिरसेषु च हरितादिषु च नैतत् । भृग्वंगिरसोरु-
क्तेष्वनन्तर्गतेः तथाप्यत्रेषापत्तिरेवेति केचित् । अत एव स्मृत्यर्थसारे । प्रवरैक्यादेवात्रा-
विवाह उक्तः । यद्यपि वसिष्ठादीनां न गोत्रत्वं युक्तम् । तेषां सप्तर्षित्वेन तदपत्यत्वाभा-

वात् तथैपि तत्पूर्वभावविसिष्टाद्यपत्यत्वेन गोत्रत्वं युक्तम् । अत एव पूर्वेषां परेषां चैत-
द्गोत्रम् । अत्र विशेषोऽस्मत्कृतप्रवरदर्पणे ज्ञेयः ॥

प्रवरास्तु प्रवर्णानि प्रवराः । कल्पकारा हि वासिष्ठेतिहोतावसिष्ठवदित्यध्वर्यु-
रित्यादिना येषां प्रवरणमामनन्ति ते प्रवराः । तच्च वरणं यद्यपि क्वचिद्दृश्यते तथापि
पूर्ववद्विभेदो द्रष्टव्यः । अन्यथा तेषां त्र्यार्षेये एकार्षे इत्यादि निर्देशानुपपत्तेः । अन्ये तु
तद्गोत्राणां त्र्यार्षेय इति भेदमाहुरिति दिक् । तत्त्वं तु गोत्रभूतस्य पितृपितामहप्रपितामहा
एव प्रवराः । 'पितैवाग्रथ पुत्रोथ पौत्रः' इति शतपथश्रुतेः । 'परंपरं प्रथमम्' इत्या-
श्वलायनोक्तेश्च । अत्र विशेषमाह बौधायनः—'एक एव ऋषिवर्यात् प्रवरेष्वनुव-
र्तते । तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्र भृग्वंगिरसां गणात्' इति । स्मृत्यर्थसारे—'प्रीय-
माणा तथा वापि सत्तया वानुवर्तनम् । एकस्य दृश्यते यत्र तद् गोत्रं तस्य कथ्यते ॥'
भृग्वंगिरोगणेषु तु माधवीये स्मृत्यन्तरे—'पञ्चार्षे त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ।
भृग्वंगिरोगणेष्वेव शेषेष्वेकोपि वारयेत्' ॥ शेषगोत्रेषु एकोपि समानः प्रवरो विवाहं
वारयेदित्यर्थः । बौधायनोपि—'भृग्वंगिरसावधिकृत्य द्व्यार्षेयसन्निपाते विवाहत्र्यार्षे-
यसन्निपाते विवाहः पञ्चार्षेयाणाम्' इति भृग्वंगिरोगणेष्वपि जमदग्निगौतमभरद्वाजेष्वेकप्र-
रसाम्ये सर्वेषामप्यसाम्ये वा सगोत्रत्वादेवाविवाह इति दिक् ॥

अथ गोत्राणि प्रवराश्चोच्यन्ते ॥ तत्र बौधायनः—'गोत्राणां तु सहस्राणि
प्रयुतान्यर्बुदानि च । ऊनपञ्चाशदेवेषां प्रवरा ऋषिदर्शनात् ।' तत्र सप्त भृगवः ।
वत्सा विदा आर्ष्टिषेणा यस्का मित्रयुवा वैन्यः शुनका इति । वत्सानां भार्गवच्यावनाप्र-
वानौर्वजामदग्न्येति । भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा । भार्गवच्यावनाप्रवानेति वा ॥
विदानां पञ्च भार्गवच्यावनाप्रवानौर्वजैदेति भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा । एतौ द्वौ जाम-
दग्न्यसंज्ञौ । आर्ष्टिषेणानां भार्गवच्यावनाप्रवानार्ष्टिषेणानूपेति । भार्गवार्ष्टिषेणानूपेति
वा । एषां त्रयाणां परस्परमविवाहः । वात्स्यानां भार्गवच्यावनाप्रवानेति ॥ वत्सपु-
रोधसयोः पञ्च । भार्गवच्यावनाप्रवानवात्सपौरोधसेति । बैजवनिमतिथयोः पञ्च भार्ग-
वच्यावनाप्रवानबैजमतिथेति एते त्रयः क्वचित् । एषामपि पूर्वैरविवाहः । अत्र
तत्तद्गणस्था ऋषयोऽन्यश्च विशेषो मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयः । यस्कानां भार्गव-
वैतहव्यसावेतसेति । मित्रयुवानां भार्गववाध्वश्वदिवोदासेति । भार्गवच्यावनदिवो-
दासेति वा । वाध्वश्वेत्येको वा वैन्यानां भार्गववैन्यपार्थेति । एत एव श्यैताः । शुन-
कानां शुनकोति वा गार्त्समदेति द्वौ वा । भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेति त्रयो वा । वेदवि-
श्वज्योतिषां भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति । शाठरमाठराणां भार्गवशाठरमाठरेति । एतौ
द्वौ क्वचित् । यस्कादीनां स्वगणं त्यक्त्वा सर्वैर्विवाहः । तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे—
'यस्का मित्रयुवा वैन्याः शुनकाः प्रवैक्यतः । स्वस्वं हित्वा गणं सर्वे विवहेयुः
परावैः ॥' इति ।

भृगोः सप्त गणाः ७ ।

वत्साः १, बिदाः २, आर्ष्टिषेणाः ३, यस्काः ४, मित्रयुवाः ५,

वैन्याः ६, शुनकाः ७, इति ।

वत्साः १-(जामदग्न्याः) मूर्कण्डेय माण्डूकेय माण्डव्यादीनि षट्सप्तति ७६ गोत्राणि वत्साः । तेषां—भार्गवच्चावनाप्रवानौर्वजामदग्न्येति पञ्च प्रवराः । वा—भार्गवौर्वजामदग्न्येति त्रयः । वां—भार्गवच्चावनाप्रवानेति त्रयः । (कात्यायनलौगाक्षिसूत्रादौ दार्भ्यादयश्चतुष्पञ्चाशत् ५४, मात्स्ये—नाडायनादयो, द्वाचत्वारिंशत् ४२, एवमन्यत्र बलभृदादयोऽन्येऽपि द्वाविंशतिः, वत्सा उक्तोः) ।

बिदाः २-(जामदग्न्याः) बौधायनविदशैलेत्यादीनि त्रयोदश १३ गोत्राणि बिदाः । तेषां—भार्गवच्चावनाप्रवानौर्वबैदेति पञ्च प्रवराः । वा—भार्गवौर्वजामदग्न्येति त्रयः । (कात्यायनोक्ताः पौलस्त्यादयोऽष्ट ८, मात्स्योक्ता जमदग्न्यादयश्चत्वारोऽन्येऽपि च बिदा इति) ।

आर्ष्टिषेणाः ३-(केवलभृगवः) नैरथ्यादीनि नव ९ गोत्राण्यार्ष्टिषेणाः । तेषां—भार्गवच्चावनाप्रवानार्ष्टिषेणानूपेति पञ्च प्रवराः । वा—भार्गवार्ष्टिषेणानूपेति त्रयः । (कात्या—नेकध्यादयः षट् ६, मात्स्योक्ता भृग्वन्दीयादयः पञ्चा ५ अन्ये चार्ष्टिषेणा इति) ॥ वत्सादित्रयाणां प्रवरत्रयतुल्यत्वात्परस्परमविवाहः ।

वात्स्याः—भार्गवच्चावनाप्रवानेति त्रयः प्रवराः ।

वत्सपुरोधसः—भार्गवच्चावनाप्रवानवत्सपुरोधसेति पञ्च प्र. ।

वैजमथिताः—भार्गवच्चावनाप्रवानवैजमथितेति पञ्च प्र. ॥ वात्स्येत्याद्याधिकमेतद्गणत्रयं क्वचित् एषु मिथः, उपारितनवत्सादित्रयेण चाऽविवाहः ।

यस्काः ४-(के० भृ० मौनमूकवाधुलेत्यादीनि षड्विंशति २६ गोत्राणि यस्काः । तेषां—भार्गववैतहव्यसावेदसेति त्रयः प्रवराः । (मात्स्योक्ताः वीतहव्यादयः षड्विंशतिः २६ कात्या० माधुलादय एकादश ११, इत्यन्ये च यस्काः) ।

मित्रयुवाः ५-(के० भृ०) रौक्यायणनाशोर्येजनगेष्टायनादीनि पञ्चदश १५ गोत्राणि मित्रयुवाः । तेषां—भार्गववाध्याश्वदैवोदाशेति त्रयः प्र० । वा—भार्गवच्यवनदेवोदासेति त्रयः । वा—वाध्यस्वैत्येकः । (कात्या० आश्वलायनादयो नव ९, मा० शालायन्यादयश्चत्वारः ४, इत्यन्येऽपि मित्रयुवाः) ।

१-बौधायनोक्तानीमानि । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । २ एषामपि पूर्वोक्ताः प्रवराः, एवमग्रेऽपि सर्वत्र बोध्यम् ।

वैन्याः६—(के० भृ०) पार्थवाक्कलश्येताद्वयो ३ वैन्याः । तेषां—भार्गववैन्यपार्थेति त्रयः प्रवराः ।
शुनकाः७—(के० भृ०) याज्ञप्यादीनि दश १० । (कात्यायनोक्तानि) शाक्यायनश्रोण्यसनकेति
 (मात्स्योक्तानि) च गोत्राणि शुनकाः । तेषां—शौनकेत्येकः । वा—गार्त्समदे-
 त्येकः । वां—भार्गवगार्त्समदेति द्वौ । वा—भार्गवशौनकहोत्रगार्त्समदेति त्रयः प्रवराः ।

कुत्रचिद्गणद्वयमधिकम् ।

वेदविश्वज्योतिषाः—एषां—भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति त्रयः ।

शाठरमाठराः—एषां—भार्गवशाठरमाठरेति त्रयः प्र० ।

अथाङ्गिरसः । ते गौतमाः भरद्वाजाः केवलाङ्गिरसश्चेति त्रिधा ।
 अत्र गौतमा दश—आयास्याः, शरद्वन्ताः, कौमण्डाः, दीर्घतमसः, औशनसाः,
 कारेणुपालेयः, राहूगणाः, सोमराजकाः, वामदेवाः, बृहदुक्थ्याश्चेति । तत्रायास्या-
 नाम् आंगिरसायास्यगौतमेति । शरद्वन्तानाम् आंगिरसगौतमशरद्वन्तेति । कौमण्डा-
 नाम् आङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवन्तगौतमकौमण्डेति वा । आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षी-
 वन्तेति वा । आङ्गिरसौतथ्यगौतमौशिजकाक्षीवन्तेति वा । आङ्गिरसौशिजकाक्षीवन्तेति
 त्रयो वा । दीर्घतमसाम् आंगिरसौतथ्यकाक्षीवन्तगौतमदीर्घतमसेति । आङ्गिरसौतथ्य-
 दीर्घतमसेति त्रयो वा । औशनसाम् आङ्गिरसगौतमौशनसेति त्रयः । कारेणुपाला-
 नाम् आंगिरसगौतमकारेणुपालेति त्रयः । राहूगणानाम् आंगिरसराहूगणगौतमेति ।
 सोमराजकानाम् आंगिरससोमराजकगौतमेति । वामदेवानाम् आङ्गिरसवामदेव्यगौतमेति ।
 बृहदुक्थ्यानाम् आङ्गिरस बार्हदुक्थ्यगौतमेति । आङ्गिरसवामदेवबार्हदुक्थेति वा । उतथ्या-
 नाम् आङ्गिरसौतथ्यगौतमेति । औशिजानाम् आङ्गिरसौशिजकाक्षीवन्तेत्यापस्तम्बः ।
 आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवन्तेति कात्यायनः । एतौ द्वौ क्वचित् । रघुवानाम् ।
 आङ्गिरसराघुवगौतमेति केचित् । तत्र मूलं चिन्त्यम् । एषां सर्वेषां गौतमानामविवाहः ।

आङ्गिरसगणान्त्रयः ३.

गौतमाः १, भारद्वाजाः २, केवलाङ्गिरसः ३, इति ।

१ गौतमा दश १०—

आयास्याः१—श्रोणीचेषकवाक्षिमूढरथादयो विंशति २० रायास्याः । तेषाम्—आङ्गिरसायास्य-
 गौतमेति त्रयः प्र० ।

शारद्वन्ताः२—अभिजिति रौहिण्यक्षीरकरम्भादयो नवः शरद्वन्ताः । तेषाम्—आङ्गिरसगौतमशा-
 रद्वन्तेति त्रयः प्र० । (कात्या० तौलियादयः पञ्चविंशत् ३५, मात्स्योक्ता उत-
 थ्यादयस्त्रिंशत् ३० इत्यन्येऽपि शारद्वन्ता इति) ।

कौमण्डाः३-मामन्वरेषण मासुराक्षकाष्टरेभ्यादयः सप्त७ कौमण्डाः । तेषाम्-आङ्गिरसौतथ्य-
काक्षीवतगौतमकौमण्डेति पञ्च प्र० । वा-आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवते-
ति पञ्च । वा-आङ्गिरसौतथ्यगौतमौशिजकाक्षीवतेति पञ्च वा-आङ्गिरसौशिज-
काक्षीवतेति त्रयः प्रवराः ।

दीर्घतमसः४-एषाम्-आङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति पञ्च । वा-आङ्गिरसौतथ्यदै-
र्घतमसेति त्रयः ।

औशनसः५-दिश्यादयः सप्त७ औशनसः । तेषाम्-आङ्गिरसगौतमौशनसेति त्रयः ।

करेणुपालयः६-वास्तव्यादयः षट्६ करेणुपालयः । तेषाम्-आङ्गिरसगौतमकरेणुपालेति त्रयः ।

राहूगणाः७-एषाम्-आङ्गिरसराहूगणगौतमेति त्रयः ।

सोमराजकाः८-एषाम्-आङ्गिरससोमराजगौतमेति त्रयः ।

वामदेवाः९-एषाम्-आङ्गिरसवामदेव्यगौतमेति त्रयः ।

बृहदुक्थाः१०-एषाम्-आङ्गिरसबार्हदुक्थगौतमेति त्रयः । वा-आङ्गिरसवामदेव्यबार्ह-
दुक्थेति त्रयः ।

कुत्रचिद्गणद्वयमधिकम् ।

उतथ्याः-एषाम्-आङ्गिरसौतथ्यगौतमेति त्रयः ।

औशिजाः-एषाम्-आङ्गिरसौशिजकाक्षीवतेति त्रय इत्यापस्तम्बः । कात्यायनस्तु-आङ्गिरसां-
यास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति पञ्च ।

राघुवाः-एषाम्-आङ्गिरसराघुवगौतमेति त्रय इति केचित्, मूलन्वत् नृग्यम् ॥

एषां गौतमानां परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात्, "गौतमानां सर्वेषामविवाहः" इति
बोधायनोक्तेश्च

अथ भरद्वाजाः । ते चत्वारः । भरद्वाजाः, गर्गाः, ऋक्षाः, कपयः, इति । भर-
द्वाजानामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्रयः । गर्गाणामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजसैन्य-
गार्ग्येति पञ्च । आङ्गिरससैन्यगार्ग्येति वा । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । भारद्वाजगार्ग्यसैन्येति
वा । गर्गभेदानाम् आङ्गिरसतैत्तिरकापिभुवेति । ऋक्षाणां कपिलानां चाङ्गिरसबार्हस्पत्य
भरद्वाजवान्दनमातवचसेति पञ्च । आङ्गिरसवान्दनमातवचसेति त्रयो वा । कपिलानामा-
ङ्गिरसामहीयवो ऋक्षयसेति । आत्मभुवाम् आङ्गिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यमन्त्रवरात्मभुवेति
पञ्च । अयं कश्चित् । भरद्वाजानां सर्वेषामविवाहः ॥

भारद्वाजगणाश्रत्वारः४ ।

भरद्वाजः१—कान्यायणमङ्गऽदेवाश्वादयोऽशीति ८० भारद्वाजाः । तेषाम्—आङ्गिरसबार्हस्पत्य-
भारद्वाजेति त्रयः । (कात्या० मार्कण्ड्यादयश्चतुश्चत्वारिंशत् ४४, कुक्कोर्जायना-
वापस्तम्बोक्तौ, मात्स्योक्ताः शिलातल्यादयः षोडश १६, इत्यन्येऽपि भारद्वाजाः) ।

गर्गाः२—साम्भरायणसखीनादयो द्वाविंशति २२ गर्गाः । तेषाम्—आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजशैन्य-
गार्ग्येति पञ्च । वा—आङ्गिरसशैन्यगार्ग्येति त्रयः । वा—आङ्गिरसगार्ग्यशैन्येति त्रयः ।
वा—भारद्वाजगार्ग्यशैन्येति त्रयः । [तित्तिरिकापिभूमिस्वन्दिति खण्डितेति गर्गभेदा-
नाम्—आङ्गिरसशैन्यगार्ग्येति त्रय इति कान्यायनः । आङ्गिरसतैत्तिरिकापिभुवेति
त्रय इति मात्स्ये] । (कात्या० कालायनादयोऽष्टादश १८, मा० सभाराटयश्चत्वारिं-
शत् ४०, इत्यन्येऽपि गर्गाः) ।

ऋक्षाः३—रौक्षायणादयः कान्यायनोक्ता नव ९ ऋक्षाः । तेषाम्—आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाज-
वान्दनमातवचसेति पञ्च । वा—आङ्गिरसवान्दनमातवचसेति त्रयः ।

कपयः४—वैतलादयो नव ९ कपयः । तेषाम्—आङ्गिरसामहीयवौरूक्षयसेति त्रयः । (कात्या०
तर्यादयः पञ्चदश १५, तरस्वदादयः षट् ६ हिरण्यकेशिसूत्रेऽधिकाः, मा० कपैतरा-
दयो द्वादश १२ इत्यन्येऽपि कपयः) ।

आत्मभुवः—एषाम्—आङ्गिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यमन्त्रवरात्मभुवेति पञ्च । अयं गणः क्वचित् ॥
एषां सर्वेषां भरद्वाजानां परस्परमविवाहः 'एषामविवाहः', इति बोधायनोक्तेः "भा-
रद्वाजःस्तकपयो गर्गः रौक्षायणा इति । चत्वारोऽपि भरद्वाजा गौत्रैक्यान्नान्वयुर्मि-
थः ॥" इति स्मृत्यर्थसारोक्तेश्च । एषां गौतमादिभिर्भवत्येव विवाहः, द्वित्रिप्रवरा-
ऽसाम्यात्सगोत्रत्वाभावाच्च ।

१ दन्त्यादिरपि क्वचित् ।

अथ केवलाङ्गिरसः । ते च षट्-हारिताः, कुत्साः, कण्वा, रथीतराः, मुद्रलाः,
विष्णुवृद्धाश्चेति । हारितानां आङ्गिरसांबरीषयौवनाश्चेति । आद्यो मान्धाता वा । कुत्सा-
नाम् आङ्गिरसमान्धातुकौत्सेति । कण्वानामाङ्गिरसाजमीढकाण्वेति आङ्गिरसधोरकाण्वेति
वा ॥ रथीतराणामाङ्गिरसवैरूपराथीतरेति । आङ्गिरसवैरूपपार्षदश्चेति वा । अष्टादं-
ष्ट्रपार्षदवैरूपेति वा । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । मुद्रलानामाङ्गिरसभार्म्याश्वमौद्रल्येति ।
आद्यस्ताक्षर्यो वा । आङ्गिरसताक्षर्यमौद्रल्येति वा । विष्णुवृद्धानामाङ्गिरसपौरुकुत्सत्रासदस्य
वेति । एषां स्वगणं विहाय सर्वैर्देवाहो भवति । हारितकुत्सयोस्तु न भवति ॥

३ केवलाङ्गिरसां गणाः षट् ६ ।

हारिताः १—सांख्यदर्भसौभाग्यादयः सप्तदश १७ हारिताः । तेषाम्—आङ्गिरसाम्बरीषयौवना-
श्चेति त्रयः । वा—मान्धाताम्बरीषयौवनाश्चेति त्रयः । (कुत्सपिङ्गशङ्खदर्भाद्य आ-
श्वलायनोक्ताः, खाण्डायनादयः षोडश १६ मात्स्योक्ताः इत्यन्येऽपि हारिताः) ।

कुत्साः २—एषाम्—आङ्गिरस मान्धातु कौत्सेति त्रयः ।

कण्वाः ३—औपमर्कटायनि भास्कल पौलाहत्यादयो नव ९ कण्वाः । तेषाम्—आङ्गिरसाजमी-
ढकण्वेति त्रयः । वा—आङ्गिरस घोरकाण्वेति त्रयः । (कात्या० भण्डादयो दश-
१०, मा. आर्षाद्यादयो द्वादश १२, इत्यन्येऽपि कण्वाः) ।

रथीतराः ४—हस्तिशसकद्राचनादयस्त्रयोदश १३ रथीतराः । तेषाम्—आङ्गिरस वैरूपरार्थीतरे-
ति त्रयः । वा—आङ्गिरसवैरूपणार्षदश्चेति त्रयः । वा—अष्टादंष्ट्रवैरूपपार्षदश्चेति
त्रयः । वा—अन्यद्वयोर्व्यत्ययः ।

मुद्रलाः ५—सूनिच्छत्रहयतारणादयो द्वादश १२ मुद्रलाः । तेषाम्—आङ्गिरसभार्ग्याश्वमौद्रत्येति
त्रयः । वा—आद्यस्तार्क्ष्यः । वा—आङ्गिरसतार्क्ष्यमौद्रत्येति त्रयः । (मात्स्योक्ताः
सात्यमुग्र्यादयो दश १०, अन्येऽपि मुद्रलाः) ।

विष्णुवृद्धाः ६—शळमर्षणमद्रणादय एकादश ११ विष्णुवृद्धाः । तेषाम्—आङ्गिरसपौरुत्स्य
त्रासदश्यवेति त्रयः । (उममित्यादयो दश १० हिरण्यकेशिसूत्रे उक्ताः, जतु-
णादयः सप्त ७ । मात्स्ये, इत्यन्येऽपि विष्णुवृद्धाः) ।

अथात्रयः । ते चत्वारः । आत्रेयाः, वाङ्मतकाः, गविष्ठिराः, मुद्रला इति । आद्या
नामात्रेयार्चनानसस्यावाधेति । वाङ्मतकानां अत्रेयार्चनानशवाङ्मतकोति ॥ धनंजयानाम्
आत्रेयार्चनानसधानञ्जयेति क्वचित् । गविष्ठिराणामात्रेयार्चनानसगविष्ठिरेति । आत्रेय-
गाविष्ठिरपौर्वातिथेति वा । मुद्रलानामात्रेयार्चनानसपौर्वातिथेति । वामरथ्यसुमङ्गलवैज-
वापानामात्रेयार्चनानसार्तिथेति । आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति वा । सुमङ्गलानाम् अत्रि-
सुमङ्गलस्यावाधेति केचित् । अत्रेः पुत्रिकापुत्राणाम् । आत्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति । अत्री-
णां सर्वेषामविवाहः ॥

अत्रयश्चत्वारः ४ ।

अत्रयः १—भूमिच्छान्दिच्छन्दोग्यादयः पञ्चाश ५० अत्रयः । तेषाम्—आत्रेयार्चनानसस्या-
वाधेति त्रयः । (कात्या० शाङ्ख्यादयो विंशति २०, साङ्ख्येयादयो द्वादश १२
मात्स्ये, शाकटायनादयः षोडश १६ अन्यत्रोक्ताः, इत्यन्येऽप्यत्रयः) ।

वाङ्मतकाः २—एषाम्—आत्रेयार्चनानसवाङ्मतकोति त्रयः ।

धनञ्जयाः ३—एषाम्—आत्रेयार्चनानसधानञ्जयेति त्रयः । अयंगणः क्वचित् ।

३-लक्षिव्याख्यावरोधकृदादयो दश १० (कात्या.) पूर्वातिथ्यादयः षोडश १६
 (मात्स्योक्ताः) च गविष्टिराः । तेषाम्-आत्रेयार्चनानसगाविष्टिरेति त्रयः ।
 वा-आत्रेयगाविष्टिरपौर्वीतिथेति त्रयः ।

व्यालसन्ध्यर्णवंबोधाक्षादय एकादश ११ मुद्रलाः । तेषाम्-आत्रेयार्चनानसपौर्व-
 तिथेति त्रयः ।

सुमङ्गल २-वैजवापाः ३-एषाम्-आत्रेयार्चनानसातिथेति त्रयः ।

एषाम्-अत्रिसुमङ्गलस्यावाश्वेति त्रयः । इमेऽपि चत्वारो गणाः इति केचिदाहुः ।

त्र्यक्रेय वामरथ्यादयः सप्त ७ अत्रेः पुत्रिकापुत्राः । तेषाम्-आत्रेय वामरथ्य
 त्रेकेति त्रयः ।

† सर्वेषामत्रीणाम्परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च । अत्रेः पुत्रिकापुत्राणाञ्च
 शल्लगणैरप्यविवाहः । अत्र पूर्वोक्तभृग्वादिष्वत्रिषु च यानि तुल्यानि नामानि,
 गोत्रप्रवरभेदाद्यभिभेदं ज्ञात्वा विवाहः कार्योऽन्यथा न । एवं सर्वत्र ज्ञेयम् ।

मित्राः । ते दश । कुशिकाः । लोहिताः । रौक्षकाः । कामायनाः ।
 । अघमर्षणाः पूरणाः । इन्द्रकौशिका इति । कुशिकानां विश्वामित्र
 लोहितानां विश्वामित्राष्टकलौहितेति । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । वैश्वा-
 साष्टकेति वा । विश्वामित्राष्टकेति द्वौ वा । रौक्षकाणां वैश्वामित्रागा-
 मित्ररौक्षकरैवणेति वा । कामकायनानां वैश्वामित्रदेवश्रवस दैवतर-
 णं वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाजोति । वैश्वामित्राश्मरथवाधूलेति । अघमर्ष-
 णमर्षणकौशिकेति । पूरणानां वैश्वामित्रपौरणेति द्वौ वा वैश्वामित्रदे-
 । इन्द्रकौशिकानां वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति द्वौ ॥ धनञ्जयानां विश्वा-
 ज्ञानजयेति वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाघमर्षणेति वा ॥ क्षीकतानां वैश्वा-
 एते बौधायनोक्ताः । रौहिणानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसरौहिणेति ।
 । यिनवैणवेति । वेणूनां वैश्वामित्रगायिनवैणवेति । जह्नुनां वैश्वामित्रश्म-
 ति । आश्मरथ्यानां वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति । उदवेणूनां वैश्वामि-
 । एते आश्वलायनमात्स्योक्ताः । अन्यैरत्वन्येपि षड्गुणा
 मत्कृतौ ज्ञेयाः । एषां विश्वामित्राणामविवाहः ।

विश्वामित्रगणा दश १० ।

कुशिकाः १—पर्णजंघवारक्यौदल्यादयो द्वाचत्वारिंशत् ४२ कुशिकाः । तेषां—वैश्वामित्रदेवरातौ-
दलेति त्रयः । (देवरातादयो दश १० आपस्तम्बोक्ताः, यज्ञवदादयश्चत्वारः ४
कोशिसूत्रोक्ताः, वैकृत्यादयः पञ्चदश १५ मात्स्योक्ताः, सौरथ्यादयश्चत्वारः ४, इति
केचित्, इत्यन्येऽपि कुशिकाः) ।

लोहिताः २—दाडक्यादयः षट् ६ लोहिताः । तेषां—वैश्वामित्राष्टक—लौहितेति त्रयः । वा—अ-
न्तिमयोर्विपर्यासः । वा—वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाष्टकेति त्रयः । वा—वैश्वामित्रा
ष्टकेति द्वौ ।

रौक्षकाः ३—सौद्वहलादयश्चत्वारो ४ रौक्षकाः । तेषां—वैश्वामित्रगाथिनवैरणेति त्रयः । वा—वैश्वा-
मित्ररौक्षकरैवणेति त्रयः ।

कामकायनाः ४—श्रौमतादयः पञ्च ५ कामकायनाः । तेषां—विश्वामित्रदेशश्रवसदैवतरसेति त्रयः ।

अजाः ५—एषां—विश्वामित्रमाधुच्छन्दसाजेति त्रयः । वा—वैश्वामित्रास्मरथवाधूलेति त्रयः ।

कताः ६—सैरंधादयोऽष्ट ८ कताः । तेषां—वैश्वामित्रकात्यात्कीलेति त्रयः । (इन्दुवर्यादय एका-
दश ११ लौगाक्षिमात्स्योक्ताः, तुङ्गायन्यादयोऽष्ट ८ इति केचित्, इत्यन्येऽपि कताः ।
एवमाश्वलायनोक्ताः, कात्यायनोक्ताः, महाभारतोक्ताश्चाऽन्ये बहवः कता बोध्याः) ।

धनञ्जयाः ७—कारीष्यादयः षट् ६ धनञ्जयाः । तेषां—वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसधानञ्जयेति त्रयः
वा—वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाधमर्षणेति त्रयः । (कर्मध्यादयः सप्त ७ मात्स्योक्ताः,
इत्यन्येऽपि धनञ्जयाः) ।

अघमर्षणाः ८—एषां—वैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति त्रयः ।

पूग्णाः ९—एषां वैश्वामित्रपौरणेति द्वौ वा—वैश्वामित्रदेवरातपौरणेति त्रयः ।

इन्द्रकौशिकाः १०—एषां—वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति द्वौ ।

एते १० बोधायनोक्ता बोध्याः ।

रौहिणाः १—एषां—वैश्वामित्र माधुच्छन्दस रौहिणेति त्रयः ।

रेणवः २—एषां—वैश्वामित्रगाथिन रेणवेति त्रयः ।

वेणवः ३—एषां—वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति त्रयः ।

जह्वः ४—एषां—वैश्वामित्रशालङ्कायनकौशिकेति त्रयः ।

आश्मरथ्याः ५—एषां वैश्वामित्रास्मरथवाधूलेति त्रयः ।

उद्वेणवः ६—एषां—वैश्वामित्र गाथिनवैणवेति त्रयः ।

एते षट् आश्वलायनमात्स्योक्ताः ।

एषां विश्वामित्राणां मिथो विवाहो न भवति । अत्र यद्यपि
अत्रेरेवाऽपरं वंशं तव वक्ष्यामि पार्थिव ।

अत्रेस्सोमस्सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवो नृपः ॥

विश्वामित्रस्सुतपसा ब्राह्मण्यं समवाप्तवान् ।”

इति मात्स्योक्तेः विश्वामित्रस्यात्रिवंशत्वेन परस्परसविवाहः प्रतीयते, तथापि द्वयोर्भिन्नगोत्रत्व-
श्रवणाद्विवाहो ज्ञेयः । अन्यथा विश्वामित्रत्वेन निषेधो व्यर्थ एव स्यात्, अत्रिगोत्रत्वेनैव निषेधसिद्धे-
रिति कुशकासावलम्बनेन समाधेयमिति प्रवरदर्पणे ।

अथ कश्यपाः । ते पञ्च । निधुवाः । कश्यपाः । शाण्डिलाः । रैशाः । लौगा-
क्षयश्च । निधुवाणां काश्यपावत्सारनैधुवेति । काश्यपानां काश्यपावत्सारासितेति ।
रैमाणां कश्यपावत्सारैभ्येति । शाण्डिलानां काश्यपशाण्डिल्येति । अन्त्यस्थाने देवलो
वा सितो वा शाण्डिलासितदेवलेति वा कश्यपासितदेवलेति वा अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा ।
देवलासितेति द्वौ वा । लौगाक्षीन् वक्ष्यामः । एषां कश्यपानामविवाहः ।

कश्यपाः पञ्च ५ ।

निधुवाः १—छाङ्गरिमठरैतिशायनादधो नवति ९० । निधुवाः । तेषां—काश्यपावत्सारनैधुवेति त्रयः ।
(कात्या० आप्रायणादयः सप्तचत्वारिंशत् ४७, मात्स्योक्ता भवनन्दादयोऽष्टाविं-
शतिः २८, स्वापशान्तादयः षोडश १६ इति केचित्, इत्यन्येऽपि निधुवाः) ।

कश्यपाः २—एषां—काश्यपवत्सारासितेति त्रयः ।

रैमाः ३—एषां—काश्यपवत्सारैभ्येति त्रयः ।

शाण्डिल्याः ४—कोहलपाचकवापिकादय एकत्रिंशत् ३१ शाण्डिल्याः । तेषां—काश्यपावत्सार-
शाण्डिल्येति त्रयः । वा—काश्यपावत्सारदेवलेति । वा—काश्यपावत्सारासि-
तेति । वा—शाण्डिलासितदेवलेति त्रयः । वा—काश्यपासितदेवलेति । वा-
अन्त्ययोर्विपर्योसः । वा—देवलासितेति द्वौ । (कात्या० सम्पचादयः पञ्च-
विंशतिः २९ मात्स्योक्ताः सम्पात्यादयश्चतुर्दश १४, जावंशादयो दश १०
इति केचित्, इत्यन्येऽपि शाण्डिल्याः) ।

लौगाक्षयः ५—इमान्द्विगोत्रिण्यग्रेऽभिधास्यामः ।

अथ वसिष्ठाः । ते पञ्च वसिष्ठाः । कुण्डिनाः । उपमन्यवः । पराशराः । जातूकर्ण्यश्चेति ।
वसिष्ठानां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति । वासिष्ठेत्येको वा । कुण्डिनानां वासिष्ठमैत्रावरु-
णकौण्डिन्येति । उपमन्यूनां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्वयेति । वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेति
वा । आद्ययोर्व्यत्ययो वा । पराशराणां वासिष्ठशाक्यपाराशर्येति । जातूकर्ण्यानां
वासिष्ठात्रिजातूकर्ण्येति वासिष्ठानां सर्वेषामविवाहः । अन्त्यस्यात्रिभिश्च ।

वसिष्ठाः पञ्च ५ ।

वसिष्ठाः १-वैतालकिहरकिसावखादयस्त्रिंशत् ३३ वसिष्ठाः । तेषां-वसिष्ठेन्द्रप्रमदा भरद्वास्विति त्रयः । वा-वसिष्ठेत्येकः । (औपवतादय एकोनविंशत् २९ कात्यायनोक्ताः, वैष्णव्यादयश्चतुर्दश १४ मात्स्योक्ताः, रावण्यादयः षट् ६ इति केचित्, इत्यन्येऽपि वसिष्ठाः) ।

कुण्डिनाः २-लोहितायनगुगुत्यादयो विंशतिः २० कुण्डिनाः । तेषां-वासिष्ठमैत्रावरुण-कौडिन्येति त्रयः । (औपस्वस्थादयो नव ९ इति कातीयाः, पालोहगोपनाविति कश्चित्, इत्यन्येऽपि कुण्डिनाः) ।

उपमन्यवः ३-उपगवमाण्डलेखिकापिञ्जलादयो द्वाविंशति २२ उपमन्यवः । तेषां-वासिष्ठेन्द्र-प्रमदाभरद्वास्विति त्रयः । वा-वासिष्ठभरद्वास्विन्द्रप्रमदेति त्रयः । वा-आद्ययोर्व्यत्यासः । (शैलात्यादयः षड्विंशतिः २६ इति कातीयाः, महाकण्वादयो विंशति २० मात्स्योक्ताः, रास्मेयादयः सप्तदश १७ इति कश्चित् इत्यन्येऽप्युपमन्यवः) ।

पराशराः ४-कण्डूशिवाजिवाजिमत्यादयस्त्रिंशत् ३० पराशराः । तेषां-वासिष्ठशक्त्यपराशर-येति त्रयः । (वांह्यादयो विंशतिः २० इति लौगाक्षिसूत्रे, पार्थिवादयो दश १० इति कश्चित् इत्यन्येऽपि पराशराः) ।

जातूकर्ण्याः ५-एषां-वसिष्ठान्निजातूकर्ण्येति त्रयः । वसिष्ठानां न मिथो विवाहः । जातू-कर्ण्यस्यान्निभिरपि ।

अथागस्त्याः । ते चत्वारः । इध्मवाहाः । साम्भवाहाः । सोमवाहाः । यज्ञवाहा-ति । आद्यानां आगस्त्यदाढ्यच्युतैध्मवाहेति । आगस्त्येत्येको वा । सोमवाहानां आगस्त्यदाढ्यच्युतसोमवाहेति । साम्भवाहानां साम्भवाहोन्त्यः । यज्ञवाहानां यज्ञवाहो-न्त्यः । आद्यौ पूर्वोक्तावेव । सारवाहानां तदन्तास्त्रयः दर्भवाहानां तदन्तास्त्रयः । अग-तोनामागस्त्यमाहेन्द्रमायोभुवेति । पूर्णमासानामागस्त्यपौर्णमासपारणेति । हिमोद-नाम् । आगस्त्यहैमचर्चिहैमोदकेति । पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति । एते कश्चित् । अगस्तीनां सर्वेषामविवाहः ॥

अगस्त्याश्चत्वारः ४-

इध्मवाहाः १-विशालाद्यखलायनौपदहन्यादयः सप्तदश १७ इध्मवाहाः । तेषाम्-आगस्त्यदा-ढ्यच्युतैध्मवाहेति त्रयः । वा-आगस्त्येत्येकः । (कात्या० उपकुलादयः पञ्च-दश १५, सैवकादय एकोनविंशत् २९ इति कश्चित्, इत्यन्येऽपि इध्मवाहाः) ।

साम्भवाहाः २-एषाम्-आगस्त्यदाढ्यच्युतसाम्भवाहेति त्रयः ।

सोम
यज्ञव
सार
दर्भव
अगस्
पूर्णम
हिमो
पाणि

अथ
कात्याक्ष
जैर्विश्वा
गौरिवीर
शिरैर्लौग
वत्सारवा
कश्यपैः
जाते ।
जन्मना
धात् । ते
रसः श्रु
त्येव वि
जातूकर्ण
उत्पादक
रिजात
क्षत्रि
भरद्वाजय
भरद्वाजं
सगोत्रत्व

सोमवाहाः३-एषाम्-आगस्त्यदार्ढ्यच्युतसोमवाहेति त्रयः ।

यज्ञवाहाः४-एषाम्-आगस्त्यदार्ढ्यच्युतयज्ञवाहेति त्रयः ।

सारवाहाः१-एषाम्-आगस्त्यदार्ढ्यच्युतसारवाहेति त्रयः ।

दर्भवाहाः२-एषाम्-आगस्त्यदार्ढ्यच्युतदर्भवाहेति त्रयः ।

अगस्त्यः३-एषाम्-आगस्त्यमाहेन्द्रमायोभुवेति त्रयः ।

पूर्णमासाः४-एषाम्-आगस्त्यपौर्णमासंपारणेति त्रयः ।

हिमोदकाः५-एषाम्-आगस्त्यहैमवर्चिहैमोदकेति त्रयः ।

पाणिकाः६-एषाम्-आगस्त्यपैनायकपाणिकेति त्रयः ।

एते षड्गणाः कुत्रचित् ।]

यद्यपि मात्स्ये वसिष्ठागस्त्ययोर्मित्रावरुणोत्पन्नत्वेन द्वयोर्भ्रातृत्वात्परस्परमविवाहः प्राप्नोति, तथापि भिन्नगोत्रत्वस्मरणादेव विवाहो भवति । अन्यथाऽन्यतरगोत्रनिषेधेनैव सिद्धेरितर-गोत्रनिषेधा व्यर्थ एव स्यादित्युक्तमेव प्रागिति ।

अथ द्विगोत्राः । शौङ्गशैशिरीणाम् आङ्गिरसवार्हस्पत्यभारद्वाजकात्याक्षीलेति पञ्च । कात्याक्षीलयोः स्थाने शौङ्गशैशिरी वा । आङ्गिरसकात्याक्षीलेति त्रयो वा एषां भरद्वा-जैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः । एवं कपिलानां कतानां च संकृतिपूतिमाषादीनामाङ्गिरस, गौरिबीतसांकृत्येति । शाक्त्यगौरिबीतसाङ्कृत्येति वा एषां स्वगणस्थैर्वसिष्ठैः शौङ्गशै-शिरैर्लौगाक्षिभिश्चाविवाहः । कश्यपैरपीति प्रयोगपारिजाते । लौगाक्षीणां काश्यपा-वत्सारवासिष्ठेति । काश्यपावत्सारसितेति वा । एतेर्हर्वसिष्ठा नक्तं कश्यपाः । एषां वसिष्ठैः कश्यपैः संकृताद्यैश्चाविवाहः । देवरातस्य जामदग्न्यैर्विश्वामित्रैश्चाविवाह इति प्रयोगपारि-जाते । तदयुक्तम् । बह्वृचश्रुतौ । 'यथैवांगिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रताम् । आंगिरसो जन्मनास्याजीर्गतिः श्रुतः कविः, । इत्यङ्गिरोगणस्थत्वेन भार्गवजामदग्न्यत्वस्मृतेर्बा-धात् । तेन प्रत्यक्षश्रुत्या हरिवंशादिस्मृतेश्च बाधात् । तेन द्वौ देवरातौ । एक आङ्गि-रसः श्रुत्युक्तः । अन्यो भार्गवः तयोः कल्पभेदेऽप्याङ्गिरसेन देवरातेन जामदग्न्यैर्भव-त्येव विवाहः । भार्गवेण तु नेति तत्त्वम् । धनञ्जयानां विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः । जातूकर्णानां वसिष्ठैरत्रिभिश्चाविवाहः । एवं दत्तक्रीतकृत्रिमस्वयन्दत्तपुत्रिकापुत्रादीनाम् उत्पादकपालकयोः पित्रोर्गोत्रप्रवरा वर्ज्या इति प्रवरमञ्जरीनारायणवृत्तिप्रयोगपा-रिजातादयः । अत्र सर्वत्रोपपत्तयः । मूलं च मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयमिति दिक् ॥

क्षत्रियवैश्ययोस्तु पुरोहितगोत्रप्रवरावेवेति सर्वसिद्धान्तः । यद्यपि बह्वृचपरिशिष्टे कपि-भरद्वाजयोर्विवाह उक्तस्तथापि 'भरद्वाजश्च कपयो गर्गा रौक्षायणा इति । चत्वारोपि भरद्वाजगोत्रैक्यान्नावयुर्मिथः । कपिगर्गभरद्वाजा मिथो रौक्षायणा द्विजाः ॥ नोद्वहेयुः सगोत्रत्वात्प्रवैक्याच्च कुत्रचित्' । इति स्मृत्यर्थसाराद्युक्तेरविवाह एव तयोरिति ।

प्रवरमञ्जर्या यद्यपीदमुक्तं तथापि भृग्वंगिरोगणेषु भवत्येव । तथा बह्वृचप-
रिशिष्टे बौधायनः—‘एक एव ऋषिर्यावंत्प्रवरेष्वनुवर्तते । तावत्समानगोत्रत्वमृते
भृग्वंगिरोगणात् ॥ माधवीये स्मृत्यन्तरे—‘पञ्चानां तु त्रिसामान्यादविवाहस्त्रिषु
द्वयोः । भृग्वंगिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत् ॥’ इति देशाचाराच्च । सोप्याभीरदेशे
प्रसिद्धः । चतुर्विंशतिमते—‘यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत् । नित्यं स
व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते ॥’ इति दिक् । तथा च भृगुः—‘यस्मिन् देशे पुरे ग्रामे
त्रिविधे नगरेपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचालयेत् ॥’ इति । पुनश्चतुर्विं-
शतिमते—‘यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमगतः । वर्णानां किल सर्वेषां सदा-
चारः स उच्यते ॥

स्वगोत्राद्यज्ञाने तु सत्याषाढः—‘अथाज्ञानबन्धोः पुरोहितप्रवरेणाचार्यप्रवरेण
वेति ॥ ‘आचार्यगोत्रप्रवरानभिज्ञस्तु द्विजः स्वयम् । दत्त्वात्मानं तु कस्मै चित्तद्-
गोत्रप्रवरो भवेत् ॥’ यद्वा स्वगोत्रप्रवरविधुरो जामदग्निजः । विवाहं च न तेनैव
गोत्रेण तु समाचरेत् ॥’ इति कश्चित् । दिवोदासीयेपि—‘स्वगोत्रप्रवराज्ञाने जम-
दग्निमुपाश्रयेत् ।

अथ मातृगोत्रवर्जननिर्णयः । शातातपः—‘मातुलस्य सुतामृद्धा मातृगोत्रां तथैव
च । समानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’ यद्यपि ‘सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वा-
हकर्मणि । जन्मना भ्रूरोविज्ञातेषु द्वहेदविशंकितः ॥’ इति व्यासोक्तेरज्ञातनामत्वेन सगोत्रत्वदो-
षस्तथापि नेदं कलौ प्रवर्तते ॥ ‘गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा’ इति कलिव-
र्जत्वोक्तेः । इदं मातृगोत्रवर्जनं माध्यन्दिनीयानामेव । ‘मातृगोत्रं माध्यन्दिनीयानामपुत्रा-
याश्च’ इति सत्याषाढोक्तेरिति कश्चिन्महाराष्ट्रकल्पितं तन्निर्मूलम् । अन्यथा गुर्जरादेः
कातीयस्य कुतो न निषेधः । अत एव प्रवरमञ्जरीकारः—‘दोषस्यातिगुरुत्वात् सर्वेषां
मातृगोत्रं वर्ज्यम् ।’ इति । यत्तु गुर्जरादीनां माध्यन्दिनीयानामप्याचरणाच्च । ‘एक-
स्मिन् प्रवरे तुल्ये मातृगोत्रे वरस्य च । तमुद्वाहं न कुर्वीत सा कन्या भगिनी स्मृता
इति मातृकुले प्रवराचितनमुक्तम् । तदासुरादिविवाहोदापरमिति दिक् विस्तरस्तु ग्रन्था-
न्तरेभ्यो ज्ञेयः ॥

सगोत्रादिविवाहे प्रायश्चित्तं स्मृत्यर्थसारे—‘इत्थं सगोत्रसंबन्धविवाहविषये

सगोत्रविवाहे
प्रायश्चित्तम् ।

स्थिते । यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तां कन्यामूढोपगच्छति ॥ गुरुतल्पव्रता-
च्छुध्येद्गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां व्रजेत् । भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननी-

मिव ॥ अज्ञानादैन्दवैः शुद्धयेन्निर्भर्गस्तु कश्यपः ॥ एवं सपिण्डेष्वपि । ‘सपिण्डापत्य-
दारेषु प्राणत्यागो विधीयते’ इति बृहद्यमोक्तेः । तिथितत्त्वे बौधायनः । ‘सपिण्डां
सगोत्रां चेदमत्योप्यच्छेन्मातृवदेनां विभृयात् ॥

कन्याविवाहकालः । कन्याविवाहकाल उक्तो ज्योतिर्निबन्धे-‘षडब्देमध्ये नोद्वाह्या कन्यावर्षद्वयं यतः । सोमो भुंक्ते ततस्तद्वर्ध्वं तथाऽनलः’ ॥
 राजमार्तण्डः-‘अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे तु विधवा भवेत् । तस्माद्भर्तृनिवृत्ते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥ मासत्रयादूर्ध्वमयुग्मवर्षे युग्मेपि मासत्रयमेव यावत् । विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सन्तो वात्स्यादयः स्त्रीजनिजन्ममासात्’ ॥ पराशरमाधवीये तु-‘जन्मतो गर्भाधानाद्वा पञ्चमाब्दात् परं शुभम् । कुमारीवरणं दानं मेखलाबन्धनं तथा’ इत्युक्तम् । सम्बन्धतत्त्वे यमः-‘कन्याद्वादशवर्षाणि या प्रदत्ता वसेद्गृहे । ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम्’ ॥ भारते-‘त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्या विन्देत् नम्रिकाम् । दशवर्षो ऽष्टवर्षा वा धर्मे सीदति सत्वरः । अतो प्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात् पिता सकृत्’ ॥ तत्रैव-‘सप्तसंवत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ववर्णिकः । कन्यायाः शस्यते राजन्नन्यथा धर्मगर्हितः’ ॥ राजमार्तण्डः-‘राहुग्रस्ते तथा शुद्धे पितृणां प्राणसंशये । अतिप्रौढा च या कन्या चन्द्रलग्नबलेन तु’ ॥ चकारादतिवाला । प्राणसंशय इत्युक्ते । मनुः-‘त्रिंशद्वर्षा वहेत्कन्यां कृत्वा द्वादशवार्षिकीम् । द्व्यष्टवर्षोऽष्टवर्षा वा धर्मे सीदति सत्वरः’ । यद्यापि ‘विवाहस्त्वष्टवर्षायाः कन्यायाः शस्यते बुधैः’ इति संवत्तोक्तेः । ‘अत ऊर्ध्वं रजस्वला’ इत्यादेश्च दशवर्षादूर्ध्वं विवाहो निषिद्धस्तथापि दातुरभावे द्वादशषोडशाब्दे ज्ञेये । ‘त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम् ।’ इति पराशरमाधवीये बौधायनोक्तेश्च ॥ मनुः-‘स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् । हीनक्रियं निःपुरुषं निच्छन्दोरोमशांशसम् ॥ क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्चित्रिकुष्ठिकुलानि च । नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम्’ ॥ यमः-‘तस्माद्दुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नतुर्मती भवेत्’ । तथा मूलजादीनां फलं प्रागुक्तम् । तथा वर्णवश्यग्रहमैत्र्यादिघटितविचारो ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयः । विस्तरात् नोच्यते ।

अथ गुर्वर्कबलम् । ज्योतिर्निबन्धे गर्गः-‘स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां खेर्व-

गुर्वर्कबलम् ।

लम् । तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठमिति गर्गेण भाषितम् ॥ जन्मत्रिदशमारिस्थः पूजया शुभदो गुरुः ॥ विवाहेऽथ चतुर्थाष्टद्वादशस्थो मृतिप्रदः’
 देवलः-‘नष्टात्मजा धनवती विधवा कुशीला पुत्रान्विता हतधवा सुभगा विपुत्रा ! स्वामिप्रिया विगतपुत्रधवा धनाढ्या वन्ध्या भवेत्सुरगुरौ क्रमशोभिजन्मा’ ॥ बृहस्पतिः-‘अपचापकुलीरस्थो जीवोप्यशुभगोचरः ॥ अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु ॥’ लल्लः-‘द्वादशदशमचतुर्थे जन्मानि षष्ठाष्टमे तृतीये च । प्राप्ते पाणि-

१-व्यङ्ग्यैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुंजीत कन्यकाम् । पयोधरैस्तु गंधर्वा रजसाग्निः प्रकीर्तितः ॥ तस्मादव्यङ्ग्यनोपेतामरजामपयोधराम् । अमुक्ता चैव सोमाद्यैः कन्यका तु प्रशस्यते ॥ इति तु गृह्यसंग्रहे उक्तम् । तुरीयस्ते मनुष्यजाः इति श्रुतिविरुद्धम् ।

ग्रहणे जीवे वैधव्यमाप्नोति' ॥ गर्गः 'सर्वत्रापि शुभं दद्याद्वादशाब्दात् परं गुरुः । पञ्च-
षष्ठाब्दयोरेव शुभगोचरता मता ॥ सप्तमात् पञ्चवर्षेषु स्वोच्चस्वर्गगतो यदि । अशुभोपि
शुभं दद्याच्छुभक्रक्षेत्रे किं पुनः ॥ रजस्वलायाः कन्याया गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत् । अष्ट-
मेपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् ॥ अर्कगुर्वोर्वलं गौर्या रोहिण्यर्कबला स्मृता । कन्या
चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतोबला ॥ अष्टवर्षा भवेद्वैरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा
भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला' ॥

अथ बृहस्पतिशान्तिः । शौनकः- 'कन्यकोद्गाहकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते ।
ब्राह्मणास्योपनयने गुरोर्विधिरुदाहृतः ॥ सुवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतव-
स्त्रेण वेष्टयेत् । ईशान्यां धवलं कुम्भं धान्योपरि निधाय च ॥ दमनं
मधुपुष्पं च पलाशं चैव सर्षपान् । मांसी गुडूच्यपामागीं विडंगी शंखिनी वचा ॥ सह-
देवी हरिकान्ता सर्वौषधिशतावरी । बला च सहदेवी च निशाद्वितयमेव च ॥ कृत्वाज्य-
भागपर्यन्तं स्वशाखोक्तविधानतः । ग्रहोक्तमण्डलेभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः ॥ देवपू-
जोत्तरे काले ततः कुम्भानुमन्त्रणम् । अश्वत्थसमिधश्चाज्यं पायसं सर्पिषा युतम् ॥
यवव्रीहितिलाः साज्या मन्त्रेणैव बृहस्पतेः । अष्टोत्तरशतं सर्वं होमशेषं समापयेत् ॥
पुत्रदारसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत् । कुम्भाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रम्येष्टमन्त्रतः ॥
प्रतिमां कुम्भवस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छुभदः स्यान्न
संशयः' ॥ इति बृहस्पतिशान्तिः ॥

शौनकः- 'गुर्वादित्ये व्यतीपाते वक्रातीचारगे गुरौ । नष्टे शशिनि शुक्रे वा बाल
वृद्धे वा गुरौ ॥ पौषे चैत्रेऽथ वर्षासु शरदधिकमासके । केतूद्रमे
निरंशेर्के सिंहस्थे मरमन्त्रिणि ॥ विवाहव्रतयात्रादिपुरहर्म्यगृहादिकम् ॥
क्षौरं विद्योपविद्यां च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥' मदनपारिजाते ज्योतिः सागरे- 'बाले
शुक्रे वृद्धे शुक्रे वृद्धे जीवे नष्टे जीवे बाले जीवे जीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये ॥ तथा मलि-
म्लुचे मासि मुराचार्येति चारगे ॥ वापीकूपविवाहादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ॥ सिंहस्थं
मकरस्थं च गुरुं यत्नेन वर्जयेत्' ॥ लल्लः- 'अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैव चेत् पुनः ।
लुप्तः संवत्सरो ज्ञेयः सर्वकर्मबाहिष्कृतः ॥' सिंहस्थगुरोरपवादमाह पराशरः-
'गोदाभागीरथीमध्ये नोद्गाहः सिंहगे गुरौ । मघास्थे सर्वदेशेषु तथा मीनगते रवौ' ॥
वसिष्ठोपि- 'विवाहो दक्षिणे कूले गौतम्यां नेतरत्र तु । भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या
दक्षिणे तथा ॥ विवाहो व्रतबन्धश्च सिंहस्थे ज्येन दुष्यति' ॥ कन्यादातृक्रममाह

१-अप्राप्तरजसा गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी । अव्यञ्जिता भवेत्कन्या कुचहीना तु नम्रिका ॥
इति गुरुसम्प्रदोक्तमपि बोध्यम् ।

कन्यादातारः ।

याज्ञवल्क्यः—‘पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा । कन्या-
प्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥ अग्र्यच्छन् समाप्नोति भ्रूणह-
त्यामृतावृतौ । गम्यं त्वभावे दातृणां कन्या कुर्यात्स्वयं वरम्’ ॥ भ्रातृणां संस्कृता-
नामेवाधिकारमाह स एव—‘असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः । भगिन्यश्च
निजादंशादृत्त्वांशं तु तुरीयकम्’ ॥ अत्र चकारेण पूर्वसंस्कृतैरित्यस्यानुवृत्तेर्विवाहपर्या-
सद्रव्यदाने स्वांशसमांशचतुर्थभागदाने वा संस्कृतग्रहणं व्यर्थं स्यात्, अतः कर्तृनियमो-
च्यम् । तेनानुपनीतभ्रातृमात्रादिसत्त्वे मात्रादेरेवाधिकारो न भ्रातुरित्युक्तं संबन्धत-
त्वाद्दौ । कन्यास्वयंवरे मातुर्दातृत्वे च ताभ्यामेव नान्दीश्राद्धं कार्यम् । तत्र च स्वयं
प्रधानसंकल्पमात्रं कृत्वाऽन्यब्राह्मणद्वारा कारयेदिति प्रयोगपारिजाते । वरस्तु संस्कृ-
तभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात् न माता । ‘पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै
कारयेत्स्वधाम् ।’ इति निषेधात् । उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वाच्चेति पृथ्वी-
चन्द्रोदये । माधवीयेऽपराकं च नारदः—‘पिता दद्यात्स्वयं कन्यां भ्राता बानुमते
पितुः । मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवस्तथा ॥ माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि
वर्तते । तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः ॥ सकुल्यः पितृपक्षीयो बान्धवो
मातृवंशजः’ ॥ मदनपारिजाते कात्यायनः—‘स्वयमेवौरसी दद्यात्पित्रभावे
स्वबान्धवः । मातामहस्ततोऽन्यां हि माता वा धर्मजां सुताम्’ ॥ ततोऽन्यामौरसीभिर्ना
धर्मजां नियोगात् क्षेत्रजां मातामहो माता मातुलो वा दद्यात् । तेनौरसीदाने पितृबन्धुषु
सत्सु मातामहादीनां नाधिकारः अनुमतिं विना । अस्यापवादस्तत्रैव—‘दीर्घप्रवासयुक्तेषु
पौगण्डेषु च बन्धुषु । माता तु समये दद्यादौरसीमपि कन्यकाम्’ ॥ मनुः—‘यदा तु
नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमात्रजेत्’ ॥

परकीयकन्यादाने विशेषो मदनरत्ने स्कान्दे—‘आत्मीकृत्य सुवर्णेन पर-
कीयां तु कन्यकाम् । धर्मेण विधिना दानमसगोत्रेपि युज्यते’ ॥ अत्र प्रकृतिग्रहणा-
दप्रकृतिस्थेन कृतमकृतमेव । ‘स्वतन्त्रो यदि तत्कार्यं कुर्यादप्रकृतिं गतः । तद-
प्यकृतमेव स्यादस्वातन्त्र्यस्य हेतुः’ ॥ इत्यपराकं नारदोक्तेः । यदि तु
सप्तपदीविवाहहोमादिप्रधानं जातं तदङ्गवैकल्येपि नावृत्तिर्विवाहस्य । गौडा अप्ये-
वमाहुः । तत्रैव मरीचिः—‘गौरीं ददन्नाकपृष्ठे वैकुण्ठं रोहिणीं ददत् । कन्यां ददद्ब्रह्म-
लोकं रौरवं तु रजस्वलां’ ॥

अथ मासानिर्णयः । तत्र जन्ममासे विशेषः प्रागुक्तः । ज्योतिःप्रकाशे

व्यासः—‘माघफाल्गुनवैशाखे यद्यूहा मार्गशीर्षके । ज्येष्ठे वाथाढ-
मासे च सुभगा वित्तसंयुता ॥ श्रावणे वापि पौषे वा कन्या भाद्र-

विवाहे मासानिर्णयः ।

इदं तु ‘लिङ्गविशेषनिर्देशात्पुन्यकर्मैतिशायनः ।’ इति पूर्वपक्षे ‘जातिं तु बादरायणोऽविशेषात् ।
तस्मात्कस्यपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्’ इति सिद्धान्तसूत्रविरुद्धम् ॥

पदे तथा । चैत्राश्वयुक्कार्तिकेषु याति वैधव्यतां लघु ॥' नारदः
 शाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः । कार्तिको मार्गशीर्षश्च मध्यमौ निनि
 वसिष्ठः-‘पौषेपि कुर्यान्मकरस्थितेकं चैत्रे भवेन्मेषगतो यदा स्यात्
 षाडकृतं विवाहं वदन्ति गर्गा मिथुनस्थितेकं ॥ आचार्यचूडाम
 र्गर्गराजमार्तण्डौ-‘माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च । दश
 चैत्रपौषविजिताः ॥ आपस्तम्बः-‘सर्वं ऋतवो विवाहस्य । शैशि
 हाय्योत्तमं च नैदावम् । अत्र माघफाल्गुनाषाढवर्जा नव मासा
 इति सुदर्शनभाष्येऽविलायां ब्रह्मविद्यातीर्थेश्वोक्तम् । बौध
 ‘सर्वे मासा विवाहस्य शुचितपस्तस्यवर्जम्’ इत्येके । तेन पूर्वोत्तरौ दि
 मासौ पौषचैत्रौ विहाय इति । निर्णयामृतव्याख्यानं मौख्यं
 निशि चेत्सर्वेषु द्वादशस्वपि मासेषुद्बहेदिति कालादर्शः । ये तु ज्य
 विधयस्ते गृह्यसूत्राणां द्विजपरत्वेन प्रावल्याच्छूद्रादिपराः । ज्योतिषे
 मनूनमिच्छति तथा रैभ्योयनं चोत्तरं श्रीवासन्तमृतुं विहाय मुनयो
 जगुः । चैत्रं प्रोज्झ्य पराशरः परिणयेत्पौषं च दौर्भाग्यदं ह्याषा
 निनदं कैश्चित् प्रदिष्टं बुधैः ॥’ चण्डेश्वरः-‘मार्गे मासि तथा ज्ये
 व्रतम् । ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोस्तु यत्नेन परिवर्जयेत् ॥ कृत्तिकास्थं रविं त्य
 कारयेत् । उत्सवादिषु कार्येषु दिनानि दश वर्जयेत् ॥’ रत्नकोशे
 दिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत् । ज्येष्ठे मास्याद्यगर्भस्य शुभं वर्ज्यं
 पराशरः-‘अज्येष्ठा कन्यका यत्र ज्येष्ठपुत्रो वरो यदि । व्यत्ययो वा
 मासः शुभप्रदः ॥’ मिहिरः-‘ज्येष्ठस्य ज्येष्ठकन्याया विवाहो न प्र
 रन्वतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठो मासः प्रशस्यते ॥ द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं
 ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम् ॥’ यत्तु-‘सार्वकालमेकं विवा
 सुरादिविवाहविषयम् । ‘धर्म्येषु विवाहेषु कालपरीक्षणं नाधर्म्येषु’
 शिष्टात् । रत्नमालायामप्येवम् ॥ तेनासुरादयो माघचैत्रादि
 भवन्ति । मासाः सौराः । ‘सौरो मासो विवाहादौ’ इत्युक्तेः । ‘अषो
 फाल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः ।’ इति त्वपवादः ॥

अथ दशदोषाः । व्यवहारोच्चये-‘वेधश्च लप्ता च तथैव
 दशयोगचक्रम् । युतिश्च जामित्रमुपग्रहश्च वाणाख्यवज्रे च दशैव
 लक्षणं ज्योतिषे ज्ञेयम् । अतिचारगे गरौ त वसिष्ठः-‘अति चारगते

यथाक्रमम् ॥ यात्रायां युद्धकार्येषु घातचन्द्रं विवर्जयेत् । विवाहे सर्वमाङ्गल्ये चौलादौ
 व्रतबन्धने ॥ घातचन्द्रो नैव चिन्त्य इति पाराशरोब्रवीत् ॥ ज्योतिर्निबन्धे-विवाहचौ-
 लव्रतबन्धयज्ञे पटाभिषेके च तथैव राज्ञाम् । समिन्तयात्रासु तथैव जाते नो चिन्तनीयः
 खलु घातचन्द्रः ॥' नारदः-‘अकालजा भवेयुश्चेद्विद्युन्नीहारवृष्टयः । प्रत्यर्कपरिवेषेन्द्र-
 चापापाध्वनयो यदि ॥ दोषाय मंगले नूनं न दोषायैव कालजाः ॥’ अकालवृष्टिस्वरूप-
 माह लल्लुः-‘पौषादिचतुरो मासाः प्रोक्ता वृष्टिरकालजा ।’ इति । शार्ङ्गधरः-‘निर्घाते
 क्षितिचलने ग्रहयुद्धे राहुदर्शने चैव । आ पञ्चदिनात्कन्या परिणीता नाशमुपयाति ॥
 उल्कापातेन्द्रचापप्रबलघनरजोधूमनिर्घातविद्युद्वृष्टिप्रत्यर्कदोषादिषु सकलबुधैस्त्याज्यमेवै-
 करात्रम् । दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते ह्यशुभफलदृशो दुर्मनोभ्रान्तबुद्धौ चौले मौञ्जीनिबन्धे परि-
 णयनविधौ सर्वदा त्याज्यमेव’ ॥ ज्योतिःप्रकाशे-‘अर्वाक्षोडशनाडयः संक्रान्तेः
 पुण्यदाः परतः । उपनयनव्रतयात्रापरिणयनादौ विवर्ज्यास्ताः’ ॥ गर्गः-‘दिग्दाहे दिन-
 मेकं च गृहे सप्तदिनानि तु । भूकम्पे च समुत्पन्ने ज्यहमेव तु वर्जयेत् ॥ उल्कापात
 त्रिदिवसं धूम्रे पञ्च दिनानि च । वज्रपाते चैकादिनं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ दर्शनादर्शना-
 द्राहुकेत्वोः सप्तदिनं त्यजेत् । यावत्केतुद्रमस्तावदशुभः समयो भवेत् ॥’ अस्यापवादो-
 द्रुतसागरे-‘अथ दिवसत्रयमध्ये मृदु पानीयं यदा भवति। उत्पातदोषशमनं तदैव संप्रा-
 दुराचार्याः’ ॥ संबन्धतत्त्वे-‘भूकम्पादेन दोषोस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति’ ॥ अथापारि-
 दुष्टयोरे कुम्भ-
 विवाहः । हाय्ये कन्यावैधव्ययोगे विशेष उच्यते । मार्कण्डेयपुराणे-‘वा
 लवैधव्ययोगे तु कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः । कृत्वा लग्नं ततः पश्चात्कन्यो-
 द्वाह्येति चापरे’ ॥ अत्र पुनर्दोषाभाव उक्तो विधानखण्डे-‘स्वर्णाम्बुषिप्पलानां च
 प्रतिमाविष्णुरूपिणी । तथा सह विवाहे तु पुनर्भूत्वं न जायते’ ॥ सूर्यारूपसंवादे-‘विवा-
 हात्पूर्वकाले च चन्द्रताराबलान्विते । विवाहोक्ते च तां कन्यां कुम्भेन सह चोद्वहेत् ॥
 सूत्रेण वेष्येतपश्चाद्दशतन्तुविधानतः ॥ कुंकुमालंकृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे ॥ ततः
 कुम्भं च निःसार्य प्रभज्य सलिलाशये ॥ ततोभिषेचनं कुर्यात्पञ्चपलववारिभिः’ ॥
 कुम्भप्रार्थना तत्रैव-‘वरुणांगस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय । पतिं जीवथ कन्याया-
 श्रिरं पुत्रमुखं कुरु ॥ देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः । ततोऽलंकारवस्त्राढ्यां
 वराय प्रतिपादयेत्’ ॥ इति कुम्भविवाहः ॥

मूर्तिदानमपि तत्रैवोक्तम् ॥ ‘ब्राह्मणं साधुमामन्त्र्य संपूज्य विविधार्षणैः । तस्मै
 दद्याद्विधानेन विष्णोर्भूतिं चतुर्भुजाम् ॥ शङ्खवर्णसवर्णेन वित्तशक्त्याथ वा पुनः । निर्मितां

हम् । वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय शुभलब्धये ॥ बहुसौभाग्यलब्धये च महाविष्णोरिमां
तनुम् । सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज ॥ अनघाद्याहमस्मीति त्रिवारं
प्रजपेदिति । एवमस्त्विति तस्योक्तिं गृहीत्वा स्वगृहं विशेषेत् ॥ ततो वैवाहिकं कुर्याद्विधिं
दाता मृगीदृशः ॥ अन्येष्वथविवाहवृक्षसेचनादयस्तत्रैव ज्ञेयाः । विस्तरभयान्नोच्यन्ते ॥

अथ प्रतिकूलादि ज्योतिर्निबन्धे गर्गः-‘कृते तु निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति

कस्यचित् ॥ तदा न मंगलं कुर्यात् कृते वैधव्यमाप्नुयात् ॥ ज्योति-

प्रतिकूलादि ।

मेधातिथिः-‘वधूवरार्थेवटिते सुनिश्चिते वरस्य गेहेष्वथ कन्यकायाः ॥

मृत्युर्यदि स्यान्मनुजस्य कस्यचित्तदा न कार्यं खलु मङ्गलं बुधैः’ ॥ मङ्गलं विवाहः ।
स्मृतिचन्द्रियाकायाम्-‘कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्मर्त्यस्य गोत्रिणः ॥ तदा न मङ्गलं
कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम्’ ॥ भृगुः-‘वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः ॥ तदो-
द्वाहो नैव कार्यः स्वस्वंशक्षयदो यतः’ ॥ शौनकः-‘वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः ।
एतेषां प्रतिकूलं च महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥ पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही ॥ पितृव्य-
स्त्रीसुतो भ्राता भगिनी चाविवाहिता ॥ एभिरत्र विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम् । अन्ये-
रापि विपन्नैस्तु केचिदूचुर्न तद्भवेत्’ ॥ माण्डव्यः-‘वाग्दानानन्तरं माता पिता भ्राता
विपद्यते । विवाहो नैव कर्तव्यः स्वस्वंशस्थितिमिच्छता’ ॥

संकटे तु मेधातिथिः-‘वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदा संव-
त्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत्’ ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्-‘पितुरब्दमशौचं स्यात्तदर्थं
मातुरेव च ॥ मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्थं भ्रातृपुत्रयोः ॥ अन्येषां तु सपिण्डानामशौचं
मासमीरितम् । तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते’ ॥ ज्योतिःप्रकाशे-
‘प्रतिकूलेपि कर्तव्यो विवाहो मासतः परः । शान्तिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि
चरेत् पुनः’ ॥ शान्तिं विनायकशान्तिम् । तथा च मेधातिथिः-‘संकटे समनुप्राप्ते
याज्ञवालक्येन योगिना । शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत् ॥’ इति ।
‘प्रतिकूले न कर्तव्यो गच्छेद्यावहतुत्रयम् । प्रतिकूलेपि कर्तव्यमित्याहुर्वहुविप्लवे ॥
प्रतिकूले सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत् ॥’ ज्योतिःसागरे-‘दुर्मिक्षे राष्ट्रभङ्गे च
पित्रोर्वा प्राणसंशये । प्रौढायामपि कन्यायां नानुकूल्यं प्रतीक्ष्यते’ ॥ मेधा-
तिथिः-‘पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं स्वगोत्रिणाम् । प्रवेशान्निर्गमस्तद्वत्तथा मण्ड-
नमुण्डने ॥ प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् । आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे
शुभदं भवेत्’ ॥

अथ रजोदोषे निर्णयः । माधवीये-‘प्रारम्भात् प्राग्विवाहस्य माता यदि रज-

रजोदोषः ।

स्वला । निवृत्तिस्तस्य कर्तव्या सहत्वश्रुतिचोदनात्’ ॥ आरम्भात्

नान्दीश्राद्धात् । ‘नान्दीमुखं विवाहादौ’ इत्यादिना तस्यैव प्रारम्भोक्तेः

मेधातिथिः-‘चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि । भार्या रजस्वला यस्य प्राय-

स्तस्य न शोभनम् । वधूवरान्यतमयोजननी चेद्रजस्वला । तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं
मनुरब्रवीत् ॥ वृद्धमनुः—‘विवाहप्रत्यूहासु माता यदि रजस्वला । तदा न मङ्गलं
कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः’ ॥ गर्गः—‘यस्योद्वाहादिमाङ्गल्ये माता यदि रजस्वला ।
तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः’ ॥ नान्दीश्राद्धोत्तरं रजोदोषे तु कपर्दिकारि-
कासु—‘सूतिकोदकययोः शुद्धयै गां दद्याद्धोमपूर्वकम् । हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्त-
विधिना चयेत् ॥ प्रत्यूचं पायसं हुत्वा अभिषेकं समाचरेत् ।’ इति । सूतकादिसंकटे तु-
कूष्माढीभिर्घृतं हुत्वा पयस्विनीं गां च दत्त्वा विवाहादि कुर्यात् इति च वक्ष्यते ॥

अथैकक्रियानिर्णयः । ज्योतिर्निबन्धे वृद्धमनुः—‘एक-

एकत्र मङ्गलम् ।

मातृजयोरेकवासरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे
विधीयते’ ॥ एतेन एकस्य पुंसो विवाहद्वयमेकदिने निषिद्धं मातृभेदाभावात् ।
नारदः—‘पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रिविवाहो न ऋतुत्रये । न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मण्डनादपि
मुण्डनम् ॥ वराहः—‘विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि । असंशयं त्रिभि-
र्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत्’ ॥ मदनरत्ने वसिष्ठः—‘न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेपि विवा-
हकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात् । न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्द-
भेदः ॥ एकोदरभ्रातृविवाहकृत्यं स्वसुर्न पाणिग्रहणं विधेयम् । षण्मासमध्ये मुनयः
समूचुर्न मण्डनं मुण्डनतोपि कार्यम्’ ॥ एतदपवादस्तत्रैव—‘ऋतुत्रयस्य मध्ये
चेदन्याब्दस्य प्रवेशनम् । तदा ह्येकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्यते’ ॥ सारावल्याम-
‘फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने । भेदाब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलंघनम्’ ॥
संहिताप्रदीपे—‘ऊर्ध्वं विवाहात्तनयस्य नैव कार्यो विवाहो दुहितुः समार्यम् ॥
अप्राप्य कन्यां श्वशुरालयं च वधूः प्रवेश्या स्वगृहं च नादौ’ ॥ मदनरत्ने
वसिष्ठः—‘दिशोभनं त्वेकगृहेपि नेष्टुं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु । आवश्यकं शोभनमु-
त्सवो वा द्वारेथवाचार्यविभेदतो वा ॥ एकोदरप्रसूतानां नाग्निकार्यत्रयं भवेत् । भिन्नोदर-
प्रसूतानां नेति शातातपोब्रवीत् ॥ ज्योतिर्निबन्धे कात्यायनः—‘कुले ऋतुत्रया-
द्वाङ् मुण्डनाच्च तु मण्डनम् । प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मंगलत्रयम् ॥ कुर्वन्ति
मुनयः केचिदन्यास्मिन्वत्सरे लघु । लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु
यत् ॥ पुत्रोद्वाहः प्रवेशार्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः । मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ
तु मङ्गलम् ॥ चौलं मुण्डनमेवोक्तं वर्जयेन्मण्डनात्परम् । मौञ्जी चोभयतः कार्या यतो
मौञ्जी न मुण्डनम् ॥ अभिन्नवत्सरेपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयेत् । अमेदे तु विनाशः स्याच्च
कुर्यादेकमण्डपे’ ॥

संकटे तु कपर्दिकारिकासु वराहमिहिरश्च—‘उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्या-
त्पुण्यन्तरस्योद्वाहनं कदाचित् । यावच्चतुर्थं दिनमत्र पूर्वं समाप्य चान्योद्वाहनं विदध्यात्’ ॥

१—‘चौलात्प्राक् परतश्च’ इति टीका ।

कश्यपः-‘मौञ्जीवन्धस्तथोद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरेपि वा । पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत ।
न दोषकृत् ॥ ज्योतिर्निबन्धे-‘विवाहमारभ्य चतुर्थिमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शो
स्यात् । वैधव्यमाप्नोति तदाशु कन्या जीवेत्पतिश्चेदनपत्यता स्यात् ॥ तथ
हमध्ये यदि चेत् क्षयाहस्तत्र स्वमुख्याः पितरो न यान्ति । वृत्ते विवाहे परत
च्छ्राद्धं स्वधाभिर्नैतु दूषयन्ति ॥ ‘स्वधाभिः’ इति श्रुतेश्च । मासिकविषये
माद्वौ शाठ्यायनिः-‘प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा । अप
कुर्वीत कर्तुर्नान्दीमुखं द्विजः’ ॥ वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाह तत्रैवोशनाः-‘व
विहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चेत् ॥ स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ।
मेधातिथिः-‘प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् । आचतुर्थे ततः पुं
शुभं भवेत् ॥ स्मृत्यन्तरे-‘सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि ॥ पुन
प्यन्ते वृद्धं तुत्तरनिषेधनात् ।

स्मृतिसारावल्याम-‘भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृष्वसृयुगे तथा । एकस्मि
चैव न कुर्यान्मण्डनद्वयम्’ ॥ सोदरविषयमेतत् । यमः-‘एकोदरप्रसूताना
वासरे पुनः । विवाहं नैव कुर्वीत मण्डनोपरि मुण्डनम्’ ॥ गार्ग्यः-‘भ्रातृयुगे
भ्रातृष्वसृयुगे तथा । न कुर्यान्मङ्गलं किञ्चिदेकस्मिन्मण्डपेहनि ॥ एक
प्राप्ते कुर्याद्यमलजातयोः । क्षौरं चैव विवाहं च मौञ्जीवन्धनमेव च’ ॥ ज्योतिर्वि
‘एकोदरयोरेकदिनोद्वाहने भवेन्नाशः । नद्यन्तर एकदिने केप्याहुः संकटे शुभम्
विवाहाच्छुभदो नरस्य नारीविवाहो न ऋतुत्रयं स्यात् । नारीविवाहात्तद्देहिपि शस्
पाणिग्रहमाहुरार्याः’ ॥ भिन्नमातृजयोस्तु एकवासरे विवाहमाह मेधातिथिः-‘पृ
जयोः कार्यो विवाहस्त्वेकवासरे । एकस्मिन्मण्डपे कार्यः पृथग्वेदिकयो
पुष्पपट्टिकयोः कार्यं दर्शनं न शिरस्थयोः । भगिनीभ्यामुभाभ्यां च यावत्सप्तपदी
यमयोस्तु विशेषः । भट्टकारिकायाम-‘एकस्मिन् वत्सरे चैकवासरे मण्डपे
कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्वोभ्रात्रोर्यमलजातयोः’ ॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदः-‘
नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् । नैवैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके
कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम् । नैकजन्ये तु कन्ये द्वे पुत्रयोरेकज
न पुत्रीद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदाचन’ इति ॥

कन्याया रजोदर्शने तु अपराकें संवर्तः—‘माता चैव पिता चैव ज्ञेयौ
 तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्’ ॥ हा
 कन्यारजोदर्शने
 ‘पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । सा कन्या वृष
 तैर्पतित्वृषलीपतिः’ ॥ देवलात्रिकश्यपाः—पूर्वार्धं तदेव । ‘भ्रूणहत्या पितुस्तस्
 कन्या वृषली स्मृता ॥ यस्तां समुद्रहेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्वलः । अश्राद्धेयमप
 विद्याद्वृषलीपतिम्’ ॥ माधवीये बौधायनः—‘त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत
 सनम्’ ॥ विष्णुः—‘ऋतुत्रयमुपास्यैव कन्या कुर्यात्स्वयं वरम्’ ॥ अत्र वरस्य
 वमाह यमः—‘कन्या द्वादश वर्षाणि या प्रदत्ता वसेद् गृहे ॥ भ्रूणहत्या पितुस्तस्
 कन्या वरयेत्स्वयम् । एवं चोपनतां पत्नीं नावमन्येत्कदाचन ॥ न तु तां
 विद्यान्मनुः स्वायंभुवोब्रवीत्’ ॥ मनुः—अलंकारं नाददीत पितृदत्तं स्वयंवरे ॥
 मातृदत्तं स्तेयी स्याद्यदि संहरेत्’ ॥ वर प्रत्याह—‘पित्रे न दद्याच्छुलकं तु कन्या
 हरन् । स हि स्वान्यादतिक्रामेदतूनां प्रतिबोधनात्’ ॥

अत्र प्रायश्चित्तसुक्तमाश्वलायनेन—‘कन्यामृतुमतीं शुद्धां कृत्वा पि
 मातमनः । शुद्धिं च कारयित्वा तामुद्रहेदनुशंस्यधीः ॥ पिता ऋतून् स्वपुत्र्यास्तु
 दादितः सुधीः ॥ दानावधि गृहे यत्नात् पालयेच्च रजोवतीम् ॥ दद्यात्तदुसंख
 शक्तः कन्यापिता यदि । दातव्यैकापि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधि ॥
 ब्राह्मणेष्वन्नमतिनिःस्वः सदक्षिणम् । तस्यातीतर्तुसंख्येषु वराय प्रतिपादयेत् ॥
 त्रिदिनं कन्यां रात्रौ पीत्वा गवां पयः । अदृष्टरजसे दद्यात्कन्यायै रत्नभूष
 तामुद्रहन्वरश्चापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद्विजः ।’ इति मदनपारिजाते यज्ञपार्श्वः—
 वितते यज्ञे होमकाल उपस्थिते । कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः
 पयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि । शुभानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रव
 बौधायनसूत्रम्—‘अथ यदि कन्योपसाद्यमाना चोह्यमाना वा रजस्वला स्यात्
 न्वयेत् । पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ । पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च
 च दद्यात्वियम् ॥’ इति । अथ द्वादशरात्रमलंकृत्य प्राशयेत्पञ्चगव्यमथशुद्धां
 विवहेत् ।

अथ गान्धर्वाद्यष्टौ विवाहास्तद्व्यवस्था चाकरे ज्ञेया । मनुः—
 व्यां विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान् । विदूश्चतुस्तु तानेव विव
 विवाहभेदाः ।
 नराक्षसान्’ ॥ चतुरः—आसुरगान्धर्वराक्षसपैशाचान् तान्

दद्याच्चिजन्मसु ॥ चन्द्रे च शंखं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तन्दुलांश्च । धान्यं च दद्यात्करणे च वागे योगे विरुद्धे कनकं प्रदेयम् ॥

विवाहमण्डपमाह वसिष्ठः-‘षोडशारत्निकं कुर्याच्चतुर्दशोपशोभितम् । मण्डपं तोर्णैर्युक्तं तत्र वेदिं प्रकल्पयेत् ॥ अष्टहस्तं तु रचयेन्मण्डपं वा द्विषदकरम् ॥ दैवज्ञ-
मनोहरः-‘चित्रा विशाखा शततारकाश्विनी ज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् । हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकं कण्डनमण्डपादिकम् ॥ हेमाद्रौ व्यासः-‘कण्डन दलनयवारकमण्डपमृद्रेदिवर्णकाद्यखिलम् । तत्संवन्धिगतागतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात् ॥ यवारकं चिकसा इति प्रसिद्धम् ॥ वैवाहिके तुं दिवसे शुभे वाथ तिथौ शुभे । चतुर्थिकं प्रकुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा ॥

वेदिमाह नारदः-‘हस्तोच्छ्रितां चतुर्दस्तैश्चतुरस्यां समन्ततः । स्तम्भैश्चतुर्भिः सुलक्षणां वामभागे तु सन्नानि ॥ समां तथा चतुर्दिक्षु सोपानैरतिशोभिताम् । प्रागु-
दक्प्रवणारम्भां स्तम्भहंसशुकादिभिः ॥ एवंविधामारुरुक्षेन्मिथुनं साग्निवेदिकां ।’ इति । सप्तविंशते-‘मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः । कार्यः षोडशहस्तो वा द्यूत-
हम्नो दशावधि ॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता ॥ हस्तो बध्वाः सोपानं पश्चिमतः उग्रभागे उक्तपरिमाणाद्भिन्नम् ।

अथ नृदाहरणम् । ज्योतिर्निबन्धे नारदः-‘कर्तव्यमंगलेष्वादौ मंगलाया-
ङ्कुरार्पणम् नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेपि वा ॥ तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभो-
दये । सम्यग्गृहायलंकृत्य वितानध्वजतोरणैः ॥ सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम् । तत्र मृत्सिकतां श्लक्षणां गृहीत्वा पुनरागतः । मृन्मयेष्वथवा वैणवेषु पात्रेषु योजयेत् ॥ अनेकबीजसंयुक्तां तोयपुष्पोपशोभिताम् ॥’ शौनकः-‘आधानं गर्भसं-
स्कारं जानकर्म च नाम च । हित्वान्यत्र विधातव्यं मंगलेङ्कुरवापनम् ॥ बृह-
स्पतिः-‘आत्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योऽङ्कुरार्पणम् । तत्रैव वाग्दानं हरिद्रावन्दनं च कार्यम् । ज्योतिःप्रकाशे-‘चतुर्थी मण्डपः श्रेष्ठः सप्तमः पञ्चमस्तथा । नवमैकादशौ श्रेष्ठौ नैष्ठौ षष्ठतृतीयकौ ॥ विवाहमे स्वीदये वा कन्यावरणमाचरेत् ॥ वरस्यापि वरण-
माह चण्डेश्वरः-‘उपवीतं फलं पुष्पं वासांसि विविधानि च । देयं वराय वरणे कन्या-
भ्रात्रा द्विजेन वा ॥ इति ॥

स्यात्कुमारी पितुरेव सा' ॥ यत्तु नारदः—'उद्वाहितापि सा कन्या न चेत्संप्राप्तम-
थुना । पुनः संस्कारमर्हेत यथा कन्या तथैव सा' ॥ इति । यच्च कात्यायनः—'वरो
यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीव एव च । विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घार्मयोपि वा ॥
ऊढापि देया सान्यस्मै सहावरणभूषणा' ॥ इति । इदं कलौ निषिद्धम् । 'देवरेण सुतो-
त्पत्तिर्दत्ता कन्या न दीयते' । इत्यादिपुराणे कलौ निषेधात् । दत्ता शब्द ऊढापरः ।
'ऊढायाः पुनरुद्वाहम्' इति हेमाद्रा उक्तेः । अत एव सगोत्रासपिण्डादिविवाहं हि—
'भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव' । इत्युक्तम् ॥

देशान्तरगमने तु कात्यायनः—'वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत् पुरुषो यदा ।
ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेद्वरम्' ॥ अपराकं नारदोपि—'प्रतिगृह्य तु यः
कन्यां वरो देशान्तरं व्रजेत् । त्रीनृतून् समतिक्रम्य कन्याऽन्यं वरयेद्वरम्' ॥ शुल्कदाने
तु मनुवसिष्ठौ—'कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः ॥ देवराय प्रदातव्या
यादि कन्यानुमन्यते' ॥ चन्द्रिकायां कात्यायनः—'प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः
स्त्रीधनं तथा । धार्या सा वर्षमेकं तु देयान्यस्मै विधानतः ॥ अनेकेभ्यो हि दत्तायाम-
नूढायां तु तत्र वै । पूर्वागतश्च सर्वेषां लभेताद्यवरस्तु ताम् ॥ पश्चाद्वरेण यदत्तं तस्याः
प्रतिलभेत सः । अथागच्छेन्नवोढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत्' ॥ याज्ञवल्क्यः—'सकृत् प्रदी-
यते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् । दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत्' ॥ पूर्वस्य
दोषसत्त्वे इदमिति विज्ञानेश्वरः । संबन्धतत्त्वे वसिष्ठः—'कुलशीलविहीनस्य
पश्चाद्धि पतितस्य च । अपस्मारिविधर्मस्य रोगिणां वेषधारिणाम् ॥ दत्तामपि हरेत्कन्यां
सगोत्रोढां तथैव च' ॥ मनुः—'षण्डान्धवधिरादीनां विवाहोस्ति यथोचितम् । विवाहसं-
भवे तेषां कनिष्ठो विवहेत्तदा ॥ पितृव्यपुत्रे सापत्ने परदारसुतेषु च । विवाहाधानयज्ञादौ
परिवेदो न दूषणम्' । अन्यद्वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते इति दिक् ।

अत्र नान्दीश्राद्धे विशेषं तदधिकारिविशेषं चाग्रे वक्ष्यामः । इदं चाद्यविवाहे
पिता कुर्याद्वितीयादौ वर एव । 'नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे पुनः । अत
ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम्' इति स्मृतेः । त्रिकाण्डमण्डनोपि—'पित्रोस्तु
जीवतोः कुर्यात्पुनः पाणिग्रहं यदा । पितुर्नान्दीमुखं श्राद्धं नोक्तं तस्य मनीषिभिः' ॥
रेणुकाकारिका—'उक्तकाले विवाहाङ्गं कुर्यान्नान्दीमुखं पिता । देशान्तरे विवाह-
श्चेत्तत्र गत्वा भवेदिदम्' ॥

वरस्य मधुपर्कमाहयाज्ञवल्क्यः-‘प्रतिसंवत्सरं त्वर्च्याः स्नातकाचार्य

मधुपर्कः ।

प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः’ ॥ अत्र विज्ञे

परिशिष्टे-‘वरस्य या भवेच्छाखा तच्छाखागृह्यचोदितः ।

प्रदातव्यो ह्यन्यशाखोपि दातरि’ ॥ अत्र वरदातृशब्दौ ऋत्विगाद्युपलक्षणम् । त

‘अर्च्यशाखया मधुपर्कः’ इति । ‘अर्च्यस्य यच्छाखीयं कर्म तच्छाखया म

इति याज्ञिकाः । जयन्तस्तु-‘वरणवत्सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्कः ।

तत्तु नाद्रियन्ते वृद्धाः । अत्र ‘पञ्चाशता भवेद्ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः’ इत्यादिभ

शिष्टादेर्विष्टरादिलक्षणं मधुपर्कादिविधिश्च स्वगृह्यादेर्ज्ञेयः ।

कन्यादाने प्रपितामहपूर्वकमित्युक्तं स्मृत्यर्थसारे-‘नान्दीमुखे विवाहे च

महपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम्’ ॥ नान्दीमुखे इति

द्यतिरिक्तविषयम् । गृह्यपरिशिष्टे पित्राद्यानुलोभ्याम्नानात् । व्यासः-‘भु

द्वहेत्कन्यां सावित्रीग्रहणं तथा । उपोषितः सुतां दद्यादर्चिताय द्विजाय तु ॥’

मधुपर्कं वैधभोजनपरम् । गृह्यपरिशिष्टे-‘कन्यां वरयमाणानामेष धर्मो ि

प्रत्यङ्मुखं वरयन्ति प्रतिगृह्णन्ति प्राङ्मुखः’ ॥ मदनरत्ने ऋष्यशृङ्गः-

समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद्विद्वान्कन्यायाश्चैवमेव हि ॥ तिष्ठे

दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् । मधुपर्काचितायैनां तस्मै दद्यात्सदक्षिणाम्

पात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन द्वापयेत् । गौरिं कन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभृ

गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय । भूमिं गां चैव दासीं च वासांसि च

क्तितः ॥ महिषीं वाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि । ततः स्वगृह्यविधिना

कर्म कारयेत् ॥ यथाचारं विधेयानि माङ्गल्यकुतुकानि च’ । ‘एतत्कन्या

कार्यमिति शौनकः ॥

गृहप्रवेशनीयहोमे विशेषमाहाश्वलायनः-‘अर्धरात्रे व्यतीते तु परे

रेव हि । गृहप्रवेशनीयः स्यादिति यज्ञविदो विदुः ॥’ इति । औपासनहोमे

माह शौनकः-‘यदि रात्रौ विवाहाग्निरुत्पन्नः स्यात्तथा सति । उपक्रम्योत्

सायं परिचरेदमुम् ॥’ यदि रात्रौ नव नाडीमध्येऽन्युत्पत्तिस्तदा तदैव होम

तदुत्तरं चेत्परदिने सायमारम्भ इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥

देवकोत्थापनम् ।

अथ देवकोत्थापनम् ॥ ‘समे च दिवसे कुर्याद्देवक

बुधः । षष्ठं च विषमे नेष्टं मुक्ता पञ्चमसप्तमौ ॥’

निर्णयदीपे गार्ग्यः—‘नान्दीश्राद्धे कृते पश्चात्पावन्मातृविसर्जनम् । दत्तं
श्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च ॥ अपसव्ये स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव
चाध्ययनं नदीसीमातिलंवनम् ॥ उपवासं व्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च ।
सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि’ ॥ बृहस्पतिः—‘तीर्थे विवाहे यात्रायां सं-
प्रभवे । नगरग्रामदाहे च स्पृष्ट्वा स्पृष्टिर्न दुष्यति’ ॥ योगियाज्ञवल्क्यः—
‘दुत्सवेतीति मङ्गलं विनिवर्त्य च । अनुव्रज्य सुहृद्भूयानर्चयित्वेष्टदेवताम्’ ॥
‘स्नानं सचैलं तिलमिश्रकर्म प्रेतानुयानं कलशप्रदानम् । अपूर्वतीर्थामरदर्श-
जयेन्मङ्गलतोऽब्दमेकम् ॥ मासषट्कं विवाहादौ व्रतप्रारम्भणेन च । ज-
न त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा ॥ ऊर्ध्वं विवाहात् पुत्रस्य तथा च व्रतबन्धनात्
मुण्डनं नैव वर्षं वर्षार्धमेव च ॥ अभ्यङ्गे सूतके चैव विवाहे पुत्रजन्मनि । मा-
सर्वेषु न धार्यं गोपिचन्दनम्’ ॥

ज्योतिर्निबन्धे—‘उद्वाहात् प्रथमे शुचां यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका ह-
विवाहप्रथमवर्षे— क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम् । पौषे च श्वशुरं पति-
वर्ज्या मासाः । चैत्रे स्वपित्रालये तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषाम-
निबन्धे—‘विवाहात् प्रथमे पौषे आपाढे चाधिमासके । न सा भर्तुर्गृहे तिष्ठे-
तथा ॥’ हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे—‘विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम्
मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥’ तथा अर्थं पूर्ववत् । ‘सपिण्डा नैव
द्भिः स्नानमृतत्रये । तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयज्ञे महालये ॥ कृतोद्वाहोपि कु-
निर्वपणं सदा ॥’

अथ वधूपवेशः । जयतुङ्गे—‘मार्गशीर्षे तथा माघे माघवे ज्येष्ठसं-
शस्ते भवेद्देश्मप्रवेशो नवयोपिताम् ॥’ नारदः—‘आरभ्य
वधूपवेशः । तप्रेष्ट वाप्यष्टमे दिने । वधूपवेशः संपत्त्यै दशमेथ समे दिने
‘विवाहमारभ्य वधूपवेशो युग्मे तिथौ षोडशवासरान्तात् । ऊर्ध्वं ततोऽब्दे यु-
न्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति ॥’ नारदः—‘समे वर्षे समे मासि यदि
व्रजेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत्’ । प्रयोगरत्ने तु
प्रथमे तृतीये शुभप्रदः पञ्चमकेथ वाहि । द्वितीयके वाथ चतुर्थके वा षष्ठे
दुःखदः स्यात्’ ॥ इत्युक्तं तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

प्रकाशे-‘वामे शुक्रं नवोढायाः सुखं हानिश्च दक्षिणे । धनं धान्यं च पृष्ठस्थे सर्वनाश
पुरः स्थिते ॥ नवोढायास्तु वैधव्यं यदुक्तं संमुखे भृगौ । तदेव विबुधैर्ज्ञेयं केवलं
दिग्गमे ॥ पूर्वतोभ्युदिते शुक्रे प्रयायादक्षिणापरे । पश्चाद्भ्युदिते चैव यायात्पूर्वोत्त
दिशौ ॥’ व्यवहारतत्त्वे-‘पौष्णात्कराच्च श्रवणाच्च युग्मे हस्तत्रये मूलमघोत्तरासु
पुष्ये च मैत्रे च बध्नप्रवेशो रिक्ततरे व्यर्ककुजे च शस्तः ॥’ गर्गः-‘व्यतीपाते
मैक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेपि मानवः ॥’ तथा ‘अमार
क्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत् ।’ इति ।

अथ द्विरागमनम् । ऋक्षोच्चये-‘माघफालगुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने

द्विरागमनम् ।

शुर्वादित्यविशुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः ॥’ बादरायणः-‘नीह

गंशुदिनोत्तरादितिगुरुब्रह्मानुराधाश्विनी शुक्रे भास्करवायुविष्णुवरुण

त्वाष्ट्रे प्रशस्ते तिथौ । कुम्भाजालिगते रवौ शुभकरे प्राप्नोदये भार्गवे जीवज्ञास्फुजितां दि
नववधूवेऽमप्रवेशः शुभः ॥’

अथ पुनर्विवाहः श्रीधररिये-‘पुनर्विवाहं वक्ष्यामि दंपत्योः शुभवृद्धिदम् । ल

दंपत्योः पुनर्विवाहः-

दुलग्नयोर्दोषे ग्रहतारादिसंभवे । अन्येष्वशुभकालेषु दुष्टरोगादिसंभवे

विवाहे चापि दंपत्योराशौचादिसमुद्भवे । तस्य दोषस्य शांत्यर्थं पु

र्वैवाह्यमिष्यते ॥’ याज्ञवल्क्यः-‘सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्याथंघ्न्यप्रियंवदा । स्त्री

सृश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥’ मनुः-‘वन्ध्याष्टमे ऽधिवेत्तव्या दशमे तु मृ

प्रजा । एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥’ संग्रहे तु-‘अप्रजां दशमे व

स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् । मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥’ याज्ञवल्क्यः

‘एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यो लब्धुं य इच्छति । समर्थस्तोषयित्वाथैः पूर्वोढामप

ब्रजेत् ॥ आज्ञानं पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् । त्यजन् दाप्यस्तृतीयां शमद्रव

भरणं स्त्रियाः ॥ मनुः-‘अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्दोषिता गृहात् । सा स

संनिरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥’ इति । हेमाद्रौ कात्यायनः-‘अग्निशि

दिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया । कारयेत्तद्बहुत्वं चेज्येष्ठया गर्हिता न चेत् ॥ इति

याज्ञवल्क्यः-‘सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । स

बहुभार्यस्य धर्मो पत्नी ।

र्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा ॥’

द्वितीयविवाहहोमेऽग्निमाह कात्यायनः-‘सदारोऽन्यान्पुनर्दारानुद्बोद्धुं क

न कदाचन ॥' त्रिकाण्डमण्डनोपि—'आद्यायां विद्यमानायां द्वितीयासुद्वहेद
तदा वैवाहिकं कर्म कुर्यादावसथेग्रिमान् ॥' सुदर्शनभाष्ये तु—'द्वितीयविवाह
लौकिक एव न पूर्वोपासने' इत्युक्तम् । इदं चासंभवे ॥

तत्र चाग्निद्वयसंसर्गः कार्यः । तदाह शौनकः—'अथान्योर्गृह्ययोगेणं सप
भेदजातयोः । सहाधिकारसिद्ध्यर्थमहं वक्ष्यामि शौनकः ॥ अरोगासुद्वहेत्कन्यां
लोपभयात्स्वयम् । कृते तत्र विवाहे च व्रतान्ते तु परेहनि ॥ पृथक्स्थण्डिलयोरग्निं
धाय यथाविधि । तत्र कृत्वाज्यभागान्तमन्वाधानादिकं ततः ॥ जुहुयात्पृथ्वीपत
तयान्वारब्ध आहुतिः । अग्निर्माले पुरोहितं सूक्तेन नवर्चेन तु ॥ समिध्वेनं समा
अयं ते योनिरित्यूचा । प्रत्यवरोहेत्यनया कनिष्ठाग्नौ निधाय तम् ॥ आज्यभागान्तत
दि कृत्वारभ्य तदादितः । समन्वारब्ध एताभ्यां पत्नीभ्यां जुहुयाद् घृतम् ॥ चतुर्गृह
ताभिर्ऋग्भिः षड्भिर्यथाक्रमम् । अग्रावग्निश्चरतीत्यग्निनाग्निः समिध्वते ॥ अस्तीद
तिसृभिः पाहि नो अग्न एकया । ततः स्वष्टकृदारभ्य होमशेषं समापयेत् ॥ गौयुगं द
देया श्रोत्रियायाहिताग्नये । पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्वा तेनैव तां पुनः ॥ अ
तान्यया सार्द्धमाधानविधिना गृही ॥' इति ।

बौधायनसूत्रे तु—'अथ यदि गृहस्थो द्वे भार्ये विदेत कथं तत्र कुर्यादिति य
काले विदेतोभावग्रीपरिचरेदपराग्निमुपसमाधाय परिस्तीर्याज्यं विलाव्य म्युचि चतु
गृहीत्वाऽन्वारब्धायां जुहोति नमस्त ऋषेरादाव्यथायै त्वा स्वधायै त्वामान इंद्राभिमत
दृष्टारिष्टां स एव ब्रह्मन्त्रवेदेषु स्वाहेत्यथाऽयंते योनिर्ऋत्विय इति समिधि समागोप
पूर्वाग्निमुपसमाधाय जुह्वान उदबुध्यस्वाग्न इति समिधमाधाय परिस्तीर्य म्युचि चतु
त्वा द्वयोर्भार्ययोरन्वारब्धयोर्यजमानोभिमृशति ब्रह्मा ब्रह्मण इत्येतेन सूक्तेनैकं चतु
तं जुहोत्यग्निमुखान् कृत्वा पक्वां जुहोति संमितं संकल्पेथामिति पुरोनुवाक्याम
पुरीष्वे इति याज्यया जुहोति पुरीष्यमस्तमित्यन्तादनुवाकस्य स्वष्टकृत् प्रभृतिसि
धेनूवरदानादथाग्नेनाग्निं दर्भस्तम्बे हुतं शेषं निदधाति ब्रह्मजज्ञानं, पिताविराजामि
भ्यां संसर्गविधिः कार्यः' ।

द्वितीयादिविवाहे कालउक्तः संग्रहे—'प्रमदाभूतिवासरादितः पुनरुद्वाह
वार्स्य च । विषमेऽयुगवत्सरे शुभो युगलं चापि मृतिप्रदो भवेत् ॥'

तृतीयविवाहे निषेधो नास्त्ये—'उद्गहेद्व्रतिसिद्ध्यर्थं तृती
तृतीयविवाहे निषेधः ।

न संदेहो गर्गस्य वर्चनं यथा ॥' इति । संप्रहे- 'तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा संवत् ॥ चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्बहेत्' ॥

तद्विधिस्तु- 'रविशन्योर्हस्ते वा वरः संकल्प्य स्वस्तिवाचनं नान्दीश्राद्धं कृत्वाचार्यं वृत्वा आह्वयणेनेति छायायुतं सूर्यमर्कं संपूज्य गुडौदनं दत्त्वा वस्त्रेण तन्तुभिरावेष्ट्य । 'त्रिलोकवासिन् सतांश्च च्छायया सहितो रवे ॥ तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ॥' इति संप्रार्थ्य जलेन त्रिः सिञ्चेत् । 'मम प्रीतिकरा येयं मया सृष्टा पुरातनी । अर्कजा ब्रह्मणा नृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु ॥ नमस्ते मङ्गले देवि नमः सवितुरात्मने । ज्ञाहि मां कृपया देवि पत्नी त्वं मे इहागता ॥ अर्कं त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च । वृक्षा-
णामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्धनः ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय ॥' इति । ततः आचार्यः 'काश्यपगोत्रामादित्यप्रपौत्रीं सवितुः पौत्रीं मम पुत्रीमर्ककन्याम-
सुकगोत्राय वराय दास्ये ।' इति वाग्दानं कृत्वा वरस्य मधुपर्कं दत्वाऽन्तःपटं धृत्वा स्व-
स्तित्वा इति सूक्तं जप्त्वा पूर्ववरकन्यां दत्त्वा 'अर्ककन्याभिमायु, इत्यूहेन कन्यादानमंत्र-
सुक्ता इक्षिणां दद्यात् । ततो गायत्र्या वेष्टितसूत्रेण बृहत्सामोति मन्त्रेण कंकणं वद्ध्वाऽ-
र्कस्य चतुर्विंशु कुम्भेषु विष्णुं संपूज्याग्निं प्रतिष्ठाप्याधारान्ते संगोभिरिति बृहस्पतये यस्मै
त्वा कामकामायेत्यृचाऽग्नये व्यस्तसमस्तव्याहतिभिराज्यं हुत्वाचार्याय गीयुर्गं दत्त्वा
'त्वा कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा । अर्काऽपत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षनुर्हसि ॥'
इति नभस्त इति दिक् ॥ इति निर्णयसिन्धौ विवाहप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथाधानम् । रत्नमालायाम्- 'प्राजापत्ये पूषभे सद्भिर्देवे पुष्ये ज्येष्ठास्वैन्दवे
कृत्तिकासु । अग्न्याधानं ह्युत्तराणां त्रयेपि चित्रादित्ये कीर्तितं गर्गमुख्यैः ॥ आश्व-
लायनः- 'अग्न्याधेयं कृत्तिकासु रोहिण्यां मृगशिरसि फल्गुनीषु विशाखयोरुत्तरयोः
प्रौष्ठपदयोरेतेषां कस्मिंश्चिद्वसन्ते पर्वणि ब्राह्मण आदर्धात् ग्रीष्मवर्षांशरस्तु क्षत्रिय-
वैश्योपकुश्टा यस्मिन्कस्मिंश्चिद्वत्तावादर्धात् सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रम् ।'

सोमाधाने ऋत्वाद्यनालोचनमार्तपरम् । 'अथो खलु यदैवैनं ९ श्रद्धोपनमे-
दथादर्धात् सैवास्य विधिः ।' इति 'सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रं तदेतदार्त्तस्या-
तिवेलं वा श्रद्धायुक्तस्य भवति' इति बौधायनोक्तेरिति । मदनरत्ने वृद्धगा-
र्ग्यः- 'पुष्याग्नेयज्युत्तरादित्यपौष्णज्येष्ठाचित्रार्कद्विदैवन्दुभेषु । कुर्युर्वह्न्याधानमाद्यं बस-
न्तग्रीष्मोष्मात्तेष्वेव विप्रादिवर्णाः ॥' कालादर्श- 'अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावप्युत्त-
रायणे । उपक्रम्य यथाकालमुपासीरन् द्विजातयः ॥ सोमं च पशुबन्धं च सर्वाश्च
विजानीहि । सौम्येनेत्येवमिति ।

अग्निहोत्रकाल उत्तच्छुन्दोगपरिशिष्टे—‘उदितेनुदिते चैव सनयाध्युषिते तथा । सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥’ एतेषां स्वरूपं तत्रैव—‘गत्रेस्तु षोडशे भागे ग्रहनक्षत्रभूषिते । कालं त्वनुदितं ज्ञात्वा होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ तथा प्रभातसमये नष्टे नक्षत्रमण्डले । रविर्यावन्न दृश्येत सनयाध्युषितं च तत् ॥ रेखामात्रं प्रदृश्येत रश्मिभिश्च समन्वितः । उदितं तद्विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत् ॥’ आश्वलायनः—‘उपोदयं व्युषित उदिते वा ।’ सायं तु स एव ‘अस्तमिते होमः’ इति । गौणकालमाह स एव—‘प्रदोषान्तो होमकालः संगवान्तः प्रातः’ इति । शुन्दोगपरिशिष्टे—‘यावत्सम्यङ् न भाव्यन्ते नभस्पृक्षाणि सर्वतः । न च लोहितमापैति तावत्सायं तु दूयते ॥ औपासनेप्येवम् ।’ ‘तस्य अग्निहोत्रेण प्रातुष्करणहोमकालो व्याख्यातौ’ इत्याश्वलायनोक्तेः ।

अथावसथ्याधानम् । परस्करः—‘आवसथ्याधानं द्वागकाले द्वायाद्यकाल एकेषाम्’ इति । द्वायाद्यकालो विभागकालः । मदनरत्ने व्यासः—‘अग्निर्वैवाहिको येन न गृहीतः प्रभातिना । पितर्युपगते तेन गृहीतव्यः प्रयत्नतः ॥ यो ऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते । अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथायाको हि न स्मृतः ॥’ ज्येष्ठभ्रातरि पितरि वा साग्नौ कनिष्ठस्य पुत्रस्य वाऽग्न्यभावेपि न दोषः । तदाह तत्रैव गार्ग्यः—‘पितृपाकोपजीवी वा भ्रातृपाकोपजीविकः । ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताग्निना विना ॥’

गृहस्थस्याप्यध्ययनमाह सत्यव्रतः—‘अनधीत्य द्विजो वेदं ज्ञात्वोद्वाह्य यथा तथा । अधीते ब्रह्मध्वरेण सांगं वेदं गुणेर्गृहे ॥’ इदं चाधानं ज्येष्ठे गृहस्थस्याध्ययनम् । कृताधाने न कार्यम् । द्वाग्निहोत्रसंयोगं कुर्वते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥’ इति मतुशान्तातपोक्तेः । स्मार्तैरप्येज्येष्ठभ्रातर्यद्विजाधानं वम् । सोदरे तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्वाग्संग्रहम् । आवसथ्यं तथाधानं कनिष्ठस्यानधिकारः । पतितस्तु तथा भवेत् ॥’ इति तत्रैव गार्ग्योक्तेः । आज्ञायां स्वदोषमाह सुमन्तुः—‘ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चाश्रयेत् । अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शांखस्य वचनं यथा ॥’ वृद्धवसिष्ठः—‘अग्रजस्तु यदाऽनग्निग्रादध्यादनुजः कथम् । अग्रजानुमतं कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि ॥’ हारीतः—‘सोदराणां तु सर्वेषां परिवेत्ता कथं भवेत् । दारैस्तु परिविद्यन्ते नाग्निहोत्रेण नेज्यया ॥’ अधिकारिणोपि आतुरनुज्ञया कुर्यादिति मदनपारिजातः । विवाहस्त्वनुज्ञयापि

विशेषमाह स एव-‘अष्टौ दश द्वादश वर्षाणि वा ज्येष्ठभ्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणः प्रायश्चित्ता भवति ।’ इति ।

क्लीवादावप्यदोषमाह कात्यायनः-‘देशान्तरस्थह्यैकवृषणानसहोदरान् । वेश्यानिष्ठांश्च पतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः । जडमूकांधवधिरकुब्जवामनखञ्जकान् । अतिवृद्धानभार्यांश्च कृपितक्ताष्टपस्य च ॥ धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतोकारिणस्तथा । कुटिलोन्मत्तचोरांश्च परिविद्वन् दुष्यति ॥’ आशार्क्येपि-‘उन्मत्तः किल्बिषी कुष्ठी पतितः क्लीव एव वा । राजयक्ष्मामयावी च न न्याय्यः स्यात्प्रतीक्षितुम् ॥’ एवं ज्येष्ठे छिन्नहस्तादावपि न परिवर्तत्वम् । तदाह त्रिकाण्डमण्डनः-‘दर्शेष्टि पौर्णमासेष्टि सोमेज्यामग्निसंग्रहम् । अग्निहोत्रं विवाहं च प्रयोगे प्रथमे स्थितम् ॥ न कुर्याज्जनके ज्येष्ठे सोदरे चाप्यकुर्वति । क्षेत्रजादौवर्नाजाने विद्यमानेपि सोदरे ॥ नाधिकारविधातोस्ति भिन्नोदर्येपि चौरसे । पंग्वन्धमूकवधिरपतितोन्माददूषणे ॥ संन्यस्तच्छिन्नहस्तादौ यद्वा षण्ठादिदूषणे । जनके सोदरे ज्येष्ठे कुर्यादेवेतरः क्रियाम्’ ॥ इति । ‘आरोहतं दशतं शकरीर्मम’ इत्याधाने मन्त्रवर्णाच्च । शकरीरंगुलीः ।

तन्त्ररत्नेप्युक्तम्-‘अंगवैकल्यात् पूर्वमाहिताग्निवैधिक्रियेतैव नित्येषु । आधानं तु न कुर्यात्तस्य नैमित्तिकत्वात् ।’ इति । एवं चतुरंगुलेपि । षडंगुलकाणविवर्णां देस्त्वस्त्येवाधिकारः । एकादशसु दशान्तर्गतेः । शरीरकार्श्यं वा विप्रतिषिद्धम् । इति हिरण्यकेशिशूत्रेकर्माशक्तिहेतोरैवांगवैकल्यस्य निषेधात् । अत एव द्राह्यायणशूत्रे-‘याज्यश्च प्रथमैस्त्रिभिर्गुणैः’ इति न्यूनाङ्गस्याप्यधिकार उक्तः । अपरार्के उशानाः-‘पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाथ कस्यचित् । तपोग्निहोत्रमन्त्रेषु न दोषः परिवेदने ॥’ पितुराज्ञायामप्यदोषमाह मदनरत्ने सुमन्तुः-‘पित्रा यस्य तु नाधानं कथं पुत्रस्तु कारयेत् । अग्निहोत्रेधिकारोऽस्ति शंखस्य वचनं यथा ॥’ इति नाधानं कृतमित्यर्थः । एतदाज्ञायामेवेति हेमाद्रिः । यत्तु-‘पितुः सत्यप्यनुज्ञाने नादधीत कदाचन ॥’ इति । तत्सत्यधिकारे ज्ञेयम् ।

अथ शूद्रसंस्काराः । यमः-‘शूद्रोऽप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः । न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः’ ॥ छन्दसा मन्त्रेण । व्यासोपि-‘गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च । नामक्रियानिष्क्रमोन्नप्राशनं वपनक्रिया ॥ कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः । केशान्तास्नान-

मुद्राहो विवाहाग्निप्रिग्रहः ॥ त्रेताग्निसंग्रहश्चैव संस्काराः षोडश स्मृताः ॥' इति ।
 'नैवैताः कर्ण वेधान्ता मन्त्रवर्जं स्त्रियाः क्रियाः । विवाहे मन्त्रतस्तस्याः शुद्धस्याः
 दश ॥' इति । मदनरत्ने हिरण्यगर्भदाने तु—'गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्त
 तथा ॥ कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुंगवाः' ॥ इत्युक्त्वा 'जातकर्मदिकाः कुर्यात्
 षोडश चापराः' ॥ इत्यत्र 'स्त्रिया जातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडाविवाह
 'शुद्धाणां तु षडेते पञ्चमहायज्ञाश्चेत्येकादश' इत्युक्तम् । रूपनारायणहरिहर
 योरप्येवम् शार्ङ्गधरस्तु—'द्विजानां षोडशैव स्युः शुद्धाणां द्वादशैव हि । प
 श्रजातीनां संस्काराः कुलधर्मतः ॥ वेदव्रतोपनयनमहानां न्नीमहाव्रतम् ।' द्वादश
 संस्कारा नाममन्त्रतः इत्याह ।

अपरार्कस्तु 'गर्भाधानमृतौ पुंसः' इत्यत्राह 'एतच्चातुर्वर्ण्यपरम् न द्विजा
 परम् । तथा सत्युपनयनं विधाय वाच्यं स्यात्' इति । तेन तन्मतेष्टौ भवन्ति ।
 तु—'विवाहमात्रसंस्कारं शुद्धोपि लभतां तदा ।' इत्युक्तम् । अत्र सदसच्छुद्ध
 त्वेन देशभेदाद्व्यवस्था । यत्तु मतुः—'न शुद्धे पातकं किञ्चिन्न च संस्कार
 इति । तदर्थमाह भेधातिथिः—'यत्सामान्यतो निषिद्धं स्तेयानृतादि न तदति
 पापं यथा द्विजानाम् । उपनयनरूपं संस्कारं च नार्हति' इति ते च तूष्णीं
 शुद्धो वर्णश्चतुर्थोपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति । वेदमन्त्रस्वधास्वाहा वषट्कारादिभिर्विना

१—'वैवाहिको विधिः त्रीणामौपनायनिकः परः' इत्युक्तेर्विवाह एवोपनयनस्थानीयः । अ
 एव 'पतिरेव गुरुः त्रीणान् पतिसेवा गुरो वासो गृहाधीभिप्रापरिक्रिया' इति वचनात् । 'अहो
 नेन पतिः परिदृष्ट्यात् या भङ्गन्तन्नित्येतयर्चा, परिव्रत्तं धत्त वाससेति च प्रावृत्तां यज्ञोपवी
 दानयन् जपेत् । 'सोमो ददद्गन्धर्वयेति' इति गोभिलगृह्यतः यज्ञोपवीतधारणं वसिष्ठस्मृता
 ध्याये तत्तत्प्रायश्चित्तार्थं त्रीणामपि गायत्रीजपहोमविधानस्यान्यथानुपपत्त्या गायत्र्यङ्गीकारं
 कारयेत् । पुराकल्पे तु नारीणां मौजीवन्ननमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्र्या वचनं
 इति वचनेनापि गिजर्थभूतप्रयोजकत्वस्यास्मिन्कल्पे निषेधेपि धात्वर्थव्यापाराश्रयत्वरूपप्रयो
 निषेधात् । ततश्च यथावकाशं पतिरेव स्वशाखावेदं पाठयेत् । अत एव 'जातेरस्त्रीविषय
 सूत्रभाष्ये जातिलक्षणकथनावसरे कथितस्य 'अपत्यप्रत्ययान्तः शाखायेतुवाची च जाति
 इत्यर्थकस्य 'गोत्रं च चरणैः सह' इति वार्तिकस्य कठो बहुवृची अव्यर्थः इत्युदाहरणानि वेद
 न्तराऽनुपपन्नानि संगच्छन्ते । अत एव तत्तद्यागेष्वपि यजमानपत्न्यास्तत्तन्मन्त्रपाठः । याज्ञे

प्रमाणैः । 'अमन्त्रस्य तु शुद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते ।' इति मरीच्युक्तेश्च ।
इयं रक्षिता सर्वाया, तेन शुद्रधर्मेषु सर्वत्र विप्रेण मन्त्रः पठनीयः । सोऽपि पौराण-
मन्त्रिणः । एवं स्त्रीणामपीति दिक् ॥

इति राजकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ तृतीय-
परिच्छेदे संस्कारनिर्णयः ॥

अथ शुद्रकालाः । तत्र जलाशयस्य । वाराहः-‘हस्ते चाम्बुपपौष्णकेशव-

अथ शुद्रकालाः ।

मघाभिन्नोत्तरारोहिणीदेवज्येषु च शुक्रसौम्यशशभृद्वागीशवारांशके ।
रिक्तां छिद्रतिथिं विहाय वृषभे नक्षत्रे कुलीरे वटे मीने कूपतडागकर्म
मुनयः संशान्तिं शुद्धेऽष्टमे । हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः । शतभिष-
गित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगवः ॥’ हेमाद्रौ भविष्ये-‘तस्मिन् सलिलसंपूर्णे
कार्तिके तु विशेषतः । मुनयः केचिदिच्छन्ति व्यतीते चोत्तरायणे ॥ न कालनियमस्तत्र
सलिलं तत्र कारणम् ॥’ दीपिकापि-‘मार्तण्डेन्दूदुशुद्धौ मुरजिदशयने मावषट्कस्य
शुक्ले मूलाषाढोत्तराश्विष्रवणगुरुकरे पौष्णशक्राप्यचन्द्रे । भैत्रे ब्राह्मे च पूर्णा मदन १३
रवि १२ तिथौ सद्द्वितीयातृतीये कार्या तोयप्रतिष्ठा जगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने ॥’
वराहः-‘अग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः । नित्यं स करोति भयं
उहं च समानतं प्रायः ॥ नैर्ऋत्येवालभयं वनिताक्षयं च वायव्ये । दिक्षत्रयमेतस्यक्त्वा
ज्ञात्वा शुभावहाः कूपाः ॥’ वास्तुशास्त्रे-‘भूतिं पुष्टिं पुत्रहानिं पुण्डीनाशं मृत्युं
नैषदं शत्रुबाधाम् । किञ्चित्सौख्यं शंभुकोणादि कुर्यात् कूपो मध्ये गेहमर्थक्षयं च’ ।

उत्सर्गविधिश्चोक्तो बहुवृचपरिशिष्टे-‘अथातो वापीकूपतडागयज्ञं व्याख्या-
स्यातः । पुण्येत्थुदकसमीपेऽग्निं समाधाय वारुणं चरुं श्रपयित्वाज्यभागान्ते आज्याहुती-
ज्जुह्यात् । ससुद्रज्येष्ठेति प्रत्यृचं ततो हविषाष्टौ तत्त्वायामीति पञ्च त्वं नो अग्ने इति द्वे
इमं मे वत्तेति च स्विष्टकृतं नवमम् । मार्जनान्ते धेनुं तारयेत् । अवतीर्यमाणामनु-
मन्त्रयेत् । ‘इदं सलिलं ववित्रं कुरुष्व शुद्धाः पूता अमृताः सन्तु नित्यम् । मां तार-
यन्ती कुरु तीर्थाभिषेकं लोकाह्लोकं तरते तीर्यते च’ इति पुच्छाग्नेन्वारब्ध उत्तीर्यापो
अस्मान्मत्तरः शुन्वसंतित्वथापराजितायां दिश्युपस्थापयेत्सूयवसाद्भगवतीति हिंकृतं
चेद्विकृष्यतीत्यलंकृतां विप्राय दद्यादितरां नाशक्त्या दक्षिणां तत उत्सृजेद्देवपितृमनु-
ष्याः प्रीत्यन्तामिति ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयति’ इति । विस्तरस्तु

मात्स्योक्तेऽस्मत्कृते जलाशयोत्सर्गविधौ ज्ञेयः । कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोष-
भविष्ये-‘सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम् । कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्पर्श-
संस्कृतम् ॥ तथा-‘वापीकूपतडागादीं यज्जलं स्यादसंस्कृतम् ॥ अपेयं तज्ज-
पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’

अथ वृक्षारोपणम् । चण्डेश्वरः-‘आदित्यचान्द्रपितृतिष्यविशाखपौष्णमृत-
वृक्षारोपणम् । त्रयतुलंगमवारुणाश्च । एतेषु तारकगणेषु हितं नराणां वृक्षादिरो-
होपदिशंति धीराः ॥’

अथ मूर्तिप्रतिष्ठा । वसिष्ठः-‘हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्य-
त्रये । तिस्रोत्तराधातृशशांकभेषु सर्वाभारस्थापनमुत्तमं स्यात् । म-
मूर्तिप्रतिष्ठा । चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माघे तथा । माघे वा सर्व-

प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥’ नारदस्तु-‘चैत्रं निषेधयति ‘विचैत्रेष्वेव मासेषु माघा-
पञ्चमे ॥’ इति । तेनात्र विकल्पः । अत्र माघमासो विष्णुप्रतिष्ठाव्यतिरिक्तः ।
‘माघे कर्तुं विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् ॥’ इति विष्णुधर्मोक्तिरिति हेम-
मात्स्ये-‘दृढा धनकरी स्फीता तथा प्रतिपदि स्मृता । द्वितीयायां धनोपेता तु
धनप्रदा ॥ चतुर्थ्यां नाशमाप्नोति यमस्य स्यात्सुखावहा । विनायकस्य देवस्य
तत्र हितप्रदा ॥ पञ्चम्यां श्रीयुता कर्तुर्वरदा च तथा भवेत् । षष्ठ्यां लक्ष्मीयुता
सप्तम्यां रोगनाशिनी ॥ अष्टम्यां धान्यबहुला नवम्यां च विनश्यति । भद्र-
कृता तत्र कर्तुर्भवति तुष्टये ॥ धर्मवृद्धिकरी ज्ञेया दशम्यां तु तथा तिथौ । एव-
तथा युक्ता द्वादश्यां सर्वकामदा ॥ त्रयोदश्यां तथा ज्ञेया चतुर्दश्यां विनश्य-
कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां कर्तुः क्षयकरी भवेत् ॥ पञ्चदश्यां तथा शुक्ले सर्वकामकरी
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा
हस्तोश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरास्तथा ॥ अनुराधा तथा स्वाती प्र-
शस्यते ॥’

श्रीपतिः-‘रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरादित्याश्विनीवासवानुराधैन्दवजीवभेषु
विष्णोः प्रतिष्ठापनम् । पुष्यश्रुत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्विन्ताधिपस्कन्दयोर्मित्रे ति-
करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम् ॥ गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रथमप-
स्वत्यादिकानां च पौष्णे । श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमा-
स्थापनं च स्थिरेषु ॥ तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाहविधायिनी स्याद्धनदा ह-

लिङ्गप्रतिष्ठायां विशेषो हेमाद्रौ लक्षणसमुच्चये—‘उत्तराशागते भानौ लिङ्ग-
स्थापनमुत्तमम् । दक्षिणे त्वयने पूज्यं त्रिवर्षाद्वै भयावहम् ॥ स्वगृहे स्थापनं भेष्टं तस्माद्वै
दक्षिणायने । स्थापनं तु प्रकर्तव्यं शिशिरादावृतुत्रये ॥ प्रावृषि स्थापितं लिङ्गं भवेद्वरद-
योगदम् । हेमन्ते ज्ञानदं चैव लिङ्गस्यारोपणं मतम् ॥’ रत्नावल्याम्—‘माघफाल्गुनवै-
शाखज्येष्ठाषाढेषु पञ्चसु । मासेषु शुक्लपक्षेषु लिङ्गस्थापनमुत्तमम् ॥’ विष्णुरप्याह ।
तत्रैव वैखानसः—‘मार्गशीर्षादिमासौ द्वौ निन्दितौ ब्रह्मणा पुरा । मासेषु फाल्गुनः
श्रेष्ठश्चैत्रो वैशाख एव च ॥ वृषे वाप्यश्वयुज्मासे श्रावणे मासि वा भवेत् ॥’

बौधायनसूत्रे विष्णुप्रतिष्ठामुपक्रम्य ‘द्वादश्यां श्रोणायां वा यानि चान्यानि
पुण्यनक्षत्राणि’ इति । कृत्तिकादिविशाखान्तेष्वित्यर्थः । सर्वदेवेषु मासविशेषो हेमाद्रौ
विष्णुधर्मे—‘माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् । लोकानन्दकरी चैत्रे वैशाखे
वरसंयुता ॥ आज्ञायुता सदा ज्येष्ठे आषाढे धर्मवृद्धिदा । श्रावणे धनहीना स्यात्
प्रोष्ठपदे विनश्यति ॥ आश्विने नाशमाप्नोति वह्निना कार्तिके तथा । सौम्ये सौभाग्य-
मतुलं पौषे पुष्टिरनुत्तमा ॥ दोषान्विताधिमासे स्यात्कर्तुरात्मन एव च’ ॥ इति ।
अत्र श्रावणाश्विनयोर्निषेधो मार्गशीर्षविधिश्च विष्णुव्यतिरिक्तविषयः । पूर्वोक्तवचनादिति
हेमाद्रिः—‘माघश्रावणभाद्रपदनिषेधः शिवव्यतिरिक्तविषयः तत्र तस्योक्तेः । देवीस्था-
पने तत्रैव विशेषो देवीपुराणे—‘देव्या माघेश्विने मासे उत्तमा सर्वकामदा ॥’ तथा—
‘न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोत्र कारणम् । सर्वकालं प्रकर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥’
अन्यथात्र विचारो हेमाद्रौ ज्ञेयः । नारदः—‘हन्त्यर्थहीना कर्तारं मन्त्रहीना तु
ऋत्विजम् । स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥’

अत्राधिकारिण उक्ताः कृत्यकल्पतरौ देवीपुराणे—‘वर्णाश्रमविभेदेन देवाः
स्थाप्यास्तु नान्यथा । ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः ॥ चतुर्वर्णैस्तथा
विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः । भैरवोपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः ॥ मातरः सर्व-
लोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः । लिङ्गं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा ॥’
शिवसर्वस्वे भविष्ये—‘यस्तु पूजयते लिङ्गं देवादिं मां जगत्पतिम् । ब्राह्मणः
क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः ॥ तस्य प्रीतः प्रदास्यामि शुभाँल्लोकाननुत्तमान् ॥’
तिथितत्त्वे स्कान्दे—‘शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये । तस्याहमर्चा

गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषिते ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थश्च सुव्रते । एवं हि
देवं पूजयेदम्बिकापतिम् ॥ संन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत् । नमोन्तेन
स्त्रीणां पूजा विधीयते ॥' एतच्च पुराणप्रसिद्धर्जार्णलिङ्गपूजाविषयम् । यानि तु
लीसेतौ नारदीये-‘यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः । न तस्य
तिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ नमेद्यः शूद्रसंस्पृष्टं लिङ्गं वा हरिमेव वा । स सर्व
भोगी यावदाचन्द्रतारकम् ॥ पाखण्डपूजितं लिङ्गं नत्वा पाखण्डतां व्रजेत् ।
रपूजितं लिङ्गं नरश नरकमश्नुते ॥ योषिद्विः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमे
स कोटिकुलसंयुक्तमाकल्पं रौरवं वसेत् ॥’ इत्यादीनि तानि नूतनस्थापितानि
दिविषयाणि । यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्विर्यथाविधि । तदाप्रभृति
योषिद्रापि न संस्पृशेत् ॥ इति तत्रैवोक्तेः ।

प्रतिष्ठायां तु शूद्रादीनां नाधिकारः । ‘स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च ज
स्पर्शने नाधिकारोस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य वा ॥ यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्
नमेन्नरः । इहैवात्यन्तदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किन्तु ॥ शूद्रो वानुपनीतो वा
वा पतितोपि वा । केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते’ ॥ इति बृहन्ना
स्कान्दोक्तेरिति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः । चतुर्वर्णैरिति पूर्वोक्त
द्विष्ण्वादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्प इति युक्तं पश्यामः । तत्रैव गौ
‘शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्याद्दुदङ्मुखः ॥’ वाचस्पतिमतम्-‘प्राक्पदि
स्यस्तु प्रातः सायं निशासु च ।’ इति । प्रयोगपारिजातेगृह्यपरिशिष्टे-
प्राङ्मुखी रुदङ्मुखो यजेताऽन्यत्र प्राङ्मुखः ।’ एतच्च स्थिरप्रतिमाविषयम्
चलार्चासु ॥

अथ प्रतिमाः भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये-‘सौवर्णीं राजर्त
मृन्मयी च तथा भवेत् । पाषाणधातुयुक्ता वा रीतिकांस्यमयी
प्रतिमाः ।
रीतिः पित्तलम् । शुद्धदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते ।

वर्दारभ्य वितस्ति यावदेव तु । गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥
रात्रे तु-‘मृदारुलाक्षागोमेदमधूच्छिष्टमयी न तु ॥’ इति निषेध उक्तः । भ
‘शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रति
स्मृता ॥’ काष्ठं मधुकस्यैव । ‘तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुंधरे । कृत्वा त

चैव प्रतिष्ठाविधिनाचर्येत् ॥ इति वराहोक्तेः । देवीपुराणे—‘सप्तांगुलं यावच्च द्वादशांगुलम् । गृहेष्वर्चा समाख्याता प्रासादेवाधिका शुभा’ ।

तिथितत्त्वे कालिकापुराणे—‘प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिण प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्य देवस्य वा हरेः ॥ अन्येषामपि देवानां प्रतिमासु च प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥ वासुदेवस्य बीजेन तद्विष्णोरित्य तथैव हृदयेगुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ॥ एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयेपि स अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ॥ अस्यै देवत्वमर्चायै मा कञ्चन ॥’ ह्यशीर्षपञ्चरात्रे—‘अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशयनात् । प्याच्च विम्बानां देवः सान्निध्यमृच्छति ॥’ प्रयोगपारिजाते व्यासः—‘प्रा न्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत् । कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम् ॥’

लिङ्गे विशेषस्तिथितत्त्वे भविष्ये—‘मृदस्मगोशकृत्पिष्टताम्रकांस्यमयं कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि ॥ वार्षं वित्तप्रदं लिङ्गं स्फाटिकं दम् । कृत्वा पूज्य विप्रेन्द्र लप्स्यसे वाञ्छितं फलम् ॥’ तत्रैव काल स्कान्दे—‘अक्षदल्पपरीमाणं न लिङ्गं कुत्रचिन्नरः । कुर्वीतांगुष्ठतो द्वस्वं न त्समाचरेत् ॥’ अक्षोऽशीतिर्गुञ्जाः । ‘गुञ्जाः पञ्चालपमाषकः । ते षोडशाक्षः इत्यमरकोशात् । प्रयोगपारिजाते क्रियासारे—‘नवाष्टसप्तांगुलिकं मिहोच्यते । षट्पञ्चकचतुर्मानं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् ॥ त्रिद्वयेकांगुलिका विधं तत्कनीयसम् । एवं नवविधं प्रोक्तं चरलिङ्गं यथाक्रमम् ॥’

अथ पञ्चसूत्रीनिर्णयः गौतमीतन्त्रे—‘लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गो

मतः । परिधिस्तात्रिगुणितस्तद्वत् पीठं व्यवस्थितम् ॥

पञ्चसूत्री ।

तथैव स्यात् पञ्चसूत्रविनिर्णयः ॥’ अत्रैदं तत्त्वम् । लि

विस्तारं लिङ्गोच्चतासमं कृत्वा तत्रिगुणसूत्रवेष्टनार्हं लिङ्गस्थौल्यं कृत्वा त चतुरस्रं वा पीठविस्तारमधश्चोर्ध्वं च कुर्यात् । पीठोच्चता तु लिङ्गोच्चतातो पीठमध्ये लिङ्गाद्विगुणस्थूलं पीठोच्चतातृतीयांशेन कण्ठं कृत्वा तस्योर्ध्वं अ वप्रद्वयं त्रयं वा कृत्वा लिङ्गविस्तारषष्ठांशेन पीठोपरि बाह्यमेखलां कृत्वा संलग्नतत्समं खातं कृत्वा पीठाद्बहिर्लिङ्गसमदीर्घा पीठार्धदीर्घा वा मूले विस्तारां तृतीयांशेन मध्ये खातां पीठवत्समेखलां प्रणालिकां कुर्यात् । इ मूलं सिद्धान्तशेखरे शैवागमे च ज्ञेयम् ॥

१—‘पञ्चसूत्रविधानं च कुर्याद्विङ्गे शुभावहम् इति वचनात्पञ्चसूत्रमावश्यकम् । ‘पञ्च च पार्थिवे न विचारयेत् । यथाकथंचिद्विधिना रमणीयं प्रकल्पयेत्’ । इति च सिद्ध इति टीका ।

तिथितत्त्वे ब्राह्मे-‘सर्वत्रैव प्रशस्तोब्जः शिवसूर्यार्चनं विना ॥’ तत्रैव वाराहप
 गृहे शंखशालग्रामादि-**अयोः**-‘गृहे लिङ्गद्वयं नाच्य शालग्रामद्वयं तथा । द्वे चक्रे द्वारकाय
 पूजनम् । स्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा ॥ शक्तित्रयं तथा नार्च्यं गणेशत्रयमेवच
 द्वौ शंखौ नार्चयेच्चैव भग्नां च प्रतिमां तथा ॥ नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं तथा
 गृहेग्निदग्धा भग्नाश्च नार्च्याः पूज्या वसुंधरे ॥ एतासां पूजनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद्दृही
 शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं नहि ॥ विषमा नैव पूज्यास्तु विषमेष्वेक
 हि । शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रका ॥ खण्डिता स्फुटिता वापि शालग्रामा
 ला शुभा ॥ वाराहे-‘दद्याद्भक्त्या यो देवि शालग्रामशिलां नरः । सुवर्णसहितां दिव
 पृथ्वीदानफलं लभेत् ॥’ तत्रैव-‘यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम् । तत्प
 नैव शक्तोहं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥’ देवीपुराणे-‘ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृ
 वीपते । स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा ॥’

अविभक्तानामपृथग्देवपूजामाह प्रयोगपारिजाते आश्वलायनः-‘पृथक्
 प्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत् पृथक्
 तत्रैव विष्णुधर्मे-‘शालग्रामशिलां वापि चक्रांकितशिलां तथा । ब्राह्मणः पूजयेन्नि
 क्षत्रियादिर्न पूजयेत् ॥ इदं स्पर्शसहितपूजाविषयम् । ‘शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो
 पतितोपि वा । केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥ ब्राह्मण्यपि हरं विष्णुं न स्पृ

१-‘कौसल्याभि तदा देवी रात्रिस्थित्वा समाहिता । प्रभाते चाकरोत्पूजां विष्णोः पुत्रहितैषि
 सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा । अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवक्त्रतमङ्गला ॥’ ‘मया
 देवगणाः शिवादयो महर्षयो भूतगणाः सुरोऽरगाः’ (१०२ सर्गे ४४) इति ‘संख्याकालम
 श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी । नदीं चेमां शुभजलां संख्यायै वरवर्णिनीम् ॥’ (३९२ सर्गे ४९) इति
 रामायणदर्शनेन, कादम्बर्याख्यायिकायामपि महाश्वेतावर्णने ‘अथ क्षीणायां क्षपायां भगवती
 ध्यामुपास्य शिलातलेपविष्टायां पवित्राप्यधमर्षणानि जपन्त्यां महाश्वेतायां, परिसमाप्तजपा तु मह
 ता, इत्यादिदर्शनेन, ‘भीमोद्भवापि कृतदैवतभक्तिपूजा’ इति नैषधीयचरितदर्शनेन स्त्रीणामपि वि
 दिपूजने दोषाभावस्य सिद्धत्वेनऽप्यपि श्लोकस्य ‘या सनाथा मृतनाथा वा ब्राह्मण्यपि श्रेय इ
 संती हरं विष्णुं वा न स्पृशेत् । तस्या इह निष्कृतिर्नास्ति’ इत्यस्यार्थस्याश्रयणेन न कोपि विरो
 पूर्वोत्तरवाक्येषु स्त्रीणामित्यस्यानुपनीतानामित्येतद्विशेष्यत्वेन न तद्विरोधः । एवं च रामायणाद्येक
 तथा स्त्रीणामधिकाराभावसूचकवाक्येषु प्रामाणिकत्वे स्त्रीपदमनुपनीतस्त्रीपरमेव व्याख्येयम् । यत्र
 वेदे न च यत्पुराणे रामायणे भारतसागरे वा । मन्वादिशास्त्रेषु च यद्वि नोक्तं तन्नास्ति नास्ती
 तेन कार्यम् ।’ इत्यभिहितोक्त्या वेदगृह्यरामायणादिविरुद्धस्य धर्मत्वाभावेनाधुनिकपण्डितमन्यक
 स्त्रीणां वेदाद्यव्ययनायनधिकारित्वसूचकवचनस्य न धर्मनिर्णये उपयोगः । इति दिक् ।

च्छ्रेय इच्छती । सनाथा स्तुतनाथा वा तस्या नास्तीह निष्कृतिः ॥ स्त्रीणामनुप
 शृङ्गाणां च जनेश्वर । स्पर्शने नाधिकारोस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च ॥' इति
 न्दात् । स्पर्शहिता तु तयोर्भवत्येव । 'शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो व
 स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः ॥ मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योपिद्वापि क
 स्वपने नरके घोरं यावदाभूतसंप्रवस् ॥ यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि व
 दूग्देवास्पृशन् पूजां कारयेत्सुसमाहितः' इति वाराहोक्तेः । शालग्रामशि
 निर्वन्धो न प्रतिमादौ । 'सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः । लिङ्गा
 पूज्यानि जग्निभिः कल्पितानि च ॥' इति तत्रैवोक्तेः । 'चत्वारो ब्राह्मणैः पूज
 राजन्यजाभिः । वैश्यैर्द्रावैव सम्पूज्यौ तथकः शूद्रजातिभिः ॥' इति स्कान्दात्
 तु दीक्षितविवेकत्वेन व्यवस्थामाहुः । विष्णुधर्मे- 'तयोरसंभवेर्चा वै सा चेह नवधा
 रत्नजा हेमजा चैव राजती ताम्रजा तथा ॥ रैतिक्यर्चा तथा लौही शैलजा
 तथा । अवसाधमा च विज्ञेया सृन्मया प्रतिमा च या ॥' एषां फलानि तत्रैव ज्ञे
 'नार्च्या गृहेऽश्मजा स्मृतिश्चतुर्गुलतोयिका । नवितस्त्यधिका धातुसंभवा श्रेय
 ता ॥ एवं लक्षणसन्ध्या पारंपर्यक्रमागता । उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्स
 तत्रैव पाप्मे शालग्रामं प्रक्रम्य- 'तत्राप्यामलकी तुल्या पूज्या सूक्ष्मेव या भ
 यथायथा शिला लज्जना तथा स्वात्तु महत्फलम् ॥' तथा- 'यवमात्रं तु गर्तः
 धर्षं विमलस्यते । शिवजानिहित ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ॥' तत्रैव- 'शा
 मर्या लज्जा संस्थिता यत्र कुत्रचित् । वाराणस्या यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम्
 स्तुतस्तत्कर्मणे तु श्रुतो वा नीयतेन्तिकम् । स वै मोक्षमवाप्नोति सत्यं सत्यं न चान्य
 तत्रैव- 'चक्राङ्गमिथुनं पूज्यं नैकं चक्राङ्गमर्चयेत् । चक्राङ्गमिथुनात्सार्द्धं शा
 प्रपूजयेत् ॥' तत्रैव वाराहे- 'म्लेच्छदेशे शुचौ वापि चक्राङ्गो यत्र तिष्ठति ।
 नानां तथा त्रीणि नम क्षेत्रं वसुंधरे ॥' तत्रैव शालग्रामं प्रक्रम्य- 'क्रयक्रीता प
 मध्यमा याचिताध्वना ॥' प्रयोगपारिजाते वाराहे- 'एवं लक्षणसंपन्ना प
 क्रमागता । उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा ॥'

अथ पार्थिवपूजा नन्दीपुराणे- 'आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् ध
 सुखी । वरमिष्टं लभेष्टिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत् ॥ तस्मात्तु
 पार्थिवपूजा ।

लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ॥' तत्रैव- 'गोभूहिरण्यवस्त्रादिवति

निवेदने । ज्ञेयो नमः शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ सर्वमन्त्राधिकश्चायमोक्त
 मन्त्रः ॥ भक्तियोगे 'सर्वार्थोऽयं विष्णुर्लोकेश्वरः' इति श्रुतिः ।

निषेधात् नान्तरालं प्राची किंतु प्रसिद्धैर्ब । तिथितत्त्वे देवीपुराणे-
घटे प्रतिष्ठाह्वानमेव च । स्नपनं पूजनं चैव विसर्जनमतः परम् ॥ हरो महो
पाणिः पिनाकधृक् । शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमः ॥' स्क
प्यापि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य निवेदयेत् ॥' तत्रैव भविष्ये-‘धत्तूरकैश्च
पूजयते नरः । स गोलक्षफलं प्राप्य शिवलोके महीयते ॥' योगिनीत
मलकं च सूर्यागारे च शंखकम् । दुर्गागारे वंशवाद्यं मधूरीं न च वादयेत् ॥'
स्कान्दे-‘स्त्वष्ट्रा रुद्रस्य निर्माल्यं वाससा आप्लुतः शुचिः ॥' प्रये
क्रियासारे-‘मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत् । अंशु
निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ अपनीतं च निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ।
लिङ्गं सदा कुर्वीत पूजकः’ ॥ शूलपाणौ लैङ्गे-‘वरं प्राणपतित्यागः
कर्तनम् । न चैवापूज्य शुभ्रीत शिवलिङ्गे महेश्वरम् ॥ स्तुतके स्तुतके चै
शिवपूजनम्’ तिथितत्त्वे लैङ्गे-‘विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमा
तोपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥ तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे वै

रुद्राक्षधारणे विशेषः शिवरहस्ये-‘एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महृत्
अवध्यत्वं प्रतिश्रोतो वह्निस्तम्भं करोति च ॥ द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद्देवव
त्रिवक्त्रो ह्यग्निजन्माथ पापराशिं प्रणाशयेत् ॥ चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरह
पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्रिगम्याभक्ष्यपापनुत् ॥ षड्वक्त्रस्तु गुहो ज्ञेयो ध्रुणहृत्
सप्तवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतमेतभयापहः ॥ एकादशमुखो रुद्रो धानायज्ञप
शास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिवर्हणः ॥ त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफल
स्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ॥ इति ॥

तथा ‘विनामन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः । स याति नरका
दिन्द्राश्चतुर्दश ॥ पञ्चाश्रुतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् । रुद्रा
मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥ त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत् ॥
ॐ ह्रीं नमोस्तु ॐ ह्रीं हां नमस्ते रुद्ररूप ह्रीं स्वाहा । अनेनाभिमन्त्र्य धार
‘अष्टोत्तरशतं कार्या चतुःपञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिमाना वा ततो हीना
प्रजापतिः-‘मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् । पुत्रार्थी पञ्च
दश्याभित्तरके ॥ सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया । यत्करोति
कोटिगुणं भवेत् ॥ यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि सन्मुखः । तस्मै

च्छेय इच्छती । सनाथा मृतनाथा वा तस्या नास्तीह निष्कृतिः ॥ स्त्रीणामनुप-
शूद्राणां च जनेश्वर । स्पर्शने नाधिकारोस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च ॥' इति
न्दात् । स्पर्शरहिता तु तयोर्भवत्येव । 'शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो
स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः ॥ मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि क-
स्वपते नरके घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि व-
दूरादेवास्पृशन् पूजां कारयेत्सुसमाहितः' इति वाराहोक्तेः । शालग्रामशि-
निर्वन्धो न प्रतिमादौ । 'सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः । लिङ्गा
पूज्यानि मणिभिः कल्पितानि च ॥' इति तत्रैवोक्तेः । 'चत्वारो ब्राह्मणैः पूज-
राजन्यजातिभिः । वैश्यैर्द्वावेव सम्पूज्यौ तथकः शूद्रजातिभिः ॥' इति स्कान्दात्
तु दीक्षितावेषयत्वेन व्यवस्थामाहुः । विष्णुधर्मे- 'तयोरसंभवेर्चा वै सा चेह नवधा
रत्नजा हेमजा चैव राजती ताम्रजा तथा ॥ रैतिक्यर्चा तथा लौही शैलजा
तथा । अधमाधमा च विज्ञेया मृन्मया प्रतिमा च या ॥' एषां फलानि तत्रैव ज्ञे-
'नार्च्या गृहेऽश्मजा मूर्तिश्चतुर्गुलतोधिका । नवितस्त्यधिका धातुसंभवा श्रेय-
ता ॥ एवं लक्षणसम्पन्ना पारंपर्यक्रमागता । उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्स-
तत्रैव पाद्ये शालग्रामं प्रक्रम्य- 'तत्राप्यामलकी तुल्या पूज्या सूक्ष्मेव या
यथायथा शिला सूक्ष्मा तथा स्यात्तु महत्फलम् ॥' तथा- 'यवमात्रं तु गर्तः
वार्धं लिङ्गमुच्यते । शिवनाभिरीरित ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ॥' तत्रैव- 'शा-
मयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित् । वाराणस्या यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम्
मृतस्तत्समीपे तु मृतो वा नीयतेन्तिकम् । स वै मोक्षमवाप्नोति सत्यं सत्यं न चान्य-
तत्रैव- 'चक्राङ्गमिथुनं पूज्यं नैकं चक्राङ्गमर्चयेत् । चक्राङ्गमिथुनात्सार्द्धं शा-
प्रपूजयेत् ॥' तत्रैव वाराहे- 'म्लेच्छदेशे शुचौ वापि चक्राङ्गो यत्र तिष्ठति ।
नानां तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुंधरे ॥' तत्रैव शालग्रामं प्रक्रम्य- 'क्रयक्रीता प-
मध्यमा याचिताऽधमा ॥' प्रयोगपारिजाते वाराहे- 'एवं लक्षणसंपन्ना प-
क्रमागता । उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा ॥'

अथ पार्थिवपूजा नन्दीपुराणे- 'आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् ध-

पार्थिवपूजा ।

सुखी । वरमिष्टं लभेद्विद्धं पार्थिवं यः समर्चयेत् ॥ तस्मात्तु

लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ॥' तत्रैव- 'गोभूहिरण्यवस्त्रादिवति

निवेदने । ज्ञेयो नमः शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ सर्वमन्त्राधिकश्चायमोक्त-

निषेधात् नान्तरालं प्राची किंतु प्रसिद्धैव । तिथितत्त्वे देवीपुराणे-
घटे प्रतिष्ठाह्वानमेव च । स्नपनं पूजनं चैव विसर्जनमतः परम् ॥ हरो महे
पाणिः पिनाकधृक् । शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमः ॥' स्क
प्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य निवेदयेत् ॥' तत्रैव भविष्ये-‘धत्तूरकैश्च
पूजयते नरः । स गोलक्षफलं प्राप्य शिवलोके महीयते ॥' योगिनीतं
मल्लकं च सूर्यागारे च शंखकम् । दुर्गागारे वंशवाद्यं मधुरीं न च वादयेत् ॥'
स्कान्दे-‘स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं वाससा आहूतः शुचिः ॥' प्रये
क्रियासारे-‘मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत् । अंशु
निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ अपनीतं च निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ।
लिंगं सदा कुर्वीत पूजकः’ ॥ शूलपाणौ लैङ्गे-‘वरं प्राणपरित्यागः
कर्तनम् । न चैवापूज्य भुञ्जीत शिवलिंगे महेश्वरम् ॥ सूतके मृतके चै
शिवपूजनम्’ तिथितत्त्वे लैङ्गे-‘विना भस्मत्रिगुण्डेण विना रुद्राक्षमा
तोपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥ तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे वै

रुद्राक्षधारणे विशेषः शिवरहस्ये-‘एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महृत्
अवध्यत्वं प्रतिश्रोतो बद्धिस्तम्भं करोति च ॥ द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद्ब्रह्मवध
त्रिवक्त्रो ह्यग्निजन्माथ पापराशिं प्रणाशयेत् ॥ चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरह
पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्रिगम्याभक्ष्यपापनुत् ॥ षड्वक्त्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहृत्
सप्तवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः ॥ एकादशमुखो रुद्रो जानायाज्ञप
शास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिवर्हणः ॥ त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्र
स्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ॥ इति ॥

तथा ‘विनामन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः । स याति नरकात्
दिन्द्राश्वतुर्दश ॥ पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् । रुद्राक्षं
मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥ त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत् ॥
ॐ ह्रीं अघोरतर ॐ ह्रीं हां नमस्ते रुद्ररूप ह्रीं स्वाहा । अनेनाभिर्मन्त्रं धारयेत्
‘अष्टोत्तरशतं कार्या चतुःपञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिमाना वा ततो हीना
प्रजापतिः-‘मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् । पुत्रार्थी पञ्च
दश्याभिचारके ॥ सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया । यत्करोति
कोटिगुणं भवेत् ॥ यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि सन्मुखम् । तस्य

कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्व
नीलकण्ठः ॥'

हेमाद्रौ शिवधर्मे-‘स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः । पलानां द्वे सह
तु महास्नानं प्रकीर्तितम् ॥ पञ्चविंशत्पलं लिङ्गे अभ्यङ्गं कारयेदथ । शिवस्य सर्पि
स्नानं प्रोक्तं पलशतेन च ॥ तावता मधुना चैव दध्ना चैव ततः पुनः । तावतैव च क्षीरे
गव्येनैव भवेत्ततः ॥ भूयः सार्द्धसहस्रेण पलानामैश्वरेण च । रसेन कारयेत्स्नानं भक्त्य
चोष्णांबुना ततः ॥’ विष्ण्वादौ तु स्कान्दे-‘क्षीरादशगुणं दध्ना घृतैर्नैव दशोत्तरम्
घृतादशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राच्चैक्षवजं तथा ॥’ ब्राह्मे-‘देवानां प्रतिमा यत्र घृताभ्यङ्गक्षम
भवेत् । एलानि तत्र देयानि श्रद्धया पञ्चविंशतिः ॥’ इदं क्रोडीकृताभिप्रायेण । तत्रै
संग्रहे-‘विष्णुक्सेनाय दातव्यं नैवेद्यस्य शतांशकम् ॥ पादोदकं प्रसादं च लिङ्गे चण्डे
श्वराय तु ॥’

पञ्चायतनसंनिवेशमाह बोपदेवः पदार्थादर्शश्च-‘शंभौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्ये
हरौ शंकरेभास्येनागमुता खौ हरगणेशजाम्बिकाः स्थापिताः । देव्यां विष्णुहरेभवक्त्र
खयो लम्बोदरेजेश्वरेनाम्बाः शंकरभागतोऽतिमुखदा व्यस्तास्तु हानिप्रदाः ॥’ शंकर
भागत ईशानकोणादारभ्य प्रदक्षिणमित्यर्थः । अत्र दिक्स्वरूपमुक्तं प्रयोगपारि
जाते मन्त्रशास्त्रे-‘देवस्य मुखमारभ्य दिशं प्राचीं प्रकल्पयेत् । तदादि परिवाराणा
मङ्गाद्यावरणस्थितिः ॥’ तत्र क्रमः पाद्मे-‘रविर्विनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तु पञ्चमः
अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमे तु महद्भयम् ॥’ तथा-‘पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राचीं प्रोक्त
विचक्षणैः ॥’

अथ केशवादिमूर्तयः बोपदेवः-‘केविगोवादापुहपेप्रजाच्युकृममात्रिना । वाधे
नृहसानि श्रीपाशाच्चगे विगपे चपे’ ॥ अत्र केविगावित्याद्यैः केशव
विष्ण्वादितुर्विंशतिमूर्तयोऽभिधीयन्ते । शात् शंखात् चगे चक्रगदे
ज्ञेये इत्यर्थः । शिष्टे भुजे पद्मं त्वर्थतः सिद्धम् । अत्र दक्षिणोर्ध्वऽकरक्रमेण ज्ञेयम् ।
‘दक्षिणोऽधःकरक्रमात्’ इति हेमाद्रौ वचनात् । तेन हेमाद्रिणा संवादः । विश-
ब्देन विपरीतं गचे इत्यर्थः । अत्रापिशादित्यनुवृत्तिः । शंखाद्गदाचक्रं इत्यर्थः । गपे
इत्यत्रापि शादनुवर्तते । शंखाद्गदापद्मे इत्यर्थः । विपरीते पद्मगदे इत्यत्रापि शंखाज्ज्ञेये ।

१-शंभौ मध्यगते साति विष्णुसूर्यगणेशदेव्यः, विष्णौ मध्यगते शिवगणेशमर्यदेव्यः मूर्तेः पञ्चमे

चपे चक्रपद्मे । शंखाच्चक्रपद्मे इत्यर्थः । वि इत्यत्रापि पद्मचक्रे इति । तेन चक्रगदे इत्यर्थः । गपे इत्यष्टौ मूर्तयः । चपे इत्यत्र च अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥

अथ बौधायनसूत्रम् । त्रैविक्रमीं चालुस्मृत्य लिंगार्चाप्रतिष्ठोच्यते

लिङ्गार्चाप्रतिष्ठा ।

‘यजमानः पूर्वोक्तकाले पूर्वेषुः दशद्वादशषोडशान्यतर हस्तं म कृत्वाग्नेये हस्तमात्रं चतुरस्रं कुण्डस्थण्डिलं वा पूर्वतोः हस्तम

वेदीं नैर्ऋते वास्तुमण्डलमध्ये वेदीं तदुपरि सर्वतोभद्रं कृत्वा प्राणानायम्यास्यां देवस्य सान्निध्यसिद्धयर्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्धचक्षय्यसुखकामोऽमुकमूर्तिप्रतिष्ठा कारिष्ये इति संकल्प्य । गणेशपूजापुण्याह्वाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धानि कृत्वा चार्यं चतुर ऋत्विजश्च वृत्वा वस्त्राद्यैः पूजयेत् । अथाचार्यः । यदत्र संसिद्धि मिति सर्षपान् विकीर्यापोहिष्ठेति कुशोदकेन भूमिं प्रोक्ष्य । देवा आयांतु, यातुध्वं अपयान्तु । विष्णो देवयजनं रक्षस्वेति भूमौ प्रादेशं कृत्वाऽस्मत्कृततुलापद्धतिमात्रं मण्डपप्रतिष्ठां कृत्वाऽकृत्वा वा पूर्वेरात्रौ हिरण्योपधानं देवं पञ्चगव्यहिरण्यवदूर्वावत् पलाशपर्णान्युदकुम्भे प्रक्षिप्य ताभिरद्भिरापोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति चतस्रः पवमानः सुवर्चन इत्यनुवाकेनाभिषिच्य व्याहृतिभिरिदंविष्णुरिति फलयवदूर्वाः स रक्षोहणमितिहस्ते कंकणं बद्ध्वा वाससाच्छाद्य । अवतेहेड उदुत्तममिति जलेधिष्येत् । इदं बौधायनोक्तम् ॥

ततश्चल्लिंगार्चायां वा अत्राग्निं प्रतिष्ठाप्य गोक्षीरनीवारचरुं कृत्वा विष्णुश्चेत् वरमपि श्रपयित्वाज्यभागान्ते पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमिद्धिः आज्येन च तिलैर्वा प्रत्येकमष्टाविंशतिमष्टौ वाहुतीलोकपालमूर्तिप्रतिष्ठो हुत्वा स्थाप्य देवमनन्तरं पूर्वोक्तसमितिलनैवारचर्वाज्यैरष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा हुत्वा अग्निर्यजुर्भिरित्य

१—‘शंखचक्रगदेताज्यैः केशवः सूर्यसप्रभः । इतो युतः । कंजकम्बुचक्रगदायुतो विष्णु रविप्रभः । गदाब्जशंखचक्रेतो गोविन्दो भास्करद्युतिः । वामनोऽरिगदापद्मशंखेतो रविसुप्रभः । दामोदरः शंखचक्रगदापद्मचक्री रविप्रभः ॥ पद्मशंखगदाचक्रसूर्याभः पुरुषोत्तमः । सारिपद्मशंखगदो हृषीकेशोऽर्कसुप्रभः । उद्यदर्कनिभोपेन्द्रो गदाचक्राब्जशंखयुक् । प्रद्युम्नो रविभः शंखगदाब्जारिधरो विभुः । जनार्दनश्च शंखगदाब्जेतो रविप्रभः । सूर्याभोऽच्युतनामाऽब्जचक्रशंखगदायुधः । उद्यदर्कनिभः । कृष्णो गदापद्मशंखयुक् । सशंखाब्जगदाश्चक्रः सूर्याभो मधुसूदनः । माधवश्चक्रशंखाब्जगदेतो रविसुप्रभः । विक्रमो गदाचक्रशंखपद्मो रविप्रभः । नारायणः साब्जगदाशंखचक्रो रविप्रभः । शंखचक्रपद्म

न दशाहुतीर्जुहुयात् । प्रतिद्रव्यहोमान्ते देवं पादनाभिशिरःसु स्पृशेत् । आहोमे चोत्तरतः सजलकुम्भे संपातान्नयेत् । तेषां मन्त्राः । इन्द्रायेन्दो इतीन्द्रस्योनेति पृथिवीमूर्तेः । अघोरेभ्य इति तत्पतेः शर्वस्य । अग्न आयाहीत्यग्नेः । दूतमित्यग्निमूर्तेः । नमः शर्वाय च पशुपतये चेति पशुपतेः । यमाय सोमं यमस्य असिहिवीरिति यजमानमूर्तेः । स्तुहि श्रुतं तत्पतेः उग्रस्य । असुन्वन्तन्निर्ऋतेः । अष्णेन सूर्यमूर्तेः ॥ यो रुद्रो अग्नौ इति तत्पते रुद्रस्य । इमं मे वरुणस्य । शंनो जलमूर्तेः । नमो भवायेति भवस्य । आनो नियुद्धिरीति वायोः । वात आवातु वायुमन्तमीशानं तत्पतेरीशानस्य । आप्यायस्वेति कुबेरस्य । वयं सोमोति सोममूर्तेः । तुरुषाय महादेवस्य । अभित्त्वा ईशानस्य । आदित्यन्तस्येत्याकाशस्य । नम उग्राय तत्पतेर्भीमस्य । ततो देवस्य पादौ स्पृशेत् । एवं द्वितीये हुत्वा नाभिं तृतीये मध्यं च उरः पञ्चमे शिरः स्पृष्ट्वा प्रतिपर्यायं संपातजलेन देवम् अभिषिञ्चेत् । ततः स्विदादिहोमशेषं समाप्यार्चां शोधयेत् । स्थिरलिङ्गार्चादौ तु नेदानीमग्निस्थापनादि कार्यम् ॥

ततो देवं नत्वा—‘स्वागतं देवदेवेश विश्वरूप नमोस्तु ते । शुद्धेपि त्वदधिष्ठाने कुर्मः सहस्व ताम्’ ॥ इति संप्राथम्यं । उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इति सक्कृत्विगुत्थाप्य कृतेऽग्न्युत्तारणे । अधुना वा कार्यम् । ‘अग्निः सप्तिम्’ इति सूक्तमग्निपदहीनं पठन् तत्सहितं पुनः पठेत् । एवमष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पठन् जलं पातयेत् । तद्वादशवारं मृदा जलेन च प्रक्षाल्य मन्त्रवत् पञ्चगव्यं कृत्वा ‘पयः पृथिव्या राजानम्’ इति च । ‘संस्त्राप्यं’ य आप्यायस्व, दधिक्रावणः, तेजोसि, मधुवाता, गौरिति पञ्चामृतैः संस्त्राप्य । लिङ्गं चेत् ‘नमस्ते रुद्र मन्यवे’ इत्यष्टाभिः संस्त्राप्यतेनाभ्यज्योद्वर्तनेनोद्वर्त्योष्णोदकेन प्रक्षाल्य गन्धं दत्त्वा संपातोदकेनाभिषिच्य सप्तचतुर्भिः कुम्भैरापोहिष्ठेति त्रिभिः ‘आकलशेषु’ इति च प्रत्येकम् ‘समुद्रज्येष्ठां चतुर्भिः ‘आकलशेषु’ इति च मिलितैः संस्त्राप्यौदुम्बरादिपीठैर्चासुपवेश्य परितोऽसजलकुम्भान् संस्थाप्य तेषु गंधपुष्पदूर्वाः क्षिप्त्वाद्ये सप्तमृदः द्वितीये पुष्करपर्णविकंकताश्मन्तकत्वचः पल्लवांश्च, तृतीयादिषु सप्तधान्यं पञ्चरत्नफलपुष्पाणि कुङ्कुमगोरोचनसम्पातोदकगन्धफलसर्वौषधीः क्षिप्त्वा । क्रमेण ‘आपोहिष्ठा’ इति त्रिभिः ‘हिरण्यवर्णा’ इति चतुर्भिः । पवमानानुकेन चाभिषिच्यैककुम्भे शमीपलाशवटश्च विल्वाश्चत्थविकंकतपनसाम्रशिरीषोदुम्बराणां पल्लवान् कषायांश्च क्षिप्त्वा । ‘अश्व

अथाचार्यः सर्वतोभद्रे देवानावाहयेत् ॥ मध्ये ब्रह्माणम् । पूर्वादिदि
इन्द्रादिलोकपालान् ईशानेन्द्राद्यन्तरालेषु वसून् । रुद्रान् आदित्यान् । अश्विनौ । वि
श्वान् देवान् । पितॄन् । नागान् । स्कन्दवृषौ । ब्रह्मेशानाद्यन्तरालेषु दक्षविष्णुदुर्गास्वध
कारमृत्युरोगान् । समुद्रान् । सरितः । मरुतः । गणाधिपं चेति ॥ मध्ये एव पृथिवीं
मेरुं संस्थाप्य देवं चावाह्य । प्रागादि वज्रं, शक्तिं, दण्डं, खड्गं, पाशं, अंकुशं, ग
शूलम् । तद्वाह्ये गौतमं, भरद्वाजं, विश्वामित्रं, कश्यपं, जमदग्निं, वसिष्ठम्, अत्रिम्, अरुंध
च । तद्वाह्ये । नवग्रहान् । तद्वाह्ये । ऐर्द्रीं, कौमारीं, ब्राह्मीं, वाराहीं, चामुण्डां वैष्णवा
माहेश्वरीं, वैनायकीमिति । एता नामभिरावाह्य संपूज्य अर्चायां देवं तन्मन्त्रेणावा
मण्डलमध्येर्चां सुप्रतिष्ठो भवेति निवेश्य संपूज्य वक्षो मण्डलदेवतानां नामभिस्तिल
ज्येन दशदशाहुतीर्हुत्वा पुष्पाञ्जलिं समर्प्य 'नमोमहत्' इति देवं नत्वा मण्डला
त्तरतः स्वस्तिके मञ्चकं तदुपशय्यां कृत्वा 'उत्तिष्ठ' इति देवमुत्थाप्य मङ्गलघो
शय्यायां देवमारोप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तुत्वा देवे न्यासं कुर्यात्
तद्यथा—पुरुषात्मने नमः । प्राणात्मने न० प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय०
कारतत्त्वाय० मनस्तत्त्वाय० इति सर्वांगे । प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० हृदि । श
तत्त्वाय० शिरसि । स्पर्शतत्त्वाय० त्वचि । रूपतत्त्वाय० हृदि । एवं हृद्येव रसगन्धश्च
त्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसत्त्वरजस्तमोदेहतत्त्वा
नि विन्यसत् । ततः पुरुषसूक्तस्याद्यमृग्यं करयोः । तदुत्तरं जान्वोः । तदुत्तरं कट्योः
'तं यज्ञम्' इति तिस्रः नाभिहृत्कण्ठेषु । 'तस्मादश्वा' इति द्वयं बाह्वोः । 'ब्राह्मणोऽस्य' इति

मण्डलशय्ययोरेन्तराले न गन्तव्यमिति प्रैषं दत्त्वा स्विष्टकृदादि होमशेषं लदेवताभ्यो नामभिः पायसेन चरुणा वा बलिं दद्यात् । नीवारचरुशेषम् । नेदं स्थिरप्रतिष्ठायाः ।

स्थिरलिङ्गार्चादौ त्वयं विशेषः—‘अग्निस्थापनहोमवर्ज्यं सर्वं इदानीमग्निस्थापनं कृत्वा पूर्वोक्तहोमं कुर्यात् । नात्र नैवारश्चरुः क्तहोमं कृत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा इदं विष्णुरिति पादौ स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा । ‘अतो स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा पुरुषसूक्तेन सर्वाङ्गं स्पृशेत् । स्थिरलिङ्गं चैव पूर्वोक्तसभिदाज्यतिलाहुतीहुत्वा । ‘या त इषुः’ इत्यनुवाकान्तं ‘द्रापे इत्यनुवाकाभ्यां च प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा ‘सर्वो वै रुद्रः’ इति स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा ‘कद्रुद्राय’ इति मध्यम् । पुनस्ता एव हुत्वा । ‘नमो इत्यग्रम् । पुनस्ता एव हुत्वा सर्वरुद्रेण सर्वाङ्गं स्पृशेत् । ततो ‘धामन्त’ इत्युवाच वा । एवमधिवासनं कृत्वा परेद्युः सद्यो वा पीठिकां स्नापयित्वा इत्यावाह्य । ‘अदितिद्यौः’ इति स्तुत्वा । ‘हीं नमः’ इति संपूज्य तेनैव पूज्य ‘उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते’ इति देवमुत्थाप्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा । पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा इत्युत्थाप्य ‘कनिक्रदत्’ इति सूक्तेन विष्णुं ‘सद्योजातम्’ इति पञ्चानुवाकैर्लिङ्गं पीठिकायां इन्द्रादिनामभिरष्टरत्नानि क्षिप्त्वा सप्तधान्यरूप्यवृषभनःशितपायसेन संलिप्य प्रणवेनाङ्गन्यासं कृत्वा सुवर्णशलाकामन्तरितां कृत्वा ‘सुतिष्ठ परमेश्वर’ इत्युक्त्वा ‘अतो देवा, इति विष्णुं रुद्रेण च लिङ्गं स्थाप्य प्राणप्रतिष्ठा ।

चलार्चादौ त्वधिवासनान्ते परेद्युः ‘उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति देवमुत्थाप्य रनारायणाभ्यां स्तुत्वा घृते ग्रीहिचरुं कृत्वा तदेवतामन्त्रेण दशाहुतीहुत्वा हुयात् । अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा । कुह्वे स्वाहा स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा । अग्नये स्वाहा । अग्नयेन्नादाय स्वाहा । अग्नयेन्नपतये स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । देवेभ्यः स्वाहा । सर्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । भूर्भुवः स्वाहा । अग्नये स्विष्टकृते ‘सप्त ते’ पुनस्त्वेत्याभ्यां पूर्णाहुतिः । ततः आचार्यो ‘या ओषधीः’ इति सप्तर्ष्यं । संपातोदकं देवमन्त्रेण शतवारमभिमन्त्र्य तेनैवाभिषिञ्चेत् । तदेवमुत्थाप्य । ‘विश्वतश्च्यवः’ इत्यादिनामभिरष्टरत्नानि क्षिप्त्वा सप्तधान्यरूप्यवृषभनःशितपायसेन संलिप्य प्रणवेनाङ्गन्यासं कृत्वा सुवर्णशलाकामन्तरितां कृत्वा ‘सुतिष्ठ परमेश्वर’ इत्युक्त्वा ‘अतो देवा, इति विष्णुं रुद्रेण च लिङ्गं स्थाप्य प्राणप्रतिष्ठा ।

‘प्रतिष्ठितं परमेश्वर’ इति पुष्पाञ्जलिं निवेद्य सच्चिदानन्दं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय विग्रहं करचरणाद्यवयविनं शंखचक्राद्यायुधवन्तं निजवाहनाद्युपेतं निजहृत्कमले सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसं ‘परमेष्ठ्यसि परमां श्रियं गमय’ इति मन्त्रेण पुष्पागतं विभाव्याऽर्चायां विन्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।

यथा—प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः । ऋग्यजुःसामानि च्छन्दः क्रियामयवपुः । प्राणाख्या देवता । ओं बीजम् । क्रौं शक्तिः । प्राणप्रतिष्ठाय योगः । ततः ऋष्यादीन् क्रमेण शिरोमुखहृदयगुह्यपादेषु विन्यस्य । ॐ कं खं एं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः । ॐ चं छं जं झं अं इं शब्दरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा । ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वात्मने ऊं शिखायै वषट् । ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं हुम् । ॐ पं फं बं भं मं ॐ वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने ॐ नेत्रत्रयाय ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट् आत्मनि देवे च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत् । ओं आं हीं क्रौं अं यं रं लं वं शं रं देवस्य प्राणा इह प्राणाः । ओं आं हीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य जं स्थितः ओं आं हीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य सर्वेन्द्रियाणि । ॐ आं हीं क्रौं अं वं शं षं सं हं सः । देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन तिष्ठन्तु स्वाहेति । ततोऽर्चाहृद्यङ्गुष्ठं दत्त्वा जपेत् । ‘अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै क्षरन्तु च । अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कञ्चन’ ॥ इति । ततः प्रणवेन सजीवं ध्यात्वा ‘ध्रुवा द्यौः’ इति व्युच्चं जप्त्वा कर्णे गायत्रीं देवमन्त्रं च जप्त्वा पुनोपस्थाय पादनाभिशिरस्सु स्पृष्ट्वा । ‘इहैवैधि’ इति त्रिजपेत् । ततः कर्ता देवदेवेश मद्भाग्यात्त्वमिहागतः । प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बालवत् परिपालय ॥ कामसिद्धयर्थं स्थिरो भव शुभाय नः । सांनिध्यं तु सदा देव स्वार्चायां परिकल्पयावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिवातिनः । तावत्त्वयात्र देवेश स्थेयं भक्तानुकम्प भगवन् देवदेवेश त्वं पिता सर्व देहिनाम् । येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरे तेन रूपेण देवेश स्वार्चायां सन्निधौ भव ॥’ इति नमेत् । एतदन्तं सर्वदेवानां देवमन्त्रश्च मूलमन्त्रो वैदिको वा ग्राह्यः ।

अथाचार्यः कर्ता वा लिङ्गमर्चा वा ॐ भूः पुरुषमावाहयामि । ॐ भुवः मावाहयामि । ॐ सुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ भूर्भुवः सुवः पुरुषमावाहयामित्य

। अर्घ्या इत्यर्घ्यम् । ततो वेदमन्त्रैः संस्त्राप्य 'इदं विष्णुः' इति विष्णौ । 'नमो नीलग्रीवाय' इति लिङ्गे प्रतिसरं विस्त्रस्य वस्त्रं यज्ञोपवीतं च दत्त्वा । 'इमे गन्धाः दिव्याः सर्वगन्धैरलंकृताः । पूता ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥' इति । 'इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यैरलंकृताः ॥' पूता इत्यादिमाल्यम् । पुष्पाः शुभा' इत्यादि पुष्पम् । 'वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो धूप उत्तमः । आग्नेर्वेदेवानां धूपोयं प्रतिगृह्यताम् ॥' प्रतिगृह्णात्वित्यादि धूपम् । 'ज्योतिः शुक्रं च देवानां सततं प्रियः । प्रज्योतिः सर्वभूतानां दीपोयं प्रतिगृह्यताम् ॥' इति दीपम् । 'विष्णो संकर्षणवासुदेवप्रद्युम्नानिरुद्धपुरुषोत्तमाधोक्षजनृसिंहाच्युतजनार्दनहरिश्रीकृष्णेति द्वादशनामभिः केशवादिद्वादशनामभिर्वा पुष्पाणि समर्प्य । तैरेव कृत्वा । पायसगुडौदनचित्रौदनानि । 'पवित्रं ते विततम्' इति निवेद्यकृसरं पूर्वोक्तभेर्हुत्वा तेनैव शार्ङ्गिणे श्रियै सरस्वत्यै विष्णवे इति हुत्वा । 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि' य प्रियमभिपाथो 'प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण' । परो मात्रया तन्वावृधानः । 'विचक्रमे' णीमेष एतां० । 'त्रिदेवः पृथिवीमेष एतां०' । इति जुहुयात् । पुनः द्वादशनामभिश्चास्वाहेति जुहुयात् ।

लिङ्गे तु दीपान्तं कृत्वा । भवाय० देवाय० शर्वाय० ईशानाय० पशुपतये० रुद्राय० य० भीमाय० महते देवाय नम इति पुष्पाणि दत्त्वा । तैरेव तर्पणं कृत्वा । 'पवित्रं ते पायसं गुडौदनं च निवेद्य पूर्वोक्तनामभिः कृसरं हुत्वा । 'भवस्य देवस्य पत्न्यै' इत्याद्यष्टभिर्गुडौदनं हुत्वा । 'भवस्य देवस्य सुताय स्वाहेत्याद्यैर्हरिद्रौदनं हुत्वा । 'त्वकं यजामहे०' । 'मानो महान्तमुत मानो०' । 'मानस्तोके तनये०' । 'आरात्ते' मुतपुरुषन्ने० । 'विकिरिदविलोहित०' । 'सहस्राणि सहस्रशो' इति द्वादश एतैर्हुत्वा । पाय शंकराय सहमानाय शितिकण्ठाय कपर्दिने ताम्राय अरुणाय अपगुरमाणाय यवाहवे सस्तिपजराय बभ्रुशाय हिरण्याय' इति च जुहुयात् । ततः स्विष्टकृदादिशेषं समाप्य । पूर्वोक्तसर्वहविर्भिर्विष्णवे लिङ्गाय वा वलिं दद्यात् ।

मन्त्रस्तु- 'त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे । त्वमेव यज्ञो तो विधेयस्त्वमात्मनात्मन् प्रतिगृह्णीष्व हव्यम्' ॥ इति । लिङ्गे तु नारायणपदे रुद्रं मेति वदेत् । ततोऽश्वत्थपर्णे भूर्भुवःस्वर्गोमिति हुतशेषं निधाय प्रदक्षिणीकृत्य विश्वभुजे मने परमात्मने नमः इति नत्वा आचार्याय शतं तदर्धं तदर्धं द्वादश तिस्र एकां

अथ पुनःप्रतिष्ठा । तामधिकृत्य ह्यशीर्षपञ्चरात्रे-‘चाण्डालमद्यसंस्पर्शदूषि
वह्निनाथवा ॥ अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षतजदूषिता ॥’ संस्कार्येति शेषः
पुनः प्रतिष्ठा ।

पदार्थादर्शं ब्राह्मे-‘खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते । या
हीने पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥ अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतिते स्पर्शदूषिते । दशस्वे
नो चक्रुः सन्निधानं दिवौकसः ॥’ यागः पूजा । पशुर्गर्दभादिः । पञ्चरात्रे-‘खण्डि
स्फुटिता दग्धा यस्मादर्चा भयावहा । तस्मात्समुद्धरेत्तां तु पूर्वोक्तविधिना नरः
अर्चामङ्गलादावुपवासः कार्यः । ‘न राज्ञो विष्ट्वे श्रीयात्सुरार्चाविष्ट्वे’ तथा ।’ तथा विष्णु
धर्मोक्तेः । सिद्धान्तशेखरे-‘चौरचण्डालपतितश्चोदक्यास्पर्शने १॥’ शवावुप
चैव प्रतिष्ठां पुनराचरेत् ॥’ पञ्चरात्रे-‘अङ्गादङ्गादिसन्धाने प्रतिष्ठां पुनराचरेत्
जलाधिवासविहितनेत्रोन्मीलनवर्जिताम् ॥’ शुद्धिविवेके विष्णुः-‘द्रव्यवत् कृतम
चानां देवतार्चानां भूयः प्रतिष्ठापनेन शुद्धिः’ इति । अर्चाः प्रतिमाः । तद्रव्यस्य ता
देरुक्तशौचं कृत्वा पुनः प्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः । स्मृत्यर्थसारेष्वेवम् ।

तद्विधिबोधायनसूत्रे-‘पूर्वप्रतिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वमेकत्रात्रं द्विरात्रमेकमासं द्विम
वार्चनादिविच्छेदे शूद्ररजस्वलाद्युपस्पर्शने पूर्वोक्तकाले पुण्याहं वाचयित्वा युग्मान् ब्रा
णान् भोजयित्वा निशायां जलाधिवासं कृत्वा श्वोभूते कलशपूर्णेन पञ्चगव्येन तत्तन्म
स्त्रापयित्वाऽन्यं कलशं शुद्धोदकेनापूर्य तस्मिन्नवरतनानि प्रक्षिप्य तं कलशं तत्तद्गा
त्र्याष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिवारं वाभिमन्त्र्य तेनोदकेन देवं स्त्रापयेत्ततः शुद्धोदकेन स्त्रा
दष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पुरुषसूक्तेन मूलमन्त्रेण च ततः पुष्पाणि दत्त्वा यथासंभ
मर्चयित्वा गुडौदनं निवेदयेत्’ इति । बुद्धिपूर्वं तु विच्छेदे पूर्वोक्तां प्रतिष्ठां पुनः कुर्यात्
पूर्वोक्तविष्णुवचनात् । इदं मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यमिति मदनरत्ने हेमा

च देवार्चा प्रासादभेदेन तु शूलपाणौ काश्यपः-‘वापीकूपाराम
पुनः प्रतिष्ठाविधिः ।

तुसभातडागवप्रदेवतायतनभेदेन प्रायश्चित्तं चतस्र आज्याहुतीर्जुहुया
इदं विष्णुर्मानस्तोके विष्णोः कर्माणि पादोस्येति यां देवतामुत्सादयति तस्यै देव
ब्राह्मणान् भोजयेत्’ इति । शंखलिखितौ-‘प्रतिमारागकूपसंक्रमध्वजसेतुनिपातम
तत्समुत्थानं प्रतिसंस्कारोऽष्टशतं च निपातितानाम्’ इति । समुत्थानं प्रतिक्रिया प्र
संस्कारः पुनः प्रतिष्ठा । अष्टशतं पणा दंडश्चेत्यर्थः ।

अथ जीर्णोद्धारः-स च लिङ्गादौ दग्धे भग्ने चलिते वा कार्यः । अयं चान

प्रतिष्ठाप्याधारेण घृतसर्षपैः सहस्रं हुत्वा इन्द्रादिभ्यो नाम्ना वलिं दत्त्वा जीर्णदेवं प्र
 संपूज्य ब्रह्मादिमण्डलदेवतानां होमं पूर्वोक्तं कृत्वा देवं प्रार्थयेत् । 'जीर्णभग्नमिदं चैव
 दोषावहं नृणाम् । अस्योद्धारे कृते शांतिः शास्त्रेऽस्मिन् कथिता त्वया ॥ जीर्णोद्धारार्थं
 च नृपराष्ट्रहितावहम् । तदधस्तिष्ठतां देव प्रहरामि तवाज्ञया ॥' इति ततः क्षीराज्यं
 दूर्वाभिः समिद्धिश्चाष्टोत्तरसहस्रं शतं वा देवमन्त्रेण हुत्वाऽङ्गानां दशांशेन लिङ्गचाल
 सहस्रं शतं वा पायसेन हुत्वा लिङ्गं प्रार्थयेत् । 'लिङ्गरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठि
 यायास्त्वं संमितं स्थानं संत्यज्यैव शिवाज्ञया ॥ अत्र स्थाने च या विद्या सर्वविद्ये
 र्युता । शिवेन सह संतिष्ठ' इति मंत्रितजलेनाभिषिच्य विसर्जयेत् । ततोऽस्त्रमणि
 खनित्रेण स्वात्मा लिङ्गमादाय नद्यादौ वामदेवेन लिङ्गं प्रणवेन मूर्तिं क्षिपेत् । दारुजं तु
 ऽभ्यज्याधारेण दहेत् । हेमरत्नादिमयं तु दग्धं चलितं वा पुनस्तत्रैव स्थापयेत् । ततः श
 अधारेण तिलैः सहस्रं हुत्वा प्रार्थयेत् । 'भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते । जीर्ण
 समुद्धारः कृतस्तवाज्ञया मया ॥ अग्निना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले ।
 श्वित्ताय देवेश अग्नोरास्त्रेण तर्पितम् ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न
 यादि । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर' ॥ इति ततो यजमानः प्रार्थयेत्
 'गोविप्रशिलिपभूतानामाचार्यस्य च यज्वनः । शान्तिर्भवतु देवेश अच्छिद्रं जाय
 दम् ॥' मूर्तौ तु विशेषः- 'त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं देहं निर्माययत्यसौ । वासं
 सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चालपके गृहे ॥ वसन् क्लेशं सहित्वेह मूर्तिं वै तव पूर्ववत् । याव
 यते भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम्' ॥ इति । ततो नवां मूर्तिं लिङ्गं वा कृत्वोक्तमि
 स्थापयेत् । मूलं त्वग्निपुराणे स्पष्टम् । इति जीर्णोद्धारः ॥

अथ तुलसीग्रहणम् । देवयाज्ञिककृते स्मृतिसारे- 'वैधृतौ च व्यतीपाते

तुलसीग्रहणम् ।

भार्गवभानुषु । पर्वद्वये च संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये । तुल
 विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ॥' विष्णुधर्मोत्तरे-

पिना दूर्वा तुलसीं द्वादशीं विना । जीवितस्य विनाशाय प्रविचिन्वीत धर्मो
 तथा- 'संक्रान्तावर्कपक्षान्ते द्वादश्यां निशि सन्ध्ययोः । यैश्छिन्नं तुलसीपत्रं तै
 हरिमस्तकम् ॥' पाद्मे- 'द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं च कार्तिके । लुनाति
 गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥' रुद्रयामले- 'द्वादश्यां च दिवास्वापस्तुलस्यवचय
 विष्णोश्चैव दिवास्नानं वर्जनीयं सदा बुधैः ॥' विष्णुधर्मे- 'न छिन्द्यात्तुलसीं

अथ पुष्पादेः पर्युषितत्वम् । भार्गवार्चने भविष्ये-‘प्रहरं तिष्ठते जाती
वीरमहर्निशम् । तुलस्यां विल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च । न
पुष्पादेः पर्युषितत्वम् । पितदोषोस्ति मालाकारगृहेषु च ॥’ बृहन्नारदीये-‘वर्ज्यं पर्यु-
षुषं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् । न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जादवीजलम् ॥’ तत्रैव पा-
‘तुलसी पर्युषिता नैव विल्वं तु त्रिदिनावधि । पञ्च पञ्चदिनात्याज्यं शेषं पर्यु-
षिदुः ॥’ स्कान्दे-‘पालाशं दिनमेकं तु पंकजं च दिनत्रयम् । पञ्चाहं विल्वपत्रं
दशाहं तुलसीदलम् ॥’ पदार्थादर्शे बोपदेवस्त्वन्यथाह-‘विल्वापामार्गजातीतुल-
शमिशताकेतकीभृङ्गदूर्वामन्दाम्भोजाहिदर्भामुनितिलतगरब्रह्मकह्लारमल्लयः । च-
श्चारातिकुम्भीदमनमरुवकाविल्वतोहानि शस्तास्त्रिश ३० त्रये ३ का १ र्यं ६ री-
शो ११ दधि ४ निधि ९ वसु ८ भू १ भू १ यमा २ भूय एवम् ॥’ अस्यार्थ-
शता शतावरी । मन्दः मन्दारः । अहिर्नागकेशरः । मुनिरगस्त्यः । अश्वार-
करवीरः । कुम्भी पाटलेति कैदेवनिघण्टुः । अरयः षट् । ईशा एकादश ।
धयश्चत्वारः । निधयो नव । वसवोऽष्टौ । भूः एकः । यमो द्वौ । विल्वमारभ्या-
पर्यन्तं गणयित्वा दर्शमारभ्य पुनस्त्रिशदादिगणयेदित्यर्थः । एतद्दिनोत्तरं पर्यु-
नीत्यर्थः । टोडरानन्दे स्कान्दे दमनमुपक्रम्य-‘तस्य माला भगवतः परमप्र-
कारिणी । शुष्का पर्युषिता वापि न दुष्टा भवति क्वचित् ॥’ तिथितत्त्वे मात्स्-
‘विल्वपत्रं च माघ्यं च तमालामलकीदले । कह्लारं तुलसीं चैव पञ्चं च मुनिपु-
कम् ॥ एतत् पर्युषितं न स्यात् कुशाश्च कलिकास्तथा ॥’ स्मृतिसारावल्या-
‘जलजानां च सर्वेषां पत्राणामहतस्य च । कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृतयोरपि ॥
पर्युषितदोषोस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि । मुकुलैर्नार्चयेद्देवं पंकजैर्जलजैर्विना’ ॥

अथ शिवनिर्माल्यनिर्णयः । सिद्धान्तशेखरे-‘धराहिरण्यगोरत्नताम-
प्यांशुकादिकान् । विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदये-
शिवनिर्माल्यनिर्णयः । अन्यदन्नादि पानीयं ताम्बूलं गन्धपुष्पकम् । दद्याच्चण्डाय निम-
शिवभक्तं तु सर्वशः ॥ आचार्यशिवचण्डानामाज्ञाभङ्गे तु लक्षकम् । धनस्य भक्षणे
पादोनं लक्षमीरितम् ॥ निर्माल्ये भक्षिते लक्षपादतः शुद्धिरीरिता । दानं
भक्षणसमं तदर्थं तदुपेक्षणे ॥ अकामाद्भक्षणे यद्वा निर्माल्यस्य जपेत्सुधीः । ब्र-
पञ्चकसाहस्रं धर्मेण सहितं ततः ॥ कामतो भक्षणे दीक्षा प्रायश्चित्तं न चान्यतः
निर्माल्यद्वन्द्वे शेषं पत्रेष्वप्य- ॥

याति सत्तमः । तस्य नैवेद्यनिर्माल्यभक्षणात्तप्तकृच्छ्रकम् ॥ शालग्रामोद्भवे लिङ्गे
लिङ्गे स्वयंभुवि । रसलिङ्गे तथापि च सुप्रसिद्धप्रतिष्ठिते ॥ हृदये चन्द्रकान्ते च स्
प्यादिनिर्मिते । शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते ॥' तथा- 'वाणलिङ्गे स्
चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते । चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शंभोर्नैवेद्यभक्षणम् ॥ लिङ्गे स्
वाणे रत्नजे रसनिर्मिते । सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चंडाधिकृतिर्भवेत् ॥ यत्र चण्डा
स्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः । चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तिः' ॥
क्रम्याम्- 'वाणलिङ्गे च लोहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि । प्रतिमासु च सर्वासु न
धिकृतो भवेत्' ॥ अत्र 'ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् । तस्य
महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते ॥' इति स्कान्दादशुचिना न ग्राह्यं शिवनिर्मा
किंतु स्नात्वेति स्मार्ताः । अनुपनीतेन ग्राह्यमिति श्रीदत्तः । शिवदीक्षाहीनैर्न ग्राह्य
शैवाः । तिथितत्त्वे हेमाद्रौ परिशिष्टे- 'अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं
शालग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥' पञ्चायतनपूजायां तन्त्रेण च निर्वो
त्यर्थः । शिवपुराणे- 'ये वीरभद्रशमिताः शिवभक्तिपराङ्मुखाः । शंभोरन्यत्र दे
भक्ता ये न दीक्षिताः ॥ तेषामनर्हमीशस्य तत् प्रसादचतुष्टयम् ॥' काशीखण्डे-
स्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः ॥ एष जालंधरो बन्धः समस्तमुखवल
तथा- 'स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् ॥ त्रिः पिवेत्रिविधं पापं त
विनश्यति ॥ लिङ्गस्नपनवार्धिर्यः कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम् । गङ्गास्नानफलं तस्य ज
त्र विपाप्मनः' ॥ इदं पूर्ववाक्यवशाद्विश्वेश्वराविषयमिति केचित् । काशीस्थपुराण
सर्वलिङ्गविषयम् । काशीखण्डे रत्नेश्वराख्याने तथैव दर्शनादेत्यन्ये ॥

अथ कृषिः । राजमार्तण्डः- 'ऋक्षेषूत्तरपौष्णवैष्णवमधामूलानुराधाश्विर्न

षिनिर्णयः ।

पत्यकरद्विदैवतगुरुप्रालेयपादेषु च । निर्दोषैर्वृषभैर्हलैश्च सुमन

भिरभ्यर्चितैर्हत्वा क्षेत्रपतेर्वलिं हलधरः क्षेत्रं ततः कर्षयेत् । प्राजे

णोत्तरादिति मधामार्तण्डतिथ्याश्विनी पौष्णानुष्णमरीचयः शताभिषेकस्वाती

तथा । जीवाकेंदुसितेन्दुनन्दनदिने लग्ने च सौम्योदये सस्यानां वपने तथैव लग्ने

स्तथा रोपणे ॥ चण्डेश्वरः- 'हस्तचित्रादिति स्वातीरेक्त्यां श्रवणत्रये । स्थिरलग्ने

बीजं धार्यं जशुकयोः ॥' 'अध्वनदाय सर्वलोकोहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा ॥ लेख

इमं मन्त्रं धान्यागारे निधापयेत् । सस्यवृद्धिं परां कुर्यात् पूजितं प्रतिपूजयेत् ॥

दिङ्मुखगमनं गमनमभिनवासु नारीषु । व्ययमपि सस्यधनानां न बुधा बु

कुर्युः ॥ शनिवारे च नो कार्यो धनधान्यव्ययो बुधैः ॥'

मन्त्रिणि भृगौ प्रियसंगमाय मन्दे मलाय च नवाम्बरधारणं स्यात् ॥ रोहिणीगुरु
सूत्रे या विभर्ति नववस्त्रभूषणे । सा न योषिदवलंबते पतिं स्नानमाचरति वारुणेपि

अथालंकारवल्यादि । दैवज्ञवल्लभः—‘नासत्यपूषवसुभिः करपञ्चेन मा

अलंकारवल्या- भौमगुरुदानवमन्त्रिवारे ॥ सुक्तासुवर्णमणिविद्रुमशंखदन्तरक्ता
दिनिर्णयः । णि विधृतानि भवन्ति सिद्धयै ॥’ ज्योतिर्निबन्धे—‘हस्ता

मृगपूषधनिष्ठयुक्तचित्रोत्तरासु च पुनर्वसुरोहिणीषु । लग्ने स्थिरे रविमुतेन्दुजर्ज
हेमादिधारणविधिः कथितो नराणाम् ॥’ तत्रैव श्रीपतिः—‘पौष्णाश्विनीवसुका
पञ्चकेषु कौमुभहेममणिविद्रुमकाचशंखाः । नार्या धृता सुतसुखार्थकरा भवन्ति ब्र
रादितिगुरुष्वसुखाय भर्तुः ॥’ तत्रैव—‘शंखादिवररत्नानि पुष्यादित्युत्तरासु
रोहिण्यां नैव गृह्णीत भर्तुर्जीवितकांक्षिणी ॥’

अथ सूचीकर्म । ‘वासवादितिभत्वाष्ट्रमैत्रचन्द्राश्विनीषु च ।
सूचीकर्म । कर्मतनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यते ॥’

अथ शय्या । ‘हस्तादिति ब्रह्मगुरुत्तराणि पौष्णाश्विनूलेन
शय्या । वारेषु जीवेन्दुसितेन्दुजानां शय्यासनारम्भणसुत्तमं स्य

अथ शस्त्रधारणम् । ‘पुष्ये चादितिचित्रपद्मनये शक्रोत्तर
शस्त्रधारणम् । स्वातीवाजिविशाखमित्रसहिते भानौ गुरौ भार्गवे । कुम्भे व
वृषे मृगपतौ चेन्दौ शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखड्गकुन्तलुरिका धार्या नृपाणां हि

अथ स्वामिसेवा । चण्डेश्वरः—‘रोहिण्युत्तरपौष्णेषु वसु
स्वामिसेवा । योरपि । सेवेत स्वामिनं भृत्यः शुभवरोदये तथा ॥’ ज्य
निबन्धे—‘दासीदासादिभृत्यानां कुर्यात्संग्रहणं बुधे । स्थिरलग्ने शुभैर्दृष्टे म

विशेषतः ॥’

अथ गजाश्वदोलाः । स एव—‘पौष्णप्रजेशादितिभट्टयानि हस्त
गजाश्वदोलाः । कश्रवणोत्तराणि । दोलादिमातङ्गनुरंगमाणामारोहणेभट्टिफलप्रदा

अथ नृत्यम्—‘हस्तः पुष्यो वासवं रोहिणी च ज्येष्ठा
नृत्यम् । वारुणं चोत्तराश्च । पूर्वाचार्यैः कीर्तितश्रवणवती नृत्यारम्भे शो

भवर्गः ॥

अथ राजदर्शनम् । श्रीपतिः—‘मृगाश्विपुष्यश्रवणश्रविष्ठ
राजदर्शनम् । वत्वाष्ट्रभूषणानि । मैत्रेण युक्तानि नरेश्वराणां विलोकने भानि

प्रदाने ॥’

अथ क्रयविक्रयौ । भाद्रद्वयत्रिदशमंत्रिदिवाकरेषु मूलानिलोत्तरतुरंगमरेव
 सारङ्गपाणिरजनीकरमैत्रभेषु लाभः सदैव भवति क्रयविक्रयाभ्याम् ।
 क्रयविक्रयनिर्णयः ।

दस्त्रे तु 'चित्रा शतभिषा स्वाती रेवती चाश्विनी शुभा । श्रवणश्च
 प्रोक्ता वस्त्राणां क्रयणे शुभाः ॥'

अथ सेतुः- 'स्वातीयुक्ते मन्दवारे वृषलग्रे शुभे दिने ।
 सेतुबन्धः ।
 बन्धनं कार्यं ध्रुवभे चार्कजीवयोः ॥'

अथ पशुकृत्यम् । श्रीपतिः- 'चित्रोत्तरवैष्णवरोहिणीषु चतुर्दशीदर्शदिनाष्ट
 स्थानप्रवेशो गमनं विदध्यात् पुमान् पशूनां न कदाचिदेव
 पशुकृत्यम् ।

चण्डेश्वरः- 'हस्तमूलविशाखासु रेवत्यां श्रवणे तथा । मैत्रे च
 श्रेष्ठं पशुक्रयणमुच्यते ॥ पूर्वात्रयामृतमयूखदुताशनेषु इन्द्राग्निवाजिवसुवारुणशंकर
 एतेषु गोमहिषदन्तितुरंगमादिनानाप्रकारपशुजातिगतिः प्रशस्ता ॥'

अथ गजदन्तच्छेदः । ज्योतिर्निबन्धे- 'त्वाष्ट्रे वैष्णव अभि
 गजदन्तच्छेदः ।
 मादित्ये वसुदैवते । दन्तिनां शुभदं कर्म पुष्ये हस्ते च कर्तनम्' ।

अथ निक्षेपः- 'भरणीत्रीणि पूर्वाणि आर्द्राश्लेषा मघा तथा । चित्रा
 निक्षेपादि ।
 विशाखाच मूलं मृगपुनर्वसु । एभिर्दत्तं प्रयुक्तं च यद्यान्निक्षिप्यते ध
 पृष्ठतो धावमानस्य निर्वनो नोपपद्यते ॥'

अथ ऋणमोक्षः- श्रीधरः- 'वागीशमन्ददिवसांशकल
 ऋणमोक्षः ।
 रिक्तासुमन्ददिवसे कुलिकोदये च ॥ मैत्रद्वितीयपदमैत्रमुहूर्तयुक्ते
 द्रमे च ऋणमोक्षमुशन्ति सन्तः ॥'

अथ राजमुद्रा- 'मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनि
 राजमुद्रानिर्णयः ।
 वर्जम् । वारे तित्थौ पूर्णजयाह्वये च मुद्राप्रतिष्ठा शुभदा हि राज्ञाम्

अथ नौः । चण्डेश्वरः- 'पौष्णाश्विनीतुरगवारुणमित्रचित्रा
 नौकानिर्णयः ।
 तोष्णरश्मिवसवोनलवंत्यमूनि । वारे च जीवभृगुनन्दनके प्रशस्ते

दिसंघटनवाहनमेषु कुर्यात् ॥ ,

अथ भोगः । 'गुरुभरविभानुराधाविधातृपौष्णाश्विरोहिणीषु स
 भोगनिर्णयः ।
 स्वात्युत्तरासु कुर्याच्छयनासनभोगभोगादि ॥'

अथ श्मश्रुकर्म । श्रीपतिः- 'पुष्ये पौष्णे चाश्विनीष्वेदवे च शाक्रे हस्ताद्ये

बृद्धगार्ग्यः—‘स्वयारत्तौरवारेषु रात्रौ पाते व्रताहनि । श्राद्धाहःप्रतिपद्रिक्ताभद्राः क्षौरे
वर्जयेत्’ ॥ गार्ग्यः—‘वष्टयमापूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमी तथा । आसु सन्निहि
पापं त्रिषु तैले भगे क्षुरे ॥’ राजभार्तण्डः—‘देवकार्ये पितुः श्राद्धे स्वेरंशपा
क्षये । क्षौरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ॥’ बृहस्पतिः—‘राजकार्ये निश
क्तानां नराणां भूपजीविनाम् । श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम् ॥’ तथा
‘क्षौरं’ नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ॥ पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तं
तीर्थके ॥’ केचित्पूतारार्धमन्यथा पठन्ति । ‘मुण्डनस्य निषेधेपि कर्तनं तु विधीयते’
नारदः—‘नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे । उद्वाहेरिखिलवारक्षं तिथिषु क्षौ
मिष्टम् ॥’ भारते—‘प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयित समाहितः । उदङ्मुख
वाथ भूत्वा तथायुर्विन्दते महत् ॥’ अपराकै—‘उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं का
येत्सुधीः । केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत् ॥ दक्षिणं कर्णमारभ्य धर्मा
पापसंक्षये । शिखाद्ये नवसंस्कारे शिखाद्यन्तं शिरो वपेत् ॥’ यतीनां तु विशेष
निगमे—‘कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वापयेत्’ ॥ इति । अन्येपि विधिप्रति
षेधाः प्रागुक्ताः ॥

अथेन्धनसंग्रहः—‘ब्रह्मानिलार्कमघमूलत्रिपूर्वरौद्रपौष्णानुराधगुरुविष्णुविशाख
ते । वारे कुजार्कभृगुनन्दनसोमजानां श्रेष्ठेन्धनस्य करणं भव
इन्धनसंग्रहः । प्रशस्तम् ॥’

अथ नवान्नम् । श्रीपतिः—‘स्वतीश्रुतिपुनर्वसुहस्तब्राह्म
पृथगति द्वितये च । ज्युत्तरेषु गदितं पृथुकानां प्राशनं नवनवान्न
विधानम् ॥’

अथ नवभोजनपात्रम् । ज्योतिर्निबन्धे—‘भोज्यपात्रं सुध
सिन्धौ घटयेद्वा समाहरेत् । तत्रान्नप्राशनप्रोक्ते काले भोजनमाचरेत् ॥’

अथ नवपर्णफलादिभक्षणम् । चण्डेश्वरः—‘मूलाश्विर्मात्रकरतिष्यहरीन्द्रभे
पौष्णोत्तरैन्दवपुनर्वसुवासवेषु ॥ वारेषु भूमितनयार्कजवारवर्जं ताम्बू
नूतनफलाद्यशनं हिताय’ ॥

१—अत्र निषेधे सत्यपीत्युपादानात्प्रायश्चित्ततीर्थयो रात्रावपि क्षौरम् । निमित्तं तु दिने एव । श्व
स्तनी वपनक्रिया’ इत्युक्तः । इति टीका । २—निषिद्धादिने क्षौरे कृते पुनस्तदोपशान्त्यर्थं विहितकाल

अथ होमे आहुतिपातः । ज्योतिषे-तरणिविद्वृग्नुभास्कारचिन्द्रमः कुजः
ज्यविधुंतुदकेतवः । रविभतो दिनभं गणयेत्क्रमात् प्रतिखगं त्रि-
होमाहुतिपातः । त्रितयं न्यसेत् ॥ दिनकरार्कितमः कुजकेतवो हुतमुजेन शुभास्ति-

शुभाः । हवनचक्रमिदं प्रविलोक्यतां हवनकर्माणे सर्वसमृद्धये ॥' अत्र शान्तिरु-
चिष्णुधर्मे-‘ऋग्रहमुखे चैव संजाते हवने शुभे । शान्तिं विधाय गां दद्याद्वाह्य-
कुटुम्बिने । आयसीं प्रतिमां कृत्वा निक्षिपेत्तामधोमुखीम् । गोमूत्रमधुगन्धाद्यैरर्चितां
तिमां ततः ॥ स्वस्थां निधाय संपूज्य तत्र होमो विधीयते ॥' अत्रापवादः क्रियास-
रे-‘नित्ये नैमित्तिके दुर्गाहोमादौ न विचारयेत्’ ॥

अथ ज्वरादौफलम् । श्रीपतिः-‘स्वात्याश्लेषारौद्रपूर्वासु शाक्रे रोगोत्पत्तिर्जा-
यस्य पुंसः । तद्भैषज्यव्यापृतो निष्प्रयत्नः स्याद् दुग्धाब्धेर्लब्धजन-
ज्वरादौफलं विहारश्च । वैद्यः । व्याध्युत्पत्तिर्यस्य पौष्णे समैत्रे प्राणत्राणं जायते तस्य
च्छात् । वैश्वे सौम्ये रोगमुक्तिस्तु मासाद्विंशत्या स्याद्वासरानां मघासु ॥ पक्षा-
वासवे सद्विदेवे मूलाश्विन्योरग्निधिष्ये नवाहात् । याम्ये त्वाष्ट्रे वैष्णवे वारुणे
नैरुज्यं स्यान्नूनमेकादशाहात् ॥ अहिर्बुन्धे तिष्यसंज्ञे यमाख्ये प्राजापत्याद-
योः सप्तरात्रात् । रोगान्मुक्तिर्जायते मानवानां निःसंदिग्धं जल्पितं गर्गमुख्यैः ॥’ ज-
तिषे-‘एकाहो निधनं दशाहमनिलाद्वाणा वियत्पर्वताः सप्ताङ्गा विलयश्च मासयु-
मासो मृतिः पक्षकः । द्वौ मासावथ विंशतिर्दश निशाः पक्षान्तपक्षा नखा मासौ प-
शान्तपक्षककुम्भः पीडादिनान्यश्विभात् ॥’ दैवज्ञः-‘उरगवरुणरौद्रा वासवेन्द्रत्रि-
यमदहनविशाखाः पापवारेण युक्ताः । तिथिषु नवमिषष्टीद्वादशी वा चतुर्थी भवति म-
योगो रोगिणां कालहेतुः ॥’ अत्र कुम्भे हैमीं नक्षत्रदेवताप्रतिमां संपूज्यं द्वादश-
संकर्षणादिद्वादशमूर्तीर्द्वादशादित्यान् वा संपूज्य दूर्वासमितिलक्ष्मीराज्यैर्गायत्र्या तदेव
अष्टोत्तरशतं हुत्वा दध्योदनं वलिं दत्त्वाचार्याय गां प्रतिमां च दत्त्वा विप्रान् भोज-
ति संक्षेपः । विशेषस्तु व्रतहेमाद्रौ पदार्थादर्शं च ज्ञेयः ॥

अथ भैषजम् । चण्डेश्वरः-‘मूलानुराधमृगतिष्यपुनर्वसौ च पौष्णाश्विनीश्रव-
भैषजम् । क्रकरत्रये च । वारेषु वाक्पतिदिनेषु सितेन्दुशस्ते भैषज्यभक्षणम्
हितं नराणाम् ॥

अथारोग्यस्नानम् । श्रीपतिः-‘इन्दोर्वारे भार्गवे च ध्रुवेषु सार्पादित्य-

अथ दन्तधावनम् । पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः—‘प्रतिपददर्शषष्ठीषु चतुर्दश
 च । नवम्यां भानुवारे च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥’ नारदः—
 दन्तधावनम् । श्यष्टमीपौर्णमासीसंक्रमणेषु च । नन्दासु च नवम्यां च द
 विवर्जयेत् ॥ श्राद्धे यज्ञे च नियमे तथा प्रोषितभर्तृका । व्यतीपाते च संक्रान्त्यां
 भूताष्टपर्वसु ॥ तैलं क्षौरं रतिं मांसं दन्तकाष्ठं च वर्जयेत् ॥’ वसिष्ठः—‘शन्यर्कशु
 कुजाहे व्रतवासरे । जन्माहे श्राद्धदिवसे दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥’ हेमाद्रौस्कान्दे—
 जलाधिरनाने दन्तधावनमैथुने । जाते च निधने चैव तत्कालव्यापिनी तिथिः ॥’ सं
 ‘रवौ विवाहआशौचे वर्जयेदन्तधावनम् ॥’ व्यासः—‘अलंभे दन्तकाष्ठानां नि
 तथा तिथौ । अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्यादन्तधावनम्’ ॥

अथामलकस्नानम् । व्यासः—‘श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलं
 सप्तमीं नवमीं चैव पर्वकालं विवर्जयेत् ॥ चन्द्रसूर्योपरगो च स
 आमलकस्नानम् । मलकैस्त्यजेत् ॥’ ऋतुः—‘षष्ठी च सप्तमी चैव नवमी च त्रयो
 संक्रान्तौ रविवारे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥’ यत्तु—‘नवमी दशमी चैव
 च त्रयोदशी । प्रतिपद्वादशी कृष्णा स्नानं तासु विवर्जयेत् ॥’ यच्च ‘दर्शे
 न कुर्वीत मातापित्रोः सुजीवतोः । पुत्रः कुर्वन्निराचष्टे पित्रोरुन्नतिजीविते’
 कण्वयमाद्यैः स्नानमात्रं निषिद्धम् । तद्भोगार्थस्नानपरम् । न नित्यनैमि
 मिति हेमाद्रिः ॥

अथ तैलस्नाननिषेधः । कात्यायनः—‘पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायां
 तिथौ । तैलेनाभ्यज्यमानस्तु चतुर्भिः परिहीयते ॥’ गर्गः—‘प
 तैलस्नाननिषेधः । चतुर्दश्यामष्टम्यां रविसंक्रमे । द्वादश्यां सप्तमीषष्ठ्योस्तैलस्पर्श
 येत् ॥ न च कुर्यात्तृतीयायां त्रयोदश्यां तिथौ तथा । शाश्वतीं गतिमन्विच्छ
 म्यामपि पण्डितः ॥’ तत्रैवायुर्वेदे—‘षष्ठ्यां दिनक्षयेष्टम्यामेकादश्यां च
 द्वादश्यां च चतुर्दश्यां पञ्चम्यां प्रतिपत्तिथौ ॥ व्रते श्राद्धदिने जन्मव्रितये
 द्रव्योः । ज्येष्ठोत्तराफाल्गुनीषु व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ विष्टियोगे च संक्रान्तौ
 युगादिषु । नाभ्यङ्गं तत्र बालानां वृद्धानां तु न दोषकृत् ॥ इति ।’ व्यवहार
 ‘संक्रान्तिभद्राव्यतिपातवैधृतिषष्ठ्यष्टमीपर्वसु नार्कभ्रूयते । स्नाने द्वितीया द
 गार्हिताः षष्ठ्याद्यमाद्या रदधावनेऽधमाः ॥ अस्यापवादमाह तत्रैव प्र
 ‘सर्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् । अन्यद्द्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कद

आयुर्वेदे-‘निषिद्धतिथिवारक्षग्रहणेष्वपि रात्रिषु । किञ्चिद्वोषृतयुक्तं वा विप्र-
न्यतन् ॥ भौमौ दूर्वान्वितं भौमे भूयुक्तं पुष्पयुग्मुरौ । सर्वेषां सर्वदा तैलमभ्य-
दुष्यति ॥ मंगलेष्वप्यदोषः ॥ मांगल्यं विद्यते स्नानं वृद्धिपूर्वोत्सवेषु च । स्नेहपात्रस्य
मध्याह्नात् प्राक्तदिष्यते ॥’ इति मदनपारिजाते कात्यायनोक्तेः ॥ हेमाद्रौ बृह-
‘तैलाभ्यङ्गो नार्कवारे न भौमे नो संक्रान्तौ वेधृतौ विष्टिषष्ठयोः ॥ पर्वष्वष्टम्यां च नेष्टः
श्रेष्ठान् सुक्त्वा वासरे सूर्यसूनोः ॥’ तिलस्नाननिषेधस्तु षट्त्रिंशन्मते
सामान्यमावास्या संक्रांतिग्रहजन्मस्तु । धनपुत्रकलत्रार्थी तिलपिष्टं न संस्पृशेत्

अथ गृहारम्भः । ज्योतिर्निबन्धे वादरायणः-‘वैशाखे फाल्गुने पौषे
मार्गशीर्षके । सूत्रारम्भः शिलान्यासः स्तम्भारम्भः प्रशस्तः
गृहारम्भः । नारदः-‘सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः ॥ मासाः

हनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः ॥’ अत्र वृषसिंहवृश्चिकाः वैशाखश्रावणकार्तिकाः
ज्जेयाः इति कालादर्शः । तत्रैव कारणतन्त्रे-‘स्थिरमासे स्थिरे राशौ स्थिरे
वैश्वनाम् । कुर्वीत स्थापनं शंकोः शंभुस्थापनमेव वा ॥’ कार्तिकनिषेधस्तुलापरः
माघेऽपि सर्वेषां मन्दिराणामुपक्रमम् । महर्षयः प्रशंसन्ति धान्यागारं विहाय च ।
धौ धान्यगृहपरः । ‘पाकभोजनशालादौ मार्गशीर्षश्च फाल्गुनः । रथ्यागेहमठादौ
स्यः शुचिरेव तु ॥’ पौषाषाढनिषेधस्तु प्रधानगृहपरः । ‘न प्रधानगृहारम्भं कुर्यात्पौ-
षे ॥’ इति तत्रैवोक्तेः । ज्योतिस्तत्त्वे-‘पूर्वापरास्यं तु न भोन्त्यपौषे याम्यं
सहसि द्वितीये । कार्यं गृहं जीवबुधर्क्षगाक नीचास्तगौ जीवसितौ च द्वि-
रत्नमालायां-‘कर्कनक्रहरिकुम्भगतेर्जे पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि । तौ
वृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि वदन्ति ॥’ दैवज्ञवल्लभः-‘शोकं धान्यं
निःपशुत्वं स्वाप्ति नैःस्वं संगरं भृत्यनाशम् । स्वश्रीप्राप्तिं वद्विभीतिं च लक्ष्मीं
त्राया गृहारम्भकाले ॥’

मर्गः-‘व्युत्तरामृगरोहिण्यां पुष्ये मंत्रे करत्रये । धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भ-
स्यते ॥ रोहिण्यां श्रवणत्रयेऽदितियुगे हस्तत्रये मूलके रेवत्युत्तरफाल्गुनीषु मृग-
श्रवणयोः । शस्तं वैस्तु कुजार्कवर्जितदिने गोकुम्भसिंहे इत्येकं कन्यायां मिथु-
शुचिरुहोराधार्कजे फाल्गुने ॥’ कालादर्शे सनत्कुमारः-‘आदित्यभौमव-
वाराः शुभप्रदाः ॥’ वास्तुशास्त्रे-‘मार्गशीर्ष तथा पौषे वैशाखे श्रावणे

हस्ते च रोहिण्यां पुष्याश्विन्युत्तरात्रये ॥' वास्तुप्रदीपे-‘अधोमुखैर्भेविं
 शिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्च पट्टम् । तिर्यङ्मुखैर्द्वारकपाट्यानां गृहप्रवेशो मृदु
 लः-‘स्नानं च पाकं शयनं च भोज्यं गजालयं वाजिगृहं धनस्य । देवस्य
 क्रमेण मध्ये सभा भूपनिवेशनाय ।’ शिल्पशास्त्रे-‘कन्यासिंहे तुलायां
 मुखं शंभुकोणेश्चिखातं वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनमकरे ईशखातं वद
 मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं खातवायव्यकोणेऽग्नेः कोणे मुखं वै वृ
 कर्कटे रक्षखातम् ॥’ तत्त्वचिन्तामणौ-‘यत्र दैव्यं गृहादीनां द्वात्रिंशदस्
 न तत्र चिन्तयेद्दीमान् गुणानायव्ययादिकान् ॥’ राजमार्तण्डः-‘आयं
 शुद्धिं तृणागारे न चिन्तयेत् । शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथागारपुरातने
 हारतत्त्वे-‘निषिद्धेष्वपि कालेषु स्वानुकूले शुभे दिने । तृणकाष्ठगृहारम्भे
 विद्यते ॥’ चण्डेश्वरः-‘पूर्णादि त्वष्टमीं यावत् पूर्वास्यं वर्जयेद्बृहम् ।
 कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम् । अमावास्याष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत्
 तथा याम्यं यावत्कृष्णचतुर्दशी । ध्रुवं दृष्ट्वाथवा स्मृत्वा कर्तव्यं वास्तुरोपण
 वर्जदिवसे रात्रौ त्यक्त्वा महानिशाम् ॥’ वराहः-‘दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा
 न्यसेत्प्रथमाम् । शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः ॥’ काला
 शास्त्रे-‘खाते चैव शिलान्यासे वृषचक्रं प्रशस्यते ॥’ तच्चोक्तं शान्ति
 हेस्तप्रमाणं तु खात्वा गतं समन्ततः । कुम्भोदकैः सेचयेयुः शान्तिपाठपुर
 ईशानदिग्भागे साक्षतं रत्नपञ्चकम् । साज्यं कुम्भं स्थिरं मुक्त्वा वास्तुपूज
 कुम्भोपरि शिलान्यासः कर्तव्यस्तदनन्तरम् ॥’

अथ गृहप्रवेशः । बृहस्पतिः-‘नन्दायां दक्षिणं द्वारं भद्रायां पश्चिमं
 यासुत्तरद्वारं पूर्णायां पूर्वतो विशेषत् ॥ वसिष्ठः-‘कृत्वा
 वामतोऽर्कं विप्रान् पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम् । हर्म्यं र

गृहप्रवेशः ।

ग्वितानैः स्त्रीभिः सखीभिः गीतवाद्यैर्विशेष ॥’ व्यवहारतत्त्वे-‘सौम्यायने श्र
 जन्मक्षलघोपचयोदयेशे । वामं गतेर्के गृहवास्तुपूजां कृत्वा विशेषेण भव
 वास्तुशास्त्रे-‘लग्नात्प्रागादितो दिक्षु द्वौ द्वौ राशी नियोजयेत् । एकमेकं
 सूर्यं वामं विचिन्तयेत् ॥’ वसिष्ठः-‘चन्द्रजार्जसितवासरेषु च श्रीकरं सुतम
 सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदं किं तु चौरभयमत्र निर्दिशेत् ॥’ रत्नकोशे-‘पू

विहाय वारौ शूलादियोगानशुभात्रवापि । रिक्ता तिथिश्चापि मृदुध्रुवर्क्षे सौम
प्रविशेद्दृहाणि' ॥ रत्नमालायाम्-‘त्वाष्ट्रमित्रशशिपुष्यदैवतान्यामनन्ति सु
न्यथ । मैत्रगे हरति भूषणाम्बरोद्गीतमंगलविधानमेषु च ॥’ रोहिण्युत्तरात्रयं च
प्रवेशश्च वास्तुपूजां कृत्वा कार्यः । ‘जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने
दभवने प्रासादपरिवर्तने ॥ द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च । वास्तूपशा
पूर्वमेव विचक्षणः ॥’ इति मात्स्योक्तेः । तत्रैव-‘कृत्वाग्रतो द्विजवरा
कुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् । दत्त्वा हिरण्यवसनानि तथा द्विजे
ल्यशान्तिनिलयं स्वगृहं विशेषे ॥ गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात् प्रास
मने च विधिर्य उक्तः । संतर्पयेद्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभव
त्सुरूपम् ॥’

अथ कलिवर्ज्यानि । बृहन्नारदीये-‘समुद्रयातुः स्वीकारः कमण्डलु

कलिवर्ज्यानि ।

द्विजानामसवर्णांसु कन्यासूपयमस्तथा ॥ देवराच्च सुतोत्

च गोवधः । मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥

कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च । दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ॥ रह

मनं गोमेधश्च तथा मखः । इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानादुर्मनीषिणः ॥’ व

‘सोदकं च कमण्डलुम्’ इत्युक्तः मृन्मयो वा । दत्ता ऊढा ‘ऊढायाः पुनरु

गोवधं तथा । कलौ पञ्च न कुर्वीत भ्रातृजायां कमण्डलुम् ॥’ इति हेमाद्रौ

‘ऊढायाः परपुरुषसंयोगादृते देयेति केचन’ इत्यादिभिर्विवाह्यतोक्ता । हेमाद्रौ

‘गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा । नराश्वमेधो मघं च कलौ

तिभिः ॥’ गोत्राद्गोत्रजायाः पितृष्वसुः मातृसपिण्डान्मातुलान्तत्कन्याया वि

न कार्यः । तेन यानि तद्विधायकानि तानि युगान्तरविषयाणि । तथा च

‘तृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पितृतस्तथा । शुल्केन चोद्ग्रहिष्यन्ति विप्रा

हिताः ॥’ इति कलौ तन्निन्दिमाह । मातृतस्तृतीयां मातुलकन्यामित्यर्थः

त्प्राक् । ‘मघं स्त्रीभ्यश्च सुरामाचामम्’ इत्यादिना विहितमपि वर्ज्यम् ।

हेमाद्रौ आदित्यपुराणे-‘विधवायां प्रजोत्पत्तौ देवरस्य नियोजनम् । वा-
क्षतयोन्यास्तु वरेणान्येन संस्कृतिः ॥ कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः ।
तायिद्विजाश्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ॥ द्विजस्याव्यौ तु नौयातुः शोधितस्यापि संग्र-
सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमण्डलुविधारणम् ॥ महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञतिश्च गो-
सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः ॥ अग्निहोत्रहवन्याश्च लेहो लीढापरि-
वृत्तस्वाध्यायसापेक्ष्य मद्यसंकोचनं तथा ॥ प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणानि
संसर्गदोषः स्तेयान्यमहापातकनिष्कृतिः ॥’ संसर्गदोषः ‘तत्संसर्गी च पञ्चमः’ इत्य-
स्तेयं च तदन्यानि महापातकानि ब्रह्महत्यासुरापानगुरुतल्पानि त्रीणि । तेषां क-
तानां मरणान्तिकं प्रायश्चित्तं विप्राणां कलौ नेत्यर्थः । मरणान्तिके हि जातिवर्धा-
द्वादशाब्दद्विगुणं ब्रह्मवधनिमित्तं च द्विगुणं भवति तत् ‘चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः
निषिद्धम् । न चात्महत्याविधिना तद्वाधः तेन ह्यात्महत्यानिमित्तस्यैव वायो न
वधनिमित्तस्याभिन्नविषयत्वात् । संसर्गिणस्तु कामतोपि व्रतस्यैवोक्तेर्न मरणान्ति-
नापि स्तेये तत्र राज्ञो वधकर्तृत्वात् । तेन तयोर्मरणान्तिकत्वाभावात् । तयोरेव नि-
र्नान्येषां त्रयाणाम् । युगान्तरे तु कलौ निषेधबलात् प्रवृत्तिः । एतद्विप्रपरं न क्षति-
तदुक्तं ‘विप्राणां मरणान्तिकम्’ इति ।

विशेषोऽस्मत्कृते प्रायश्चित्तरत्ने ज्ञेयः । ‘वरातिथिपितृभ्यश्च पशूप-
क्रिया । दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥ सवर्णान्यङ्गनादुष्टैः संसर्गः शोधितै-
र्योनौ संग्रहे वृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियः । परोदेशान्यसंत्याग उद्दिष्टस्यापि वर्ज-
प्रतिमाभ्यर्चनार्थाय संकल्पश्च सवर्मकः । अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च ॥
चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा । षड्भक्तानशने चान्नहरणं हीनकर्मणः ॥’
वीथे पृथ्वीचन्द्रोदये च-‘शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्थसीरिणाम् । भोज-
गृहस्थस्य तीर्थसेवातिदूरतः ॥ शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुवदृत्तिशीलता । आपट्टा-
श्याणामश्वस्तनिकता तथा ॥ प्रजार्थं तु द्विजाश्याणां प्रजारिणपरिग्रहः । ब्रा-
प्रवासित्वं सुखाग्निधमनक्रिया ॥ बलात्कारादिदुष्टस्त्रीसंग्रहोविधिचोदितः । यते-
वर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः ॥ नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता । ब्राह्-
शूद्रस्य पचनादिक्रियापि च ॥ भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणे तथा । गोतृप्तिशिष्ये-
शिष्टैराचमनक्रिया ॥ पितापुत्रविरोधेषु साक्षिणां दण्डकल्पनम् । यतेः सायं ग-
नि ।

न्तरस्यादोषत्वापत्तेश्च निरूपितं चैतद्धेमाद्रिणाऽन्यत्रेत्युपक्रम्यते । सु-
 सौत्रामणिविशेषणाविवक्षया वाजपेयेपि निषेधः । सौत्रामण्यां तु 'पयो-
 इत्यापस्तम्बोक्तेर्वैकल्पिकपयोग्रहैरप्यधिकारः । वाजपेये तु तत्प्राप्तौ
 सोमसुरयोः सह त्यागेनांशे सुराद्रव्यत्वात्तत्प्रत्यक्षतया यागनाम्नत्वेन तां वि-
 कलौ नाधिकार इति युक्तं प्रतीमः । त्रिकाण्डमण्डनादिलिखनं तु
 च वृत्तेति- 'एकाहाद्रहणः शुद्धचेद्योगिवेदसमन्वितः' इति उक्तः । अ-
 संकोचो 'न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा भृग्वग्निपतनादृते' इत्युक्तस्य प्रायश्चित्त-
 देशः । 'कलौ कर्तव्यं लिप्यते' इति व्यासोक्तेः । पतितसंसर्गे दोषसत्त्वेपि प-
 अन्यथा 'संसर्गः शोधितैरपि' इति विरोधापत्तेः । स्तेयभिन्ने महापापे र-
 श्चित्तं नेत्यर्थः । 'सवर्णान्या असवर्णा क्षत्रियादिस्तया दुष्टे अयोनी शिष्य-
 सस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च याः ।' इत्युक्तस्त्यागः । परोद्देशे
 आत्मत्यागः । यद्वा परोद्देशात्मत्यागो गोदानम् 'मनसा पात्रमुद्दिश्य' इ-
 ष्टस्य त्यक्तस्य वर्जनम् । 'प्रतिग्रहसमर्थोपि' इत्युक्तम् ।

वेतनग्रहणेन प्रतिमापूजा । 'स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं त-

वेतनग्रहणेन
 प्रतिमापूजा ।

इत्युक्तः स्पर्शः । षडिति । 'उपोषितस्त्र्यहं स्थित्व
 णादरेत् ।' इत्युक्तमन्नचौर्यम् । आपदि क्षात्रादिवृत्तिः
 दग्निम्' इत्युक्तं धमनम् । 'दशाहेनैव शुद्धचेत भूमिष्ठं च नवोदकम्' इ-
 'गुरवे तु वरं दत्त्वा' इत्युक्ता दक्षिणा । 'शूद्रेषु दासगोपाले तु' 'कन्दूपञ्च
 दुग्धेन पाचितम् । एतान्न शूद्रान्यभुजो भोज्यानि मनुरब्रवीत् ॥' इत-
 न्तूक्ता शूद्रस्य पाकक्रिया । 'पितापुत्रविवादे तु साक्षिणां त्रिपणो दमः
 सायंगृहत्वं 'विधूमे सन्नमुसले' इत्युक्तम् । पृथ्वीचन्द्रेण तु- 'अटन्ति
 पृथिवीदर्शनाय च । अनिकेता ह्यनाहारा यत्र सायं गृहास्तु ते ॥'
 णोक्तो निषिद्धः । तेन ज्ञातशीलपान्थादेः श्राद्धादौ विनियोगो न
 त्यर्थ उक्तः । एतानि वर्ज्यानीत्यर्थः ॥

निगमः- 'अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् । देवरात्र-
 पञ्च विवर्जयेत् ॥' अग्निहोत्रं तदर्थमाधानम् ॥ एतच्च सर्वाधानपरम्
 स्मृतौ श्रौतस्मार्तान्योस्तु पृथक्कृतिः । सर्वाधानं तयोरैक्यकृतिः
 इति लौगाक्षिवचनादिति स्मृतिचन्द्रिकायाः । एतेन 'न

तावत्कुर्यात्कलौ युगे ॥' इति । अत्र पूर्वयुगाश्रितेति लौगाक्षिवाक्ये पूर्वयुगानि
 दीनीत्येकोर्थः । अन्ये तु युगस्य पूर्वं कलेः पूर्वं भागः । स च 'चत्वार्यब्दसहस्राणि'
 पूर्वोक्तवाक्याच्चतुश्चत्वारिंशच्छतवर्षावच्छिन्नः । तस्मिन् भागे सर्वाधानं कार्यम् । त
 तु यावद्वर्णविभागोस्तीति वाक्यात् वर्णविभागपर्यंतमर्धाधानमित्याहुः । संन्यासस्त्रिद
 इति कलिवर्ज्यानि ॥

इति श्रीमन्नारायणभट्टसूरिसूत्ररामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टातुलकमलकरभट्टकले

निर्णयसिद्धौ तृतीयपरिच्छेदे पूर्वाब्दे समाप्तम् ।



१ कलौ गंगां विहाय न कोपि मुक्तिहेतुः तथा च भविष्ये—'कलौ कलुषचित्तानां प
 रस्तात्मनाम् । विविहीनक्रियाणां च गतिर्गंगां विना न हि ॥ सैवेह शरणं गंगा पतित
 यता । संसारार्णवमग्नानां भूतानां शरणार्थिनाम् ॥ नान्यः शरणदः कश्चिदुपायो विद्यते क
 विना गङ्गां धर्ममयीं शरण्यां सर्वदेहिनाम् ॥ महापातकसंहर्त्री सर्वसर्वार्थसाधिकाम् । अनाशि
 वै गङ्गां मुक्तिमिच्छति यः कलौ ॥ सूर्यं द्रष्टुमिवोद्युक्तो जात्यन्धसदृशस्तु सः' ॥ इत्य
 भाष्यैः कलौ महापतिभेदोक्तिरुक्तव्या 'तदावर्षसहस्राणि' विष्णुस्मृत्यापि ऐतिह्येण । तदर्थं ज

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धौ ।

तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्द्धम् ।

श्राद्धप्रकरणम् ॥

अथ श्राद्धनिर्णयः । नानानिवन्धवैमत्यभ्रान्तचित्तोद्दिधीर्षया । कमलाका

क्रियते श्राद्धनिर्णयः ॥ तत्स्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये मरी
श्राद्धनिर्णयः । 'प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः । श्रद्धया

यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्' ॥ ब्राह्मणस्वीकारान्तश्चतुर्थ्यन्तपदोपनीतपित्राद्युद्दे
स्त्यागः श्राद्धमित्यर्थः । तत्र यद्यपि होमपिण्डभोजनानि प्रधानानीति हेमा
'होमश्च पिण्डदानं च तथा ब्राह्मणभोजनम् । श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादेकस्मिन्
रिकम् ॥' इति श्रीधरश्च । तथापि क्वचिद्विशेषं वक्ष्यामः । निमित्तभेदे भो
पिण्डानां वा निषेधो न प्राधान्यं निरुणद्धि । असौमयाजिनो दधिपय
वत् । यच्च शूलपाणिः—'नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्व्यपिण्डविवर्जितम् ।'
हारतीत्ये नित्यश्राद्धमवाधौ पिण्डनिषेधोस्ति न च प्राप्तिं विना सः । न
देशं विना प्राप्तिः । न चांगत्वेन विनातिदेशः । प्रधानस्यानतिदेशात् ।
उपकारकत्वेनातिदेशोक्तेः । तेन भोजनं प्रधानम्—पिण्डोद्गमम् । पिण्डदान
धिस्त्वङ्गभूतात् कर्मान्तरमेव प्रकरणान्तरन्यायादिति । तन्न । 'ज
न दद्यात् पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वापि । न पक्वं भोजयेद्विप्रान् सच्छूद्रोपि कदाचन ॥'
जतिश्राद्धशूद्रश्राद्धादौ भोजनस्य निषेधेनाङ्गत्वापत्तेः । 'न तौ पशौ करो

१ 'ब्राह्मणस्वीकारान्त इति त्वशुद्धम् । पिण्डदानस्यातथात्वेनाप्राधान्यापत्तेः । इष्टापत्ते
नां निषेधो न प्राधान्यं निरुणद्धीति ग्रन्थासंगतेः । उपनीतत्वं च देवतात्वव्यञ्जकत्वात्
लक्षणघटकं व्यर्थत्वात् । मृतोद्देश्यकत्वं विवक्षितम् । जीवच्छ्राद्धे देवश्राद्धे च श्राद्ध
कुण्डपाय्यग्निहोत्रवत्' इति टीका । २—'कौण्डपायिनामयन उपसद्भिश्चित्वा 'मासमग्निहोत्रं
इत्यत्र जहोतिना दूरस्थस्यापि कर्मण उपस्थित्या अन्नुवादेन मासादिरूपगुणविधिः ।

बहुपजीव्यविरोधेन विकल्पापत्तेश्च । तेन श्राद्धशब्दाभिधेयत्वेनोभयप्राप्तौ निषेधः दासो वा । 'दीक्षितो न ददाति न जुहोति' 'नासोमयाजी सदा' इतिविदिति तत्त्वम् । धर्मप्रदीपेपि—'यजुषां पिण्डदानं तु बह्वृचानां द्विजाचं श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं सामवेदिनाम् ॥' तच्च 'पितृन् यजेत्, पितृभ्यो इत्युभयप्रयोगदर्शनाद्यागदानोभयात्मकम् । 'पितरो देवता' इति पित्र्युद्देश्यकत्वा विप्रपैक्षया च दानत्वमित्यविरुद्धम् । एतेन नायं यागः । देवतोद्देशेन त्यागो यागोद्देश्या च देवतेत्यात्माश्रयादिति गौडमतमपास्तम् । वैधशब्दविशेषत्वस्य तस्येदमिति स्वत्वरोपप्रतियोगित्वस्य वा देवतात्वात् । तत्रैव सुम् 'श्राद्धात्परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम् ॥' आदित्यपुराणे—'न सन्ति पित्र्यकृत्वा मनसि यो नरः । श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिवन्ति ते' ॥

तद्देदानाह विश्वामित्रः—'नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्ड पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यां शुद्धचर्यमष्टमम् ॥ कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम् ॥' इति । एषां लक्षणानि भा 'अहन्यहानि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् । वैश्वदेवविहीनं तदशक्ताबुदकेन एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते । तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान्

श्राद्धलक्षणानि ।

हिजान् ॥ कामाय विहितं काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये । वृद्धौ यत् श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते ॥ गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात् पा यम् । अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥ ये समाना इति द्वाभ्यां सपिण्डनम् । नित्येन तुल्यशेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥ एतदुभयमेव द्विया स्त्रीकर्तृकं स्त्रीसम्प्रदानकं चेत्युभयनियम इति कल्पतरुः । 'अमावास्यां यत् तत् पार्वणमिति स्मृतम् । क्रियते वा पर्वणि यत्तत् पार्वणमिति स्थितिः ॥' अ 'चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पौर्णिमा । पर्वण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रमणं इति विष्णुपुराणोक्तं संक्रान्त्यादि 'गोष्ठ्यां यत् क्रियते श्राद्धं गोष्ठीश्राद्धं त बहूनां विदुषां संपत्सुखार्थं पितृतृप्तये ॥ क्रियते शुद्धये यत्तु ब्राह्मणानां तु अ शुद्धचर्यमिति यत् प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥ निषेक काले सोमे च सीमन तथा । ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं कर्माङ्गमेव च ॥ देवानुद्देश्य यच्छ्राद्धं तत्तु

च्यते । गच्छन् देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्तु सर्पिषा ॥ यात्रार्थमिति तत् प्रोक्तं च न संशयः । शरीरोपचये श्राद्धमर्थोपचय एव च ॥ पुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयमौपच्यते ॥' गोष्ठ्यां श्राद्धकर्तृसमुदाये संभूयसामग्रीसंपादनेन श्राद्धमित्यर्थः । युर्थादिमातैः विदुषां श्राद्धसंपदासुखार्थं भिन्नपाकाशक्तौ बहुपितृकश्राद्धमेकः कुलत्वरुः शङ्खधरश्च । शुद्धिश्राद्धं प्रायश्चित्ताङ्गमिति मैथिलाः ॥ पार्वणैकोद्विष्टवृद्धिसपिण्डीकरणात्मकं चतुर्विधमेव मुख्यम् । तस्यैवायं प्रपञ्चः ॥

अथ श्राद्धदेशाः । मनुः-‘शुचिदेशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत् । दक्षिणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥’ पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुश्राद्धदेशाः ।

‘दक्षिणाग्रवणे देशे तीर्थादौ च गृहेपि वा । भूतंस्कृादि

श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः ॥’ तत्रैव प्रभासखण्डे-‘तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे शुभे ॥’ भारते-‘तस्य देशाः कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा सरस्वती ॥ प्रभासं चेति तेषु श्राद्धं महाफलम् ॥’ स्कान्दे-‘तुलसीकाननच्छाया यत्रयत्र भवेत् तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ माधवीये श्राद्धोपक्रमे व्योमहोदधौ प्रयागे च काश्यां च कुरुजाङ्गले ॥’ शङ्खः-‘गङ्गायमुनयोस्तीरे पयःसरकण्टके ॥ नर्मदाबाहुदातीरे भृगुलिङ्गे हिमालये ॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च पुष्करे तथा । सन्निहत्यां गयायां च दत्तमक्षयतां व्रजेत् ॥ अपि जायेत सोमकुले कश्चिन्नरोत्तमः । गयाशीर्षे वटे श्राद्धं यो नो दद्यात्समाहितः ॥ एवमवहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् आदित्यपुराणे-‘पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । महानद्याः पश्चिमेन दध्नेश्वरो गिरिः ॥ उत्तरे ब्रह्मयूपस्य यावदक्षिणमानसम् । एतद्रयाशिरो नाम लोकेषु विश्रुतम् ॥ इति । शूलपाणौ बृहस्पतिः-‘गङ्गायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मस्तथा । गयाशीर्षेक्षयवटे पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव दृष्ट्वैतानि पितॄन्श्चार्चन् वंशान्विशतिसुद्धरेत् ॥’ त्रिस्थलीसेतौ वायवीये-‘शर्मप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्रयाशिरे । उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥’ सप्तगोत्र-‘पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा । पितृमातृष्वसा चैव सप्त गोत्रा वै विदुः ॥ इति । एषां गोत्राणामेकोत्तरशतं कुलम् । पुरुषा इत्यर्थः । ते चोक्तान्नैव-‘तत्त्वानि विंशतिनृपा द्वादशैकादशा दश । अष्टाविति च गोत्राणां कुलमेव शतम् ॥’ तत्त्वानि चतुर्विंशतिः । ते च द्वादश पूर्वाः । द्वादश पराः । एवमग्रेपि । प्र

गपरिजाते पात्रे—‘शालग्रामभ्रयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित् । वाराणस्यां यवाधि-
समंताद्योजनत्रयम् ॥’ तथा—‘यत्किञ्चित् पैतृकं कुर्यात्सपिण्डं वा तदन्तिके । विष्णुलो-
स गच्छेत्तु लभते शाश्वतं पदम् ॥’ तत्रैव वाराहे—‘चक्राङ्गस्य तु सान्निध्ये यत् क-
क्रियते नरैः । स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥’

अथ निषिद्धदेशाः । पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—‘त्रिशंकोर्वर्जयेद्देशं सर्वं द्वाद-

निषिद्धदेशः ।

योजनम् । उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन तु कीकटान् ॥ देशश्चैशंक-

नाम श्राद्धकर्मणि वर्जितः ॥’ वायवीये—‘प्रणष्टाश्रमधर्माश्च दे-

वर्ज्याः प्रयत्नतः ॥’ यमः—‘रुक्षं कृमिहतं क्षिन्नं संकीर्णानिष्टगन्धिकम् । देशं त्वनि-

शब्दं च वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥’ तत्रैव शंखः—‘गोगजाश्वादिजुष्टेषु कृत्रिमायां त-

भुवि । न कुर्याच्छ्राद्धमेतेषु पारक्यासु च भूमिषु ॥’ यमः—‘परकीयप्रदेशेषु पितृण-

निर्वपेत्तु यः । तद्वमिस्वामिपितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते ॥’ ब्राह्मभारतयोरपि

परकीयगृहे यस्तु स्वात् पितृस्तर्पयेद्यदि । तद्वमिस्वामिनस्तस्य हरन्ति पितरो वलात्

अग्रभागं ततस्तेभ्यो दद्यान्मूल्यं च जीवितम् ॥’ श्राद्धार्हाणामग्रभागश्राद्धम्—तदनर्हाण-

शूद्राणां तु मूल्यमिति केचित् । षोडशीपिण्डे वान्धवानामपि पिण्डोक्तेः । ‘येऽव-

न्धवा वान्धवा वा’ इत्यादितर्पणवाधापत्तेश्च । नामगोत्रपूर्वं श्राद्धनिषेधो नान्यत्रो-

गौडाः । विप्रासु तस्य शूद्रापुत्रश्राद्धनिषेधो नान्यत्र । अन्नदानं चान्नत्यागात्पूर्वं का-

मिति मैथिलाः । तत्र । अग्रभागस्य श्राद्धपरत्वे मानाभावात् । अन्नदाने निषेधाभ-

वात् । त्यागात्पूर्वं करणेऽनङ्गेन व्यवधानापत्तेः । अङ्गत्वे च मानाभावात् । इदं च

स्वाम्यनुज्ञाभावे । तदुक्तं तत्रैव ब्राह्मे—‘स्वनुलिप्तेषु गेहेषु स्वेष्वनुज्ञापितेषु च । श्राद्धमे-

तेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु नोच्यते ॥ किरातेषु कलिङ्गेषु कौंकरिणेषु स्वसेष्वपि । सिन्धोस्त-

रकलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे । पूर्वेण करतोयाया न देयं श्राद्धमुच्यते ॥’ इदं काम-

विषयम् । ह्यन्यथा तत्रत्यानां सर्वश्राद्धाकरणापत्तेः । नर्मदादक्षिणेऽपवादः स्कान्दे-

‘सह्यस्य चोद्भवो यत्र यत्र गोदावरी नदी । पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशोस्तिप-

वनः ॥’ परकीयत्वापवादः—आदित्यपुराणे—‘अटवी पर्वताः पुण्या नदीतीरानि

यानि च । सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नहि तेषु परिग्रहः ॥ वनानि गिरयो नद्यस्तीर्थान्या-

तनानि च ॥ देवखाताश्च गर्तश्च न स्वाम्यं तेषु विद्यते ॥’ स्मृतिसारे—‘नैकवास-

न च द्वीपे नान्तरिक्षे कदाचन । श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः कचित् ॥

दिवोदासीये—‘म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां विप्रवर्जिते । न श्राद्धमाचरेद्विद्वान्

चाकालो मन्थनः ॥’

न चैक्ष्वेषु चेहन्ते पितरो हि मघास्वपि ॥ पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च ॥ ' इति शातातपपाठः । नवोदके नवकूपवाप्यादाविति केचित् । वर्षोपक्रमे आर्द्राप्रवेश इति गौडाः । नवान्नश्राद्धे विशेषो ज्योतिषे- 'ज्येष्ठशेषार्धगे सूर्ये मृगनेत्रानिशात्मके नवान्नभोजनश्राद्धं जन्मचन्द्रतिथौ न च ॥ आश्लेषाकृतिकाज्येष्ठाश्लेषाजपदगेषु च । गुरुनौमदिने रिक्ते तिथौ नाद्यान्नवोदनम् ॥ ' तत्रैव- 'वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः ॥ ' अतः कृष्णपक्षे नेति गौडाः । मैथिलास्तु- 'अकृताग्रयणं चैव धान्यजातं नरोत्तम' । इति वराहोक्तेः । प्रतिधान्यं श्राद्धमाहुस्तत्र । जातपदस्य श्राद्धयोग्यसमूहपरत्वात् । हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः- 'ग्रहोपरागे च सुते च जाते पित्र्ये गयायामयनद्वये च । नित्यं च शस्त्रे च तथैव पद्मे दत्तं भवेन्निष्कसहस्रतुल्यम् ॥ शंखं प्राहुरमावास्यां क्षीणचन्द्रां द्विजोत्तमाः । अष्टकासु भवेत्पद्मं तत्र दत्तं तथाऽशयम् ॥ ' तत्रैव शंखः- 'यदा विष्टिर्व्यतीपातो भानुवारस्तथैव च । पद्मकं नाम तत् प्रोक्तमयनाच्च चतुर्गुणम् ॥ ' याज्ञवल्क्यः- 'अमावास्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् । द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः ॥ व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥ ' कृष्णपक्षः सर्वोपि । 'शकेनापरपक्षं नातिक्रमेत मासिमासि वाऽशनम् । ' इति श्रुतेः । 'ऊर्ध्वं वा चतुर्थ्या यदहः संपद्यते ऋते चतुर्दशीम् । ' इति कात्यायनोक्तेः । मासिमासि कार्यमपरपक्षस्यापराहः श्रेयान् । ' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च । वाप्सया सर्वं कृष्णपक्षेषु नित्यम् । तेनोपसंहारान्महालयपरत्वं परास्तम् । अत्र प्रत्यहं १ पञ्चम्यादि २ यदहः संपत्तिर्वा ३ इति त्रयः पक्षाः । यदैकादिने श्राद्धं तदा दार्श पृथगेव । याज्ञवल्क्येनामावास्यायाः पृथङ् निर्देशात् । एतेन कृष्णपक्षे यदहः संपद्यते अमावास्यायां तु विशेषेण इति निगमोक्तेर्गुणोऽपरपक्षश्राद्धस्यामावास्येति शूलपाणिमतमप्यपास्तम् । 'अशक्तौ दर्शेनापि मासि श्राद्धसिद्धिः' इति नारायणवृत्तिः । निरग्निकानां कस्मिंश्चिदिने । आहिताग्रेस्तु दर्श एव । 'न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्रेऽङ्गजन्मनः' । इति मनूक्तेः । सर्वकृष्णपक्षाशक्तौ मात्स्ये- 'अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् । कन्याकुम्भवृषस्थर्के कृष्णपक्षे च सर्वदा ॥ ' कर्कोपि- 'आहिताग्रेः संवत्सरे त्रिः श्राद्धनियमः । ' इति । देवलः- 'अनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं सकृत् । द्विश्चतुर्वा यथाश्राद्धं मासेमासे दिनेदिने ॥ ' कृष्णपक्षेष्वपि महालयस्य श्रेष्ठत्वम् । तच्चोक्तं प्राक् । प्यतीपाते विशेषमाह हेमाद्रौ शंखः- 'फलं लक्ष्ममुत्पत्तौ भ्रमणे कोटिरुच्यते । पतने शतकोट्यस्तु पाते वै दत्तमक्षयम् ॥ ' ज्योतिःशास्त्रे- 'द्वाविंशतिस्तथोत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः । पतने दशनाड्यस्तु पतिते

नने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ।
अत्रायण्यपारिशिष्टोक्तेः ।

तिथिविशेषे फलविशेषो याज्ञवल्क्येनोक्तः—‘कन्यां कन्यावेदिनश्च
सत्सुतानपि । द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफांस्तथा ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा
रौप्ये सकुप्यके । ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानामोति श्राद्धदः सदा ॥ प्रतिपत्यभृतिष्वेव
यित्वा चतुर्दशीम् ॥’ एताः कृष्णपक्षस्था एव । महालये तु फलभूमेति पृथ्वी
दयः । पौर्णमास्यां हेमाद्रौ पितामहः—‘अमावास्यां व्यतीपाते पौर्णमास
च । विद्वाञ् श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥’ एतन्माध्यादिपरम् । ‘ब्रीहिपाके च
यवपाके च पार्थिव । पौर्णमासी तथा माघी श्रावणी च नृपोत्तम ॥ प्रौष्ठपद्याम
तथा कृष्णत्रयोदशी ॥ एतांस्तु श्राद्धकालान्वै नित्यानाह प्रजापतिः ॥’ इति विष्णु
क्तेः । विष्णुः—‘माघी प्रौष्ठपदूर्ध्वं कृष्णा त्रयोदशी’ इति । अत्र माघी पौर्ण
क्लपतरुः । ‘श्रावण्यूर्ध्वमपि माघयोगसंभवात्रयोदशीविशेषणम्’ इति गौडाः
क्वापि याज्ञवल्क्यः—‘स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा । पुत्राञ्छ्रैष्ठ्यं
भाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम् ॥ प्रवृत्तचक्रतां वापि वाणिज्यप्रभृतीनपि । अरोगं
शो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥ धनं वेदान् भिषक्सिद्धिं कुप्यं गामप्यजाविकम्
नायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामान् प्राप्नुयात्
फलान्तराण्यपि महाभारते कौर्मादिर्ज्ञेयानि । माधवीये मरीचिः—‘कृत्तिका
त्रक्षेषु श्राद्धे यत् फलमीरितम् । विष्कम्भादिषु योगेषु तदेव फलमिष्यते ॥’ बृह
—‘आरोग्यं चैव सौभाग्यं शत्रूणां च पराजयम् । सर्वान् कामान् प्रियां विद्यां धन
थाक्रमम् ॥ सूर्यादिवसेष्वेतच्छ्राद्धकालभते फलम् । बवादिकरणेष्वेतच्छ्राद्ध
फलम् ॥’ अन्यानि च षण्णवतिश्राद्धादीनि प्रागुक्तानि । मार्कण्डेयपुराणे—
द्रव्यसंपत्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने । जन्मक्षेपे ग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया ॥

अथ श्राद्धाधिकारिणः । चन्द्रिकायां सुमन्तुः—‘मातुः पितुः प्रकुर्वीत

तस्यौरसः सुतः । पैतृमेधिकसंस्कारं मन्त्रपूर्वकमादितः ॥
[श्राद्धाधिकारिणः ।

हेमाद्रौ शंखः—‘पितुः पुत्रेण कर्तव्याः पिण्डदानोदकक्रियाः ।
तु पत्नी स्यात्तदभावे तु सोदरः ॥’ अत्र यद्यपि पुत्रपदं क्षेत्रजादिद्वादशविधपुत्रपर
च द्वादश पुत्रा याज्ञवल्क्येनोक्ताः—‘औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः
जः क्षेत्रजास्तु सगोत्रेणेतरेण वा ॥ गृहे प्रच्छन्नोत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः ।

यकुतः । दत्तान्ननातुः स्वयं दत्तो गर्भे विन्नः सहोदजः ॥ उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु स
 भवेत्सुतः । पिण्डदंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ॥' इति । तथापि 'दत्तौरसेतरेषां
 त्वेन परिग्रहः ।' इति हेमाद्रावादित्यपुराणे । कलावितरेषां पुत्रत्वनिषेधादौ
 कर्ममेव । यद्यपि 'पिण्डदंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ।' इति याज्ञवल्क्योक्तेः
 भावे इत्तकप्रामित्यप्यौरसाभावे पौत्रः, तदभावे प्रपौत्रः, तदभावे दत्तकाद
 जेयम् 'पुत्रेण लोकाञ्जयति' पौत्रेणान्त्यमश्नुते । अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्य
 विष्टपम् ॥' इति जीमूतवाहनधृतवसिष्ठहारीतशंखलिखितोक्तेः । 'ल
 न्त्यं दिवः प्राप्तिं पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ।' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च 'पुत्रः पौत्रश्च
 पुत्रिकापुत्र एव च । पत्नी भ्राता च तज्जश्च पिता माता स्नुषा तथा । भगिनी भ
 यश्च सपिण्डः सोदकस्तथा । असंनिधाने पूर्वेषामुत्तरे पिण्डदाः स्मृताः ॥' इ
 स्मृतिसंग्रहे- 'प्रपौत्रानन्तरं पुत्रिकापुत्रोक्तेस्तत्समत्वाच्च दत्तकस्य' । यद्यपि क
 तिना- 'पुत्रश्च पुत्रिकापुत्रः स्वयंप्राप्तिकरावुभौ । रिकथे च पिण्डदाने च समानौ
 कीर्तिता ॥' इति पौत्रसाम्यसुक्तम् । याज्ञवल्क्येन च- 'औरसो धर्मपत्नीजस
 पुत्रिकासुतः' । इति औरससाम्यम् । तथापि 'लोके राजसमो मन्त्री' इत्यादौ
 न्यूनं समशब्दप्रयोगात् । गौणमुख्ययोः साम्ययोगाच्च स्तुत्यर्थं तत् न तु समा
 इति अमितव्यम् । 'पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रौ वा भ्राता वा भ्रातृसंततिः । सपिण्डसंस्त
 क्रियार्हा नृप जायते । तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः । मातृपक्षसपिण्डेन
 न्यो यो जलेन वा । कुलद्वयेपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप । तत्संघ
 वापि तद्विकथात्कारयेन्नृप ॥' इति विष्णुपुराणाच्चेति । प्रपौत्रानन्तरं दत्तकाद
 पृथ्वीचन्द्रमदनरत्नकालादर्शादयः । मदनपारिजातेष्वेवम् ।

वोपदेवरुद्रधरादयस्तु- 'पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै कारयेत्स्वधाम्'
 सुमन्तुक्तौ- 'पितामहः पितुः पश्चात्पश्चत्वं यदि गच्छति । पौत्रेणैकादशाहादि
 श्राद्धषोडशम् ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः ॥' इति च्छन्दोग
 शिष्टे च पुत्रशब्दस्य द्वादशविधसुतपरत्वात् । 'पूर्वाभावे परः परः इत्यस्य
 परत्वाच्च दत्तकाद्यभावे पौत्रादीनामप्यधिकार इत्याहुः । तद्वैणमुख्ययोः सा
 गादत्तके सति पौत्रस्यांशहरत्वस्याप्यभावापत्तेः । पुत्रपदस्यौरसमात्रपरत्वाच्चिन्त
 अत एव निषेधादुपनीतपौत्रसत्त्वेप्यनुपनीतपुत्रस्यैवाधिकारः । 'औरसश्चानुपन
 कुर्यात् ।' इत्याह पृथ्वीचन्द्रोदये सुमन्तुः- 'श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु

यावन्मौञ्जी निवध्यते । मन्त्राननुपनीतोपि पठेदेवैक औरसः॥' अयं मन्त्रपाठः
तच्चूडस्यैव । 'अनुपेतोपि कुर्वीत मन्त्रवत् पैतृमेधिकम् । यद्यसौ कृतचूडः
स्याच्च त्रिवत्सरः ॥' इति सुमन्तूक्तेः । यत्तु व्याघ्रः—'कृतचूडस्तु कुर्वीत उ
मेव च । स्वधाकारं प्रयुञ्जीत वेदोच्चारं न कारयेत् ॥' इति । यच्च स्मृतिसंग्र
होऽनुपेतश्च पित्रोः श्राद्धं समाचरेत् । उदाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ
तत् प्रथमवर्षचूडाविषयमिति माधवमदनरत्नपृथ्वीचन्द्राः । त्रिवर्षोर्ध्वः
विकल्प इति चन्द्रिका बोधदेवश्च । दत्तकादिपरो निषेध इति वयम् ।

मदनरत्ने स्कान्दे—'यज्ञेषु मन्त्रवत्कर्म पत्नी कुर्याद्यथा नृप । तथौर्ध्वतै
कुर्यात्सौ धर्मसंस्कृता ॥' अशक्तौ तु कात्यायनः—असंस्कृते तु पत्न्या च
समन्त्रकम् । कर्तव्यमितरत्सर्वं कारयेदन्यमेव हि ॥' पुत्रश्च न जन्मतोधिकारो
वर्षोत्तरमित्याह कालादर्शः । 'चौलादाद्यादिकाद्वर्षाङ्गं न कुर्यात्पैतृमेधिकम्
नरत्ने सुमन्तुरपि—'पुत्रश्चोत्पत्तिमात्रेण संस्कुर्यादृणमोचनात् ॥ पितरं नो
लात्पैतृमेधेन कर्मणा ॥' एतच्चौरसस्यैव । दत्तकादीनां तूपनीतानामेवा
कालादर्शः । पृथ्वीचन्द्रोदयेपि स्कान्दे—'पित्रोरनुपनीतोपि विदध्यादौ
और्ध्वदैहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारिणः ॥' इति । अन्यत्रापि दर्शमहा
पनीतस्याधिकारोऽस्माभिः पूर्वमुक्तः । प्रपौत्राभावे दत्तकादय एकादश पुत्रा
भावे भर्तुः पत्नी तस्याश्च सः । 'अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता
दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च ॥' इति बृद्धमनूक्तेः 'भार्यापिण्डं प
भार्या तथैव च । श्वश्वादेश्च स्नुषा चैव तदभावे सपिण्डकाः ॥' इति । 'पुत्राभा
स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः ।' इति च हेमाद्रौ शंखोक्तेः । पृथ्वीचन्द्रो
'कानीनगूढसहजपुनर्भूतनयाश्च ये । पत्न्यभावे पि कुर्युस्ते अप्रशस्ताः स्मृता
इति स्मृतिसंग्रहात् । पत्न्यभावे कानीनादय इत्याह ।

पत्युरपि सपत्नीपुत्रे सति नाधिकारः । 'पितृपत्न्यः सर्वा मातरः इति सु
'विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्ध्वदैहिकम् । तदभावे सपत्नीजः क्षेत्रजाद्य
स्तथा ॥ तेषामभावे तु पतिस्तदभावे सपिण्डकाः' इति मदनरत्ने कात्यायन
'वह्नीनामेकपत्नीनामेष एव विधिः स्मृतः । एका चेत् पुत्रिणी तासां सर्वासां
सः ॥' इति बृहस्पतिवचनाच्च । अपराकेंप्येवम् । तेन यच्छुद्धिविवेक
सत्यापि सपत्नीपुत्रे पत्युरेवाधिकारः' इति । तन्निरस्तम् । यच्च तत्रैव

१ — ऋणमोचनस्य हेतुत्वम् । अध्ययनतो वसतीतिवत् । २ आ आदिकात् इति च्छे
मवर्षीयचौलादि नेति तदर्थः । इति टीका ।

यनः-‘न भार्यायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित् ॥’ यच्च विष्णु
‘कुलद्वयेपि चोत्सन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप’ इति । यच्च मार्क
णम्-‘सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम्’ इति । तदासुरा
विषयम् । ‘धर्म्यैर्विवाहैरूढा या सा पत्नी परिकीर्तिता । क्रैयक्रीता तु
न सा पत्न्यभिधीयते । न सा दैवे न सा पित्र्ये दासी तां मुनयो विदुः
माधवीये शातातपोक्तेः । यत्तु शुद्धिरत्नाकरः शूलपाणिश्च-
या पुत्री सापि पिण्डप्रदा भवेत् । तस्य पिण्डान् दशैकं वा एकाहेनैव निक्षि
जाबालोक्तेः । ‘भर्तुर्धनहरा पत्नी तां विना दुहिता स्मृता । अङ्गादङ्गात्सं
वद् दुहिता नृणाम् ॥’ इति बृहस्पतिना दुहितुर्धनहारित्वोक्तेश्च ‘पुत्रा
तदभावे सपत्नीपुत्रः’ । इत्याहुतुः । तत्पूर्वविरोधात् । ‘मातुर्दुहितरः शेष
ऋतेन्ये ।’ इति दुहितुर्मातृधनग्राहित्वेन पुत्रस्य तच्छ्राद्धानधिकारापत्तेश्च
वचनं तु भ्रातृपुत्राद्यभावविषयम् । पत्न्यभावे अविभक्तस्य सोदरः पूर्वोक्त
विभक्तस्य तु दुहिता । धनहारित्वात् । पूर्वोक्तजाबालवचनाच्च । तत्रापि
वाये उदैव । ‘दुहिता पुत्रवत्कुर्यान्मातापित्रोस्तु संस्कृता । आशौचमुदकं पि
सदा तयोः ॥’ इति भरद्वाजोक्तेः । तदभावे दौहित्रः धनहारित्वात्
पित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदैहिकम् । कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रत
चन्द्रिकायां बृद्धमनूक्तेः । ‘यथा व्रतस्थोपि सुतः पितुः कुर्यात् क्रि
उदकाद्यां महाबाहो दौहित्रोपि तथार्हति ॥’ इत्यपराकं भविष्योक्तेश्च
नहारिणः आवश्यकं नान्यस्येत्याह तत्रैव । स्कान्दे-‘श्राद्धं मातामहानां
धनहारिणा । दौहित्रेणार्थनिष्कृत्यै कर्तव्यं पूर्वमुत्तरम् ॥’ इति । तेन दौहित्रो
इति देवयाज्ञिकोक्तिः परास्ता । अत्र पत्नीदौहित्रसमवायेऽशङ्करत्वात् पत्न्य

१ अत्र द्वावुपन्यासौ ‘न भार्यायाः’ इत्याद्यः ‘कुलद्वयेपि च’ इति द्वितीयः । तत्र
तीयं निरस्यति-तदासुरेत्यादि । अयं भावः-‘नृपिपदद्वयं न पत्नीपरम् । अमन्त्रकम् इ
त् । पत्न्याः समन्त्रकर्माभिधानात् । पुत्राभावे पत्नीविधानेन सर्वाभावे विधानासम्भवाच्च
न्योढापरम् । एवं च ‘कुलद्वयेपि चोत्सन्ने’-इति मातुलाद्यभावे बान्धवान्ताभावे य
युक्त इति । एतेन मन्त्रवक्त्याकर्त्री पत्नी । तदभावेऽमन्त्रकाक्रियाकर्त्र्य एता इत्यपि
टीका । २ ‘कन्यामुपयच्छेत्’ इति विधिसत्त्वेपि क्रय एव यज्ञसंयोगादिविघटक इति
पत्नीत्वमित्यर्थः । इति टीका । ३-‘न भार्यायाः पतिः-’ इत्यादि पूर्वोपन्यासे ‘आ

दौहित्रभ्रातृपुत्रसत्त्वे विभक्तस्य दौहित्रः, अविभागे भ्रातृपुत्रः । भ्रातृतत्पुत्र-
कनिष्ठश्चेत् भ्रातैव । ज्येष्ठश्चेत्तत्पुत्रः कुर्यादिति दाक्षिणात्यग्रंथाः । हारलतादे-
‘भ्रातृभ्राता स्वयं चक्रे तद्भार्या चेन्न विद्यते । तस्य भ्रातृसुतश्चक्रे यस्य नास्ति सहो-
इति ब्राह्मोक्तेः । ‘पत्नी कुर्यात्सुताभावे पत्न्यभावे सहोदरः ।’ इति कौम-
ज्येष्ठभ्रातैव कुर्यान्न तत्पुत्रः । यत्तु ‘नानुजस्य तथाग्रजः’ इति तत् कनिष्ठभ्रातृ-
विषयम् । यच्च मनुः—‘सर्वेषामेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान् भवेत् । सर्वास्तांस्तेन
पुत्रिणो मनुरब्रवीत्’ ॥ इति तत्सहोदराभावविषयमित्युक्तम् । एतेन पुत्रत्वाति-
यम् । अतस्तस्मिन् सति एकादश पुत्राः प्रतिनिधयो न कार्याः । स एव पिण्डव-
रश्चेति । अत्रापि वाचस्पतिमनुटीकाकल्पतरुरतनाकरादयः परास्ताः ।
‘शिविधपुत्राभावे पत्नीदुहितरः’ इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च । तस्माद्वत्तत्पुत्रप्रशंस-
विज्ञानेश्वरः । अविभक्तविषयं वा । मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे—‘पुत्रः कुर्या-
त्तुःश्राद्धं पत्नी च तदसंनिधौ । धनहार्यथ दौहित्रस्ततो भ्राता च तत्सुतः ॥
सहोदरो भ्राता कुर्याद्वाहादि तत्सुतः ॥ ततस्त्वसोदरो भ्राता तदभावे च तत्सु-
इति । भ्रातृपुत्राभावे क्रमेण पितृस्नुषास्वसृतत्पुत्रादयः । धनहारित्वात् । भ-
तत्सुतयोर्विशेषमाह मदनरत्ने कात्यायनः—‘अनुजा अग्रजा वापि भ्रातुः
संस्क्रियाम् । ततः स्वसोदरास्तद्वत्क्रमेण तनयस्तयोः ॥ अपरार्के कार्णाजि-
‘पुत्रः शिष्योथवा पत्नी पिता भ्राता स्नुषा गुरुः । स्त्रीहारी धनहारी च कुर्यात्
द्व्यक्रियाम् ॥’ मार्कण्डेयपुराणे—‘पुत्रो भ्राता च तत्पुत्रः पत्नी माता तथा
वित्ताभावेपि शिष्यश्च कुर्वीरन्ध्रवदैहिकम् ॥’ तेन धनहारी एतद्भिन्न इति क-
दर्शः । अत्र पाठक्रमो न विवक्षितः । पूर्वावाक्येष्वथ ततश्शब्दादिभिः श्रौ-
मोक्तेः । ‘अथ जिह्वाया अथ वक्षसः’ इतिवत् ।

पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनुः—‘स्नुषास्वस्त्रीयतत्पुत्रज्ञातिसम्बन्धिवान्धवाः । पुत्र-
तु कुर्वीरन्सपिण्डान्तं यथाविधि ॥’ मार्कण्डेयपुराणे—‘पुत्राद्युत्सन्नबन्धोश्च स-
श्वशुरस्य च । जामाता स्नेहवत्कुर्यादखिलं पैतृमेधिकम् ॥’ चन्द्रिकायां वृद्ध-
त्तातपः—‘मातुलो भागिनेयश्च स्वस्त्रीयो मातुलस्य च । श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्यु-
महस्य च ॥ एतेषां चैव भार्याणां स्वसुर्मातुः पितुस्तथा । श्राद्धमेषां तु
व्यमिति वेदविदो विदुः ॥’ शुद्धिविवेके पृथ्वीचन्द्रोदये च ब्राह्मे—‘दत्तानां च
दत्तानां कन्यानां कुरुते पिता । चतुर्थेहानि तास्तेषां कुर्वीरन् सुसमाहिताः ॥’ दत्ता वाग्द-

संचयनपरम् । कालादर्शे-‘दाहादि मन्त्रवत् पित्रोर्विदध्यादौरसः सुतः । तव
पौत्रश्च प्रपौत्रः पुत्रिकासुतः ॥ दौहित्रो धनहारी च भ्राता तत्पुत्र एव च । पितुः
स्तुषा चैव स्वसा तत्पुत्र एव च ॥ सपिण्डः सोदको मातुः सपिण्डश्च सहोदकः
शिष्यत्विगाचार्या जामाता च सखापि वा ॥ उत्सन्नवन्धोरिक्थेन कारयेदवनी
गौतमः-‘पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युः । तदभावे ऋत्विगा
यत्तु चंद्रिकायां वृद्धशातातपः-‘प्रीत्या श्राद्धं प्रकर्तव्यं सर्वेषां वर्णालिङ्गि
इति तत्सर्वणविषयम् । ‘ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न कुर्यात्कर्म किंचन । कामाहो
न्मोहात्कृत्वा तज्जातितां व्रजेत् ॥’ इति ब्राह्मोक्तेः । ‘न ब्राह्मणेन कर्तव्यं
पौर्ध्वदेहिकम् । शूद्रेण वा ब्राह्मणस्य विना पारशवात्कचित्’ ॥ इति पार
क्तेश्च ॥ पारशव ऊढशूद्रापुत्रः ॥

अत्रेदं तत्त्वम् । सर्वत्र पुत्रादेः सर्वस्याभावे पत्न्यादेरधिकार उक्तः । तत्रा
न्निधिर्नाशश्चोच्यते । अत एव पूर्वत्र ‘असन्निधाने पूर्वेषाम्’ इत्युक्तम् । तत्र
पत्न्यादेः सर्वाधिकारे प्राप्ते ‘प्रोषितावसिते पुत्रः कालादपि चिरादपि । एका
क्रमशो ज्येष्ठस्य विधिवत्क्रियाः ॥ ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम्’ इत्याद्यैर्दशान्तरेऽप्यव
नाशे एव पत्न्यादेः सपिण्डनादावधिकारः । असंनिधौ तु तत्पूर्वमेव नोर्ध्वम् ।
नधिकारिणा भ्रात्रादिना कृतमप्यकृतमेवेति पुनरावर्तनीयम् । मासिकापकर्ष
नीयः ॥ एकादशाहमासिकानि नावर्तन्ते । ‘तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिण्डीकर
इतिवदावृत्तिविधानाभावादिति केचित्तत्र । अस्य निर्मूलत्वात् । अतस्तदपि
तमावर्तते । वृद्धिश्रौतपिण्डपितृयज्ञार्थं तु कृतं नावर्तते । ‘नासापिड्याऽग्निमान् पु
यज्ञं समाचरेत् । न पार्वणं नाभ्युदयं कुर्वन्न लभते फलम् ॥’ इति वृद्धश्रुत्तर
दिति । ‘भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा’ इत्यादिहारीतादिवचोभ्यः कनिष्ठादेरप्यपि
यथात्र ज्येष्ठकर्तृकत्वबाधः, तथा पुत्रकर्तृकत्वस्यापि बाधः । सपिण्डने तु व
तन्निर्णये वक्ष्यामः ।

१-‘यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् । स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृत
क्षणः २-‘पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्’ इत्यादेः ‘पितुः पुत्रेण कर्तव्याः पिण्डदानोदकक्रिया
देश्च सामान्यशास्त्रस्य सपिण्डनविषये बाधं विनाऽगतेरिति भावः । ३-अधिकारभ्रमेण

अधिकारविशेषेण क्रियाव्यवस्थोक्ता विष्णुपुराणे—‘पूर्वाः क्रिया मध्य
चैवोत्तराः क्रियाः । त्रिप्रकाराः क्रिया ह्येतास्तासां भेदाञ्छृणुष्व मे ॥ आद
हाच्च मध्ये याः स्युः क्रिया नृप । ताः पूर्वा मध्यमा मासिमास्येकोद्दिष्टसंज्ञि
पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु । क्रियन्ते याः क्रियाः पुत्र प्रोच्यन्ते ता न
पितृमातृसपिण्डैश्च समानसलिलैस्तथा । तत्संवातगतैश्चैव राज्ञा वा धनहारिण
मध्याश्च कर्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः । दौहित्रैर्वा नरश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा
हानि तु कर्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः ’ ॥ दौहित्रतत्पुत्रयोर्धनहारिणोर
मन्यस्य धनहर्तुः ‘यथार्थहरः स पिण्डदायी’ इत्यापस्तम्बोक्तेः । ‘प्रेत
र्याणि अकृत्वा धनहारकः । वर्णानां यद्वधे प्रोक्तं : तद्व्रतं प्रयतश्चरे
पृथ्वीचन्द्रोदये व्याघ्रपादोक्तेः । मदनरत्ने स्कान्देपि—‘मलमेत
द्रविणं यत्प्रकीर्तितम् । ’ इत्युक्ता ‘ऋषिभिस्तस्य निर्दिष्टा निष्कृति
परा । आदेहपतनात्तस्य कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम् ॥’ इत्युक्तम् । क्रियानिवन्धे
यनः—‘न च माता न च पिता कुर्यात्पुत्रस्य पैतृकम् । नाग्रजश्च तथा भ्राता
कनीयसाम् ॥’ पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः—‘पित्रा श्राद्धं न कर्तव्यं पुत्रा
चन । भ्रात्रा चैव न कर्तव्यं भ्रातृणां च कनीयसाम् ॥ यदि स्नेहेन कुर्यात्तां
रणं विना । गयायां तु विशेषेण ज्यायानपि समाचरेत् ॥’ अन्याभावे
कुर्यात् । ‘उत्सन्नवान्धवं प्रेतं पिता भ्राताथवाग्रजः । जननी चापि संस्कुर्यान्म
भवेत् ॥’ इति सुमन्तूक्तेः ।

ब्रह्मचारिणां तु शुद्धिविवेके पृथ्वीचन्द्रोदये च ब्राह्मे—‘असम
कर्तव्यं ब्रह्मचारिणः । श्राद्धं तु मातापितृभिर्न तु तेषां करोति सः ॥’ श्राद्धं
विद्विक्तादि सर्वं कार्यमित्यर्थः । न त्विति निषेधोऽन्यसत्त्वे । यत्तु छन्दोग
‘न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वयं क्वचित् । न दीक्षणात्परं यज्ञे
तपश्चरन् ॥ पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् ॥ आशौचं
स्यात् ज्येष्ठं वा ब्रह्मचारिणाम् ॥’ यच्च याज्ञवल्क्यः—‘न ब्रह्मचारिणः कुर्यु
तास्तथा ।’ इति तदप्यन्यसत्त्वे । अन्याभावे तु ब्रह्मचारिणापि कार्यं पूर्वोक्त
वचनात् । ‘आचार्यपितृषुपाध्यायान्निर्हत्यापि व्रती व्रती ॥ संकटात्रं च न
तैः सह संवसेत् ॥’ इति तेनैवोक्तेः । ‘ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्ति
पित्रोः ।’ इति वसिष्ठोक्तेः । अत्राशौचमेकाहं वक्ष्यामः । प्रागुपन

कृतं भवेत् ॥' ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः । तेन ये ब्रह्मचर्य-
नादयः फलसंस्काराः, ते सर्वेषां भवन्तीति सिद्धम् । संसृष्टिनामप्येवम् । तु
विभक्तानां विशेषमाहोशनाः- 'नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश ।
कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ॥' लघुहारीतः- 'सपिण्डीकरणान्तानि यानि
षोडश । पृथक् नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित् ॥ ऊर्ध्वं सपिण्डीव
कुर्युः पृथक्पृथक् ॥' मदनरत्ने- 'विभक्तास्तु पृथक् कुर्युः प्रतिसंवत्सरादिकम्
नैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम् ॥' एतेनाब्दिकादिष्वविभक्तानामनियम इ-
शूलपाणिः परास्तः ॥

दत्तकस्तु जनकस्य पुत्राद्यभावे दद्यान्न तत्सत्त्वे । 'गोत्ररिक्तये जनयितुर्न भजे-
तः । गोत्ररिक्त्योनुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥' इति मनूक्तेः । इदं जनकस्य
विषयम् । एतच्च प्रवरमञ्जरीं कात्यायनलौगाक्षिभ्यां स्पष्टमुक्तम् । 'अथ
क्रीतकृत्रिमपुत्रिकापुत्राः परपरिग्रहेणानार्षेया जातास्ते द्वयामुष्यायणा भवन्ति ।
'शौङ्गशैशिरीणां यानि चान्यान्येवं समुत्पत्तीनि कुलानि भवन्ति ।' इत्यादिना द्वयो-
प्रवरानुक्तवोक्तम् । 'अथ यद्येषां स्वासु भार्यास्वपत्यं न स्याद्वक्त्यं हरेयुः पिण्डं चै-
द्वयोर्यदुभयोर्न स्यादुभाभ्यामेव दद्युरेकस्मिन् श्राद्धे पृथगुद्दिश्यैकपिण्डे द्रावतुर्क-
गृहीतारं चोत्पादयितारं चातृतीयात् पुरुषात्' इति हेमाद्रौ कार्ष्णाजिनिः-
पितृवर्ज्याः स्युस्तावद्भिर्दत्तकादयः । प्रेतानां योजनं कुर्युः स्वकीयैः पितृभिः सह
सहाय तत्पुत्राः पौत्रास्त्वेकेन तत्समम् । चतुर्थपुरुषे छन्दस्तस्मादेषा त्रिपुरुषी-
रणेषु कालेषु विशेषो नास्ति वर्गिणाम् । मृताहे त्वेकमुद्दिश्य कुर्युः श्राद्धं यथा
इति । अस्यार्थमाह हेमाद्रिः- दत्तकादयः जनकपालकयोः कुले प्रेतानां
सपिण्डनं कुर्युः । दत्तकानां पुत्रास्तु पितुर्दत्तकस्य पितृभ्यां जनकपालकाभ्यां
महाभ्यां सपिण्डनं कुर्युः । तेषां पौत्राः स्वपितरं दत्तकेन पितामहेन तज्ज-
सपिण्डयेयुः । चतुर्थोपि तत्कुलस्थ एव । तेषां प्रपौत्रस्तु दत्तकस्य प्रपितामह-
ककुलस्थं चतुर्थं योजयेन्न वा । छन्द इच्छा दर्शमहालयादौ तु द्वयोः पुत्रो-
हयोः प्रपितामहयोर्वा श्राद्धं देयम् । तत्र द्वयोः पित्राद्योः पृथक् पिण्डदानं द्व-
नैको वेति । अत्र केचित्-आवयोरयमिति परिभाष्य यो दत्तस्तस्येदं द्वयो-
श्राद्धम् । यस्त्वपरिभाष्य दत्तः स गृहीतुरेव स पालकायैव दद्यादित्याहुः । अत्र
एव प्रष्टव्याः ॥

वस्तुतस्तु जनकस्य पुत्रपत्न्याद्यभावे दत्तको द्वयोर्दद्यादन्यथा पालकायै
कात्यायनवचनात् । मानवीयमप्येतद्विषयमेव । गोत्रं तु श्राद्धे पा
विवाहादौ तूभयोरित्यादि मत्कृतप्रवरदर्पणे ज्ञेयम् । यस्तु मूल्यक्रीतायां
दास्यां चोत्पन्नः स वीजिन एव दद्यात् । मूल्यं विना स्वयमुपनतायां तु क्षे
तदुक्तं पृथिवीचन्द्रोदये कौर्मै—‘अनियोगात्सुतो यस्तु शुल्कतो जायते ति
द्याद्बीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततोऽन्यथा ॥’ इति । क्षेत्रजादेर्विशेषस्तु कलौ
न्नोच्यत इति दिक् । जारजानां विशेषमाहापरार्के नारदः—‘जायंते त्व
मेकेन बहुभिस्तथा । अरिक्थभाजस्ते सर्वे वीजिनामेव ते सुताः ॥ दद्युस्ते
पिण्डं माता चेच्छुल्कको हता । अशुल्कोपहतायां तु पिण्डदा वोदुरेव ते’ ॥

धर्मार्थं श्राद्धकरणे फलमाह चन्द्रिकायां शातातपः—‘प्रीत्या श्राद्धं
सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम् । एवं कुर्वन्नरः सम्यङ् महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ ग
तत्रैव ब्रह्मवैवर्ते—‘आत्मजो वायवान्योपि गयाशीर्षं यदा तदा । यन्नाम्ना
पिण्डं तन्मयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥’ एतच्च यदा फलभ्रमार्थिना द्विस्त्रिर्वा क्रियते
श्राद्धवर्ज्यं कुर्यात् । तस्य प्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात् । तस्य च जातत्वादिति
वस्तुतस्तु संन्यासिश्राद्धवदत्रापि सर्वं कार्यम् । साङ्गेधिकारादिति युक्तं
संन्यस्तपित्रादिस्तु पितः पित्रादिभ्यः सर्वश्राद्धेषु दद्यादित्युक्तं प्राक् ।
जीवत्पितृकश्राद्धे ॥

अत्र स्त्रीशूद्राणां श्राद्धं मंत्रवर्ज्यं तूष्णीं भवति । ‘स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं त
सुतस्य च । प्राग्भिजाश्च व्रतादेशात्ते च कुर्युस्तथैव तत् ॥’ इति हेमाद्रौ
चिवचनात्सिद्धम् । ‘अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मंत्रवर्जितः । अम
शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते’ ॥ इति ब्राह्मोक्तेश्च । गृह्यते संबध्यते । अ
प्रकरणे पाठोपि परिभाषात्वान्न प्रकरणेन संकोचो युक्तः । तेन शूद्रस्य स्नानद
विप्रेण मन्त्रपाठः कार्यः । अमन्त्रश्चेति विशेषणात् । स्त्रिया अपीति शूलपा
यत्तु तेनोक्तं मन्त्रजन्यनियमादृष्टसिद्धिस्तु नमस्कारेण अनुमतोऽस्य नमस्कारो
इति गौतमोक्तेरिति तन्न । दृष्टद्वारैव हि तत्प्राप्तिर्न स्वातन्त्र्येण । अन्यथ
पूतेऽप्यवघातजन्यादृष्टार्थं सोपि क्रियेतेति किञ्चिदेतत् । तेन ‘पितृणां नाम
इत्यादौ यत्र द्विजानामपि नाममन्त्र उक्तः तत्र प्रतिप्रसवमात्रार्थं युक्तम् । न
पनादावपि । अत्र केचित् । वैदिकमन्त्रो विप्रस्य, पौराणस्तु शूद्रैः पठनीयः

तत्रैव पाद्मोक्तेरित्याहुः । गौडाप्येवं तत्र । 'नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषल-
 न्निधौ ।' इति कौर्मे पुराणनिषेधेन वेदस्य दूरापास्तत्वात् । 'अध्येतव्यं
 वैश्येन क्षत्रियेण च । श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन ॥ श्रौतं
 वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम । तस्माच्छूद्रैर्विना विप्रं न श्रोतव्यं कदाचन
 तत्रैव पुराणाधिकारे भविष्योक्तेश्च । एतेन 'नाध्येतव्यम्' इति निषे-
 तपुराणपरः । इति श्रीदत्तादिमतमपास्तम् । तेन पौराणमन्त्राणामेव वि-
 न वैदिकानामिति सिद्धम् । द्विजस्त्रियस्तु संकल्पमात्रं स्वयं कृत्वा वैदिकमं-
 ब्राह्मणद्वारा कारयेयुरिति प्रयोगपारिजातः । अत-
 द्विजस्त्रीणां विशेषः । मित्यकृतविवाहस्त्रीपरमिति हेमाद्रिराह । 'अनुपनीत-
 मन्त्रयुक्तं सर्वं स्वयमेव कुर्यात्' इत्युक्तं । १६ । यत्तु 'प्राक् द्विजाश्च व्रता-
 तदशक्तविषयमचूडविषयं वा इति दिक् ॥

शूद्रस्य तु सदा मन्त्राद्वैव । 'सदा चैव तु शूद्राणामामन्त्राद्वै विधी-
 सुमन्तूक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्येपि-एवं शूद्रोपि सामान्यं वृ-
 सर्वदा । नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवत्सदा ॥' तत्रैव वृद्धपराश-
 नेन तु शूद्रस्य तूष्णीं तु द्विजपूजनम् । कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य सजातीना-
 स एव 'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्कमुच्छिष्टमुच्यते ॥' हेमाद्रौ-भविष्ये-
 धर्मज्ञा यदि शूद्राः प्रकुर्वते । अग्नौ करणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते ॥
 कर्तव्यं यथा शूद्रेण तच्छृणु । देवानां देवनाम्ना तु पितॄणां नामगोत्रतः ॥
 त्रिर्वपेद्वीर नामतो गोत्रतस्तथा ।' शूद्राणां गोत्राभावेपि काश्यपं गोत्रं ज्ञेय-
 दाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः' इतिः श्रुतेः । गोत्रनाशे तु काश्यपः' इति व्या-
 श्रेति हेमाद्रिः ॥ एवमन्यत्र गोत्राज्ञाने तर्पणादिषु च ज्ञेयम् । तत्रैव
 'शूद्रस्तु गृहपाकेन न पिण्डान्निर्वपेत्तथा । सक्तुमूलं फलं तस्य पायसं
 तम् ॥' गौतमः- 'अनुमतोस्य नमस्कारो मन्त्रः' इति । 'देवताभ्यः

१-वस्तुतस्तु द्विजस्त्रीणां कारणे मन्त्रपठनाप्रसक्तेः । 'ते च-' इत्याद्यमन्त्रकत्वं
 करणपक्षोपि वाच्यः । तत्रापि वेदश्रवणेऽधिकारात्समन्त्रकत्वकथनं पाठबोधनेनैवार्थवत्
 स्वशक्तपरः । इति टीका । वस्तुतस्तु पूर्वोत्तरमीमांसयोः शूद्राणां वेदोच्चारणश्रवणाना-
 स्त्रीणामनधिकारबोधनस्याभावात् । 'जातिं तु वादरायणोऽविशेषात् । तस्माद्व्यापि
 पूर्वोक्तमन्त्रपठनेन मन्त्र-पठनं त्रैविध्यमिति तत्र त्रैविध्यमेव

इत्ययं नमस्कारमन्त्र इति केचित् । विज्ञानेश्वरोप्येवमाह । हेमाद्रिस्तु-‘शूद्रे मन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः ।’ इति मात्स्ये मन्त्रनिषेधानाममन्त्रेणेत्या पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे-‘राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः । व्यसनेषु सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥’ यत्तु भारते राजधर्मेषु-‘यवनाः किराता गाराश्चीनाः शवरवर्वराः । शकास्तुषाराः कंकाश्च पल्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः ॥’ इत्यु-‘ब्रह्मक्षेत्रे प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः । कथं धर्माश्चरिष्यन्ति सर्वे विप्रे-सिनः ॥’ इति चोक्त्वा ‘वेदधर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते । पितृयज्ञास्तथा वृ-प्रपाश्च शयनानि च । दानानि च यथाकालं द्विजेभ्यो विसृजेत्सदा ॥’ तथा-‘दक्षि-सर्वयज्ञानां दातव्या भूतिमिच्छता । पाक्यज्ञा महार्हाश्च कर्तव्याः सर्वदस्युभि-इति म्लेच्छादीनां श्राद्धविधानम् । तदपि सजातीयभोजनद्रव्यदानादिपरं न तु श्रा-रमिति ॥ ॥ इति श्रीनारायणभट्टसूरिसूनु रामकृष्णभट्टात्मजकमलाक-द्रकृते निर्णयसिन्धौ श्राद्धाधिकारिनिर्णयः ॥

अथ पितरः । हेमाद्रौ मात्स्यदेवलौ-‘नामगोत्रं पितृणां तु प्रापकं हव-व्ययोः । अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः ॥ नाममन्त्र-श्राद्धपितरः । दादेशा भवान्तरगतानपि । प्राणिनः प्रीणयन्त्येव तदाहारत्वमागत-

देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः । तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छतिष्ठ-गांधर्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत् । श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्युपतिष्ठ-पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम् । दनुजत्वे तथा मद्यं प्रेतत्वे रुधिरोदक-मनुष्यत्वेऽन्नपानादिनानाभोगकरं भवेत् ॥’ अत्र पित्रादिशब्दैर्जनकादीनामेव देव-मुच्यते । न वस्वादीनाम् । ‘असवेतत्त इति यजमानस्य पित्रे’ इति शतपथश्रु-‘यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निवाय’ इति विष्ण्वादिस्मृतेश्च । यत्तु म-वलौ-‘वसवः पितरो ज्ञेया रुद्रा ज्ञेयाः पितामहाः । प्रपितामहास्तथादित्याः-रेषा सनातनी ॥’ यच्च याज्ञवल्क्यः-‘वसुरुद्रादिति सुताः पितरः श्राद्धदेवताः । तदभेदज्ञानार्थम् । यानि तु हेमाद्रौ नन्दिपुराणे-‘विष्णुः पितास्य जगतो दिव्यो-स एव च । ब्रह्मा पितामहो ज्ञेयो ह्यहं च प्रपितामहः ॥’ इति । यच्च भविष्ये-‘रुद्रः स्वयं ज्ञेयः प्रद्युम्नश्च पिता स्मृतः । संकर्षणस्तज्जनको वासुदेवस्तु तत्पिता ॥ कर्ता । यत्तु तत्रैव-‘प्रथमो वरुणो ज्ञेयः प्राजापत्यस्तथापरः ॥ तृतीयोऽग्निः स्मृतः ।

प्रकीर्तिताः ॥ सुकालिनस्तु शुद्राणां व्यायामा म्लेच्छान्त्यजातिषु ॥' अत्रावा
पित्रादयः समुच्चयेन विकल्पेन वा यथाचारं तत्तदेवतारूपेण वाच्याः ।
हेमाद्र्यादयः ।

हेमाद्रौ ब्राह्मे-‘पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुकम् । मातामह्यं न
पितृहा स प्रजायते ॥’ धौम्यः-‘पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्
शेषेण कर्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत् ॥’ अस्यापवादमाह कात्यायनः-‘कर्षू-
मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं तु शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थि-
कर्षूसमन्वितं सपिण्डीकरणम् । दर्शादौ सपत्नीकानामेव देवतात्वम् । ‘स्वेन भ-
श्राद्धं माताः भुङ्क्ते सुधासमम् । पितामही च स्वेनैव तथैव प्रपितामही ॥’ इति
वोक्तेः । चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते-‘क्षयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति
क्रिया । केचिदिच्छन्ति नारीणां पृथक् श्राद्धे महर्षयः ॥ अन्वष्टकासु वृद्धौ च
च क्षयेहनि । अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥’ इति कात्यायन-
अस्य निर्भूलतां वदन्तो गौडास्त्वज्ञा एव । अत्र भाग इत्यध्याहारः ।
सपतिकार्ये मात्रे इति प्रयोगापत्तेः । अत्र मातृशब्दो ह्यनन्यामेव मुख्यः । तेन
मातृभ्यो न दद्यात् । एवं पितामह्यादिशब्दैः पितृजनन्यादय एवोच्यन्ते इति
त्नीभ्यो न देयम्’ इति हेमाद्रिः । ‘कारुण्येन तु महालयादौ देयम्’ इति स-

अथ विश्वेदेवाः । हेमाद्रौ शङ्खवृहस्पती-‘इष्टिश्राद्धे ऋतू दक्षौ
नान्दीमुखे वसू । नैमित्तिके कामकालौ काम्ये च धूरिलौचनौ ॥ पुरुरवार्द्रवौ चैव

विश्वेदेवाः ।

समुदाहृतौ ॥’ तत्रैव-‘उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विज-
अयमुच्चारणीयस्तैः श्लोकः श्रद्धासमन्वितैः ॥ आगच्छन्तु म-

विश्वेदेवा महाबलाः । ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥’ इति । ‘इ-
प्रति रुचिः’ इत्युक्तम् । इति कल्पतरुः । आधानादिकर्माङ्गमित्यन्ये । नै-
कमेकोद्दिष्टम् । ‘एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते ।’ इति भविष्यो-
एतद्यद्यपि ‘एकोद्दिष्टं देवहीनम्’ इति तत्र विश्वेदेवनिषेधस्तथापि नवश्राद्धे द्वा-
सिके च कामकालौ ज्ञेयौ । नवश्राद्धं दशाहानि नवमिश्रं तु षडृतूत् । अतः परं प-
त्रिविधं श्राद्धमुच्यते ॥ यस्मिन्नेवं पुराणे वा विश्वेदेवा न लेभिरे । आसुरं तद्द-
वृषलं मन्त्रवर्जितम् ॥’ इति बह्वृचपरिशिष्टात् । एतच्च बह्वृचानामेव,
वोक्तेः । अन्येषां तु-‘नात्रविश्वेदेवाः’ इति कात्यानोक्तेस्तन्निषेध एवेति प-

यद्यपि सपिण्डीकरणंशत एकोद्दिष्टत्वं तथापि 'सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं नियोज्यम्' इति वचनात्तत्परत्वम् । हेमाद्रावादित्यपुराणे—'विश्वेदेवौ क्रतुर्दक्षः सर्वास्ति कीर्तितौ । नित्ये नान्दीमुखे श्राद्धे वसुसत्यौ च पैतृके ॥ नवान्नलम्भने देवौ कालौ सदैव हि । अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ ॥ पुरुरवार्द्रवौ चैव देवौ तु पार्वणे ॥' कचिद्विश्वेदेवापवादमाह हेमाद्रौ शातातपः—'नित्यं श्राद्धं स्यादेकोद्दिष्टं तथैव च । मातुः श्राद्धं च युग्मैः स्यादैदं प्राङ्मुखैः पृथक् ॥ यो देवपूर्वाणि श्राद्धान्यन्यानि यत्नतः ॥' नान्दीश्राद्धे भिन्नप्रयोगपक्षे मातुः श्राद्धमिति हेमाद्रिः ॥

अथ विप्राः । ते चोत्तममध्यमाधमभेदेन त्रिविधाः । तत्राद्याः । अत्र मध्वंश्लोकाः—'त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुश्च बह्वृचोप्यार्थवर्णो याजुषसामगौ च । षडङ्गसुपुर्णवेत्ताऽप्यथर्वशीर्ष्णोऽध्ययने रतश्च ॥ शतायुवेदार्थविदौ प्रोक्तमिदं विप्रैः । स्याद्ब्रह्मचारी च तथाग्निचिच्च । सीददृत्तिः सत्यवाक्पूरुषैः । तापित्रोः पञ्चभिः ख्यातवंशः ॥ पत्नीयुक्तोज्येष्ठसामा पुराणवेत्ता पुत्री चेतिसप्तपञ्चभिः । योगी भिक्षुः सामगो ब्रह्मवेत्ता पश्चाग्निश्च श्रोत्रियस्तत्सुतो वंशधरश्च । शंभुध्यायी श्रीशपादाब्जसेवी पान्थश्चैते तूत्तमाः संप्रदिष्टाः । भिक्षुर्योगी एते त्वलभ्या भाग्याल्लब्धाश्चेत्तदा भोजनीयाः । श्राद्धे विप्रेषूपविष्टेषु पश्चात्संप्राप्तं द्विप्रपङ्क्तौ तु भोज्याः ॥' अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ तत्रैव नारदः—'वै यतीननादृत्य भोजयेदितरान् द्विजान् । विज्ञानन्वसतो ग्रामे कव्यं तत्र राक्षसान् ॥' दीपकलिकायां दक्षः—'विना मांसेन मधुना विना दक्षिणयाशिः परिपूर्णं भवेच्छ्राद्धं यतिषु श्राद्धभोजिषु ॥' एतच्च ज्ञानिविषयम् । 'त्रिणाचिकेतसुपुर्णो यजुर्वेदकदेशौ तद्रतेन तदध्यायिनौ च यस्य सप्त पूर्वं सोमपाः त्रिसुपर्ण' बोपदेवः । सत्रिमधुर्ऋग्वेदैकदेशस्तदध्यायी । केचिन्नाचिकेतं चयनं त्रिकृतवानित्येवमाहुस्तद्देमाद्रिविरुद्धम् । हेमाद्रौ गौतमः—'युवभ्यो दानं प्रथमं पितृवयसः' इत्येवमात्स्ये मनुः—'यश्च व्याकुरुते वाचं यश्च मीमांसतेऽध्वरम् । सामस्वरविधिज्ञश्च पावनपावनः ॥' कौर्म—'असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च । असंबन्धी च विप्रब्राह्मणः श्राद्धसिद्धये ॥' गारुडे—'श्राद्धेषु विनियोज्यास्ते ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमये योनिर्गोत्रमन्त्रान्तेवासिसंबन्धवर्जिताः ॥' मनुः—'न मित्रं भोजयेच्छ्राद्धे कार्योस्य संग्रहः । नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं तु श्राद्धे निमन्त्रयेत् ॥ द्वयोर्भ्रात्रोः

भोजनं निषिद्धम् । 'पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निराग्निं गुर्विणीपतिम् ॥ सगोत्रप्रवरं
पु परिवर्जयेत्' इति श्राद्धदीपकलिकायां जातूकण्योक्तेः ।

अथ मध्यमाः । हेमाद्रौ कौर्मगाग्र्यौ- 'नैकगोत्रे हविर्दद्याद्यथा
हविः । अभावे ह्यन्यगोत्राणामेकगोत्रांस्तु भोजयेत् ॥ ' अत्र केचित्स्वशाखी-
नाहुः पठन्ति च । 'निमन्त्रयीत पूर्वद्युः स्वशाखीयान् द्वि-
नध्यमविप्रनिर्णयः । स्वशाखीयद्विजाभावे द्विजानन्यान्निमन्त्रयेत् ॥' इति । इदं

त्वाद्धेमाद्रिणा दूषितत्वाच्चोपेक्ष्यम् । मनुरपि- 'यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे ब्राह्म-
गम् । शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं वा समाप्तिगम् ॥ एषामन्यतमो यस्य सु-
मर्चितः । पितृणां तस्य दृष्टिः स्याच्छाश्वती सातपौरुषी ॥'

अत्र मामकः श्लोकः- "मातामहो मातुलभागिनेयदौहित्रजमातृगुरु-
ऋत्विक् च याज्यश्वशुरौ स्वन्धुश्याला गुणाढ्यास्त्वनुकल्पभूताः" ॥ वन्धु-
स्यपितृष्वसमातुलपुत्रा इति बोपदेवः । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ।
याद्यतिक्रमे दोष एव । 'सप्त पूर्वान् सप्त परान् पुरुषानात्मना सह । अतिक्र-
तान्नरके पातयेत् खग ॥ संवन्धिनस्तथा सर्वान् दौहित्रं विद्वपति तथा । भा-
शेषेण तथा वन्धुं खगाधिप ॥' इति मदनरत्ने भविष्योक्तेः । अत एव
लक्यः- 'ब्राह्मणप्रतिवेश्यानमेतदेवानिमन्त्रणे ।' इति गुण्यातिक्रमे दशपणं
आसन्नमात्रपरमिदम् । मूर्खे तु न दोषः । 'ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे चै-
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहि भस्मानि हूयते ॥' इति कात्यायनोक्तेः
दोषः । 'अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत् ।' इति मनूक्तेः
अत्रिः- 'षडभ्यस्तु पुरुषेभ्योर्वागश्राद्धेयास्तु गोत्रिणः ॥ षडभ्य-
भोज्याः श्राद्धे स्युर्गोत्रजा अपि ॥' एतच्च ब्राह्मणालाभे अपि
असंभवे हेमाद्रौ गौतमः- 'शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च भोजयेद्ब्राह्म-
गुणवतः ।' आपस्तम्बः- 'ब्राह्मणान् भोजयेद्योनिगोत्रमन्त्रान्तेवास्यस्य
गुणहान्यां तु परेषां समुदितः सोदर्योपि भोजयितव्यः ।' एतेनान्तेवासिनो
इति । अत्र विशेषमाहात्रिः- 'पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाथ सान्नि-
परस्परमर्घ्याः स्युर्न श्राद्धे ऋत्विजस्तथा ॥ ऋत्विक्पुत्रादयोप्येते सकुल-

अथ वज्र्याः । अत्र मामकाः श्लोकाः ॥ 'वज्र्यान् प्रवक्ष्ये त्वथ रोगि

वज्र्यविप्रानिर्णयः । धिकाङ्गान् कितवान् कृतवान् । नक्षत्रशास्त्रेण च जीवमानान्

वृत्त्यापि च राजभृत्यान् ॥ संगीतकायस्थकुसीदवृत्त्या वेद
कवित्ववृत्त्या । देवार्चनेनापि च जीवमानान् स्वाध्यायदाराग्निमुताक्षकाणान् ।
खल्वाटकुनख्यधर्मिनटांश्च पौनर्भवकृष्णदन्तान् । अगारदाही गरदः समुद्र
कुण्डाश्यथ कूटकारी ॥ वालांश्च योध्यापयते स्वपुत्रादवाप्तविद्यस्त्वथ कुण्ड
अग्रेदिधिष्वाः पतिरस्त्रकर्ता सोमक्रयी तैलिककेकराक्षौ ॥ युद्धाचार्यः पक्षिणां
स्रोतोभेत्ता वृक्षसंरोपकश्च । मेषाणां वा माहिषाणां च पृष्ठ्या स्वीयस्त्रीषु
जारैः ॥ जीवत्यधेनुश्च दत्तानुयोगाद् द्रव्यप्राप्त्या वेदमुद्धाटयन्तः ॥ ग्रामया
शविऋयिस्तेनशिल्पिपितृवादकारकान् । अर्थकामरतशूद्रयाजकश्मश्रुहीनजटिमु
णान् । यस्य चैव गृहिणी रजस्वला स्वार्थपाककरशापदायकान् । क्लीवकुष्ठ्यति
क्षणान् कुब्जवामनमृषामिशापिनः ॥ पुत्रहीनमथ कूटसाक्षिणं प्रेतहारिकमयाज्य
स्वात्मदातृपरिवेत्तयाजकस्तेनहिंसकमुखान् विवर्जयेन् ॥ ' अत्र मूलं हेमाद्रौ
चन्द्रोदये च ज्ञेयम् । भारते दानधर्मेषु श्राद्धवज्र्यविप्राधिकारे । ' कित
यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः । ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायकः सर्वविक्रयी ॥
राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः । पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥
स्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति । पर्वकारश्च सूची च मित्रधुक पारदारिक
तानामुपाध्यायः काण्डपृष्ठस्तथैव च । श्वभिश्च यः परिक्रामेद्यः शुना दष्ट
परिवित्तिस्तथा स्तेनो दुश्कर्मा गुरुतल्पगः । कुशीलको देवलको नक्षत्रैर्यश्च
ईदृशा ब्राह्मणा ज्ञेया अपांक्त्या युधिष्ठिर ॥ ' तथा—'ऋणकर्ता च यो
वार्धुषिको नरः ॥ ' काण्डपृष्ठः स्वशाखां त्यक्त्वा परशाखयोपनीतस्तद
क्षत्रियवैश्यवृत्तौ नारदस्तु—'तस्यामेव तु यो वृत्तौ ब्राह्मणो वसते रसात्
पृष्ठश्च्युतो मार्गात्सोपांक्त्यः प्रकीर्तितः ॥ ' इत्याह । हारीतः—
स्वयंदत्ता ये चैते क्रीतकाः सुताः । ते सर्वे मनुना प्रोक्ताः काण्डपृष्ठा न संशय

अन्येपि हेमाद्रौ मात्स्ये—'त्रिशंकून् वर्वरानन्धान् चीनद्रविडकौंकणान्
टकांस्तथाभीरान् कालिङ्गांश्च विवर्जयेत् ॥ ' तत्रैव सौरपुराणे—'अङ्गवद्
सौराष्ट्रान् गुर्जरांस्तथा । आभीरान् कौंकणांश्चैव द्राविडान् दाक्षिणायनान् ॥
मागधांश्चैव ब्राह्मणांस्तु विवर्जयेत् ॥ ' चन्द्रिकायां यमः—'काणाः कुब्जाः

यां कात्यायनः-‘द्विर्नम्रः कीलदुश्चर्मा शुक्लोतिकपिलस्तथा । छिन्नोष्ठश्छिन्न
नैव केतनमर्हति ॥ ’ द्विर्नम्रः पित्रोर्वशे त्रिपुरुषं विच्छिन्नवेदाग्निः । हेमाद्रौ म
‘अविद्धकर्णः कृष्णश्च लम्बकर्णस्तथैव च । वर्जनीयाः प्रयत्नेन ब्राह्मणाः
र्मणि ॥ ’ ब्राह्मे-‘मूकश्च पूतिनासश्च छिन्नांगश्चाधिकांगुलिः । गलरोगी च
स्फुटितांगश्च सज्वरः ॥ षण्ढतूवरमन्दांश्च श्राद्धेष्वेतान्विवर्जयेत् ॥ ’ लम्बकर्ण
तत्रैव गोभिलः-‘हनुमूलादधः कर्णौ लम्बौ तु परिकीर्तितौ । द्व्यंगुलौ त्र्यंगुलौ
विति शातातपोब्रवीत् ॥ ’ चन्द्रिकायां यमः-‘द्व्यंगुलातीतकर्णस्य भुञ्जते
न तु ॥ ’ षण्ढश्चात्र चन्द्रिकोक्तः सप्तविधो ग्राह्यः । यथा ‘षण्ढको वातज
षण्ढः क्लीबो नपुंसकः । कीलकश्चेति सप्तैवं क्लीबभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ’ पराशर
ब्रीये तु चतुर्दशविधा उक्ताः । तेषां स्वरूपाणि तत्रैव ज्ञेयानि ।

चन्द्रिकायां शातातपः-‘अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्ये यजनन्त्यल्पदक्षिणैः । तेषां
भोक्तव्यमपांक्तास्ते प्रकीर्तिताः ॥ ’ एतच्च शक्तौ सत्याम् । अपराकं भारते-
कितवस्तेनः प्राणिविक्रयकोपि वा । पश्चाच्चेत्पीतवान् सोमं स निकेतनमर्हति ॥ ’
दापकालिकायां यमः-‘अपत्नीकश्च वज्र्यः स्यात्सपत्नीकोऽप्यनग्निः ॥ ’
श्वलायनः-‘प्रतिमाविक्रयं यो वै करोति पतितस्तु सः । जीवनाथं परास्थीनि
तार्थं प्रयाति यः ॥ मातापित्रोर्विना सोऽपि पतितः परिकीर्तितः ॥ ’ तत्रैव जातू
‘यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वा वृषलीपतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च
षम् ॥ पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् ॥ सगोत्रप्रवरं चैव श्राद्धेषु
येत् ॥ ’ बृहन्नारदीये-‘शङ्खं चक्रं मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा । स शू
ष्कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥ शंखचक्राद्यंकनं च गीतनृत्यादिकं तथा । एव
धर्मो न जातु स्याद् द्विजन्मनः ॥ ’ तेन ये तप्तमुद्रादिविधयस्ते शूद्रविषयाः
पृथ्वीचन्द्रोदये-‘शिवकेशवयोरंकाञ्च शूलचक्रादिकान् द्विजः । न धारयेत्
वैदिके वर्तमानि स्थितः ॥ ’ इत्याश्वलायनोक्तेश्च । नृत्यं चोदराद्यर्थं निर्
श्रीधरस्वामी । अन्येऽपि निषेधा निबन्धेषु ज्ञेया इति दिक् ॥

अत्र विप्राणां ग्राह्यत्वोक्त्यैव तद्वज्र्यानां निषेधे सिद्धे पुनर्वज्र्यपरिगणनं निर्
निर्गुणप्राप्त्यर्थमिति विज्ञानेश्वरः । कुष्ठिकाणादेरपवादो हेमाद्रौ व
‘अपि चेन्मन्त्रविद्युक्तः शरीरैः पङ्क्तिदूषणैः । अदूष्यं तं यमः ग्राह्यं पङ्क्तिपा
सः ॥ ’ कचिद्विप्राणां जातिमात्रेण ग्राह्यत्वमुक्तम् । चन्द्रिकायामाग्नेये-‘स

निर्गुणा अपि ते एव भोज्या इति हेमाद्रौ । अक्षय्यवटश्राद्ध एव तन्नियमो न
त्रेति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः । पृथ्वीचन्द्रोदयेपि पाद्मे-
ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन । अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरब्रवीत् ॥' स्क
पि-‘ब्राह्मणान्न परीक्षेत तीर्थे क्षेत्रनिवासिनः । मनुः-‘न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे क
धर्मवित् । पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत् प्रयत्नतः ॥’ असंभवपरमेतदिति मेध
थिः । हेमाद्रौ व्यासः-‘गायत्रीसारमात्रोपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः । नायन्त्रित
वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ काणाः कूटाश्च कुब्जाश्च दारिद्र्या व्याधितास्तथा । सर्वे
नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः ॥’

अथ विप्रनिमन्त्रणम् । चन्द्रिकायां वाराहे-‘वस्त्रशौचादि कर्तव्यं श्वः

स्मीति जानता । स्थानोपलेपनं कृत्वा ततो विप्रान्निमन्त्रयेत् ॥
श्राद्धे विप्रनिमन्त्रणम् ।

‘काष्ठं च विट्टजेद्ब्रह्मचारी शुचिर्भवेत् ॥’ तत्रैव प्रचेताः-‘व
चरणं विप्रः सव्यं वै क्षत्रियस्तथा । पादावादाय वैश्यो द्वौ शूद्रः प्रणतिपूर्वक
बृहस्पतिः-‘उपवीती ततो भूत्या देवार्थं तु द्विजोत्तमान् । अपसव्येन पित्र्येथ
शिष्योथवा सुतः ॥ प्रचेताः-‘सवर्णं प्रेषयेदाप्तं द्विजानां तु निमन्त्रणे ॥’ पृथ
न्द्रोदये स्कान्दे-‘राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः । व्यसनेषु च सर्वेषु
विप्रेण कारयेत् ॥’ चन्द्रिकायां यमः-‘अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन नि
तम् । तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् ॥’ तत्रैव पैठीनसिः-‘सप्त पञ्च
श्रोत्रियान्निमन्त्रयेत् ॥ आश्वलायनसूत्रेपि-‘एकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रीन्वा
फलभूयस्त्वम् ॥’ द्वाविति वृद्धिश्राद्धे । गौतमः-‘नवावरान् भोजयेदयुजो वा यथोत्सा
याज्ञवल्क्यः-‘द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा । मातामहानामप्येवं त
वैश्वदेविकम् ॥’ दीपकालिकायां पराशरः ‘संपत्तावर्थापात्रानामेकैकस्य त्रयस
पित्रादेर्ब्राह्मणाः प्रोक्ताश्चत्वारो वैश्वदेविके ॥’ वृद्धयाज्ञवल्क्यः-‘दशैकं पञ्च वा
पार्वणे विनियोजयेत् ॥’ अत्र वैश्वदेवे द्वौ चतुरो वोपवेश्य पित्रादीनामेकैकस्य
एकं त्रीन पञ्च सप्त नव वोपवेशयेदिति निक्षुण्णोर्थः । मनुः-‘द्वौ दैवे पि
त्रिनेकैकमुभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्धोपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥ सत्क्रियां देश
च शौचं ब्राह्मणसम्पदम् । पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥’ पृथ
न्द्रोदये शातातपः-‘द्वौ दैवेथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत् । पित्र्ये तूदङ्
स्त्रीश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान् ॥’ अत्यशक्तौ हेमाद्रौ देवलः-‘एकेनापि हि

षट्पिण्डं श्राद्धमाचरेत् । षडर्घ्यान् दापयेत्तत्र षड्भ्यो दद्यात्तथा हविः ॥'
भिलः-‘यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छन्दोगं तत्र भोजयेत् । ऋचो यजूंषि सामानि
तत्र विद्यते ॥’

अत्र वैश्वदेवे विशेषमाह तत्रैव वसिष्ठः-‘यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र
भवेत् । अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च ॥ देवतायतने कृत्वा ततः
समाचरेत् । प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥’ एतच्च सपिण्डीकरण
ज्ञेयम् । ‘नै त्वेवैकं सर्वेषां काममनाद्ये’ इत्याश्वलायनोक्तेः । अस्यार्थ
नारायणवृत्तौ-‘आद्यं सपिण्डीकरणं तद्वर्ज्येषु श्राद्धेषु कामं त्रयाणामेकं भोज
सपिण्डीकरणे तु नियतं त्रिभिर्भवितव्यमिति । अनाद्ये पार्वणवर्जिते वा । अ
आमहेमश्राद्धादौ वा । अन्नाभावे चेति व्याख्यान्तरं तत्रैव ज्ञेयम् ।’ कारिक
‘देवे पित्र्येऽथर्वैकैकं सपिण्डीकरणं विना ।’ इति । अत्रैकविप्रे साग्रेर्विशेषमाह
चन्द्रोदये प्रचेताः-‘एकस्मिन् ब्राह्मणे दैवे साग्रेरग्निर्भवेत्सदा । अनग्नेः कु
स्याच्छ्राद्धकर्मणि सर्वदा ॥ सर्वथा विप्रालाभे तत्रैव हेमाद्रौ च सत्यव्रतः-
य दर्भनिचयमासनेषु समाहितः । प्रैवानुप्रेषसंयुक्तं सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥’
प्राप्त्यभावात्सत्रे इव ऋत्विक्कार्यं यजमानविधौ न दक्षिणा’ इति केचित् तत्र ।
र्थायाः दक्षिणायाः प्राप्तेः । ‘सर्वं तच्चिजटे तुभ्यं यच्च श्राद्धमदक्षिणम्’ इति पा
‘विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेदक्षिणार्धहरो भवेत् । स्वयं चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपाद
इति छन्दोगपरिशिष्टाच्च । एवं यतिश्राद्धेऽपि कात्यायनः-‘यज्ञवस्तुनि
च स्तम्भे दर्भवटौ तथा । दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥’ मातृश
विप्रालाभे सुवासिन्योऽपि भोजनीया इत्याहापराकं वृद्धवसिष्ठः-‘मातृश
विप्राणामलाभे पूजयेदपि । पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोष्टौ कुलोद्भवाः ॥’ इति
विति वृद्धिश्राद्धविषयम् ।

पात्रे उत्तरखण्डे-‘सकृदभ्यर्चितं लिङ्गं शालग्रामशिलां च यः । पीठे न
यित्वा तु श्राद्धं च कुरुते नरः ॥ पितरस्तस्य तिष्ठांत कल्पकोटिशतं वि
चन्द्रिकायां मात्स्ये-‘पठन्निमन्य नियमाञ्च श्रावयेत्पैतृकान् बुधः । अ
शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः ॥ भवितव्यं भवद्भिश्च मयां च श्राद्धकारिणा ।
मनुः-‘सर्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्जितैः ।’ भवितव्यं भवद्भिर्नः श्वोभूते
कर्मणि ॥’ इति तत्प्रवेद्यनिमन्त्रणपरं न तदहः । तत्रैव देवलः-‘असंभवे

ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्रयेत् । अज्ञातीनसमानार्थानियुग्मानात्मशक्तितः ॥' कात्यायनः
'अनिन्द्येनामन्त्रितो नापक्रामेत्केतनं गृह्यशक्तः ।

अथ श्राद्धकर्तृभोक्तृनियमाः । तत्र निमन्त्रितविप्रत्यागेऽपराकें यमः—

श्राद्धकर्तृभोक्तृ- तनं कारयित्वा तु योतिपातयति द्विजम् । ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्र-
नियमाः । च जायते ॥ आमन्त्र्य ब्राह्मणं यस्तु यथान्यायं न पूजयेत्

अतिकृच्छ्रासु घोरांसु तिर्यग्योनिषु जायते ॥' प्रमादात्यागे तु हारी
'प्रमादाद्विस्मृतं ज्ञात्वा प्रसाधैनं प्रयतनतः । तर्पयित्वा यथान्यायं सर्वं
फलमश्नुते ॥' प्रमादाभावे तु नारायणः—'एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते ब्राह्मणो नि-
शुचिः ॥ यतिचान्द्रायणं कृत्वा तस्मात् पापात्प्रमुच्यते ॥' यमः—'आमन्त्रितस्तु
विप्रो भोक्तुमन्यत्र गच्छति । नरकाणां शतं गत्वा चांडालेष्वभिजायते ॥'
देवलः—'पूर्वं निमन्त्रितोऽन्येन कुर्यादन्यप्रतिग्रहम् । भुक्ताहारोथवा भुङ्क्ते
तस्य नश्यति ॥' यदि विप्रो विलम्बते तदोक्तमादित्यपुराणे—'आमन्त्रितश्चि-
कुर्याद्विप्रः कदाचन । देवतानां पितॄणां च दातुरन्नस्य चैव हि ॥ चिरकारी
लोही पच्यते नरकाग्निना ॥' पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्य-
याति दुर्मतिः । भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं पांशुभोजनाः ॥ आमन्त्रितस्तु
श्राद्धे हिंसां वै कुरुते द्विजः । पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति रुधिराशनाः ॥
न्त्रितस्तु यो विप्रो भारमुद्वहते द्विजः । पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति स्वेदभोज-
निमन्त्रितस्तु यो विप्रः प्रकुर्यात्कलहं यदि । पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति मलभोज-

शंखः—निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे मैथुनं सेवते द्विजः । श्राद्धं दत्त्वा च भुङ्क्ते
युक्तः स्यान्महतैनसा ॥' मैथुनं ऋतावापि निषिद्धम् । 'ऋतुकाले नियुक्तो वा
गच्छेत् स्त्रियं क्वचित् । तत्र गच्छन्नवाप्नोति ह्यनिष्ठानि फलानि तु ॥' इति तत्र
वीये च वृद्धमनूक्तेः । 'श्राद्धं करिष्यन् कृत्वा वा भुक्त्वा वापि निमन्त्रितः । उ-

१ अनिन्द्येन भोज्यान्नेन नापक्रामेत् न नाभ्युपगच्छेत् किन्तु अभ्युपगच्छेदेव । केतनं
शक्तश्चेत् अनिन्द्येनामन्त्रितेन शक्तेन न प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति गौतमः । तेन निन्द्येनामन्त्रणे भो-
मर्थ्ये च प्रत्याख्येयमिति गम्यते । इदमन्यफललिप्सूनां परान्नभोजनाभ्यनुज्ञामात्रम् । 'कामं प्रति-
षामनिन्द्यामन्त्रणे कृते ।' इति देवलोक्तेः । तत्र परान्नभोजेऽप्यो दोषः न तु दोषसामान्या-
तत्रापदि द्रुपदाजपः आपदाधिक्ये मनस्तापः । इति टीका । २—आहूतोपि श्राद्धकालातिक्रमं
'न सीमानमतिक्रामेच्छाद्द्वार्थं वै निमन्त्रितः । पर्यटन्सीममध्ये तु न कदाचित्प्रदुष्यति ।
ब्रह्माण्डात् सीमः परस्तात् गन्तव्यम् । इति टीका ।

च तथा भुक्ता नोपेयाच्च ऋतावपि ॥ भोक्ष्यन् करिष्यन् श्वः श्राद्धं पूर्वरात्रौ
व्यवायं भोजनं चापि ऋतावपि विवर्जयेत् ॥' इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेश्च
नेश्वरेण तु-श्राद्धे ऋतौ गच्छतोपि न दोष इत्युक्तं तत्त्वगतिकगतिव्ये ज्ञे
स्पतिः-‘द्विनिशं ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धकृद्ब्राह्मणैः सह । अन्यथा वर्तमानौ
निरयगाभिनौ ॥ पुनर्भोजनमध्वानं भारमायासमैथुनम् ॥ श्राद्धकृच्छ्राद्धमु
मेतद्विवर्जयेत् ॥ स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वापं तथैव च ॥' यत्तु श्राद्धक
पुराणसमुच्चये-‘कृत्वा तु रुधिरस्त्रावं न विद्वान् श्राद्धमाचरेत् । एकं हे
विद्वान् दिनानि परिवर्जयेत् ॥' इति तन्निर्मूलम् । पृथ्वीचन्द्रोदये यम
जननध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् । संध्यां प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभोक्ताऽष्ट वर्जये
संध्यानिषेधः प्रायश्चित्तात् पूर्वं ज्ञेयः । यथाहोशनाः-‘दशकृत्वः पिबेदाप
श्राद्धभुग्द्विजः । ततः संध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि ॥' गौड
संध्यां परान्नं च छेदनं च वनस्पतेः । अमावास्यां न कुर्वीत रात्रिभोजनमेव
कलहं चैव सायं सन्ध्यां दिवाशयम् । श्राद्धकर्ता च भोक्ता च पुनर्भु
येत् ॥' इति कामधेनौ वराहाश्रुक्तेः ॥ श्राद्धकर्तुरपि सायंसंध्यानि
शिष्टास्तु निर्मूलत्वमाहुः । होमनिषेधस्तु स्वविषयः । ‘सूतके च प्रवासे
श्राद्धभोजने । एवमादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ॥' इति छंदोगपरि
तत्रैवादित्यपुराणे-‘निमन्त्रितस्तु न श्राद्धे कुर्याद्भार्यादिताडनम् ॥' च
प्रचेताः-‘श्राद्धभुक् प्रातरुत्थाय प्रकुर्यादन्तधावनम् । श्राद्धकर्ता न कुर्व
धावनं बुधः॥' हेमाद्रौ जाबालिः-‘दन्तधावनताम्बूले तैलाभ्यङ्गमभोजन
पथपरान्नं च श्राद्धकृत्सप्त वर्जयेत् ॥' इति विष्णुरहस्ये-‘श्राद्धोपवासदिवसे
दन्तधावनम् । गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्य विशुद्धयति ॥ पुनर्भोजनम
मायासमैथुनम् । दानप्रतिग्रहौ होमं श्राद्धभुक् त्वष्टवर्जयेत् ॥'

सोमोत्पत्तौ-‘वनस्पतिगते सोमे यस्तु हिंस्याद्वनस्पतिम् । वीरायाम्
युज्यते नात्र संशयः ॥' एतद्विहितेध्मादिव्यातिरेकेण । ‘वनस्पति गते सोमे म
कारयेत् । गावस्तस्य प्रणश्यन्ति चिरकालमुपस्थिताः॥' वनस्पतिगतस्वरूपम
चन्द्रोदये व्यासः-‘त्रिमुहूर्तं वसेदर्के, त्रिमुहूर्तं वसेज्जले । त्रिमुहूर्तं वसेन्न
वनस्पतौ ॥' कलिकायां वृद्धमनुः-‘निमन्त्र्य विप्रांस्तदहर्वर्जयेन्मैथु
प्रमत्ततां च स्वाध्यायं क्रोधाशौचे तथानृतम् ॥' केचिन्निमन्त्रणात् पूर्वं शु

ह्यनवकाशतः । श्राद्धं शिष्येण पुत्रेण तदान्येनापि कारयेत् ॥ नियमानाचरेत्सोऽपि
तांश्च वसुंधरे । यजमानोऽपि तान्सर्वानाचरेत्सुसमाहितः ॥' इति हेमाद्रौ वाराहो
स्त्रियस्तु पाद्रे-‘मुक्तकच्छा तु या नारी मुक्तकेशी तथैव च । हसते वदते चैव नि
पितरो गताः ॥' आश्वलायनः-‘श्राद्धेऽपि भोजयेद्वास्तौ न बालानपि यत्नतः ।
पिण्डदानाद्गन्धाद्यैर्नालंकुर्यात्स्वविग्रहम् ॥' वास्तौ गृहे ॥

अथ श्राद्धवस्तूनि । तत्रादौ कुशाः पृथ्वीचन्द्रोदये दक्षः-‘समि
कुशादीनां द्वितीयः परिकीर्तितः ॥' अष्टधाभक्तदिने द्वितीयो भाग इत्

तत्रैव यमः-‘समूलस्तु भवेदर्धः पितृणां श्राद्धकर्मणि ।
श्राद्धवस्तूनि । लोकान् जयति शक्रस्य सुमहात्मनः ॥' व्यासः-‘तर्प

कार्याणि पितृणां यानि कानिचित् । तानि स्युर्द्विगुणैर्दमैः सप्तपत्रैर्विशेष
शालंकायनः-‘सपिण्डीकरणं यावद्द्विगुणैः पितृक्रिया । सपिण्डीकरणादूर्ध्व
विधिवद्भवेत् ॥' शङ्खः-‘अनन्तर्गभिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च । प्रा
विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥' हारीतः-‘पवित्रं ब्राह्मणस्यैव चतुर्
ञ्जुलैः ॥ एकैकं न्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥' स्मृत्यर्थसारे-‘स

भवेद्वाभ्यां पवित्रं ग्रन्थितं नवम् ॥' रत्नावल्याम्-‘द्वयोस्तु पर्वणोर्मे
धारयेद्बुधः ॥' हेमाद्रौ स्कान्दे-‘अनामिकाधृता दर्भा ह्येकानामिकयापि व

मनामिकाभ्यां तु धार्ये दर्भपवित्रके ॥' पवित्राभावे तु तत्रैव सुमन्तुः-‘
विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे कोरे । सव्ये चैव तथा त्रीनै विभृयात्सर्वकर्मसु ॥

यनः-‘हस्तयोरुभयोर्द्वौ द्वावासनेपि तथैव च ॥' दर्भग्रहणे मन्त्रमाह शङ्खः
श्विना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज । नुद् सर्वाणि पापानि दर्भं स्वस्तिकरो

स्मृत्यर्थसारे-‘हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्वा समुद्धरेत् ॥' भारद्वा
क्रियार्थं पितृर्थमभिचारार्थमेव च । दक्षिणाभिमुखश्छिन्द्यात्प्राचीनावीतिको

कुशाभावेऽपराकं सुमन्तुः-‘कुशः काशः शरो गुन्द्रो यवा दूर्वाऽथ बल्वजाः
सुञ्जकुन्दाश्च पूर्वाभावे परः परः ॥' काशादौ विशेषमाह शङ्खः-‘काशहस्तस

त्कदाचिद्विधिशङ्क्या । प्रायश्चित्तेन युज्येत दूर्वाहस्तस्तथैव च ॥' पृथ्वी
यमः-‘मासिमास्युद्धृता दर्भा मासि मास्येव चोदिताः ॥' षट्त्रिंशन्म

स्याद्मावास्या दर्भो ग्राह्यो नवः स्मृतः ॥' गृह्यपरिशिष्टे-‘त्रै च पिण्डा
त्रैः कृतं पितृतर्पणम् । अमेध्याशुचिलिप्ता ये तेषां त्यागो विधीयते ॥' लघु

ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे । हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो
हेमाद्रौ-‘अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च । हेमात्मकपवित्रस्य
न्ति वै कलाम् ॥’

अथ हविः । हेमाद्रौ प्रचेताः-‘कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्य
महायवा ग्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः ॥ कृष्णाः श्वेता
श्राद्धे हविर्निर्णयः । ग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि ॥’ महायवा वेणुबीजम् । मधू

नाला इति हेमाद्रिः कल्पतरुश्च । भारते-‘वर्धमानतिलं श्राद्धमक्ष
ब्रवीत् । सर्वकामैः स यजते यस्तिलैर्यजते पितृन् ॥’ चन्द्रिकाया
‘इष्टापूर्ते मृताहे च दर्शवृद्धयष्टकासु च । पात्रेभ्यस्तेषु कालेषु दे
जनम् ॥’ सायणीये-‘अगोधूमं च यच्छ्राद्धं माषमुद्रविवर्जितम् । तैलप
कृतमप्यकृतं भवेत् ॥’ हेमाद्रावत्रिः-‘अगोधूमं च यच्छ्राद्धं कृतमप्य
तत्रैव ब्राह्मे-‘यवैर्व्रीहितिलैर्मषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा । संतर्पयेत् पितृन् मुद्गै
सर्षपद्रवैः ॥ नीवारैर्हरिण्यामाकैः प्रियंगुभिरथार्चयेत् ॥’ हेमाद्रौ काष्ण
‘यदिष्टं जीवतश्चासीत्तद्दद्यात्तस्य यत्नतः । स तृप्तो दुस्तरं मार्गं ततो याति
कलिकायामाश्वलायनः-‘कदल्यादिफलैः शस्तेर्मूलैराद्रादिकैरपि ।
दध्ना श्राद्धे संतर्पयेत् पितृन् । कदल्याम्रफलादीनि श्राद्धे संपादयेत्सुधीः’

हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च मार्कण्डेयः-‘गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनै
श्राद्धेषु दत्तैः प्रीयन्ते मासमेकं पितामहाः॥विदार्या च मरुण्डैश्च तिलैः शृङ्ग
कञ्जुकैश्च तथा कन्दैः कर्कधूबदैरपि ॥ पालेवतैरारुकैश्चाप्यक्षोटैः पनसैस्त
ल्या क्षीरकाकोल्या तथा पिण्डालकैः शुभैः॥लाजाभिश्च सधानाभिस्त्रिपुसैश्चारु
पाराजकाशाभ्यामिण्डुदै राजजम्बुभिः॥ प्रियालामलकैर्मुख्यः फल्गुभिश्च तिल
कुरैस्तालकंदैश्चक्रिकाक्षीरिकावचैः ॥ लोचैः समोच्चैर्लकुचैस्तथा वै बीजपूरकैः
पद्मफलैर्भक्ष्यभोज्यैश्च संस्कृतैः॥ रागखाण्डवचोष्यैश्च त्रिजातकसमन्वितैः ।
प्रीयन्ते श्राद्धेषु पितरो नृणाम्’ ॥ एषां कोशहेमाद्र्यादिव्याख्यावैद्यकाद्यनु
देशभाषयानामान्युच्यन्ते । सतीनैः कलायैः । ‘कलायस्तु सतीनकः’ इत्यम
ति प्रसिद्धैः । विदार्या तत्कंदेन । मरुण्डं जलजं मखाणा इति श्राद्ध
भूकूष्माण्डमित्यन्ये । शृङ्गाटकं सिंघाढा । कञ्जुकः कंचनारः । कं
‘अशोन्नः सूरणः कंदः’ इत्यमरः । कर्कधूः वन्यं सूक्ष्मं बदरम् । पालेवतः
आरुकं अरुई । अक्षोटं अखरोटः । काकोलीश्रीकाकोली चैव सतीनैः

चिर्मटं खर्वुजम् । सर्षपा इति दीर्घश्छान्दसः । प्रियालं चिरौञ्जी । फल्लु उदुम्बरम् ।
 तिलंटकं पटोलकम् । तालकन्दः कन्दविशेषः । चक्रिका तिन्तिणी विंवा । क्षीरि
 खिरिणी । मोचं कदलीफलम् । लकुचं बडहरम् । मुञ्जातकं गौडदेशे प्रसिद्धम् । प
 फलं गट्टा । रागखाण्डवः 'पिप्पलीशुण्ठियुक्तस्तु मुद्गयूषस्तु खाण्डवः । रागखाण्डव
 यातिं शर्करासंयुतं तु तत् ॥ ' इत्युक्तः पानविशेषः । त्रिजातं लवङ्गैलापत्रकापि
 मदनरत्ने कौर्मै- 'कालशाकं च वास्तूकं मूलकं कृष्णनालिका ॥ ' प्रशस्ता
 तिशेषः ॥

हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च वायुपुराणे- 'कालशाकं महाशाकं द्रोण
 तथार्द्रकम् । विल्वामलकमृद्धीकापनसाम्रातदाडिमम् ॥ चव्यं पालिवटाक्षोटं खर्वुजं
 कसेरुकम् । कोविदारंश्च कंदश्च पटोलं बृहतीफलम् ॥ पिप्पली मरिचं चैव एला शुण्ठि
 सैन्धवम् ॥ शर्करागुडकर्षरवदरीद्रोणपत्रकम् ॥ ' तथा । 'मधुकं रामठं चैव कर्पूरं गुड
 च ॥ श्राद्धकर्मणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुसं तथा ॥ ' रामठं हिंगुः । 'कसेरुः कोवि
 रश्च तालकन्दस्तथा विसम् । तमालं शतकन्दश्च मध्वालुः शीतकन्दकम् ॥ क
 कालशाकं च सुनिषण्णं सुवर्चलम् । मांसं शाकं दधि क्षीरं चाम्बुवेत्रांकुरस्तथा ॥
 फलं कौंकणीद्राक्षा लकुचं मोचमेव च ॥ अलाबुं ग्रीवकं चारं कर्कन्धुर्मधुसाह्व
 वैकंकतं नारिकेलं शृङ्गाटकपरूषकम् ॥ पिप्पलीमरिचं चैव पटोलं बृहतीफलम् । ए
 दीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च ॥ नागरं चार्द्रकं देयं दीर्घमूलकमेव च ॥ ' इ
 तथा- 'शर्कराक्षीरसंयुक्ताः पृथुका नित्यमक्षयाः ॥ ' द्रोणशाकं 'गूम' इति । प्रसि
 मृद्धी द्राक्षा । आम्रातं आंवाडा इति प्रसिद्धो वृक्षः । तरफलं च पालिवन्तं जम्बी
 पालिआलमिति गौडप्रसिद्धं वा खर्वूरं खजूर इति प्रसिद्धम् । कसेरुः जलजः क
 कोविदारः कञ्चनारसदृशः । तालकन्दः तालमूली । विसं भसीडम् । शतकन्दः
 दरी । शालुकं सेरुकीति प्रसिद्धम् । कालेयं करालसंज्ञः शाकः । दारुहरि
 पृथ्वीचन्द्रोदयः । सुनिषण्णं कर्कटीसदृशं सुलटीया इति गौडप्रसिद्धम् । सु
 शाकविशेषः । कट्फलं श्रीपर्णीवृक्षफलम् । कौंकणी अम्लरसा द्राक्षा । तिन्दुकं डिण्डि
 कैदेवः तिन्दुफलं वा । ग्रीवकं फलविशेषः । चारं क्षुद्रतालम् । मधुसाह्वं मधु
 फलं वा । वैकङ्कतं चैश्चीति गौडारख्यातम् । पुरुषकं परूषमिति प्रसिद्धम् ।
 शुण्ठी । पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे- 'आम्रमाम्रातकं विल्वं दाडिमं बीजपूरकम् ।
 नामलकं क्षीरं नालिकेरं परूषकम् ॥ नारङ्गकं च खर्वूरं द्राक्षानीलकपित्थव

रिह पितामहाः ॥ खड्गामिषं महाशल्यं मधु मुन्यन्नमेव च । लोहामि
मांसं वार्धीणसस्य च ॥ निगमः-‘त्रिःपिवं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्ध
वार्धीणसं तु तं प्रादुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि ॥’ वार्धीणसो जरच्छाग इति मे
कात्यायनः-‘छागोस्त्रिमेषानालभ्य शेषाणि क्रीत्वा लब्ध्वा वा स्वयं मृ
पचेत् ॥’ कौर्मे-‘क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहत्य वा द्विजः । दद्य
त्नेन तदस्याक्षय्यमुच्यते ॥’ दत्तस्य मांसस्याभक्षणे दोषमाह मनुः-‘नियु
न्यायं यो मांसं नात्ति मानवः । स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशति
बहुषु वचनेषु श्राद्धे मांसमधुनोः प्राशस्त्योक्तेः । ‘विना मांसेन यच्छ्राद्धं
भवेत् ।’ इति हेमाद्रौ देवलोक्तेः । ‘यच्छ्राद्धं मधुना हीनं तद्रसैः सकलै
न्नैरपि संयुक्तं पितॄणां नैव तृप्तये ॥ अणुमात्रमपि श्राद्धे यदि न स्याच्च
नामापि कीर्तनीयं स्यात् पितॄणां प्रीतये ततः ॥’ इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्ते
धुमोः श्राद्धे नियतत्वं गम्यते । गौडनिबन्धे मात्स्यसुमन्तू-‘म
देयः क्षीरस्य च तथा दधि । न लभ्यते घृतं यत्र कुर्यात् घृतवतीजपम्
लिकायां नागरखण्डे-‘कथंचिद्यदि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु । वि
दातव्याः कदाचिन्मधुना विना ॥’ बृहत्पराशरस्तु मांसं निषेधति । ‘य
कृत्वा मांसैस्तर्पयते पितॄन् । स विद्वांश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम्
कूपे यथा कंचिद्बाल आदातुमिच्छति । पतत्यज्ञानतः सोऽपि मांसेन श्रा
स एव-‘सर्वथान्नं यदा न स्यात्तदैवामिषमाश्रयेत् । ब्राह्मणश्च स्वयं नाद्या
यदि ॥’ भागवतेपि-‘न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् । मुन्य
प्रतिर्धया न पशुर्हिसया ॥’ तथेति शेषः । अत्र केचित् । ‘मुन्यन्नं ब्राह्मण
क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रदानं शूद्रस्य सर्वेषां वा विरोधि यत् ॥’ इति हे
स्त्योक्त्या व्यवस्थामाहुः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु-‘अक्षता गोपशुश्रैव श्राद्धे मांसं तथा मधु । देवरा
कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥’ इति निगमोक्तेः । ‘वराऽतिथिपितृभ्यश्च पशूपाव
इति कलिबज्ज्येषु हेमाद्रावादित्यपुराणात् । ‘मांसदानं यथा श्राद्धे

१-‘उल्लो वृषो वलीवर्दः’ इति कोषः । २ आहुरित्यस्वरसः । एवमपि काम
न स्यात् । ‘सप्तदश वैश्यस्य सामिधेन्यः’ इत्यस्य ‘वैश्यस्य सप्तदशैव सामिधेन्यः’
मुपेत्य तस्य नित्यपरत्वसंभवाद्वैश्यं प्रति काम्यैकविंशतिसामिधेन्यनुवचनस्य सिद्ध

श्रमस्तथा ।' इत्युक्त्वा 'इमान् धर्मान् कलियुगे वज्यानाहुर्मनीषिणः' ॥ इति बृहन्नारदीयेऽभिधानाच्च मांसविधिः कलिव्यतिरिक्तविषयः । कैलौ मांसनिषेधानां च देशाचारस्य व्यवस्था । तथा च बृहन्नारदीये-श्राद्धं प्रकृत्य-‘यथाचारं प्रदेयं तु मधुमांसादि तथा । देशाचाराः परिग्राह्यास्तत्तद्देशीयजैर्नरैः ॥ अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मवहिष्कृतः इति । ‘यस्मिन् देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचरयेत्’ ॥ इति भृगुक्तेश्चेत्याह तन्न । होलाकाधिकरणन्यायेन देशविशेषव्यवस्थापकपद्धतौ कल्पनायोगात् । निरूपितं च तत् पितामहचरणैर्मांसमीमांसायाम् इति दिक् । मनुः ‘संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च । वार्धीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकं त्रिःपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम् ॥ वार्धीणसं तु तं प्रादुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्माक्षीरादौ विशेषमाह हेमाद्रौ सुमन्तुः-‘पयो दधि घृतं चैव गवां श्राद्धेषु पावनमहिषीणां घृतं प्राहुः श्रेष्ठं न तु पयः क्वचित् ॥’ याज्ञवल्क्यः-‘सन्धिन्यनिर्दशावत गोपयः परिवर्जयेत् । औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ॥’ हेमाद्रौ हारीतः ‘नवमृतायाः सप्तशत्रादित्येके । दशरात्रादित्यपरे । मासे नो पेयूषं भवतीति धर्मविदः एतदजोभावपरम् । देवलः-‘अजाविमहिषीणां तु पयः श्राद्धेषु वर्जयेत् । विकारान् सश्चैव माहिषं तु घृतं हितम् ॥’ तत्रैव ब्राह्मे-‘माहिषं चामरं मार्गमाविकैकशफोद्रे स्त्रैणमौष्ट्रं पाचितं च दधि क्षीरं त्यजेद् घृतम् ॥ सगुडं मरिचाक्तं तु तथा पर्युषितं दीर्णं तक्रमपेतं च नष्टास्वादं च फेनवत् ॥’ माहिषापवादोऽपराकं ब्राह्मे-‘देयं तत्र सद्यस्कं नवनीतादनुद्धृतम् । आरण्यमहिषीक्षीरं शर्कराभ्युतिसंयुतम् ॥ मध्वक्तं तु चैव दद्यात्तदमृतं यतः ॥’ श्रुतिः क्षीरशरः । श्राद्धकौमुद्यां चैवम् । यद्यपि याज्ञवल्क्येन-‘अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् । अस्नेहा अपि गोधूमयवगोविक्रियाः ॥’ इति पर्युषितं दध्यादि भोज्यमुक्तम् तथापि गुडमरीचाक्तस्य पर्युषितं शोत्रोच्यत इति हेमाद्रिः । तत्रैव ब्राह्मे-‘कालशाकं तन्दुलीयं वास्तुकं मूलकं तद्विषाकमारण्यकं चैव दद्याच्छ्राद्धेषु नित्यशः ॥’ तन्दुलीयं सूक्ष्मपत्रमिति हेमाद्रौ महाराष्ट्राणां माठ इति प्रसिद्धम् । आरण्यकं फांजीचूचादि । तत्रैव ‘दाडिमं न चैव नागरार्द्रकतिन्तिणीः । आम्रातकं जीरकं च कुवरं चैव योजयेत् ॥’ मणिपल्ली । नागरं शुण्ठी । कुवरं कुस्तुवरं धणिया इति प्रसिद्धम् । वायवीये-स्त्यस्य शिखास्ताम्राः काषायाः सर्व एव च ॥’ शिखा नवपलवाः । प्रभासख

‘आरामस्य तु सीमन्ताः कलापाः सर्व एव च’ । सीमन्ताः नवपलवाः ।
‘तमालं शतकन्दं च मध्वालुं शीतकन्दली’ । मध्वालुः मोहलकन्दः । शीत-
रातालु इति प्रसिद्धम् ॥

अथ वर्ज्यम् ॥ मार्कण्डेयपुराणे-‘यच्चोत्कोचादिना प्राप्तं पतिताद्यदु-
न्यायकन्याशुल्कार्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम् ॥ पित्रर्थं मे

श्राद्धे वर्ज्यहविः ।

त्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम्’ । चन्द्रोदये शङ्खः-‘भूस्तृणं
शिशूपालङ्कीमृचुकं तथा । कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् । पिप्पल-
चैव तथा वै पिण्डमूलकम् । कृतं च लवणं सर्वं वंशात्रं च विवर्जयेत् ॥ राजमा-
रांश्च कोद्रवान् कोरदूषकान् । लोहितान् वृक्षनिर्यासान् श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ।
काश्मीरदेशे प्रसिद्धम् । सुरसा निर्गुण्डीति माधवः । तुलसीति पृथ्वीचन्द्र-
सा च भक्ष्यत्वेन निषिद्धा न पुष्पत्वेनेति गौडाः । पालंकी पालक इति
मृचुकं जलजः शाकः । समुकम् इति पाठे खदिरशाक इति हेमाद्रिः । म-
र्द्राणीति हेमाद्रिः । कृतं लवणं सांभरभिन्नम् । ‘सैन्धवं लवणं
मानससम्भवम्’ । ‘यच्च सामुद्रिकं भवेत्’ इति शूलपाणौ पाठः । ‘प-
र्य्येते प्रत्यक्षे अपि नित्यशः ।’ इति वायवीयोक्तेः । मानसं साम्भर-
भविष्यम्-‘तर्जन्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा ।’ इति । तत्र क्षारलवणं
प्रसिद्धं निषिद्धम् । ‘मुक्त्वा तु क्षारलवणं त्रिरात्रं तु वने वसेत् ।’ इति ब्राह्म-
शूलपाणिः । क्षारलवणमिति पाठात् क्षीरमिश्रं लवणं निषिद्धमिति वाच्यं
राजमाषाः रतरा इति प्रसिद्धाः । कोरदूषकः चणकोद्रवः । चन्द्रिकायां
‘पिण्डालकं च तुण्डीरं करमर्दं च नालिकम् । कूष्माण्डं बहुबीजानि श्राद्धे द-
त्तव्यः ॥ पिण्डालकं महाराष्ट्रेषु पेण्डरमिति प्रसिद्धम् । तुण्डीरं विम्बीफलमि-
वः । करमर्दं करवन्दमिति प्रसिद्धम् । तत्रैव-‘विडालोच्छिष्टमाग्रातं श्राद्धे
वर्जयेत् । कूष्माण्डं महिषीक्षीरमाढक्यो राजसर्षपाः ॥ चणका राजमाषाश्च
श्राद्धं न संशयः’ ॥

वृद्धपराशरः-‘कीरफलपुष्पाणि विडङ्गमारिचानि च । जम्भारिकासजम्भ-
पकं बीजपूरकम् ॥ जम्बूलावूनि पिप्पल्यः पटोलं पिण्डमूलकम् । मसूराश्च
श्राद्धे दत्त्वा पतत्यधः ॥’ जम्बूः सूक्ष्मा । माधवीये चतुर्विंशतिमते-‘य-
कुलित्यांश्च वर्जयन्ति विपश्चितः ॥’ यावनाला जोंधला । अत्र यानि चणकादी-

गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गमसैः प्रीणयते पितॄन् ॥ इति । 'गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सर्वातिश्रयकैर्गन्धैः
 इति हेमाद्रौ कौर्मविष्णुधर्मादिविरोधः स्यात् । पिप्पलीमरिचादेस्तु प्रत्यक्षस्य विरोधो न त्वन्यद्रव्यमिश्रस्य 'सौवीररित्तैर्लवणादिभिस्तु पाकस्य सिद्धिर्महतीहयैस्तु । तत्र
 जपूरान् मरिचादियोगास्सिद्धं प्रदेयं न तु दुष्यतीह ॥' इति पृथ्वीचंद्रोदये वृद्धप
 शरोक्तेः । तत्रैव—'दातुश्च यस्मिन्मनसोभिलाषः श्रद्धा भवेद्यत्र च दीयमाने । श्राद्धे
 देयं विधिवत्तदेव तद्वत्तत्क्षय्यमिति ब्रुवन्ति ॥' एतन्निषिद्धेतरविषयम् । चन्द्रिकाया
 'कृष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्माणि । न वर्जयेत् तिलांश्चैव सुदमापांस्तथैव
 मात्स्ये—'मसूरशणनिष्पावराजमावकुसुम्भिकाः । पद्मविल्वार्कवट्टरपाग्मद्राटरूप
 न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा । कोद्रवोदारवरककापित्यमधुकातर्मा ॥
 न्यपि न देयानि पितृभ्यः श्राद्धमिच्छता ॥' निष्पावाः वलाः । यत्तु मार्कण्डेयः—
 'यंगवः कोविदारा निष्पावाश्चात्र शोभनाः।' इति तत्र निष्पावः श्वेतशिर्माति दान
 गरे श्राद्धशकाशे चोक्तम् । विल्वं च रक्तं निषिद्धम् । 'जम्बीरं रक्तविल्वं च
 स्यापि फलं त्यजेत् ।' इति ब्राह्मोक्तेः । 'पारिमद्रो निन्वतरः' इत्यमरः । रक्तम्
 इति हेमाद्रिः । आटरूवो वासा तत्पुष्पम् । उद्धारः काञ्चनारः । मधुकं ज्योतीर्मा
 चन्द्रिका । वरका वनमुद्गाः ॥

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—'आसनारूढमन्नाद्यं पादोपहतमेव च । अमेध्यैर्जगमैः स्पृष्टं
 पर्युषितं च यत् ॥ द्विःस्विन्नं परिदग्धं च तथैवाग्रावलेहितम् । शर्कराकीटपाषाणैः
 र्यञ्चाप्युपद्रुतम् ॥ पिण्याकं मथितं चैव तथापि लवणं च यत् । सिद्धाः कृताश्च ये भक्ष्य
 प्रत्यक्षलवणीकृताः । वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्माणि ॥' द्विःस्विन्नं यत्स
 केन भक्ष्यमपि हिंशुजीरकादिसंस्कारार्थं पुनः पच्यते, तद्वर्ज्यम् । यत्तु तित्तशाकानां
 रादि द्विःपाकेनैव भक्षणार्हं, तत्र निषिद्धम् । अग्रावलेहितमास्वादितपूर्वं पर्युषितस्य
 निषेधेपि पुनर्वचनम् । 'अपूषाश्च करम्माश्च धानाः वटक्तत्तवः । शाकं मांसं म
 सूपं कृसरमेव च ॥ यवागूः पायसं चैव यञ्चान्यत्स्नेहसंयुतम् । सर्वं पर्युषितं भोज्यं
 चेत्परिवर्जयेत् ।' इति माधवीये यमोक्तवटकादेरपि पर्युषितस्य निषेधार्थमिति
 चन्द्रिकादयः । वर्ज्येषु विश्वामित्रः—'कपित्थं कुरुकं चैव नारिकेलं च पैत्ति
 जम्बूफलादि पक्वं च पिण्याकं तन्दुलीयकम् ॥' हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते—'वर्ज्य
 टकाः श्राद्धे राजमाषास्तथैव च ॥' मर्कटकाः लाका इति प्रसिद्धाः । पैठीनसिः—
 'कं नलिकापोतकुसुम्भाश्मन्तकानि च । शाकानामभक्ष्याः' इति । पोतं पो

रसा इति, महाराष्ट्रेषु राजगिरा इति च प्रसिद्धम् । कलम्बिका वेष्वाकू
तत्रैव 'गान्धारिकापटोलानि श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥' गान्धारिका तन्दुल
चन्द्रिका । जवासारव्यं दुरालभा' इति कैदेवः । भारते- 'हिंशुद्रव्येषु शाकेषु
लशुनं तथा । कुकुण्डकान्यलावूनि कृष्णं लवणमेव च' । पुनरलावुग्रहणमुभयात्
धार्थमिति पृथ्वीचन्द्रः । कुकुण्डकं वर्तुलच्छत्राकम् । तत्रैव- 'कुस्तुम्बुरं क
वर्जयेदाम्लवेतसम्' ।

हेमाद्रौ ब्राह्मे- 'वार्ताकं पञ्चशिम्बं च लोमशानि फलानि च । कलिङ्गं
च वीणाकं घृतचारकम् ॥ कपालं काचमारीचे करञ्जं पिण्डमूलकम् । गृञ्जनं
चैव गाजरं जीवकं तथा ॥' वृन्ताकं श्वेतम् । 'कण्डूरां श्वेतवृन्ताकं कूष्म
विवर्जयेत् ।' इति देवलोक्तेः । तेन कृष्णस्यानिषेध इति चन्द्रिकामाध
वस्तुतस्तु सदा श्वेतनिषेधात् पुनः श्राद्धे निषेधो व्यर्थः । तेन भक्ष्यस्य कृष्ण
स्यापि निषेधार्थमिदमिति वयम् । कण्डूरा कपिकच्छूः । कुंभाण्डं वृत्तालावुः ।
शिम्बं बलमसूरराजमाषमटकुलित्थाः । लोमशानि कपित्थानि । रक्तचारं लोम
फलम् । वीणाकं कृष्णदीर्घकर्कटी । घृतचारकं चिरस्थितचारफलम् । चा
प्रसिद्धम् । कपालं नारिकेलम् । काचं कच्चूक्षफलम् । मारीचं आर्द्रमरीचानि
पलाण्डुभेदः पश्चिमदिशि प्रसिद्धः । न तु गाजरम् । तस्य पृथगुक्तेः हेमाद्रि
गृञ्जनं गाजरमेवोक्तम् । गौडश्राद्धकौमुद्यामप्येवं तच्चिन्त्यम् । कुक्रिका
लशुकं पानकम् । चन्द्रिकायां हारीतः- 'न वटप्लक्षोदुम्बरशेलुदधित्थनीप
ज्ञानि भक्षयेत् ॥' शेलुः भोकरसंज्ञः । दधित्थं कपित्थं स्मृतिसारं- 'क्षीरे तु
दत्त्वा उच्छिष्टेषु च यद् घृतम् । स्नानं रजकतीर्थेषु ताम्रे गव्यं सुरासमम् ॥'
निबन्धसागरे स्मृतिः- 'नारिकेरोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु ।
ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना ॥' 'ताम्रपात्रे घृतं मांसं पञ्चगव्यं घृतेतरत् ।
तु गवां मांसं दधि मद्यं पयो रजः ॥ द्रव्यान्तरयुतं मांसं पयसा संयुतं दाधि ।
नुदृतसारं च ताम्रपात्रे न दुष्यति ॥'

अथ जलम् । याज्ञवल्क्यः- 'शुचि गोतृप्तिकृत्तोर्यं प्रकृतिस्थं महीगतम् ।

श्राद्धे जलनिर्णयः ।

जलमुक्तं हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे- 'दुर्गन्धि फेनिलं क्षारं पङ्किलं
लोदकम् । न भवेद्यत्र गोतृप्तिर्नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् ॥ यन्न स

१-स च 'वर्जयेद्गृञ्जनं श्राद्धे काञ्जिकां पिण्डमूलकम् । करञ्जं येषु चान्ये वै रसगन्धोक्तम् ।

त्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम् । तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव श्राद्धकर्मणि ॥' निजलाशयः । शुद्धितत्त्वे शङ्खः—स्नानमाचमनं दानं देवतापितृतर्पणम् । शूद्रो कुर्वीत तथामेध्यादिनिःसृतैः ॥' हेमाद्रावादित्यपुराणे—'चिरं पर्युषितं वापि स्पृष्टमथापि वा । जाह्नव्याः स्नानदानादौ पुनात्येव सदा पयः ॥' कात्यायनः—'निशि न गृह्णीयान्न पिवेच्च कदाचन । उद्धृत्याग्निमुपर्यग्नेर्धाम्नो धाम्न इतीरयेत् । रजोदोषे तु प्रागुक्तं नारदीये—'त्यजेत्पर्युषितं पुष्पं त्यजेत्पर्युषितं जलम् । न जाह्नवीतोयं तुलसीविल्वपद्मकम् ॥'

अन्यान्यपि पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्ये—'मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपथ्यम् । गौष्यं दर्भास्तिलागावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥ पापं कुत्सितमित्याहुः सन्तापकारिणः । अष्टवेते यतस्तस्मात्कुबुपा इति विश्रुताः ॥' ब्राह्मे—'यतिस्त्रिंशत् करुणा राजतं पात्रमेव च । दौहित्रं कुतुपः कालश्छागः कृष्णाजिनं तथा ॥' नीति शेषः । दौहित्रं खड्गपात्रमिति कल्पतरुः । अपराकैः स्मृत्यन्तरे—'दुहितुश्चैव खड्गपात्रं तथैव च । घृतं च कपिलाया गोदौहित्रमिति कीर्तितम् ॥' ण्डे—'अमावास्यागते सोमे या तु खादति गौस्तृणम् । तस्या गौर्यद्भवेत् क्षीरं तमुदाहृतम् ॥' स्मृतिसंग्रहे—'उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वान्तं च मृतकर्पटम् । सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतुपस्तिलाः ॥' उच्छिष्टं वत्सस्य दुग्धमित्यर्थः । शिवनिर्माल्यं गङ्गोदकम् । वान्तं मधु । मृतकर्पटं तसरी पटम् ।

तिलेष्वपस्तम्बः—'अटव्यां ये समुत्पन्ना अकृष्टफलितास्तथाते वै श्राद्धे तिलनिर्णयः । स्युस्तिलास्ते न तिलास्तिलाः ॥' अभावे ग्राम्याः ॥ 'गौराः कृष्णारण्यास्तथैव त्रिविधास्तिलाः ।' इति ब्राह्मोक्तेः ।

अथ वर्ज्यानि चन्द्रिकायां यमः—'कुक्कुटो विड्वराहश्च काकश्चाथ विडालश्च वृषली पतिश्च वृषलः षण्डो वीरा रजस्वला । एते तु श्राद्धवर्जनीयाः । प्रयत्नतः ॥ खञ्जः काणः कुणिः श्वित्री दातुः प्रेष्यकरः ।

न्यूनाङ्गोप्यतिरिक्ताङ्गस्तमप्यपनयेत्ततः ॥' वायवीये—'अन्नं पश्येयुरेते तु यदि वै व्ययोः । उत्स्रष्टव्यं प्रधानार्थं संस्कारस्त्वापदि स्मृतः ॥' सुमन्तुः—'चाण्डालास्तमन्नमभोज्यमन्यत्र मृद्भस्महिरण्योदकस्पर्शात् ॥' तत्रैव जमदग्निः—'शुद्धं कूष्माण्डयः पावमान्यस्तरत्समाः । पूतेन वारिणा दभैरन्नदोषमपानुदत् ॥' चन्द्रः—'पादकोणतयै त्वं चित्ररङ्गावरं तथा । रक्तपुष्पं च मार्जारं श्राद्धभूमौ विवर्जयेत् ॥'

निर्णयदीपे-‘घण्टानिनादो ह्यसंनिधानं शम्बूकशंखं कदलीदलं च । उन्मत्त-
यारिजानि श्राद्धस्य वैगुण्यकराण्यमूनि’ हयारिजं महिषीक्षीरादि ॥

अथ श्राद्धदिनकृत्यम् । चन्द्रोदये उशनाः-‘गोमयोदकैर्भूमिभ-

श्राद्धदिनकृत्यनिर्णय ।

कुर्यात् ॥’ पराशरः-‘काञ्चिकं दधि तक्रं च शृतं वाशृतं
पूर्वमेव न दातव्यमेकोदिष्टेय पार्वणे ॥’ हेमाद्रौ पराशरः
अग्निशुदेवानां ब्रह्मचारितपस्विनामातावन्न दीयते किञ्चिद्यावत्पिण्डान्न निर्वपेत् ।
‘तिलानवकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजान् ॥’ तत्रैव देवलः-‘तथैव यन्त्रितो दा-
स्नात्वा सहाम्बरः । आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः ॥’ अत्रात्मनेपदा
पाकः कार्यः । अशक्तौ पत्न्या तदभावे बान्धवैः । ‘ततस्तु निपपाचाशु सीता
न्दिनी ।’ इति पाद्मलिङ्गादिति हेमाद्रिः ॥ श्राद्धदीपकलिकायाम-
यनः-‘समानप्रवरैर्मित्रैः सपिण्डैश्च गुणान्वितैः । कृतोपकारिभिश्चैव पाकका-
स्यते ॥’ व्यासः-‘गृहिणी चैव सुस्नाता पाकं कुर्यात्प्रयत्नतः । निष्पन्नेषु च
पुनः स्नानं समाचरेत् ॥’ पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-‘रजस्वलां च पाखण्डां
पतितां तथा । त्यजेच्छूद्रां तथा बन्ध्यां विधवांचान्यगोत्रजाम् ॥ व्यङ्गकर्णीं च
स्नातामपि रजस्वलाम् । वर्जयेच्छ्राद्धपाकार्यममातृपितृवंशजाम् ॥’ मातृपितृवंश-
त्यजेदित्यर्थः ॥ स्मृतिसारे-‘न पाकं कारयेत्’ पुत्रीमन्यां वाप्यन्यगोत्रजाम्
बन्ध्यां च गर्भघ्नीं गर्भिणीं चैव दुर्मुखाम् ॥

पाकभाण्डानि तु हेमाद्रौ नागरखण्डे-‘सौवर्णान्यथ रौप्याणि कांस्यत-
वानि च । मार्त्तिकयान्यपि भव्यानि नूतनानि ह्यनानि च ॥’ तत्रैव आदित्यपु-
‘पचेदन्नानि सुस्नातः पात्रेषु शुचिषु स्वयम् । स्वणादिधातुजातेषु मृन्मयेष्वपि वा
अच्छिद्रेष्वविलिप्तेषु तथातुपहतेषु च । नायसेषु न मित्रेषु दूषितेष्वपि कर्हिचित्
कृतोपयोगेषु मृन्मयेषु न तु कचित् ॥’ वायुपुराणे-‘न दाचित्पचेदन्नमयः
पेतृकम् । अयसो दर्शनादेव पितरोपि द्रवन्ति हि ॥ कालायसं विशेषेण निन्दन्ति
कर्मणि । फलानां चैव शाकानां छेदनार्थानि यानि तु ॥ महानसेपि शस्त्राणि ते
हि सन्निधिः । इष्यते नेतरस्यात्र शस्त्रमात्रस्य दर्शनम् ॥ श्राद्धदेशे तु विदुषा
तृप्तिमिच्छता । महानसेपि युक्तानामपि कार्यं न दर्शनम् । तत्रैव-‘पचमानस्तु
भक्त्या ताम्रमयेषु च । समुद्धरति वै घोरात् पितृन् दुःखमहार्णवात् ॥ तैजसानाम-
पिठरे मृन्मयेषु च । नवे शुचौ प्रकुर्वीत पाकं पित्रर्थाय ॥’ तत्रैव-

दारुभिः ॥' यमः—'विवाहे प्रेतकार्ये च मातापित्रोः क्षयेहनि । नवभाण्डानि कु
यज्ञकाले विशेषतः ॥'

अथ पाकाग्निः । हेमाद्रौ प्रजापतिः—'औपासनेनान्नसिद्धिरग्नौकरणमेव च

पृथ्वीचन्द्रोदयेद्गिराः—'शालाग्नौ तु पचेदन्नं लौकिके
श्राद्धे पाकाग्निनिर्णयः ।

नित्यशः । यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन् होमो विधीयते ॥' मरु

'वैवाहिकेग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । पञ्च यज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं द्विज

श्राद्धस्य गृह्यत्वं चोक्तमपरार्केण ॥ अत्र विशेषः कर्मप्रदीपे—'प्रातर्होमं तु नि

समुद्धृत्य हुताशनात् । शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं समाचरेत् ॥ पाकान्तोऽग्निं तमा

गृह्याग्नौ तु पुनः क्षिपेत् । ततोऽस्मिन्वैश्वदेवादि कर्म कुर्यादतन्द्रितः ॥' तदभावे लौकि

'ततः पचेयुरन्नानि निर्वापानन्तरं शनैः । वैवाहिकेग्नौवन्यत्र लौकिके वापि संयतः ॥

कालिकायां संग्रहोक्तेः । पितृर्थं निर्वापं कृत्वेत्यर्थः । अत एव हेमाद्रौ व

पुराणे—'पितृर्थं निर्वपेद्भूमौ कूर्चं वा दर्भसंस्कृते ॥' तत्रैव पाञ्चमात्स्ययोः—'उ

मान्निर्वपेत्पैत्रं चरुं वा सममुष्टिभिः । पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्यसेत्

चरुग्रहणान्नशाकादांविधि हेमाद्रिः । पिण्डपितृयज्ञार्थपाकविषयोऽयं निर्वाप इति

युक्तम् । अयं चेतरेषामग्निः । आश्वलायनानां तु 'गुरुणाभिर्मृता अन्यतोवा

यमाणा अमावास्यायां शान्तिकर्म कुर्वीरन्' इत्यादिसूत्रेण पचनाग्निरत्यागमुक्त्वा 'इ

यमितरो जातवेदाः' इत्यर्धर्चेन, 'शमीमयीभ्यामरणिभ्यामग्निं मन्थेत्स पचनाग्निर्भ

इति सूत्रे वृत्तौ चोक्तेः । पचनाग्नावेव पाकः । बौधायनेनाप्युक्तम् । 'आहृतप

ग्निमौपासनं वाग्निप्रव्रजन्ति' इति । स्मार्ताग्नौ पाकस्त्वन्यशाखाविषय इति केचि

वस्तुतस्तु पूर्वोक्तस्य सर्वाधानविषयत्वं युक्तम् । शिष्टाचारोपि न पचनो दृश्यते । अ

विलायामपि सर्वाधानपक्षे वैश्वदेवश्राद्धं च पचने कुर्यात् । अन्यथौपासने इत्युक्तं

अग्नौकरणं तु प्रयोगपारिजातादिभिरादिकादिसर्वश्राद्धेषु पिण्डपितृयज्ञव्यति

१—अस्य 'इति केचित्' इत्यत्रान्वयः । २—येषां सूत्रे औपासनाग्नौ नित्यः पाकः पावकः
श्राद्धपाकोपि तत्रैवेत्यर्थः ॥ ३—गृह्यकारैरुक्तमष्टकापार्वणश्राद्धहोमादिः गृह्याग्निताव्यं गृह्यम् । न
गृहं शाला तत्रोक्तं वास्तुकर्ममात्रं गृह्यम् । न त्वष्टकाहोमादीति वाच्यम् । तावन्मात्रगृहे मानाभा
वचनवैयर्थ्यात् । नापि गृहं दाराः तत्रोक्तं गृह्यमिति वाच्यम् । गृहीत्यनेन गतत्वात् । पञ्चयज्ञा
गृही कुर्यादिति योजना, न तु वैवाहिकेग्नौ पञ्चयज्ञविधानं कुर्यादिति । वैश्वदेवस्य गृह्यकर्मत्वेन त
संबन्धस्य निन्देः । पञ्चानामताग्निसाध्यत्वाच्च । आन्वाहिकीं नित्यां पक्तिं पाकं च तदग्नौ क

नेलींकिंके पचने वा पाके कृतेपि गृह्याग्नौ पक्कचरुणैव कार्यमिति प्रतिभाति । म
रन्नेष्वेवम् । विधुरोत्सन्नाग्न्यादेस्तु पृष्ठेदिविविधानेनाग्निसंपादनमित्युक्तम् । हरि
भाष्ये इति पाकाग्निः ॥

चन्द्रिकायां मार्कण्डेयः-‘अह्नः षट्सु मुहूर्तेषु गतेषु प्रयतान्द्रिजान् । प्र

प्रेषयेत्तेषां प्रदायामलकोदकम् ॥’ देवलः-‘ततो निवृत्ते म
श्राद्धकृत्यनिर्णयः ।

कृत्तरोमनखान् द्विजान् । अभिगम्य यथान्यायं प्रयच्छेदन्तधावन
तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम् । पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदेविकपूर्वकम्
औदुम्बरैस्ताम्रमयैः । ‘अत्र क्षौरामलकस्नानादि निषिद्धतिथ्यादिव्यतिरिक्तविषय
इति हेमाद्रिर्माधवश्च । यत्तु चन्द्रिकायां प्रचेताः-‘तैलमुद्वर्तनं स्नानं त
त्पूर्वाह्न एव च । श्राद्धभुग्भ्यो नखश्मश्रुच्छेदनं तु न कारयेत् ॥’ इति तन्निषिद्धति
दिविषयम् । निषिद्धतिथ्यादि तु प्रागुक्तम् । अभ्यङ्गे तु कलिकायां कात्याय
‘तैलमुद्वर्तने देयं ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः । तैरभ्यङ्गश्च कर्तव्यो वर्ज्यकालं न चिन्तयेत्
अपरार्के प्रचेताः-‘स्नातोधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्मणि । श्राद्धकृच्छुक्कव
स्यान्मौनी च विजितेन्द्रियः ॥’ हेमाद्रौ जाबालिः-‘ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च
स्नानमभोजनम् । रत्यौषधं परान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥’ वस्त्रे विशेषमाह
भृगुः-‘नग्नः स्यान्मलवद्वासा नग्नः कौपीनकेवलः । द्विकच्छोनुत्तरीयश्च अकच्छो
एव च । नग्नः काषायवासाः स्यान्नग्नश्चार्द्रपटः स्मृतः । नग्नो द्विगुणवस्त्रः स्यान्नग्नो
पटः स्मृतः ॥ नग्नस्तु स्निग्धवस्त्रः स्यान्नग्नः स्यूतपटस्तथा ॥’

ततः कर्ता ऊर्ध्वपुण्ड्रं कुर्यात् । ‘जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि
तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥’ इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ ‘यज्ञो त
जपो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च । वृथा भवति विप्रेन्द्र ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्
इति बृहन्नारदीयात् ॥ ‘ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यात् दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।’
बृद्धपराशरोक्तेश्च ॥ अन्ये तु-‘ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजातीनामग्निहोत्रसमो विधिः । श्रा
काले तु संप्राप्ते कर्ता भोक्ता च तत्त्यजेत् ॥ वामहस्ते च दर्भास्तु गृहे रङ्गावलिं तथ
ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥’ इति संप्रहोक्तेः । ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपु
वा चन्द्राकारमथापि वा । श्राद्धकर्ता न कुर्वीत यावत्पिण्डान्न निर्वपेत् ॥’ इ
विश्वप्रकाशे वचनाच्च न कार्यमित्याहुः । अत्राचाराद्वचवस्था । अत एव बृ
न्नारदीये-‘ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन ।’ इति । ऊर्ध्वपुण्ड्रवि
विप्रविषयः । निषेधः कर्तव्यमिति एवार्थः ।

पुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रम् । 'ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम् । निराशाः
यन्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम्' ॥ इति बृहत्पराशरोक्तेः । भोक्तृस्तिर्यग्लेपे
त्येव । 'वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा । तिर्यगप्यूर्ध्वपुण्ड्रं वा ध
प्रयत्नतः ॥' इति व्यासोक्तिरित्याह । पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-सदभेण तु
यः कुर्यात्तिलकं बुधः । आचम्य स विशुद्धयेत दर्भत्यागेन चैव हि ॥' श्राद्ध
कालमाहापरार्के गौतमः-आरभ्य कुतुपे श्राद्धे कुर्यादारोहणं बुधः । विधिज्ञो
मास्थाय रोहिणं तु न लघयेत् ॥' एतदेकोद्दिष्टे । पार्वणे तूक्तं मात्स्ये-
मुहूर्तात्कुतुपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् । मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्तत्स्वधामदनमिष्यते ॥
'मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दीभवति भास्करः । तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते

अथ श्राद्धपरिभाषा । चन्द्रिकायां कात्यायनः-दक्षिणं पातयेज्जालुं
परिचरन् सदा । पातयेदितरं जालुं पितृन् परिचरन् स
श्राद्धपरिभाषानिर्णयः । बौधायनः-प्रदक्षिणं देवानां पितृणामप्रदक्षिणम् । देवानां
दर्भाः पितृणां द्विगुणास्तथा ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये शंखः-आवाहनाव्यसंकल्पे
दानान्नदानयोः । पिण्डाभ्यञ्जनकाले तु तथैवाञ्जनकर्मणि ॥ अक्षय्यासनये
गोत्रं नाम प्रकाशयेत् ॥' तत्रैव परिशिष्टे-क्षणे च पिण्डदाने च गन्ध
तथा । संकल्पे चासने दीपे अञ्जनाभ्यञ्जने तथा ॥ अन्नार्घ्यदानाद्यन्तेषु गोत्रं
च कीर्तयेत् ॥' कलिकायां संग्रहे-आसनावाहने पाद्ये अन्नदाने तथैव
अक्षय्ये पिण्डदाने च षट्सु नामानि कीर्तयेत् ॥' मात्स्ये-संम्वन्धं प्रथमं
गोत्रं नाम तथैव च । पश्चाद्रूपं विजानीयात् क्रम एव सनातनः ॥' तत्रैव 'सर्व
वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता । सकारः कुतुपो ज्ञेयस्तस्माद्यत्नेन तं वदेत् ॥' यथा
पसंगोत्रेति । 'पराशरसंगोत्रस्य वृद्धस्य तु महात्मनः । भिक्षोः पञ्चशिवस्याहं शिव
मधार्मिकः ॥' इति मोक्षधर्मेषु प्रयोगाच्च । तेन गोत्रसंगोत्रयोः पर्याय
स्वभिदाद्वयवस्थेति शूलपाणिः । एतदेषामाम्नातं तेषामेव । हेमाद्रौ
चेत्ताः-गोत्रं स्वरातं सर्वत्र गोत्रस्याक्षय्यकर्मणि । गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्त ए
न मुह्यति ॥ सर्वत्रैव पितुः प्रोक्तः पिता तर्पणकर्मणि । पितुरक्षय्यकाले
संकल्पने तथा ॥ शर्मन्नर्घ्यादिके कार्यं शर्मा तर्पणकर्मणि । शर्मणोऽक्षय्य
पितृणां दत्तमक्षयम् ॥' स्वरातं संवृद्धयन्तमिति हेमाद्रिः । तत्रैव चन्द्रिक
स्मृत्यन्तरे-गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते । यस्मादाह श्रुतिः स
कश्यपसम्भवाः ॥' यत्तु सत्याषाढः-अथाज्ञातवन्धोः पुरोहितगोत्रेणाचा
वति तद्वैवाहपरम् । नामोच्चारणे विशेषमाह हेमाद्रौ बौधायनः-शर्मान्तं ब्राह्म
वर्मातं क्षत्रियस्य तु । गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः ॥' पित्रादिनाम

त्रैव-‘पृथिवीवत्पितावाच्यस्तात्पिताचान्तारिक्षवत्। अभिधानापरिज्ञाने दिविषत्प्रपिताम
पित्रादीनां नाम यदा पुत्रैर्न ज्ञायते तदा ॥’ आपस्तम्बसूत्रेऽप्येवम् । एतदन्यशा
परम् । आश्वलायनानांतूक्तं तत्सूत्रे-‘यदि नामान्यविद्वांसस्तत्पितृपितामहप्रपिता
ऽपित्र्यात् ॥’ तत् कारिकापि-‘नामानि चेन्न जानीयात्तत्तेत्यादि वदेत्क्रमात्
तत्तेति सम्बन्धमात्रपरम् । तेन पितृव्यादावपि तथेति गौडाः। स्त्रीणां दान्तं नाम ज्ञे
‘दान्तं नाम स्त्रीणाम्’ इति पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलोक्तेः । केचिद्देवीशब्दान्तमा
अन्ये तु देवी दा इति द्वयोः समुच्चयमाहुः ॥

हेमाद्रौ नारायणः-‘विभक्तिभिस्तु यत् किञ्चिद्दीयते पितृदैवते । तत्सर्वं स
ज्ञं विपरीतं निरर्थकम् ॥’ चन्द्रिकास्मृत्यर्थसारयोश्च नारदीये-‘अक्षय्यासन
षष्ठी द्वितीयावाहने तथा । अन्नदाने चतुर्थीस्याच्छेषाः सम्बुद्धयः स्मृताः ॥’
व्यासः-चतुर्थी चासने नित्यं संकल्पे च विधीयते । प्रथमा तर्पणे प्रोक्ता सम्बुद्धि
जगुः इति । अत्र शाखाभेदाद्वचस्थेति हेमाद्रिः । हेमाद्रौ भृगुः-‘अध्यावने
पिण्डमन्नं प्रत्यवनेजनम् । सम्बुद्धिं तत्र कुर्वीत शेषे षष्ठी विधीयते ॥’ तत्रैव मातुर्वि
नागरखण्डे-‘मातर्मात्रे तथा मातुरासने कल्पने क्षणे । गोत्रे गोत्रायै गोत्रायाः
माद्या विभक्तयः’ ॥

हेमाद्रौ प्रभासखण्डे-‘यज्ञोपवीतिना कार्यं दैवं कर्म प्रदक्षिणम् । प्राचीनावीति
कार्यं पितृकर्माप्रदक्षिणम् ॥’ अनुपनीतस्त्रीशूद्रादेस्तृत्तरिण्येनैव सव्यापसव्ये ज्ञेये । तर
पवीतस्थानीयत्वात् ॥ ‘अपसव्यं क्रमाद्वस्त्रं कृत्वा काश्चित्सगोत्रजः ।’ इति ब्राह्म
वाचस्पतिः । यत्तु केचित् ‘सदोपवीतिना भाव्यम्’ इत्यस्य पुरुषार्थत्वात् । प्रा
नावीतिकालेऽप्युपवीतान्तरेण तत्कार्यमेवेति तत्र विशेषेण बाधात् जमदग्निः-‘स
स्तोत्रजपं त्यक्त्वा पिण्डाघ्राणं च दक्षिणाम् । आह्वानं स्वागतं चार्घ्यं विना च परि
णम् ॥ विसर्जनं सौमनस्यमाशिषां प्रार्थनं तथा । विप्रप्रदक्षिणां चैव स्वस्तिवाच
विना ॥ पितृनुद्दिश्य कर्तव्यं प्राचीनावीतिना सदा ॥’ हेमाद्रौ संग्रहे-‘आदौ विप्रां
शौचान्तेभ्यर्चने विकिरे कृते । पिण्डानप्यर्चयित्वा च विसर्ज्य ब्राह्मणांस्तथा ॥ आ
मेच्छ्राद्धकर्ता च स्थानेष्वेतेषु सप्तसु । आद्यन्तयोर्द्विराचामेच्छेषेषु तु सकृत्सकृत्
तत्रैव श्राद्धारम्भेऽवसाने च पादशौचार्चनान्तयोः । विकिरे पिण्डदाने च षट्स्वाचम
मिष्यते ॥’ आश्वलायनः-‘दानाध्ययनदेवार्चाजपहोमव्रतादिकान् । न कुर्याच्छ्र

१-‘विशिखां व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ।’ इति कर्मार्थत्वोक्तेरिति भावः । २-शूद्र
‘न शिखां नोपवीती स्यान्नोच्चरेत्संस्कृतां गिरम् ।’ इति निषेधेऽपि कर्मार्थमुपवीतमावश्यकम् । ‘वि

दिवसे प्राग्विप्राणां विसर्जनात् ॥' एतन्नित्यवर्ज्यमिति श्लोपदेवः । इदं विष्णुभिन्नदेव-
परम् ॥ 'विष्णोर्निवेदिताग्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् । पितृभ्यश्चापि तदेयं तदानन्त्या-
कल्पते ॥ पितृशेषं तु यो दद्याद्धरये परमात्मने । रेतोधाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशम-
गिनः ।' इति स्कान्दात् । 'पितरः सर्वे मनुष्या विष्णुनाशितमश्नन्ति ।' इति श्रुतेः
'यः श्राद्धकाले हरिभुक्तशेषं ददाति भक्त्या पितृदेवतानाम् । तेनैव पिण्डांस्तुलसीवि-
श्रानाकल्पकोटिं पितरस्तु तप्ताः ॥' इति ब्राह्मोक्तेश्चेति श्रीधरस्वामिनृसिंहपा-
चर्यादयः । एतत्सर्वं निबन्धविरोधान्निर्मूलम् ॥

अत्र विशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे—'श्राद्धानि तु समभ्यर्च्य नृवाराहं जनार्दनम्
शिवपुराणे—'पूजयित्वा शिवं भक्त्या पितृश्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥' पूर्वनिषेधस्तु विहिता-
न्नपरः । तथा हेमाद्रौ—'दैव्यर्चादक्षिणाङ्गादिः पादजान्वंसमूर्धनि । शिरोंसजानुपा-
वामाङ्गादि च पैतृकम् ॥' कलिकायां स्मृत्यन्तरे—'श्राद्धारम्भे तु ये दर्भाः पाद-
चे विसर्जयेत् । अर्चनादौ तु ये दर्भा उच्छिष्टान्ते विसर्जयेत् ॥ मार्जनादौ तु ये दर्भा
पिण्डोत्थाने विसर्जयेत् । उत्थानादौ तु ये दर्भा दक्षिणान्ते विसर्जयेत् ॥ प्रार्थनादौ
ये दर्भा नमस्कारे विसर्जयेत् ॥' ऊहमाह विष्णुः—'मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्या-
चक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम् ॥' यथान्यायमिति यत्र बहुव-
नान्तः पितृशब्दस्तत्र सर्वपितृवाचित्वान्नोहः । तत्रापि 'शुन्धन्तां पितरः' इत्य-
एव । सर्वपितृवाचित्वे उत्तरमन्त्रद्वयवैयर्थ्यात् । बहुवचनं तु नोह्यते । प्रकृत-
समर्थत्वात्पाशानिति वत् । ऋगन्ते च नोहः । तस्माद्वचं नोहेदिति निषेधात्
ऐकोद्दिष्टेष्वेवम् । प्रेतैकोद्दिष्टे तु 'एकवन्मन्त्रानूहेतैकोद्दिष्टे' इति विष्णुक्तेरूहः ।
बहुवचनस्याप्यूहो वचनात् । वृद्ध्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः । शेषाणामिति पितृव्याह-
दिष्टे आवाहनादिमन्त्रवर्ज्यं कार्यमिति कल्पतरुः । ऊहयोग्यपितृपदवान्मन्त्र एव
न प्रयोज्यः । न तूहः । नापि पितृपदरहितः प्रयोज्य इति शूलपाणिः । अर्था-
चोक्तं प्राक् । बह्वृचकारिकापि—'अर्घ्यप्रदानमन्त्रे तु मात्रादिपदमावपेत् । शुन्ध-
मिति पित्रादौ मात्रादिपदमावपेत् ॥ 'मातृश्राद्धे पिण्डदाने' 'ये च त्वामत्रानु' इ-
नोह इति वृत्तिकृत । तथा । 'मातुः श्राद्धेप्यनूहेन कुर्यात्पिण्डानुमन्त्रणम् । दशव-
सुपस्थानं तद्वत्कार्यमिति स्थितिः ॥ प्रवाहणमनूहेन तद्वत्पाशानमिष्यते ॥' तथ-

‘आयन्तुनस्तिलोसीति उशन्तस्त्वेति यानि तु । अनुह्यः पितृशब्दोत्र पितृसामान्यवाचकः’
आपस्तबानां तु वक्ष्यते ॥

हेमाद्रौ मार्कण्डेयः-‘स्नातः स्नातान् समाहूतान् स्वागतेनार्चयेत् पृथक् ॥’
कलिकायां नारदीये-‘प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञां प्रगृह्य च । दद्याद् ब्रह्मद-
ण्डार्थं हिरण्यं कुशमेव च ॥’ तत्रैव संग्रहे-‘तिथिवारादिकं ज्ञात्वा संकल्प्य च यथाविधि ।
प्राचीनावीतिना कार्यं सर्वं संकल्पनादिकम् ॥ सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयान्नामगोत्रे तथैव च ।
वस्वादिरूपतां चापि स्वपितृणामनुक्रमात् ॥’ पृथ्वीचन्द्रोदये नारदीये-‘श्राद्धार्थं
समनुप्राप्तान् विप्रान् भूयो निमन्त्रयेत् ॥’ आपस्तम्बस्तु-‘पूर्वेद्युर्निमन्त्रणं परेद्युर्द्वि-
तीयं तृतीयमामन्त्रणम्’ इत्याह । यूयं मया निमन्त्रणीया इति निवेदनरूपं आद्यम् ।
तद्विधिमाह शौनकः-‘गृहीत्वासुकसंज्ञस्यासुकगोत्रस्य चासुके । श्राद्धे तु वैश्वदेवार्थं
करणीयः क्षणस्त्वया ॥ इत्येवं श्राद्धकृद्ब्रूयादोतथेति वदेत्तु सः । श्राद्धस्य कर्ता स
ब्रूयात्तं प्राप्नोति भवानिति ॥ स वदेत् प्राप्नवानीति इतरस्तं प्रति द्विजः ॥’ देवे पार्वणे
पुरुरवाद्रवौ वाच्यौ । ‘पित्रादेरप्यनेनैव वृणीत विधिना द्विजान्’ । ततः कर्ता बह्वृचोऽ-
नाहिताग्निः पिण्डपितृयज्ञं परिस्तरणादीधमाधानान्तं कुर्यात् । ‘अर्धाधानिनोप्येवम्’
इति प्रयोगवारिजाते परिशिष्टे च । भाष्यकारमते आब्दिकेप्येवम् । वृत्तिकार-
मते नेदम् ॥

हेमाद्रौ शम्भुः-‘सम्मार्जितोपलिप्ते तु द्वारि कुर्वीत मण्डले । उदक्प्लवमुदीच्यं
स्यादक्षिणं दक्षिणाष्टवम् ॥’ व्याघ्रः-‘उत्तरेक्षतसंयुक्तान् पूर्वाग्रान् विन्यसेत् कुशान् ।
दक्षिणे दक्षिणाग्रास्तु सतिलान् विन्यसेत् कुशान् ॥’ तत्रैव बौधायनः-‘चतुरस्रं
त्रिकोणं च वर्तुलं चार्धचन्द्रकम् । कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम् ॥’ तत्रैव
लौगाक्षिः-‘हस्तद्वयमितं कार्यं वैश्वदेविकमण्डलम् । दक्षिणे च चतुर्हस्तं पितृणामग्नि-
शोधने ॥’ कलिकायां संग्रहे तु-‘प्रादेशमात्रं देवानां चतुरस्रं तु मण्डलम् ।
त्यक्त्वा षडंगुलं तस्मादक्षिणे वर्तुलं तथा ॥’ इत्युक्तम् । यत्तु स्मृत्यन्तरे-‘गर्तः
पश्चांगुलो विप्रे जानुमात्रो महीभुजि । प्रादेशमात्रो वैश्ये च साधिकः स तु शूद्रके ॥
तिर्यगूर्ध्वप्रमाणेन व्याख्यातो दैवपित्र्ययोः । चतुरस्रं वर्तुलं च कथितं गर्तलक्षणम् ॥
पादप्रक्षालनं प्रोक्तमुपवेश्यासने द्विजान् । तिष्ठंश्चेत् क्षालनं कुर्यान्निराशाः पितरो गताः ॥’
इति तत्समूलत्वे मण्डलाग्रे पृथक् ज्ञेयम् । तत्र गोमये हेमाद्रौ भृगुः-‘अत्यन्तजीर्ण-
देहाया वन्ध्यायाश्च विशेषतः । आर्ताया नवसूताया न गोगोमयमाहरेत् ॥’ मात्स्ये-

त्पादौ भार्यास्त्रावितवारिणा ॥' तथा—'श्राद्धकाले यदा पत्नी वामे नीरप्रदा भवेत्
आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ॥' तत्रैव—'नाथः प्रक्षालयेत्पादौ कर्ता पित्र
दिकर्मसु ॥' पाद्यानन्तरमर्घ्यमपि दद्यादिति हेमाद्रिः । तत्रैव लौगाक्षिः—'मण्ड
ल्यदुत्तरे देशे दद्यादाचमनीयकम्' ॥ तत्रैव—'विधाय क्षालनं तेषां द्विराचमनमिष्यते
स्वयं चापि द्विराचामेद्विविज्ञः श्रद्धयान्वितः ॥' हेमाद्रौ नारदीये—'यत्राचमन
रीणि पादप्रक्षालनोदकैः । संगच्छन्ते बुधाः श्राद्धमासुरं तत्प्रचक्षते ॥'

हेमाद्रौ व्यासः—'सव्येनैवासनं धृत्वा दक्षिणे दक्षिणं करम् । व्याहृतीभिः समस्त
भिरासनेषूपवेशयेत् ॥ 'समाध्वम्' इति चैवोक्त्वा दक्षिणं जानु संस्पृशन् । 'आस्यता
इति तान्मूयादासनं संस्पृशन्नपि ॥' हेमाद्रौ शातातपः—'द्वौ दैवैथर्वणौ वि
प्राङ्मुखानुपवेशयेत् । पित्र्ये तूदङ्मुखान्स्त्रीश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान् ॥' याज्ञवल्क्य
'द्वौ दैवे प्राक्त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा ॥' यत्तु हेमाद्रौ हारीतः—'दक्षिणाग्र
प्राङ्मुखान् भोजयेत् । उदङ्मुखानित्येके' इति तन्मैत्रायणीयविषयम् । 'प्राङ्
खान् भोजयेदुदङ्मुखानित्येके' इति तत्परिशिष्टात् विकल्प इति हेमाद्रि
माधवीये यमः—'भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः । उपविष्टेष्वनुप्र
कौमं तमभिभोजयेत् ॥' कौर्मै—'अतिथिर्यस्य नाश्राति न तच्छ्राद्धं प्रचक्षते' । नि
नियमो माधवीये—'पवित्रपाणयः सर्वे ते च मौनव्रतान्विताः । उच्छिष्टोच्छिष्टसं
वर्जयन्तः परस्परम् ॥'

तत्रासनानि । पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—'आसनं कुतुपं दद्यादितरद्वा पवित्रकर
हेमाद्रौ चमत्कारखण्डे—'पितृणां घटितं हैमं राजतं वापि चासनम् । येन ताम्र
दत्तमासनं पितृकर्मणि ॥ स वै दिव्यासनारूढो न हि प्रच्यवते दिवः ॥' हेमा
नागरखण्डे—'अयः शंकुमयं पीठं प्रदेयं नोपवेशने ॥' कालिकायां संग्रहे—'द
दुकूलं नैपालमाविकं दारुजं तथा । तार्णं पार्णं बृसीं चैव विष्टरादि च विन्यसेत्
अग्निदग्धान्यायसानि भग्नानि च विवर्जयेत् ॥' हेमाद्रौ छागलेयः—'पश्चाद्भागा
क्रम्य प्राच्यां पंक्तिर्यथा भवेत् । दक्षिणासंस्थिता ह्येषा पितृणां श्राद्धकर्मणि
पुलस्त्यः—'श्रीपणीं वारुणी क्षीरी जम्बुकाम्रकदम्बकम् । सप्तमं बाकुलं पीठं पि
दत्तमक्षयम् ॥' संग्रहे—'शमी च काश्मरी शेलुः कदम्बो वारुणस्तथा । पश्चासन
शस्तानि श्राद्धे देवार्चने तथा ॥' कारिका—'द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ पित्र्ये त्रीन्विप्रा
यत्तु ॥' पैरीजसि—'कृताः श्राद्धवेलायां श्रोत्रियो गृदि इत्युते ॥' आश्र

कटिदेशे तु तिलैः सह कुशत्रयम् ॥' यत्तु कातीयम्-‘नीवी कार्या दक्षिणे कुशौ कुशैः सह ।’ इति तद्वृद्धिश्राद्धे । ‘पितृणां दक्षिणे पार्श्वे विपरीतां तु दक्षिणे स्मृत्यन्तरात् । वामे दक्षिणे वेत्याचाराद्व्यवस्थेति मदनपारिजाते ॥

आचार्यः-‘प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्रीस्मरणं तथा । श्राद्धं कर्तास्मीति वाच्यं कुरुष्व च ॥’ ब्राह्मे-‘ततस्तिलान्गृहे तस्मिन्विकिरेच्चाप्रदक्षिणम् परया युक्तो जपेदपहता इति ॥’ स्मृत्यर्थसारे-‘अपहता इति तिलान्विकी मित्युच्चा प्रोक्षेत् ॥’ पराशरः-‘तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रोक्षयेदन्नजातं तु शूद्रदृष्ट्यादिशुद्धये ॥’ हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे-‘श्राद्धं ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गदाधरम् । वस्वादींश्च पितॄन् ध्यात्वा ततः श्राद्धं देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव । आदिमध्यावसानेषु त्रिरावृत्तं जपेद्बुधः । पितरः क्षिप्रमायांति राक्षसाः प्रद्वेष्टन्त तत्रैव स्कान्दे-‘तिला रक्षन्त्वसुरान् दर्भा रक्षन्तु राक्षसान् । पङ्क्तिं वै श्रोतुं तिथिः सर्वरक्षकः ॥’ वसिष्ठः-‘शुद्धवतीभिः कूष्माण्डीभिः पावमानीभिः प्रोक्षयेत् ॥’ इति ।

अथ देवार्चा । तत्र प्रत्युपचारमाद्यन्तयोरपो दद्यादित्युक्तं वृत्तौ स्मृतम् च हेमाद्रौ ब्राह्मे-‘आसनेष्वासनं दद्याद्दामे वा दक्षिणेपि वा । पितृकर्मणि दद्यात्तु दक्षिणे ॥’ प्रचेताः-‘आसनेष्वासनं दद्यान्नतु पाणौ कदाचन । मन्त्रेण गृह्णीयुस्ते तु तानकुशान् ॥’ धर्मोसीति मंत्रोऽन्यत्र द्रष्टव्यः । दर्भानादाय हस्ताभ्यां गृहीत्वा दक्षिणे करे । दैवे क्षणः क्रियतां तु निरंगुष्ठं आंतथेति द्विजा ब्रूयुस्ते प्राप्नोतु भवान् इति ॥ कर्त्ता ब्रूयात्ततो विप्रः प्राप्नोतु ॥’ पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये-‘यवैर्दमैश्च विश्वेषां देवानामिदं दत्त्वेति भूयो दद्याद्वै दैवे क्षण इति क्षणम् ॥’ तच्च षष्ठ्या चतुर्थ्या वा कर्त्तव्यं स एव । ‘ततोर्घ्यं कल्पयेत्’ इति मन्वादयः । शौनकजयन्ताभ्यां देवार्चनस्योक्तेः । ‘आश्वलायनानां दैवेऽर्घ्यदानं न’ इति वोपदेवस्तत्र । ‘योगपारिजातविरोधात् । वृद्धिश्राद्धे तु देवेऽर्घ्यं दद्यात् । ‘देवेभ्यो दिहार्घ्यं श्रुतिचोदनात् ।’ इति शौनकोक्तेः ।

अथार्घ्यपात्रम् । पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्यपात्रयोः-‘पात्रं वनस्पतौ पण्यं पुनः । जलजं वापि कुर्वीत तथा सागरसम्भवम् ।

तथा । यज्ञियं च समं वापि अर्घ्यार्थं पूरयेद्वुधः ॥' अत्र विप्रैकत्वद्वित्वचतुष्टय-
 र्घ्यपात्रे द्वे एव । मानवसूत्रे तु—'द्वे वैश्वदेविके त्रीणि पित्र्ये एकैकमुभयत्र च'
 क्तम् । तदेकविप्रपरं पात्रालाभपरं चेति हेमाद्रिः । मदनरत्ने तु दैवे एकपात्रमुच्यते
 पृथ्वीचन्द्रोदयोपि 'पैत्रिकपात्राणि द्वे द्वे वैश्वदेविके ।' इति बृहत्पाराशरो
 एवेत्याह । बह्वृचानां तु दैवे विप्रद्वित्वेप्येकमर्घ्यपात्रमर्धशो दद्यादित्युक्तं परा-
 प्रयोगपारिजाते च । कलिकायां हारीतः—'दत्तमक्षय्यतां याति स्वाङ्गे
 तु यत्कृतम् ॥' बृद्धमनुः—'मृन्मयं दारुजं पात्रमयःपात्रं च यद्भवेत् । राजतं
 कार्ये शिलापात्रं च वर्जयेत् ॥' पुराणसमुच्चये—'मृत्स्नाभवं तथा कांस्यमारक्तं
 संभवम् । त्रपुसीसलोहभवं सदा पात्रं विवर्जयेत् ॥' तत्रैव—'अष्टाङ्गुलं भवेत्पा-
 तृणां राजतं शुभम् । दशाङ्गुलं तु देवानां सौवर्णं शक्तितः कृतम् ॥ स्थापयेदर्घ्यं
 न्युब्जे तत्र कुशोपरि । द्वे द्वे पवित्रे विधिवत्पात्रयोश्चोपरि क्षिपेत् ॥ यज्ञपा-
 'पवित्रेस्थेति मन्त्रेण पवित्रे छेदयेत्तु ते । ओषधीमन्तरे कृत्वा अङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वणं
 स्पर्शयेन काष्ठेन लोहेन न मृन्मयनखादिभिः ॥' वसिष्ठः—'तूष्णीं प्रोक्ष्याम्भस-
 कुर्यादूर्ध्वं विले ततः । पूरयेत्पात्रयुग्मं तु कृत्वोपरि पवित्रके ॥'

बृद्धपराशरः—'पात्रद्वयमथार्घ्यार्थं तैजसं चैकवस्तुनः । प्राङ्मुखोऽमरतीर्थेन
 देव्युदकं क्षिपेत् ॥ यवोसीति यवांस्तत्र तूष्णीं पुष्पाणि चन्दनम् ॥' मानव-
 सुमनसः प्रक्षिप्योत्पूययवानप्रक्षिप्य' इति । यवोसीति मन्त्रः पाद्मे—'यवोसि धान-
 वा वारुणो मधुमिश्रितः । निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतः ॥' 'राजो वा
 मधुसंयुतः' इति परिशिष्टपाठः । गोभिलेन तु—'यवोसि सोमदैवत्यः' इति
 मन्त्रोऽत्र स्वाहायुक्तः उक्तः । हेमाद्रौ यमः—'यवहस्तस्ततो देवान् विज्ञा-
 हनं प्रति । आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा' बृद्धपराशरः—'ततः
 न्यस्य विप्रदक्षिणजानुनि । देवानावाहयिष्येहमिति वाचमुदीरयेत् । आवाहयेत्य-
 विश्वेदेवास आगत । विश्वेदेवाः शृणुतेममिति मन्त्रद्वयं पठेत् ॥' श्राद्धविशेषे
 वानामज्ञाने हेमाद्रौ बृहस्पतिः—'उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः ।
 चारणीयस्तैर्मन्त्रः श्रद्धासमन्वितैः ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः
 विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥' इदं चावाहनमर्घ्यपात्रासादनात् प्राक् हेमा-
 क्तम् । तत्र कातीयैः प्राकार्यं तथैव तत्सूत्रात् । अन्यैस्तदुत्तरम् । पृथ्वीचन्द्रोदये
 'सयवं पुष्पमादाय चरणादिशिरोन्तकम् । अर्चतेत्यर्चनं कुर्यादन्तरे चोदकं तथा ॥'

स्वाहाध्यां इति विन्यसेत् ॥' गार्ग्यः- 'दत्त्वा हस्ते पवित्रं च कृत्वा पूजां च पादतः
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत् ॥' संग्रहे- 'विश्वेदेवा इदं वोर्ध्यमिति दा-
समादिशेत् ।' तदन्ते स्वाहा नम इति वाच्यम् । 'या दिव्या इति मन्त्रेण स्वाहाका-
नमोन्तकम् ।' इति हेमाद्रौ नागरखण्डात् । आथर्वणसूत्रन्तु- 'पाद्यमर्घ्यमाच-
मनीयमिति द्विजकरे निनयेत् ।' इत्यस्यैव त्रयमुक्तम् । गभस्तिः- 'अर्घ्यं च पिण्ड-
दानं च स्वस्त्यक्षय्ये तथैव च । गन्धपुष्पादिकं सर्वं हस्तेनैव तु दापयेत् ॥' प्रतिवि-
यादिव्येत्यावृत्तिः । वहवृचानां त्वनेन दत्ताध्यानुमन्त्रणम् । ततः पात्रं दक्षिणे देवेभ्य-
स्थानमसीति न्युब्जमुत्तानं वा कार्यमिति गारुडे उक्तम् । एतदापस्तम्बान-
नियतमन्येषां न ॥

हेमाद्रौ विष्णुधर्मे- 'गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च वस्त्रैश्चाप्यथ भूषणैः । अर्चयेद्ब्राह्मणान्
शक्त्या श्रद्धाधानः समाहितः ॥' पृथ्वीचन्द्रोदये मार्कण्डेयः- 'चन्दनागरुकर्पूरकुं-
मानि प्रदापयेत् विष्णुः- 'चन्दनकुंकुमकर्पूरागरुपद्मकान्यनुलेपनाय ।' इति । व्यास-
- 'अपवित्रकरो गन्धैर्गन्धद्वारेति पूजयेत् ।' कलिकायां स्मृतिः- 'गन्धद्वारेति वै गन्ध-
मायने ते च पुष्पकम् । धूरसीत्यमुना धूपमुदीप्यस्वेति दीपकम् ॥ युवं वस्त्राणि मन्त्रेण
वस्त्रं दद्यात्प्रयत्नतः । आसने स्वासने वृषादर्थैस्त्वर्घ्यं द्विजोत्तमः ॥ सुगन्धिश्च सुपु-
ष्पाणि सुमाल्यानि सुधूपकः । सुज्योतिश्चैव दीपे तु स्वाच्छादनमिति क्रमः ॥
विप्राणां गन्धेन वर्तुलं त्रिपुण्ड्रं वा न कार्यम् । हेमाद्रौ देवलः- 'ललाटे पुण्ड्र-
दृष्ट्वा स्कन्धे मालां तथैव च । निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम् ॥
पुण्ड्रकंवर्तुलमित्यपराकं मदनरत्ने च- 'पुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वर्तुलमर्धचन्द्रं च' ॥ 'ऊर्ध्वं
च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्वै पित्र्ये च
कर्मणि । निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम् ॥' इति वृद्धपराशरोक्ते-
स्तिर्यग्लेपो भवत्येव । 'वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा । तिर्यगप्यूध्वपूण्ड्रं व-
धारयेत्तु प्रयत्नतः ॥' इति व्यासोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः । यत्तु बृहन्नारदीये-
'ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन' इति तत्कर्तृपरम् । हेमाद्रौ ब्राह्मे-
'पूतिकं मृगनाभिं च रोचनं रक्तचन्दनम् । कालेयकं तूषगन्धं तुरुष्कं चापि वर्ज-
येत् ॥' कस्तूर्या विकल्प इति हेमाद्रिः । वृद्धशातातपः- 'पवित्रं तु करे कृत्वा य-
समालभते द्विजान् । राक्षसानां भवेच्छ्राद्धं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥' पुष्पं तु ब्राह्मे-
जातीचम्पकलोध्राश्च मल्लिका बाणवर्वरी । चूताशोकाटरुषं च तुलसीशतपत्रकम् ।
कुब्जकं तगरं चैव भडमारण्यकेतकी । राक्षसाणां च भवेच्छ्राद्धं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥

द्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च चम्पकम् ॥' तत्रैव वृद्धमनुः—'न नियुक्तः शिखावमाल्यं शिरसि धारयेत् ।'

वर्ज्यानि पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये—'केतकीं तुलसीपत्रं विल्वपत्रं च वर्जयेत्

आद्धे वर्ज्यपुष्पाणि ।

द्रोणं च करवीरं च धत्तूरं किंशुकं तथा ॥' माधवीये स्मृत्यर्थस्य च तुलसी निषिद्धा । तुलसीनिषेधो निर्मूल इति हेमाद्रिः । सम

त्वोपि पिण्डपरः । 'तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः । प्रयान्ति गरुडारूढास्तत् चक्रपाणिनः ॥' इति प्रयोगपारिजाते पाद्मोक्तेरिति बोपदेवः । वृद्धपराशर 'न जातीकुसुमैर्विद्वान्बिल्वपत्रैश्च नार्चयेत् । जपादिकुसुमं झिण्टी रूपिकासकुरण्टिका पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः ॥' हेमाद्रौ शङ्खः—'उग्रगन्धीन्यगन्धी चैत्यवृक्षोद्भवानि च । पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥ जलोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥' अङ्गिराः—'न जातीकुसुमानि दद्यान् कदलीपत्रम्' इति जात्यां विक्रम इति हेमाद्रिः—निषेधः पिण्डविषयः । 'कुन्दं शंभौ च नो दद्यान्नोन्मत्तं गरुडध्वजं पिण्डे जातीं च नो दद्याद्देवीमर्केण नार्चयेत् ॥' इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेरिति बोपदेवः स्मृतिसारे—'आगस्त्यं भृङ्गराजं च तुलसी शतपत्रिका । चम्पकं तिलपुष्पं च पितृवल्लभाः ॥ केतकीं करवीरं च बकुलं कुन्दकं तथा । पाटलां चैव जातीं च श्रयत्नेन वर्जयेत् ॥ केचित्पिण्डे तुलसीमाहुः । 'पितृपिण्डार्चनं आद्धे यैः कृतं तुलसीदं प्रीणिताः पितरस्तैस्तु यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥' इति मार्कण्डेयेः ।

धूपस्तत्रैव विष्णुधर्मे—'धूपस्तु गुग्गुलुर्देयस्तथा चन्दनसारजः । अगरुश्च सकास्तुरुष्कस्त्वक्तथैव च ॥' विष्णुः—'घृतमधुयुक्तं गुग्गुलुं श्रीखण्डदेवदारुसरलं दद्यात् ॥' इति । तत्रैव देवलः—'ये हि प्राण्यंगैजा धूपा हस्तवाताहताश्च ये । न आद्धे नियोक्तव्या ये च केचोऽग्रगन्धयः ॥ घृतं न केवलं दद्याद्घृष्टं वा तृणगुग्गुलुमादीपमाह विष्णुः—'घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः । वसामेदोद्भवं दीपं यत्नेन विवर्जयेत् ॥' वस्त्रं ब्राह्मे—'कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा । आद्धे तानि यो दद्यात्कामान्नाप्नोति चोत्तमान् ॥' हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्ते—'यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राभावे विजानता । पितृभ्यो वस्त्रदानस्य फलं तेनाश्नुतेऽखिलम् ॥' तत्रैव पादः—'निष्क्रयो वा यथाशक्ति वस्त्राभावे प्रदीयते ॥' अन्यान्यपि च देयानि । त

कालिकापुराणे—'धात्वादिनिर्मिता रम्या दीपिकाः श्राद्धकर्मणि आद्धे देयवस्तुनिर्णयः ।

पितृनुद्दिश्य यो दद्यात्स भवेद्भाजनं श्रियः ॥ यो धूपपात्रदानं तु प

कञ्चुकं तथोष्णीषं पितृभ्यः प्रतिपादयेत् । ज्वरोद्भवानि दुःखानि स कदाचिन्न पश्य
स्त्रीणां श्राद्धे तु सिन्दूरं दद्युश्चण्डातकानि च । निमन्त्रिताभ्यः स्त्रीभ्यो ये ते
सौभाग्यसंयुताः ॥ ' हेमाद्रावादित्यपुराणे ॥ ' न कृष्णवर्णं दातव्यं नापि का
संभवम् । पितृभ्यो नापि मलिनं नोपयुक्तं कदाचन ॥ न च्छिद्रितं नापदशं न धौतं व
णापि च' । कार्पासनिषेधोन्यसंभवे । तत्रैव 'पितृन् सत्कृत्य वासोभिर्दद्याद्यज्ञोप
कम् । यज्ञोपवीतदानेन विना श्राद्धं तु निष्फलम्' ॥ एतद्यतिस्त्रीशूद्रश्राद्धेपि देया
हेमाद्रिः॥

तत्रैव नृसिंहपुराणे-कमण्डलुं ताम्रमयं श्राद्धेषु प्रददाति यः । काष्ठेन नि
वापि नारिकेलमथापि वा ॥ दद्यात् कमण्डलुं श्राद्धं स श्रीमानभिजायते । यो म
काविरचिताञ्श्राद्धेषु च घटाञ्जुमान् ॥ प्रदद्यात्करकान्वापि सोऽक्षयं विंदते सुख
तत्रैव-'उपानच्छत्रवस्त्राणि भुक्तिपात्रं कमण्डलुम् । शयनासनयानानि दर्पणव
नानि च ॥ अन्नं सुसंस्कृतं गन्धांस्ताम्बूलं दीपचामरम् । पितृभ्यो यः प्रयच्छेत्तु वि
लोकं स गच्छति ॥ ' सौरपुराणे-'चामरं तालवृन्तं च श्वेतच्छत्रं च दर्पणम् । त
पितृणामेतानि भूमिपालो भवेदिह ॥ ' तत्रैव नान्दिपुराणे-'अलंकाराः प्रदातव्या य
शक्ति हिरण्ययाः । केयूरहारकटकमुद्रिकाकुण्डलादयः ॥ ' तथा 'स्त्रीश्राद्धेषु प्र
स्युरलंकारास्तु योषिताम् । मञ्जीरमेखलादामकर्णिकार्कङ्कणादयः ॥ आदर्शव्यजन
त्रशयनासनपादुकाः । मनोज्ञाः पट्टवासाश्च सुगन्धाश्चूर्णमुष्टयः ॥ अंगारधानिकाः
योगपट्टाश्च दृष्टयः ॥ कटिसूत्राणि रौप्याणि मेखलाश्चैव कम्बलाः ॥ कर्पूर
भाण्डानि ताम्बूलायतनं तथा । भोजनाधारयन्त्राणि पतद्ग्राहांस्तथैव च । तथाञ्ज
लाकाश्च केशानां च प्रसाधनम् । एतान् दद्यात्तु यः सम्यक् सोऽश्वमेधफलं लभेत्
स्कान्दे-'सौवर्णं राजतं वापि कांस्येनाप्यथ निर्मितम् । दत्त्वा भोजनपात्रं तु स
भवति भूतले ॥ ' वामनपुराणे-'वन्दीकृतास्तु ये केचित्स्वयं वा यदि वा परैः ।
केनाप्युपायेन यस्तान्मोचयते नरः ॥ पितरस्तस्य गच्छन्ति शाश्वतं पदमव्ययम्
पराशरः-'वाचयेत्परिपूर्णत्वं वासो दत्त्वा विधानतः ।'

नारदीये-'देवैश्च समनुज्ञातो यजेत्पितृगणं त्वथ' । तत्र पित्र्ये आसनाद्यशेष
नकाण्डे वैश्वदेविकं ज्ञेयम् । विशेषस्तूच्यते । तत्रासने द्विगुणभुग्नाः कु
अत्रावाहनमासनात्पूर्वं वाध्यपूरणोत्तरं वाधौकरणोत्तरं वेति स्मृतिषु पक्षा उक्त
एषां शाखाभेदेन व्यवस्था । द्वितीयपक्ष एव बहुसंमतः । तत्रार्थमाहाश्वलार

न तत् । तदेव हस्तघटितं दैविकं केवलं तथा ॥' इति च्छन्दोगपरिशिष्टम् ।
 अन्यान्यपि पात्राणि पूर्वमुक्तानि । मनुः—'अन्नाभावे द्विजाभावे यद्येको ब्राह्मण-
 भवेत् । पात्राण्यासादयेत्रीणि नतु ब्राह्मणसंख्यया ॥' दत्तकादेः कर्तुर्हि पितृत्वाद-
 वचनात् । त्रीण्येव पात्राणीति हरिहरः । माधवीये बैजवापः—'अर्घ्यं पि-
 त्रीण्येव कुर्यात्पात्राणि धर्मवित् । एकस्मिन्वा बहुषु वा ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥' हेम-
 वप्येवम् । अत्रानुमन्त्रणं सकृत् । तिलोसीत्यस्य प्रतिपात्रमावृत्तिः पितृशब्दस्यानू-
 वृत्तिकृत् ॥ दर्भश्च त्रिगुणं पवित्रम् । 'तिस्रः तिस्रः शलाकास्तु पितृपात्रेषु पा-
 एकोदिष्टे शलाकैकां निधायोदकमाहरेत् ।' इति हेमाद्रौ चतुर्विंशतिमत-
 तत्रैव विष्णुः—'दक्षिणाग्रदर्भेषु दक्षिणापवर्गचमसेषु पवित्रान्तर्हितेष्वपि आसि-
 श्नो देवीति मन्त्रेण जलसेचनं बह्वृचभिन्नविषयम् ॥' अत्रास्मिन्पक्षे प्रा-
 मन्त्रावृत्तिः ॥

कारिकायाम्—'गन्धपुष्पाणि चैतेषु पात्रेषु प्रक्षिपेदथ ॥' ब्राह्मे—'जलं
 दधि घृतं तिलतण्डुलसर्षपान् । कुशाग्रमधुपुष्पाणि दत्त्वाचामेत्ततः स्वयम् ॥'
 कर्ण्यः—'ततोर्घ्यपात्रसंपत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्तमान् । तदग्रे चार्घ्यपात्राणि स्व-
 इति विन्यसेत् ॥' ततस्तिलहस्तो विप्रसव्यजानौ दक्षिणकरं न्यस्यावाहनं पृ-
 अत्र गोत्रसम्बन्धनामानि द्वितीयान्तत्वं च प्रागुक्तम् । बैजवापगृह्ये—'तिष्ठन्
 नावाहयिष्यामीत्यामन्त्र्य ॥' कौर्मे—'अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणां दक्षिणामु-
 आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुधः ॥ आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तु न-
 अत्र सव्यस्यापि प्रागुक्तेर्विकल्पः । अत्राद्यमन्त्रावृत्त्याऽस्मत्पितरममुकशर्माणममु-
 वसुरूपमावाहयामीत्युक्त्वा मूर्धादिपादान्तं तिलान्विकीर्यायन्तु न इति सर्वान्ते सकृ-
 इति निबन्धाः । अत्रोपवेशनसंवेशनपाद्याध्याचमनीयान्यपि हेमाद्रिणं
 तान्यथर्ववेदिनां नियतानि नान्येषाम् ॥ तेषां च प्रपितामहादिपित्रन्तं प्राति-
 सर्वः प्रयोगः ॥

वाराहै—'गन्धपुष्पार्चनं कृत्वा दद्याद्धस्ते तिलोदकम् ॥' गार्ग्यः—'शिरस्त-
 तो वापि सम्यगभ्यर्चयेत्ततः ॥' 'ततः स्वधाध्यां इति पितृपितामहादिविप्राग्रे
 निवेदयेत् ।' इति कारिकायां वृत्तौ च । आश्वलायनः—'प्रसव्येनेतरपा-
 छान्तरेणोपवीतित्वादक्षिणेन वा सव्योपगृहीतेन पितरिदं ते अर्घ्यं पितामहेदं ते अ-
 तामहेदं ते अर्घ्यमित्यपूर्वताः प्रतिग्राहयिष्यन् सकृत्सकृत्स्वधाअर्घ्या इति प्रसृष्टा

प्रागन्या अपो दद्यात् । यद्यप्यत्र सव्येन दक्षिणेन वाध्यं दद्यादित्युक्तं तथापि दक्षिणेनेत-
 भिमंतोर्थः । कारिकायां वृत्तौ चैवम् । 'पित्रादेस्त्रिभिः पात्रैर्दद्यात् । पितुः स्थ-
 विप्रत्रयं चेदेकमर्घ्यं विभज्य दद्यात् । त्रयाणां स्वधा अर्घ्या इति सकृन्निवेदनम् । ए-
 पैतामहादावापि । अन्यजलदानमर्घ्यमन्त्राश्च प्रतिविप्रमावर्तन्ते । तेषु गन्धादौ च प्रति-
 विप्रं पदार्थानुसमयः काण्डानुसमयो वा । पित्रादित्रयाणामेकविप्रपक्षेत्रिभिः पात्रैरेकस्व-
 वाध्यं दद्यात् ।' इति वृत्तिः । कारिकापि—'स्वधाऽर्घ्या इत्यपोर्घ्यास्ता उषवीती निवेदयेत्
 निवेदनात्प्राक् प्राचीनार्वातमेवेत्यर्थः । 'अर्घ्यं सशेषमादाय दक्षिणेन तु पाणिना । सव्य-
 हस्तगृहीतेन निनयेत् पितृतीर्थतः ॥ दत्त्वा दत्त्वा निनीतास्ता यादिव्याचानुमन्त्रयेत् ॥
 यत्तु—'यादिव्या इतिमंत्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्' । इति । यच्च वाराहे—'तिल-
 म्बुना चापसव्यं दद्यादर्घ्यादिकं द्विजः ।' इति । यच्च व्यासः—'गोत्रसंबन्धनामाणि
 पितृणामनुकीर्तयन् । एकैकस्य तु विप्रस्य अर्घ्यपात्रं विनिक्षिपेत् ॥' इति तद्ब्रह्मवृत्ताति-
 रिक्तविषयम् । तत आचामेत् । एवं मातामहेष्वपि ॥

आश्वलायनः—'संस्त्रवान् समवनीय ताभिरद्भिः पुत्रकामो मुखमनक्ति ।' संस्त्र-
 वशेषः । 'संस्त्रवोहि परिशिष्टो भवति' इति शतपथश्रुतेः । केचित्तु हस्तगलि-
 ताम्बु वदन्ति । समवनीयान्त्ये द्वे पात्रे पितृपात्रं आसिच्येति वृत्तिः । 'प्रथमे पात्रे
 संस्त्रवान् समवनीय' इति कातीयसूत्राच्च । ब्राह्मे तु प्रतिविम्बावलोकनमुक्तम्
 स्कान्दे—'त्वायुःकामस्य नेत्रासेचनमुक्तम् । विप्रैः प्राङ्मुखस्य कर्तुरभिषेकः कार्य-
 इति केचित् । आश्वलायनः—'नोद्धरेत् प्रथमं पात्रं पितृणामर्घ्यपातितम् । आवृ-
 तास्तत्र तिष्ठन्ति पितरः शौनकोब्रवीत्' ॥ 'यावद्विप्रविसर्जनम्' इति तुर्यपादे यमीय-
 पाठः । अत्र वृत्तिः—'पितृपात्रं समवनयनदेशान्न चालयेदाश्राद्धसमाप्तेः । यस्मात्तत्र
 तृतीयपात्रेणावृताः ।' इति यद्वा 'प्रथमपात्रमेव न्यग्विलं कुर्यात्' इति । कामाभा-
 वेपीदमेव शेषप्रतिपादनम् । हेमाद्रौ कौर्मे—'संस्त्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्या-
 त्समाहितः । पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं निधापयेत् ॥' शूलपाणौ यमस्तु-
 'पैतृकं प्रथमं पात्रं तस्मै पैतामहं न्यसेत् । प्रपितामहं ततो न्यस्य नोद्धरेन्न च
 चालयेत्' ॥ इत्याह । अथ 'संस्त्रवानानीय तृतीयेनाच्छाद्य न्युब्जीकुर्यात्' इति सर्वै-
 कवाक्यतयार्थ इति केचित् । अत्रिः—'गन्धादिभिस्तदभ्यर्च्य तृतीयेनापिधापयेत् ।
 पितृभ्यः स्थानमसीति शुचौ देशेर्चितेर्चयेत् ॥' अर्चनं न्युब्जीकृतेपि तुल्यम् ।

‘न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्’ इति प्रचेतसोक्तेः । सर्वविप्रोत्तरतो न्यसेदिति हे कल्पतरुः ॥ विप्रवामे इति हलायुधः । कर्तुर्वामे इति शूलपाणिः । विवृत्तं वापि पितृपात्रं तु तद्भवेत् । इत्युशनसोक्तन्युब्जतैव साधुः । मातृ संस्त्रवानपि पितृपात्र एव गृहीत्वा प्रयाजवत्तन्त्रेण न्युब्जी कुर्यात् इति शूलपाणिः । एकोद्दिष्टे तूहेन न्युब्जतेति पितृभक्तौ श्रीदत्तः । यमोपि—‘स्पृष्टमुत्तरीयं नीतमुदघाटितं तथा । पात्रं दृष्ट्वा व्रजन्त्याशु पितरस्तं शपन्ति च ॥’ वैश्वदेवः । नमिति मदनपारिजातः । वैजवापः—‘तस्योपरि कुशान् दत्त्वा प्रदद्याद्देवपुत्रं गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं वस्त्रोपवीतके ॥’ अत्र गन्धादेर्देवे पित्र्ये च पदं मयस्य याज्ञवल्क्योक्तकाण्डानुसमयेन विकल्पो ज्ञेयः । बह्वृचानां तु सप्तम्यनुक्तेः काण्डानुसमय एव । अत्र प्राचीनावीती नामगोत्रसंबुद्ध्याद्युक्तं प्राक् दैववत्तदन्ते आचमनं च । हेमाद्रौ कालिकापुराणे—‘निर्वर्त्य ब्राह्मणादेशात् तत्रैव यथाविधि । भाजनानि ततो दद्याद्धस्तशौचं पुनः क्रमात् ॥’ आदेशात् दद्यादित्यन्वयः । तेन तत्रापि प्रश्नानुज्ञे ज्ञेये । तत्रैव ब्राह्मे—‘मण्डलं कार्याणि नैवारैश्चूर्णकैः शुभैः । गौरमृत्तिकया वापि भस्मना गोमयेन वा ॥’ ‘भस्मना वारिणा वापि कारयेन्मण्डलं ततः । चतुःकोणं द्विजाग्र्यस्य क्षत्रियस्य तु ॥ मण्डलाकृति वैश्यस्य शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम् ॥’ बह्वृचः शिष्टे तु—‘दैवे चतुरस्रं पित्र्ये वृत्तं मण्डलं कृत्वा क्रमेण सयवान् सतिलांश्च दद्यात् ।’ इत्युक्तम् । मार्कण्डेयः—‘यातुधानाः पिशाचाश्च क्रूरा ये चैव राक्षसा इह हरन्ति रसमन्यस्य मण्डलेन विवर्जितम् ॥’

हेमाद्रौ हारीतः—‘भूमावेव निदध्यान्नोपरि पात्राणि’ इति । तानि च हेमाद्रौ वज्रिराह—‘भोजने हेमरौप्याणि दैवे पित्र्ये यथाक्रमम् ॥’ हारीतः—‘राजतपात्राणि कांस्यपात्राणि भोजने ।’ इति तत्रैव वाराहे—‘सौवर्णानीह रौप्याणि कांस्यानि भोजने । अन्यान्यपि हि कार्याणि दारुजान्यपि जानता ॥ नायसान्यपि कार्याणि चैव न तु क्वचित् । नच सीसमयानीह शस्यन्ते त्रपुजान्यपि ॥’ अत्रिः—‘पञ्चाशत्पात्राणि कांस्यं द्व्यधिकं भोजनाय वै । गृहस्थैस्तु सदा कार्यमभावे हेमरौप्ययोः ॥ पातृभ्यां विना न स्युः पर्णपात्राणि भोजने ॥’ पृथ्वीचन्द्रस्तु—‘कांस्यपात्रे हविर्दद्यात् । पितरो गताः ।’ इति ब्राह्मोक्तेः कांस्यपात्रनिषेधमाह । बोपदेवस्तु स्मृतिसंज्ञकः । जहार । श्राद्धे पलाशपात्राणि मधुकौदुम्बराणि च । पारिकाकुटजप्लक्षककचानि च ।

कुर्यात् । तत्र पिशङ्ग रक्षणो इति मन्त्रद्वयं केचित्पठन्ति । मात्स्ये-‘अकृत्वा भस्म
यादां यः कुर्यात्पाणिशोधनम् । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ॥’ तत्रैव ब्र
ण्डे-‘प्रक्षाल्य हस्तपात्रादि पश्चादग्निर्विधानवत् । प्रक्षालनजलं दमैस्तिर्लैर्मिश्रं क्षिपे
चौ ॥’ मण्डलोपरीति हेमाद्रिः ।

अथान्नौकरणम् । हेमाद्रौ मार्कण्डेयः-‘आहिताग्निस्तु जुहुयादक्षिणाग्नौ

अन्नौकरणनिर्णयः ।

हितः । अनाहिताग्निश्चौपसदे अग्न्यभावे द्विजेष्पुं वा ॥’ वायव्ये
‘आहृत्य दक्षिणाग्निं तु होमार्थं वै प्रयत्नतः । अग्न्यर्थं लौकिके
जहुयात् कर्मसिद्धये ॥’ आहिताग्निः सर्वाधानी ॥ अर्धाधानी तु गृह्य एवेति चन्द्रि
रार्कमिताक्षरामाधवादयः ॥ तस्यापि दक्षिणाग्नौ लौकिको गृह्य इति हेम
कल्पतरुश्च । आद्यपक्ष एव तु युक्तो बहुसम्मतश्च । यद्यपि स्मार्तमग्नौकरणं
दक्षिणाग्नौ न युक्तं तथापि वचनाद्भवतीति हेमाद्रिचन्द्रिकादयः । इदं द
एव । आब्लिकादिषु तु सर्वाधानी पाणौ अर्धाधानी गृह्ये कुर्यादिति हेमाद्रिर्मा
दयश्च । ‘पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्त
हार्थकं बुधः ॥’ इति लौगाक्ष्यादिभिः क्रमोक्तेर्विद्वत्तदक्षिणाग्निसत्त्वात् । अ
वचने साग्निक आहिताग्निरुक्तो हेमाद्रिणा । एतदापस्तम्बादीनामेव । आ
यनस्याहिताग्नेः पाणावेवेति वृत्तिः । अर्धाधानिनो गृह्ये एव व्यतिषङ्गेनेति प्र
परिजाते परिशिष्टे च । बोपदेवस्त्वाह होमशब्दः पिण्डपितृयज्ञपरः । ‘पितृ
जुहुयादक्षिणाग्नौ समाहितः । श्राद्धे त्वौपासनाग्नौ तु निराग्निलौकिकेनले । अन्न
यश्च पार्वणे समुपस्थिते । सन्धायाग्निं ततः कुर्याद्धोममग्निं समुत्सृजेत् ।’ इति
ण्डमण्डनोक्तेः । श्राद्धे गृह्याग्नौवेवेति लौकिकाग्न्यादिविधानं च तैत्तिरीयादिवि
बह्वृचस्य त्वनग्रेरपि पाणिहोम एव । अग्निपाणी विना सूत्रे विधानान्तरानुक्तेः ।
भावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।’ इति मनूक्तेश्च । वृत्तावप्येवम् ।

कचित्साग्रेरपि पाणिहोम उक्तो गृह्यपरिशिष्टे । ‘अन्वष्टक्यं च पूर्वेषुर्मासि
पार्वणम् । काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् । चतुर्ष्वेष्टेषु चाग्नीनां बह्वृ
विधीयते । पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ॥’ इति । एकोद्दिष्टं सपि
शुद्धे तन्निषेधात् । बह्वृचभाष्यकारास्तु सर्वैकोद्दिष्टेषु पाणिहोममाहुः ।
बह्वृचानामेव ॥ अत्रेदं तत्त्वम् । ‘स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य’ इ
नात्रापूर्वः स्थालीपाकश्चोद्यते । सर्वश्राद्धेषु प्रसङ्गात्तेनानुवादोयम् ।’ इति वृ

पाणिहोम एवेति वृत्तिस्वरसः । एवं मासिकादावपि । 'षोडशे मासिके श्राद्धे सपिण्डीकरणे तथा । पाणावेव तु होतव्यमन्यत्राग्नौ तु हूयते' इति बौपदेवोदाहृतवचनाच्च । भाष्यकारमते तु-सत्रे स्थालीपाकेनेतिकरणत्वान्नित्यवच्छ्रवणाच्च पार्वणसाङ्गम् ततः काम्यादिषु तदभावे कार्यस्य पिण्डदानस्याप्यभावः । एतदेवानुसृत्य विकृतावपि वार्षिकादौ व्यतिषङ्ग उक्तः प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च । तेनैतन्मतेऽर्थायानिनोग्रावेव । वस्तुवस्तु 'स्थालीपाके सहश्रावया प्रस्तरं प्रहरति' इतिवत्सहभावमात्रश्रुतेः पत्नीवते त्वष्टुरुपलक्षणमिव नाङ्गत्वम् ॥ तत्त्वे वा नाङ्गानुरोधेन प्रधानभूतपिण्डदानत्यागोक्तः ॥ तेन व्यतिषङ्गाभावेऽप्यग्नौ होमो भवति इति बौपदेवः । अनाहिताग्नेर्गृह्यादिमतस्तु सर्वमतेऽग्रावेव । वार्षिकादौ वृत्तिमते व्यतिषङ्गो न अन्यमते त्वस्ति । अत्र यथाचारमनुष्ठेयम् ॥

आश्वलायनः- 'उद्धृत्य घृताक्तमन्नमनुज्ञापयत्यग्नौ करिष्ये । करवै करवाणीति प्रत्यनुज्ञा । क्रियतां कुरुष्व कुर्वित्यथाग्नौ जुहोति यथोक्तं पुरस्तात्' इति । व्यतिषङ्गपण्डितमिति वृत्तिः । करवै करवाणीत्यत्राग्नौ वित्यनुषङ्गः पुरस्तात् पिण्डपितृयज्ञे । तच्चैव 'मेक्षणेनावदायावदानसंपदा जुहुयात्सोमाय पितृमते स्वधा नमोग्रये कव्यवाहनाय स्वधामः इति स्वाहाकारेण वाग्निं पूर्वं यज्ञोपवीती मेक्षणमनुग्रहत्य' इति । अवदानसंपदा उपस्तरणाद्यपेक्षयेत्यर्थः । व्यतिषङ्गपक्षे अतिप्रणीतेयं होमोन्यथामुख्ये 'अतिप्रणीतेऽग्नौ धममुपसमाधाय' इति बह्वृचपरिशिष्टात् । केचित्तस्य रक्षोनिवर्हणार्थत्वान्मुख्ये नन्ति ॥ तदेतद्विरोधाच्चिन्त्यम् । प्रयोगपारिजातेऽप्येवम् । शौनकः- 'स्वाहाकारो होमे तु भवेद्यज्ञोपवीतवान् । तत्र प्रागग्रये हुत्वा पश्चात्सोमाय हूयते । अग्नौ यज्ञोपवीत्यव प्रक्षिपेन्मेक्षणं ततः' । छन्दोगपरिशिष्टे- 'अग्नौ करणहोमश्च कर्तव्य उपवीतित्वा अपसव्येन वा कार्यो दक्षिणाभिमुखेन च ॥' कातीयानां त्वपसव्यमेव । पिण्डपितृयज्ञे वद्धृत्वा इति सर्वातिदेशात् । सव्यं तु छन्दोगपरम् । गोभिलेनैतदुत्तरमेवापसव्यमिति उक्तेः ॥ 'छन्दोगा जुहुयुः सव्येनापसव्येन याजुषाः ।' इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तम् । अथ पाणिहोमः । आश्वलायनः- 'अभ्यनुज्ञायां पाणिष्वेव' इति । पिण्डपितृयज्ञे कल्पाभावनाग्न्यभावे काम्यादिष्वित्यर्थः । तेन बह्वृचानामेकोद्दिष्टे पाणिहोमो भवति निषेधोऽन्यपरः । पाणिष्विति बहुवचनात्सर्वविप्रपाणिषु होम इति वृत्तिः । मातामहेषु । शौनकोपि- 'सर्वेषामुपविष्टानां विप्राणामथ पाणिषु । विभज्य यात्सर्वं सोमायेत्यादिमन्त्रतः ॥ यत्तु हेमाद्रौ कात्यायनः- 'पित्र्ये यः पङ्क्तिः सव्येन हूयते' इति बह्वृचपरिशिष्टे ।

पादौ । यत्तु चन्द्रोदये यमः-‘देवविप्रकोऽनाग्निः कृत्वाग्नौकरणं द्विजः ।’ इति तदभा-
 परम् । ‘अपत्नीको यदा विप्रः श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम् । पित्र्यविप्रैरनुज्ञातो विश्वेदेवे
 हूयते ॥’ इति तत्रैव कात्यायनोक्तेः । हूयते इति च्छान्दसो व्यत्ययः ॥ हेमाद्रौ
 त्रायवीये-‘विधुरो दैविके कुर्याच्छेषं पित्र्ये निवेदयेत् ।’ दैवविप्रानेकत्वे तत्रैव
 ‘विश्वेदेवे यदैकस्मिन् भवेयुर्द्वयादयो द्विजाः । तदैकपाणौ होतव्यं स्याद्विधिर्विहितस्तदा ।
 मोप्याद्यः ‘प्रथमं वा नियम्येत्’ इति न्यायात् । तेन मृतभार्यस्य देवे होमः । अनुप-
 नत्रह्यचार्यादिस्तु पित्र्ये । ‘अग्न्याभावः स्मृतस्तावद्यावद्भार्या न विन्दति ।’ इति हेमा-
 द्रातृकण्योक्तेः । सभार्यनष्टाग्रेरपि पित्र्यविप्रको इति पृथ्वीचन्द्रः । उपवीतित्वे
 देवे होमः प्राचीनावीतेन पित्र्ये । यद्वा सर्वत्र दैवपित्र्यकरणयोर्विकल्पः इति हेमा-
 मदनरत्ने पारिजाते च । यदा तु पितृमातामहयोर्दैवपित्र्यविप्रभेदः, तदा भेदे
 पाणिहोम इत्यपरार्कचन्द्रिकादयः । यदा तु दैवं तन्त्रं तदा तन्त्रेण सकृदेव पाणि-
 होम इति केचित् । हेमाद्रिस्तु-‘मातामहस्य भेदेपि कुर्यात्तन्त्रेण साग्निकः ।’ इ-
 कातीयस्मृतेर्भेदमाह । एवं पित्र्येपि । माधवीयेष्वेवम् । एवं साग्रेरपि वि-
 श्रादौ पाणिहोमो ज्ञेयः । यत्तु कर्केणाग्निं विना श्राद्धमेव नास्तीत्युक्तम् तत्सपिण्डीक-
 णवार्षिकाद्यकरणापत्तेर्यत्किंचिदेव । यत्तु बृहन्नारदीये-‘अग्निरूर्ध्वभार्यश्च पार्व-
 णसमुपस्थिते । भ्रातृभिः कारयेच्छ्राद्धं साग्निकैर्विधिवद्विजाः । क्षयाहदिवसे प्र-
 स्वस्याग्निरूर्ध्वगो यदि । तथैवं भ्रातरः स्युश्चेल्लौकिकाग्नाविति स्थितिः । औपासना-
 दूरस्थे समीपे भ्रातरि स्थिते ।’ यद्यग्नौ जहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी
 औपासनाग्नौ दूरस्थे केचिदिच्छन्ति सत्तमाः । पाणावेव तु होतव्यमिति नैतत्सम-
 सम् ॥ इति तद्बृहन्नानादरादुपेक्ष्यम् । हेमाद्रौ यमः-‘अग्नौकरणवत्तत्र होमो वि-
 करे भवेत् । पर्युक्ष्य दर्भानास्तीर्य यतो ह्यग्निसमो द्विजः ॥’ मेक्षणेन करेण वा हो-
 मेक्षणप्रहरणं नेति वृत्तिः । स्मृतिरत्नावल्याम्-‘नानुज्ञा पाणिहोमे स्य-
 स्तः पर्युह्नोक्षणे । नाग्नेतमद्यादिति च न स्यातामिधममेक्षणे ॥’ कर्काचार्योप्ये-
 माह । माधवीये चन्द्रिकायां चानुज्ञादि सर्वं भवतीत्युक्तम् ॥

पाणिहोमे प्रश्नाद्याहापराके शौनकः-‘अग्निरश्वेदाज्यं गृहीत्वा भवत्स्वेवा-
 करणम् ।’ इति पूर्ववत् ‘तथास्तु’ इति आश्वलायनः-‘यदि पाणिष्वाचान्तेष्वन-
 दन्नमनुदिशत्यन्नमन्ने सृष्टं दत्तमध्रुवम्’ इति । पाणौ हुतं पात्रे निधाय विप्रैरच-
 भोजनार्थमन्ने परिविष्टे हुतशेषं पात्रेषु दद्यादित्यर्थः । सृष्टं प्रभूतम् । नैमित्ति-

अथापस्तम्बानां सूत्रे—‘उद्ग्रियतामग्नौ च क्रियतामित्यामन्त्रयते । काममुदा-
यतां काममग्नौ च क्रियतामित्यतिसृष्ट उद्धरेज्जुहुयाच्च ॥’ नष्टाग्निविधुरादेर्विशेषो बृ-
न्नारदीये-नष्टाग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । संघायान्निं ततो होमं कृत्वा
विसृजेत्पुनः ॥’ अयाश्चेति तत्कालेऽग्निं संघाय हुत्वा त्यजेत् इत्यर्थः । एतदापस्त-
म्बानामेव । पाणिहोमस्तु छन्दोगादीनाम् । विश्वप्रकाशेऽपि—‘साग्निरौपा-
नेनाग्निरग्नौ कुर्वीत लौकिके । पाणौ होमं प्रशंसन्ति नत्वापस्तम्बशाखिनाम्
स्नातका विधुरा वा स्युर्यदि वा ब्रह्मचारिणः । अग्नौकरणहोमं तु कुर्युस्ते लौकिके
नले ॥ अयाश्चाग्ने मनो ज्योतिरुद्बुध्य व्याहृतीर्हुनेत् ॥’ ततोनुज्ञातोऽग्निधनाद्याज-
भागान्ते यन्मे मातेत्याद्यैर्जुहुयात् । तत्र सप्ताच्चाहुतयः षडाज्यस्येति त्रयोदश-
व्यत्ययो वा । यथा—‘यन्मे माता प्रलुलोभ तन्मे रेतः पिता वृद्धां यास्तिष्ठन्ती-
द्वाभ्याममुष्मै स्वाहेति पितुर्नाम्ना द्वौ होमौ । यन्मे पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतः पिताम-
हो वृद्धक्तामन्तर्दधे ऋतुभिरिति इति तन्नाम्ना पितामहाय द्वौ । यन्मे प्रपितामही प्रलुलोभ त-
न्मे रेतः प्रपितामहो वृद्धक्तामन्तर्दधे ऋतुभिरिति तन्नाम्ना प्रपितामहाय द्वौ ॥ मातामहेषु तूह-
‘यन्मे मातामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातामहो वृद्धक्ताम् । अन्यं मातामहाद्वृद्धमित्य-
दौ । यन्मे मातुः पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातुः पितामहो वृद्धक्ताम् । अन्यं मा-
तामहाद्वृद्धम् । यन्मे मातुः प्रपितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातुः प्रपितामहो वृद्धक्ताम् ।
अन्यं मातुः प्रपितामहाद्वृद्धं सर्वत्राप्यमुष्या इत्यत्र डेन्तं तन्नाम योज्यम् । तद् गृह्य-
सूत्रे—‘योज्यः पित्रादिशब्दानां स्थानेमातामहादिकः । अन्नहोमे तथा स्पर्शे जलपिण्डे

दिदानके । यन्मे मातामहीत्यादि तत्रोदाहरणं भवेत् ॥' ततो येकेचेत्येकान्नाहुतिः । त
स्वाहा पित्र्ये इत्याद्यैराज्यं हुत्वा स्विष्टकृतं हुत्वा सर्वभक्ष्यं किञ्चिदादायोदगुष्णं भस्
पोह्य तत्र तूष्णीं स्वाहाकारेण जुहोति । परिषेचनान्तं स्थालीपाकवत् ॥

अयमग्नौ करणहोमो मासिकश्राद्ध एव । 'तच्च स्मार्ताग्न्यभावे न कार्यम्'
केचित् । कार्यमेवेति बहवः । अतएव सर्वाधानिनो होमवर्ज्यं मासिकश्राद्धं
सुदर्शनभाष्ये । महालये तद्वदित्येके । प्रकरणान्तरत्वात् । कर्मान्तरत्वेन स्म
पार्वणवत्कार्यं इति त्वस्मद्गुरवः । आब्दिकादिषु तु स्मार्तपार्वणविधिरेव ।
मातृवार्षिकादिषु । मासि श्राद्धविकृतावष्टकायां मातृश्राद्धे वैकृतहोमेन प्राकृतहोमबाध
'अवष्टकासु मातृश्राद्धं न' इति भाष्ये । तत्रापि श्राद्धान्तरवत् क्रियम्
यन्मे मातेत्यादौ गुणत्वोपि मातृप्राधान्यं विवक्षितम् । 'मासि श्राद्धेन कल्पो व्याख्य
इति सूत्रात् । आग्नेय्येव मनोताकार्यम्' इति वचनादग्निशब्दस्यैव वैकृतदेवताभि
धित्वम् । तेनामुष्या इत्यत्र 'अमुकशर्मभ्यां पितृभ्याम्' इत्याद्यहः कार्यः । 'तच्च म
श्राद्धं जीवत्पित्रादीनां व्युत्क्रममृतपित्रादीनां च कार्यम्' इत्युक्तं सुदर्शनभाष्ये
तत्प्रकारस्तु वक्ष्यते । मातापित्रोर्द्वित्वादौ तु नोहः । 'तस्मादहं नोहेत्' इति नि
धात् । प्रकृतावृहाभावाच्च पत्नीं सन्नह्येतिवत् । उपदेशिमते तूहो । यथा--
मातरौ प्रलुलोभतुश्चरत्यावननुव्रते' इत्याद्यस्मत्पितृकृतमासिकश्राद्धनिर्णये ज्ञे
इति दिक् । अन्यत् प्राग्वत् ॥

अथ परिवेषणम् ॥ तच्चोपवीत्येवाज्येन देवपूर्वम्--'आमासुपक्न' इति पात्रा

परिवेषणम् ।

पस्तीर्य कुर्यात् इति हेमाद्रिः । भारते दानधर्मेपि--'आज्य

विना नैव यत्किञ्चित् परिविष्यते । दुराचारेश्च यद्भुक्तं तं भागं रक्ष

विदुः ॥' तत्रैव शौनकः--'विधिना देवपूर्वं तु परिवेषणमाचरेत् ॥' तत्रैव धर्म

'फलस्यानन्तता प्रोक्ता स्वयं च परिवेषणे ॥' तत्रैव वायुभविष्ययोः--'भा

श्राद्धकाले तु प्रशस्तं परिवेषणम् ॥' ब्रह्माण्डे--'नापवित्रेण नैकेन हस्तेन न

कुशम् । नायसेनोयसेनैव श्राद्धे तु परिवेषयेत् ॥' वसिष्ठः--'आयसेन तु प

यदन्नं संप्रदीयते । भोक्ता विष्टासमं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥' पैठीनसिः--'स

कायसरीतीपात्राण्ययज्ञियानि ।' तत्रैव हारीतः--'सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदु

रेण वा । दत्तमक्षय्यतां याति फलमुपात्रेण वा पुनः ॥' कार्ष्णाजिनिः--'द

देयं घृतं चान्नं समस्तव्यञ्जनानि च । उदकं चैव पक्वान्नं नो दर्व्या तु कदाचन

गताः ॥' चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः—'हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जना
पितृणां नो पतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्विषम् ॥' घृतपात्रे विशेषो ग्रन्थात्
ओदने परमान्ने च पात्रमासाद्य मुग्धधीः । घृतेन पूरयेत्पात्रं तदघृतं रुधिरं भवेत्
घृतादिपात्राणि भूमौ स्थापयेन्न भोजनपात्रे इति मदनरत्ने ॥ संग्रहे—'हस्त
नाश्रीयाल्लवणव्यञ्जनादिकम् । अपक्वं तैलपक्वं च हस्तेनैव प्रदीयते ॥'

पात्रालम्बनमुक्तं चतुर्विंशतिमते—'उत्तानं दक्षिणं सव्यं नीचपात्राण्युपस्पृशे
याज्ञवल्क्यः—'दत्त्वात्रं पृथिवीपात्रम् इति पात्राभिमन्त्रणम् । कृत्वेदं विष्णु
द्विजांगुष्ठं निवेशयेत् ॥' बौधायनः—'विप्रांगुष्ठेनानखेनानुदिशति ।' 'पृथिवी त
द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि । ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राण
योर्युहोम्यक्षितमसि मा मे पितृणां क्षेष्टा अत्रामुष्मिलोके' इति । अद्य जुहोम्यये
शब्दः कातीयसूत्रे उक्तः । पैत्रे स्वधाशब्दः । अंगुष्ठे विशेषमाह हेमाद्रौ धौ
'परिवृत्य नवांगुष्ठं द्विजः स्थाने निवेशयेत् ॥' तथा 'उत्तानेन तु हस्तेन द्विज
निवेशनम् । यः करोति द्विजो मोहात्तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥' तत्रैव यमः—'पि
हव्यं च कव्यं च ब्रूयाद्रक्षस्व च क्रमात् ॥' दैवे पित्र्ये चेत्यर्थः । तत्रैवा
'सम्बन्धनामगोत्राणि इदमन्नं ततः स्वधा । पितृक्रमादुदीर्येति स्वसत्तां
र्तयेत् । हस्तेनाभुक्तमन्नाद्यमिदमन्नमुदीरयेत् ॥' अत्र 'अन्नदाने चतुर्थी
इत्यादि विशेषाः पूर्वमुक्ताः । अत्र पूर्वोक्तमन्त्रान्ते पुरुर्वार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवा
इदमन्नं सपरिकरं हव्यम् । अयं ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थं दत्तं दास्यमानं चातृप्तेः ।
भूः गदाधरो भोक्ता इदमन्नं ब्रह्म सौवर्णपात्रस्थमन्नमक्षय्यवटच्छायास्थम् । अमु
विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वाहा नमो न
इति बह्वृच परिशिष्टहेमाद्र्याद्यनुमतः प्रयोगः । एवं पित्र्ये अमुकगोत्र
रूपादि तत्तन्नाम ज्ञेयम् । ततो 'ये देवास' इति दैवे । 'येचेह पितरः' इति
केचिज्जपन्ति ॥

ततोऽच्छिद्रं वाचयेत् । तत्रैव प्रचेताः—'आपोशनकरे विप्रे संकल्प्याच्छिद्रभाषण
निराशाः पितरो यान्ति देवैः सह न संशयः ॥' पारस्करः—'संकल्प्य पितृदे
सावित्रीमधुमज्जपः । निवेद्यापोशनं श्राद्धे जुषं प्रैषोथ भोजनम् ॥' निवेद्येति ब्रह्म
कृत्वेत्यर्थः । अत एव बृहन्नारदीयेऽन्नत्यागमुक्तत्वात् । 'दत्तं हविश्च तत्कर्म वि
वै समर्पयेत् ।' इति यत्तु कृत्यरत्ने कार्ष्णाजिनिः—'अपसव्येन कर्तव्यं पितृ
मशेषतः । अन्नदानादृते सर्वमेवं मातामहेष्वपि ॥' तच्च 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः०,

१—'तस्मादन्तरितं कुर्यात्पर्णेनाथ तृणेन वा ।' इत्युत्तरत्र शेषः ।

ता हरिर्भोक्ता०, 'चतुर्भिश्च०' इति केचित्पठन्ति । धर्मप्रदीपे—'ततोन्नं पितृदेवेभ्यः
कल्प्य च यथाविधि । दत्तं यदास्यमानं च आतृप्तेर्न ममेति च ॥' तथा 'श्राद्धी-
न्नस्य संकल्पो भूमावेव प्रदीयते । हस्तेषु दीयमानं तु पितृणां नोपतिष्ठते ॥ वैश्वदेवस्य
तु पितृपात्रस्य दक्षिणे । संकल्पोदकदाने स्यान्नित्यश्राद्धे यथारुचि ॥' प्रचेताः-
'आपोशनं प्रदायाथ सावित्रीं त्रिर्जपेदथ । मधुवाता इति त्र्यृचं मध्वित्येतत्रिकं तथा ॥'
ताक्षरायां पारस्करः—'संकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः । श्राद्धं निवेद्या-
पानं जुषप्रैषोथ भोजनम् ॥ गायत्रीं त्रिःसकृद्वापि जपेद्ब्रह्माहतिपूर्विकाम् । मधुवाता
तृचं मध्वित्येतत् त्रिकं तथा ॥' याज्ञवल्क्यः—'सव्याहृतिं च गायत्रीं मधुवाता
त्र्यृचम् । जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेपि वाग्यताः ॥' यथासुखं जुषध्वमिति
यम् । अत्रिः—'असंकल्पितमन्नाद्यं पाणिभ्यां यद्युपस्पृशेत् । अमोज्यं तद्भवेदन्नं
पितृणां नोपतिष्ठते ॥ अन्नं दत्तं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न संपिबेत् ॥' आपोशने विशेष-
स्मृतिसमुच्चये—'आपोशनं वामभागे सुरापानसमं भवेत् । दक्षभागे तु यः
सोमपानसमं भवेत् ॥' तथा 'पुनरापूर्यापोशनं सुरापानसमं भवेत् ॥' हेमाद्रा-
वत्रिः—'दत्ते वाप्यथवाऽदत्ते भूमौ यो निक्षिपेद्बलिम् । तदन्नं निष्फलं याति निराशैः
परिगतैः ॥' केचिदाज्येन कुर्वन्ति तन्न । 'पायसेन तथाज्येन माषान्नेन तथैव च ।
कुर्याद्बलिदानं तु ओदनेन प्रकल्पयेत् ॥' इति स्मृतिसारे निषेधात् । शङ्खः—
'अद्धे नियुक्तान् भुञ्जानान् पृच्छेलवणादिषु । उच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो
संशयः ॥'

कात्यायनः—'अश्रवत्सु जपेत्सव्याहृतिकां गायत्रीं सकृत्त्रिंशं रक्षोघ्नीः पौरुषं
कर्मप्रतिरथम्' इति । हेमाद्रौ सौरपुराणे—'ऐन्द्रं च पौरुषं सूक्तं श्रावयेद्ब्राह्मणां-
स्ततः ॥' मात्स्यपात्रयोः—'ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तोत्राणि विवि-
धानि च । इन्द्रेण सोमसूक्तानि पावमानीश्च शक्तितः ॥ मण्डलं ब्राह्मणं
प्रीतिकारि च यत्पुनः । अभावे सर्वविद्यानां गायत्रीजपमाचरेत् ॥' पृथ्वीचन्द्रो-
पे ब्राह्मे—'वीणां वंशध्वनिं चाथ विप्रेभ्यः संनिवेदयेत् । जपेच्च पौरुषं सूक्तं नाचिक-
यं तथा ॥ त्रिमधुस्त्रिसुपर्णं च पावमानीर्यजूंषि च ॥' हेमाद्रावत्रिः—'हुक्मे-
पि यौ ब्रूयाद्धस्ताद्वापि वदेद्गुणान् । भूतलाच्चोद्धरेत्पात्रं सुश्रेष्ठस्तेन वा पिबेत् ॥ प्रौढ-
रो वहिःकच्छो वहिर्जानुकरोपि वा । अंगुष्ठेन विनाश्नाति मुखशब्देन वा पुनः ॥
गावशिष्टतोयानि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् । खादितार्धात् पुनः खादेन्मोदकानि फलानि

१-बलिदाने त्वन्नमालम्ब्य त्रिःसावित्रीजपः प्रायश्चित्तम्—इति नागोजीमहः । इति टीका । २--स्व-
वाचनानन्तरमदोषमाह वसिष्ठः—'हविर्गुणा न वक्तव्या यावन्न पितृतर्पणम् ॥ पितृभिस्तर्पितः
हृत्तव्यं शोभनं हविः ॥' इति ।

च ॥ मुखेन वा धमेदन्नं निष्ठीवेद्भाजनेपि वा । इत्यमश्रन् द्विजः श्राद्धं हत्वा गच्छत्यथ
गतिम् ॥' जाबालिः—'इष्टमुष्णं हविष्यं च दद्यादन्नं शनैश्शनैः ॥' वृद्धशा
तपः—'अपेक्षितं याचितव्यं श्राद्धार्थमुपकल्पितम् । न याचते द्विजो मूढः स भवेत् पि
यातकः ॥' यत्तु यमः—'श्राद्धे द्विजो नैव दद्यान्न याचेन्नैव दापयेत् ।' इति तद्वत्तसम्
दितवस्तुविषयमिति हेमाद्रिः ॥

हारीतः—'ऊर्ध्वपाणिश्च विहसन् सक्रोधो विस्मयान्वितः । भृगुपृष्ठश्च यद्भुङ्क्ते न
प्रीणाति वै पितृन् ॥' प्रचेताः—'न स्पृशेद्ग्रामहस्तेन भुञ्जानोन्नं कदाचन । न पादौ
शिरो वस्ति न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥' शङ्खः—'श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्म
स्पृशेत् । तदन्नमत्यजन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥' उशनाः—'भोजनं तु न निः
कुर्यात् प्राज्ञः कथंचन । अन्यत्र दध्नः क्षीराद्वा क्षौद्रात्सक्तुभ्य एव च ॥' ब्राह्मे—'नच
पातयेज्जातु न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥ न चोद्रीक्षेत् भुञ्जानान्न च कुर्वीत मत्सरम् ॥' यम
'स्वाध्यायं श्रावयेत्सम्यग्धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥' प्रचेताः—'भुञ्जानेषु तु विप्रेषु ऋग्य
सामलक्षणम् । जपेदभिमुखो भूत्वा पित्र्यं चैव विशेषतः ॥ यजूंषि चैव रुद्रं च राक्षोघ्नीं
एव च ॥ राक्षोघ्नीः कृष्णुष्व, रक्षोहणमित्याद्याः । तत्रैव निगमः—'भुञ्जत्सु जपेत् प
मानीरुदीरतामध्वन्नवतीश्च ॥' अन्नवत्यः—'पितृनुस्तोषमिति । पृथ्वीचन्द्रोदये भ
द्राजः—'भुञ्जानेषु तु विप्रेषु प्रमादात्स्रवते गुदम् । पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा अन्यं
नियोजयेत् ॥' क्षणपाद्यादि सत्त्वे इत्यर्थः ॥

विप्रवमने तत्रैव दक्षः—'निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे भोजने मुखानिःसृते । तदैव
कुर्वीत स्वाग्नौ विप्रः समाहितः ॥ प्राणादिपञ्चभिर्मन्त्रैर्यावद्वात्रिंशसंख्यया । ब्राह्मण
ततःकृत्वा घृतप्राशनमाचरेत् ॥' ऋग्विधाने तु—'इन्द्राय सोमसूक्तेन श्राद्धविघ्नो
भवेत् । अग्न्यादिभिर्भोजनेन श्राद्धं सम्पूर्णमेव हि ॥' इत्युक्तम् । अग्न्यादिभिर्
लौकिकाग्निस्थापनचरुनिर्वापाज्यभागान्ते ग्रामगोत्रपूर्वमग्नौ पितृनावाह्यं संपूज्यान्नत्य
कृत्वा प्राणादिभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुनोदित्यर्थः । भोजनेन पुनःश्राद्धेन । तेन होमः पु
नः श्राद्धं चेति पक्षद्वयमुक्तम् । सूक्तजपस्तूभयानुगतः । स्मृतिसंग्रहे—'प्राधान्यं पि
दानस्य भोजनस्य तदङ्गता । अतो भुक्तिक्रियाहानौ श्राद्धावृत्तिं न मन्वते । पिण्डदा
चरं वान्तौ होम एव नावृत्तिः ॥' पिण्डदानात् प्राग्वान्तौ तद्दिने उपवासं कृत्वा परे
पुनः श्राद्धं कार्यमित्यर्थः । तत्रैव—'श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमते यदि

लौकिकाग्नौ प्रतिष्ठाप्य अर्चयेच्च हुताशनम् ॥' तथा-‘एक एव यदा विप्रो भो
 छर्दिंतो यदि । तदैवाग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि ॥’ द्वितीयपक्षे ऋग्विधा
 ‘भोजनोपक्रमादूर्ध्वं प्रक्रमात् पूर्वतो यदि । श्राद्धविघ्ने पुनः कार्यं जपहोमौ न तृप्तिदौ
 स्मृतिसंग्रहे-‘अकृते पिण्डदाने तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमेत् । पुनःपाकात्तु क
 पिण्डदानं यथाविधि ॥’ पिण्डदानं श्राद्धम्-‘अकृते पिण्डदाने तु पिता यदि वमेत्त
 पुनः पाकं प्रकुर्वीत श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥’ इति तत्रैवोक्तेः । तथा ‘पित्रर्थानां
 णां च पिता च वमते यदि । तद्दिने चोपवासः स्यात्पुनः श्राद्धं परोऽहनि ॥ वम
 विरैके वा तद्दिनं परिवर्जयेत् ॥’ एषु वचनेषु मूलं चिन्त्यम् । इदं मासिकाब्दिक
 यम् । दर्शादौ तु वान्तावामेन तदैव कार्यम् । ‘श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं
 तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ॥’ इति मरीचिस्मृतेः । श्राद्धे पि
 दानमेव प्रधानमिति कर्काचार्याः । तन्मते दक्षोक्तो होम एव नावृत्तिः ।
 भोजनमिति मेधातिथिः । भोजनपिण्डदानाग्नौकरणानीति कपर्दिधूर्तस्वा
 माद्रचादयः । श्राद्धस्य होमदानोभयरूपत्वात्संपूर्णदानाभावाद्भोजनस्याङ्गत्वेपि स
 वमने इति युक्तम् । तन्मते पूर्वोक्तो निर्णयः । अन्नत्यागमात्रं प्रधानम् । भोज
 प्रतिपत्तिरूपमङ्गमतो वान्तौ तद्दानेपि नावृत्तिरिति गौडमैथिलादयः । नैमि
 विधानमिति युक्तं प्रतीमः ॥

अत्रेदं तत्त्वम् । वैश्वदेविकस्य वमने होम एव नावृत्तिः । अङ्गत्वात् । तच्च रक्षार्थत्वं
 ‘इष्टिश्राद्धे क्रतूदक्षौ’ इत्यादि स्मृतेश्च । तत्र जयान् जुहुयादितिवत् । पितामहा
 तथा । पितेत्युक्तेरिति केचित् । तस्यापि प्रधानत्वात् पितृवदिति तु युक्तम् । सपि
 ण्डादौ वार्षिकवत् । ‘सपिण्डीकरणादीनि यानि श्राद्धानि षोडश । तत्र पिण्डप्रध
 प्रेतत्वविनिवर्तकम् ॥’ इति स्मृतेः । महैकोद्दिष्टादौ तूभयप्राधान्यादावृत्तिरेव । ‘एव
 द्विजो भोज्यः पिण्डोप्येको विधीयते ।’ इति स्मृतेः । वृद्धिसंकल्पनित्यश्राद्धादौ त
 जनप्राधान्याद्धान्तावावृत्तिरेव । ‘वृद्धिश्राद्धे विकल्पेन पिण्डदानं बुधैः स्मृतम् । नित
 द्धमदैवं स्यात्पिण्डदानविवर्जितम् ॥’ इति स्मृतेः । ‘भुक्तिक्रियायाः प्राधान्यं श्राद्धे
 ल्पसंज्ञके । तत्रैव पितृविप्रस्य तूपघाते पुनः क्रिया ॥’ इति संग्रहोक्तेश्च । मघाद
 वम् । तीर्थमहालयादौ दर्शवदित्याशार्काद्यालोचनेन प्रतीमः ॥

आश्वलायनः-‘तृप्तान् ज्ञात्वा मधुर्मतीः श्रावयेदक्षन्ममीमदन्तेति च संपन्न

स्पृष्ट्वा यद्यदन्नमुपभुक्तं तत्तत्स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य शेषं निवेदयेदभिमानं च' इति । अत्र गायत्री मध्वितित्रिकजपोपि ज्ञेयः । 'तृप्तान् बुद्धान्नमादाय सति वज्रपेत् ।' इति प्रचेतसोक्तेः । व्यासः—'तृप्ताः स्थेति तु पृष्ठास्ते ब्रूयुस्तृप्ताः स्मरन्त्य ।' अभिमते विप्रैः स्वीकर्तुमीष्टे शौनकोपि—'अन्नशेषैश्च किं कार्यामिति पृच्छेत तः । ते इष्टैः सह भोक्तव्यामिति प्रत्युक्तिपूर्वकम् ॥ प्रदद्युः सकलं तस्मै स्वीकुर्युर्वरुचि ।' श्राद्धविशेषे प्रश्नभेदमह हेमाद्रौ विष्णुः—'पित्र्ये स्वदितमिति गोष्ठ्या संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रोचत' इति । आयुष्यमिति स्वैरिषु स्वैरमिच्छाश्राद्धम् । चल्क्यः—'अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवानुमान्य च । तदन्नं प्रकिरेद्भूमौ दद्यात् सकृत्सकृत् ।' इदं चात्र विकिरदानमन्यशाखिनाम् । आश्वलायनानां तु पिण्डान् स्मृत्तकृतोक्तम् । कात्यायनस्तु—'विकिरोत्तरं गायत्र्यादिजपं वृत्तिप्रशं चाह । हे देवलः—'ततः सर्वाशनं पात्रे गृहीत्वा विविधं बुधः । तेषामुच्छेषणस्थाने भुवि निःक्षिपेत् ।' माधवीये प्रचेताः—'सार्वर्णिकमादाय येअग्नीति भुवि निक्षिपेत् स च कुशे कार्यः 'दर्भेषु विकिरश्च यः' इत्युक्तेः । मन्त्रः कातीयः । 'अग्निदये जीवा येप्यदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् इति अन्ये तु—'असोमपाश्च ये देवा यज्ञभागविवर्जिताः । तेषामन्नं प्रदास्यामि वैश्वदेविकम् ॥' इति हेमाद्रौ गोभिलोक्तेन दैवे—'असंस्कृतप्रमीता ये त्यागिन्यकुलस्त्रियः । दास्यामि तेभ्यो विकिरमन्नं ताभ्यश्च पैतृकम् ॥' इत्यग्निपुराणं पित्र्येन्नं विकीर्य 'ये अग्निदग्धाः' इत्युच्छिष्टपिण्डं कुशोपरि पृथग्दद्यादित्याहुः । पञ्चन्द्रोदयेप्येवम् । ब्राह्मे—'ततः प्रक्षाल्य हस्तौ च द्विराचम्य हरिं स्मरेत् ॥' मन्त्रेण गौतमः—'विकिरमुच्छिष्टैः प्रतिपादयेत् ॥' हेमाद्रौ व्यासः—'उच्छिष्टैर्विकिरं सदैव प्रतिपादयेत् ॥' भृगुः—'पिण्डवत् प्रतिपत्तिः स्याद्विकिरस्येति तौल्वतिश्राद्धकारिकायाम्—'यजमानस्य दासादीनुद्दिश्य द्विजसत्तमम् । तस्मादन्नं दद्भूमौ वामभागेषु पैतृके ॥' मनुः—'उच्छेषणं भूमिगतमजिह्वस्याशठस्य च । दासतत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥'

विष्णुः—'उदङ्मुखेष्वचमनमादौ दद्यात्' ततः प्राङ्मुखेषु पित्र्ये दैवे चेत्येतातपः—'विश्वेदेवनिविष्टानां चरमं हस्तधावनम् ॥' हेमाद्रौ वाराहे—'हस्तं त्यज्य यश्चापः पिबेद्भुक्त्वा द्विजः सदा । तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गत

मरीचिः-‘हस्तं प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पिबेदविचक्षणः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां
नोपतिष्ठते’ ॥ तत्रैव संग्रहे-‘पवित्रग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डलं भुवि निक्षिपेत् । हस्तादीन्
क्षालयेद्विद्राञ्छरावादौ न कुत्रचित्’ ॥ व्यासः-‘ताम्बूलोद्विगणं चैव गण्डूषोद्वि-
रणं तथा । कांस्यपात्रे तथा ताम्रे न कुर्वीत कदाचन ॥ उष्णोदकैर्धान्यचूर्णैः करौ
श्मश्रूणि शोधयेत् ॥’

अथ पिण्डदानम् । तच्चार्चनोत्तरमग्नौकरणोत्तरं भोजनोत्तरं विकिरोत्तरं स्वधा-
वाचनोत्तरं विप्रविसर्जनोत्तरं चेति हेमाद्रौ स्मृतिषु च पक्षा उक्ताः ।
पिण्डदाननिर्णयः । तेषां शाखाभेदेन व्यवस्था । प्रेतश्राद्धेषु पूर्वमन्येषु भोजनोत्तरम् ।

इति चन्द्रिकामाधवौ । सर्वत्र भोजनोत्तरमिति बहवः । आश्वलायनः-‘भुक्त-
वत्स्वनाचान्तेषु पिण्डान्निदध्यादाचान्तेष्वेके । भुक्तवत्स्विति पूर्वनिषेधार्थम् । सौमि-
रिति प्रणीतसमीपे अनग्निद्विजसमीपे । हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः-‘व्याममात्रं समुत्सृज्य
पिण्डांस्तत्र प्रदापयेत्’ । प्रसारितभुजान्तरं व्यामः । संकटे तु व्यासः-‘अरतिमात्र-
मुत्सृज्य’ । इति । यत्तु तत्रैव-‘सिकताभिर्मृदा वापि वेदी दक्षिणनिम्नगा’ । इति
तदन्यशाखिपरम् । देवलः-‘ततस्तैरभ्यनुज्ञातो दक्षिणां दिशमेत्य च ॥’ चन्द्रि-
कायाम्-‘पिण्डनिर्वापणं कार्यं कुशाभावे विचक्षणैः । काशेषु राजदूर्वासु पवित्रे परमे
हिते ॥’ आश्वलायनः-‘स्फ्येन रेखामुलिखेत् ।’ अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषु
इति तामभ्युक्ष्य सकृदाच्छिन्नैर्दर्मैरवस्तीर्य प्राचीनावीती रेखां त्रिरुदकेनोपनयेच्छु-
न्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इति तस्यां पिण्डान्नि-
पृणीयात्पराचीनपाणिः पित्रे पितामहाय प्रपितामहायैतत्तेसौ ये च त्वामत्रानु’ इति ।
हेमाद्रौ पारस्करः-‘कराभ्यामुलिखेत् स्फ्येन कुशैर्वापि महीं द्विजः ।’ ‘बह्वृ-
चानां करेणैव लेखा चाग्नेय्यभिमुखेति वृत्तिः ॥’ ‘दक्षिणाप्राचीं वेदिमुदधृत्य’
इत्यापस्तम्बोक्तेश्च ॥

देवलः-‘आवाहयित्वा दर्भाग्रैस्तेषां स्थानानि कल्पयेत् । तेष्वानीषु पात्रेण प्रय-
च्छेत्सतिलोदकम् ॥’ पराचीनेन निम्नपितृतीर्थेन । वायवीये-‘मधुसर्पिस्तिलयुतां-

१-गण्डूषप्रकारः स्मृतौ-‘अर्घं पिबति गण्डूषमर्घं त्यजति भूमिषु । प्रीणन्ति पितरः सर्वे ये
चान्ये भूमिदेवताः ॥ इति । तत्प्राशने ‘अमृतापिधानमसि इति मन्त्रः । तदवशिष्टतोयत्यागे च
‘रौरवेऽपुष्यनिलये ब्रह्मर्बुदनिवासिनाम् । अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु, ॥ इति मन्त्रः । इति

स्त्रीन् पिण्डान्निर्वपेदबुधः ॥' त्रिस्थलीसेतौ-‘तिलमन्त्रं च पानीयं धूपं दीपं
स्तथा । मधु सर्पिः खण्डयुक्तं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते ॥' याज्ञवल्क्यः-‘सर्वमन्त्रं
दाय सतिलं दक्षिणामुखः । उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान् दद्याद्द्वै पितृयज्ञवत्
केचित् पिण्डेषु माषान् वर्जयन्ति । ‘माषाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वर्ज्याश्चैवापि
ण्डयोः । ब्राह्मणेषु यथा मद्यं तथा माषोऽपि पिण्डयोः ॥’ इति स्मृतिसार
‘माषान् सर्वत्र वै दद्यात् पिण्डेऽग्नौ च विवर्जयेत् ।’ इति स्मृतेश्च । अत्र मूलं
न्यम् । हेमाद्रावपि ‘सर्वशब्दस्य प्रकृतार्थत्वात्सर्वान्नग्रहणमुक्तम् ॥ अत्र शब्द-
न्नमनुज्ञाप्य सर्वमेकत्रोद्धृत्योच्छिष्टसमीपे दर्भेषु त्रींस्त्रीन् पिण्डान् दद्यात् ।’
गोभिलसूत्रे । ‘सर्वस्मात् प्रकृतादन्नात् पिण्डान्मधुतिलान्वितान् ।’ इति
शेषनियमात्तदभावे पिण्डनिवृत्तिः प्राप्नोतीति मैथिलवाचस्पती । तत्र । तु
वापवत् परप्रयुक्तद्रव्यत्वेऽप्यर्थकर्मत्वाद्गुणानुरोधेन प्रधानत्यागाच्च शेषलोपेऽपि द्र-
व्यत्वेऽपि कार्यम् । अतो नेयं प्रतिपत्तिः । किंतु प्रधानमित्युक्तं प्राक् । अन्यथा सपि-
करणादौ संयोजनादेः प्रधानस्य लोपापत्तेरिति दिक् ॥

अथ पिण्डप्रमाणम् । हेमाद्रावङ्गिराः-‘कपित्थविल्वमात्रान्वा पिण्डान्

अथ पिण्डप्रमाणम् ।

द्विधानतः । कुक्कुटाण्डप्रमाणान्वामलकैर्बदरैः पुमान् ॥’ इति

तत्रैव धूम्रः-‘कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डान् दद्यात्समाहितः । त

विकिरं दद्यात् पिण्डान्ते तु षडङ्गुलैः ॥’ अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टास्तु-‘एकं

सपिण्डे तु कपित्थं तु विधीयते । नारिकेलप्रमाणं तु प्रत्यब्दे मासिके तथा ॥

दर्शे च संप्राप्ते कुक्कुटाण्डप्रमाणतः । महालये गयाश्राद्धे कुर्यादामलकोपमम्

इत्याहुः । कालिकायामाचार्यः-‘यत्र स्युर्बहवः पिण्डास्तत्र विल्वफलोपमाः ।

चैको भवेत्पिण्डस्तत्र खर्जूरसन्निभः ॥ प्रेतपिण्डस्तु दैर्घ्येण द्वादशाङ्गुल उच्यते ॥’ इति

वायवीये-‘पत्नी पिण्डांस्तु मृदनीयात् त्रिवर्गस्य सहायिनी ॥’ हेमाद्रौ लौगाक्षि

‘महालये गयायां च प्रेतश्राद्धे दशाहिके । पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत्

शाङ्खायनिः-‘असावेतत्त इत्युक्ता तदन्ते च स्वधा नमः’ । असावित्यत्र स

न्धरूपगोत्रादिविशिष्टं पित्रादिनाम सम्बुद्धयन्तमुक्ता पुनश्चतुर्थ्यन्तं तदन्तेऽयं पिण्ड

मन्त्रं वा स्वधा नमो न ममेति वदेदिति हेमाद्रिः । पित्रादीनामज्ञाने त्वापस्तम्ब

‘यदि नामानि न विन्द्यात्स्वधापितृभ्यः पृथिवीषदभ्य इति प्रथमं पिण्डं दद्यात् । स्व

पित्रादीनामज्ञाने त्वापस्तम्बः । स्वधापितृभ्यः पृथिवीषदभ्य इति प्रथमं पिण्डं दद्यात् । स्व

स्त्रीभ्यः' इति सूत्राच्च । एवं यत्र तीर्थमहालयादौ । 'केचिदिच्छन्ति नारीणां
श्राद्धं महर्षयः ॥' इति चतुर्विंशतिमतात् 'पित्रादि नवदैवत्यं तथा द्वादशदैव
इत्यग्निपुराणाच्च मातृणां पृथगुक्तम् । यत्र वा 'आचार्यगुरुशिष्येभ्यः सखिज्ञ
एव च । तत्पत्नीभ्यश्च सर्वाभ्यस्तथैव च जलाञ्जलीत् । पिण्डांस्तेभ्यः सदा दद्यात्
ग्माद्रपदे नरः । तीर्थेषु चैव सर्वेषु माघमासे मघासु च ॥' इति चतुर्विंशति
'दौहित्रपुत्रदाराश्च एकनिष्ठाः सहोदराः । निःसन्ताना मृता ये च तेभ्योप्यत्र प्रदी
इति भविष्ये एकोदिष्टान्युक्तानि । तत्रापि तत्पश्चिमे पिण्डदानं ज्ञेयम् । येषां न
तैः सपत्नीकाः पित्रादयो वाच्याः । 'अन्वष्टका गया मातृश्राद्धं चैव मृतेहनि । एव
तथा मुक्ता स्त्रीषु नान्यत् पृथग्भवेत् ॥' इति शंखोक्तेश्च ॥

मनुः- 'तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृजेलेपभागिनाम् ॥' हस्तलेपाभावेपि हस्तं निमृ
देवेति मेधातिथिः । विष्णुः- 'अत्र पितरो मादयध्वमिति दर्भमूले करावधर्षणं
कलिकायां सुमन्तुः- 'एकोदिष्टेषु वर्षासु दर्भलेपो न विद्यते । सपिण्डीकरण
लेपः सर्वत्र शस्यते ॥' मनुः- 'आचम्योदक् परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् । षड्
नमस्कुर्वात् पितृनेव च मन्त्रवत् ॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ॥'
प्राणायामं कृत्वेति मेधातिथिः । अमन्त्रं प्राणान्निरुध्येति कर्काद्याः । मन्त्रवत्
न्ताय नमः 'नमो वः पितरः' इत्याद्यैः । शेषं पूर्वावनयनशेषम् । आश्वलाय
'निपृताननुमन्त्रयेतात्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति सव्यावृद्धदग्
यथाशक्ति प्राणान्नासित्वाऽभिपर्यावृत्त्याऽमीमदन्तं पितरो यथाभागमावृषायीषतेति
प्राणभक्ष्यं भक्षयेन्नित्यं निनयनम्' इति । नित्यग्रहणं शेषाभावेपि कुर्यादित्य
शौनकः- 'अथैषामत्र पितर इत्याद्येनानुमन्त्रणम् । अमीमदन्तेत्याद्येन मन्त्रेणा
मन्त्र्य तान् । पिण्डशिष्टचरोरन्त्रं किञ्चिदाघ्राय तत्त्यजेत् ॥ प्रक्षाल्याचम्य शुन्धन्
त्याद्यैरेव पूर्ववत् । मन्त्रैः पिण्डेषु पानीयं निषिञ्चेत् पितृतीर्थतः ॥' व्याघ्रः- 'प्र
प्रक्षाल्य तत्पात्रं तर्पिण्डं प्रति पूर्ववत् । कृत्वावनेजनं कुर्यात्पिण्डपात्रमधोमुखम् ॥'
त्कातीयादीनाम् ॥

आचार्यः- 'ततः सम्यग् द्विराचम्य नीवीं विस्वस्य वाग्यतः ॥' आश्वलाय
'असावभ्यंक्ष्वासावंक्ष्वेति पिण्डेष्वभ्यञ्जनाञ्जने वासो दद्याद्दशामूर्णास्तुकां वा पञ्चा
ताया ऊर्ध्वं स्वलोमैतदः पितरो वासो मानोतो न्यत् पितरो युङ्क्ष्वम्' इति । श्र
चिन्तामणौ ब्राह्मे- 'एतदः पितरो वास इति जल्पन् पृथक्पृथक् । अमकासक

दक्षिणां सर्वभोगांश्च प्रतिपिण्डं प्रदापयेत् । भक्ष्याण्यपूपानिश्चुंश्च व्यञ्जनान्यशनानि
तत्रैव शंखः—‘यत् किञ्चित् पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमर्गाहृतम् । अनिवेद्य न भोक्तव्यं
मूले कथञ्चन ॥’ एतत्सव्येनेति केचित् । युक्तं त्वपसव्येन । मनुः—‘अवजिघ्रेक्ष
पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः ।’ ततो ‘नमो वः पितर इव’ इत्यादिनोपस्था
मात्स्ये—‘अथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात्सकृत्सकृत् । तिलपुष्पाक्षतान् प
य्योदकमेव च ॥’ अत्र दैवे सव्यं पित्र्ये त्वपसव्यमिति कर्कः । परिभाषोक्तवचना
मिति युक्तम् । अत्र शिवा आपः सन्तु । सौमनस्यमस्त्वित्यादिप्रयोगो ज्ञेयः । मा
‘दत्त्वाशीः प्रतिगृहीयाद्विजेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः । अघोराः पितरः सन्तु सन्ति
पुनर्द्विजैः ॥ गोत्रं तथा वर्धतां नस्तथेत्युक्तः स तैः पुनः । दातारो नोऽभिवर्ध
चैवेत्युदीरयेत् ॥ स्वस्तिवाचनकं कुर्यात्पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः ॥’

स्वस्तिवाचनात्प्राक्पात्रचालनं कार्यम् । हेमाद्रौ बृहस्पतिः—‘भोजनेषु
स्तु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः । तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥’ जातूक
‘पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योथवा सुतः । न स्त्रीभिर्न च बालेन ना
कथञ्चन ॥’ याज्ञवल्क्यः—‘स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ।’ तत्रै
शात्तातपः—‘पितृणां नामगोत्रेण करे देयं तिलोदकम् । प्रत्येकं पितृतीर्थेन
मिदमस्तिवाति ॥’ अत्र षष्ठी प्रागुक्ता । तत्रैव नागरखण्डे—‘उत्तानमर्घ्यपात्रं
दत्त्वा च दक्षिणाम् । हिरण्यं देवतानां च पितृणां रजतं तथा ॥’ बृहस्पतिः—
पणं काकिणीं वा फलं पुष्पमथापि वा । प्रदद्यादक्षिणां यज्ञे तथा स सफलो भ
अत्र पित्रुद्देशेन दक्षिणादाने अपसव्यं विप्रोद्देशेन सव्यमिति माधवः ॥
कायामाचार्यः—‘दद्याद्यज्ञोपवीत्येव ताम्बूलं दक्षिणां तथा ॥’ अत्रिः—‘वदेच्च
विप्रान् पित्रादिभ्यः स्वधोच्यताम् ॥’ गोभिलः—‘अघोराः पितरः सन्ति
स्वधां वाचायिष्य इति पृच्छति पितृभ्यः स्वधोच्यतामित्युक्तेऽस्तु स्वधेत्यु
धारां दद्यादूर्जवहन्ती’ इति । ‘आपस्तम्बेन तु पुत्रान् पौत्रानभितर्पयन्ति’
परिवेचने मन्त्र उक्तः ॥

आश्वलायनः—‘अथैतान् प्रवाहयेत् । परेतन पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः
पूर्विणेभिः । दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रायिं च नः सर्ववीरं नियच्छत ॥’ इति । म
‘वाजे वाजे इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥’ प्रचेताः—‘स्वस्ति वाच्यं ततः कृत्वा

न्मण्डलदेशे कार्यमिति हेमाद्रिः । मनुः-‘दातारो नोभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोस्तु’ इति । बौधायनः-‘अन्नं च नो बहु भवेत्
तिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ॥’ इति । अत्र दाता
नोभिवर्धन्तां लभध्वं याचिद्वमित्याद्यूहेन पठित्वा विप्रैः प्रतिवचनं कार्यमिति सुदर्शनं
भाष्ये । ‘स्वादुषंसद’ इति ‘ब्राह्मणासः पितरः’ इति च मन्त्रद्वयं पठन्ति । शौनकः-
‘ब्राह्मणानथ निर्यातान् परीत्य त्रिःप्रदक्षिणम् । सस्त्रीकः स्वजनैः सार्द्धं प्रणमेद्रचित्त
ञ्जलिः ॥ कनिष्ठप्रथमा ज्येष्ठचरमाः स्युः प्रदक्षिणे ॥’ हेमाद्रौ बृहस्पतिः-‘अद्य
सफलं जन्म भवत्पादाब्जवन्दनात् । अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहादिवम् ॥ पत्र
शाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः । तत्क्लेशजातं चित्तात्तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ॥
प्रचेताः-‘विसृजेद्भक्तिसंयुक्तः सीमान्ते चाप्यनुव्रजेत् ॥’ इति ॥

अथ पिण्डप्रतिपत्तिः । हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे-‘पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थं

पिण्डप्रतिपत्तिर्निर्णयः । प्रथमं नरः । पत्न्यै प्रजार्थी दद्याद्वै मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥ उत्तमं
गतिमन्विच्छन् गोषु नित्यं प्रयच्छति । आज्ञां प्रज्ञां यशः कीर्तिमप्सु
पिण्डं प्रवेशयेत् ॥ प्रार्थयन् दीर्घमायुष्यं वायसेभ्यः प्रयच्छात् । आकाशं गमयेदप्सु
स्थितो वा दक्षिणामुखः ॥’ आश्वलायनः-‘वीरं मे दत्त पितर इति पिण्डानां मध्यमं
पत्नीं प्राशयेत् । ‘आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथायमरपाअसत्’ इति भद्रं
दत्तस्याद्येनादाय द्वितीयेन प्राशनम् । आपस्तम्बस्तु दाने मंत्रमाह-‘अपां त्वोषधीनां रसं
प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व इति मध्यमं पत्न्यै प्रयच्छति’ इति । प्राशनेपि ‘यथेह पुरुषो
असत्’ इति तद्वितीयः पाठोऽन्येषां तत्तच्छाखायां ज्ञेयः । तत्रैव शङ्खः-‘पत्नी वा मध्यमं
पिण्डमश्रीयादातवान्विता ॥’ कलिकायां छागलेयः-‘प्राचीनावीतिनाऽऽमन्त्र्य पत्नीं
पिण्डो विभज्यते । प्रतिपत्न्यस्य मन्त्रस्य कर्तव्यावृत्तिरत्र तु ॥’ माधवीये विष्णुः-
‘धर्मे-‘तीर्थे श्राद्धे सदा पिण्डान् क्षिपेत्तीर्थे समाहितः ॥’ याज्ञवल्क्यः-‘पिण्डांस्तु
गोजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेपि वा ॥’ बृहस्पतिः-‘अन्यदेशगता पत्नी रोगिणी
गर्भिणी तथा । तदा तं जीर्णवृषभश्छागो वा भोक्तुमर्हति’ ॥

अथ पिण्डोपघाते हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे देवलः-‘श्वसृगालखैरः पिण्डः
स्पृष्टो भिन्नः प्रमादतः । कर्तुरायुष्यनाशः स्यात्प्रेतस्तं नोपसर्पति ॥’ जातूकर्ण्यः
पिण्डोपघातप्रायश्चित्त- पूर्वश्लोकांते-‘तद्दोषपरिहाराय प्राजापत्यं प्रकल्पयेत् । पत्रं सान्त्वि

पिण्डो यद्युपहन्यते । प्राजापत्यं चरित्वाथ पुनः पिण्डं समाचरेत् ॥' बोपदेवोप्ये
माह-दिनान्तरे तु प्राजापत्यमात्रम् । शेषप्रतिपत्तित्वेन पिण्डावृतौ मानाभावादि
मैथिलास्तन्न । सपिण्डीकरणादौ शेषनाशे संयोजनादिलोपापत्तेः । तेन वचनाद्भ्रमन इ
त्रापितन्मात्रपिण्डदानावृत्तिः । अत एव-‘नच नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे वा भोजनसमा
नात्’ इत्यापस्तम्बसूत्रम् । रात्रौ भोजनमात्रं पूर्वद्युः कार्यम् । श्राद्धसमाप्तिस्तु प
दिने एव । समाप्तिपर्यन्तं कर्तुरुपवासश्चेति हरदत्तेन व्याख्यातम् । तस्मात् पाकान्
रेण पिण्डदानमात्रं कार्यम् ॥

अथ पिण्डनिषिद्धकालः ॥ स च प्रायेण महालयादिनिर्णये पूर्वमुक्तः
हेमाद्रौ बृहत्पराशरः-‘युगादिषु मघायां च विषुवत्ययने तथा । भरणीषु च कुर्वी
पिण्डनिषिद्धकाल- निर्णयः । पिण्डनिर्वपणं नहि ॥’ स्मृतिरत्नावल्याम्-‘पुत्रे जाते व्यतीपा
ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नेन पिण्डनिर्वपणादृते ।
तत्रैव कात्यायनः-‘वृद्धेरनन्तरं चैवं यावन्मासः समाप्यते । तावत् पिण्डान्नैव दद्यात्
कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥’ बौधायनः-‘संस्कारेषु तथान्येषु मासं मासार्धमेव च ।
तथा-‘भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्
लतर्पणम् ॥’ त्रिस्थलीसेतौ कार्णार्जिनिः-‘विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम्
उत्तरार्द्धं प्राग्वत् । वृद्धिमात्रे तथान्यत्र पिण्डदाननिराक्रिया । कृता गर्गादिभिर्मुखं
मासमेकं तु कर्मणाम् ॥’ हेमाद्रौ ज्योतिःपराशरः-‘विवाहे विहिते मासांस्त्यज
युद्वादशैव हि । सपिण्डाः पिण्डनिर्वापं मौञ्जीबन्धे षडेव हि ॥’ तत्रैवं-‘महालये गय
श्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि । यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा ॥ कृतोद्वाहो
कुर्वीत पिण्डनिर्वापणं सदा ॥’ इति । मातापित्रोरिति क्षयाहविशेषणम् । हविरुभयत्वं
द्विवक्षितम् । तेन भ्रातृपितृव्यादिवार्षिकेपि पिण्डदानं कार्यमिति केचित् । सपिण्डीकर
नवश्राद्धषोडशश्राद्धोपलक्षणार्थमिति निर्णयामृते उक्तम् ॥

क्षयाहे विशेषः संग्रहे-‘मातापित्रोराब्दिके तु विवाहादिषु सर्वदा । तिलैः पिण्ड
प्रदातव्या अन्यश्राद्धे विवर्जयेत् ॥’ अत्र मूलं चिन्त्यम् । रामकौतुकै-‘नन्दा
कामरव्यारभृग्वग्निपितृकालमे । गण्डवैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः ।
विश्वरूपनिबन्धे-‘तिथिवारग्रयुक्तो यो दोषो वै समुदाहृतः । स श्राद्धे तन्निमि
स्यान्नान्यश्राद्धे कदाचन ॥’ अन्यतूक्तं प्राक् । उच्छिष्टोद्वासनमाह हेमाद्रौ वासिष्ठ

शिष्याय च सुताय च ॥' भोक्तुरिति शेषः । जातूकर्ण्यः-द्विजमुक्तावशिष्टं तु भूमौ निखानयेत् ॥

अथ वैश्वदेवादिनि० अत्र मामकः श्लोकः-‘श्राद्धेनाग्निककर्तृकेग्निकरणं उजुहोतिर्वलिस्त्वन्ते स्यादथवा भवेद्विक्रितः पश्चात् पृथक्त्वे पचेः । श्राद्धान्ते महालयविधावूर्ध्वं भुजेः स्यात्क्षये त्वन्तेऽमासु च मध्यता शु वैश्वदेवादिनिर्णयः । वादौ तथा साग्निके ॥’ अस्यार्थः-साग्नेः पृथक्पाकेन वैश्वदेवः । ‘पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्तत्तैर्यकं बुधः ॥ पित्रर्थं निर्वपेत्पाकं वैश्वदेवार्थमेव च । वैश्वदेवं न पित्रर्थं न दार्शं वै कम् ॥’ इति लौगाक्षिस्मृतेः । अत्र साग्निक आहिताग्निरिति हेमाद्रिः । प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु साग्निकः । एकादशाहिकं मुक्ता तत्र ह्यन्ते विधीयते । हेमाद्रौ शालंकायनोक्तेश्च । तत्रैव परिशिष्टे-‘संप्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे च ॥ अग्रतो वैश्वदेवः स्यात् पश्चादेकादशेहनि ॥’ स्मार्ताग्निमतां तद्रहितानां करणोत्तरं विक्रोत्तरं वा होममात्रं पृथक्पाकेन । भूतयज्ञादि तु श्राद्धान्त एव मूलं हेमाद्रिचन्द्रिकादौ स्पष्टम् । सर्वेषां श्राद्धान्ते वा तत्पाकेन वैश्वदेवनिष्ठादीति तृतीयः । ‘श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः । कुर्याद्भिक्षां ततो ह्यन्तकारादिकं तथा ॥’ इति पैठीनसिस्मृतेः । ततः श्राद्धशेषात् । ‘श्राद्धाद्दिशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत् ॥’ इति चतुर्विंशतिमताञ्च । एवं वैश्वदेवकाल आशार्कं सांख्यायनपरिशिष्टमुदाहृत्यैव व्ययस्थोक्ता । ‘आदौ वृद्धौ क्षये दर्शे मध्ये महालये । एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते ॥’ इति बहुस्मृत्युत्सवेषां श्राद्धान्ते एवेति मेधातिथिस्मृतिरत्नावल्यादयो बहवः ॥

बोपदेवस्तु वृत्तिकारेण विसर्जनान्तं श्राद्धमुक्त्वा ‘उच्छेषणं तु’ इति पूर्वोक्तं वाक्योदाहरणाद्बहुवृत्तानां श्राद्धान्त एव । मध्यपक्षस्त्वन्यशाखापर इत्याह ॥ त्रिस्तु वृद्धावप्यन्ते एव वैश्वदेवमाह । कातीयानां तु श्रौतस्मार्ताग्निमतामादावपाकेनेति कर्कः । अन्येषां मते तैत्तिरीयाणां तु साग्निकानां सर्वत्रादौ वैश्वदेवः । यज्ञाश्च अन्ते चेति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् । अस्य पक्षद्वयस्य पूर्ववद्वचस्वस्य हेमाद्रौ मार्कण्डेयः-‘ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च ततोतिथीन् ॥ ततश्च भुंजीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥’ ततः श्राद्धशेषात् । नित्यक्रियां नित्यश्राद्धम् । पृथक्पाकेन नैत्यकम् इति तेनैवोक्तेः । पाकैक्ये विकल्पः ॥

अथ नित्यश्राद्धम् । हेमाद्रौ व्यासः—‘एकमप्याशयेद्विप्रं षण्णामपि

नित्यश्राद्धम् ।

गृही ॥’ अपीत्यनुकल्पः । प्रचेताः—‘नामन्त्रणं न होमं च न

न विसर्जनम् । न पिण्डदानं विकिरं न दद्यादत्र दक्षिणाम् ॥’ उ

‘निर्दिश्य भोजयित्वा तु किञ्चिद्वत्त्वा विसर्जयेत् ।’ इति तेनैवोक्तेर्दक्षिणाविक

यत्तु—‘नित्यश्राद्धं दैवहीनं नियमादिविवर्जितम् । दक्षिणारहितं चैव दातुमोक्तव्रतो

तम्’ ॥ इति काशखण्डे । तद्विप्राभावपरमिति पृथ्वीचन्द्रः । भविष्ये—‘आ

स्वधाकारं पिण्डाग्नौकरणादिकम् । ब्रह्मचर्यादिनियमा विश्वेदेवा न चैव हि । दा

मथ भोक्तृणां नियमो न च विद्यते ॥’ एतद्विवाऽसंभवे रात्रावपि कार्यम् । ‘दिशो

नि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै । यामिन्याः प्रहरं यावत्तावत् कर्माणि कारयेत्’ ॥

बृहन्नारदीयोक्तेः । रात्रौ प्रहरपर्यंतं दिवाकृत्यानि कारयेत् । ब्रह्मयज्ञं च सौरं च

यित्वा विशेषतः ।’ इति पृथ्वीचन्द्रधृतसंग्रहोक्तेश्च । न च दार्शिकाब्दिक

रात्रौ स्यादिति वाच्यम् । इष्टापत्तेः तस्य तिथिसंबन्धित्वात् ‘संध्यारात्रौ न कर्तव्यं

खलु विचक्षणैः’ । इति वैष्णवाद्यै रात्रौ निषेधात् । अत एवालपद्वादश्याम्—‘उषःका

कुर्यात् प्रातर्माध्याह्निकं तदा ।’ इत्याद्यैर्वाक्यैस्त्रयोदशीश्राद्धं नापकृष्यते । भिन्न

यत्वादित्युक्तं मदनरत्ने । नित्यं त्वपकृष्यते । अन्वहमित्युक्तेस्तिथिसर्वा

भावात् । यथा च सुदर्शनभाष्ये—‘परपक्षे पित्र्याणीति नियमेपि नित्यश्राद्धत्वे स

रमित्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया । बलाच्छुक्लपक्षोपि’ इत्युक्तम् । तथा रात्रावपि । त

माधवेन प्रतिपत्प्रकरणे स्पष्टमुक्तम् । वयं चाग्रे वक्ष्यामः । अस्य दिने करणे लोप

‘रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत’ इति निषेधादिति पृथ्वीचन्द्रोदयः । पात्राभावे कौर्मे—‘उत्त

वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं प्रकल्पयेत् ॥’ तत्प्रतिपत्तिमाह विष्णुः—‘भिक्षुकाभावे

गोभ्यो दद्यादग्नौ वा प्रक्षिपेत् ।’ इति हेमाद्रौ । नागरखण्डे—‘नित्यश्राद्धं न

प्रसङ्गाद्यत्र सिद्धयति । श्राद्धान्तरे कृतेन्यत्र नित्यत्वात्तत्र हापयेत् ॥’ प

पृथङ् नेत्यर्थः ॥

मात्स्ये—‘ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यमुतवान्धवः । भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वपितृ

वितम् ॥’ सर्वं पर्वनिषिद्धं मांसमाषाद्यपीत्यर्थः । एवं कृष्णैकादश्यादौ गृहिणोपि

नम् अस्य वेधत्वेन निषेधाप्रवृत्तेः । एवं ग्रहणवेधेपि । यत्त्वनाहिताग्नेरमाषममांसं व्रत

त्युक्तं तद्वेद्यमेव । श्रौतत्वेन तस्य बलवत्त्वात् । देवलः—‘श्राद्धं कृत्वा तयोर्मर्त्यो

क्तेऽथ कदाचन । देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा ॥’ शिवरात्र्येकादश्यादे

त्रिः । जातूकर्ण्यः-‘अहन्येव तु भोक्तव्यं कृते श्राद्धे द्विजन्मभिः । अन्यथा ह श्राद्धं परंपाके च सेविते ॥’

श्राद्धशेषभोजनस्य क्वचिन्निषेधमाह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे मार्कण्डेयः-‘पितृनामयाऽन्येषां श्राद्धशेषान्नभोजनम् । व्रतिनां विधवानां च यतीनां च विगर्हितम् अन्ये भिन्नगोत्राः । व्रतिनो ब्रह्मचारिणः । ‘श्राद्धावशिष्टभोक्तास्ते वै निरयगामिनः सगोत्राणां सकुल्यानां ज्ञातीनां च न दोषकृत् ॥’ इति तत्रैवोक्तेः । तत्रैव जाबालिः ‘विप्रस्त्वन्यगृहे श्राद्धे शिष्टान्नं भोजनं चरेत् । प्राजापत्यविशुद्धिः स्याज्ज्ञातिगोत्रे न कृत् ॥’ यतीनां वपनं लक्षप्रणवजपश्चेति तत्रैवोक्तम् । अस्यापवादमाह स एव । ‘श्वशुरगुरोर्वापि मातुलस्य महात्मनः । ज्येष्ठभ्रातुश्च पुत्रस्य ब्रह्मनिष्ठस्य योगिनः ॥ एतेषां श्राद्धशिष्टान्नं भुक्त्वा दोषो न विद्यते । इति केचित् प्रशंसन्ति मुनयस्तदसंप्रतम् ॥’ विप्रान्तरं तत्रैव ज्ञेयम् । हेमाद्रौ जाबालिः-‘ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनमन्योषधिपरान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥’ पृथ्वीचन्द्रोदये आचार्यः-‘न भोजयेत्तस्मिन् गृहे यत्नेन तद्दिने । श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादखिलेष्वपि ॥’ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पार्वणश्राद्धम् ॥

अथानुकल्पाः । तत्र विप्रालाभे-‘भोजयेदथवाप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनम् ।

श्राद्धानुकल्पः । कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चात्तस्य तु निर्वपेत् ॥’ इति शंखोक्तेरेको विप्रः

मुक्तः । विप्रभावे दर्भवटुः । ‘निधाय वा दर्भवटूनासनेषु समाहितप्रेषानुप्रेषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत् ॥’ इति देवलोक्तेः । अशक्तावामश्राद्धम् ‘आपद्यन्गौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत भार्यारजसि संक्रमे’ इति कात्यायनोक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदये जमदग्निः-‘यावत्स्यान्नाग्निसंयुक्त उन्नाग्निरथापि वा । आमश्राद्धं तदा कुर्याद्वस्तेग्नौकरणं भवेत् ॥’ कौर्मे-‘अनग्निरथवापि तथैव व्यसनान्वितः । आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद्वृषलस्तु सदैव हि ॥’ आहितप्रवासस्थे तत्पत्नी गृहे दर्शं ऋत्विगादिना कारयेत् । ‘अमावास्यादि नियतं प्रोषिते धर्माचारिणी । पत्यौ तु कारयेन्नित्यमन्येनाप्यृत्विगादिना ॥’ इति लघुहारीतोक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदयः । आदिपदमाब्दिकादिसर्वपार्वणपरमिति शूलपाणिः । सुमन्तुपाकाभावेधिकारः स्याद्विप्रादीनां नराधिप । अपत्नीनां महाबाहो विदेशगमनादिभिः सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विदुर्वुधाः ॥’ प्रचेताः-‘स्त्रीशूद्रः स्वपचश्चैव जातकर्मचाप्यथ । आमश्राद्धं सदा कुर्याद्विधिना पार्वणेन तु ॥’ स्वयं पचतीति स्वपचः अतीकः । विष्णूशनसौ-‘आत्मनोदेशकालाभ्यां विप्रवे समुपस्थिते । आपद्यन्

र्थे च प्रवासे पत्न्यसंभवे ॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादामं विशेषतः । न पक्वं भोजये-
द्धानं सच्छूद्रोऽपि कदाचन ॥ भोजयन् प्रत्यवायी स्यान्न च तस्य फलं लभेत् ॥
प्रवासेतीर्थग्रहणादावामहेमश्राद्धमेव । पाकश्राद्धं तु न भवत्येवेति हेमाद्रि-
नावल्यादयः । अपरार्कविज्ञानेश्वरादयस्तु-‘पाकाभावे द्विजातीनामाम-
श्राद्धं विधीयते ।’ इति सुमन्तूक्तेः । साग्निकैर्निरग्निकैश्च प्रवासादौ सर्वत्र पाकाभावे
आमादि कार्यम् । पाकसंभवे त्वन्नेनैवेत्याहुः । अत एव पाकश्राद्धमुक्त्वा-‘एतच्चानुपनी-
पि कुर्यात्सर्वेषु कर्मसु । भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रवासस्थोऽपि नित्यशः’ ॥ इति मात्स्ये
ग्रन्थेऽपि ॥ पाकेनोक्तमिति शूलपाणिकल्पतरू । एतच्छब्दः श्राद्धमात्रपर-
यन्ये । ‘एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम् ।’ इति लघुहारीतीयमपि
ग्रन्थेऽपि । निरग्रेमहैकोद्दिष्टमप्यामेन । शूद्रस्य तु दशाहपिण्डाद्यामेनेति हलायुधः ।
सन्नाग्नीनां त्वामश्राद्धमेव पूर्वोक्तजमदग्निवाक्यात् । मरीचिः-‘श्राद्धविघ्ने द्विजाती-
नामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादहो ॥ स्मृतिदर्पणे-‘मृताहं
सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम् । आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ॥’
हेमाद्रौ व्यासः-‘आमं ददत्तु कौन्तेय दद्यादामं चतुर्गुणम् । द्विगुणं त्रिगुणं वापि
त्वेकगुणमर्पयेत् ॥ सिद्धान्ते तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौ विधिः ॥ आवाहनादि-
न्यास्यात्पिण्डदानं च भारत ॥ दद्याद्यच्च द्विजातिभ्यः शृतं वा शृतमेव वा । तेना-
कर्णं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् ॥’ पक्षान्तरमाह स एव-‘आमं ददद्भिः कौन्तेय
आमं द्विगुणं चरेत् । त्रिगुणं चतुर्गुणं वापि न त्वेकगुणमर्पयेत् ॥’ स्मृत्यर्थसारे
अप्युक्तम् । षट्त्रिंशन्मते-‘आमश्राद्धं यदा कुर्यात् पिण्डदानं कथं भवेत् ।
आमाकात्समुद्भूत्य सक्तुभिः पायसेन वा ॥ पिण्डान्न दद्याद्यथालामं तिलैः सह
वत्सरः ॥’ पृथ्वीचन्द्रोदये व्यासः-‘आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदः
स । हस्तेभ्योऽकर्णं कुर्याद्वाह्यणस्य विधानतः ॥’ एतत्साग्रेः । निरग्रेः सदा तत्स-
त्तु । यत्तु-‘आमेन पिण्डं दद्याच्चेद्विप्रान् पाकेन भोजयेत् । पक्वेन कुरुते पिण्ड-
मात्रं यः प्रयच्छति । तावुभौ मनुजौ प्रोक्तौ नरकाहौ न संशयः ॥’ इति तद्दर्शा-
परम् । देशाचाराद्वचस्थेति युक्तम् । मरीचिः-‘आवाहने स्वधाकारं मन्त्रा ऊह्या
वर्जने । अन्यकर्मण्यनूह्याः स्युरामश्राद्धविधिः स्मृतः’ आवाहने हविषे अत्तव इत्यत्र
पक्वेनेत्यूहः । स्वधाकारे नमो वः पितर इषे इत्यत्र इषे पदस्थाने आमद्रव्या-
यूहः । विसर्जने वाजेवाजे इत्यत्र तृप्ता इति स्थाने तत्पश्यत तृप्यतेति बोहः ।
अपि तस्मादहं नोहेदिति ऋच्यहो निषिद्धस्तथापि वचनाद्वति । ‘तन्निप्रश्रवणा-

धर्मप्रदीपे तु-‘आमं चतुर्गुणं दद्यादथवा द्विगुणं तथा । हेम चाष्टगुणं
हैमप्यसौ विधिः ॥ आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च । व्यतीप
श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत् ॥ गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा ॥
प्रकुर्वीत आमे हैमे कृते सति । आमश्राद्धे च वृद्धौ च प्रेतश्राद्धे तथैव च ।
नैव कुर्वीत मुनिः कात्यायनोब्रवीत् । आमश्राद्धमनङ्गुष्ठमग्नौकरणवर्जितम्
प्रश्रविहीनं तु कर्तव्यं मानवैर्धुवम् । आवाहनाग्नौकरणं विकिरं पात्रपूरणम्
प्रश्रं न कुर्वीत आमे हैमे कदाचन ॥’ इत्युक्तम् । एतच्च । ‘आवाह
त्कार्यमर्घ्यदानं तथैव च ।’ इति हेमाद्रौ भविष्यादिविरोधाच्चिर
शाखान्तरविषयं वास्तु । विकिरोप्यामेतेति हेमाद्रिः शूद्रस्य तु तत्रैव
‘अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते ॥’ अग्नये कव्यवाहनाय नमः
पितृमते नमः इत्थं मन्त्रः । मात्स्ये-‘मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्रस्य सर्वमेव वि
एवं शूद्रोपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा ॥ नमस्कारेण मन्त्रेण कु
न्नवद्बुधः ॥’ तच्च पूर्वाह्णे कार्यम् । ‘आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं च मध्यतः
चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्’ इति हारीतोक्तेः । एतद्विजविषयम् ।
त्वपराह्ण एव । ‘मध्याह्नात्परतो यस्तु कुतुपः समुदाहृतः । आमश्राद्धं तु तत्रैव
दत्तमक्षयम् ॥’ इति मुमन्तूक्तेरित्यपराह्णे हेमाद्रौ चोक्तम् ॥

तदभावे हेमश्राद्धमाह हेमाद्रौ मरीचिः-‘आमान्नस्याप्यभावे तु श्रा
बुद्धिमान् । धान्याच्चतुर्गुणेनैव हिरण्येन सुरोचिषा ॥’ धर्मः-‘आमं तु द्विगु
हेमं तद्वच्चतुर्गुणम् ॥’ स्मृत्यर्थसारे-‘हिरण्यमष्टगुणं चतुर्गुणं समं वा द
हेमाद्रौ भविष्ये-‘अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं संग्रहे
स्त्रीशूद्रयोरपि ॥’ षट्त्रिंशन्मते तुर्यपादे-‘वर्जयित्वा क्षयेहनि’ इति पाठः
भार्या रजस्वला’ इति व्यासपाठः । पुत्रोत्पत्तौ तु हेमनियममाह संवर्त
न्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेमैव बुद्धिमान् । न पक्वेन न चामेन कल्याणान्याभिका
भविष्ये-‘गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा । पिण्डदानं प्रकुर्वीत
कृते सति ॥ शूद्रस्तु गृहपाकेन तत् पिण्डान्निर्वपेत्तथा । सक्तुमूलं फलं तस्
वा भवेत्स्मृतम् ॥’ ‘हेमश्राद्धे पिण्डदानं न’ इति दिवोदासः । स्मृत
तु-विकल्प उक्तस्तदाशयं न विद्मः । षट्त्रिंशन्मते-‘नामन्त्रणाग्नौ करणं
नैव दीयते । तृप्तिप्रश्नोपि नैवात्र कर्तव्यः केनचिद्भवेत् ॥ अत्र मरीचिन

तेनापि श्राद्धवैश्वदेवादि न कार्यम् । देवोद्देशेन त्यक्तस्य देवतान्तरायात्यागायोगा
 देवयाज्ञिकः । शूद्रलब्धे तूक्तं तत्रैव षट्त्रिंशन्मते—‘आमं शूद्रस्य यत् किञ्चि
 द्विकं प्रतिगृह्यते । तत्सर्वं भोजनायालं नित्यनैमित्तिकेन च ॥’ इति । शूद्रत
 द्विराः—‘शूद्रवेश्मनि विप्रेण क्षीरं वा यदि वा दधि । निवृत्तेन न भोक्तव्यं शूद्रान्नं
 स्मृतम् ॥ शूद्राद्विप्रगृहेष्वन्नं प्रविष्टं तु सदा शुचिः ॥’ पराशरः—‘तावद्भवति
 यावन्न स्पृशति द्विजः । द्विजातिकरसंस्पृष्टं सर्वं तन्न विरुद्ध्यते ॥’ विष्णुपुराणे—
 क्षयित्वा गृह्णीयाच्छूद्रान्नं गृहमागतम् ॥’ अंगिराः—‘पात्रान्तरगतं ग्राह्यं दुग्धं स्
 मागतम् ॥’

सपिण्डश्राद्धाशक्तावाह हेमाद्रौ संवर्तः—‘समग्रं यस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्व
 अपि संकल्पविधिना काले तस्य विधीयते ॥ पात्रे भोज्यस्य चान्नस्य त्यागः सं
 उच्यते’ ॥ व्यासः—‘सांकल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरण
 सांकायिकश्राद्धम् । नावाहनाग्नौकरणे पिण्डांश्चैव न दापयेत् ॥’ पात्रमर्घ्यस्य । समन्त्र
 वाहनस्य निषेधः । तूष्णीं तु भवत्येवेति हेमाद्रिः । स्मृत्यर्थसारे—‘विकिरं त
 दातव्यम्’ इति तृतीयपादे पाठः । स्मृत्यन्तरे—‘त्यजेदावाहनं चार्घ्यमग्नौकर
 च । पिण्डांश्च विकिराक्षय्ये श्राद्धे सांकल्पसंज्ञके ॥’ हेमाद्रौ वृद्धशाताताप
 ‘पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते । स्वधावाचनलोपोत्र विकिरस्तु न लुप्यते
 इत्याह । पृथ्वीचन्द्रोदये वसिष्ठः—‘आवाहनं स्वधाशब्दं पिण्डाग्नौकरणं त
 विकिरं पिण्डदानं च सांकल्पे षड्विजयेत् ॥’ विकिरे विकल्पः स्मृत्यन्तरे—‘अ
 पितृयज्ञस्य यदा कर्तुं न शक्नुयात् । स तदा वाचयेद्विप्रान् संकल्पात्सिद्धिरस्त्विति
 छागलेयः—‘पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथंचन । सांकल्पं तु तदा कार्यं नि
 द्रव्यवादिभिः ॥’ कार्ष्णाजिनिः—‘मौञ्जीवन्धाद्वत्सरार्धं वत्सरं पाणिपीडनात् । पि
 सपिण्डा नो दद्युः प्रेतपिण्डं विनात्र तु ॥’ अस्यापवादः पित्रोराब्दिकादौ पूर्वमुत्त

१—तत्पाकश्च शूद्रगृहे न कार्यः । ‘शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेश्मन आगतम् । पक्वं विप्रगृहे
 भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ।’ इति पराशरमाधवीयस्मरणात् । २—अमन्त्रकावाहनाकरणे देवताया अ
 धानप्रसंगेन श्राद्धानिष्पत्तिप्रसंगात् । नवीनास्तु—पितृविग्रहः स्वीकार्यः । अन्यथा धर्माधर्मफलमे
 नुपपत्तेः । एवं तत्तृप्तिरपि श्राद्धफलत्वेन स्वीकार्या । देवताधिकरणे देवतातृप्तेर्निराकरणेपि रत्रि
 न्यायेन पितृतृप्तित्वेन तस्या दुर्वारत्वात् । नत्वागमनरूपं सांनिध्यं मानाभावात् । यत्तु—‘व
 प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति यथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः’ । इति प्र
 दफलदातृत्वम्’ तदपि नोपेयते अर्थवादैकत्वात् । तस्मात्सांनिध्यफलदातृत्वयोरनुपगमादमन्त्रकाव
 वृथैवेत्याहुः । इति टीका ।

त्यक्ताग्रेरपि सांकल्पमुक्तं षट्त्रिंशन्मते-‘अनग्रिको यदा विप्र उत्सन्नाग्रिस्तथैव च
तथा वृद्धिषु सर्वासु संकल्पश्राद्धमाचरेत् ॥’

अशक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये-‘द्रव्याभावेद्विजाभावे अन्नमात्रं तु पाच
येत् । पितृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥’ देवलः-‘पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभा
द्रव्यविप्रयोः । श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते भवेन्निरशनोपि वा ॥’ वृद्धवसिष्ठः-‘किंचिद्व्य
दशक्तस्तु उदकुम्भादिकं द्विजे । तृणानि वा गवे दद्यात् पिण्डान्वाप्यथ निर्वपेत् ॥ तित
दर्भैः पितृन्वापि तर्पयेत्स्नानपूर्वकम् ॥’ हेमाद्रौ भविष्ये-‘अग्निना वा दहेत् क
श्राद्धकाले समागते । तस्मिन्वोपवसेद्वि जपेद्वा श्राद्धसंहिताम् ॥’ श्राद्धसंहिता समन्
श्राद्धसंकल्पः । विष्णुवराहपुराणयोः-‘असमर्थोन्नदानस्य धान्यं मांसं स्वशक्तितः
प्रदास्यति तिलान्वापि स्वल्पां वापि च दक्षिणाम् ॥ सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्र
र्शकः । सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति ॥ न मेस्ति वित्तं न धनं न चान्नं श्राद्धे
पयोगि स्वपितृन्नतोस्मि । तृप्यन्तु भक्त्या पितरौ मयैतौ भुजौ कृतौ वर्तमानि मारुतस्य
इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम् । यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति भारत ।
प्रभासखण्डे-‘गत्वारण्यममानुष्यमूर्ध्वबाहुर्विरौत्यदः । निरन्नो निर्धनो देवाः पित
मानृणं कृथाः ॥ न मेस्ति वित्तं न धनं न भार्या श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि । व
प्रविश्येह तु तन्मयोच्चैर्भुजौ कृतौ वर्तमानि मारुतस्य ॥ श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं म
दयध्वं पितृदेवताद्याः । आख्याय चोत्क्षिप्य भुजौ ततो वै दिवा च रात्रिं समुपो
तिष्ठेत् ॥ भवेत्स वै तेन कृतेन तेषामृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम् ॥’ इत्यनुकल्पाः

अथ श्राद्धभाजने प्रायश्चित्तम् । दर्शे षट् प्राणायामाः । वृद्धौ त्रयः । संस्व
रेषु जातकर्मादि चूडान्तेषु सांतपनम् । आद्ये चान्द्रं वा । अन्यसंस्कारेषूपवासः

श्राद्धभाजने प्रायश्चित्त-
निर्णयः । सीमन्ते चान्द्रमिति विज्ञानेश्वरः । आपदि नवश्राद्धैकादशां

भाजने कायः ॥ द्वादशाहे ऊनमासे च पादोनः । द्विमासे त्रिपक्षे उ
पष्ठोनाव्योश्चाद्धकृच्छ्रः । त्रिमासाद्याब्दिकान्तेषु सपिण्डने च पादकृच्छ्र उपवासो
गुरुद्रव्यार्थभाजनेर्द्धम् । जपशीले तदर्धम् । अनापदि तूनमासान्तेषु चान्द्रं कायं वा
द्विमासादौ पादोनम् । त्रिमासावर्द्धकायः । आब्दिके पादोनकायः । पुनराब्दिके एका
क्षत्रियादिश्राद्धेषु द्वित्रिचतुर्गुणानि ज्ञेयानि । चाण्डालसर्पश्वादिहतपतितह्रीवादिनवश्र
चान्द्रम् । आद्यमासिकान्ते चान्द्रं पराकश्च । द्वादशाहादौ पराकः । द्विमासादावा
कृच्छ्रः । त्रिमासादौ कायः । आब्दिके पादः । अभ्यासे सर्वं द्विगुणम् । आमहेमसंक

हार्यः । एकादशाहे चान्द्रं पुनःसंस्कारश्चेति प्रायश्चित्तकाण्डे हेमाद्रिः यत्तूशन
‘दशकृत्वः पिवेदापो गायत्र्या श्राद्धभुगाद्विजः ।’ इति तदनुक्तप्रायश्चित्तश्राद्धपरमि
विज्ञानेश्वरः ॥

अथ क्षयाहश्राद्धम् । तत्स्वरूपमाह हेमाद्रौ व्यासः—‘मासपक्षतिथिस्
क्षयाहश्राद्धनिर्णयः । यो यस्मिन् प्रियतेहनि । प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः
नारदीये—‘पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।’
चान्द्रं मानं ज्ञेयम् । ‘आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रज्ञस्यते ।’ इति गगोत्त
मलमासमृतस्य तु सौरम् । ‘मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत् ।’ इति हेम
द्रावुक्तेः । एतन्मृतमासस्यैवाधिक्ये ज्ञेयम् । ब्राह्मे—‘प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापि
मृतेहनि । पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातृज्येष्ठस्य चैव हि ॥’ अपुत्रस्येति भ्रात्राप्यन्वय
ज्येष्ठस्येति कनिष्ठस्यानावश्यकत्वार्थम् । मदनरत्ने भविष्ये—‘सर्वेषामेव श्राद्ध
श्रेष्ठं सांवत्सरं मतम् ॥’ तथा—‘भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति खगाधिप ॥ मा
पितृभ्यां सततं वर्षेवर्षे मृतेहनि ॥ स याति नरकं घोरं तमिस्त्र नाम नामतः ॥’
नानास्मृतिष्वेकोद्दिष्टं पार्वणं चोक्तम् । आद्यमाह यमः—‘सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रति
वत्सरं सुतैः । मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेहनि ॥’ व्यासः—‘एकोद्दिष्टं तु कर्त
पित्रोश्चैव मृतेहनि । एकोद्दिष्टं परित्यज्यं पार्वणं कुरुते नरः । अकृतं तद्विजानीयाद्भ
पितृघातकः ॥’ अन्त्यमाह शातातपः—‘सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात् पार्वणवत्सद
प्रतिसंवत्सरं श्राद्धं छागलेनोदितो विधिः ॥ यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक्पिण्डे निय
येत् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥’ अत्रौरसक्षेत्रजयोः पार्वणं, दत्तकादी
मेकोद्दिष्टमित्येकः पक्षः । साग्रेः पार्वणं निरग्रेरेकोद्दिष्टमित्यपरः । तद्दूषणं मिता
रादौ ज्ञेयम् । कल्पतरुस्तु—‘साग्न्यौरौरसक्षेत्रजयोः पार्वणम् । निरग्रिकयोस्त्वे
दिष्टम्’ इत्याह । अपराकैप्येवम् । दत्तकादयो दश पुत्रास्तु साग्रयो निरग्रयश्चैको
ष्टमेव कुर्युः । ‘प्रत्यब्दं पार्वणेनैव विधिना क्षेत्रजौरसौ । कुर्यातामितरे कुर्युरेकोद्दिष्टं
दश ।’ इति जातूकण्ठोक्तेः । यदा तु दत्तकस्य पिता दर्शं महालये वा मृतस
पार्वणैकोद्दिष्टयोर्विकल्पः । वस्तुतस्तु सर्वेषां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्वीहियववद्विकल्पः । स
देशाचाराद्यवस्थित इति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः । अतएव पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धप
शरः—‘मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेहनि ।’ इत्युक्ताह ‘देशधर्म समाश्रि

पार्वणमेव । 'अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः । पार्वणं तस्य कर्तव्यं न कदाचन ॥' इति । शङ्खोक्तेः ॥

एवं संन्यासिनोपि—'एकोद्दिष्टं यतेनास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह । सपिण्डीकरणं पार्वणं तस्य सर्वदा ॥' इति प्रचेतसोक्तेः । वायवीये—'संन्यासिनोप्याब्दिकां कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं हि तत् ॥' पृथ्वीचन्द्रः वृद्धपराशरः—'संग्रामे संस्थितानां च प्रेतपक्षे शशिक्षये । तेषां पार्वणमेवोक्तं च सत्तमैः ॥ चन्द्रक्षयानाशकसंयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतवान् सपिण्डः । सपिण्डित चाब्दिकानि भवन्ति तेषामिह पार्वणानि ॥' तथा—'भ्रातृज्येष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो नृजस्य च । देवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदब्रवीत् ॥' देवहीनमेकोद्दिष्टम् । ज्येष्ठो नाद्यगर्भजः । तथा च तत्रैव शातातपः—'अनाद्यगर्भज्येष्ठोपि भ्राता सद्भिर्निर्ऋते सपिण्डनात्तस्य नैव पार्वणमाचरेत् ॥' आद्यगर्भे तु पार्वणमेकोद्दिष्टं वेत्ता मातुस्तु हेमाद्रौ कात्यायनः—'प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात् पुत्रः पित्रे सदा तथैव मातुः कर्तव्यं पार्वणं चान्येदेव वा ॥' यत्तु तेनैवोक्तम्—'सपिण्डीकरणं पित्रेरेव हि पार्वणम् । पितृव्यभ्रातृमातृणामेकोद्दिष्टं सदैव तु' ॥ इति तत्सापेक्षपरम् । यत्तु वृद्धपराशरः—'अपुत्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रो भ्रातृजो भवेत् । स तु कुर्वीत पिण्डदानादिकां क्रियाम् ॥ पार्वणं तेन कार्यं स्यात्पुत्रवद्भ्रातृजेन तु स्थाने तु तं कृत्वा शेषं पूर्ववदुच्येत' ॥ इति । तत्पितृवद्देशाचारवद्व्यवस्थिः पृथ्वीचन्द्रः । श्राद्धदीपकालिकायां चतुर्विंशतिमते तु—'पितृव्यभ्रातृज्येष्ठानां पार्वणं भवेत् । एकोद्दिष्टं कनिष्ठानां दंपत्योः पार्वणं मित्यः ॥ अपुत्रस्य व्यस्य भ्रातृश्वेवाग्रजन्मनः । मातामहस्य तत्पत्न्याः श्राद्धं पार्वणवद्भवेत्' ॥ तत्पत्न्याः कर्तृत्वेपि पार्वणमेव । 'सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभ्रातृणाममन्त्रकम् पण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च' ॥ इति लौगाक्षिस्मृतेः । 'ततः कुर्वीत सापिण्ड्यं पार्वणं तथा ।' इति सुमन्तूक्तेश्चेति निर्णयामृते उक्तम् त्वेतत्पाक्षिकपार्वणपरमाहुः । अत एव—'भर्तुः श्राद्धं तु या नारी मोहात्पार्वणमा न तेन तृप्यते भर्ता कृत्वा तु नरकं व्रजेत् ॥' इति वचनं क्षयाहे पाक्षिकैकोपसार्थं न पार्वणनिषेधार्थमित्युक्तं त्रिस्थलीसेतौ भट्टचरणैः । 'स्वभर्तृप्रभृति इत्यनेन विरोधाच्च ॥

अपुत्राणां चाह हेमाद्रावापस्तम्बः—'अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो व

भवा च या । तयोश्च नैव कुर्वीत पार्वणं पिण्डनादृते ॥' प्रचेताः—'सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ॥' अपत्नीनां ब्रह्म-
चार्यादीनाम् । मार्कण्डेयपुराणे—'प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः । मृता-
हनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम् ॥' नृणामिति दृष्टान्ताद्देविग्रहतपाखण्ड्यादीनां
सपिण्डनाभावेऽपि सांवत्सरमेकोद्दिष्टं कार्यमेवेति शूलपाणिः । अत्रिवृद्धवसिष्ठौ—
'सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते । भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ॥
पितृव्यगुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥' यत्तु जातृकर्ण्यः—'पितृव्यभ्रातृमातृणा-
मपुत्राणां तथैव च । मातामहस्यासुतस्य श्राद्धादि पितृवद्भवेत् ॥' इति । तदावश्यक-
त्वार्थं न तु पार्वणार्थमिति हेमाद्रिः । युक्तं त्वेवम् । 'मातुः पितरमारभ्य त्रयो
मातामहाः स्मृताः । तेषां तु पितृवच्छ्राद्धं कुर्युर्दुहितृसूनवः' ॥ इति पुलस्त्योक्ते-
र्मार्तामहस्य पार्वणमेव । तत्साहचर्यात् पितृव्यादौ तथा । 'पितृव्यभ्रातृमातृणामेको-
द्दिष्टं च पार्वणम्' । इति क्षयाहोक्तोपक्रमे पुलस्त्योक्तेश्च विकल्पः । केचित्त्वापस्तम्बा-
दिवाक्यानि—'व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता ।' इत्यस्य पितृव्यादिपर-
त्वादकृतसपिण्डनपितृव्यादिपराणीत्याहुः । माता सपत्नमाता । एकोद्दिष्टं तु कनिष्ठ-
परमिति । पृथ्वीचन्द्रोदयेष्वेवम् । विशेषस्त्वधिकारिनिर्णये प्रागुक्तः । केचित् पुत्रा-
न्तराभावेऽपि पितामहवार्षिकमप्यावश्यकम् । 'पुत्राभावे च तत् पुत्राः पत्नी माता तथा
पिता । वित्ताभावेऽपि सच्छिष्यः कुर्यात्तस्योर्ध्वदेहिकम्' ॥ इति मार्कण्डेयपुराणादि-
त्याहुस्तत्र । 'पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम्' । इति कातीये विशेषोक्तः ॥

अथ क्षयाहर्द्धे निर्णयः । तत्रैकोद्दिष्टं मध्याह्ने कार्यम् । मध्याह्नश्च पञ्चधा
विभक्तदिनतृतीयभाग इति माधवः । 'आमश्राद्धं तु पूर्वाह्ने एको-
द्दिष्टं तु मध्यमे । पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' ॥ इति
हारीतोक्तौ प्रातःशब्दसाहचर्यात् । तत्रापि कुतुपादिषु सुहूर्तादितये ज्ञेयम् । 'प्रारभ्य
कुरुते श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः । विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लवयेत् ॥'
इति गौतमोक्तेरतत्परत्वात् । रौहिणो नवमो सुहूर्तः । मैथिलाः श्राद्धकौमुदी
चैवम् । अन्यथा—'ऊर्ध्वं सुहूर्तात् कुतुपाद्यन्सुहूर्तचतुष्टयम् । सुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधा-
भवनमिष्यते ॥' इत्यादिविरोधात् । दीपिकापि—'एकोद्दिष्टमुपक्रमेत कुतुपे' इति ।
माधवीये व्यासोपि—'कुतुपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् । आवर्तनसमीपे वा

तत्रैव नियतात्मवान् ॥' पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । तेन कुतुपादिरोहिणान्
कालः । दिनद्वये तद्व्याप्तौ समव्याप्तौ च पूर्वा । विषमव्याप्तावाधिक्येन
अव्याप्तौ पूर्वैव । परविद्धाया निषेधात् सा च पूर्वदिने रोहिणलंघनापत्तेः परैवेति
शुक्लकृष्णवशात्स्वर्दर्पाद्यैर्वा व्यवस्थेत्यन्ये । तन्न । परविद्धानिषेधप्राबल्यात्
कालमाधवीये ज्ञेयम् ॥

पार्वणं त्वपराह्णे कार्यं पूर्वोक्तवचनात् । 'मध्याह्नव्यापिनी या स्यात्सैको
र्भवेत् । अपराह्णव्यापिनी या पार्वणे सा तिथिर्भवेत् ॥' इति पृथ्वी-
वृद्धगौतमोक्तेश्च । पूर्वद्युरेव परेद्युरेव वाऽपराह्णव्याप्तौ सैव ग्राह्या । दिनद्वये
तदस्पर्शेऽशतः समव्याप्तौ वा पूर्वैव । विषमव्याप्तौ त्वधिका ग्राह्या । 'द्व्य-
पिनी स्यादाब्दिकस्य यदा तिथिः । महती यत्र तद्विद्वां प्रशंसन्ति महर्षयः
मरीचिस्मृतेः । 'दर्शं च पूर्णमासं च पितुः सांवत्सरं दिनम् । पूर्वविद्धामकुव-
प्रतिपद्यते' इत्यपराह्णे नारदोक्तेः । 'द्व्यहेष्यव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य यत्
पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या त्रिमुहूर्ता भवेद्यदि ॥' इति सुमन्तूक्तेः । 'पूर्वस्यां निर्वपे-
नित्याङ्गिरसभाषितम् ।' इति हेमाद्रौ पाठः । तत्रैव वृद्धमनुः- 'न द्व्य-
चेत्स्यान्मृताहस्य च या तिथिः । पूर्वविद्धैव कर्तव्या त्रिमुहूर्ता च या भवेत् ॥
रत्नेऽप्येवम् । यत्तु कार्णाजिनिव्याप्तौ- 'अहोस्तमयवेलायां कलाम
तिथिः । सैव प्रत्याब्दिके ज्ञेया नापरा पुत्रहानिदा ॥' इति त्रिमुहूर्तस्तुतिः
सायं त्रिमुहूर्ताभावे तु परैव । 'त्रिमुहूर्ता न चेत् ग्राह्या परैव कुतुपे हि सा
कालादर्शे गोभिलोक्तेः । कालादर्शेऽपि- 'प्रत्याब्दिकेऽप्येवमेव तिथि-
ह्मिका । उभयत्र तथात्वे तु महत्त्वेन विनिर्णयः । समत्वे पूर्वविद्धैव ह्यतथा
यदि ॥ त्रिमुहूर्ता भवेत्सायं सर्वश्रेयं विनिर्णयः ॥' अन्यत्रापि- 'सायंतन्यपरत्र
तिथिः सैवाब्दिके मासिके ग्राह्या सा द्व्यपराह्णयोर्यदि तदा यत्राधिका स
तुल्या चेदुभयापराह्णसमये पूर्वा न चेत्तु द्वये, पूर्वैव त्रिमुहूर्तगास्तसमये
सैवोचिता ॥'

माधवपृथ्वीचन्द्रौ तु- 'दिनद्वयेपराह्णव्याप्तौ अंशतः समव्याप्तौ च क्षये
परा ॥' 'स्वर्दर्पी परौ पूज्यौ' इत्युक्तेः । 'अपराह्णद्वयव्यापिन्यतीतस्य च या
क्षये पूर्वा च कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥' इति बौधायनोक्तेः ।
तिथिर्या तु अपराह्णद्वये यदि । पूर्वा क्षये तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥' इ

त्रारदीयाच्चेत्याहुः । वृद्धिक्षयौ चात्र परतिथेर्न तु ग्राह्यतिथेः । तस्याः क्षये पराह्णद्व्यप्तेरसंभवात् । तदाह माधवः—‘न ग्राह्यतिथिगौ वृद्धिक्षयावूर्ध्वतिथेस्तु तौ ।’ इति यत्तु पृथ्वीचन्द्रः—‘पूर्वोक्तवचनेषु यत्र सायाह्नास्तमययोगिनी तिथिरुक्ता तत्रापरा व्यापिनी ज्ञेया ।’ ‘सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यात्तत्र श्राद्धं न कारयेत् ।’ इति मात्स्यायनसायाह्ननिषेधात् । यच्च ‘त्रिमुहूर्तादिग्रहणं तच्छ्राद्धार्हापराह्णरूपत्रिमुहूर्तपरम्’ इत्याह तद्धेमाद्रिमदनरत्नकालादर्शादिग्रन्थविरोधालक्षणापत्तेश्च चिन्त्यम् । तस्मात् पूर्वोक्तमेव साधु । यदा विघ्नवशाद्दिने सांवत्सरश्राद्धं न कृतं तदा रात्रावपि कार्यम् । ‘मृतसमतिक्रम्य चण्डालेष्वभिजायते ।’ इति मरीचिना मृताहातिक्रमे दोषोक्तेः । ‘न नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे वा भोजनसमापनम्’ इत्यापस्तम्बेन गौणकालोक्तेश्च माधवः । आरब्धे श्राद्धे विघ्नवशाद्वात्रिभागे पाते भोजनसमाप्त्यन्ते रात्रौ कार्यम् । शेषसमाप्तिः परदिने एवेति हरदत्तः । ग्रहणादिने वार्षिकप्राप्तौ तद्दिने एवाच्चेनामहेम्ना वा कुर्यात् । नोत्तरदिने इत्युक्तं प्राक् ग्रहणनिर्णये । तच्च प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे कार्यम् । अन्यथा न । ‘प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैकचित् त्रयोदशेपि स्यादाद्यं मुक्ता तु वत्सरम् ॥’ इति लघुहारीतोक्तेः । इदमन्त्याधिकमासपरम् । द्वादशे त्रयोदशे वातीत इत्यर्थः तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमभवति तत्र त्रयोदशेधिके एवाब्दिकं कार्यम् । यत्राधिकमव्ये द्वादशं मासिकं तत्र तद्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धे एव प्रथमाब्दिकमिति माधवीये । हेमाद्रौ चैवमद्वितीयाब्दिकं तु शुद्धमासे एव नाधिके, नाप्युभयोः । मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यमन्यथा शुद्ध एवेति प्रागुक्तम् ॥

दर्शे वार्षिकं चेत्तदा पूर्वं वार्षिकं कृत्वा ततः पिण्डपितृयज्ञो दर्शश्राद्धं चेति निर्णयद्वयक्रम उक्तः । स्मृतिसारेपि—‘दर्शे क्षयाहे संप्राप्ते कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । आदौ क्षयनिर्वर्त्य पश्चाद्दर्शो विधीयते ॥’ इति । युक्तं त्वेवम् । तद्वचने मूलाभावात् । ‘पिण्डयज्ञं तद्वत् कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः ।’ इति दर्शश्राद्धे पिण्डपितृयज्ञानन्तर्यात्तस्याब्दिकेऽप्यतिदेशप्राप्तेः । ‘पितृयज्ञानन्तरं वार्षिकं ततो दर्शश्राद्धम्’ इति व्यतिषङ्गस्तु न भवत्येव । तस्यैकचित्वात् कालादर्शेऽपि—‘निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ।’ इति सर्वप्रत्येकरूप्याभावात् क्षयाहनिमित्तस्यानियतत्वम् । देवजानीयेऽप्येवम् । एवं मासिवदिष्वपि ज्ञेयम् ॥ ‘प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ।’ इति सर्वातिदेशात् मृताहे वृषोत्सर्ग उक्तो हेमाद्रौ विष्णुधर्म—‘अयनद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च

च्छ्राद्धभोजनम् ॥ प्रथमेस्थीनि मज्जा च द्वितीये मांसभक्षणम् । तृतीये रुधिरं
श्राद्धं शुद्धं चतुर्थकम् ॥' इति श्राद्धकारिकोक्तेः ' शुद्धं किञ्चिदिति ज्ञेयम् । स्मृ-
न्तरे-'सप्तत्रिंशच्च यो मासान् श्राद्धे भुङ्क्ते तमोहतः । स पंक्तिदूषितः पापः प्रेता-
भवेत्तु सः ॥' तत्र प्रथमेव्दे वर्षान्तसपिण्डनपक्षे मृताहात्पूर्वेद्धि सपिण्डनमब्दपूर्ति-
च कृत्वा परेद्युर्वार्षिकं कुर्यात् इति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् । हेमाद्रिस्तु मृताहे सपि-
करणेनैव वार्षिकसिद्धिः । पूर्णं संवत्सरे पिण्डः षोडशः परिकीर्तितः । तेनैव च
ण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते ॥' इति वचनादित्याह । इदमेव युक्तम् ॥

अथ क्षयाहाज्ञाने मरीचिः- 'श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेहनि । एका-

तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥' विशेषत इत्युक्तेः शुद्धैकादश्या-
क्षयाहाज्ञाने निर्णयः ।

बृहस्पतिः- 'न ज्ञायते मृताहश्चेत् प्रमीते प्रोषिते सति । मा-
प्रतिविज्ञातस्तदर्थं स्यादथाब्दिकम् ॥ दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः । प्र-
मासदिवसौ ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा ॥' मदनरत्ने भविष्ये- 'मृताहं यो न ज-
मानवो विनतात्मज । तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं सांवत्सरं सदा ॥ दिनमेव तु ज-
मासं नैव तु यो नरः । मार्गशीर्षे तथा भाद्रे माघे वा तद्दिनं भवेत् ॥' निर्णयामृत-
यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव तु । तदा चाषाढके मासि माघे वा तद्दिनं भ-
इति बृहस्पतिस्मृतेराषाढोप्युक्तः । कालादर्शेपि- 'मासाज्ञाने दिनज्ञाने क-
षाढमाघयोः ।' इत्युक्तम् । हेमाद्रौ प्रभासखण्डे- 'मृताहं यो न जानाति मासं
कथंचन । तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं माघेथ मार्गके ॥' भविष्ये- 'मृतवार्ताश्रुते
तौ पूर्वोक्तक्रमेण तु ।' पूर्वोक्तेति प्रस्थानदिनाज्ञाने मासज्ञाने च तदर्थं मासाज्ञाने
ज्ञाने च मार्गादावितिवच्छ्रवणदिनेपि ज्ञेयमित्यर्थः । श्रवणदिने मासाज्ञाने माघम-
कार्यं पूर्वोक्तप्रभासखण्डात् । अतोत्र लोप इति शूलपाण्युक्तं हेयम् । तिथि-
यमः- 'गतस्य न भवेद्द्वार्ता यावद् द्वादशवार्षिकी । प्रेतावधारणं तस्य कर्तव्यं
न्धवैः ॥ यन्मासि यदहर्यातस्तन्मासि तदहः क्रिया । दिनाज्ञानं कुहूस्तस्य आपा-
थवा कुहूः ॥'

अथ श्राद्धविघ्ने निर्णयः । तत्र विप्रस्य निमन्त्रणोत्तरं सूतके मृतके चा-
भावः । 'निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि । निमन्त्रणाद्धि विप्रस्य स्वाध्य-
रतस्य च ॥ देहे पितृषु पिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित् ।' इति ब्राह्मोक्तेः ।

विष्णुराह- 'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनार-

न्त्रणोत्तरं कर्तुर्भोक्तुश्च नाशौचम् । 'निमन्त्रणोत्तरं श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति स्मृति-
इति विष्णूक्तेः । यत्तु 'श्राद्धे पाकपरिक्रिया' इति तद्वर्शश्राद्धविषयमित्याहुः ।
मरणादौ ब्राह्मे उक्तम् । 'भोजनाद्धं तु संभुक्ते विप्रैर्दातुर्विपद्यते ॥' गृहे इति
'यदा कश्चित्तदोच्छिष्टं शेषं त्यक्त्वा समाहितः । आचम्य परकीयेन जलेन
द्विजाः ॥' इति । अस्य श्राद्धविषयत्वं हेमाद्रिणोक्तम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्ये-
वमम तु प्रतिभातीदं विवाहादिविषयम् । न तु श्राद्धविषयं तत्पदाभावात् । 'विवा-
यज्ञेषु' इत्युपक्रम्य—'भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगोहोदका-
सर्वे ते शुचयः स्मृताः ॥' इति षट्त्रिंशन्मतैकवाक्यत्वात् । 'निम-
विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि ।' इति पूर्वोक्तविरोधाच्च । श्राद्धे तु यद्यपि वि-
पाकोत्तरमाशौचाभाव उक्तस्तथापि कर्तुरेव सः, भोक्तुर्दोषोस्त्येव । 'अपि दातृ-
सूतके मृतके तथा । अविज्ञाने न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथंचन ॥ विज्ञाने
स्यात् प्रायश्चित्तादिकं क्रमात् ।' इति माधवीये ब्राह्मोक्तेः । आदिशब्द-
सुच्यते । तच्चाह विष्णुः—'ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवात्रमश्नाति तस्य
शौचम् । यावत्तेषामाशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात्' इति । यत्तु—'देहे पितृ-
नाशौचं विद्यते क्वचित् ।' इति ब्राह्मं तत् श्राद्धकालीनस्य निषेधकम् । न
कालीनस्य । शुद्धिदीपस्तु निमन्त्रितेष्वित्यामश्राद्धपरम् । भोजनार्थेष्वित्य-
श्राद्धपरमित्याह ॥

प्रायश्चित्तं त्वाह मार्कण्डेयः—'भुक्त्वा तु ब्राह्मणाशौचं चरेत्सांतपनं
एतत्कामतः । अभ्यासे शङ्खः—'ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रती
इति । अज्ञानात्तु छागलेयः—'एकाहं च त्र्यहं पञ्च सप्तरात्रमभोजनम् । त-
र्भवेद्विप्रः पञ्चगव्यं पिवेन्नरः ॥' इति वर्णक्रमेणेदम् । अभ्यासे तु वैगुण्य-
मिताक्षरामाधवीयादौ ज्ञेयम् ॥ मिताक्षरामाधवादौ तु श्राद्धे क-
सर्वथा दोषाभाव उक्तः । आशौचमध्ये श्राद्धदिनप्राप्तौ तु माधवीये क-
च ऋष्यशृङ्गः—'देये पितृणां श्राद्धे तु आशौचं जायते यदा । आशौचे तु व-
तेभ्यः श्राद्धं प्रदीयते ॥' श्राद्धचिन्तामणौ ज्योतिषे—'प्रतिसांवत्सरं छ-
चात् पतितं च यत् । मलमासेपि तत् कार्यमिति भागुरिभाषितम् ॥' आशौच-
त्वेन निमित्तत्वादित्यर्थः । एतन्मासिकादिपरं न दार्शिकादौ ॥ अत एव
भार्यसे अणरण्ये पिड्याणीति नियमात् कृष्णपक्षश्राद्धलोपे प्रायश्चित्तमेव न

आशौचान्ते सम्भवे तु व्यासः-‘श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने त्वन्तरामृतसूतके । अस्यां प्रकुर्याद्वै शुद्धावेके मनीषिणः ॥’ हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतैऽपि-‘मासिके चात्वाद्भि संप्राप्ते मृतसूतके । वदन्ति शुद्धौ तत्कार्यं दर्शे चापि विचक्षणाः ॥’ गोभिले ‘देये प्रत्याब्दिके श्राद्धे अन्तरा मृतसूतके । आशौचानन्तरं कुर्यात्तन्मासेन्दुक्षये तथ मरीचिः-‘श्राद्धविघ्ने समुत्पन्नेऽप्यविज्ञाते मृतेहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णविशेषतः ॥’ विशेषतः इत्युक्तेः शुक्लैकादश्यामपि । आशौचेतरविघ्ने एतदिति मरुतपृथ्वीचन्द्रौ । यत्त्वन्निः-‘तदहश्चेत् प्रदुष्येत केनचित्सूतकादिना । सूतका कुर्यात् पुनस्तदहरेव च ॥’ इति तत् पूर्वकालाभावे ज्ञेयम् । एतदाब्दिकेतरश्राद्धं यच्च देवलः-‘एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते । मासेन्यस्मिंस्तिथौ तदश्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः ॥’ इति । तदपि मासिकपरमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ इदमपि पूर्वकालासंभवे व्याध्यादौ विस्मरणे चैवं ज्ञेयम् ॥

अथ भार्यारजोदर्शने तत्र दार्शिकमानेन कार्यम् । ‘श्राद्धविघ्ने द्विजातीनां श्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ॥’ इति हेमाद्रौ हारिकेः । व्याघ्रपादोपि-‘आर्तवे देशकालानां विघ्नवे समुपस्थिते । आमश्राद्धं कार्यं शूद्रः कुर्यात्सदैव हि ॥’ इति । दीपिकापि-‘दर्शे तु भार्यार्तवेप्यामश्राद्धं प्रवासिविधुराद्याश्चाचरेयुर्द्विजाः ॥’ वस्तुतस्तु ‘पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधेयं इति सुमन्तूक्तेः । पाककर्त्रन्तरसत्त्वेऽन्नेनान्यथामेनेत्युक्तम् । ‘मासिकानि सपिण्डाणां अमावास्या तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ।’ इति कार्यायां वचनाच्च । कालादर्शे तु स्त्रिया रजोदर्शने दर्शश्राद्धं पञ्चमेहनीति पक्षान्तरमुपारिजातेष्वेवम् । एवं महालययुगादावपि ॥

आब्दिकं तु रजोदर्शनेपि तद्दिने एव कार्यम् । ‘पुष्पवत्स्वपि दारेषु विदेशस्थेऽग्निकः । अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्वेम्ना वामेन न क्वचित् ॥’ इति माधवीये लौगाक्ष्ये मरीचिरपि-‘अग्निकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत कुर्यान्मृतेहनि ॥’ कार्ष्णाजिनिः-‘आपन्नोप्याब्दिकं नैव कुर्यादामेन कुत्रचित् अन्नेन तदमायां वा कृष्णे वा हरिवासरे ॥’ प्रयोगपारिजाते-‘रजस्वलायां भाग्यक्षयाहं यः परित्यजेत् । स वै नरकमाप्नोति यावदाभूतसंश्रवम् ॥ मासिकानि सपिण्डाणां अमावास्या तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ॥ देवयजमाने कनिबन्धेऽपि-‘भर्तुः श्राद्धं पञ्चमेहं कुर्याद्भार्या रजस्वला । पुत्रः पित्रोः प्र

मृताहनि शुचिर्व्यतः ॥' कालादर्शेपि—'रजस्वलाङ्गनोऽनग्निर्विदेशस्थोथवाब्दिके । द
दाविव नामेन त्वन्नेन श्राद्धमाचरेत् ॥' अन्यत्रापि—'विदेशको वा विगताग्निको वा
स्वलायामपि धर्मपत्न्याम् । श्राद्धं मृताहे विदधीत पाकेर्नामेन हेम्ना न तु पंचमेहि
एवं मासिकेपि । यत्तु मरीचिः—'आब्दिके समनुप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । पञ्च
हनि तच्छ्राद्धं न तत्कुर्यान्मृतेहनि ॥' माधवीये—'श्राद्धं तदा न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्च
हनि ।' इत्युत्तरार्द्धे, तदपुत्रकर्तृकश्राद्धविषयम् । 'अपुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते भ
ब्दिके । रजस्वला भवेत्सा तु कुर्यात्तत्पञ्चमेहनि ॥' इति श्लोकगौतमोक्तेः ।
कर्मणि पित्र्ये वा पञ्चमेहनि शुद्धयाति ।' इति प्रभासखण्डाच्च । नन्वशुचित्वादेव
पञ्चमेहन्यथात् श्राद्धं प्राप्तमिति वचनं व्यर्थम् । मैवम् । 'गर्भिणीसूतिकादिश्च कु
वाप्यरोगिणी । यदा शुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम् ॥' इति हेमाद्रौ भ
ष्योक्तेः । 'अनुपनीतस्त्रीशूद्राश्च श्राद्धमृत्विजा वा कारयेयुः । 'स्वयं वाऽमंत्रकं उ
इति स्मृत्यर्थसाराच्चान्यद्वारा करणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्य त्वदुक्तदिशा आशौचा
श्राद्धकर्तव्यताऽवेदकवाक्यवैयर्थ्याच्च । अतः प्रागुक्तमरीच्युक्तेः पत्नी पञ्चमेहनि
युक्तम् । यत्तु—'सप्ताहात् पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने ।' इति । तद्रजोनिवृत्तिपर
हेमाद्रिभिन्नसर्वनिबंधसिद्धान्तः ॥

हेमाद्रिस्तु श्राद्धादौ स्त्रिया सहैवाधिकारात्तस्यां रजोदुष्टायां तन्निवृत्तेरेकम
पंचमेहनि कार्यं प्रागुक्तमरीच्युक्तेः । भार्यान्तरसत्त्वे तु पुष्पवत्स्वपीति वचनात्
एवेत्याह । दीपिकापि—'भार्यतौ सति पञ्चमे च दिवसे स्याद्दार्ष्टिकं मासिकं प
बहुभार्यकस्त्वधिकृते पत्न्यन्तरे तिष्ठति । कुर्यात्तद् द्वितयं स्वमुख्यदिवसे' इति
न्त्यम् । सहाधिकारः सहत्वश्रुत्या वा एकफलभाक्त्वेन वा पाककर्तृत्वेन वा । न
तदभावात् । 'पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु' इत्यस्याग्निसाध्यकर्मविषयत्वात् । अ
कस्य च निरग्रेरपि पाकेनैवोक्तेः । स्मार्ताग्निसाध्यत्वानियमात् 'तामपरुध्य' इति
क्तवचनासत्त्वाच्च । कथं च भार्यान्तरसत्त्वेधिकारः । 'ज्येष्ठया न विनेतरा' इति
मात् । ज्येष्ठापरत्वे च तेनैव सिद्धेर्वचनवैयर्थ्यात् । न द्वितीयः—अविभक्तभ्रातृ
स्याऽशुचित्वेन्यस्याधिकारापत्तेः । न तृतीयः—प्रवासनिर्देशसूतिकारोगेण्यादिष्व
रणापत्तेः । 'आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः ।' इति देवलोक्तावात्मनेपदा
बान्धवानां च पाककर्तृत्वोक्त्या विरोधाच्च । 'ततस्तानि पपाचाशु सीता जनकनी
इति पाद्मादिलिङ्गात् प्राशस्त्यं भार्यापाकस्योच्यते । न तत् कस्याप्यनिष्ठम् ।
यत्तत्तं पत्न्यावाप्यन्येन एवेत्येवमन्योविरोधाच्च युक्तिकिंचिदेव । यदपि—'श्राद्धीयाहनि

अथान्वारोहणे निर्णयः । लौगाक्षिः-‘मृताहनि समासेन पिण्डनिर्वपणं पृथक्
नवश्राद्धं च दम्पत्योरन्वारोहण एव तु ॥’ समासेन तु तन्त्रेण द्विपितृ
अन्वारोहणनिर्णयः । श्राद्धवद्वयोरेकः पिण्डो विप्रश्च । पिण्डशब्दः श्राद्धपरः । नवश्राद्धं

पृथगिति हेमाद्रिपृथ्वीचन्द्रौ । अत्र मृताहनीत्येकत्वात् ॥ दिनभेदे दिनैक्ये
मृततिथेरेकत्वे कालैक्यं कर्त्रैक्यं पाकैक्यं च । ‘एकचित्यधिरोहे तु तिथिरेकैव जायते’
एकपाकेन पिण्डैक्ये द्वयोर्गृहीत नामनी’ ॥ इति स्मृत्यन्तराच्च । अन्त्येष्टि
पद्धतौ भट्टैरप्युदाहृतम्-‘अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रिया । पिण्डदा
क्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा । नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् ।
एव वृषोत्सर्गो गौरैका तत्र दीयते’ ॥ इति । तिथिभेदे तु वार्षिकं पृथगेव । त
वार्षिके समासविधानादन्यत्र सर्वत्र पृथक्ते प्राप्ते नवश्राद्धमेव पृथगिति परिसंख्य
न्यत्र पृथगुक्तेष्वपि वार्षिकषोडशश्राद्धतीर्थसपिण्डान्वष्टक्यादिषु समास एवेति मद
पारिजातनिर्णयामृतादयः । अतः समासविधिवलात् ज्येष्ठपुत्रस्य कर्तृत्वे स
तन्मातुरन्वारोहणे तत्पुत्रे सत्यपि तद्वार्षिकादिकमविभक्तः सापत्नपुत्र एव ज्येष्ठः कु
त्रौरसः । वक्ष्यमाणपृथ्वीचन्द्रादिमते तु औरस एव मातुः पृथक्कुर्यात् ।
बह्विष्वपि मातृषु ज्ञेयम् । त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणैरप्येवमुक्तम् । यत्तु गार्ग्य
‘एकचित्यां समारूढौ दंपती निधनं गतौ । पृथक्श्राद्धं तयोः कुर्यादोदनं च पृथक्
पृथक् ॥’ ओदनं पिण्डः । तन्नवश्राद्धविषयम् । यत्तु भृगुः-‘या समारोहणं कु
र्तुंश्चित्यां पतिव्रता । तां मृताहनि संप्राप्ते पृथक्पिण्डे नियोजयेत् ॥ प्रत्यब्दं च
श्राद्धं युगपत्तु समाचरेत् ॥’ तद्येषां वार्षिकमेकोद्दिष्टमुक्तं तद्विषयम् । ‘प्रत्यब्दं
मृताहनि’ इत्यन्वयः । नवश्राद्धं युगपदिति दर्शे वर्गद्वयवदेकतन्त्रेण पृथगित्यर्थः
हेमाद्रिः ॥ ‘एतन्मृततिथेर्भेदविषयम्’ । इति पृथ्वीचन्द्रनिर्णयामृताद्या
देवयाज्ञिकोप्येवम् । पराशरमाधवस्तु-‘गार्ग्यभृगवादिवचनाल्लौगाक्षिव
समासेन पाकादितन्त्रैक्येन दर्शे वर्गद्वयवत् पृथक्श्राद्धं कुर्यात् नवश्राद्धं च तथा’ इत्य

पृथ्वीचन्द्रचन्द्रिकादयस्तु-‘द्वयोरेकपिण्डदानं लौगाक्षिवचनं चापद्विषयम्
पृथक्पिण्डदानं तु मुख्यः कल्पः’ । तदाह वृद्धपराशरः-‘आरुह्य भर्तुश्चितिम
या प्राप्नोति मृत्युं खलु सत्त्वयुक्ता । एकादशाहे तु तयोर्विधेयं श्राद्धं पृथक् स्व

१-यत्र पत्नी भर्तुश्चित्यामनारूढा तत्र भर्तुः तस्याश्च तिथिभेदेन मरणे तत्तत्तिथौ तस्य त
पृथगेव वार्षिकम् । यदा च तिथ्यैक्यं तदा युगप्येकदेशकालकर्तृत्वेनागद्यमाणविशेषत्वादिवत्

पेक्ष्य सद्भिः ॥ एकत्वमिच्छन्ति मतिप्रहीणा एकादशाहादिषु ये नृनायोंः
स्वर्गमार्गं विनिहत्य कुर्युः स्त्रीसत्त्वघातान्नरकाधिवामम् ॥ भर्त्रा सह मृता या तु
लोकमभीप्सती । सार्हेच्छ्राद्धं पृथक् पिण्डान् नैकत्वं तु स्मृतं तयोः ॥ पृथगेव हि
श्राद्धमेकादशाहिकम् । यानि श्राद्धानि सर्वाणि तान्युक्तानि पृथक्पृथक् ॥' वि-
दर्शोपि—'मातुर्गयाष्टकावृद्धिर्मृताहेषु महालये । श्राद्धं कुर्यात् पृथग्देवं तन्त्रं वा-
वपि ॥ एकचित्यां समारुह्य मृतयोरेकवर्हिषि । पित्रोः पिण्डान् पृथग्दद्यात्
त्वापत्सु तत्सुतः' ॥ इत्यग्निस्मृतेरित्याहुः । यत्तु षट्त्रिंशन्मते—'एकत्वं सा-
भर्तुः पिंडे गोत्रे च सूतके । न पृथक्पिण्डदानं तु तस्मात् पर्त्तायु विद्यते' ॥
तदर्शादिपरम् । चन्द्रप्रकाशेपि—'एकचित्यां समारुढौ दंपती प्रमितौ यदि
कश्राद्धं प्रकुर्वीत पत्युरेव क्षयेहनि ॥ मृतानामपि भृत्यानां भार्याणां पतिना
पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः ॥ तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं स्वामिक्षे-
तृतीयस्य ततः कुर्यात्संनिपातेष्वयं क्रमः ॥' इति ॥

सहगमने सर्वत्र श्राद्धार्थमेकपाक इत्याह मदरत्ने प्रचेताः—'एकचित्यां
रुढौ त्रियेते दंपती यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक्पिण्डं समावपेत् ॥'
चन्द्रोदयेष्वेवम् । अत्र भर्तुराशौचमध्येन्यदिने स्त्रीमरणे पतिमरणदिनग-
शौचपिण्डदानैकादशाहादि कार्यम् । नात्र पक्षिणीवृद्धिः । 'मृतं पतिमनुव्रज्य
चेदनलं गता । न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥ पुत्रोन्यो वाग्निद-
स्तावदेवाशुचिस्तयोः । नवश्राद्धं सपिण्डं च युगपत्तु समापयेत् ।' इति षड-
मतात् । 'यदा नारी विशेदग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया । तदाशौचं विधातव्यं भ-
चक्रमेण हि ॥' इति लघुहारीतोक्तेश्च । भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे तु त्र्य-
हम् । 'ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते
प्राप्नोति शास्त्रतः ।' इति ब्राह्मोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रापरार्कौ । एतदन्-
एव न त्वेकचितौ । ऋग्वेदवादः—'इमा नारीरविधवाः' इत्यादिः । एतत्सवर्णापरमि-

स्मार्तगौडास्तु—'देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम्' इत्युपक्रम्य
'त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते' इत्युक्ते भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे त्र्यहः सहगमने तु पूर्ण-
हादि पिण्डास्तु दशापि सहैव । तथा च जनकशूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव-
'संस्थितं पतिमालिङ्ग्य प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः पिण्डादिकं ज्ञेयं क्रमशः पा-
वत् ॥ अन्विता पिण्डदानं तु यथा भर्तुर्दिनेदिने । तदर्थं रोहिणी यस्मात्

शौचे त्वन्वारोहणे त्रिरात्रम् ।' एकचित्तौ तु संस्थितपतिम्' इति प्रागुक्तव्यास-
सद्यः शौचमित्याहुः । अन्यसपिण्डाशौचमध्ये विदेशमृतान्वारोहणं त्वनाशक-
शुचिताया अङ्गत्वात् । अन्ये तु रजोवत्याः सूतिकायाश्च गमननिषेधादितराशौ-
चनिषेधः । अन्यथा प्रत्यक्षभर्तृमरणे का गतिरित्याहुः । तन्मूलवचनं विना चिन्त्य-
स्मृत्यर्थसारेपि- 'सहगमने सर्वत्र श्राद्धपिण्डादौ पाकैक्यं कालैक्यं कर्त्रैक्यं चे-
या तु पतिमुद्दिश्याऽन्यकालेऽन्यतिथावन्वारूढा तस्याः श्राद्धं तत्क्षयतिथौ कार्य-
भर्तृतिथौ । 'पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।' इति स्कान्द-
'तिथिरैकैव जायते' इत्यादिवचनाच्चेति मदनरत्नपारिजातपृथ्वीचन्द्राद-
अन्ये तु तस्याः पतिमरणेन मृतप्रायत्वात् । 'सहाग्रतः पृष्ठतो वा तद्भक्त्या भ्रियते
तस्याः श्राद्धं प्रदातव्यं पृथक् पत्युः क्षयेहनि ॥' इति स्मृत्यन्तरात् ।
पृष्ठतो वापि तद्भक्त्या भ्रियते यदि । तस्याः श्राद्धं सुतैः कार्यं पत्युरेव क्षयेहनि
पुराणसमुच्चयाच्च भर्तृतिथावेवेत्याहुः । अत्र मूलं चिन्त्यम् । अत्र विशेषो हे-
स्मृत्यन्तरे- 'माता मङ्गलसूत्रेण भ्रियते यदि तद्दिने । उद्दिश्य विप्रपत्न्यौ तां भ-
सुवासिनीम् ॥

अथ श्राद्धसंपाते निर्णयः । अत्र पित्रोर्मृततिथ्येकत्वे मरणक्रमेण दर्श-

यवत्तन्त्रेण श्राद्धं कुर्यात् । पौर्वापर्याज्ञाने तु पितृपूर्वकं कु-
श्राद्धसंपाते निर्णयः ।

हेमाद्रिः । माधवादयस्तु- 'पित्रोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे
तेपि वा । पितृपूर्वं सुतः कुर्यादन्यत्रासाति योगतः । इति कार्ष्णाजिनिस्तु-
सर्वत्र पितृपूर्वं भिन्नप्रयोगमाहुः । पार्वणैकोद्दिष्टयोः संपाते माधवीये जावा-
यथेकैत्र भवेद्यातामेकोद्दिष्टं च पार्वणम् । पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरेत् ।

गृहदाहादिना युगपन्मरणे भृगुः- 'एककाले गतासूनां व-
युगपन्मरणे निर्णयः ।

थवा द्वयोः । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् । पृ-
थक्पृथक् द्वितीयस्य ततः पुनः । तृतीयस्य ततः कुर्यात्सन्निपातेष्वयं क्रमः ॥'
शृङ्गः- 'भवेद्यदि सपिण्डानां युगपन्मरणं तदा । सम्बन्धासात्तिमालोच्य तत् क्रम-
श्चमाचरेत् ॥' गारुडे- 'एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुतेत्र हि । विकिरं
कुर्यात् पिण्डान् दद्यात् पृथक्पृथक् ॥' अत्रानुगमने च दाहसपिण्डनादौ
वक्ष्यामः । अत्रिः- 'बहूनामथवा द्वाभ्यां श्राद्धं चेत्स्यात्समेहनि । तन्त्रेण श्रपणं
पृथक्श्राद्धानि कारयेत् ॥' पुलस्त्यः- 'महालये गयाश्राद्धे गतासूनां क्षयेहनि ।

पाकेन सम्बन्धासत्त्या श्राद्धभेदस्तु मुख्यः पक्षः । 'एकत्रैव दिने श्राद्धं द्वयं प्राप्तं यत् तदा । चरेदेव पुरा वर्षात् पितुर्मातुश्च यत्सुतः ॥ एकस्मिन् यः करोत्यद्वि द्वयोः श्राद्धं यत् द्विजः । तदा पूर्वमृतस्यादौ कृत्वा स्नात्वा यथाविधि ॥ पश्चात्पश्चान्मृतस्यैव पृथक्पात्रे समाचरेत् । नैकस्मिन् दिवसे श्राद्धं त्रयाणां कुत्रचिद् द्विजः । एकः कुर्यात्तत् प्राप्ते अन्यो भ्राता समाचरेत् । भ्रातर्यविद्यमाने तु तत् परोद्वि समाचरेत् ॥ अन्यथा श्राद्धहन्ता स्याच्छ्राद्धसंकरकृद्भवेत् । इत्याश्वलायनोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥

कात्यायनः । 'द्वे बहूनि निमित्तानि जायेरन्नेकवासरे । नैमित्तिकानि कार्यानि निमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात् ॥' जाबालिः—'श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने नैमित्तिकं तु कर्तव्यं निमित्तानुक्रमादयम् ॥' कालादर्शः—'नित्यदार्शिकयोश्चोदकुम्भासिकयोरपि । दार्शिकस्य युगादेश्च दार्शिकालभ्ययोगयोः ॥ दार्शिकस्य च मन्वादे संपाते श्राद्धकर्मणः । प्रसङ्गादितरस्यापि सिद्धेरुत्तरमाचरेत् ॥' अस्य देवताभेदेऽपवादमा स एव । 'नित्यस्य चोदकुम्भस्य नित्यमासिकयोरपि । दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमा सिकयोरपि ॥ नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शिकाब्दिकयोरपि । युगाद्याब्दिकयोश्चै मन्वाद्याब्दिकयोस्तथा ॥ प्रत्याब्दिकस्य चालभ्ययोगेषु विहितस्य च । संपाते देवता भेदाच्छ्राद्धयुगं समाचरेत् ॥ निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ॥ पित्रोस्तु पितृ पूर्वत्वं सर्वत्र श्राद्धकर्मणि ॥' माधवीये स्मृतिसंग्रहे—'काम्यतन्त्रेण नित्यस्य तन् श्राद्धस्य सिद्ध्यति' ॥

अथ श्राद्धाङ्गतर्पणम् । पारिजाते पृथ्वीचन्द्रोदये च गर्गः—'पूर्वं तिले दत्तं कृत्वा आमश्राद्धं तु कारयेत् । प्रत्यव्देन भवेत् पूर्वं परेऽर्हा श्राद्धाङ्गतर्पणनिर्णयः । तिलोदकम् ॥ पक्षश्राद्धं हिरण्येन अनुव्रज्य तिलोदकम् ॥' न च नित्य तर्पणस्यायं परेह्युत्कर्षः । न तु श्राद्धाङ्गतर्पणमस्तीति वाच्यम् । 'यस्तर्पयति तां विप्रः श्राद्धं कृत्वा परेहनि । पितरस्तेन तृप्यन्ति न चेत्कुप्यन्ति वै भृशम्' ॥ इति गर्गेण फलनिन्दाया वादाभ्यामङ्गत्वेनोक्तेः ॥ श्राद्धप्रक्रमाद्वार्षिकम् । बृहन्नारदीयेऽप्याब्दिकं प्रक्रम्य—'परेह्यु श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितृन् । तस्य ते पितरः क्रुद्धाः शापं दत्त्वा व्रजन्ति हि । पितृशब्दश्च श्राद्धेज्यवर्गपरः । तेन तर्पणस्य पैशुपुरोडाशयागवत् प्रस्तारप्रहरणवच्चेष्टदेव

१—नह्यन्यप्रकरणेऽन्यस्य फलं निन्दा वा संभवति युज्यते वेति भावः । २—यदैवत्यः पशुः तदैवत्यः पुरोडाशः' इतिवत् श्राद्धं यदैवत्यं तदैवत्यमेव तर्पणमित्यर्थः । ३—ननु तत्र विशिष्यदेवताभिधानात्तथे

नामंस्कारकता ॥ तेनाव्दिके दिने नित्यं स्वपित्रादितर्पणं कार्यमेवं । श्राद्धं परेद्युक्तैः । तदुक्तम्-‘प्रत्यव्दाङ्गं तिलं दद्यान्निषिद्धेऽपि परेहनि । वर्गैकस्य मन्त्रेणां तु विवर्जयेत् ॥

क्वचिद्विशेषमाह गर्गः-‘कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पित्राहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् ॥’ तर्पणं तिलतर्पणम् । निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् । ‘संस्तुतः स्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ॥’ अत्र सप्तमीनिर्देशात् अङ्गिता स्फुटैव । जुहुयात् । मन्त्रं प्रायणीयायां मन्त्रं प्रातःसवने इत्यादिष्वत् । अस्यापवादो दीये-‘वृद्धिश्राद्धे सपिण्ड्यां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके । संवत्सरविमोके च कुतर्पणम् ॥’ तद्व्यर्थः ‘दर्शं विप्रनिमन्त्रणोत्तरं पाकारम्भोत्तरं वा श्राद्धप्रयेत्वात् ब्रह्मयज्ञोत्तरं नित्यतर्पणम् । नैव श्राद्धाङ्गतर्पणस्य तन्त्रेण प्रसङ्गेन वततः पूर्वं वैश्वदेवोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे श्राद्धाङ्गतर्पणं पृथक्कार्यम् । पितृनित्यतर्पणं तिलवर्ज्यं कार्यम् । ‘नैव श्राद्धदिने कुर्यात्तिलैस्तु पितृतर्पणं कृत्वा पराह्णे च तर्पणं तु तिलैः सह ॥’ इति वचनात् । ‘सप्तम्यां श्राद्धमाणापित्रोर्भृतेहनि । तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत् पितृघातकः ॥’ इति रत्नावल्यां वृद्धमनुस्मृत्यैव । अत्र नित्यतिलतर्पणे तिलमात्रनिषेधो तर्पणस्य तिलैरित्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः । यत्तु कातीयम्-‘उपरागे पितुःश्राद्धे च संक्रमे । निषिद्धेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥’ इति तत् परेद्युः श्राद्धविषयमिति केचित् । श्राद्धशक्तस्य तत्स्थानापन्नतर्पणविषयमिति युक्तम् । हालये परेद्युस्तर्पणम् । अष्टकासु तु सप्तम्यष्टमीश्राद्धयोरन्ते तदैव वर्गद्वयस्य । तु मातृवर्गस्यापि तीर्थश्राद्धे दर्शवत् । माघाद्यादिष्वष्टकावदन्ते । अनेकानि तु यदि तत्प्रसङ्गसिद्धिस्तदा तदीयमेव तर्पणम् । तन्त्रत्वे तु श्राद्धसमसंख्यात्वे वा । विषमसंख्यायां बह्वनुरोध इति । तस्माच्छ्राद्धाङ्गतर्पणं सिद्धम् ॥

तद्विधिः संग्रहे-‘स्नात्वा तीरं समागत्य उपविश्य कुशासने । संतर्पयेत् पितृस्नात्वा वस्त्रं च धारयेत् ॥’ तर्पणोत्तरं नित्यस्नानं कृत्वेत्यर्थः । ‘अपसव्यं सव्यं जान्वाच्यं भूतले । नामगोत्रस्वधाकारैर्द्वितीयान्तेन तर्पयेत् ॥’ अत्र वस्त्रात् स्मृत्यर्थसारे । ‘वसुरुद्रादिति सुतान् श्राद्धार्थं तर्पयेत् पितृन् ॥’ तच्च दक्षिणेनैव । ‘अनादेशे दक्षिणं प्रतीयात्’ इति सूत्रात् । अत्र प्रत्यञ्जलिम-

निर्वापवत्तत्संव्यावर्धदानवच्च द्रव्यभेदात् । अवघातवेदिप्रोक्षणादौ तु द्रव्यैकत्वात्
मन्त्रावृत्तिः । केचित्तु परिव्याणमन्त्रवत्क्रियमाणानुवादित्वेन करणत्वाभावात्स
दिच्छन्ति । तन्न । तत्रापूपद्रव्यैक्यात् परवीरसीतिकरणीभूतमन्त्रान्तरसत्त्वादन्वयत
व्यवधानापत्त्योभयोः कारणत्वायोगात् कर्तृभेदेन विकल्पायोगाच्च क्रियमाणानुवादित्व
न तत्र तथेति बौधायनादिवचनात् करणत्वमेव । तेनावृत्तिरेव युक्ता । एवं नित्ये
यत्तु संग्रहे नाम्ना पठन्ति । 'पित्रोः क्षयाहे संप्राप्ते यः कुर्यान्नित्यतर्पणम् । आसुरं त
वेच्छाद्दं तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥ सर्वदा तर्पणं कुर्याद्ब्रह्मयज्ञपुरःसरम् । मृताहे नैव कर्त
कृतं चेन्निष्फलं भवेत् ॥' तत्समूलत्वे सति फलविषयम् । यच्च पठन्ति । कपिलः—
न्वादिषु युगाद्यासु दर्शसंक्रमणेषु च । पौर्णमास्यां व्यतीपाते दद्यात् पूर्वं तिलोदकम्
अर्धोदये गजच्छाये षष्ठीषु च महालये । भरण्यां च मघाश्राद्धे तदन्ते तर्पणं विदुः
शौनकः—'मातापित्रोर्मृताहे च परेहनि तिलोदकम् । कारुण्यश्राद्धविषये सद्यो दद्यात्
लोदकम् ॥' एतन्निर्मूलम् ॥

अथ निलतर्पणनिषेधः । गार्ग्यः—'भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च

तिलतर्पणनिषेधः ।

पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥' स्मृत्यर्थसारे—'वि

ह्वतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् । अर्धं तदेव । 'वृद्धौ सत्यां च तन्मा
नेत्याहुस्तिलतर्पणम् ॥' हेमाद्रौ मरीचिः—'सप्तम्यां रविवारे च गृहे जन्मदिने तथा
निशासंध्यासु पुत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥' यत्तु संग्रहे—'नंदायां भार्गवदिने कृ
कासु मघासु च । भरण्यां भानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा ॥ अयनद्वितये चैव मन्वादि
युगादिषु । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥' इति तैत्तिर्यम् । 'पानीयमप्य
तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।' इत्यादिविरोधात् । अत्रापवादः पृथ्व
चन्द्रोदये—'तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्तर्पणं ति
मिश्रितम् ॥' स्मृत्यर्थसारेपि—'तिथितीर्थविषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा ।' इति । गोम
लः—'तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्वितम् । तदभावे निषिच्चेत्तु दर्भमन्त्रेण वा पुन
पतितस्य तिलोदकं वक्ष्यामः ॥

अथ वृद्धिश्राद्धम् । तन्निमित्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—'जन्मन्यथोपनयने विव

वृद्धिश्राद्धनिर्णयः ।

हे पुत्रकस्य च । पितृन्नान्दीमुखान्नाम तर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥ देव
व्रतेषु चाधानयज्ञपुंसवनेषु च । नवान्नभोजने स्नाने ऊढायाः प्रथम

तत्र देवागमतडागादिप्रतिष्ठासूत्सवेषु च । राजाभिषेके बालान्नभोजने वृत्तं कान् ॥ वनस्थाद्याश्रमं गच्छन् पूर्वेषुः सद्य एव वा । पितृन्पूर्वोक्तं नर्पयेत्कर्ममिद्वये ॥' विष्णुपुराणे-‘यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षये पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥' तत्रैव-‘नामकर्मणि चूडाकर्मादिके तथा ।' इत्युक्तेर्निष्कमान्नप्राशनयोर्न श्राद्धमिति मैथिलाः तत्र क्तविरोधात् । ‘नानिष्ठा’ इति विरोधात् । ‘सुतोत्पत्तौ तथा श्राद्धे अन्नप्राशनिके इति राजमार्तण्डाच्च । यत्तु छन्दोगपरिशिष्टम्-‘सूर्येन्द्रोः कर्मणी ये च श्राद्धं न विद्यते ।' इति तत्तेषामेवेति कल्पतरुः । बह्वृचकारिकायाम्-‘भ्युदयिकं श्राद्धं वृद्धिपूर्तेषु कर्मसु । पुंसः सवनसीमन्तचौलोपनयनेष्विह ॥ विवाहे लाघयप्रभृतिश्रौतकर्मणि । इदं श्राद्धं प्रकुर्वन्ति द्विजा वृद्धिनिमित्तकम् । अन्यैः संस्कारश्रावण्यादिष्वपीष्यते । वाप्याद्युद्यापनादौ तु कुर्युः पूर्तनिमित्तकम् ॥' देवकालादर्शौ-‘सीमन्तव्रतचौलनामकरणान्नप्राशनोपायनस्नानाधानविवाहयज्ञत्पत्तिप्रतिष्ठासु च । पुंसृत्यावसथप्रवेशनसुताद्यास्यावलोकाश्रमस्वीकारक्षितिपाभिषेताद्यतौ च नान्दीमुखम् ॥' यत्तु कामधेनौ-‘जलाशयप्रतिष्ठायां वृषोत्सर्गादिष्वत्सराभ्यन्तरे पित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि ॥ वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समाचरेत् इति । तत्र जलाशये वृद्धिश्राद्धस्य निषेधो न तु कर्माङ्गस्येति केचित् । अन्ये निर्मूलतामाहुः । श्राद्धकौमुद्यां निर्णयामृते च मात्स्ये-‘अन्नप्राशे च पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च निषेके च नवे वेश्मप्रवेशने ॥ देववृक्षजलादीनां प्राविशेषतः । तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥' इदं चावश्यकम् । ‘वृद्धौ ना ये वै पितरो गृहमेधिभिः । तद्धीनमफलं ज्ञेयमासुरो विधिरेव सः ॥' इति शतपोक्तेः । अत्र श्राद्धत्रयं स एवाह-‘मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरतो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥'

तत्कालमाह पृथ्वीचन्द्रोदये गार्ग्यः-‘मातृश्राद्धं तु पूर्वेषुः कर्माहनि कम् । मातामहं चोत्तरेषुर्वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥' अत्राप्यशक्तौ स एव-‘पृथक्पृथक्शक्तश्चेदेकास्मिन् पूर्ववासरे । श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम् ॥' वृद्धमनुरपि-‘अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः । पूर्वेषुर्वै प्रकुर्वीत मातृपूर्वकम् ॥' अत्र ‘महत्सु पूर्वेषुस्तदहरल्पेषु’ इति गृह्यपरिशिष्टाद्व्यवस्था तत्र प्रातरेव । ‘पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ।' इति शातातपोक्तेः

सदानन्तर्यमिष्यते ॥' इति लौगाक्षिस्मृतेः । आधानाङ्गं नान्दीश्राद्धं त्वपराह
 'आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे सिद्धान्नेन तु मध्यतः । पार्वणं वाऽपराह्णे तु वृद्धिश्राद्धं तथ
 कम् ॥' इति निर्णयामृते गालवोक्तेः । 'नान्दीमुखाद्वयं प्रातराब्दिकं त्वपराह्ण
 इति विष्णुक्तेश्च । इदं च मातृपितृमातामहादिक्रमेण नवदैवत्यं कार्यम् । तत्र 'म
 महाः सपत्नीका वृद्धप्रमातामहप्रमातामहमातामहानां सपत्नीकानाम् ॥' इति पृथ
 चन्द्रोदये गारुडे-गद्यरूपेण पाठात् । हेमाद्रौ शङ्खः- 'नान्दीमुखे सत्यवसू स
 त्यौ वैश्वदेविके ॥' वृद्धपराशरः- 'नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासन
 पितृव्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः ॥' यत्तु वृद्धवसिष्ठः- 'नान्दीमुखे वि
 च प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् ॥' यच्च स्मृत्यर्थस
 'वृद्धमुख्यास्तु पितरो वृद्धिश्राद्धेषु भुञ्जते ।' इति । यच्च गारुडे- 'व्युत्क्रमप्रतिप
 तच्च शाखान्तरविषयम् । पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः' इति बह्वृचपरि
 कात्यायनेन चानुलोम्याम्रातात् । पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् । यत्तु केचिद्वृद्धिपदं वि
 दिषु प्रयुञ्जते तच्च । 'अनस्मद्दृशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम् । अनाम्नामति
 नान्दीश्राद्धं तु सव्यवत् ॥' इति पृथ्वीचन्द्रोदये संग्रहोक्तेः । न च निषेधादेर्वा
 कल्प्यत इति वाच्यम् । प्रौष्ठपदीश्राद्धे प्रपितामहात्परेषां वृद्धपित्रादीनां देवतात्वान्न
 श्राद्धत्वसाम्ये नेहापि तत्प्राप्तौ निषेधात् । गोत्रनामादिनिषेधस्तु- 'शुभार्थी प्र
 न्तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेत् ।' इत्युपक्रम्य 'अनस्मद्दृशब्दानाम्' इत्युक्तेः संकल्पश
 परः । 'सपिण्डके तु सर्वं भवति' इति प्रयोगपारिजातः । 'गोत्रनामभिरामन्य
 भ्योर्ध्वं प्रदापयेत् ।' इति छन्दोगपरिशिष्टे तद्विधानात् । यत्तु ब्राह्मे- 'पिता पित
 श्वैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः । तेभ्यः पूर्वतरा
 प्रजावन्तः मुखैर्धिताः । ते तु नान्दीमुखा नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते ॥' इति यच्च म
 ण्डेयपुराणे- 'ये स्युः पितामहादूर्ध्वं ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः ॥' इति तज्जीवति
 दित्रिककर्तृकवृद्धिश्राद्धविषयम् । तेन तस्येदमावश्यकम् । यत्तु विष्णुः- 'पितरि पित
 च जीवति नैव कुर्यात्' इति तद्दर्शादिविषयम् । इति कल्पतरुः । मदनपारिज
 प्येवम् । हेमाद्रिस्तु- 'नान्दीमुखानां श्राद्धं तु कन्याराशिगते रवौ । पौर्णमास्य
 कर्तव्यं वराहवचनं यथा ॥' इति- प्रौष्ठपदीश्राद्धैकवाक्यत्वात्तत्रैव पूर्वेषां देवतात्वमित्य
 अत्र सत्यवसू विश्वेदेवावित्युक्तं प्राग्वत् । यत्तु शातातपः- 'मातुः श्राद्धं तु युगैः स
 दैवं प्राङ्मुखैः पृथक् ।' इति, तद्विन्नप्रयोगमातृश्राद्धपरम् । यच्च मार्कण्डेयपुरा

वृषेः ननैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि । पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः ॥^१
 छन्दोगपरिशिष्टे-‘कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः । पूजनीयाः प्रयत्नेन
 पूजयन्ति ताः ॥ प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु । अपि वाक्षतपुञ्जेषु
 पृथग्विधैः । कुड्यलगां वसोधारां सप्तधारां घृतेन तु । कारयेत् पञ्चधारां वा न
 न चोच्छ्रिताम् ॥ आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः । षड्भ्यः
 स्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥ अत्र सर्वेष्विति ग्रहणात् ग्रहयज्ञतद्विकारेष्वपि नित्यं
 ‘नानिष्टा तु पितृन् श्राद्धे कर्म किंचित्समाचरेत् ।’ इति शातातपोक्तेश्च ।
 वसोर्धागा तच्छ्राखीयानां नियता, अन्येषां त्वनियता । ‘बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तम्’ इ
 कण्ठे त्वभ्युदयः । ‘यन्नाम्नातं स्वशाखायाम्’ इत्युक्तेः । आयुष्याणि ‘आनो
 इत्यादीनि । षड्भ्य इति मात्रादित्रिकोपलक्षणमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः । छ
 षड्देवत्यमन्येषां नवदेवत्यमित्याशार्कः । मम तु मतं कोकिलमतानुसारिणां
 तामहप्रमातामह इति मात्रा सहैव मातामह श्राद्धकरणात् तद्विषयमिदं षड्भ्य

मातरस्तत्रैवोक्ताः-‘गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
 स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ।’ इति सर्वविशेषणं तेन चतुर्दशत्वम् । यदा च
 पाठस्तदा देवतान्तरम् । चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते त्वन्या उक्ताः ।
 पूज्याः पितुः पक्षे तिस्रो मातामहे तथा । इत्येता मातरः प्रोक्ताः पितुर्मातुः स्वसा
 आसां जीवने प्रत्यक्षपूजनम् । ‘मृतानां त्वक्षतपुञ्जेषु’ इति हेमाद्रिः ।
 प्याद्यास्तथा सप्त दुर्गाक्षेत्रगणाधिपान् । वृद्ध्यादौ पूजयित्वा तु पश्चान्नान्दं
 पितृन् ॥ मातृपूर्वान् पितृन् पूज्य ततो मातामहानपि । मातामहीस्ततः
 शुग्मा भोज्या द्विजातयः ॥’ इति अत्र द्वादशदैवतस्य देशाचाराद्वचनस्था । ब्र
 द्याः-‘ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथेन्द्राणी
 षडा सप्त मातरः ॥’ इत्यपराकै उक्ताः । अत्र चौलादीनां यौगपद्ये
 तोक्ता छन्दोगपरिशिष्टे-‘गणशः क्रियमाणानां मातृभ्यः पूजनं सकृत् ।
 भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥’ मातृभ्यः इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । गणेशः ‘ऐकानेक
 संस्कारेष्वेकदिने एकदेशकालकर्त्रैक्यादित्यर्थः । तथा-‘असकृद्यानि कर्माणि
 कर्मकारिभिः । प्रतिप्रयोगं नैव स्युर्मातरः सगणाधिपाः ॥’ कर्मावृत्तावपि कुत्र
 कार्यं कच नेत्युक्तं तत्रैव-‘आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च । बलिकर्मणि त

१-एकैनैव पार्वणेन मातृमातामहयोश्चारितार्थान्न षट्त्वानुपपत्तिरिति भावः ।

पूर्णमासे तथैव च ॥ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः । एकमेव भवेच्छ्राद्धं न पृथक् पृथक् ॥' एतेषु प्रतिप्रयोगं नावर्तते किंत्वादौ । एतद्विन्ने सोमयागादौ प्रयोगमावर्तते एव श्राद्धमित्यर्थः ॥

कचिदादावपि निषेधमाह स एव । 'नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिषं न सोष्यन्तीजातकर्मप्रोषितागतकर्मसु ॥ विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं मो यस्य चान्ते । विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात् सोष्यन्त्या आसन्नप्रसवायाः । 'सोष्यन्तीमभ्युक्ष्य' इत्युक्तं कर्म । कात्यायनो श्राद्धस्य पाकस्य प्राधान्यात्तस्य च । 'जातश्राद्धे न दद्यात् पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि' इति निषेधान्न जातकर्मणि नान्दीश्राद्धमित्याशार्कः । आमानेन वा कार्यमित्यपि वोक्तम् । गौडास्तु जातकर्मण्येव निषेधः । पुत्रजन्मनिमित्तकं तु कार्यमेव । 'न्यथोपनयने' इत्युक्तेः । 'नैमित्तिकमथो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकम् । पुत्रजन्मनि कार्यं जातकर्म समं नरैः ॥' इति मार्कण्डेयपुराणाच्चेत्याहुः । हारलतायां श्राद्धं विवेके चैवम् । एतेन जातकर्मणि कालान्तरे श्राद्धनिषेधो न पुत्रजन्मदिने इति स्पष्टमिति परास्तम् । अथ 'निषेधकाले' इति वचनात् गर्भाधाने न निषेधः । 'निषेधकाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं विधिवत्कृतम् ॥' पारस्करः । प्रोषितेति—'प्रोष्येत्य गृहानुपतिष्ठते पुत्रं दृष्ट्वा जपतीति विहितं कर्म हादिगर्भाधानान्तो यो गृहप्रवेशचतुर्थीकर्मादिकर्मसमूह उक्तः सूत्रकारेण । तत्रापि कर्म नेत्यर्थः ॥' अन्येपि हलाभियोगादयोऽपवादविषयास्तत्रैव ज्ञेयाः । त इहाप्रचल्यन्ते । अथात्राधिकारिणः । विष्णुपुराणे—'जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाशेषतः । पिता पुत्रस्य कुर्वीत श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम् ॥' अत्र केचित् । जीव

अथ जातश्राद्धा-
धिकारिणः ।

साग्रेव वृद्धिश्राद्धेधिकारो न तु निरग्रेः । 'न जीवत्पितृकः कुर्यात् श्राद्धमग्निमृते द्विजः । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकं पितामहेष्वेवमेव कुर्याज्जीवति साग्निकः । साग्निकोपि न कुर्वीत जीवति प्रपितामहे इति चन्द्रिकायां सुमन्तूक्तोरित्याहुः । प्रयोगपारिजातेऽप्यनाहिताग्निर्न कुर्याद्व्याख्यातं तत्र । 'अनग्निकोपि कुर्वीत जन्मादौ वृद्धिकर्मणि । येभ्य एव पिता चानेवोद्दिश्य तर्पयेत् ॥' इति हारीतोक्तेः । सौमन्तवं तु वृद्धिश्राद्धभिन्नश्राद्धमित्युक्तं मदनरत्ने । श्राद्धषट् पिण्डपितृयज्ञपरमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः । निष्

मृते हारीतीयेऽनग्निकोनाहिताग्निरभिप्रेतः । पूर्ववचने तु साग्निकः श्रौताग्निः
 अग्नश्चोच्यते । तेनोभयाग्निहीनस्य नेत्युक्तम् । तत्रा पूर्वोक्तदिशा गतिसंभवेनग्निपदस्य
 अग्निरप्येव मानाभावात् । वक्ष्यमाणनित्यानित्यसंयोगविरोधात् । 'पितरो जन-
 यावद्गतमनाहितम् । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेत पितामहान् ॥' इति पृथ्वी-
 द्यौः यमवचोविरोधाच्च । अपराकोपि-समावर्तने ब्रह्मचारी स्वयमेव
 श्राद्धं कुर्यात् इत्याह । अतः पूर्वमेव साधु । बोपदेवोप्येवमाह ।
 जीवत्पितुः पुत्रनामकर्मादौ न वृद्धिश्राद्धं, हारीतीये-जन्मादावित्या-
 न्नत्प्राप्तावपि-उद्गाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण-
 षंडते जीवतः पितुः ॥' इति मैत्रायणीयपरिशिष्टे-उद्गाह एव तस्य
 रात् । एवं यत्र तु संस्कारादिपदं तदप्युद्गाहादिपरमेव' इति तत्र । उद्गाह-
 स्वविवाहपरत्वस्यापि संभवात् । पुत्रविवाहपरत्वे मानाभावात् । 'ना-
 बालानां चूडाकर्मादिके तथा ।' इत्यादिभिर्नित्यश्राद्धस्य चौलाद्यङ्गत्वावगतं
 नित्यसंयोगविरोधाच्च । अतो जन्मादाविति सर्वसंस्कारसंग्रहः । तथा
 यनः-स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु । पिण्डानोद्गाहनात्तेषां तस्य
 तत्क्रमात् ॥' 'सुतानां चौलादिसंस्कारेषु पिता स्वपितृभ्यः पिण्डान् श्राद्धं
 शहरश्चपाम्' इति दर्शनादोद्गाहनाद्विवाहपर्यन्तं दद्यात् । विवाहश्च प्रथमः ।
 श्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे बुधः । अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्ति-
 इति स्मृतेः । तस्य पितुरभावे तत्क्रमात्-असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभि-
 स्कृतैः ।' इति यः कर्तृक्रमस्तेन क्रमेण ज्येष्ठभ्रात्रादिर्दद्यादिति चन्द्रिका-
 हेमाद्रिस्तु तस्य पितुरभावे यः पितृव्यमातुलादिः संस्क्रुर्यात्स तत्क्रमात्संस्का-
 माद्यान्न तु स्वपितृभ्य इति व्याचख्यौ ॥

समावर्तनस्यापि विवाहप्राचीनसुतसंस्कारत्वात् पितैव नान्दीश्राद्धं कु-
 तदभावे ज्येष्ठभ्रात्रादिभिः ॥ तदभावे स्वयमेव कुर्यात् । उपनयनेन कर्माणि
 जातत्वात् । एवमाद्यविवाहेपीति पृथ्वीचन्द्रोदयचन्द्रिकादयः । म-
 प्येवम् । यदा तु पितरि संन्यस्ते प्रोषिते पतिते वा धर्मार्थं तत्
 संस्क्रुर्यात्तदा संस्कार्यपितुः पित्रादिभ्यो दद्यात् । 'पितरो जनकस्थेज्या
 मनाहितम् । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेत पितामहान् ॥' इति पृथ्वीच-
 यमोक्तेः । जीवत्पितृकस्य विशेषमाह कात्यायनः-वृद्धो तीर्थं च
 ताते च पतिते मने । ज्येष्ठः पुत्रः पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण-

यान्नोदके द्विजः ।' इति कात्यायनोक्तेः । 'जीवे तस्मिन्सुताः कुर्युः पितामहस्तु । तस्यां चैव तु जीवन्त्यां तस्याः श्वश्रुवेति निश्चयः' ॥ इति हारीतोक्तेः । तस्मिन् भर्तारि । दाक्षिणात्यास्तु पूर्वोक्तस्य सपिण्डीकरणादिविषयः । 'जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत् ।' इति वचनात्तद्वर्गस्य लोप एवेत्यतु चंद्रिकायां पारस्करः—'निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं वने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धिश्च तत्' ॥ इति तत्र गर्भाधानादौ कर्माङ्गं जातकर्मादौ वृद्धिश्राद्धं पृथगेव विधिवदित्युक्तेः । गौडनिबन्धे मात्स्ये—'अन्नप्राशे च पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च निषेके च नववेश्मप्रवेशने ॥ वेदव्रतजलादीनां प्राशे च । तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥ अत्र भूतनिमित्तानां वृद्धिभाविनिमित्तानामङ्गत्वम् । वृद्धिशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थ इति गौडाः । अन्ये तु निमित्तकर्माङ्गवृद्धिश्राद्धयोः समुच्चयमाहुः । नान्दीश्राद्धसंज्ञा तूभयानुगता ॥

अथेतिकर्तव्यता । पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—'मालत्याशतपत्रायां काकुब्जयोरपि । केतक्याः पाटलाया वा देया माला न लोप्यते' । श्राद्धे मालानिषेधस्यायमपवादः । तथा—'सुवेषभूषणैस्तत्र सा स्तथा नरैः । कुङ्कुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं तु ब्राह्मणैः सह ॥ स्त्रियोपि स्युस्तथा गीतनृत्यादिहर्षिताः ॥' हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—'कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्य द्वये ।' कुशा अपि वक्ष्यन्ते । छन्दोगपरिशिष्टे—'प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युज्यते भयतस्तथा ॥' उभयतः देवे पित्र्ये च । वैश्वदेवे द्वौ विप्रौ पित्रादीनामेकैकस्य द्वौ विंशतिः । त्रिके वा द्वावित्यष्टौ विप्राः । अत्र विप्रालाभे स्त्रियोपि भोज्या इत्याह । वृद्धवसिष्ठः—'मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे पूजयेदपि । पतिपुत्रान्विता भव्या तोष्टौ कुलोद्भवाः ॥' मातृत्रिके चतस्रः मातामहीत्रिके चेत्यष्टाविति हेमाद्रौ अत्र पित्र्ये प्राङ्मुखा विप्राः पाद्ये पित्र्ये चतुरस्रं मण्डलमिति जयन् हेमाद्रौ ब्राह्मे—'विप्रान् प्रदक्षिणावर्तं प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥' छन्दोगपरिशिष्टे—'गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत् । नात्रापसव्यकरणं न तीर्थमिष्यते ॥ ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मान् कराग्राग्रपवित्रकान् । कृत्वाऽर्घ्यं दत्त्वा तव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥' पित्रादेर्द्वौ द्वौ विप्रौ तयोर्दक्षिणहस्तौ संयोज्य प्रवेशितविप्रकरोपरि तन्त्रेण द्वयोरर्घ्यं दद्यादित्यर्थः । बह्वृचकारिकायां तु—'दत्तं

त्रामिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ अक्षय्योदकदानं च अर्घ्यदानं विधीयते । षष्ठं नियतं कुर्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥

चन्द्रोदये ब्राह्मे-‘पठेच्छकुनिसूक्तं तु स्वस्तिसूक्तं शुभं तथा । नान्दीमुखान् पित्रभक्त्या साञ्जलिश्च समाह्वयेत् ॥’ तथा-‘शाल्यन्नं दधिमध्वक्तं बदराणि यथास्तथा मिश्रीकृत्वा तु चतुरः पिण्डाञ्छीफलसंनिभान् ॥ दद्यान्नान्दीमुखेभ्यश्च पितृभ्यो विपूर्वकम् । द्राक्षामलकमूलानि यवांश्च विनियोजयेत् ॥ तान्येव दक्षिणार्थं तु दद्याद्वि सर्वदा ॥’ तत्रैव चतुर्विंशतिमते-‘द्वौ द्वौ चाभ्युदये पिण्डावेकैकस्मै विनिक्षिपेत् षकं नाम्ना परं तूष्णीं दद्यात् पिण्डान्पृथक्पृथक् ॥’ वासिष्ठः-‘प्राङ्मुखो देवतीं प्राक्कूलेषु कुशेषु च । दत्त्वा पिण्डान्न कुर्वीत पिण्डपात्रमधोमुखम् ॥’ नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहेति वा पिण्डदानमन्त्र इति वृत्तिः । अत्र पिण्डाः कृताकृता इत्युक्तम् तत्रैव भविष्ये-‘पिण्डनिर्वपणं कुर्यान्न वा कुर्याद्विचक्षणः । वृद्धिश्राद्धे महाव कुलधर्मानवेक्ष्य तु ॥’ छागलेयः-‘अग्नौ करणमर्घ्यं वावाहनं चावनेजनम् । पिण्डं श्राद्धे प्रकुर्वीत पिण्डहीने निवर्तते ॥’ तेनात्र भोजनस्यैव प्रधानत्वाद्यदि विषयः स्य वसनं तदा तस्यैव पार्वणस्य पुनरावृत्तिरिति सिद्धम् । अत्र सांकल्पे विशेषः प्रयोगपारिजाते संग्रहे । ‘शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ सांकल्पमाचरेत् । न षष्ठ्या यदि वा कुर्यान्महादोषोभिजायते ॥’ नामगोत्रादिनिषेधोप्यत्रैव न तु सापिण्डकश्राद्ध इति स एव ॥

अत्रायं क्रमः । नान्दीश्राद्धे ‘दैवे क्षणः क्रियताम्’ इति द्वौ युगपन्निमन्त्र्य ओतयेत् विप्रभ्यां युगपदुक्ते प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवाव इति वैश्वदेववत् पित्र्ये च द्विवचनान्नं विप्रद्वये प्रयोगं कुर्यात् । आहिताग्निस्तु हेमाद्रौ ब्राह्मे-‘योऽग्नौ तु विद्यमानेऽपि वृद्धौ पिण्डं निर्वपेत् । पतन्ति पितरस्तस्य नरके स च पच्यते ॥’ बह्वृचपरिशिष्टे-‘द्वौ दत्त्वा पवित्रे पवित्राणि चत्वारि । शनो देवीत्यनुमन्त्रितासु यवानावपति ॥’ ‘यवोऽसि सोमं च तयो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितृनिर्माळोकान् प्रीत्याहि नः स्वाहेति स्वाहाध्व्याः’ इति पृच्छति । ‘विश्वेदेवा इदं वो अर्घ्यं नान्दीमुखान् पितर इति यथालिङ्गमर्घ्यदानं गन्धादिदानं द्विद्विः । पाणौ होमोऽग्नये कव्ययाहनं स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा ‘अतो देवा अवन्तु न इत्यङ्गुष्ठग्रहणम् । पावमानीः शंतीरैन्द्रीरप्रतिरथं च श्रावयेन्मधुवाता ऋचः स्थाने उपास्मै गायतेति पञ्च मधुमन्त्रं श्रावयेदक्षन्मीमदंतेति च षष्ठी भुक्तशेषेणैकैकस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ दद्यात्’ इति । चानि

अर्वा आदौ वैश्वदेवं कुर्यात् । 'आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते मध्ये श्राद्धे तु पार्वणे ।
द्विष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते' ॥ इत्याशाकं शाङ्खायनपरिशिष्ट
हेमाद्रौ तु- 'शेषमन्नमनुज्ञाप्य वैश्वदेवक्रियां ततः । श्राद्धाद्वि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं
चरेत् ॥' इति चतुर्विंशतिमताञ्जान्दीश्राद्धेऽप्यन्ते वैश्वदेव उक्तः । बह्वृचाना
वृत्त्यालोचनात्तथैव पूर्वोक्तं तु येषां परिशिष्टं, तद्विषयमन्यविषयं वा ज्ञेयम् । अत्र श्र
द्धतर्पणं नेत्युक्तं प्राक् । इति निर्णयसिन्धौ वृद्धिश्राद्धम् ॥

अथ जीवत्पितृकश्राद्धम् । तत्रानेकपक्षा दृश्यन्ते । जीवन्तं पितरं भोज
जीवत्पितृकश्राद्ध- परयोः श्राद्धं कुर्यादित्येकः । होमान्तमेव कुर्यादित्यन्यः । 'हो
निर्णयः । पितृयज्ञः स्याज्जीवे पितरि जानतः । पितरं भोजयित्वा वा

निपृणुयात् परौ ॥' इति यज्ञपार्श्वोक्तेः । 'यदि जीवत्पिता न दद्यादाहोमात्
विरमेत्' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च । 'जीवतां पिण्डदानमौ हुत्वा परेभ्यो देयम्' इत्यप
'जुहुयाज्जीवेभ्य' इत्याश्वलायनोक्तेः । जीवतामजीवतां च पिण्डदानमितीत
'जीवतामजीवतां वा देयमेवेति हिरण्यकेतुः' इति निगमात् । 'तस्माज्जीवत्पिता
द्वाभ्यामेव न संशयः' इति भविष्योक्तेर्द्वाभ्यामेवेत्यन्यः । एते पक्षाः कलौ निषि
'प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुरब्रवीत् । पिण्डनिर्वपणं चापि महापातकसम्मितम्
इति पृथ्वीचन्द्रोदयभविष्योक्तेः । चन्द्रिकाप्येवम् । तस्मात् पितरि
श्राद्धानारंभ एवेत्येकः पक्षः । 'सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते ।' इति का
यनोक्तेः । 'जीवे पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्जयेत् । इति हारीतोक्तेश्च ।
पित्रादिभ्यो दद्यादिति सिद्धान्तः । 'अग्रिमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ।' इति म
'पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्यपरा श्रुतिः ।' इति कात्यायनोक्तेश्च । अयं बहु
पक्षः । अन्ये शाखाभेदेन ज्ञेयाः । एवं जीवन्मातामहेनाप्यूहेन कार्यम् । 'माताम
मप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम् ॥'
विष्णोक्तेः । 'एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके ।' इति पृथ्वीचन्द्रोदये
राणाञ्च । पितरि जीवति तु स्वमातरि मृतायामपि पितुरेव मातृमातामहयोः कु
'येभ्य एव पिता दद्यात्' इति वक्ष्यमाणवचनात् इति पितामहचरणाः । मदन
तु- 'जीवत्पिता स्वमातृमातामहयोर्दद्यात्' इत्युक्तम् । कालादर्शोप्येवम् । मृते तु
जीवन्मातृकः पितामह्यादिभ्यो वृद्धौ दद्यात्' इति स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थ

जीवतीत्यर्थः । मृते तु संन्यस्ते तदाद्ये एव देयम् । मृतेति परेभ्य एवेति गौडा-
कात्यायनोऽपि 'ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते । व्युत्क्रमाच्च मृते देयं
एव ददात्यसौ ॥' अयं च संन्यस्तपित्रादेरपि शेषात्सर्वश्राद्धेधिकारः । एतन्निदण्ड-
रम् । एकादशाहपार्वणवार्षिकाद्यापि तस्यैव । 'अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते
इत्युक्ता- 'त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ।' इत्युक्तानसा विशेषोक्तेः । 'ब्र-
ह्मणादिहते' इत्यादिनिषेधस्त्वेकदण्डादिपरः । अतः परमहंसानां वार्षिकादिकमपि न क-
र्यमिति शूलपाणिश्राद्धतत्त्वादयो गौडग्रन्थाः । इदमेव तु युक्तम् । यच्च हेमा-
चन्द्रकौण्डिन्यः- 'दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्पि-
तृकस्तर्पणमेव च ॥' इति तत्संन्यस्तपित्राद्यातिरिक्तविषयम् । मैत्रायणीयपरिशिष्टे- 'उ-
पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ॥' तत्रै-
'महानदीषु सर्वासु तीर्थेषु च गयामृते । जीवत्पितापि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मवित्
गयामृते इति मातृव्यतिरिक्तविषयम् । 'अन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेर्हा-
मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति ॥' इति तत्रैवोक्तेः । गयाप्राप्तौ प्राप्ति-
क्यात् । 'गयां प्रसङ्गतो गत्वा मातुः श्राद्धं समाचरेत् ।' इति वचनात् । तेन मृत-
पितृको गयायां तत्पार्वणमात्रं कुर्यात् । तज्जीवने तु तीर्थश्राद्धमपि नेति कालादर्श-
स्तिदर्पणादयः । अन्ये तु गत्वा श्राद्धं नेति निषेधार्थः । सामान्यतः प्राप्तं तीर्थश्रा-
द्धमेवैव गयायामित्याहुः ॥

यदा तु पितुः प्रतिनिधित्वेन गयां याति, तदा यजमानस्य पितृपितामहप्रपिता-
मह्येव श्राद्धम् । तत्र मातुः पितृपत्नीत्वेनैकोद्दिष्टं कृत्वा मातृत्वेन पुनः पार्वणं कुर्यात्
त्रिस्थलीसेतौ । 'तच्च फल्गुविष्णुपदाक्षय्यवदेष्वेवेति केचित् । आद्यान्ते एवेत्यन-
मध्यमान्ते इत्यपरे । संकोचे हेत्वभावात्तत्रत्यसर्वश्राद्धानि मातुः कार्याणीत्युक्तं प्रतिभा-
यच्च मदनपारिजाते- 'न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः । येभ्य एव
दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः ॥' इति मुमन्तुक्तेः । साग्रेरेव जीवत्पितृकस्य तीर्थादि-
श्राद्धमुक्तम् । साग्रेरपि मैत्रायणीयशाखीयस्यैव नान्येषाम् । 'षडेते जीवतः पितुः'
तत्परिशिष्टे एवोक्तेरिति रत्नावलीदिवोदासाद्यास्तदयुक्तम् । सौमन्-
पिण्डपितृयज्ञविषयं संन्यस्तपित्राद्यातिरिक्तं विषयं वेति पृथ्वीचन्द्रोदयोक्तेः । वृद्धौ
चेत्यादेः साधारण्येनास्यापि तथात्वाच्च । तथा निरग्रेरपि नान्दीश्राद्धमुक्तं प्राक् ।
पितामहजीवनेपि ज्ञेयम् । विशेषः पितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयः ॥

सर्वसंमतः पक्षः । यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे—‘पितामहे ध्रियमाणे पितुः प्रेतस्य निवृत्तस्य
पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चैत् प्रपितामहः ॥’ इति एकपुरुषं द्विपुरुषं वा पार्वणं
तत्तीर्थपितृयज्ञपरम् । वृद्धौ पूर्वोक्तमेव । एवं पूर्वयोर्मृतयोः प्रपितामहे जीवति पितृमा
परयोर्जीवतोश्च वृद्धप्रपितामहादिभ्यो ज्ञेयम् । ‘जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रतायान्नोदके
इति कात्यायनोक्तेश्च । एतत्सर्वं मनसि कृत्वाऽहं हेमाद्रौ विष्णुः—‘पितरि
यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः
पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात् । यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं
पितामहात् पराभ्यां दद्यात् । यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे
निधाय पितामहात्पराभ्यां दद्यात् । यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिण्डं
प्रपितामहात् पराभ्यां दद्यात् । यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ
पितामहप्रपितामहाय दद्यात् ॥’ ‘मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । म
यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम् ॥’ इति । अत्र पितृवन्मातामहे जीवति तत्पित्रा
यथा तत्र त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्तथात्रापित्यादि सर्वमतिदेश्यम् । एवं मातृजीव
शूलपाणिकालादर्शौ । तत्र । येभ्य एवेत्यादौ यच्छब्दादेर्व्यक्तिविशेषवा
तदप्रसङ्गादिति दिक् । उत्तरार्धं व्याख्यातं प्राक् । यत्तत्र विज्ञानेश्वरेणोक्तं
पिण्डं निधयेति पितुरेकोदिष्टविधिना श्राद्धं कृत्वा प्रपितामहादिभ्यः पार्वणं कुर्यात्
तद्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावपक्षे सपिण्डीकरणस्थानापन्नं ज्ञेयम् । ‘व्युत्क्रममातु
नां नैव कार्या सपिण्डना ।’ इति वचनात् । दर्शादौ तु पितुरेकोदिष्टमेव कार्यम्
‘जीवन्तमतिददाति’ इति श्रुतेः । ‘जीवेत्पितामहो यस्य पिता चान्तरितो भवेत् ।
कस्य दातव्यमेवमाहुर्मनीषिणः ॥’ इति यज्ञपाराशर्योक्तेः । ‘पितामहे जीवति
येवं समापयेत् ।’ इति हारीतोक्तेश्च । शिष्टास्तु—‘व्युत्क्रममातु प्रमातानां नैव
सपिण्डता ॥ यदि माता यदि पिता भर्ता नैव विधिः स्मृतः ॥’ इति माधवीयै स्यात्
व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभाव पितृव्यादिविषय इत्याहुः । एष विधिर्निषेधरूपः

त्रिषु जीवत्सु विष्णुराह—‘त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्’ इति । तदर्शादिविषयम् ।
श्राद्धं तु परेभ्यस्त्रिभ्यो भवत्येवेति कल्पतरुः । पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु—‘दय
परेभ्यस्तु जीवेच्चैत् त्रितयं यदि ।’ इति मनूक्तेः सर्वत्र विकल्पः । स च देशाच
वतिष्ठत इत्याहुः । सुदर्शनभाष्ये तु मासिकश्राद्धं जीवित्पित्रादिना व्युत्क्रममृ
दिना च कार्यमेवेत्युक्तम् । मदनरत्ने क्रतुः—‘अष्टकादिषु संक्रान्तौ मन्वादिषु

तथाखिलम् ॥' अन्ये विशेषाः श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये, भट्टकृतत्रि-
संतौ च ज्ञेयाः । इति निर्णयसिन्धौ जीवत्पितृकादिश्राद्धम् ॥

अथ विभक्ताविभक्तनिर्णयः । पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः- 'बहवः

विभक्ताविभक्तनिर्णयः । पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः । सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव

कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥' उ-
क्तृत्वेपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः । तेन ये ब्रह्मचर्यादिनियमास्ते फलितस-
त्वात्सर्वैः कार्याः । एवं संसृष्टिनामपि तुल्यत्वात् । मिताक्षरायां ना-
'भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते । विभागे सति धर्मोपि भवेत्तेषां
कपृथक् ॥ बृहस्पतिरपि- 'एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम् । एकं
भक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे ॥' अत्र यद्यप्यविशेषश्रवणात् ब्रह्मयज्ञ-
दिष्वप्यविभक्तानां पृथङ्निषेधः प्राप्नोति तथापि द्रव्यसाध्यश्राद्धवैश्वदेवादिष्वेव
द्रव्यस्यानेकस्वामिकत्वेनैकस्य व्ययेऽनधिकारात् । यानि तु द्रव्यासाध्यानि मन-
पवाससन्ध्याब्रह्मयज्ञपारायणादीनि नित्यनैमित्तिककाम्यानि तेषु पृथगेवाधिव-
द्रव्यव्ययाभावेन्यनुमत्यनपेक्षणात् । 'द्रव्येण वा विभक्तेन' इत्यस्याविषयत्वात् । पृ-
कपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च सन्ध्या नित्यं भवेत्त-
इति प्रयोगपारिजाते आश्वलायनस्मृतेश्च । अग्निहोत्रशब्दोऽग्निसाध्यश्रौत-
नित्यकर्मपरः । तेष्वप्यन्यानुमत्यैवाधिकारेण न्यायसाम्यात् । पितृश्राद्धादिषु
फलेषु नित्येष्वनुमतिं विनाप्येकस्याधिकारः । 'एकोपि स्थावरे कुर्याद्दानाध्यय-
यम् । आपत्काले कुटुम्बार्ये धर्मार्ये च विशेषतः ॥' इति वचनात् । ध-
वश्यकर्तव्ये पितृश्राद्धादिति विज्ञानेश्वरः । केचित्त्वविभक्तानामपि पृथक्
देशान्तरे च दार्शिकादिकयोः पृथक्कमाहुः । भ्रातृणामविभक्तानां पृथक् पाकं
द्यदि । वैश्वदेवादिकं श्राद्धं कुर्युस्ते वै पृथक्पृथक् ॥' इति हारीतोक्तेः ।
भक्तेन पुत्रेण पितृमेधो मृताहनि । देशान्तरे पृथक्कार्यो दर्शश्राद्धं तथैव च ।
यमोक्तेश्चेति । तत्र मूलं चिन्त्यम् । तदयमर्थः । पञ्चमहायज्ञमध्ये देवभ-
मनुष्ययज्ञानन्यानुमत्या ज्येष्ठ एव कुर्यात् । 'होमाग्रदानरहितं न भोक्तव्यं क-
अविभक्तेषु संसृष्टेष्वेकेनापि कृतं कृतम् ॥' इति व्यासोक्तेश्च । यस्य तु उ-
कृते वैश्वदेवेन सिद्ध्येत्तेन तूष्णीमग्नौ किञ्चित् क्षिप्त्वा भोक्तव्यम् । यस्य त-
तोत्रं सिद्ध्येत्स नियुक्तमग्नौकृत्वाग्रं ब्राह्मणाय दत्त्वा भुञ्जीतेत्यविभक्ताधिकारे
चन्द्रोदये गोभिलोक्तेः ॥

वा पृथक्पाका द्विजातयः । कुर्युः पृथक्पृथग्यज्ञान् भोजनात् प्राग्दिने दिने ॥' ।
 ब्रह्मयज्ञसंध्यास्नानतर्पणादि तूक्तहेतोः पृथगेव । देवपूजा तूक्तवचनद्वयादेकत्र पृथ-
 दर्शग्रहणश्राद्धादि त्वेकस्यैव । तीर्थश्राद्धाद्यापि युगपत्सर्वेषामविभक्तानां प्राप्तावेक-
 भेदेन प्राप्तौ भिन्नम् । गयाश्राद्धेप्येवम् । 'एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्ति-
 तेषां तु समवेतानां यद्येकोपि गयां व्रजेत् । तारिताः स्मो वयं तेन म याति
 गतिम् ॥' इति हेमाद्रौ कौर्मोक्तेः ॥ काम्येपि दानहोमादावन्यानुमत्यै-
 कारः । द्रव्यासाध्याजपादौ तां विनापि । अपराकं पैठानसिः—'विभक्तस्तु-
 क्कार्यं प्रतिसंवत्सरादिकम् । एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वस्तु तत्कृतम् ॥' सांव-
 पूर्वाणि मासिकान्येकत्रैव तदाह लघुहारीतः—'सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्रा-
 षोडश । पृथङ्नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित् ॥ सपिण्डनं मासिको-
 णम् । 'अर्वाक्संवत्सराज्येष्टः श्राद्धं कुर्यात्समेत्य तु । उर्ध्वं सपिण्डीकरणात् सर्व-
 पृथक्पृथक् ॥' इति व्यासोक्तेः । उशानाः—'नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्य-
 षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ॥ मघात्रयोदशीश्राद्धं त्वविभक्तान्
 पृथक् ॥' इत्युक्तं प्राक् । यत्तु वृद्धवसिष्ठः—'मासिकं च वृषोत्सर्गं सपिण्डीकरणं-
 ज्येष्ठेनैव प्रकर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं तथा ॥' इति तन्निर्मूलम् । बहवृचपरि-
 'नवश्राद्धं सह दद्युः ॥' इति ॥

अथ तीर्थश्राद्धम् ॥ तत्र यद्यप्यस्मत्पितामहकृतत्रिस्थलीसेतुवेवजागतिं
 तीर्थश्राद्धनिर्णयः । किञ्चिदुच्यते । तत्र यात्रायां—'सहाग्निर्वा सपत्नीकोगच्छेत्
 संयतः । प्रायश्चित्ती व्रती तीर्थं पत्नीविरहितोपि वा । यज्ञेष्वन-
 वा यश्च वा मन्त्रसाधकः ॥' इति कौर्मोदिवचनात्साग्रेः सपत्नीकस्यैवाधिक-
 भारते—'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम । न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नानं
 महात्मनः ॥' स्कान्दे विधवाधर्मेषु—'स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णुनामग्रहं सु-
 एतत् पुत्राद्यनुमत्यैव । सधवायाः पत्या सहैवाति प्राशुक्तम् । काशीखंडे—'मातुः
 क्षेप्तुमनास्तथास्थि सुतस्तु कुर्यात् खलु तीर्थयात्राम् ।' ताद्विधिः स्कान्दे—'तीर्थ-
 चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे । गणेशं च पितृन् विप्रान् साधून् शक्त्या प्रपूज्य च
 पारणको हृष्टो गच्छेन्नियमधृक् पुनः । आगत्याभ्यर्च्य च पितृन् यथोक्तफलभागम्

तीर्थयात्राविधिः ।

उपवासात् प्राग मुण्डनं च कार्यम् । 'प्रयागे तीर्थयात्रायां पित-
 वियोगतः । कचानां वपनं कुर्याद्यथा न विकचो भवेत् ॥'

ये भारतेस्मिन् पितृकर्मतत्पराः संधार्य केशानतिभक्तिभाविताः । ऋणक्षयार्थं
मागतास्तेषामृणं संक्षयमेष्यति ध्रुवम् ॥' इति निषेधात् । गयायात्राङ्गं वपनं
मित्याहुः । वस्तुतस्तु- 'गयाधिकरणकस्यैवायं निषेधः । न तु यात्राङ्गस्य ।
इत्युक्तेः । 'विशालं विरजं गयाम्' इत्यनेनैकवाक्यत्वाच्च । श्राद्धं च षण्णवत्
वा घृतेन कार्यम् । 'गच्छेद्देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्ससर्पिषा ।' इति विष्णु-
यात्राङ्गवृद्धिश्राद्धोक्तेश्च ॥

श्राद्धं च पारणादिने एव । 'उपोष्य रजनीमेकां प्रातः श्राद्धं विधाय च
ब्राह्मणाव्रत्वाभुक्त्वा प्रस्थितवान् सुधीः ॥' इति स्कान्दलिङ्गात् । गौ-
तमः- 'तीर्थयात्रासमारम्भे तीर्थात् प्रत्यागमेपि च । वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत
समन्वितम् ॥' वृद्धिपदं तद्धर्मार्थं श्राद्धोत्तरं यात्रासंकल्प इति भट्टाः व-
उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कार्पटीवेषं ग्रामं गत्वा
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् ॥' घृतस्य भोजनं, तच्च क्रोशम-
त्तरं क्रोशगमननिषेधात् । 'ततः प्रतिदिनं गच्छेत् प्रतिग्रहविवर्जितः ।' गयाय-
न्यत्रेति केचित् । हेमाद्रिस्तु- 'गयायां श्राद्धादिने एव प्रस्थानम् ॥
श्राद्धोत्तरादिने' इत्याहुः । प्रभासखण्डे- 'यच्चान्यं कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रा-
स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम् ॥' यात्रामध्ये आशौचे रजसि-
पर्यन्तं स्थित्वा तदन्ते गच्छेत् । मार्गवैषम्ये त्वदोषः । यात्रामध्ये तीर्थान्तर-
दि कार्यमेव । वाणिज्याद्यर्थं गतेन तु मुण्डनोपवासादि न कार्यमिति
भट्टाः । वस्तुतस्तु तत्रापि मुण्डनोपवासश्राद्धादि कार्यम् । 'अर्थं तीर्थफ-
लसङ्गेन गच्छति ।' इति ब्राह्मोक्तेः । स्कान्दे- 'द्विर्भोजनं तृतीयांशं हरे-
च । वाणिज्यं त्रींस्तथा भागान् हन्ति सर्वे प्रतिग्रहः ॥' यानं धर्मचतुर्थांशं ह-
च ।' इत्युत्तरार्धपाठान्तरम् ॥

अत्र नदीषु विशेषः- 'मार्गेन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादि परंपारतः ।
स्वत्या एष मार्गगतो विधिः ॥' यत्तु- 'पितृन् स तर्पयित्वा तु नदीस्तरति-
तस्यासृक्पानकामास्ते भवन्ति भृशदुःखिताः ॥' इति तत्सरस्वतीपरम् ।
'तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेन स्नानं तीर्थं समाचरेत् । स्नानजं फलमाप्नोति ती-
तु ॥' स एव- 'न स्रवन्तीमतिक्रामेत्' । अनवसिच्य तीर्थप्राप्तौ तु प्र-
'यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरैर्नरैः । लुठित्वा लोठनीं तत्र कृत्वा
ति ।' इति । 'प्रथमं चालयेत्तीर्थं

शिनी ॥' इति मन्त्रवत्स्नानं च वपनोत्तरं कार्यम् । 'पूर्वमावाहनं तीर्थे न तदनन्तरम् । ततः स्नानादिकं कुर्यात् पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेत् ॥' इत्युक्तं यत्तु—'गत्वा स्नानं प्रकुर्वीत वपनं तदनन्तरम् ।' इति तन्मुशलस्नानपरम् । व-
 खण्डे—'तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा ॥' उपवासे तत्रैवोक्तम्—
 तीर्थप्राप्तिः स्यात्तदङ्गः पूर्ववासरे । उपवासः प्रकर्तव्यः प्राप्तेऽपि श्राद्धदो भवेत् ॥'
 'उपवासं ततः कुर्यात्तस्मिन्नहनि सुव्रतः ।' इति प्राप्तिदिनेषूपवासोक्तविकल्पः ।
 तु स्कान्ददेवलौ—'मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः । वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं
 विरजं गयाम् ॥' विरजं लोणारप्रसिद्धम् । महातीर्थपरः सर्वतीर्थशब्दः ॥

अत्र विशेषः स्मृत्यन्तरे—'ऊर्ध्वमब्दाद्विमासोनात्पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि । मुण्डनं
 वासं च ततो यत्नेन कारयेत् । तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्तमृते द्विज ।' इति वा-
 'प्रयागे प्रतियात्रे तु योजनत्रयं इष्यते । क्षौरं कृत्वा तु विधिवत्ततः स्नायात्सिता-
 तथा च बृहस्पतिः—'क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यापि ध्रुवम् । पित्रादिमृति-
 प्रायश्चित्तेऽथ तीर्थके ॥' अपराकं स्कान्दे—'उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं
 येत्सुधीः । केशश्मश्रुलोमनस्यान्युदक्संस्थानि वापयेत् ॥' इदं प्रयागे सधव-
 समूलं भवतीति भट्टाः । युक्तं तु—'सर्वान् केशान् समुदधृत्य छेदयेदङ्गुलि-
 ष्वमेव हि नारीणां शस्यते वपनक्रिया ॥' इति । तच्चाकृतचूडानां न क-
 केचित् । तत्त्वं तु नैमित्तिकत्वात् पित्रादिमृतवत् कार्यमेवेति । तदपि प्रयागे नि-
 नान्यत्र । तच्च यतिभिस्तीर्थेऽपि ऋतुसंधिष्वेव कार्यं नान्यदा । 'कक्षोपस्थदि-
 मृतुसंधिषु वापयेत् ।' इति स्मृतेः । इदं जीवत् पितृकेणापि तीर्थे कार्यम् । न च
 पिण्डदानं च इति दक्षवचनेन निषेधः । 'विना तीर्थं विना यज्ञं मातापित्रोर्मृति-
 यो वापयति लोमानि स पुत्रः पितृघातकः ॥' इति स्मृत्या तत्संकोचात्
 प्रयागे प्रतियात्रम् । अन्यतीर्थे आद्ययात्रायामेवेति शिष्टाः । ततः स्नानम्

परार्थं तु मार्कण्डेयपुराणे—'मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम्
 दिश्य निमज्जेत अष्टमांशं लभेत् सः ॥' पैठीनसिः—'प्रतिकृतिं कुशमयीं ती-
 मज्जयेत् । मज्जयेच्च यमुदिश्य सोष्टभागफलं लभेत् ॥' ततस्तर्पणश्राद्धे पृथ्व-
 दये ब्रह्मदेवीपुराणकाशिखण्डादिषु—'अकालेऽप्यथ वा काले तीर्थश्राद्धं
 णम् । अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत् ॥' मात्स्ये—'पितृणां चैव
 इति तुर्यपादः । तत्र देवता महालये प्रागुक्ताः । शङ्खदेवलौ—'तीर्थद्रव्योप-

तस्मान्न कालस्तत्र कारणम् ॥' आशौचेपि कार्यम् । 'विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां कर्मणि । न तत्र सूतकं तद्रत्नकर्म यज्ञादि कारयेत् ॥' इति पैठीनसिस्मृतेः । नीमकरणे त्वाशौचान्ते एव कुर्यात् । प्रभासखण्डे-'न वारं न च नक्षत्रं न का कारणम् । यदैव दृश्यते तीर्थं तदा पर्वसहस्रकम् ॥' मलमासेपि कार्यम् । नित्ये त्तिके कुर्यात् प्रयतः सन्मलिम्बुचे । तीर्थश्राद्धं गजच्छायां प्रेतश्राद्धं तथैव इति बृहस्पतिस्मृतेः ॥

एतच्चाशौचे प्रकृतभोजनस्य रात्रौ वा स्नानश्राद्धादिकमाकस्मिकतीर्थप्राप्तावा श्राद्धविषयं ग्रहणादिवत् । न तु बुद्धिपूर्वमाशौचादौ तीर्थप्राप्तिः कार्या । मलमा मासद्वये तीर्थश्राद्धं कार्यमिति चन्द्रिकायां देवीपुराणे-'श्राद्धं च तत्र कर्तव्यं वाहनवर्जितम् ॥' हेमाद्रौ-'अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजांगुष्ठनिवेशनम् । तृप्तिप्र विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्जयेत् ॥' भविष्ये-'आवाहनं विसृष्टिश्च तत्र तेषां न वि आवाहनं न तीर्थे स्यान्नार्घ्यं दानं तथा भवेत् ॥ आहूताः पितरस्तीर्थे कृत संति वै यतः ॥' अग्नौकरणं च नेति रत्नावल्याम् । अत्र षडैवते श मात्रादीनां पिण्डमात्रं देयम् । 'हविःशेषं ततो मुष्टिमादायैकैकमादृतः । पितृपत्नीनां पिण्डनिर्वपणं चरेत् ॥' इति तीर्थोपक्रमे देवलोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः सामान्यपिण्डं दद्यात् । 'ततः पिण्डमुपादाय हविषः संस्कृतस्य च । ज्ञातिवर्गस्य सामान्यं पिण्डमुत्सृजेत् ॥' इति तेनैवोक्तेः । पाद्मे-'तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्वान्नेन षतः । आमाम्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि ॥'

पिण्डद्रव्याणि देवीपुराणे हेमाद्रौ ब्राह्मे च-'सक्तुभिः पिण्डदानं च स पायसेन वा । कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेन गुडेन वा ॥' पिण्डानां तीर्थ एव । नान्या प्रतिपत्तिरित्युक्तं प्राक् । एतच्च विधवयाऽपुत्रया कार्यम् । न सपुत्रये प्राक् । 'सपुत्रया न कर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचन ।' इति स्मृतेश्च । अनुपनीते कार्यम् । 'एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु' । इति पाद्मे तीर्थश्राद्धमुपक्रम्यो एतच्च जीवत्पितृकेणापि कार्यमित्युक्तं प्राक् । 'न कुर्यात्सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिण्डं क्रियाम् । त्यक्तं संन्यासयोगेन ग्रहधर्मादिकं व्रतम् ॥ गोत्रादिचरणं सर्वं पितृमा धनम् ।' इति स्मृतेः । गयायां तूक्तं वायवीये-'दण्डं प्रदर्शयेद्विभुर्गयां गत् पिण्डदः । दण्डं स्पृष्ट्वा विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते । गयायां मुण्डपृष्ठे च कूपे य तथा । दण्डं प्रदर्शयन् भिक्षुः पितृभिः सह मुच्यते ॥ कृत्यरत्ने प्रभासखण्डे-चेत् प्रसिगृह्णाति ब्राह्मणो वृत्तिदुर्लभः । दशांशमर्जितं दद्यादेवं कुर्वन् हीयते ॥'

॥ श्रीः ॥

अथाशौचप्रकरणम् ।

नारायणात्मजश्रीमद्रामकृष्णस्य सूतुना ।

कमलाकरसंज्ञेनाशौचं निर्णीयतेधुना ॥ १ ॥

मरीचिः—‘आचतुर्थाद्भवेत्स्नावः पातः पञ्चमषष्ठयोः । अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्य
शाहं सूतकं भवेत् ॥’ बृहत्पराशरः—‘गर्भस्त्रावे तु नैरुक्ता रात्रयो माससंमिताः । र
गर्भस्य विद्वांसो मासादर्वाक् चतुर्थकात् ॥ पातमूर्ध्वं वदन्त्येके तत्राधिकं तु सूतक
स्त्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात्सपिण्डाशौचवर्जनम् । पाते मातुर्यथामासं सपिण्डानां दि
यम् ॥’ अत्र सर्वत्र मूलं मिताक्षरायां ज्ञेयम् । अत्र मासत्रये त्रिरात्रं स्यादित्यनुव
रजस्वलात्वेनैव तत्सिद्धेः । यद्यप्यनेन चतुर्थमासेपि त्रिरात्रं प्राप्
जननाशौचम् ।

तथापि—‘षण्मासाभ्यन्तरं यावद्गर्भस्त्रावो भवेद्यदि । तदा मास
स्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते ॥’ इत्यादिपुराणात् । ‘रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भ
विशुद्ध्यति ।’ इति मनूक्तेः गर्भस्त्रावे यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः ।’ इति मरी
क्तेश्चतूरात्रं ज्ञेयम् । अचिरे त्रिमासमध्ये । उत्तमे ब्राह्मणे । अत्र सपिण्ड
स्नानम् । सद्यःशौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति’ । इति तत्रैवोक्ते
एतदाचतुर्थमासात्पाते त्रिदिनस्योक्तेः । अकारणायाः शुद्धेरसंभवात्सद्यः
स्नानपरम् । एवमग्रेपि । ‘गर्भस्त्रावे स्नानमात्रं पुरुषस्य’ इति बृहद्वसिष्ठोक्ते
पुरुषस्येति सपिण्डोपलक्षणं पूर्वोक्तवचनात् । आचतुर्थमासं सपिण्डानां न स
किंतु पुंस एव । पाते त्रिदिनं निर्गुणपरम् । गुणवतस्तु—‘अजातदन्ते तनये शिशौ
च्युते तथा । सपिण्डानां तु सर्वेषामेकरात्रमशौचकम् ॥’ इति यमोक्तेरेकाह
मदनपारिजातः ॥

सप्तममासादि दशाहम् । एतत्सर्ववर्णविषयम् । ‘तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते
च ।’ इति व्याघ्रोक्तेः । पराशरः—‘जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । नै
पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥’ संवर्तः—‘जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचै
विधीयते । माता शुद्ध्यद्दशाहेन स्नानात् स्पर्शनं पितुः ॥’ पुत्रपदात्कन्योत्पत्तौ
पितुः स्नानमिति हारलतायाम् । तन्नापुत्रपदस्य ‘पौत्री मातामहस्तेन’ इति कन्याय

मिति स्मार्तगौडास्तत्र । मूलैक्येन ज्ञानमात्रपरत्वात् । इदं सर्ववर्णसमम् । तिका सर्ववर्णेषु दशरात्रेण शुद्ध्यति । ऋतौ च न पृथक् शौचं सर्ववर्णेष्वयं वि । इति हारलतायां प्रचेतसोक्तेः । यत्तु ब्राह्मे-‘ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या दशभिर्दिनैः । गतैः शूद्रा च संस्पृश्या त्रयोदशभिरेव च ॥’ इति प्रयोगपारि पारस्करः-‘द्विजातेः सूतिका या स्यात्सा दशाहेन शुद्ध्यति । त्रयोदशेहि संप्र शुद्ध्यत्यसंशयः ॥’ इति, तदस्पृश्यत्वपरम् ॥

अङ्गिराः-‘सूतके सूतिकावर्ज्यं संस्पर्शो न निषिध्यते । संस्पर्शे सूतिकायास्तु मेव विधीयते ॥ नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति । रजस्तत्राशुचि ई पुंसि न विद्यते ॥’ संसर्गो मैथुनम् । स्पर्श इत्यन्ये । मातुरेव सूतकम् । तां स्पृश हारलतायां सुमन्तूक्तेरिति तत्र । ‘संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधी इति स्नानमात्रोक्तेः । सौमन्तवचनस्य स्नानपर्यन्तमस्पृश्यत्वमात्रबोधकत्वात् कारो बालस्पृश्यत्वार्थः । माधवस्तु-‘यस्तैः सह सपिण्डोपि प्रकुर्याच्छयना बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुद्ध्यति ॥’ इति बृहस्पतिस्मृतेः । सनादिरूपं संसर्गमाह पराशरः-‘यदि पत्न्यां प्रसूतायां द्विजः संपर्कमृच्छति । तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥’ पितृवत्सापत्नमातुः प्राक् स्नानादस्पृश्यत्वात् सूतिकास्पर्शे तु यावदाशौचम् ‘अन्याश्च मातरस्तद्वत्तदगृहं न व्रजन्ति च ।’ इति व क्तेरिति शुद्धितत्त्वादयस्तत्र । ‘तद्रेहं गत्वा सूतिकां यदि न स्पृशति, त श्या अन्यथा न’ इति तस्यार्थः ॥

कर्मानधिकारमाह पैठीनसिः-‘सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि न्मासेन स्त्रीजननीम् ।’ इदमाशौचोत्तरम् । अन्यथा शूद्राः सपिण्डानामाशौचे त स्याद्विध्यनुवादविरोधश्च । एतच्च सोमयागादिश्रौतभिन्नपरम् । ‘प्रजातायाश्च द दूर्ध्वं स्नानात्’ इति कात्यायनोक्तेः । व्यासः-‘प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥’ पुत्रशब्दोपत्यमात्रपरः । ब्राह्मे-पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठं च सर्वदा ॥’ विशेषः प्रागुक्तः ॥

अत्र प्रयोगपारिजातः-‘पुं प्रसवे दशाहः स्त्रियपत्ये तु त्र्यहः । पुंजन्मनि षडानां दशाहाच्छुद्धिरिष्यते । त्र्यहादेकोदकानां च एकाहं सूतकं क्वचित् । स्त्रीज सपिण्डानां सोदकानां त्र्यहाच्छुचिः । स्त्रीषु त्रिपुरुषं ज्ञेयं सपिण्डत्वं द्विजोत्तम इत्यग्निस्मृतेरित्याह । मेधातिथिरपि-‘अपचानां त स्त्रीणां त्रिपुरुषं विज

अत्रेदं तत्त्वम्—‘पञ्चमात्सप्तमाद्धीमान् यः कन्यामुद्वेहेद्विजः । गुरुतल्पी स विज्ञेयः ।
इत्यादिविरोधाच्चिपुरुषं प्रकरणान्मरणाशौचपरम् । वासिष्ठे तदग्रे उदकदानोक्तः ।
तेन कन्याप्रसवेपि साप्तपौरुषं दशरात्रमेव । न च कन्यापुत्रकृतं प्रसवे बलावलं कापि
क्तम् । अग्निस्मृतिस्त्वनुकल्पो विगीता वेति सर्वसिद्धान्तः । अन्यथा त्रिपु
सापिण्डानामष्टमादिसोदकानां च व्यहं साम्यायोगात् । चतुर्थादिसप्तमान्तानां
किमपि न स्यात् । तेन कन्याप्रसवे दशाह एव । किञ्च—स्त्रीजन्मोद्देशेन त्रिपु
सापिण्डयं तेषां च त्रिरात्रमित्यनेकार्थविधिः कथं स्यात् । वाक्यभेदापत्तेः ।
न च चतुर्थादीनां सोदकत्वं कापि सिद्धम् । तेन त्रिपुरुषं चतुर्थादीनां स्त्रीजन्मनि सं
कत्वं विधाय पुनस्तेषां त्रिरात्राशौचविधौ विध्यनुवादविरोधो वाक्यभेदद्वयं चेत्यमंवा
र्थाग्निस्मृतिर्हेया ॥

अथ मृताशौचम् ॥ हारीतः—‘जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्
इति स्वाशौचपरम् । जातमृते नालच्छेदोर्ध्वम् । ‘यावन्न छिद्यते
मृताशौचनिर्णयः । तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ॥’

जैमिन्युक्तेः ‘नाड्यां छिन्नायामाशौचम्’ इति हारीतोक्तेश्च । नाडीछेदात्
मातुः स्पर्शोपि न दोष इति शुद्धितत्त्वोक्तिः परास्ता । नाभिच्छेदात्प्राक् मृ
बृहन्मनुः—‘जीवज्जातो यदि ततो मृतः सूतक एव तु । सूतकं सकलं मातुः पित्रा
त्रिरात्रकम् ॥’ इदं च प्रसवाशौचमेव । शावनिमित्तं स्नानमात्रम् । ‘प्राङ्नामक
त्सद्यः शौचम्’ इति शंखोक्तेः ॥

अत्र कश्चिदाह—‘नामकरणमाशौचान्तकालोपलक्षणम् ॥’ ‘आशौचव्य
नामधेयम्’ इति विष्णूक्तेः । ‘आशौचे च व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते ।’ इति
क्तेश्च । नाम्नो नियतकालत्वात् । न च—‘नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वापि कार
पुण्ये त्रिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥’ इति मनूक्तेरनियतकालत्वम् । दश
मतीतायां विप्रः । द्वादश्यामतीतायां क्षत्रियः । वैश्यः । षोडशे । शूद्र एकत्रिंशे इ
ज्ञेयम् । पुण्य इत्याद्यनुकल्पः । तेन नाम्नः कालोपलक्षणम् । एवं दन्तजननेपि । ‘
जन्म सप्तमे मासि’ इत्युपनिषदि नियतकालत्वात् । चौले तु न कालोपलक्ष
‘प्रथमेन्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।’ इति मनूक्तेः । ‘ततः संवत्सरे पूर्णे
कर्म विधीयते । द्वितीये वा तृतीये वा कर्तव्यं स्मृतिदर्शनात् ॥’ इति यमो
तस्या नियतकालत्वात् । इति तन्मन्दम् । चौलवन्नामदन्तजननयोरपि स्व

मा च विष्णुवचनाद्वाहाभावविषयेति वक्ष्यामः । त्रिवर्षादावपि स्यादिति चेन्न
 दन्तादिनिमित्तविशेषाशौचैः पूर्वस्य बाधात् । तदुक्तम्-‘पूर्वाबाधेन नोत्पा-
 दि मिध्यति ।’ इति । ‘जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे च’ इति पा-
 द्वादश्यामपरे गत्यां मासे पूर्णे तथापरे । अष्टादशेऽहानि तथा वदन्त्यन्ये मनी-
 इति भविष्ये च नाम्नः कालानियमाच्च । न च प्राथम्याद्दशरात्रेऽस्तीति इ-
 कालः अन्यस्त्वनुकल्प इति वाच्यम् । चौलैपि तथापत्तेः । न च दन्तजनन-
 लक्षणं मदन्तजातमृतस्य दाहैकाहप्रसङ्गः । दशाहेन बाधात् । नामकरणोत्तरं
 प्रवृत्तेः । ‘दशाहाभ्यन्तरे वाले प्रमीते तस्य बान्धवैः । शावाशौचं न कर्तव्यं सु-
 विधीयते ॥’ इति बृहन्मनूक्तेश्च । आशौचं दाहोपलक्षणम् । ‘सूतकवत्’ इति
 स्मृतोक्तैः । यत्तु विष्णुः-‘अनिवृत्ते दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति ।
 विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नोदकक्रिया ॥’ इति तदपि प्रेताशौचनिषेधार्थं न तु सद्यस्य
 वाक्यभेदात् । किञ्च-नामकालात्प्राङ्मृतस्य स्नानम् तदुत्तरं त्वेकाहादि ।
 त्वेकादशाहे मृतस्य न किमपि स्यात् । अथ शंख वचने ल्यब्लोपे पञ्चमी, तदा
 नोपपद्येत । ‘नाम्नि वापि कृते सति’ इति मन्वादिविरोधात् । कृतनाम्न इति
 मिताक्षरादिविरोधाच्च न कालोपलक्षणं क्वापीति दिक् ॥

नामांत्तरं दन्तोत्पत्तेः प्राग्दाहं सत्यहः । ‘अदन्तजाते तनये शिशौ गर्भच्युते
 दन्तोत्पत्तेः प्राग्दाहौच- सपिण्डानां तु सर्वेषामहोरात्रमशौचकम् ॥’ इति यमोक्तेः
 निषेधः । भावे तु स्नानमात्रम् । ‘अदन्तजाते प्रेते सद्य एव नास्याग्निः संस्व-

इति विष्णुना दाहाभावे तदुक्ते । ‘आ दन्तजन्मनः सद्यः’ इति याज्ञवल्की
 दाहविकल्पं चाह लौगाक्षिः-‘तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च
 कृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम् ॥’ अन्यत्राकृतचूडे । अत्र चूडाकरणं तृतीय
 कालोपलक्षणार्थमिति मेधातिथिहरदत्तौ । मनुरपि-‘नात्रिवर्षस्य कर्तव्या
 वैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥’ इति । उदकं दाह-
 दन्तोत्पत्त्यनन्तरमाशौ- णम् । दन्तोत्पत्त्यनन्तरं प्राक्त्रिवर्षान्तान्मृतेऽहः । ‘दन्त-
 चानिर्णयः । कृतचूडे त्वहोरात्रेण शुद्धिः ।’ इति विष्णुक्तेः । त्रिवर्षार्धं

ऽकृतचूडे वा प्रागुपनयनात् त्र्यहः । ‘यद्यप्यकृतचूडो वै जातदन्तस्तु संस्थितः ।
 दाहयित्वेनमाशौचं त्र्यहमाचरेत् ॥’ इत्यङ्गिरसोक्तेः । अकृतायामपि चूडायां
 र्धं दाहादि नियतम् । ‘नात्रिवर्षस्य’ इति वचनात् । कृतायां वर्षत्रयत्वादि
 तूष्णीमेव । अत्र जातदन्तस्य त्र्यहोत्पत्त्यनन्तरं प्राक्त्रिवर्षान्तान्मृतेऽहः । ‘दन्त-

उभयविधौ वाक्यभेदात् । त्रिवर्षात्प्राक् चूडाभावेऽग्निदाने व्यहस्तदभावे विष्णुक्तेरेक
इति माधवः । यत्तु कश्चिदाह—अत्र त्रिवर्षविषयादस्मादेवार्थात् त्रिवर्षोर्ध्वमपि तत्सिद्धि
विज्ञानेश्वरोक्तं च त्रिवर्षोर्ध्वमकृतचूडाविषयत्वं चिन्त्यम् । जातदन्तपदवैयर्थ्यादि
तच्चुच्छम् । दाहस्याविधेयत्वात् । ‘नृणामकृतचूडानामशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।’ इ
मनूक्तेः । त्रिवर्षोर्ध्वमेकाहापत्तेरर्थात् व्यहसिद्धेः । त्वयाप्यग्रे तथाङ्गीकारात्पदवैयर्थ्य
साम्याद्वाक्यार्थाज्ञानाच्चेत्यलं मिताक्षरार्थानभिज्ञदूषणेन । प्रथमवर्षादौ कृतचूड
सदा व्यहः । निवृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ।’ इति मनूक्तेः । एतत्सर्वं प्रागु
सपिण्डानाम् ॥

मातापित्रोस्तु दशाहोर्ध्वं मृते सर्वत्र त्रिरात्रम् । ‘बालानामजातदन्तानां त्रिरात्रे
शुद्धिः ।’ इति कश्यपोक्तेः । ‘वैजिकादभिसंवन्धादनुरुध्यादधं व्यहम् ।’ इति म
क्तेश्च । शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु—‘अजातदन्तमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते । दन्तज
त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातां तु निर्गुणौ ॥’ इति कौर्मात्काश्यपं शूद्रपरम् । ‘अनूढा
तु कन्यानां तथा वै शूद्रजन्मनाम् ।’ इति व्यहानुवृत्तौ शंखोक्तेः । ‘त्रिरात्रं तु
च्छूद्रे षण्मासेपि शिशौ मृते ।’ इति मात्स्यसूक्ताच्च । दन्तजाते शूद्रे तु पञ्चाहः
यथाहाङ्गिराः—‘शूद्रे त्रिवर्षान्मृते तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः । अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वा
शाहो विधीयते ॥ षड्वर्षान्तमतीतो यः शूद्रः संम्रियते यदि । मासिकं तु भवेच्छौच
त्याङ्गिरसभाषितम् ॥’ इति । यत्तु ‘अनूढभार्यः शूद्रस्तु’ इति शंखोक्तं मासाशौचं त
गुणशूद्रपरम् । निर्गुणे त्वनूढभार्ये शूद्रे त्रिवर्षोर्ध्वं द्वादशाहः । षडब्दोर्ध्वं मासः । ष
ब्दात् प्रागपि कृतोद्वाहे मास इत्याहुः । एतत् ‘तुल्ये वयसि सर्वेषाम्’ इति विरोधाच्च
ष्टविगानान्नादर्त्तव्यमिति विज्ञानेश्वरादयः । दाक्षिणात्यानां तथैव । अन्यदेशे प्रागु
मिति गौडाः । एवं कन्यास्वपि । तास्वप्यजातदन्तासु मृतासु पित्रोरेकरात्रमि
माधवः । यत्तु विज्ञानेश्वरेणोक्तम्—‘ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि ।’ इ
याज्ञवल्क्योक्तेः । गर्भस्थे प्रेते मातुर्दशाहं जाते उभयोः कृतनाम्नि सोदराणां च
पैङ्ग्योक्तेश्च पित्रोः सोदराणां च दशाहमस्पृश्यत्वमिति तन्नेदानीं प्रचरति । अत
स्मृत्यर्थसारे तत्राहतम् । कन्यासु चौलात्प्राङ्मृतौ स्नानम् । ‘अचूडायां तु कन्या
सद्यः शौचं विधीयते ।’ इत्यापस्तम्बोक्तेः । इदं त्रिपुरुषमध्ये । ‘अप्रत्तानां तु स्त्री
त्रिपुरुषी विज्ञायते’ इति वसिष्ठोक्तेः । इदं वाग्दानोत्तरम् इति गौडास्तत्र । ‘अ
त्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ।’ इति वचनात् ॥

चौलोत्तरं वाग्दानात्पूर्वं तास्वेकाहः । अविशेषेण वर्णानामर्वाक् संस्कारकर्मणः

अतः शूद्रस्योपनयनस्थानीयविवाहात्पूर्वं त्रिरात्रम् । विवाहोत्कर्षे तु षोडशाब्द-
त्रमेवेत्यपरार्काद्याः । शूद्रे निर्गुणे तु त्र्यब्दोर्ध्वं पञ्चाहः । षडब्दोर्ध्वं तु
द्वादशाहमिति गौडाः । सगुणानां षोडशाब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावेपि पूर्णाशौच-
तदुत्तरं प्राग्विवाहाद्भर्तृकुले च सप्तपुरुषावधि त्रिरात्रम् । 'अवारिपूर्वं प्रप्ता
प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतम् ॥' इति मर-
रत्नाकरे शुद्धितत्त्वे च शङ्खः- 'पितृवेश्मनि या नारी रजः पश्यत्यसंस्कृ-
मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति ॥' यावज्जीवमाशौचमिति वाचस्पतिः ।

अथानुपनीते किञ्चिदुच्यते । नाम्नः पूर्वं खननमेव । तदूर्ध्वं वर्षत्रयात्
भावेऽन्युदकदानविकल्पः । नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जात-
कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥' इति मनूक्तेः । उदकक्रियासाहचर्याद्वाहोप-
खनने तु नान्यदौर्ध्वदेहिकम् । 'ऊनद्विवर्षं निखनेन कुर्यादुदकं ततः
याज्ञवल्क्योक्तेः । उदकमन्त्यकर्मपरमित्यपरार्कः । यमः- 'ऊनद्वि-
वृताक्तं निखनेद्भुवि । यमगाथां गायमानो यमसूक्तमनुस्मरन् ॥' माधवीये
'स्त्रीणां तु पतितो गर्भः सद्यो जातो मृतोऽथ वा । अजातदन्तो मासैर्वा मृतः
वैहः । वस्त्राद्यैर्भूषितं कृत्वा निःक्षिपेत्तं तु काष्ठवत् । खनित्वा शनकैर्भूमौ
विधीयते ॥' अलंकरणमपि वक्ष्यते । कृतचूडस्य तु त्रिवर्षात्प्रागूर्ध्वं वा-
नियतम् । यत्तु वसिष्ठः- 'ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्र-
तत्प्रथमाब्दचूडापरम् । वर्षत्रयादूर्ध्वमकृतचूडस्यापि नियतम् । वर्षत्रयोर्ध्वमु-
च तूष्णीमन्युदकदानम् । 'तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च ।' इति
लौगाक्षिस्मृतैः । पिण्डदानमपि कार्यम् । 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं द-
तानां कुशेषु' इति प्रचेतसोक्तेः । 'उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य' इ-
मोक्तेः । उदकग्रहणमौर्ध्वदेहिकपरमिति हरदत्तः । 'द्वादशाद्वत्सरादव-
मरणे सति । सपिण्डीकरणं न स्यादेकोद्दिष्टानि कारयेत्' ॥ इति हरदत्तधृ-
क्तेश्च । मरीचिरपि- 'प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्भर्ममन्त्रविवाजितम् ।' इति । ए-
तपरमिति विज्ञानेश्वरः । अत्र चूडैव पूर्वावधिः । पूर्ववाक्ये तु तद्-
उदकग्रहणस्योपलक्षणत्वाद्वाहः पूर्वावधिरिति केचित् । द्वादशाद्वत्सरादित-
द्विजानूदशूद्रविषयम् । त्र्यहाशौचे पिण्डदानविधिमाह पारस्करः- 'प्रथमे दि-
स्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रींस्तु

विपात्तितः ॥ एकादशं द्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिं विना ॥' तथा—'यत्र प्रमीयते बालः प्रायः प्रदीयते । किञ्चित्समानवयसां संस्कृत्यान्नं यथाविधि ॥ भक्ष्यं भोज्यं च दातुं तथा च सुखभक्षिका । तद्वस्त्राणि प्रदेयानि सोपानत्कानि तत्समे ॥ कुमारानां च बालाणां भोजनं वस्त्रवेष्टनम् । यच्चोपजीवते बालस्तत्तद्विप्राय दीयते ॥' तथा—'भूमिनिक्षेपे बाले आवर्षद्वयमाशिखम् । ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो यथाविधि ॥' अचूडेप्यूष्वं ननिवृत्त्यर्थमावर्षद्वयमिति । प्रागापि कृतचूडस्य तन्निवृत्त्यर्थमाशिखमिति । तथा 'कर्मणि संजाते विपात्तिस्तु यदा भवेत् । सूतकान्ते प्रकर्तव्यं वृषस्योत्सर्जनं तथा ॥ दाहः प्रकर्तव्य उदकं तत्र निश्चितम् । श्राद्धानि शोडशापि स्युः सपिण्डीकरणं विना इदं पञ्चवर्षोत्तरम् । 'जन्मतः पञ्चवर्षाणि भुङ्क्ते दत्तमसंस्कृतम् । पञ्चवर्षाधिके बाले स्तिर्यदि जायते ॥ वृषोत्सर्गादिकं कर्म कर्तव्यमुदकं ततः । अहन्यहनि संप्राप्ते कुशलांशुः श्राद्धानि षोडश ॥ पायसेन गुडेनैव पिण्डं दद्याद्यथाक्रमम् । उदकुम्भप्रदानं च पितृभ्यो नानि यानि च ॥ दीपदानानि यत्किञ्चित्पञ्चवर्षाधिके सदा । कर्तव्यं तु खगश्रेष्ठैर्वाक् प्रेततृप्तये ॥ स्वाहाकारेणैव कार्याण्येकोद्दिष्टानि षोडश । ऋजुदमैस्तिलैः प्राचीनावीतिना तथा ॥' इति तत्रैवोक्तेः । अत्र मूलं चिन्त्यम् । वार्षिकादि तु न त्वेव । सपिण्डनाभावे पितृत्वायोगाद्वचनाभावाच्च ॥

दिवोदासीये—'अप्रते निधनं प्राप्ते विप्रादौ शूद्रजातिवत् । क्रियाः सर्वाः समुपपिण्डीकरणं विना ॥ उदकं पिण्डदानं च कृतचूडे विधीयते' ॥ इति । स्त्रीणां हात्पागुदकपिण्डदानविकल्पः । 'स्त्रीणां चैके प्रत्तानाम्' इति गौतमोक्तेः । 'द्राश्च सधर्माणः' इति वचनात् शूद्रेष्वेवम् । एतद्वयोनिमित्ताशौचं सर्ववर्णसमम् । वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च ।' इति व्याघ्रपादोक्तेः । यानि तु—'निर्वृत्तविप्रे त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ।' इति । 'निर्वृत्ते क्षत्रिये षड्भिर्वैश्ये नवभिरुच्यते । त्रिवर्षे न्यूने तु मते शुद्धिस्तु पञ्चभिः ॥ अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते । वर्षान्तमतीते तु शूद्रे मासमशौचकम्' ॥ इत्यङ्गिरसादीनि, तानि विशिष्टविगानां व्यानीति विज्ञानेश्वरमदनपारिजातादयः । तेनैतद्वशाच्छूद्राणां व्यवस्था प्रतीयते हेयैव । 'तुल्ये वयसि सर्वेषाम्' इति दाक्षिणात्यपरम् । अन्यदेशे कौर्मोक्ता स्थेति शुद्धितत्त्वे ॥

अथ जात्याशौचम् । तच्च द्विजपुंसामुपनयनोर्ध्वं प्रवर्तते । 'त्रिरात्रमाव्रतादेशः

रात्रमतः परम् । क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु ॥ त्रिशः

चपरत्वे 'दशरात्रमतः परम्' इत्यनेन पौनरुक्त्यापत्तेरिति शुद्धिविवेकादयस्तत्र स्मृतिभेदात्रिरात्रं दशरात्रं वेति विकल्पायोगाच्च । यस्तु पुत्राणां वेदानध्याप्य वृत्तिं विदधाति तत्राहाश्वलायनः—'द्वादशरात्रं महागुरुषु दानाध्ययने वर्जयेन्' इति ॥ अत्र यावदुक्तनिषेधो वास्पृश्यत्वमात्रं वा न तु कर्मानधिकारः । एकादशाहान्ते वैश्वदेवोक्तेः ॥ 'एकादशाहिकं मुक्त्वा तत्र ह्यंते विधीयते ।' इति । शुद्धितत्त्वे तु—'त्रयः पुरुषस्यातिगुरवो भवन्ति माता पिताचार्यश्च' इति विष्णूक्तेः पित्रादयो महागुरवः । भर्ताप्युक्तो रामायणे—'पतिर्वन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च ।' शातातपः—'पतिरेको गुरुस्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ।' एकपदमूढानां पितृमातृनिषेधार्थम् । सोदकानां त्रिरात्रम् । 'त्र्यहानूदकदायिनः' इति मनूक्तेः । अग्निपुराणे—'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते । समानोदकभावस्तु निवर्तते चतुर्दशे ॥ जन्मनामस्मृतेर्वैके तत्पणोत्रमुच्यते ॥' बृहस्पतिः—'दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके । त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः ॥'

स्त्रीशूद्रयोस्तु विवाहोर्ध्वं जात्याशौचम् । 'वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकस्मृतः ॥' इत्युक्तेः । 'दत्तानां भर्तुरेव हि ।' 'स्वजात्युक्तमशौचं स्यान्मृतके जातके तथा । इति माधवीये ब्राह्मण्ये । शूद्रस्य विवाहाभावेपि षोडशवर्षोर्ध्वं मासः । 'अनूढभार्यशूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् । मृत्युं समधिगच्छेच्चन्मासात्तस्यापि बान्धवाः । शुद्धिं समधिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥' इत्यपराके शंखोक्तेः । निर्णयामृतमदनपारिजातादौ त्वन्यथोक्तम् । हारीतः—'आमौञ्जीबन्धनाद्विप्रः क्षत्रियश्च धनुर्ग्रहात् आप्रेतोदग्रहाद्वैश्यः शूद्रो वस्त्रद्वयग्रहात् ॥' धनुःप्रतोदावष्टमेन्दे द्वादशे वस्त्रद्वयमिति मेधातिथिस्तु—'त्रिरात्रमाव्रतादेशात्' इत्यत्र व्रतं कालोपलक्षणार्थम् । स च कालः स्वकीयः सर्वेषां चाष्टमवर्षरूपः । तेन चतुर्णामपि वर्णानामुपनयनाभावेप्यष्टमादूर्ध्वं पूर्णमेवाशौचम् । तत्रापि 'प्रागष्टमाच्छिशवः प्रोक्ताः' इति स्मृत्यन्तरादूर्ध्वं संपूर्णमवर्णं त्रिरात्रम् । येषि 'आषोडशाद्भेद्बालः' इत्याहुः । तेषामप्यष्टमादूर्ध्वं शूद्रे मास एव 'ऊर्ध्वमष्टभ्यो वर्षेभ्यः शुद्धिः शूद्रस्य मासिकी ।' इति वचनादित्याह । हारलताशुद्धितत्त्वादिगौडग्रन्थेष्वप्युक्तम् । 'अनुपनीतो विप्रः' इत्युक्त्वा—'अन्यते यत्र तत्र स्यादाशौचं त्र्यहमेव हि । द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणां तु षडाब्दिकः ॥' इत्यादिपुराणोक्तेरुपनयनं कालोपलक्षणम् । षडब्दपदं मासत्रयाधिकपरम् । 'गर्भाष्टमेष्टमे वाब्दे इत्युक्तेः । यत्तु जाबालः—व्रतचूडा द्विजानां च प्रतीतिषु यथाक्रमम् । दशाहव्यह

एकोहैः शुद्धयन्त्यापि हि निर्गुणाः ॥' इति । द्विजा दन्ताः । इदं प्रतीतिष्वित्युक्तेः ।
ब्देपनीतपरमिति । तदेतन्नान्द्रियन्ते वृद्धाः ॥

यानि तुःपराशरः—'एकाहाद्वाहणः शुध्येद्येभिर्वेदसमन्वितः । त्र्यहात्केवलं
द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥' केवलवेदः केवलश्रौताग्रेष्युपलक्षणम् । अयं संकोचो होम
यनपर एव । न तु संध्यादाविति हारलतायाम् । अङ्गिराः—'सर्वे
वर्णानां सूतके मृतके तथा । दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोब्रवीत् ॥' देव
आशौचं दशरात्रं तु सर्वेषामपरे विदुः । निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्मणः क्षयम्
अत्यन्तोत्कृष्टस्य कर्महानौ पीडावतो विप्रपरिचर्यापरम् । शूद्रे दशरात्रमिति हा
तायाम् । दक्षः—'सद्यःशौचं तथैकाहस्यहश्चतुरहस्तथा । षट्दशद्वादशाहश्च
मासस्तथैव च । मरणान्तं तथा चान्यदशपक्षास्तु सूतके ॥' मिताक्षरायां स्
न्तरे—'चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षणिशाः पुंसि पञ्चमे । षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे त
तु ॥' इत्यादीनि तान्यापदनापदुणवदगुणवद्विषयाणि देशान्तरभेदाद्वा ज्ञेयानि ।
शौचादिषडहान्ताः पक्षा यायावरादिपराः । अत्र मरणान्तं जननादिनिमित्ताद्भि
'अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याच्चरेन्न तु ।' इत्युक्तत्वान्मधुपर्कपश्चात्तन्मभवत्
विगानान्नादर्थव्यमिति विज्ञानेश्वरः । 'अस्नात्वा चाप्यहुत्वा च अदत्त्वाश्च
द्विजः । एवंविधस्य विप्रस्य सर्वदा सूतकं भवेत् ॥' इति दक्षोक्त्या 'अन्यपूर्वा
गेहे भार्या स्यात्तस्य नित्यशः । आशौचं सर्वकार्येषु देहे भवति सर्वदा ॥' इति ब्र
ह्मशास्त्रवस्थेत्यपराकर्मदनपारिजातादयः ॥

माधवस्तु—'वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमद्यसंकोचनं तथा ।' इति कलिवज्येषूक्ते
'दशाह एव विप्रस्य सपिण्डे मरणे सति । कल्पान्तराणि कुर्वाणः कलौ भवति
त्विषी' ॥ इति हारीतोक्तेश्च न्यूनाशौचपक्षा युगान्तरविषया । मरणान्तादिप
निन्दार्थवादः । अन्यथा—'नामधारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् ।' इति
स्यादित्याह । यन्तु देवलः—'दशाहादित्रिभागेन कृते संचयने क्रमात् । अङ्गस
मिच्छन्ति वर्णानां तत्त्वदर्शिनः' ॥ इति पूर्णाशौचे स्पृश्यतामाह । यच्चानुपनी
क्रान्ताशौचे त्रिरात्रादौ तेनैवोक्तम् । 'स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभाग
इति । तदपि युगान्तरेण अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च ॥' इति माधवीये ।

१—अत्रिपराशरयोस्तु 'दिनत्रयात्' इत्येव पाठो दृश्यते । २—इदं च 'कलौ पाराशराः

इति कलिमहिष्यैव प्रवृत्तायाः पराशरस्मतेर्युगान्तरपरत्वं वदन्तस्तु स्त्रीयप्रतिभाभारकान्

तन्निषेधात् । यत्तु हारलतायाम्-‘चतुर्थेहनि कर्तव्यः संस्पर्शो ब्राह्मणेन तु’ । इति प्रचेतसोक्तैर्यहंकाशाशौचेऽपि चतुर्थाह एवाङ्गस्पर्श इति तन्न । देवलादिवशेनास्य दशाहगोचरत्वात् । ये तु वर्णसंकरजा मूर्धावसिक्ताद्यास्तेषामाशौचे विशेषः कलौ नोप-
युक्त इति नोच्यते । प्रतिलोमजानां नाशौचम् । मलापकर्षणार्थं तु स्नानमात्रमिति विज्ञानेश्वरः । माधवस्तु-‘शौचाशौचे प्रकुर्वीरन् शूद्रवर्णस्य संकराः ।’ इति ब्राह्मो-
क्तेः शूद्रवदाह । हारलतायामप्येवम् ॥

दत्तक्रीतकृत्रिमादिपुत्रेषु अहीनवर्णमासु स्त्रीषु च सपिण्डत्वेऽपि प्रसवे मरणे च पूर्वा-
परपित्रोर्भर्तुश्च त्रिरात्रमेव न दशाहादि । ‘अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च । पर-
पूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च ॥’ इति त्रिरात्रानुवृत्तौ विष्णूक्तेः । सपिण्डानां
त्वेकाहः । ‘परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च । भर्तृपित्रोस्त्रिरात्रं स्यादेकाहस्तु सपि-
ण्डतः’ ॥ इति माधवीये हारीतोक्तेः । ‘सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः ।
एकाहस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः ॥’ इति मरीच्युक्तेश्च । शंखः-‘अनौ-
रसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च । परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥’ परपूर्वा
पुनर्भूः । इदं सवर्णासु । हीनवर्णासु तु शंखलिखितौ-‘परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु
कृतकेषु च । नानध्यायो भवेत्तस्य नाशौचं नोदकाक्रिया ॥’ ब्राह्मेऽपि-‘आशौचं तु त्रिरात्रं
स्यात्समवर्णेषु निश्चितम् ॥’ यत्तु षडशीतौ-‘अन्यपूर्वावरुद्धासु त्रिदिनाच्छुद्धिरिष्यते ।
तास्वेवानन्यपूर्वासु पश्चाद्भोभिर्विशुद्ध्यति ॥’ तत्र पश्चाद्दे मूलं चिन्त्यम् । यत्तु याज्ञ-
वल्क्यः-‘अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।’ इत्येकाहमाह तदसंनिधौ ज्ञेयम् ।
यदा पितुरेकाहस्तदा सपिण्डानां स्नानम् । ‘अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु
च । गोत्रिणः स्नानशुद्धाः स्युस्त्रिरात्रेणैव तत्पिता ॥’ इति प्रजापत्युक्तेः । पितेति
बोद्धुरुपलक्षणम् । तथोपक्रमात् । यत्तु दत्तके पालकप्रतियोगिकपुत्रत्वात्पूर्वपितुर्न त्रिरा-
त्रम् । पूर्वसंबन्धनिवृत्तेश्च न दशाहादीति कश्चित्तन्न ॥ जनकेऽपि-‘वैजिकादभिसंबन्धा-
दनुरुध्याद्वं त्र्यहम् ।’ इति वाचनिकाशौचस्यानिर्वार्यत्वात् ॥

पितृमरणेऽपि दत्तकादीनां त्रिरात्रम् । शुद्धितत्त्वे ब्राह्मे-‘दत्तकश्च स्वयं दत्तः
कृत्रिमः क्रीत एव च ।’ इत्युपक्रम्य-‘सूतके मृतके चैव त्र्यहशौचस्य भागिनः ।
इत्युक्तेः । स्मृतिकौमुद्यां हारलतायामप्येवम् । दत्तकस्य पुत्रपौत्राणां जनने मरणे
वा सपिण्डानामेकाहः । वीजिनश्चेति गौतमेन साप्तपौरुषसापिण्डयोक्तेः । सपिण्डानां

ऊढकन्यानां तु विष्णुराह—‘संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे, तत्प्रसवमरणे चेत पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं त्रिरात्रं च’ इति । प्रसवे एकरात्रं मरणे त्रिरात्रमिति विज्ञानेश्वरापराकौ । माधवस्तु—प्रसवेपि त्रिरात्रं पेत्रोः, एकरात्रं भ्रात्रादिवन्धुवर्गस्य । ‘दत्ता नारी पितुर्गृहे सूयेताथ त्रियेत वा । तद्वन्धुवर्गस्त्वेकेन शुचिस्तज्जनकस्त्रिभिः ॥’ इति ब्राह्मोक्तेरित्याह । यत्तु कश्चिदाह—पक्षदेन भ्रातरो गृह्यन्ते । वाक्यान्तरेण भगिनीमृतौ त्रिरात्रोक्तेरिति तच्चिन्त्यम् । तदभावे तद्विरोधाच्च । भ्रातुः प्रसवे एकाहः । मृतौ त्रिरात्रमिति केचित् । युक्ता तु पक्षिणी । परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत् ।’ इति ब्राह्मात् । भ्रातृभिन्नानामेकाहः । गर्गोक्तेः । ‘इतरेषां तु यथाविधि’ इति वक्ष्यमाणवचनाच्च । यत्तु प्रधानगृहे मृतौ पित्रोः पूर्णं भ्रातृस्त्र्यह इति केचित् स निर्मूलत्वात् ‘नाशौचं पितृपक्षे’ इत्येतद्विरोधाच्च भ्रान्तः ॥ दत्ता नारी पितुर्गृहे प्रधाने सूयते यदा । त्रियते वा सदा तस्याः पिता शुद्धये त्रिभिर्दैनैः ॥ इति कल्पतरौ शुद्धितत्त्वे च । पतिगृहे प्रसवे तु पित्रादीनामाशौचं नास्ति । मृतौ पित्रोस्त्रिरात्रमस्त्येव । ‘प्रत्ताप्रत्तासु योषित्सु संस्कृतासंस्कृतासु च । मातापित्रोस्त्रिरात्रं स्यादितरेषां यथाविधि ॥ अजातदन्तासु पित्रोरेकरात्रम्’ इति माधवीये शंखकाष्णाजिनिस्मृतेः । ‘वैजिकादभिसंबन्धात्’ इत्युक्तेश्च स्मृत्यर्थसारेण्येवम् ॥

माधवस्तु इदं त्रिरात्रं जातदन्तपरम् । दन्तोत्पत्तेः प्रागेकरात्रं पित्रोः । ‘सद्यस्त्वप्रौढकन्यायां प्रौढायां वासराच्छुचिः । प्रदत्तायां त्रिरात्रेण दत्तायां पक्षिणी भवेत्’ इति पुलस्त्योक्तेः । अन्यत्र कन्यामृतौ पित्रोः पक्षिणीत्याह । षडशीतावपि—पितृगृहेहादतोऽन्यत्र यदि पुत्री प्रमीयते । पक्षिणी तत्र पित्रोः स्यान्नान्येषामिति निश्चयः ॥ इति आमन्तरे इयमिति स्मृत्यर्थसारे । भ्रातृस्तु पक्षिणी । ‘श्वशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले । पित्रोः स्वसारि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम् ॥’ इति वृद्धवृहस्पतिस्मृतेः शुद्धितत्त्वे कौर्मै—‘आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम् । आप्रदानात् त्रिरात्रं स्यादशरात्रमतः परम् ॥’ पित्रोर्मृतौ पित्रोर्मृतौ स्त्रीणां त्रिरात्रम् । ‘पित्रोरुपरमे स्त्रीणामृदानां तु कथं भवेत् । त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् यमः ॥’ इति माधवीये वृद्धमनूक्तेः । इदं दशाहान्तः । ऊर्ध्वं तु पक्षिणी । भ्रातृभगिनीगृहे, तस्या वा तद्गृहे मृतौ त्रिरात्रम् । अन्यत्र तु पक्षिणीति षडशीतावुक्तम् । ब्राह्मोपि—‘परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत् । मातुलाशौचवत्पुत्र्याः पितृव्याशौचमिष्यते ॥’ इति । शिष्टा-

विरतौ मातुले मातुलान्यां चाथो सज्योतिरेव स्वविषयनृपतौ ग्रामनाथे च नष्टे । शिष्यो
पाध्यायबन्धुत्रयगुरुतनयाचार्यभार्यासगोत्रानूचानश्रोत्रियेषु स्वगृहपरमृतौ मातुले चैकरात्र
त्रमृरात्रिं सत्रहचारिण्यथ तु कथमपि स्वल्पसंबन्धयुक्ते स्नानं वासोयुतं स्यादिदमा

सकलं सर्ववर्णेषु तुल्यम् ॥' इति । अत्र मूलं मिताक्षरादौ स्पष्टम्
दौहित्रभागिनेययोः । दौहित्रभागिनेययोरुपनीतयोस्त्रिरात्रम् । अनुपनीतयोः पक्षिणी । 'सं

स्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीमुते । संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थि
तः ॥' इति वृद्धमनूक्तेः । संस्कृते दाहेन । तेन दाहे त्रिरात्रं नान्यथेति गौडास्तत्र
विशेषवैयर्थ्यात् । मातुलादौ सन्निधिविदेशाभ्यां पक्षिण्येकाहयोर्व्यवस्था । मनुः-“त्रिरा
त्रमादुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति । तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥

श्रोत्रिये स्वगृहे मृते त्रिरात्रम् । 'श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
वेत् ।' इति स्मृतेरिति माधवः । एकग्रामीणे त्वेकाहः । ऋत्विज्ये

चहृल्पकालश्रौतस्मार्तयाजनपरे त्रिरात्रैकरात्रे ज्ञेये । यद्यपि कर्म कुर्वत एष वाचक

शब्दो भवतीति शम्बराचार्यैः कर्ममध्ये ऋत्विक्कमुक्तं तथा
कर्मण्याशौचनिषेधात्तदुत्तरमेवैतज्ज्ञेयम् । गौडास्तु-‘एकोदकानां

त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा ॥' इति
जाबालोक्तेर्मातृबन्धुष्वेकाहमाहुः । शिष्ये स्वोपनीते त्र्यहः । 'शिष्यसतीर्थ्यब्रह्मचारि

क्रमेण त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहः ।' इति माधवीये बौधायनोक्तेः । अन्यत्र
मनुः-‘मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यस्त्रिग्वान्धवेषु च ।' इति । बन्धुत्रयम्-आत्मपितृ

ष्वसमातृष्वसमातुलपुत्राः पितुः पितृष्वसमातृष्वसमातुलपुत्राः ॥ मातुः पितृष्वसमातृष्व
समातुलपुत्राश्चेति विज्ञानेश्वरः । अत्र पक्षिणी । 'पितृष्वसमातृष्व

कन्यानामूढानां त्वेकाहः । तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन' इति पूर्वोक्तब्राह्मात्
यत्तु षडशीत्याम्-‘एवं पित्रोर्भगिन्यौ ये ये पितामहयोस्तथा । ये मातामहयोश्चै

भगिन्यौ तत्प्रजाश्च याः ॥ मातुलाः स्वस्य पित्रोश्च पत्न्यश्चैषां प्रजाश्च याः ॥ भ्रातर
श्चेति सर्वेषु पक्षिणी स्वगृहे त्र्यहम् ॥ एवं श्वशुरजामातृदौहित्रविपदि स्मृतम् ॥' यच्च यमः-

‘जामातरि मृते शुद्धिस्त्रिरात्रेणोभयोः स्मृता । पक्षिणी शालकानां स्यादिति शातातपे
ब्रवीत् ॥' इति । निर्मूलत्वान्मिताक्षरादिविरोधाच्चोपेक्ष्यम् ॥

मदनपारिजाते विष्णुः-‘असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते एकरात्रम् ।' अत्र हरदत्तः-
‘अन्तःश्वे च' इत्यादि

स्वगृहे संस्थितेषु च ।' इति कौर्म व्याख्यातम् । शुद्धितत्त्वे बृहन्मनुः—'श्रुतिताश्चान्त्या मृताश्चेद् द्विजमन्दिरे । शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यत् दशरात्राच्छुनि मृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः । द्वाभ्यां तु पतिते गेहमन्त्ये मासचतुष्टयं अत्यन्ते वर्जयेद्देहमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥' अन्त्यो म्लेच्छः अत्यन्तः श्वपावाचस्पतिः । तत्रैव यमः—'द्विजस्य मरणे वेश्म विशुद्धयति दिनत्रयात् ॥' सं 'गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तःस्थशवदूषिते । प्रोत्सृज्य मृन्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव गोमयेनोपलिप्याथ छागेन घ्रापयेदबुधः । ब्राह्मणैर्मन्त्रपूतैश्च हिरण्यकुशवारा सर्वमभ्युक्षयेद्देशम् ततः शुध्यत्यसंशयम् ॥' बृहद्विष्णुः—'ग्राममध्यगतो यास्तिष्ठति कस्यचित् । ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामियात् ॥' गृहे मृतेप्येवम् ॥

यत्तु माधवीये प्रचेतसा मातृष्वस्त्रादिषु त्रिरात्रमुक्तम्—'मातृष्वसामश्वश्रूश्वशुरयोर्गुरोः । मृते चर्त्विजि याज्ये च त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥' इति । गुरुरऋत्विक् कुलागतः । तत्स्वगृहमृतौ ज्ञेयम् । श्वशुरयोरन्यत्र मृतावपि संनिधौ त्रम् । असंनिधौ पक्षिणी । देशान्तर एकरात्रम् । वक्ष्यमाणविष्णूक्तेरिति वगौडादयः । अन्यत्र तु मातृष्वस्त्रादिषु पक्षिणी । 'पित्रोः स्वसारि तद्वच्च क्षपयेन्निशाम् ।' इति बृद्धमनूक्तेः । यत्तु बृद्धमनुः—'भगिन्यां संस्कृतायां र्यपि च संस्कृते । मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते ॥ शालके तत् सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥' इति । तद्भ्रातृदौहित्रादौ देशान्तरे, शालकसुतस्वदेशे ज्ञेयम् । शालके तु स्वदेशे एकाहः । आचार्यपत्नीपुत्रोपाध्यायमातुल्यश्वशुर्यसहाध्यायिशिष्येष्वेकरात्रम्' इति माधवीये विष्णूक्तेः । हरदत्तीश्लोक्यामप्येवम् । श्वशुर्यः शालकः । देशान्तरे स्नानम् । श्वशुरयोर्देशान्तरे जाबालः—'एकोदकानां तु ज्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । सर्वत्र मूल्याभावो कर्तुर्दशाहतः । गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरेत् ॥ प्रेताहारैः समं तत्रात्रेण शुद्ध्यति ॥' इति मनूक्तेः । शिष्य इत्युपलक्षणम् । 'निरन्वये सपि सति दयान्वितः । तदशौचं पुरा चीत्वा कुर्यात्तु पितृवत्क्रियाम् ॥' इति ब्राह्मोक्तेः । दिवोदासीये—'सगोत्रो वाऽसगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे न कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्ध्येच्च दशमेहनि ॥' यत्रैकविषये पक्षिण्येकाहादिपक्षद्वयमुक्तं, धिविवेदेशमैत्र्यादिकृता व्यवस्था ॥

युद्धे मृतस्य ।

स्तथाशौचमिति स्थितिः ॥' इति मनूक्तेः । यज्ञोन्त्यका
तदैवेत्यर्थः । यस्तु भारते राजधर्मेषु-‘अशोच्यो हि
स्वर्गलोके महीयते । न ह्यन्नमुदकं तस्य न स्नानं नाप्यशौचकम् ॥’ इति
निषेधः स पुत्राद्यभावपरः । अत एव तत्र कर्णादीनां श्राद्धमुक्तम् । अन्ये तु
निषेधमाहुयतिवत् । यत्तु पराशरः-‘आवहेपि हतानां च एकरात्रमशौचकम्
तद्युद्धक्षतेन कालान्तरमृतेर्ज्ञेयम् । ‘असन्निधौ स्नानम्’ इति । माधवः । शु
अग्निपुराणे-‘दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि हता म्लेच्छैश्च तस्करैः । ये स्वाम्यर्थे ह
राजन्स्वर्गं न संशयः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशेषतः ॥’ यत्तु बृह
‘डिम्बाहवे विद्युता च राज्ञां गोविप्रपालने । सद्यः शौचं मृतस्याहुस्यहं चान्ये
तच्छस्त्रं विना पराङ्मुखहते च त्रिरात्रम् । राज्ञा वध्ये हते सद्यः शौचमन्यत्र
तथैव व्याघ्रः-‘क्षतेन म्रियते यस्तु तस्याशौचं भवेद्द्विधा । आसप्ताहात्रिरा
रात्रमतः परम् ॥ शस्त्राघाते त्र्यहादूर्ध्वं यदि कश्चित्प्रमीयते आशौचं प्राकृतं
वर्णेषु नित्यशः ॥’ शस्त्राघाते क्षतं विना शवस्पर्शे तु हारीतः-‘शवस्पृश
श्रविशेयुरानक्षत्रदर्शनात्-रात्रौ चेदादित्यस्य ॥’ यत्तु मनुः-‘अद्वा चैकेन रात्र्या
त्रैरेव च त्रिभिः । शवस्पृशो विशुद्ध्यति त्र्यहातूदकदायिनः ।’ इति । अद्वा रात्र्या
रात्रमित्युक्तम् । त्रिभिस्त्रिरात्रैरिति नवरात्रमेवं दशरात्रमित्यर्थः । तत्तदन्नाशने
सेनापदि च ज्ञेयम् । अङ्गिराः-‘आशौचं यस्य संसर्गादापतेद्ब्रह्मेधिनः । वि
न लुप्यन्ते गृह्याणां च न तद्भवेत् ॥

अथ निर्हराद्याशौचम् । स्नेहेन सवर्णनिर्हारे तदन्नाशने तद्ब्रह्मासे च
तदन्नाशने तद्ब्रह्मासे त्र्यहः । गृहावासे चाभक्षणे चैकाहः । भृतिग्रहणेन
च तज्जात्याशौचम् । ‘यदि निर्हरति प्रेतं प्रलोभाक्रान्तमानसः
निर्हराद्याशौचानिर्णयः ।
हेन द्विजः शुद्धयेद्वादशाहेन भूमिपः ॥ मासार्धेन तु वैश्य
मासेन शुद्ध्यति ॥’ इति कौर्मोक्तेः । विजातीयनिर्हारे तु शवजातीयमाशौचं
भृतिग्रहे द्विगुणम् । ‘अवरश्चेद्वरं वर्णं वरो वाप्यवरं यदि । वहेच्छवं तदाशौचं
द्विगुणं भवेत् ॥’ इति व्याघ्रोक्तेः । कौर्ममेतदिति गौडाः । दाहेप्येवम्
ब्राह्मे-‘योसवर्णं तु मूल्येन नीत्वा चैव दहेन्नरः । आशौचं तु भवेत्तस्य प्रेत
नृप ॥’ इति । तदापदि ज्ञेयम् । सोदकनिर्हारे तु दशाह इति माधवः ।
तु शंखः-‘कृच्छ्रपादोसपिण्डस्य प्रेतालंकरणे कृते । अज्ञानादुपवासः स्यादश
मिष्यते ॥’ धर्मार्थमनाथसवर्णहरणे क्रियाकरणे च द्विजस्यानन्तयज्ञफलम्

गौतममिताक्षरायां वृद्धात्रिः—‘सूतकाद्विगुणं शवं शवाद्विगुणमार्तवम् ।
 आर्तवाद्द्विगुणा सृतिस्ततोपि शवदाहकः ॥’ अत्र पूर्वणोत्तरनिवृत्तिरित्यर्थः । विष्णुः
 ‘मृतं द्विजं न शूद्रेण हारयेन्न शूद्रं द्विजेन ॥’ देवलः—‘ब्रह्मचारी न कुर्व
 शववाहादिकक्रियाम् । यदि कुर्याच्चैरेत्कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च ॥’ याज्ञवल्क्यः
 ‘आचार्यपितृपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती ।’ अनुमनने तु सपिण्डे न दोषः
 ‘विहतं हि सपिण्डानां भेतनिर्हरणादिकम् । तेषां करोति यः कश्चित्तस्याधि
 न विद्यते ॥’ इति देवलोक्तेः । ‘दोषः स्यात्त्वत्तपिण्डस्य तत्रानायाक्रियां वि
 इति हारीतोक्तेश्च । समोत्कृष्टवर्णे तु माधवीये कण्वः—‘अनुगम्य शवं वृ
 स्नात्वा स्पृष्ट्वा हुताशनम् । सर्पिः प्राश्य पुनः स्नात्वा प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥’ इ
 ‘हीनवर्णे तु क्षत्रियेऽहः, वैश्ये पक्षिणी, शूद्रे त्रिरात्रम् क्षत्रियस्य वैश्येऽहः, शूद्रे पक्षि
 वैश्यस्य शूद्रेहः ।’ इति विज्ञानेश्वरः । माधवस्तु—‘विप्रस्य वैश्ये द्व्यहः, क्ष
 शूद्रेष्वेवम् । अन्यत् प्राग्वत् स्नानाग्निस्पर्शवृताशनानि सर्वत्रेत्याह । हीनवर्णस्य दाहो
 हिककरणे तु ब्राह्मे—‘ब्राह्मणो हीनवर्णस्य न कुर्यादौर्ध्वदेहिकम् । कामाहोम
 मोहात्कृत्वा तज्ज्ञातितां व्रजेत् ॥’ मनुः—‘वात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म
 अभीचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥’ परेषां सर्ववर्णानां हीनेषु तद्द्वैगु
 गुण्यचातुर्गुण्यादूह्यम् ॥

अथ रोदने समोत्तमवर्णयोः संचयनात्पूर्वं सचैलस्नानमूर्ध्वमाचमनम् । हीन
 तु संचयात्प्राक् सचैलमूर्ध्वं स्नानमात्रम् ॥ विप्रस्य क्षत्रवैश्यविष
 रोदने निर्णयः । ब्राह्मे—‘अस्थिसंचयने विप्रो रौति चेत्क्षत्रवैश्ययोः । तदा
 सचैलस्तु द्वितीयेहनि शुद्ध्यति । कृते तु संचये विप्रः स्नानेनैव शुचिर्भवेत् ।’
 वैश्येष्वेवम् । शूद्रे तु संचयात्प्राक् विप्रस्य त्रिरात्रम् । क्षत्रवैश्ययोर्द्विरात्रम् । ऊ
 द्विजानामेकाहः । शूद्रस्य शूद्रे स्पर्शं विना संचयात्पूर्वमेकाहः । ऊर्ध्वं सज्यो
 माधवीये ज्ञेयम् । शुद्धितत्त्वे पारस्करस्तु—‘अस्थिसंचयनादूर्ध्वं मासं यावत्
 तयः । दिवसेनैव शुद्ध्यन्ति वाससां क्षालनेन च ॥ सजातोर्दिवसेनैव त्र्यहात्क्ष
 श्ययोः ।’ इत्युक्तम् । सपिण्डानां रोदननिर्हारादावदोष इत्युक्तं प्राक् । विज्ञ
 रस्तु—‘मृतस्य बान्धवैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनम् । वर्जयेत्तदहोरात्रं दानश्राद्ध
 च ॥’ इति पारस्करोक्तेः । सर्वत्रैकरात्रमाह ॥

अथाशौचान्नभक्षणे विष्णुः—‘ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्रादि

हपञ्चाहसप्ताहोपवासाः । दश विंशतिः षष्टिः शतं च प्राणायामाः । पञ्चगव्या
अभ्यासे द्विगुणम् । आपदि तु प्राणायामशतं पञ्चशतमष्टशतमष्टसहस्रं गायत्री
प्रत्यापादि तु सवर्णाशौचे त्रिरघमर्षणं गायत्र्यष्टसहस्रं च । क्षत्रियाशौचे उपवा
वैश्याशौचे त्रिरात्रोपवासश्च । शूद्राशौचे कृच्छ्रः । क्षत्रवैश्ययोः पञ्चशतमष्टशतं
जपः । उत्तमेषु शूद्रस्य सर्वत्र स्नानम् । मत्यानापदि विप्रस्य वर्णेषु सातपन
हासातपनचान्द्राणि । अभ्यासे तु मासिकद्वैमासिकत्रैमासिकषाण्मासिकानि
माधवीयादौ ज्ञेयम् ॥

अथ दासस्य स्वदास्युत्पन्नस्य सपिण्डमृतौ स्नानमात्रेण स्वामिकार्यं स्पृश
भक्तदासस्य त्र्यहोर्ध्वम् । 'सद्यःस्पृश्यो गर्भदासो भक्तदासस्य हाच्छुचिः' इति
न्तरोक्तेः । 'मूल्यकर्मकराः शूद्रदासीदासास्तथैव च । स्नाने शरीरसंस्कारे गृह
दूषिताः' इति शातातपोक्तेश्च । एतच्चानन्यसाध्ये तत्कार्यमात्रे । अन्यत्र मास
चमस्त्येव । एवं दास्यामपि । सूतिकायास्तस्या अस्पृश्यत्वमपि मासमात्रम् ।
दासश्च सर्वो वै यस्य वर्णस्य यो भवेत् । तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्या मासस्तु सूत
इत्यङ्गिरसोक्तेः । वडशीतावपि—'स्वामिशौचेन दासाद्याः स्पृश्या मासात्तु
योग्यास्युर्मासतो दासी सूती चेत्स्पृश्यतामियात् ॥' दत्तदासादीनां स्वसपिण्डम
स्वाम्याशौचसमसंख्यदिनोर्ध्वं सत्यपि मासाद्याशौचे स्वामिकार्यं स्पृश्यतेति हर
'दासान्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः । स्वामितुल्येन शौचेन शुद्ध्यन्ति
तके' ॥ इति बृहस्पतिस्मृतेः । दासश्चात्र—'गृहजातस्तथा क्रीतो लुब्धो
पागतः । अन्नकालभृतस्तद्वदाहितः स्वामिना च यः । मोक्षितो मतहश्चर्णाद्यु
पणे जितः । तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृतः ॥ भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव
वाहतः । विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पञ्चदश स्मृताः ॥' इति नारदोक्तेषु
भक्तदासौ विना ज्ञेयाः । वडवा दासी तयाहतस्तामुद्राह्य दासो जात इत्यर्थः ।
वास्यापि तेनैवोक्तः—'स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं वान्धवानामनुज्ञया । आचार्यस्य क
कृत्वा कालं सुनिश्चितम् । आचार्यः शिक्षयेदेनं स्वगृहे दत्तभोजनम् ।' इति ।
स्तुल्यो विद्यार्थी । दासादेः स्वामितत्सपिण्डमरणे तु विष्णुः—'पत्नीनां दासा
नुलोम्येन स्वामितुल्यमाशौचम् । मृते स्वामिन्यात्मीयम् ।' इति प्रतिलोम
नामाशौचाभावः । 'वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः' इति याज्ञवल्क्यो

अथ रात्रौ जनने मरणे वा—रात्रिं त्रिभागां कृत्वाऽऽद्यभागद्वये चेत्पूर्वं दि

साग्निराहिताग्निः । 'आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्निभ्रयेत पुनःसंस्कारं कृत्वा शववदाशौचम्' ।
इति वसिष्ठे विशेषोक्तेः । 'दाहादेव तु कर्तव्यं यस्य वैतानिको विधिः ।' इति ब्रा
ह्मण्यम् । यत्तु-धूर्तस्वामिना रामाण्डारेण चोक्तम्-'आहिताग्नेरपि मरणाद्येव
दशरात्रं दशाहं शावमाशौचम् ।' इति मरणनिमित्तत्वात्तस्य । यत्तु दाहादेव तस्याशौ
चमुक्तं तत्संस्कारनिमित्ताशौचं पृथगेव । तेन गृह्याग्नेः संस्काराङ्गं त्रिरात्रम् । औता
ग्नेस्तु दशरात्रम् । मरणनिमित्तं तूभयोर्दशाहम् । दाहात्प्रागपीति । तद्वचनविरोधात्पूर्व
स्यैवोत्कर्षान्मूलकल्पनालाघवाच्च चिन्त्यम् ॥

अथातिक्रान्ताशौचम् । तत्राशौचमध्ये जननादौ ज्ञाते तच्छेषेण शुद्धिः

अतिक्रान्ताशौच-

निर्णयः ।

'विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्देशम् । यच्छेषं दशरात्रस्
तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥' इति मनूक्तेः । अत्र केचिदेतत्पुत्रातिरिक्तवि

षयम् । तेषां त्वाशौचमध्ये श्रवणेपि तदाद्येव दशाहादि 'पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूर
स्थोपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥' इत्यस्य सर्वापवादत्व
दित्याहुस्तन्न । ज्ञातमरणस्य निमित्तत्वात् । 'अनग्निमत उत्क्रान्तेः' इत्यादिविरोधाच्च
स्मृत्यर्थसारेपि-'जनने मरणे वा प्रथमदिनादूर्ध्वं ज्ञाते पुत्रादीनां शेषेणैव शुद्धिः
इति । षडशीतावपराकै चैवम् । दशाहादूर्ध्वं ज्ञाते तु वृद्धवसिष्ठः-'मासत्र
त्रिरात्रं स्यात्षण्मासे पक्षिणी तथा । अहस्तु नवमादूर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुद्ध्यति' ॥ जन
त्वतिक्रान्ताशौचं नास्त्येव । 'नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्वपि ।' इति देव
लोक्तेः । पितुः स्नानं तत्रापि भवत्येव । 'निर्देशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च
सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥' इति मनूक्तेः । तच्चातिक्रान्ताशौ
दशाहादिजात्याशौचविषयम् । न त्वनुपनीतादिनिमित्तत्रिरात्रादौ । 'उपनीते तु विष
तस्मिन्नेवातिकालजम् ।' इति व्याघ्रोक्तेः । 'निर्देशं ज्ञातिमरणम्' 'अतिक्रान्ते दश
हेतु' इति मनूक्तेश्च । माधवीये देवलस्तु-'आ त्रिपक्षात्रिरात्रं स्यात्षण्मासात्पक्षि
ततः । परमेकाहमावर्षादूर्ध्वं स्नातो विशुद्ध्यति' इत्याह । तत्रापदनापद्विषयत्वेन व्य
स्था । इदं चैकदेशे ॥

१-'मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः । आदाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः
इति शंखलिखितौ । २-मृतम् । ३-स्नात्वोदकदानं च । कार्यम् । 'प्रेते दत्त्वोदकं शुचिः' इ
वचनात् । यत्तु देवलनाम्ना पठ्यते-'आशौचाहे व्यतिक्रान्ते बन्धुश्चेच्छ्रूयते मृतः । तस्य त्रिरात्रमाशौ
पक्षिणी चार्धवत्सरे । ऊर्ध्वं संवत्सरार्थात्तु श्रूयते चेन्मृतः स्वकैः । भवेदेकाहमेवात्र तच्च संन्यासि

शौचे एव पूर्वशेषेण शुद्धिः । त्र्यहाद्यल्पाशौचसंपाते तूत्तरेणैव शुद्धिः
हरदत्तोप्येवमाह । गौडा अप्येवम् । तन्न । याज्ञवल्क्यादिवशेन
तुल्यकालशौचोपलक्षणत्वात् । 'समानाशौचसंपाते प्रथमेन समापयेत् ।
तृतीयेन धर्मराजवचो यथा ॥' इति माधवीये शंखोक्तेः । अपरा
रादिविरोधाच्च ॥

यदा तु सूतके शावं समन्यूनमधिकं वा, तदा न पूर्वशेषाच्छुद्धिः । तदा
'सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकम् । तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुय
षट्त्रिंशन्मते—'शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् । शावेन शु
सूतिः शावशोधिनी ॥' चतुर्विंशतिमतेपि—मृतेन शुध्यते जातं न
तु ॥' अतो यदा दशाहजननमध्ये तदन्ते वा त्र्यहादि शावं तदा पूर्वेण शु
मित्तमस्पृश्यत्वं भवत्येव । 'मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत् ।' इति
गौतमव्याख्यायां वृद्धात्रिरपि—'सूतकाद्विगुणं शावं शावाद्विगुणमार्त
वाद् द्विगुणा सूतिस्ततोपि शवदाहकः ॥' अत्र पूर्वपूर्वेण नोत्तरोत्तरा
त्वाधिक्यादित्यर्थः । षडशीतावपि—'स्वभावबहुसूतिस्तु न्यूनशावा
इति । रात्रिशेषादौ वर्धितद्वित्रिदिनैरागन्तुकैः सूतेर्वहुत्वं न स्वभावेन । अ
शावस्यापि न पूर्वेण शुद्धिरिति वक्तुं स्वभावेनेत्युक्तम् । ब्राह्मेपि—'नाग
राशौचमपनुद्यते । न च पातनिमित्तेन शावस्यान्यस्य शोधनम् ॥' इति
पक्षाः । यदा तु त्र्यहाद्यल्पाशौचमध्ये सजातीयं विजातीयं वा दीर्घकाल
त्तरं पूर्णं कार्यम् । न पूर्वेण शुद्धिः । 'स्वल्पाशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौचं
पूर्वेण विशुद्धिः स्यात् स्वकालेनैव शुध्यति ॥' इत्युशनसोक्तेः । तेन
मध्ये दशाहादिसूतकेपि न पूर्वेण शुद्धिरित्यपरार्कः । शावनिमित्तमस्पृश्य
त्येव । शुद्धिविवेके तु—'शावेन शुध्यते सूतिः ।' इति प्रागुक्तेस्तत्राप्
तिरुक्ता । तन्न । उत्तरस्य कालाधिक्येन बलवत्त्वात् । माधवीये यमो
मदाशौचं पश्चिमेन समापयेत् । यथा त्रिरात्रे प्रक्रान्ते दशाहं प्रविशेद्या
पुनरागच्छेत्तत्समाप्य विशुध्यति ॥' हारीतोऽपि—'गुरुणा लघु शुध्ये
तद्गुरु ॥' इति गुरुत्वं लघुत्वं च कालकृतमेव । पूर्वानुरोधात् । एतच्च हर
क्तम् । मिताक्षरायामप्येवम् । यत्तु 'अधानां यौगपद्ये तु ज्ञेया शुद्धि
णोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत् ॥' इति हारीतकौर्मादि । तत्रा

कचिदल्पकालेनापि दीर्घकालांशौचनिवृत्तिमाह देवलः—‘परतः परतो शुद्धिर-
 विधीयते । स्याच्चेत्पञ्चतमादह्नः पूर्वेणैवात्र शिष्यते ॥’ अस्यार्थः—अथवृद्धौ दीर्घ-
 परतः शुद्धिः परमांशौचम् । यदि पूर्वांशौचमुत्तरस्य पञ्चमदिनात्परतोऽनुवर्तते तत्र
 नैव शुद्धिः । पूर्वस्योत्तरांशौचाधिककालव्यापित्वे पूर्वशेषाच्छुद्धिरित्यर्थः । यथा
 मासे गर्भपातनिमित्तषडहाशौचमध्ये दशाहपाते पूर्वणोत्तरनिवृत्तिः । यथा वा त्र्य-
 मासपातनिमित्तचतुरहपञ्चाहयोरिति कश्चित् । तत्र । दशाहावधिपूर्वशेषशुद्ध्या वेद-
 विरोधात् । षष्ठादिदिने पूर्णांशौचमन्त्यरात्रौ तु द्वयह इत्यनौचित्याच्च । अस्मद्विरु-
 पञ्चतमादह्न आशौचं ततो न्यूनं त्र्यहादिचेत्स्यादस्मिन्विषये पूर्वेणैवाशुद्धिः शिष्य-
 दशाहादिरात्रिशेषे त्र्यहादिपाते त्र्यहाद्यल्पाशौचानां परस्परं रात्रिशेषे संपा-
 न द्वयहादिवृद्धिरित्यर्थमाहुः । कचित्पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादमाह गौतमः—‘रा-
 सति द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः’ इति । प्रभातेन्त्ययामे ‘रात्रिशेषे द्वयहाच्छुद्धिर्य-
 शुचिर्त्र्यहात् ।’ इति शातातपोक्तेः । इदं शावान्ते सूतकपाते सजातीये वा तुल्य-
 अत्र केचित् । रात्रिशब्दोऽहोरात्रपरः । ‘अहःशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः’ इति श-
 लिखितोक्तेः । ‘अथ यदि दशरात्राः संनिपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचमानवमादि-
 ऊर्ध्वं द्विरात्रेण, व्युष्टायां त्रिरात्रेण’ इति बौधायनोक्तेः । ‘पुनः पाते दशाह-
 पूर्वण सह गच्छति । दशमेहि पतेद्यस्याहर्द्वयात्स विशुद्धयाति’ इति । ‘प्रभाते तु त्रि-
 दशरात्रेष्वयं विधिः ।’ इति देवलोक्तेश्च । नवमदशमशब्दौ चोपान्त्यान्त्यदिन-
 तेन क्षत्रियादावपि तथेत्याहुः । माधवीयेप्येवम् ॥

अन्ये त्वाहुः—‘अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्भरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रं
 तत्स्यादनिर्दशम् ॥’ इति । मनुपराशराद्यैर्दशमदिनेनोत्तरस्य शुद्धेरुक्तत्वाद्विरोध-
 एव । विरोधे च—‘यद्वै किञ्चन मनुखदत्तद्वेषजम् ।’ ‘कलौ पाराशरस्मृतिः’ इ-
 पूर्ववचसां बाधः । अत एव वाचस्पतिना तेषामनाकरत्वमुक्तम् । साव-
 जातिमात्रविप्रादिविषयं देशान्तरविषयं वा युगान्तरविषयं वास्तु । तेन गौतमीये-
 शब्दो नाहोरात्रपरः । ‘रात्रिमात्रावसिष्टे’ इति मिताक्षरोक्तेश्च ॥ न कुकविकृ-
 न्यथा व्याख्या युक्ता । माधवस्तु—‘अनिर्गतदशाहम्’ इतिपूर्वस्वग्रन्थविरोध-

१—चतुरहान्तर्विदेशस्थमरणे श्रुते शेषशुद्ध्या तत्पञ्चदिनाधिकमाशौचम् । तत्र दशाहपा-
 शुद्धिरित्यपि द्रष्टव्यमिति टीका । २—‘अथ यदि दशरात्राः संनिपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचम्
 दिवसात् । अत ऊर्ध्वं द्विरात्रेण, व्युष्टायां त्रिरात्रेण, इति बौधायनवाक्यस्थेनानवमादिवसा-
 विरोधादित्यर्थः । इति टीका । एवंचाभिः प्रत्यक्षस्मृतिभिर्विरोधात् । ‘आद्यभागद्वयं याव-
 तु सूतकम् ।’ इत्यादि शुद्धिविवेकलिखितब्रह्मपुराणवाक्यं तु ‘श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरो-
 द्यते । तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात्तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ।’ इति व्यासवचनेन शिष्टैर्निर्दतव्यम् ।

इति । अस्मत्पितृचरणास्तु बौधायनीये—‘आनवमादिवसात्’ इति द्वितीयाशौचस्य नवमं दिनं प्रथमस्य दशममेवादुः । द्व्यहोदिवृद्धेः पूर्वशेषापवादत्वात् । तस्य च न्यायतो द्वितीयदिनादेव प्रवृत्तेः । अत ऊर्ध्वमिति दशमरात्रिपरम् । शङ्खखलिखितोक्तौ देवलोक्तौ चाहःशेषे दशमेहि चातीते रात्रौ पतेदित्यर्थः । दशम्यां पिता नाम कुर्यादिति वत् । तेन न मन्वाद्यैर्विरोधो नापि मिताक्षराद्यैरित्याहुः । अपराकैर्निर्णयामृतस्वरसोप्येवम् । यत्तु तत्रैव ब्राह्मे—‘आद्यं भागद्वयं यावत्सूतकस्य तु सूतके । द्वितीये पतिते त्वाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते । अत ऊर्ध्वं द्वितीयात्तु सूतकान्ताच्छुचिः स्मृतः । एवमेव विचार्य स्यान्मृतके मृतकान्तरे ॥ मृतकस्यान्तरे यत्र सूतकं प्रतिपद्यते । सूतकस्यान्तरे वाथ मृतकं यत्र विद्यते ॥ मृतकान्ते भवेत्तत्र शुद्धिर्वर्णेषु सर्वशः ।’ इति । अस्यार्थस्तत्रैवोक्तः । पूर्वाशौचचरमाहोरात्रस्य दिनरूपे आद्यभागद्वयेऽन्याशौचपाते पूर्वेषु शुद्धिः । भागद्वयोर्ध्वं रात्रौ सूतकान्तरे द्वितीयात्पूर्वभिन्नात्सूतकान्ताद्व्यहोदिवृद्धिरिति । अपराकैर्त्वाशौचकालं त्रिधा विभज्य निर्गुणविषयत्वेनेदमुक्तम् । अस्य वचनस्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव । अतः पूर्वाशौचान्तरात्रावन्याशौचेहोरात्रद्वयमधिकं रात्रेरन्त्ययामे तु दिनद्वयमिति भट्टचरणोपदिष्टः पन्थाः । एतत्संपूर्णाशौचसंपाते एव । रात्रिशेषे त्रिरात्रादिसंपाते तु पूर्वशेषेणैव शुद्धिः । द्विरात्रादिवृद्धेः पूर्ववाक्यैर्दशाहविषयत्वादपवादाभावे शेषशुद्धेरेव सामान्यतः प्रवृत्तेः । षडशीतौ तु दशाहान्ते त्र्यहपातेपि द्वित्रिदिनवृद्धिरुक्ता । ‘रात्रिशेषे यदाशौचं पूर्वानधिकमापतेत् । ऊर्ध्वं दिनद्वयं पूर्वाद्यामशेषे दिनत्रयम् ।’ इति । अनधिकं समं न्यूनं वा तत्तुच्छम् । निर्मूलत्वादान्ते पक्षिण्यादिपातेपि द्विरात्रादिवृद्ध्यापत्तेश्च । पूर्वाशौचान्तर्वर्धितद्वित्रिदिनमव्येऽधिकाशौचान्तरपाते तु वर्धितस्याल्पत्वादधिकेनैव शुद्धिः । न च वर्धितस्य पूर्वशेषत्वं शङ्कनीयम् । रात्रिशेषपूर्वशेषशुद्ध्यपवादे नैमित्तिकावृत्तिन्यायोज्जीवनात् अपवादाभावे उत्सर्गस्य प्राप्तेः ॥

अपवादान्तरमाह शङ्खः—‘मातर्यग्रे प्रमीतायामशुद्धौ म्रियते पिता । पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम् ॥’ पादत्रयं स्पष्टम् । तुर्यस्य त्वयमर्थः—पित्राशौ-

१—नन्वेवंविधविषये द्विरात्रादिवृद्धिप्रसङ्गः । ‘अत ऊर्ध्वं द्विरात्रेण’ इत्यनुपदमुक्तेरित्यत आह—व्यहोदिवृद्धिरिति । २—तस्य द्वितीयाशौचस्य । ३—आहुरित्यनेन ‘आनवमादिवसात्’ इत्यस्योक्तव्याख्याने यत्र द्वितीयादिदिनं तत्राष्टदिनाद्युपलक्षणत्वं वाच्यम् । तादृशव्याख्याने प्रयोजनाभावश्चेत्यस्वरसः सूचितः । अतस्तत्—आनवमादिवसादित्याडोभिविध्यर्थकतयानवमपदे दशमलक्षणायाश्चाप्राकरिणकतया अत

चमध्ये मातृमृतौ पित्राशौचान्ते मातुः पक्षिणीमधिकां कुर्यादिति । अत्राशुद्धावित्युक्तेरा-
त्महादेः पितुराशौचाभावान्मातृमरणे न पक्षिणी । किंतु पूर्णमेवाशौचम् । इयं च
पक्षिणी तृतीयादिदिनपरा । नाद्यदिनद्वये प्रतिनिमित्तनैमित्तिकावृत्तिन्यायापवादपूर्वशेषा-
पवादत्वादिति पितृचरणाः । सपिण्डाद्याशौचेन मातापित्रोराशौचापगमो नास्त्येव । एवं
भर्तुरपि । इयं च पक्षिणी दशमदिनात्पूर्वं मातृमरणे ज्ञेया दशम्यां रात्रौ तत्प्रभाते वा
मातृमरणे द्व्यहत्रयहसमुच्चिता पक्षिणीति कश्चित् । तन्न । संख्यान्तरोपजननापत्त्या
त्र्यहादिश्रुतिवाधापत्तेः । अत एवैका देया षड्देया इत्यादौ श्रुतसंख्यावाधापत्तेः समु-
च्चयो निरस्तो द्वादशे । गुरुणि लघोरन्तर्गते 'गुरुणा लघु शुद्ध्यति' इत्युक्तेश्च ॥

मातुर्न्वारोहणे तु न पक्षिणी । 'यदा नारी विशेदग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया । तदाशौचं
विधातव्यं भर्ताशौचक्रमेण हि ॥' इति पृथ्वीचन्द्रोदये लघुहारीतोक्तेः । तत्रैव षडशी-
तिमतेपि- 'मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता । न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव
शुद्ध्यति ॥ पुत्रान्यो वाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः । नवश्राद्धं च पिण्डं च युगपत्तु-
समापयेत् ॥' गृहीताशौचानां पुत्राणां पितुः संस्कारे मातुः सपिण्डस्य वा मरणे
अतिक्रान्तकालाद्विद्यमाननिमित्तस्य बलवत्त्वात् । द्वादशवर्षोत्तरं संस्काराशौचमध्ये
सपिण्डमरणेष्वेवम् । यत्तु अपराकं ब्राह्मे- 'ऋग्वेदादा साध्वी स्त्री न भवेदात्मघा-
तिनी । त्र्यहाशौचे तु निर्वृते श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत् ॥' इति, तद्भर्तुराशौचोत्तरमन्वा-
रोहणे त्रिरात्राशौचपरम् । इति पृथ्वीचन्द्रः । ब्राह्मणादेः क्षत्रियाद्यनुगमनेल्पाशौच-
परमित्यपराकः । शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु-भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्रम्
सहगमने तु संपूर्णम् । युद्धहतस्य सद्यः शौचेन्वारोहणे ब्राह्मोक्तेस्त्रिरात्रत्वात् । भर्तुरपि-
त्र्यहेण पिण्डदानम् । एकचित्तौ तु सद्यः शौचमित्याहुः । अन्यत्रागुक्तम् ।

पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादान्तरमुक्तं षडशीत्याम् । 'पूर्वाशौचेन या शुद्धिः सूतके
मृतके च सा । सूतिकामग्निदं हित्वा प्रेतस्य च सुतानपि ॥' निर्णयामृते स्मृतिसं-
ग्रहेपि- 'इयं विशुद्धिरुदिता सूतिकामग्निदं विना ॥' इदं मूल्येन दाहकरणे मातृलादि-
संवन्धेन । दाहमात्रकरणे तु त्रिरात्रमेवेत्युक्तं प्राक् । वृद्धानिः- 'सूतकाद्विगुणं शार्वं
शावाद् द्विगुणमार्तवम् । आर्तवाद् द्विगुणा सूतिस्ततोपि शवदाहकः ॥' तथाशौचसं-
पातेपि न शवजनननिमित्तकार्यप्रतिबन्धः । 'आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा
भवेत् । कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥' इति प्रजापतिस्मृतेः ॥
आशौचे तु द्विविधेपि शातातपः- 'अन्तर्दाहे च जननात्पश्चात्स्यान्मरणं यदि । प्रेत-
मुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥ प्राग्बद्धे पेतपिण्डे न पश्चेत्तेनान्यं श्रौते-
नैव' इति ।

‘दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत् ।’ इति शुचित्वं महैकोदिष्टाङ्गविप्रानिमन्य परमिति वदता तत्र शुद्धेरङ्गत्वं दर्शितम् । एवं वृषोत्सर्गशय्यादानादावपि । देवयज्ञेन त्वाशौचान्तरेपि भवत्येवेत्युक्तम् ॥

अथाशौचापवादः ॥ स च पञ्चधा । कर्तृतः कर्मतः द्रव्यतः मृतदोषतः ।
 नाञ्च । आद्यो ब्रह्मचारियत्यादिषु । ‘नैष्ठिकानां वनस्थानां यज्ञाणां च शौचं ब्रह्मचारिणाम् । न शौचं कीर्तितं सद्भिः पतिते च तथा मृते ॥
कौर्मोक्तेः । तुर्यपादे ‘शावे वापि तथैव च’ इति देवलपाठः । आशौचमन्योर्मोपलक्षणम् । ‘ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकाः क्रियाः । यदि कुर्याच्चरेत्कृच्छ्रं संस्कारमेव च ॥’ इति देवलोक्तेः । एतत्पित्राद्यतिरिक्ताविषयम् । ‘आचार्यं स्वध्यायं मातरं पितरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन वियुज्यते ॥’ इति मन्वहारीतः—‘आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न वियुज्यते ॥ मातापित्रोस्तु यत्प्रोक्तं व्रतचारी तु पुत्रकः । व्रतस्थोपि हि कुर्वीत दानोदकक्रियाम् ॥ भवत्यशौचं नैवास्य न वाग्निस्तस्य लुप्यते । स्वाध्यायं च पूर्ववद्विधिदर्शितम् ॥’ संवर्तः—‘अन्यगोत्रोपसंवन्धः प्रेतस्याग्निं ददाति यः । चोदकदानं च सं दशाहं समाचरेत् ॥’ निर्हरणमन्यकर्मपरम् । एवं मातामहस्य व्रतस्थोपि सुतः पितुः कुर्यात् क्रियां नृप । तथा मातामहस्यापि दौहित्रः कर्तुमर्हति इत्यपराकैर्भविष्योक्तेः—‘मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम् । कुर्वन्मास्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात् ॥’ इति कालादृशाञ्च । तत्रान्यकर्मनिमित्तमस्य दशाहमस्त्येव । ‘सगोत्रो वासगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः । सोऽपि कुर्यान्न शुद्धचेतु दशमेहनि ॥’ इति दिवोदासोक्तवचनात् । अत एव ‘ब्रह्मचारिणः मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोर्गुरोश्च’ इति गौतमीये व्रतनिवृत्तिरेवपि नाशौचस्य । संध्यादिकर्मलोपस्तु नास्ति । ‘न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं कर्तव्यं इति छन्दोगपरिशिष्टात् । ‘पित्रोर्गुरोर्विपत्तौ तु ब्रह्मचार्यपि यः सुतः । सुव्रतः कुर्वीत अग्निपिण्डोदकक्रियाम् ॥’ तेनाशौचं न कर्तव्यं संध्या चैव न लुप्यते । अत्र च कर्तव्यं सायं प्रातश्च नित्यशः ॥’ इति चन्द्रिकायां संवर्तोक्तेश्च । अत्र अधिकाररूपाशौचनिषेध एव अपराकर्ममाधवादयस्तु—एकाहमाशौचमाहुः । ‘अवाप्युपाध्यायं गुरुं वा पितरं च वा । मातरं वा स्वयं दग्ध्वा व्रतस्थस्तत्र भोजं कृत्वा पतति नो तस्मात् प्रेतान्नं तत्र भक्षयेत् ॥ अन्यत्र भोजनं कुर्यान्न च तैः स

प्रजापतिवचनात् । द्वितीयाहादौ पिण्डदानकाले एवासृश्यत्वमात्रं नान्यदेत्या-
दशाहमसृश्यत्वेपि कर्माङ्गज्ञानविधानार्थमेतदिति युक्तम् । अन्त्यकर्माकरणे तु
चारिणः पित्रादिमरणेऽप्याशौचाभाव एव । सोपि ब्रह्मचर्यकाल एव । समावर्तनोक्त-
पूर्वमृतानां ज्येष्ठाशौचं भवत्येव । 'आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । स-
तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥' इति मनूक्तेः । तत्रापि विकल्पः 'पितर्यपि
नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोन्ते स्यात् ज्येष्ठं वा ब्रह्मचारिणाम्
इति छन्दोगपरिशिष्टात् । तथा कृतजीवच्छ्राद्धेन किमप्याशौचं न कार्यं
हेमाद्रिः । शुद्धितत्त्वे कौर्मे- 'सद्यःशौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे । डि-
ह्वहृतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजः ॥' उपद्रवेत्यन्तमरके । 'उपसर्गमृते चैव सद्यः
विधीयते' । इति पराशरोक्तेः । उपसर्गोऽत्यन्तमरक इति शूलपाण्यनिरुद्धम-
दयः । । याज्ञवल्क्योपि- 'आपद्यपि च कष्टायां सद्यःशौचं विधीयते' । इति म-
समयेपि नाशौचम् । तथा च शुद्धिरत्नाकरे दक्षः- 'स्वस्थकाले त्विदं सर्वं सु-
परिकीर्तितम् । आपद्रतस्य सर्वस्य सूतकोपि न सूतकम् ॥ अतः सति वैराग्ये संन्या-
स्यातुरस्य भवतीति केचित् ॥

अथ कर्मतः त्रिंशच्छ्लोक्यां- 'तत्तत्कार्येषु सत्रिव्रतिनृपनृपवद्दीक्षितर्विक्स्ववे-
कर्मतआशौचनिर्णयः । अंशापत्स्वप्यनेकश्रुतिपठनभिषकारुशिल्पातुराणाम् । संप्रारब्धेषु द-
पनयनयजनश्राद्धयुद्धप्रतिष्ठाचूडातीर्थार्थयात्राजपपरिणयनाद्युत्सवेषु
तदर्थे ॥' नाशौचमिति शेषः । सत्री अन्नसत्रवान् । मुख्यसत्रस्य दीक्षितपदात्सिद्धे-
व्रती अनन्तव्रतादिनियमवान् । 'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेः । प्रचेताः- 'का-
शिल्पिनो वैद्यदासीदासास्तथैव च । राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः
कारवः सूपकाराद्याः । शिल्पिनश्चैलनिर्णेजकाद्याः । आतुरस्य व्याधिनाशार्थं दान-
तुलादानादेः । प्रारम्भो नान्दीश्राद्धं संकल्पो वा यजनं तडागोत्सर्गकोटिहोमादि-
लघुविष्णुः- 'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे
सूतकम् ॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्र-
पाकपरिक्रिया' ॥ इति । पाकस्य परिसमंतात्क्रिया । पाकप्रोक्षणमिति शुद्धिप्रदीप-
न्मन्दम् । रूढेर्योगाद्बलवत्त्वात् । तीर्थेति आशौचे आकस्मिकतीर्थप्राप्तौ । 'विवाहह-
यज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत् कर्मयज्ञादि कारयेत् ॥' इति पै-
नसिस्मृतेः । अत्र विशेषः प्रागुक्तः । जपः पुरश्चरणादिः स्तोत्रपाठः, अवि-

नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम् ॥' राघवभट्टीये नारदः—'अथ सूत-
किनः पूजां वक्ष्याम्यागमचोदिताम् । स्नात्वा नित्यं च निर्वर्त्य मानस्या क्रियया तु
वै ॥ बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् । यदि कामो न चेत्कामी नित्यं पूर्ववदा-
चरेत् ॥' यत्तु नृसिंहकल्पे—'सदा मन्त्रजपं मुक्त्वा यदि स्यादशुचिर्नरः । मनसावहि-
तस्तत्र स्मरेन्मन्त्रं न तूच्चरेत् ॥' तन्मूत्राद्याशौचपरम् । रामार्चनचन्द्रिकायाम्—
'अशुचिर्वाशुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्नपि । मन्त्रैकस्मरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्य-
सेत् ॥ 'कालनियमाभावे तु स्तोत्रहरिवंशादि हेयमेव । उत्सवो रथयात्रादिः । एषु नाशौ-
चम् । अयं चाशौचाभावोनन्यगतिवे आर्तौ च ज्ञेयः । अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् ॥

अत्र दीक्षितस्य अवभृथात्पूर्वमेवाशौचाभावः । तदादित्वाशौचमस्त्येव । तेन वैतानो-
पासनाः कार्याः' इति वैतानत्वेप्यवभृथादि न भवत्येव । अत एवोक्तं माधवीये ब्राह्मे—
'तद्बृहद्दीक्षितस्य त्रैविद्यस्य महामखे । स्नाने त्ववभृथे यावत्तावत्तस्य न सूतकम् ॥'
इति । वैतानोपासनाः कार्या इत्यनेनैव सिद्धेऋत्विजां दीक्षितानां चेति पुनर्दीक्षितग्रहणं
यजमाने स्वयं कर्तृत्वार्थं स्नानप्राप्त्यर्थं वेति विज्ञानेश्वरः । वस्तुतस्तु दीक्षणीय-
संस्कृतस्य प्रागवभृथात्कर्मप्राप्त्यर्थं दीक्षितग्रहणम् । तेन ततः पूर्वं निषेध एव । यत्
'प्रारम्भो वरणं यज्ञे' इति तद्वत्किपरम् । तथा च छन्दोगपरिशिष्टे—'न दीक्षिष्या-
परं यज्ञे न कृच्छ्रादितपश्चरन् ।' इति । शुद्धितत्त्वेप्येवम् । ऋत्विजां च मधुपर्कोत्तर-
माशौचाभावः । 'गृहीतमधुपर्कस्य यजमानास्तु ऋत्विजः । पश्चादशौचे पतिते न भवेदि-
निश्चयः इति ब्राह्मात् । अत एव रामाण्डारः—'चतुर्णां वरणपक्षेऽन्येषामाशौचेऽन्य-
आगमयितव्यः' इत्याह । एवं स्मार्तेऽपि तुलाकोटिहोमादौ मधुपर्के सति दोषाभावो
ज्ञेयः । यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे' इति, तत्रापि मधुपर्कान्तं ज्ञेयम् । तेनाधानेष्टिपशुबन्धात्
तदभावादन्ये भवन्तीति सिद्धम् ॥

अपवादान्तरमाह याज्ञवल्क्यः—'वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदनात् ।
तत्र त्यागमात्रे स्नानोत्तरं स्वयंकर्तृत्वम् । 'श्रौते कर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्-
यात् ।' इति स्मृतेः । त्यागातिरिक्ते तु श्रौते स्मार्ते चान्यस्यैव कर्तृत्वम् । 'सूतके मृत-
चैव अशक्तौ श्राद्धभोजने । प्रवासादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ॥' इति बृह-
त्युक्तेः । 'नित्यानि निवर्तेरन्यैतानवर्ज्यम् । शालाग्नौ चैकेऽन्य एतानि कुर्युः' इति पैठ-
नसिस्मृतेश्चेति विज्ञानेश्वरः । एकग्रहणं पूजार्थम् । तेन स्मार्तं कार्यमेवेति हा-
लतायाम् । दाक्षिणात्यास्तु विकल्पमाहुः । अपराकार्दिनिबन्धास्तु—श्रौतं

कर्म वैतानिकं च यत्। सूतकेपि त्यजेन्मोहात्प्रायश्चित्तीयते द्विजः ।' इति म
 'जन्महान्योवितानस्य कर्मत्यागो न विद्यते । शालाग्रौ केवलो होमः कार्य
 त्रजैः । इति जाबालोक्तेश्चेत्याहुः । आचारार्कप्येवम् । याज्ञिका
 'सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत् । पिण्डयज्ञं चरुं होममसगोत्रेण
 इति जातूकप्योक्तेश्च । चरुः स्मार्तस्थालीपाकः । श्रवणाकर्मादिश्चेति नि
 प्रारब्धं तु सपिण्डेनापि कार्यम् । 'न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योप्यशुचि
 मनूक्तेः । छन्दोगपरिशिष्टेपि-'होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्काग्नेन फले
 हावयेत् स्मार्तं तदभावे कृताकृतम् ॥' अकृतं ग्रीह्यादि । कृताकृतं तन्दुलादि
 होमादौ तु विकल्पो ज्ञेयः । 'शालाग्रौ चैके' इति प्रागुक्तेः । यदा करणं त
 अत्रेदं तत्त्वम् । येषां बह्वृचादीनां द्वादशरात्रमहोमेपि नाग्निविच्छेदस्ते
 तैत्तिरीयाद्यैः कार्यम् । 'त्रिरात्रमहूयमानेग्निलौकिकः संपद्यते ।' इति सुव
 वचनात् । समारूढे त्वग्रौ तेनापि न कार्यम् । किंतु पुनराधानमेव । समा
 हयोराशौचापवादाभावादनन्यकर्तृकत्वाच्च । अन्यथा पुनराधानमापि स्यात् ।
 लायनः-'तौ चापि सूतके शावपर्वणीष्टिं महापादि । पुष्पवत्यां च भार्यायां
 कदाचन ॥ स्मार्ताग्निः सूतके शावे स्वयं न जुहुयाद्विजः । श्रौताग्निस्तु सकृद्
 वा स्वयं हुनेत् ॥' इति । तदपि समारूढपरम् । तदाह स एव-'स्मार्ताग्निः
 पामभावे सूतकादिषु । समारोप्य तदन्तेषु विहृत्य जुहुयात्स्वयम् ।' इति
 मनुः-'प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः' इति 'वैश्वदेवस्य त्वग्निसाध्यत्वेपि वचनान्निवृत्ति
 दशाहमासीत वैश्वदेवविवर्जितः ॥' इति संवर्तोक्तेः । यद्यपि-'पञ्चयज्ञविध
 कुर्यान्मृतजन्मनोः' इति तेनैवोक्तेः । पूर्वनिषेधो व्यर्थस्तथाप्यापस्तम्बाद
 देवस्य पञ्चयज्ञभिन्नत्वात् पृथङ्निषेधः । हरदक्षस्त्वाराशौचेपि बह्वृचैवैश्वदेव
 'तस्य द्वावनध्यायौ यदात्माशुचिर्यदेशः ।' इति ब्रह्मयज्ञस्येवाशौचे विशिष्य

सन्ध्यादीनामप्यपवादमाहापरार्कं पुलस्त्यः-'सन्ध्यामिष्टिं चरुं होमं
 समाचरेत् । न त्यजेत्सूतके वापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः ॥ सूतके मृतके
 कर्म समाचरेत् । मनसोच्चारयेन्मन्त्रान्प्राणायाममृते द्विजः ॥' यत्तु चा
 जाबालः-'सन्ध्या पञ्चमहायज्ञा नैत्यकं स्मृतिकर्म च । तन्मध्ये हापयेत्ते
 हान्ते पुनःक्रिया ॥' इति । यच्च संवर्तः-'सूतके कर्मणां त्यागः सन्ध्यादि
 यते ॥' यच्च विष्णुपुराणम्-'सर्वकालमुपास्या तु सन्ध्ययोः पार्थिवेष्यते

माह—‘सूतके सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात् ॥’ प्रयोगपारिजाते
 भारद्वाजोपि—‘सूतके मृतके कुर्यात् प्राणायाममन्त्रकम् । तथा मार्जनमन्त्रास्त
 मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥ गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् । मार्जनं तु न व
 कार्यमुपस्थानं न चैव हि ॥’ ग्रहणे श्राद्धादावप्याशौचापवादमाह व्याघ्रः—‘स्मात्
 कर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके ।’ इति । लैङ्गेपि—‘सूतके मृतके चैव न दोषो राहु
 दर्शने । तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते ॥’ प्रयोगपारिजाते बृहस्पतिः
 ‘कन्याविवाहे संक्रान्तौ सूतकं न कदाचन ॥’ बृहशपातातपः—‘यदा भोजनकाले
 अशुचिर्भवति द्विजः । भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ॥ भक्षयित्वा
 तं ग्रासमहोरात्रेण शुद्ध्यति । अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥’ इदमविशेष
 त्सूतकादिपरमपीति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च ॥

अथ द्रव्यतः । मरीचिः—‘लघ्वणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च । शाककाष्ठ

द्रव्यतः शुद्धिनिर्णयः । तृणेष्वप्सु दधिसर्पिर्भयः सु च । तिलौषधाजिने चैव पक्वपक्वे स्व

ग्रहः ॥ पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके ।’ स्वयमेव स्वाम्यनुज्ञ
 ग्राह्यं न तद्धस्तादित्यर्थः । क्रये तु तद्धस्तादपि न दोषः । पक्वं लङ्कुकादि । अप
 तण्डुलादि । एतदन्नसत्रपरम् । ‘अन्नसत्रे प्रवृत्तानामाममन्नमर्गाहितम् । भुक्तापक्वा
 मेतेषां त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥’ इत्याङ्गिरसोक्तेः । पक्वान्नमोदनादि न तु भक्ष
 म् । षट्त्रिंशन्मते—‘उभाभ्यामपरिज्ञाते सूतकं नैव दोषकृत् । एकेनापि परिज्ञा
 भोक्तुर्दोषमुपावहेत् ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके । परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्त
 च द्विजोक्तमैः ॥ भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे
 शुचयः स्मृताः ॥’ बृहस्पतिः—‘विवाहोत्सव’ इत्याद्युक्ता—‘पूर्वसंकल्पितान्नेषु
 दोषः परिकीर्तितः ॥’ षडशीतौ—‘संसर्गाद्यस्य वाशौचं यस्यातिक्रान्तकालता
 तदीयस्य पदार्थस्य नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥’ शुद्धितत्त्वे—‘शुद्धचेत्’—इत्यनुवृ
 विष्णुः ‘प्रोक्षणेन पुस्तकम्’ इति ॥

अथ मृतदोषे हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते कौर्मे च—‘व्यापादयेद्य आत्मानं स्वय

मृतदोषे निर्णयः । ग्न्युदकादिभिः । विहितं तस्य नाशौचं नापि कार्योदकक्रिया ।

शवदर्शनं यावदाशौचमस्त्येव । ‘हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघाति
 नाम् ।’ इति याज्ञवल्क्योक्तेः । शुद्धितत्त्वे कौर्मे—सद्यः शौचं समाख्यातं शाप
 दिमरणे तथा । आदिपदादभिचारहते । भविष्ये—‘स्वेच्छ्यामरणं विप्राच्छृङ्गि
 विप्रीक्ष्यैः । पाशपादमाश्रिताश्चैव मरुतैः । पाशपादमाश्रिताश्चैव मरुतैः ।

नमपतनैश्चेच्छताम् ॥' इति नाशौचमिति शेषः । अङ्गिराः- 'चण्डालादुदकं
 द्वाह्मणाद्रेद्युतादपि । दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥ उदकं पिण्ड-
 प्रेनभ्यो यत्प्रदीयते । नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति ॥' षड्विंश-
 प्येवम् । ब्राह्मेपि- 'शृंगिदंष्ट्रिनखव्यालविषवद्विक्रियाजलैः ॥' व्यालो गजः
 रात्परिहर्तव्यः कुर्वन् क्रीडांमृतस्तु यः । नागानां विप्रियं कुर्वन् हतश्चाप्यथ वि-
 'निगृहीतः स्वयं राज्ञा चौर्यदोषेण कुत्रचित् । परदारान् हरन्तश्च द्वेषान् पतिभिह-
 असंमानैश्च संकीर्णैश्चण्डालाद्यैश्च विग्रहम् । कृत्वा तैर्निहतास्तद्वचण्डालादीन् समा-
 श्मन्नाग्निगरदाश्चैव पाखण्डाः क्रूरबुद्धयः । क्रोधात्प्रायं विषं वह्निं शस्त्रमुद्धन्वनं ज-
 गिरिवृक्षप्रपातं च ये कुर्वन्ति नराधमाः ॥ कुशिलपजीविनो ये च सूनालंकारधा-
 मुखेभगास्तु ये केचित् ह्रीवप्राया नपुंसकाः ॥ ब्रह्मदण्डहता ये च ये चापि ब्र-
 ह्महताः । महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः ॥ पतितानां न दाहः स्यान्नान-
 नास्थिसंचयः । न चाश्रुपातः पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥ एतानि पति-
 तु यः करोति विमोहितः । तत्कृच्छ्रद्वयेनैव तस्य शुद्धिर्न चान्यथा ॥'

एतद्बुद्धिपूर्वं सर्वेषां करणे तु माधवीये वसिष्ठः- 'य आत्मत्यागिनां कुर्यात्
 त्प्रेतक्रियां द्विजः । स तत्कृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥' अज्ञाने तु- 'कृत्वा
 कं स्नानं संस्पर्शं वहनं कयाम् । रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तत्कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥'
 ज्ञेयम् । प्रत्येकं बुद्धिपूर्वं एतदिति मदनपारिजातः । प्रत्येकं तु स्पर्शाश्रुणोमि-
 क्षरायाम्- 'तच्छ्रवं केवलं स्पृष्टमश्रु वा पतितं यदि । पूर्वोक्तानामकारी चेदेकर-
 भोजनम् ॥ एकरात्रं तु नाश्रीयत् त्रिरात्रं बुद्धिपूर्वकम् ।' इति माधवीये उत्तरा-
 अन्येषु तु संवर्तः- 'एषामन्यतमं प्रेतं यो बहेत दहेत वा । कटोदकक्रियां कृत्वा द-
 सांतपनं चरेत् ॥' अज्ञाने त्वर्धम् । एतदनाहिताग्नेः आहिताग्नेः कृच्छ्र एवेति मा-
 मिताक्षरायाम्- 'आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया । तेषामपि
 गङ्गातोये संस्थापनं हितम् ॥

आहिताग्नेस्तु विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये- 'वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्प-
 पात्राणि तु दहेदग्नौ साग्निके पापकर्मणि ॥' छन्दोगपरिशिष्टेपि- 'महापातव-
 युक्तो दौरात्म्यादग्निमान्यदि । पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्त आदोषसंक्षयात् ॥ प्राय-
 न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि । गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्सवस्येच्छपरिच्छदम् ॥ पा-
 णि दद्याद्विप्राय दहेदप्सवे वा क्षिपेत् ॥' माधवीये पराशरः- 'अस्ति विधिः

मन्त्रेण पृथगेन पुनर्दहेत् ॥' हेमाद्रौ तु—'दाहयित्वा शवं तेषां शूद्वैरविधिपूर्वकम् ॥' इत्युक्तम् । एतद्वर्पादिना मरणे ज्ञेयम् । 'तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।' इति । श्रुतावात्महनने एव दोषोक्तेः । प्रमादमरणे त्वाशौचादि सर्वं भवत्येव । तदाहाङ्गिराः—'अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः । तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥' ब्राह्मेपि—'प्रमादादापि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधौ चोदितः । शृङ्गिण्डूनिखिव्यालविषविद्युज्जलादिभिः ॥ चण्डालैरथ वा चौरैर्निहतो वापि कुत्रचित् । तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः ॥' इति । प्रमादमरणे त्रिरात्रमाशौचमिति गौडाः शुद्धितत्त्वादयः । दशाहादिति दाक्षिणात्याः । अस्यापवादो हेमाद्रौ भविष्ये—'प्रमादादिच्छया वापि न कुर्यात्सर्पतो मृते ॥' नागपूजां विना न कुर्यादित्यर्थः । बौधायनोपि—'बुद्धिपूर्वात्महनन्तृणां क्रियालोपो विधीयते ॥' क्रियान्त्यकर्म ॥

तत्र दुर्मरणानिमित्तं दानादि कार्यम् । तच्च विश्वप्रकाशादौ शातातपीये च—'व्याघ्रेण निहते विप्रे विप्रकन्यां विवाहयेत् । सर्पदष्टे नागबलिर्देयः सर्पश्च काञ्चनः ॥ चतुर्निष्कमितं हैमं गजं दद्याद्रजैर्हते । राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं तु हिरण्मयम् ॥ चौरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम् । वृषेण निहते दद्याद्यथाशक्त्या तु काञ्चनम् ॥ शय्यामृते प्रदातव्या शय्यातूलीसमन्विता । निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समाधिष्ठिता ॥ शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कं स्वर्णजं हरिम् । संस्कारहीने च मृते कुमारमुपनाययेत् ॥ निष्कत्रयः स्वर्णमितं दद्यादस्वं हयाहते । शुना हते क्षेत्रपालं स्थापयेन्निजशक्तितः ॥ सूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् । कृमिभिश्च मृते दद्याद्गोधूमान्पञ्चवारिकाः ॥ वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं वस्त्रसंयुतम् । शृङ्गिणा निहते दद्याद्रूषभं वस्त्रसंयुतम् । शकटेन हते दद्याद्रव्यं सोपस्करान्वितम् ॥ भृगुपातमृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् । अग्निना निहते कार्यमुदपानं स्वशक्तितः ॥ दारुणा निहते चैव कर्तव्या सदने सभा । शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् ॥ अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् । विषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं हेमनिर्मिताम् ॥ उद्वन्धनेन च मृते कर्पिं कनकनिर्मितम् । मृते जलेन वरुणं हैमं दद्याद्विनिष्कजम् ॥ विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् । घृतधेनुः प्रदातव्या कण्ठान्नकवले मृते ॥ कासरोगेण च मृते अष्टकृच्छ्रं व्रतं चरेत् । अतिसारमृते लक्षं गायत्र्याः प्रयतो जपेत् ॥ शाकिन्यादिग्रहग्रस्ते जपेद्रदं यथोदितम् । विद्यन्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् ॥

तथा वैधमरणेपि न दोषः । तदाह तुर्मनुवृद्धगार्ग्यौ-‘वृद्धः शौचमृते लुप्तप्रत-
तमिषक्क्रियः । आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः ॥ तस्य त्रिरात्र-
द्वितीये त्वस्थिसंचयः । तृतीये तृदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥’ इति हे-
विष्णुधर्मेपि-‘नरस्तु व्याधिरहितो न त्यजेदात्मनस्तनुम् । असूर्या नाम ते
अन्धेन तमसा वृताः ॥ तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये केचात्महनो जनाः । अरिष्टै-
ज्ञात्वा मृत्युकालमुपस्थितम् ॥ व्याधितो भिषजा त्यक्तः पूर्णे वायुषि चात्मनः
युगानुसारेण संत्यजेदात्मनस्तनुम् ॥ तस्मिन्काले तनुत्यागाद्यथेष्टं फलमाप्नुयात्
पस्तु पुरा दृष्टं मरणं ब्राह्मणस्य च ॥’ नेति गौडानामपपाठः उत्तरार्धे अस-
‘क्षत्रियस्य तु संग्रामे मृते भर्तारि योषितः ॥’ अपराधैर्ब्रह्मगर्भः-‘यो
न शक्नोति महाव्याध्युपपीडितः । सोऽग्न्युदकं महायात्रां कुर्वन्नात्र न दुष्प-
अत्रोक्तवक्ष्यमाणवचोनिचयात्प्रयागातिरिक्तेऽचिकित्सरोगाद्युपहतानामधिकारः
जीर्णवानप्रस्थस्यैवेति विज्ञानेश्वरदैवयाज्ञिकादयः ॥ अत एव मिता-
भृगुपातानशनादिकं वानप्रस्थस्यैवोक्तम् । मत्तुरपि-‘आसां महर्षिचर्याणां त-
न्यतमया तनुम् । वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मभूयाय कल्पते’ ॥ इति । तेनान्यत्रा-
प्यतैव मूलैक्यादिति केचित् । तत्र । वानप्रस्थमरणे आशौचनिषेधात् । तेन
दिपरमेवेदम् । तेन यतेर्नाधिकारः । काम्येऽनधिकाराच्च । नैमित्तिकत्वे त्वकरणे
नित्यता च स्यात् । प्रयागे त्वरोगिणां रोगिणां च । यत्तु-‘शूद्राश्च क्षत्रिय-
अन्त्यजाश्च तथाधमाः । एते त्यजेयुः प्राणान्वै वर्जयित्वा द्विजं नृप ॥
ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महा चात्महा भवेत् ॥’ इति तन्निर्मूलमिति भट्टाः । तत्त्वं तु हे-
व्रतकाण्डेऽलिखनान्निर्मूलत्वं चिन्त्यमेव । प्रक्रमात्तु पतित्वेति भृगुपातमात्रपरं
ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातमिति वक्ष्यमाणविरोधाच्च । यत्त्वादित्यपुराणे-‘अब्राह्म-
स्वर्गादिमहाफलजिगीषया । प्रविशेज्ज्वलनं तोयं करोत्यनशनं तथा ॥’ इति
गातिरिक्तपरमिति केचित् । हेमाद्रौ त्वेतदग्रे-‘प्रयागवटशाखायात्’ इत्युक्तेर्ब्रा-
प्रयागेपि नेति प्रतीयते ॥

माधवीयेऽपराधैर्चादित्यपुराणे-‘दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितस्तु पुम-
प्रविशेज्ज्वलनं दीपं करोत्यनशनं तथा ॥ अगाधतोयराशिं च भृगोः पतनमे-
गच्छेन्महापथं वाप तुषारगिरिमादरात् ॥ प्रयागवटशाखाग्रादेहत्यागं करोति च
देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः ॥ उत्तमान् प्राप्नुयाल्लोकानात्मघाती भवेत्
महाप्राणायामादप्येवमिति ॥

गतो हरः । प्रणवं तारकं ब्रूते नान्यथा कुत्रचित्कचित् ॥' हेमाद्रौ चैवम् । अत्र प्राप्ते काले इत्युक्तेरप्राप्तमरणकालायाः स्त्रिया अन्वारोहणे संपूर्णमेवाशौचम् । पृथ्वीचन्द्रस्त्वत्रापि व्यहमाह । शुद्धितत्त्वादिगौडग्रन्थेष्वप्येवम् ॥

एतच्च वृद्धादिमरणं कलौ निषिद्धम् । 'भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथा ।' इति-माधवेन पृथ्वीचन्द्रेण च कलिर्वर्जेषूक्तेः । न चात्र यावदुक्तनिषेधः । विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात् । न च कलौ वानप्रस्थाश्रमनिषेधादेव सिद्धेर्मरणनिषेधो व्यर्थ इति वाच्यम् । सर्ववर्णेष्वित्यादिभिस्तद्भिन्नस्यापि प्राप्तेः काम्यं भवत्येव । 'ये वै तन्वं' विसृजन्ति' इति श्रुतेः । स्मृत्या संकोचायोगात् । न चेयं स्वाभाविकमृत्युपरा धीरपदोक्तेः । मात्स्यभारतादिषु—'न लोकवचनात्तात न वेदवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति ॥' इत्युक्तेः । अत एव विष्णुधर्मे—रोग्यादिमरणमुत्क्रोक्तम्—'यथायुगानुसारेण संत्यजेदात्मनस्तनुम् ।' इति । काश्यामप्युक्तं मात्स्ये—'अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः । प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसंदिग्धं वरानने ॥ हेमाद्रौ विवस्वान्—'सर्वेन्द्रियाविमुक्तस्य स्वव्यापाराक्षमस्य च । प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्निपातो महापथः ॥ धर्माज्जनासमर्थस्य कर्तुः पापाङ्कितस्य च । ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातं तीर्थे प्राणविमोक्षणम् ॥' अपराङ्के चैवम् । सहगमनं कलौ भवत्येव । 'कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादृते' । इति ब्रह्मवैवर्तात् । एतेन मरणान्तिकप्रायश्चित्तं काशीखंडादौ चातुर्वर्ण्यस्य । तनुत्यागविधयश्च युगान्तरपरा एव ॥

१—यत्तु कैश्चिदुक्तम्—पुरुषाणामिव स्त्रीणामप्यात्महननस्य प्रतिषिद्धत्वादतिप्रवृद्धस्वर्गाभिलाषाय प्रतिषेधशास्त्रमतिक्रामन्त्या अयमनुगमनोपदेशः श्येनप्रदिति । तदयुक्तम् ये तावत् श्येनकरणिका हिंसायां विधिसंस्पर्शाभावेन प्रतिषेधसंस्पर्शात् फलद्वारेण श्येनस्यानर्थत्वं वर्णयन्ति, तेषां मते हिंसा एव स्वर्गार्थतयानुगमनशास्त्रेण विधीयमानत्वात्प्रतिषेधसंस्पर्शाभावादग्नीषोमीयपशुवत्स्पृष्टमेवानुगमनस्य श्येनवैषम्यम् । यत्तु मतम्—हिंसा नाम मरणानुकूलो व्यापारः, श्येनश्च परमरणानुकूलव्यापाररूपत्वमिदं हिंसैव । कामाधिकारे च करणाशेरागतः प्रवृत्तिसंभवेन विधेयप्रवर्तकत्वाद्वागप्रयुक्तहिंसारूपत्वमिदं श्येनः प्रतिषिद्धः स्वरूपेणैवानर्थ इति, तत्राप्यनुगमनशास्त्रेण मरणस्यैव स्वर्गसाधनतया विधानान्मरणयद्यपि रागतः प्रवृत्तिस्तथापि मरणानुकूले व्यापारे अग्निप्रवेशादावितिकर्तव्यतारूपे विधित एव प्रवृत्तिरिति न निषेधस्यावकाशः 'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः' इतिवत् । तस्मात्स्पृष्टमेवानुगमनस्य श्येनवैषम्यम् । 'तस्मादुह न परायुषः स्वःकामी प्रेयात्' इति श्रुतिविरोधादनुगमनमयुक्तमिति 'स्वःकाम्यायुषः प्राक् न प्रेयात्' इति । स्वर्गफलोद्देशेनायुषः प्रागायुर्व्ययो न कर्तव्यो मोक्षार्थिना

प्रयागोपि त्रिस्थलीसेतौ स्कान्दे-‘यथाकथंचित्तीर्थेस्मिन्प्राणत्यागं करो
तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि ॥’ पात्रे विष्णुः-‘देहत्यागं तथ
कुर्वन्ति मम संनिधौ । मत्तनुं प्रविशन्त्येव न पुनर्जन्मने नराः ॥’ कौर्मे-
यदि वा दीनः क्रुद्धो वापि भवेन्नरः । गङ्गायमुनमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्य
ईप्सिताल्लभते कामान्वदन्ति मुनिपुंगवाः॥’ तथा-‘या गतियोगयुक्तस्य सत्त्वस्थ
षिणः । सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसंगमे ॥’ वाराहे-‘तत्र यो मुञ्चति
वटमूलेषु सुन्दरि । सर्वलोकानतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते ॥’ तथा-‘अकामो वा
वा वटमूलेषु सुन्दरि । शीघ्रं प्राणान्प्रमुञ्चेत् यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥’ तथा-‘प
नविस्तीर्णे प्रयागस्य तु मण्डले । व्यतीतान्पुरुषान्सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश ॥ नरा
सर्वान् यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥’ ब्राह्मे-‘ध्यात्वा विष्णुपदाम्भोजं प्रयागे विष्णु
तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥ दुष्कृतोपि दुराचारो ब्रह्महत्यादि
हरिं ध्यात्वा त्यजेद्देहं प्रायशो मुक्तिमान्भवेत् ॥’ भविष्योत्तरे-‘समाः सहस्रा
वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश । महाहवे षष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशके भारत
गतिः ॥’ इति सामान्यतोपि फलम् । एवमन्येपि विधयो ज्ञेयाः । यत्तु गौडाः
गादिमरणं ब्राह्मणभिन्नविषयमित्याहुस्तद्वर्षणं पितामहचरणैः प्रयागविधौ क
नात्रोच्यते ॥

अत्र दशाहमाशौचम् । त्रिरात्रस्य प्राप्तकालगोचरत्वादिति भट्टाः । युक्तं तु त्रि
दिवोदासीयेष्वेवम् । शुद्धितत्त्वेपि काश्यपः-‘अनशनमृतानामशनहि
म्रिजलप्रविष्टानां भृगुसंग्रामदेशान्तरमृतानां जातदन्तानां च त्रिरात्रम् ।’ इति । प
णान्तप्रायश्चित्तेपि । पूर्वोक्तश्चात्महादेर्दाहाशौचादिनिषेधस्तदानीमेव । वत्सरान्ते तु
ध्वं देहिकं कुर्यात् । ‘गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च । ऊर्ध्वं संवत्सरात्तु
वर्मेवौर्ध्वदेहिकम्’ इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् । एवं म्लेच्छीकृतानामपि ग
द्धमपि कार्यम् । ‘ब्रह्महा च कृतघ्नश्च गोघाती पञ्चपातकी । सर्वे ते निष्कृति
गयायां पिण्डपातनात् ॥’ इत्यग्निपुराणात् । एवं ब्राह्मेपि-‘क्रियते पतितानां
संवत्सरे क्वचित् । देशधर्मप्रमाणत्वाद्व्याकूपे स्वबन्धुभिः । मार्तण्डपादमूले वा
हरिहरौ स्मरन् ।’ सूर्यपद इत्यर्थः ॥

तत्र वर्षमध्ये कृत्यमुक्तमपरार्के वायुपुराणे-‘शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां कुर्याच्च
तु वत्सरम् । द्वादशाहनि वा कुर्याच्छुक्ले च प्रथमेहनि ॥’ द्वागलेयः-‘नारायण

‘कृत्वा चान्द्रायणं पूर्वं क्रिया कार्या यथाविधि । नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः ॥ पिण्डोदकक्रियाः पश्चादृषोत्सर्गादिकं च यत् । एकोदिष्टानि कुर्वीत सपिण्डीकरणं तथा ॥’ दिवौदासीये वृद्धशतातपस्तु—‘पतिते च मृते शुद्धौ प्राजापत्यांस्तु षोडश । मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् ॥’ इत्याह । इदं प्रायश्चित्तार्हापित्रादिविषयम् । ‘इन्द्रियैरपरित्यक्ता ये च मूढा विषादिनः । घातयन्ति स्वमात्मानं चाण्डालादिहताश्च ये ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दयया समभिप्लुताः । यथाश्राद्धं प्रतन्वन्ति विष्णुनामप्रतिष्ठितम् ॥ तथा ते संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य स्वयंभुवे ।’ हेमाद्रौ तेनैवोक्तेः । तत्रैव बौधायनोपि—‘नारायणबलिं व्याख्यास्यामः—(चण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि । दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥ विषशस्त्ररज्जुपाषाणाद्देशान्तरमृते वा) अभिशस्तपतितसुरापात्मत्यागिनां ब्राह्मणहतानां च द्वादशवर्षाणि त्रीणि वा कुर्वीत ।’ इति ॥

गृह्यपरिशिष्टे तु—चण्डालादित्याद्युक्ता—‘दग्ध्वा शरीरं प्रेतस्य संस्थाप्यास्थीनि यत्नतः । प्रायश्चित्तं तु कर्तव्यं पुत्रैश्चान्द्रायणत्रयम् ॥’ इत्युक्तम् । मदनरत्ने ब्राह्मे—‘प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिवोदितः । चाण्डालैर्ब्राह्मणैश्चौरैर्निहतो यत्र कुत्रचित् । तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः । चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं तस्य विशुद्धये ॥ यद्वा कृच्छ्रान्पञ्चदश कृत्वा तु विधिना दहेत् । बुद्धिपूर्वमृतानां तु त्रिंशत्कृच्छ्रं समाचरेत् ।’ इत्युक्तम् । स्मृतिरत्नावल्यां तु—‘द्विगुणं प्रायश्चित्तं कृत्वा वांगप्यब्दात्सर्वं कार्यम्’ इत्युक्तम् । ‘आत्मनो घातशुद्धयर्थं चरेच्चान्द्रायणद्वयम् । तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा पुनः ॥ अर्वाक् संवत्सरात्कुर्याद्दहनादि यथोदितम् । कृत्वा नारायणबलिमनित्यत्वात्तदायुषः ॥’ इति । इदं चात्मवधनिमित्तं तज्जातिवधप्रायश्चित्तेन समुच्चितं कार्यम् । अत एव बौधायनोक्तं ‘द्वादश वर्षाणि त्रीणि वा’ इति । मदनपारिजाते स्मृत्यर्थसारे च—‘ब्रह्मादीनां तद्योग्यं प्रायश्चित्तं कृत्वा नारायणबलिः कार्यः ।’ इत्युक्तम् । एवं म्लेच्छीकृतानामपि । यत्तु कश्चिदाह—‘पुत्रकृतेन प्रायश्चित्तेन पितुः पापनाशो मानाभावः आत्मघाते तु वचनादस्तु । महापातके तुः कथं स्यादिति । सः स्वयमेवात्मवधप्रायश्चित्तस्य जातिवधनिमित्तेन समुच्चयं वदन् हृदयशून्य एव । नहि जातिवधनिमित्तं पुत्रैः कार्यमिति वचनमस्ति । पुत्रकर्तृकसर्वप्रायश्चित्तादिविप्लवापत्तेः । प्रागुक्तबौधायनवचनाच्चेति दिक् । इदं प्रायश्चित्तार्हाणामेव । प्रायश्चित्तानर्हणां तु पतितोदकमात्रं कार्यम् ।’ इति केचित् । मदनपारि-

जातादिस्वरसोप्येवम् । वस्तुतस्तु-‘तदर्हानर्हयोर्वचनेऽनुपादानादविशेषात्तत्रापि न
यणबलिर्गयाश्चादं चेति युक्तम् ॥

पतितोदकविधिस्तु-‘पित्राद्यतिरिक्तविषयः ।’ इत्यपरे । स यथा हेमाद्रौ ब्रा
‘पतितस्य तु कारुण्याद्यस्तृप्तिं कर्तुमिच्छति । स हि दासीं समाहूय सर्वगां दत्तवेतना
अशुद्धघटहस्तां तां यथावृत्तं ब्रवीत्यपि । हे दासि गच्छ मूल्येन तिलानानय सत्वरम् ॥ त
पूर्णं घटं चेमं सतिलं दक्षिणामुखी।उपविष्टा तु वामेन चरणेन ततः क्षिप ॥ कीर्तयेः पात
संज्ञां त्वं पिबेति मुहुर्वदेः। निशम्य तस्य वाक्यं सा लब्धमूल्या करोति तत् ॥ एवं कृते भवे
पतितानां च नान्यथा ।’ इति । इदं च मृताहे कार्यम् । पतितस्य दासी मृताह्नि यदा
मपवर्जयेदेतावतायमुपचरितो भवतीति मदनरत्ने विष्णूक्तेः। इदं चात्मत्यागिविषय
आत्मत्यागिनः पतितास्ते नाशौचोदकभाजः स्युरित्युपक्रम्य विष्णुना एतस्याभिध
दिति गौडाः । यत्तु कश्चिदाह-‘यः पतितो घटस्फोटेन बान्धवैर्वहिष्कृतस्त
याणि क्रियानिषेधवाक्यानि । जीवत्येव तस्मिन्नन्त्यकर्मणः कृतत्वात्तत्पुनः क
भावात् ।’ इति । स बन्धुत्यागेन जातवैराग्यस्य कृतप्रायश्चित्तस्याप्यकरणापत्तेर्मि
क्षरादिविरोधमपश्यन् मूर्ख इत्युपेक्षणीयः । न च कृतघटस्फोटस्य संग्रहविधि
वाच्यम् । मनुनाऽकृतघटस्फोटस्य त्यागमुक्त्वा-‘प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुम्भ
नवम् । तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥’ इत्युक्तेः । अन्यथा प्राय
मात्रे एतत्प्रसङ्गात् । अतो घटस्फोटेन बहिष्कृतस्यापि पित्रादेरुद्दान्ते नारायणबलि
निषेधास्तु पितृव्यादिपरा इति तत्त्वम् । केचित्तु नारायणबलौ कृतेऽप्यन्त्यकर्म स
नवर्जं कार्यम् । ‘गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैवच । व्युत्क्रमाच्च प्रमीतान
कार्या सपिण्डता ॥’ इति वचनात् । ‘ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते’ इति श्र
प्रकारोक्तेश्चेत्याहुः । ते हेमाद्रिस्थपूर्वोक्तषट्त्रिंशन्मतविरोधान्निर्मूलत्वाच्छ्राद्धप्र
स्य वृद्धिश्चाद्विषयत्वादुपेक्ष्याः ॥

नारायणबलिस्तु हेमाद्याद्यनुसारेणोच्यते । तत्रादौ क्रियानिबन्धे ग

नारायणबलिर्निर्णयः । तर्पणमुक्तम् । ‘कार्यं पुरुषमूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवैरपि । दक्षिणाभि

भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरन् ॥ अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्र

धरः । अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदोभव ॥’ इति शुक्लैकादश्यां देशकालौ

र्त्यामुकगोत्रस्यामुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषनाशार्थमौर्ध्वदेहिकसंप्रदानत्वयोग्य

इदर्थं नारायणबलिं करिष्ये इति संकल्प्य । ब्रह्माणं विष्णं शिवं शम्भं पेतं च

मयो भवेत् ॥ प्रेतो दर्भमयः कार्यं इति देवप्रकल्पना' इति गारुडोक्तासु सर्वासु हैमीषु वा प्रतिमासु षोडशोपचारैः पुरुषसूक्तेनाभ्यर्च्याग्निं प्रतिष्ठाप्य चरुं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं नारायणायेदमिति हुत्वा देवानामग्रे दक्षिणाग्रदर्भेषु विष्णुरूपं प्रेतं स्मरन् नामगोत्राभ्यां मधुघृततिलयुतान् दश पिण्डान् यज्ञोपवीत्येवासु कगोत्रासु कशर्मन् प्रेतं विष्णुरूपाय ते पिण्ड उपतिष्ठतामिति दत्त्वा पुरुषसूक्तेनाभिमन्त्र्य तेनैव शंखोदकेनाभिषिच्याभ्यर्च्या मुकशर्माणमसुकगोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि' इति पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं तर्पयित्वा एकं मामात्रं ब्रह्मादिपञ्चभ्यो दद्यात् । मन्त्रस्तु—'ब्रह्मविष्णुमहादेवा यमश्चैव सार्किकरः बलिं गृहीत्वा कुर्वन्तु प्रेतस्य च शुभाङ्गतिम् ॥' इति मिताक्षरायां तु होमबल्याति नोक्तम् । ततः प्रतिदैवतं त्रिविधं फलं शर्करामधुगुडघृतानि च निवेद्य पिण्डानभ्यर्च्य नद्यां क्षिप्त्वा रात्रौ नव सप्त पञ्च वा विप्रान्निमन्त्र्योपोषितो जागरं कृत्वा श्रोभूते पुनर्विष्णुं यमं संपूज्यैकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपञ्चकं करिष्य इत्युक्त्वा विष्णुब्रह्मशिवयमं प्रेतान् स्मरन् विप्रानुपवेश्य प्रेतस्थाने चैकं विष्णुं स्मरन् पाद्यावाहनार्घ्ययुतं तृप्तिप्रश्नान्तं कृत्वोल्लेखनादि कृत्वान्नशेषेण विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय यमाय सपरिवाराय चतुर्पिण्डान् दत्त्वा प्रेतनामगोत्रे स्मृत्वा विष्णुनाम्ना पञ्चमं दत्त्वाभ्यर्च्याचान्तेभ्यः दक्षिणां दत्त्वैकं प्रेतं स्मृत्वा विशेषतः संतोष्य विप्रैः प्रेतायेदं तिलोदकमुपतिष्ठतामिति सतिलमुदकं दापयित्वा भुञ्जीतेति । अत्र विशेषान्तरं भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम् ॥

सर्पहते तु वर्षपर्यन्तं पूर्वद्वयेकभक्तपूर्वं शुक्लपञ्चम्यामुपवासं नक्तं वा कृत्वा पिष्टमनागमनन्तवासुकिशंखपद्मकम्बलकर्कोटकाश्वतरधृतराष्ट्रशंखपालकालियतक्षकपिलेति नामभिः प्रतिमासं संपूज्य पायसेन विप्रान् संभोज्य वत्सरान्ते हैमं नागं गां च दत्त्वा नारायणबलिं कुर्यात् । एतन्मूलं तु हेमाद्रौ ज्ञेयम् । बौधायनसूत्रे—'सर्पमृतान् नमोस्तु सर्पेभ्यः' इति तिस्र आहुतीर्हुत्वा, 'उदके मृतानां समुद्राय वयुनाय हुत्वेति क्रियां कुर्यादिति शेषः । व्यासः—'सौवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम् । व्यासाय दत्त्वा विधिवत्पितुरानृण्यमाप्नुयात् ॥' हेमाद्रौ भविष्ये—'पञ्चम्यां पन्नगं हैमं स्वर्णेनैकेन कारयेत् । क्षीराज्यपात्रमध्यस्ते संपूज्य विप्राय दापयेत् ॥ प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना ।' इति । अपरावे स्मृत्यन्तरेपि—'तदैव शुद्ध्यति प्रेतो नारायणबलौ कृते । यो ददाति क्रियापिण्डं तस्मै प्रेताय वै सुतः ॥ तस्यैवाशौचमुद्दिष्टं त्र्यहमेव न संशयः । विष्णुश्राद्धसमाप्तौ

अथ विधानादाशौचाभावः । यथा-यतिशुद्धमृतादिषु 'त्रयाणामेव' इति शब्दोऽस्ति ।

च कुर्याद्वाहादिकाः क्रियाः । यतोः किञ्चिन्न कर्तव्यं नचा-
विधानदशौचाभावः । सः ॥' इति ब्राह्मात् । उशनाः—'एकोद्दिष्टं न कु-

बोधायनः-‘नारायणवल्लिश्वास्य कर्तव्यो द्वादशेशहनि ॥’ अस्य पार्वणे
ज्येयः । तं च स एवाह-‘कृत्वा विष्णोर्महापूजां पायसं विनिवेदयेत् । अग्नौ
तच्छेषं व्याहृतीभिः समाहितः ॥ यतीन् गृहस्थान्साधून्वा निमन्त्र्य द्वाद
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रैर्द्वादशनामभिः ॥ संभोज्य हव्येनान्येन दक्षिणां च
त्रयोदशं द्विजश्रेष्ठमात्मज्ञं संयतेन्द्रियम् ॥ विष्णुं यथातथाभ्यर्च्य पाद्याद्यैश्च
दद्यात् पुरुषसूक्तेन गन्धपुष्पादिकं क्रमात् ॥ वस्त्रालंकरणादीनि यथाशक्ति
उच्छिष्टसन्निधौ तस्य दर्भान्सास्तीर्य भूतले ॥ भूर्भुवःस्वःस्वधायुक्तैस्तस्मै
त्रयम् । अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ तत्फलं लभते देव य
यतिक्रियाम् ॥’

शौनकस्तु—‘शौनकोहं प्रवक्ष्यामि नारायणवर्णिं परम् । चण्डालादुदका
णाद्वैद्युतादपि ॥ दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च रज्जुशस्त्रविषाश्मभिः । देशान्तरमृतानां
वान्यसाधनः ॥ जीवच्छ्राद्धमृतानां च कनिष्ठानां तथैव च । यतीनां योगि
मन्येषां मोक्षकांक्षिणाम् ॥ पुण्यायाचक्षयार्थाय द्वादशेहानि कारयेत् ॥ द्वाद
शेऽद्वान्ते पञ्चम्यां पूर्णमेव च ॥

विप्रान् संभोज्य तैरेव द्वादशपिण्डान्दद्यादित्यधिकमाह । युद्धमृते तु प्रागुक्तम् ।
वच्छ्राद्धे मृते सपिण्डैराशौचादि कार्यं न वा । तदुक्तं हेमाद्रौ लैङ्गे-‘मृते
कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम् । कालं गते द्विजे भूमौ खनेद्वापि दहेत वा ॥ पु
मशेषं च कृत्वा दोषो न विद्यते ॥’ जीवत्यपि विशेषस्तत्रैवोक्तः । ‘नित्यं न
यत्तु कुर्याद्वा संत्यजेत वा । बान्धवोपि मृते तस्य नैवाशौचं विधीयते ॥ सूतकं च
स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥’ एतद्योगिविषयम् । ‘योगमार्गरतोपि च’ इति तस्या
तथाऽऽहिताग्नौ प्रोषितमृते तदस्थिदाहात्पूर्वं पित्रादीनामाशौचं सन्ध्याति
पश्च नास्ति । ‘अनाग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विद्या
मृते सति ॥’ इति स्मृतेः । आहिताग्नेर्दाहात्प्रागपि दशाहः । संस्काराङ्गं च भिन्नं
इति धूर्तस्वामी रामाण्डारश्च । तच्चिन्त्यम् । मूलैक्याद्वचोविरोधाच्च । एतत्
म् । अत्र देहस्यैव संभवे दाहः । ‘आहिताग्नौ विदेशस्थे मृते सति कलेवरम्
नाग्निभिर्यावत्तदीयैरपि दह्यते ॥’ इति ब्राह्मोक्तेः ॥

तदभावे छन्दोगपरिशिष्टे-‘विदेशमरणेस्थीनि आहृत्याभ्यज्य सर्पिषा ।
हिंषाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥ अस्थनामलाभे पर्णानि शकलान्युक्तयावृता
दस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम्’ ॥ हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते-‘कुर्याद्वा
दभैस्त्रिंशतषष्टिभिः । पालाशीभिः समिद्धिर्वा संख्या चैवं प्रकीर्तिता ॥’ भवि
त्वारिंशच्छिरस्थाने ग्रीवायां च दशैव तु । बाह्वोश्चैव शतं दद्याद्विंशतिं च त
उदरे विंशतिंदद्यात्त्रिंशतं कटिदेशयोः । ऊर्वोश्चैव शतं दद्यात् त्रिंशतं जानुजंघ
दांगुलीषु दश वै एषा च प्रेतकल्पना ॥ मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः-‘शिरस्यशीत्य
ग्रीवायां तु दशैव तु । बाह्वोश्चैकशतं दद्याद्दश चैवांगुलीषु च ॥ उरासि त्रिंशतं द
जठरोदरे । द्वादशार्द्धं वृषणयोरष्टार्धं शिश्न एव तु ॥ ऊर्वोश्चैकशतं दद्यात्त्रिंशतं
द्वयोः । पादांगुलीषु द्वे दद्यादेतत्प्रेतस्य कल्पनम् ॥ मस्तके नारिकेरं तु अला
तथा ॥ पञ्चरत्नं मुखे न्यस्य जिह्वायां कदलीफलम् ॥ चक्षुषोस्तु कपदौ द्वौ न
तु कालकम् । कर्णयोर्ब्रह्मपत्राणि केशे वटप्ररोहकाः ॥ नालकं कमलानां तु अ
विनिक्षिपेत् । मृत्तिका तु वसा धातुर्हरितालकगन्धकौ ॥ शुके तु पारदं दद्यात्पु
लं तथा । संधीषु तिलपिष्टं तु मांसं स्याद्यवपिष्टकम् ॥ मधु स्याल्लोहितस्थाने त्व
मृगतवचा । स्तनयोर्जम्बीरे देये नासायां शतपत्रकम् ॥ कमलं नाभिदेशे स्
वृषणाश्रिते । लिङ्गे च रक्तमूलं तु परिधानं दुकूलकम् ॥ गोमूत्रं गोमयं गन्धं स

न वार्ता नैव चागमः । ऊर्ध्वं पञ्चदशाद्वर्षात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम् ॥ बु
संस्कारं यथोक्तविधिना ततः । तदादीन्येव सर्वाणि प्रेतकर्माणि कारयेत् ॥
प्रतीक्षा पितृभिन्नविषयेति मदनरत्ने उक्तम् । गृह्यकारिकायां तु-‘तस्य प
विंशत्यब्दोर्ध्वतः क्रिया । ऊर्ध्वं पञ्चदशाब्दात्तु मध्यमे वयसि स्मृता ॥ द्वाद
र्ध्वन्तरे वयसि स्मृता । चान्द्रायणत्रयं कृत्वा त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा सुतैः ॥
कृतिं दग्ध्वा कार्याः शौचादिकाः क्रियाः ।’ इत्युक्तम् । पराशरः-‘ते
नशस्तिथिर्न ज्ञायते यदि । कृष्णाष्टमी ह्यमावास्या कृष्णा चैकादशी च य
पिण्डदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ।’ इदं मासज्ञाने ॥

तत्राहिताग्नेः पूर्णाशौचम् । अनाहिताग्नेस्तु त्रिरात्रम् । ‘अनाहिताग्नेर्देहस्तु त
ग्निना स्वयम् । तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः पुमानपि ॥ वेष्टितव्यस्तथा
कृष्णसारस्य चर्मणा । ऊर्णसूत्रेण बद्धा तु प्रलेप्तव्यो यवैस्तथा ॥ सुपिष्टैज
ग्वव्यश्च तथाग्निना । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सबान्धवैः ॥
दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।’ इति ब्राह्मोक्तेः । इदं त्रिरात्रं न दशाहमध्ये
‘प्रोषिते कालशेषः स्यात्’ इत्युक्तेः । किंतु तदूर्ध्वम् । तत्र पत्नीपुत्रयोः पूर्वमंग
योर्दशाहाद्येव । गृहीताशौचयोस्तु त्रिरात्रम् । पत्नीमृतौ भर्तुश्चैवं सपत्न्योश्चैव
त्यर्थसारे । अन्यसपिण्डानां तु सर्वत्र पर्णशरदाहे त्रिरात्रम् । तदाहाङ्गिराः
‘मृतं श्रुत्वा नाशौचं चेत्कथंचन ॥’ गृहीतमिति शेषः । कालात्ययेपि कुर्वीत
दिनत्रयम् ।’ इति । स्मृत्यर्थसारे तु-‘गृहीताशौचानां स्नानमा
बह्वृचपरिशिष्टेपि-अथातीतसंस्कारः । स चेदन्तर्दशाहं स्या
समापयेदूर्ध्वमाहिताग्नेर्दाहात्सर्वमाशौचं कुर्यादन्येषु पत्नीपुत्रयोः पूर्वमंगृही
सर्वमाशौचम् । गृहीताशौचयोः कर्माङ्गमिति त्रिरात्रम् । षडशीताव
विश्वादर्शे तु-‘प्रतिकृतिदहने त्वग्निदे स्यात्त्रिरात्रम्’ इत्युक्तम् । द्वादशवर्षाणि
दाहे तु पुत्रादीनां सर्वेषां त्रिरात्रमिति कल्पतरुदिवोदासादयः ॥

अथ प्रेतसंस्कारे कालः । हेमाद्रौ गार्ग्यः-‘प्रत्यक्षशवसंस्कारे
विशोधयेत् । आशौचमध्ये संस्कारे दिनं शोधयं तु संभवे ।
प्रेतसंस्कारे कालः । विनिवृत्तौ चेत्युनः संस्क्रियते मृतः । संशोध्यैव दिनं ग्राह्य

त्सराद्यादि ॥ प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम् । कृष्णपक्षश्च तत्रापि वर्जयेत्तु
 दिनक्षयम् ॥' वाराहे—'चतुर्थाष्टमगे चन्द्रे द्वादशे च विवर्जयेत् । प्रेतकृत्यं व्यतीपाते
 वैधृतौ परिधे तथा ॥ करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिने तथा । त्रयोदश्यां विशेषेण जन्म
 तारात्रये तथा ॥' जन्मदशमैकोनविंशानि जन्मताराः । भारते—'नक्षत्रे तु न कुर्वीत
 यस्मिन्नातो भवेन्नरः । न प्रौष्ठपदयोः कार्यं तथाग्रेये च भारत ॥ दारुणेषु च सर्वेषु
 प्रत्यरे च विवर्जयेत् ॥' काश्यपः—'भरण्यार्द्रामघाश्लेषामूलद्विचरणानि च । प्रेतकृ-
 त्येतदुष्टानि धनिष्ठाद्यं च पञ्चकम् ॥ फाल्गुनीद्वितयं रोहिण्यनूराधापुनर्वसू । आषाढे द्वे
 विशाखा च भानि द्विचरणानि च ॥' ज्योतिर्नारदः—'चतुर्दशीतिथिं नन्दां भद्रां
 शुक्रावासरौ । सितेज्ययोरस्तमयं द्व्यङ्घ्रिभं विषमाऽङ्घ्रिभम् । शुक्लपक्षं च संत्यज्य
 पुनर्दहनमुत्तमम् । वसूत्तरार्धतः पञ्चनक्षत्रेषु त्रिजन्मसु ॥ पौष्णब्रह्मर्क्षयोश्चैव दहनात्कु-
 लनाशनम् ॥' अस्यापवादमाह तत्रैव बैजवापः—'प्रेतस्य साक्षाद्गन्धस्य प्राप्ते त्वेकाद-
 शेहनि । नक्षत्रतिथिवारादि शोधनीयं न किञ्चन ॥ युगमन्वादिसंक्रातिदर्शे प्रेतक्रिय-
 यादि । दैवादापतिता तत्र नक्षत्रादि न शोधयेत् ॥' विश्वप्रकाशेपि—'गुरुभार्ग-
 वयोमौढये पौषमासे मलिङ्गुचे । नातीतः पितृमेघः स्याद्द्रव्यां गोदावरीं विना ।
 दानमपि तत्रैवोक्तम्—'भद्रायां भूमिदानं स्यात्त्रिपादक्षं हिरण्यदः । वारेषु तत्तद्वर्ण-
 तु वासोदानं विधीयते ॥ धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि दापयेत् । एकाशीतिपल-
 कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् ॥ नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥' इत्यल-
 प्रसङ्गेन ॥

हेमाद्रौ वृद्धमनुः—'अमृतं मृतमाकर्ण्य कृतं यस्यौर्ध्वदोहिकम् । प्रायश्चित्तमस्मै
 स्मार्तं कृत्वाग्नीनादधीत च ॥ जीवन्त्यदि समागच्छेद् घृतकुम्भे निमज्ज्य तम्
 उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ॥ द्वादशाहं व्रतं चर्या त्रिरात्रमथवास्य तु
 स्नात्वोद्धहेत तां भार्यामन्यां वा तदैभावतः ॥ अग्नीनाधाय विधिवद् ब्रात्यस्तोमेन
 वा यजेत् । अथैन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु । इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीहि
 प्सितांश्च क्रतूंस्ततः ॥' अनाहिताग्नेस्तु चरुः । मृतवार्ताश्रवणे त्वाश्वलायनः—
 'सुरभय एव यस्मिन् जीवे मृतशब्दः' इति । यस्य तु जीवत एव मृतिवार्ता श्रुत्व
 स्त्रिया सहगमनं कृतं तदा तद्वैधमेव । भर्तुर्मरणज्ञानस्यैव निमित्तत्वात् । प्रमादस्त्व-
 गौरवेणायुक्तत्वाच्चेति केचित् । तन्न । मरणज्ञानस्य निमित्तत्वेतीतानागतयोरपि
 तत्रापत्तेः । भर्तुर्वैधदाहाभावेन तस्याः सहगमनाभावान्न । तस्मादाशौचवज्ज्ञातमरण-

तथा सर्पसंस्कारे कृते त्रिरात्रमाशौचम् । तद्विधिं चाह शौनकः—‘अथ वक्ष्यामि
 संस्कारविधिसुत्तमम् । सिनीवाल्यां पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वापि कृतसर्पसंस्कारविधिः ।
 कृतसर्पवधो विप्रः पूर्वजन्मनि वा यदि । वधं प्रख्यापयेत्पापी चरेत्
 श्रुतुर्दश ॥ विप्राय लोहदण्डं च तन्मूल्यं वापि दापयेत् ॥ मूल्यमाह—‘निष्कत्रयं
 वानिष्कमेकं कनीयसम् । अनुमत्यादिकर्तृणां निष्कमर्धं तदर्धकम् ॥’ इदं स्वर्णसंस्कारं
 शक्यता ज्ञेयम् । संस्कारमाह—‘प्रियंगुग्रीहिगोधूमतिलपिष्टेन वा पुनः । कृत्वा स
 शूर्पे निधाय प्रार्थयेदहिम् । एहि पूर्वमृतः सर्प अस्मिन्पिष्टे समाविश । संस्कारार्थमहं
 प्रार्थयामि समाहितः ॥ वस्त्रोपवीतगन्धाद्यैः संपूज्य च हरेद्ब्रह्मः । कुर्यात्संस्कारं
 प्राणायामपुरःसरम् ॥ यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्पसंस्कारकर्म तु । लौकिकाग्निं प्र
 समिदाधानमाचरेत् ॥ ततोऽग्नेरग्निदिग्भागे भूमिं संप्रोक्ष्य वारिभिः । चितिं
 संस्तीर्य कुशैराग्नेयकाग्रकैः ॥ पर्युक्ष्याग्निं परिस्तीर्य परिषिच्य समर्चयेत् । कृ
 धानमाधारौ चक्षुषी च यथाविधि ॥ सर्पं गृहीत्वा यत्नेन चितिमारोपयेत्सुधीः ।
 जुहुयादाज्यमग्नौ व्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥ सर्पास्थे जुहुयादाज्यं व्याहृत्या च सम
 आज्यशेषं ऋवेणैव सर्पदेहे निषेचयेत् ॥ चमसस्थैर्जलैः सर्पं व्याहृत्याभ्युक्ष्य पा
 अग्ने रक्षाण इत्यनया सर्पायाग्निं प्रदापयेत् ॥ उपतिष्ठेद्ब्रह्मन् नमोस्तु सर्पमन्त्र
 ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्पवधो मया । पूर्वजन्मनि वा सर्पं तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥
 ज्येन ततश्चाग्निं प्रोक्ष्य व्याहृतिभिर्जलैः । नास्थिसंचयनं कुर्यात् स्नात्वा चम्य गृहं
 ब्रह्मचर्यादिकं कार्यं त्रिरात्राशौचमिष्यते । सचैलं तु चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा विप्रान् समन्
 सर्पोनन्तस्तथा शेषः कपिलो नाग एव च । कालिकः शंखपालश्च भूधरश्चेति नाम
 गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपाद्यैरर्चयेद् द्विजान् । घृतपायसभक्ष्यैश्च द्विजान्शौ तु भोज
 एवं कृते विधानेन सर्पसंस्कारकर्मणि ॥ सर्पहिंसाकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशय
 इति सर्पसंस्कारः ॥

कच्चित्तु जीवतोऽप्यन्त्यकर्माशौचं च कार्यम् । यथा—प्रायश्चित्तानिच्छोः प
 घटस्फोटः—‘पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह । निन्दितेहनि सायाद्वे ज्ञा
 गुरुसंनिधौ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्तदा । अहोरात्रमुपासीरन्
 जीवतोऽन्त्यकर्मा- बान्धवैः सह ॥’ इति मनूक्तेः । निन्दिते रिक्तादौ अप
 शौचं च । वसिष्ठोपि—‘वेदविष्ठावकशूद्रयाजकोत्तमवर्णवर्गपतितास्तेषां प

नयनमपात्रसंस्कारादकृत्स्नं पात्रमादाय दासोऽसवर्णपुत्रो वा बन्धुरसदृशो वा गुण
 सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्यापः पूर्णपात्रमस्मै निनयेत्

धर्मयेयुस्तद्धर्माणस्तं धर्मयन्तः ' इति । उत्तमवर्णा ब्राह्मणादयः तेषां वर्गः समूहस्मात्पातिता ब्रह्महादयः । अपात्रसंस्कारः कुतिसतपात्रसमूहः । प्रवृत्ताग्राः छिन्नाग्राः स्वैरं यथेच्छं धर्मादिकार्यं कुर्युः । अस्माद्वचनसामर्थ्यात्पात्रनिनयनात्प्राक् पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वधिकारो नास्तीत्यपरार्कः । 'तस्य विद्यागुरुयोनिस्वन्धांश्च सन्निपातं सर्वाण्युदकादिप्रेतकार्याणि कुर्युः । पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः दासः कर्मकरोवाऽकरादमेध्यं पात्रमानीय दासीघटात् पूरयित्वा दक्षिणामुखः पदा विपर्यस्येदमुदकरोमीति नामग्राहं सर्वेन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा अप उपस्पृश्य ग्राहं प्रविशेयुः' । इति गौतमोक्तेश्च । उदकादीत्युक्तेर्दाहनिवृत्तिः । प्रेतकार्याण्येकादशश्राद्धान्तानि । दास्याहतोऽम्बुघटो दासीघटः । तेनोदकेनामेध्यपात्रं पूरयित्वा दासां न्युब्जं वामपादेन कुर्यादिति हरदत्तः । अत्र नामग्राहवचनमुदकादिप्रेतकार्ये तद्वर्जित्वार्थम् । तेन तच्चूर्णी भवति । एतच्च प्रायश्चित्तानिच्छोः । 'तस्य गुरोर्वान्धवारज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्याप्य तमनुभाष्य पुनःपुनराचारं लभस्वेति सपद्येवमप्यनस्थितमतिः स्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत्' इति शंखोक्तेः । जीवन्तमेवोद्दिश्य पिण्डोदश्राद्धानि नाम्ना दद्यादित्यपरार्कः ॥

कृतप्रायश्चित्तस्य घटस्फोटे कृतेऽपि संग्रहविधिमाह गौतमः — 'यस्तु प्रायश्चित्तं कृत्वा तेन शुद्धेयत्तस्मिञ्छुद्धे शातकुम्भमयं पात्रं पुण्यहृदात्पूरयित्वा स्रवन्तीभ्यो वा तत एनस्य

स्पर्शयेयुरथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत्स प्रतिगृह्य जपेच्छान्ताद्यौः शातं पुनःसंग्रहविधिः ।

पृथिवी शान्तं विश्वमन्तरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिः पानीभिस्तरत्समन्दीभिः कूष्माण्डैश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं दद्याद्वा चाचार्याय । यस्तु प्राणान्तिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्धयेत्सर्वाण्येव तस्मिन्नुदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्वन्नेतदेव शान्त्युदकं सर्वेषूपपातकेषु' इति । घटस्फोटोत्तरं प्राणान्तिकप्रायश्चित्ते कृते मृत एव शुद्धयेन्न तत्र संग्रहविधिः । अतस्तेन विनापि प्रेतकर्म कुर्यादित्यर्थः । उपपातकेष्वपि घटस्फोटे कृत एवं कार्यमित्यर्थः । याज्ञवल्क्यः—'चरितव्रत आश्रितव्रत निनयेरन्नवं घटम् । जुगुप्सेरन्नचाप्येनं संवसेयुश्च सर्वशः ॥' कृतघटस्फोटस्यैवायं संग्रहविधिरिति मिताक्षरायामपरार्कं च । अन्यथा प्रायश्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गः । मनुरपि घटस्फोटमुक्त्वा—'निवर्तैरस्ततस्तस्मात्संभाषणसहासैः ।' इत्युक्त्वा—'प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्द्धं प्राश्नीयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये' इति तच्छब्दं प्रायुङ्क्त । अपरार्कं वसिष्ठोपि—'पतितानां चरितव्रतानां प्रत्युद्धा

परिग्रहः । तत्रोद्धरतां हसन्निवाग्रेसरः स्यात् पातयतां घटस्फोटं कुर्वतां शोषश्चाद्गच्छेत् । मातापित्रादिहन्तृणां परिग्रहो न कार्यः । तत्प्रसादे सति चीर्णव्ययः कार्यः । प्रवृत्तं निर्झरः । पुत्रजन्मनेत्यभिषेकोत्तरं जातकर्मादयः संस्काराः पुत्रजन्मकार्या इत्यपराको व्याचख्यौ । अत एव विज्ञानेश्वरः—‘घटेपवर्जिते ज्ञातिमध्यायवसं गवाम् । प्रदद्यात्प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य हि सत्क्रिया’ ॥ इत्यत्र गवां भवत्वेन पुनर्व्रतं चरोदित्येतत्प्रकृते । एवं चरितव्रतविधौ विशेषोयमिति वदन् घटस्फोटपरिग्रह एवैतन्न सर्वत्रेत्याह । तस्मात्कृतेपि घटस्फोटे प्रायश्चित्तं परिग्रहविधिः पुनः संभवन्तीति सिद्धम् । तथा जीवच्छ्राद्धे कृते हेमाद्रौ बौधायनः—‘तत्राशौचं स्यात्स्वस्य ज्ञातेर्न विद्यते ।’ इत्यलं प्रसङ्गेन ॥

एवं सापवादे आशौचे उक्ते प्रतिशाखं भिन्नेप्यन्त्यकर्माणि साधारणं किञ्चिदुत्तरं

अन्त्यकर्मसाधारणविधिः ।

तत्राधिकारिणः श्राद्धप्रकरणे प्रागुक्ताः । सर्वाभावे धर्मपुत्रो वा कर्तव्यः । ‘अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक्तादृक्प्रयत्नतः । पिण्डोदकाक्रियाहेमसंकीर्तनाय च ॥’ इति व्यासवचनात् । गृह्यपरिशिष्टे—‘असंगोत्रः सगोत्रो यदि स्त्री यदि वा पुमान् । प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत् ॥’ दशमपिण्डमिति शेषः । भविष्ये—‘यत्राद्यो दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत् ॥’ ब्राह्मेण प्रथमेऽहनि यो दद्यात्प्रेतायान्नं समाहितः । अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्या विज्ञानेश्वरादयस्तु—‘केचित्तु अग्निं दद्यात्’ इति व्याचक्षते । ‘सगोत्रो वाऽसगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः । सोऽपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्धयेत्तु दशमेऽहनि ॥’ इति दासीये वचनाच्च ॥

तत्रैव—‘दृष्ट्वा स्थानस्थमासन्नमर्थोन्मीलितलोचनम् । भूमिष्ठं पितरं पुत्रो यदि दद्यात् प्रदापयेत् । तद्विशिष्टं गयाश्राद्धादश्वमेधशतादपि ॥’ तानि यथा—‘मोक्षं देहि केश मोक्षं देहि जनार्दन । मोक्षधेनुप्रदानेन मुकुन्दः प्रीयतां मम ॥’ इति मोक्षमन्त्रः । ‘ऐहिकामुष्मिकं यच्च सप्तजन्मार्जितं ऋणम् । तत्सर्वं शुद्धिमायातु ददतो मम ॥’ इति ऋणधेनोः । ‘आजन्मोपार्जितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः । नाशमायातु गोप्रदानेन केशव ॥’ इति पापधेनोः । भारते—‘शुक्लपक्षे दिवा गङ्गायां चोत्तरायणे । धन्यास्तात मरिष्यन्ति हृदयस्थे जनार्दने ॥’ हेमाद्रौ बौधायनः—‘व्यतीपातोऽथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं खेः । पुण्यकालास्तदा सर्वे यदा मृत्युरुपस्थिताः । तदा देयाः सवत्सा तु पूर्ववत् । तदभावे तु गौरैव नराणां देयाः ॥’ इति ।

मदनरत्ने जातूकर्ण्यः—‘उत्क्रान्त्यादीनि दानानि दश दद्यान्मृतस्य तु । गोभूति-
लहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ॥ रौप्यं लवणमित्याहुर्दश दानान्यनुक्रमात् । एतानि
दश दानानि नराणां मृत्युजन्मनोः ॥ कुर्यादभ्युदयार्थं तु प्रेतोपि हि परत्र वै ॥’
ब्राह्मे—‘ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रं द्विजाय तु । सहिरण्यं च यो दद्याच्छ्रद्धावित्ता-
नुसारतः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते गतिमुत्तमाम् । उत्क्रान्तवैतरिण्यौ च दशदा-
नानि चैव हि ॥ प्रेतोपि कृत्वा तं प्रेतं शवधर्मेण दाहयेत् ॥’ तत्रैव परिशिष्टे—‘त्रि-
माणस्य कर्णे तु पुण्यमन्त्रान् जपेत्ततः ॥’ क्रियानिबन्धे गारुडे त्वष्टौ दानान्यु-
क्तानि । ‘तुलसीसंनिधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा । तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं
लवणं तथा ॥ सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् ।’ इति । दशदानवैतरिणी
धेनूत्क्रान्तधेनुदानादि भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम् । कर्ताऽन्त्यकर्माधिकारार्थं त्रीन्
कृच्छ्रान् कुर्यादिति तत्रैवोक्तम् । अत्र देवयाज्ञिकेन सुमूर्षोर्मधुपर्कदानमुक्तम् ।
तदुक्तं वाराहे—‘दृष्ट्वा सुविह्वलं ह्येनं यममार्गानुसारिणम् । प्रयाणकाले तु नरो मंत्रेण
विधिपूर्वकम् ॥ मधुपर्कं त्वरन् गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥’ अंगृहाण चेमं मधुपर्कमाद्यं
संसारनाशनकरं ह्यमृतेन तुल्यम् । नारायणेन रचितं भगवत्प्रियाणां दाहे च शान्ति-
करणं सुरलोकपूज्यम् ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्ककम् । नरस्य मृत्युकाले तु
परलोकसुखावहम् ॥’

अथ दुर्मरणे दिवोदासीये—‘चण्डालादिमृते विप्रे त्वन्तरिक्षमृतेपि वा । कृच्छ्रातिकृ-

दुर्मरणे ।

च्छ्रचान्द्रैस्तु शुद्धिस्तत्र प्रकीर्तिता ॥’ देवजानीये जाबालिः—

‘शूद्रेण दग्धो यो विप्रो न लभेच्छाश्वतीं गतिम् । प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत

ब्राह्मणः पापशुद्धये ॥ चान्द्रायणं पराकं च प्राजापत्यं विशोधनम् ।’ गृह्यकारि-

कायाम्—‘उदक्या सूतिका वापि यदि प्रेतं स्पृशन्ति हि । तस्यैष विधिरादिष्टो वात्स्ये-

नैव महात्मना ॥’ एष सूतिकोक्तः । मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे—‘ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरो

च्छिष्टोभयोच्छिष्टे तथैव च । अस्पृश्यस्पर्शने चैव खट्वादिमरणोपि च ॥ श्वानक्रव्याद-

संस्पर्शे क्रिमिकीटोद्भवेति च । एतद्दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत् । कृच्छ्रांस्त्रिष-

पञ्चदशांश्चान्द्रत्रयमथापि वा ॥ शुद्धयै तदानीं सम्पाद्य शवधर्मेण दाहयेत् ॥ गृह्य-

कारिकायाम्—‘खट्वायां मरणे चैव त्रींस्त्रीन्कृच्छ्रान् प्रकल्पयेत् । सप्तान्त्यजैस्तु संस्पर्-

ष्टो मृतो दैवात्कथंचन ॥ एकात्रिंशत्कृच्छ्रैस्तु शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः । कुणपे त्वर्धदग्धे

तत्रैव प्रदीपे-‘रात्रौ वा रात्रिशेषे वा त्रियन्ते चेत् द्विजातयः । दाहं यथान्यायं द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्सुतः॥’ रजस्वलागर्भिण्यादिमृतौ तु वक्ष्यामः । निर्णय पारिजाते यमः-सन्ध्यायां वा तथा रात्रौ दाहः पाथेयकर्म च । नवश्राद्धं च नोः स्मृतं निष्फलतां व्रजेत् ॥’ एतद्दिनमृतस्य रात्रिनिषेधार्थम् । यत्तु स्कान्दे-रात्रौ दहेत्तस्य समाप्तिर्दहनस्य तु । परेऽह्न्युदिते सूर्ये कार्या तस्योदकक्रिया दग्धस्य तु न वै कार्या रात्रौ जातूदकक्रिया’ इति तन्निर्मूलम् ॥ रात्रिमृतस्य तु संग्रहे-‘रात्रौ दग्ध्वा तु पिण्डान्तं कृत्वा वपनवर्जितम् । वपनं नेष्यते रात्रौ श्ववपनक्रिया ॥’ इति । वपनं तु प्रातः । तच्च सर्वैः पुत्रैः कार्यम् । गङ्गायां भाक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरुर्मृतौ । आधाने सोमयागे च वपनं सप्तसु स्मृतम् ॥’ मिताक्षरायां स्मृतेः । मरणस्याऽनङ्गित्वान्नैमित्तिकमिदम् । तदेव संग्रहवत् परेद्युस्तकृष्यते तीर्थवत् । तेन कस्यचिद्दाहाङ्गत्वोक्तिश्चिन्त्या । मदनरत्ने गाल-‘प्रथमेऽहनि कर्त्तव्यं वपनं चानुभाविनाम् । प्रेतस्य केशश्मश्रादि वापायित्वाऽथ दाहयेत् आशौचान्ते तु पुनः कार्यं विधिबलात् । मदनपारिजातेऽप्येवम् । तेन सर्वस्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव । स्मृतिरत्नावल्याम्-‘शैवं रात्र्युषितं चेत्रीन् कृत्वा दहेत्सुतः । मदनरत्नेऽङ्गिराः-‘ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टे ह्यन्तरिक्षमृतेपि कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचे मरणोपि च ॥’

अथ साग्नेर्विशेषः । कारिकायाम्-‘कृष्णपक्षे प्रमीयेत यद्यद्दि प्रातराहु-शेषास्तु जुहुयाद्दर्शपर्यन्ताः पक्षहोमवत् ॥’ प्रतिपत्प्रातर्होमान्ता इत्यर्थः । ‘यद्यद्दि रापरपक्षे त्रियेताहुतिभिरेनं पूर्वपक्षे हरेयुः’ इत्याश्वलायनोक्तं । ‘तदानीमेव जुहुयात् सायंकालाहुतीरपि । सायं त्रियेत चेत्सायमाहु-जुहुयादथ ॥ तदानीमेव जुहुयात् प्रातःकालाहुतीरपि । सकृद्दृहीतमन्त्रेष्टं भिन्नतन-होमयोः॥ दार्शं चापि प्रकुर्वीत स्थालीपाकं तदैव तु ।’ छन्दोगपरिशिष्टे-‘हुतायां माहुत्यां दुर्बलश्चेद्दृही भवेत् । प्रातर्होमस्तदैव स्यात् जीवेच्च स पुनर्नवा ॥’ इदं शुक्लपक्षप-दुर्बलो मुमुर्षुः । त्रिकाण्डमण्डनः-‘दर्शेष्टिं च तदा कुर्यादिष्टिर्यदि न संभवेत् । तानां प्रधानानामेकैकस्य हुनेत्पृथक् ॥ पुरोनुवाक्यायाज्याभ्यां चतुरात्तधृताहुती तथा-‘अग्रावरण्योरारूढे प्रमीयेत पतिर्यदि । प्रेतं स्पृष्ट्वा मथित्वाग्निं जप्त्वा चोपाव-

णम् ॥ घृतं च द्वादशोपात्तं तूष्णीं हुत्वा शवक्रिया ॥' विच्छिन्नश्रौताग्नेर्मृतौ तु प्रेताधानं तत्रैवोक्तम् । 'प्रेतं स्वाग्न्यालये क्षिप्त्वा मथित्वाग्न्यानलेरणी । सन्निधायारणीं मन्येत यस्येति यजुषा ततः ॥ यस्याग्रयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसम् । जायन्तु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयन्त्विति मन्त्रतः । 'प्रणीय पावकं तूष्णीं द्वादशोपात्तसर्पिषा । तूष्णीं हुत्वा ततः कुर्यात्प्रेते माल्या इति क्रियाम् ॥ नष्टेष्वग्निष्वथारण्योर्नाशे स्वामी म्रियेत चेत् । आहरेदरणीद्वन्द्वं मनोज्योतिर्ऋचा ततः ॥'

यज्ञपार्श्वः—'यजमाने चितारूढे पात्रन्यासे कृते सति । वर्षाद्यभिहते वह्नौ कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥ तदर्धदग्धकाष्ठेन मन्यनं तत्र कारयेत् । तच्छेषालाभतोऽन्येन दग्धशेषेण वा पुनः ॥ हुत्वाज्यं लौकिके वह्नौ हुतशेषं देहेतु वा ॥' अत्राग्निषु सत्सु पर्णशरैः शरीरोत्पत्तिः । शरीरे वासति प्रेताधानेनाग्न्युत्पत्तिः । उभयाभावे तु प्रेताधानेऽन्यथा कारादाहादिसंस्कारलोपः । उदकदानाद्येव कार्यमिति केशवीकारशतद्वयीप्रसुखास्तत्र । 'निषेधाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ।' इति विरोधात् । 'क्रिया लोषगता ये च' इति निषेधात्तदभावे पलाशानां वृत्तैः कार्यः । पुमानपीत्यभावे विधानस्याग्न्यभावेऽपि साम्याच्च । तेन प्रेताहुत्यभावेऽपि स्विष्टकृद्गव्यान्तरोक्तेरदृष्टार्थत्वात् । प्रेताधानं दाहोऽपि भवत्येव । प्रतिकृतेरग्नीनां च प्रेताधानप्रयोजकत्वाक्षतेः ॥

पत्न्या अप्येवम् । 'दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः । इति याज्ञवल्क्योक्तेर्यत्—'द्वितीयां चैव यो भार्यां देहद्वैतानिकाग्निभिः । जीवन्त्यां प्रथमायां तु मुरापानसमं स्मृतम् ॥' इति तदाधाने सहानधिकृताविषयमिति विज्ञानेश्वरः । मदनरत्ने ब्राह्मेऽपि 'आहिताग्न्योश्च दंपत्योर्यस्त्वादौ म्रियते भुवि । तस्य देहः सपिण्डश्च दग्धव्यस्त्रिभिर्वाग्निभिः पश्चान्मृतस्य देहस्तु दग्धव्यो लौकिकाग्निना । अनाहिताग्निदेहस्तु दाह्यो गृह्याग्निद्विजैः ॥' त्रिकाण्डमण्डनस्तु विकल्पमाह—'ज्येष्ठायां विद्यमानायां द्वितीयायै स्मृत्योषिते । काम्यं नित्याग्निहोत्रं वा न कथंचित्प्रयच्छति ॥ स्त्रीमात्रमविशेषेण दग्ध्वान् वैदिकादिभिः । विवाह्यादधते यद्वाधानमेवास्ति चेद्वधूः ॥' इति ॥

अत्रेदं तत्त्वम् । साग्नेः पत्नीमृतौ द्वौ पक्षौ । पुनर्विवाहेच्छायां पूर्वाग्निभिर्देहेदित्येकः पक्षः । 'भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधा

असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति परिकीर्तयेत् ॥ ' तथा- 'एवमेवाहिताग्नेश्च पात्रं दिकं भवेत् । कृष्णाजिनादिकं चात्र विशेषो ध्वर्युचोदितः ॥ ' तत्रैव- 'अनयै नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता । अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः छन्दोगानामेव ॥ पात्रन्यासोक्तेरुत्तानदेहत्वं साग्निपरम् । निराग्निस्तु पुमानधो स्त्री तूत्ताना दाह्या । 'सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्य तैः शवः । अधोमुखो दक्षिण चरणस्तु पुमानिति ॥ उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि बन्धुभिः ॥ ' इत्यादि राणादिति शुद्धितत्त्वहारलतादयः । उत्तरशिरस्त्वं सामगेतरपरम् । वा त्वग्निदानेऽन्यो मन्त्रः । 'कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता । मृत्युक प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम् ॥ धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम् । दहेयं सर्वग दिव्याल्लोकान्स गच्छतु ॥ ज्वलमानं महावह्निं शिरःस्थाने प्रदापयेत् । चतुर्वर्णेषु सं भवं भवति पुत्रके' ॥

अत्र क्रियानिबन्धे गारुडे षट्पिण्डदानमुक्तम् ॥ 'मृतस्योत्क्रान्तिसमं पिण्डान् क्रमशो ददेत् । मृतिस्थाने तथा द्वारि चत्वेरे ताक्ष्य कारणात् ॥ विश्रामे चयने तथा संचयने च षट् ॥ ' तथा- 'आदौ देयास्तु षट् पिण्डा दश देया हिक्काः । स्थाने चार्धपथेतीति चितायां शवहस्तके ॥ इमं शानवासिभूतेभ्यः षष्ठं स तथा ॥' ततः- 'त्वं भूतकृज्जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः ॥ उक्तः संहारकस्तर स्वर्गं मृतं नय ॥ ' इत्याग्निं दत्त्वा, अस्मात्स्वमिति मन्त्रेणार्धदग्धे आज्याहुतिर आहिताग्नौ पराशरः- 'शम्यां शिश्रे विनिक्षिप्य अरणीं मुष्कयोरपि । दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥ शिश्रे तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुसलं न्यसेत् । क्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ॥ श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुर्णो नेत्रमुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् ॥ अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र निक्षिपेत्

अर्चेताः- 'स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः । नग्नेदेहं दहेन्नैव किंचिदेयं त्यजेत् ॥ ' यमः- 'प्रेतं दहेच्छुभैर्गन्धैः स्नापितं सग्विभूषितम् । ' आश्वलायनः 'संस्थिते प्रेतालंकारान् कुर्वन्ति केशश्मश्रुलोमनखानि वापयन्ति नलदेनानुलि नलदमालां प्रतिमुञ्चन्ति । ' इति माधवीये ब्राह्मे- 'दरिद्रोऽपि न दग्धव्यो कस्यां चिदापदि ॥ ' तथा- 'निःशेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किञ्चित्यजेन्नरः ॥ ' कालेऽग्निनाशे तु मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः- 'यज्ञमाने मृते कापि चितादौ वा प्रवे वर्षार्धाभिहतेऽग्नौ तु कथं प्रेतविकल्पना ॥ शेषं दग्ध्वा प्रदग्धेषु निर्मथ्यैव तु कारयेत्

दंपत्योरेकदा मृतौ विशेषमाहापस्तम्बः—‘तथैव प्रेते सहैव पितृमेधो द्वि-
चनलिङ्गान्मन्त्रान् सन्धारयन्ति ।’ पितृमेधो दाहान्तं कर्म
दम्पत्योरेकदामृतौ । ‘दाहान्तमेकतन्त्रत्वम्’ इति बौधायनोक्तेः—अस्थिसंचयनमप्य-
कम् । उदकपिण्डदानादि पृथगेव । सहगमनेप्येवम् । तदाह भदनरत-
भाष्यार्थसंग्रहकारः—‘एककालमृतौ भार्या भर्ता च यदि चेद् द्वयोः । तन्त्रे-
दहनं कुर्यात्पिण्डश्राद्धं पृथक्पृथक् । एककाले मृतौ जायापती यदि तदा पितुः
विभज्याग्निं क्रियां कुर्यादिति यत्तदसांप्रतम् ॥ दाहान्तमेकतन्त्रत्वमिति याज्ञि-
संमतम् ॥ मृतं पतिमनुव्रज्य या नारी ज्वलनं गता । अस्थिसंचयनान्तेऽस्या भ-
संस्कार एव हि ॥ कीकसानां तु संस्कारो न्यायसिद्धोपि यो मतः । एककाले मृते-
कीकसानां विधिः स्मृतः ॥ नवश्राद्धं सपिण्डान्तं भिन्नकालमृतौ यथा ॥’ कपि-
कारिकापि—‘मृते भर्तारि तदाहात्प्राक् पत्नी म्रियते यदि । पत्न्यां वा प्राक् प्र-
तायां दाहादर्वाक्पतिर्मृतः ॥ तत्र तन्त्रेण दाहः स्यान्मन्त्रेषु द्वित्वमूह्यते । कीकसानां
संस्कारः पृथगेव तयोर्भवेत् ॥ एकाहमृत्यौ युगपन्नवश्राद्धादिकं तयोः । मृतं पतिम-
व्रज्य पत्नी चेदनलं गता ॥ तत्रापि दाहस्तन्त्रेण पृथगस्थिक्रिया भवेत् ॥’ अस्थि-
चयनपृथक्त्वे विकल्पः । सहगमने सर्वत्र पाकैक्यमाह प्रचेताः—‘एकचित्यां समा-
म्रियेते दंपती यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक्पिण्डं समाचरेत् ॥

अथोदकदानं वसिष्ठः—‘शरीरमग्नौ संयोज्यानवेक्षमाणा अपोभ्यवयन्ति सव्यो-
राभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वन्त्ययुग्मम् ॥’ आपस्तम्बः—‘मातुश्च योनिस्त-
न्धेभ्यः पितुश्चासप्तमात् पुरुषाद्यावतां वा सम्बधो ज्ञायते तेषां प्रेतेषु

उदकदानम् ।

कक्रिया’ इति । याज्ञवल्क्यः—‘सप्तमादशमाद्यापि ज्ञातयोऽभ्युप-
त्यपः । अपनःशोशुचदधमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगो-
वाग्यताः ।’ सप्तमादशमाद्या दिवसादर्वागिति विज्ञानेश्वरः । कातीयास्तु सप्तम-
शमाद्या पुरुषादित्याहुः । सप्तमादशमाद्या पुरुषात्समानग्रामवासे यावत्सम्बन्धमनु-
रेयुः’ इति पारस्करोक्तेः । मन्त्रस्नानाङ्गमेवेति हेमाद्रिः । प्रचेताः—‘प्रेत-
बान्धवा यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोद्धर्षयेयुरुदकान्ते प्रसिञ्चेयुरपसव्ययज्ञोपवीतवास-
दक्षिणामुखा ब्राह्मणस्योदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च राजन्यवैश्ययोः’ । स एव ‘नदीव-
ततो गत्वा’ इत्युक्त्वा ‘सचैलस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः । पाषाणं तत आ-
विप्रे दद्यादशक्षलीन् ॥ द्वादश क्षत्रिये दद्याद्वैश्ये पञ्चदश स्मृताः । त्रिंशच्छूद्राय दात-
व्यं अग्निरेवम् ॥ ततः स्नानं पतः कार्यं गृह्यशौचं च कारयेत् ॥’

प्रेतस्नानम् ।

पुनः परिधाय स्नायादित्यर्थः । अपन इति मन्त्रेण वामहस्ता
कया जलालोडनम् । अन्तरणे वृद्धपुरःसरत्वाक्तेः 'यथावालं पुरः
इति बौधायनीयं जलादुत्थानपरमिति हारलतादयः । आश्वलायनः-
वृतो व्रजन्त्यनीक्षमाणा यत्रोदकमवहद्भवति ।' तत्प्राप्य सकृदुन्मज्ज्यैकाञ्जलिमु

अञ्जलिदानम् ।

तस्य गोत्रं नाम गृहीत्वा' इति । प्रचेतसाऽन्वहमञ्जलित्रयम्
तत्र 'त्रिःप्रसेकं कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु' इति । तथा-'दिनेदिनेऽऽ
पूर्णान् प्रदद्यात्प्रेतकारणात् । तावद्वृद्धिश्च कर्त्तव्या यावत्पिण्डः समाप्यते ॥'
वृद्धिस्त्रिकवृद्धिर्वेत्यर्थः । मदनरत्ने भरद्वाजगृह्ये तु द्विकवृद्धिरप्युक्ता 'आशौ
प्रदद्यात्तु प्रेतपुत्रस्तिलाञ्जलीन् । प्रथमेऽहिं सकृदद्यात्पिण्डयज्ञावृता दिवा ॥ त्रींश्च
द्वितीयेऽहिं तृतीये पञ्च एव च । चतुर्थे सप्तसंख्यास्तु पञ्चमे नव चोत्सृजेत् ॥
चैकादशकाः सप्तमे तु त्रयोदश । अष्टमे पञ्चदशका नवमे दश सप्त च ॥ एकोना
चाये शताञ्जलिमतं स्मृतम् । केचिदशाञ्जलीन् प्रोचुः केचिदाहुः शताञ्जलीन् ॥
श्चाशतं चान्ये स्वशाखोक्तव्यवस्थया' ॥

छन्दोगपरिशिष्टे-'अथानवेक्ष्यन्त्यापः सर्वे चैव शवस्पृशः । गोत्रनाम
तु तर्पयामीत्यनन्तरम् ॥ दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा सतिलं तु पृथक् पृथक् ॥' नि
पुराणे-'सपिण्डीकरणं यावद्ब्रह्मैः पितृक्रिया । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणै
वद्भवेत् ॥' रामायणे-'इदं पुरुषशार्दूल विमलं दिव्यमक्षयम् । पितृलोकेषु प
मद्भक्तमुपतिष्ठताम् ॥' दानवाक्ये विकल्पः । याज्ञवल्क्यः-'कामोदकं सखिप्र
स्त्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥' काम इच्छा । प्रेततृप्तिच्छायां देयमन्यथा नेत्यर्थः । श
रस्करौ-'आचार्ये चैवम् ।' मातामहयोश्च स्त्रीणां चाप्रत्तानां कुर्वीरस्ताश्च ते
इति । द्विवचनान्मातामह्या अपि । शङ्खलिखितौ-'उदकक्रिया कामं श्वशुर
लयोः शिष्ये सहाध्यायिनि राजनि च' इति । वृद्धमनुः-'क्रीवाद्या नोदकं कुर्युः
व्रात्या विधर्मिणः । गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः' ॥ याज्ञवल्क्य
ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा ।' षडशीतौ-'स्वीयाचारादपि भ्रष्टाः प
ये च दूषिताः । न कुर्युरुदकं ते वै तेभ्योप्यन्ये न चैव हि ॥' मदनरत्ने हारी
'पतितानामवृद्धानां चरन्तीनां च कामतः । प्रत्तानां चैव कन्यानां निर्वर्त्या स
क्रिया ॥' अपराकै शंखलिखितौ-'अपपात्रितस्य रिक्थपिण्डोदकानि
र्तन्ते ॥' अपपात्रितः कृतघटस्फोटः । तस्यापि संग्रहविधौ कृते आशौचोदकादिः
देवेत्याशौचप्रकाशः ॥

शनैः ॥ प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनामपि । क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक्
क्षितौ ॥' इदं चाद्येहि । वसिष्ठः—'अद्य प्रस्तरे गृहमनश्नन्त आसीरन् क्रीतोत्पन्ने
वा वर्तेरन् ॥' शुद्धितत्त्वे बैजवापः—'शमीमालभन्ते शमी पापं शमयतु इति
अश्मानमश्मेव स्थिरो भूयासमिति । अग्निमग्निर्नः शर्मयच्छात्विति, ज्योतिषञ्चन्तग गाम
जमुपस्पृशन्तः क्रीत्वा लब्ध्वा वान्यगेहोदकान्नमलवणमेकरात्रं दिवा भुञ्जीरंस्त्रिरात्रं
कर्मोपरमणम्, क्रीताद्यशनमुपवासाशक्तस्य ।' आश्वलायनस्तु—'ननस्यां रात्र्याम
पचेरन्, त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनः स्युः द्वादशरात्रं वा' इत्याह । अशक्तौ रत्नाक
आपस्तम्बः—'नार्याः परमगुरुसंस्थायां चाकालभोजनानि कुर्वीरन् ॥' यदा मृतान्
परदिने तावत्कालमित्यर्थः । बृहस्पतिः—'अद्य शय्यासना दीना मलिना भोगवर्जिता
अक्षारलवणान्नाः स्युर्लब्धक्रीताशनास्तथा ॥' भोगोऽभ्यङ्गताम्बूलादिः । क्षाराः पा
भाषायामुक्ताः । यत्तु मार्कण्डेयपुराणे—'तैलाभ्यङ्गो वान्धवानामङ्गसंवाहनं च यत्
तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्ववान्धवाः ॥ प्रथमेहि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा
वस्त्रत्यागं वहिः स्नानं कृत्वा दद्यात्तिलोदकम् ॥' इति । तदन्त्यदिनपरम् । 'आ
चान्ते तिलकलकैः स्नाता गृहं प्रविशेयुः' इति विष्णूक्तेः । विष्णुपुराणे त्वस्थि
चयोर्ध्वं भोगोप्युक्तः । 'शय्यासनोपभोगस्तु सपिण्डानामपीष्यते । अस्थिसंचयनाद्
संयोगस्तु न योषिताम् ॥'

भारते—'तिलान् ददतु पानीयं दीपं ददतु जाग्रतु । ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमे
त्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥' मनुः—'मांसाशनं च नाश्रीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥' दे
जानीये कारिकायाम्—'लवणक्षीरमाषान्नापूपमांसानि पायसम् । वर्जयेदाहता
बालवृद्धातुरैर्विना ॥ उपवासो गुरौ प्रेते पत्न्याः पुत्रस्य वा भवेत् ॥' मरीचिः—'
मीहि तृतीये च सप्तमे दशमे तथा । ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥' भो
च दिवैव । 'दिवा चैव तु भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ ।' इति विष्णुपुराणात् । 'क्री
लब्ध्वा वा दिवान्नमश्रीयुः इति पारस्करोक्तेश्च ॥ मदनरत्ने हारीतः—'पा
मृन्मयेषु पर्णपुटकेषु वाश्रीयन् ।' देवजानीये ब्राह्मे शुद्धितत्त्वे आदित्यपुरा
'आशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच्च स्वगोत्रजात् ।' अन्त्यदिने तु मदनरत्ने ब्राह्मे—'
यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पाश्र्विमं त्वहः । स तत्र गृहशुद्धिं च वस्त्रशुद्धिं करोत्यपि
अन्त्यकर्मकालीनवस्त्रयोस्तु तत्रैवोक्तम् । 'ग्रामाद्बहिस्ततो गत्वा प्रेतपृष्ठे तु वाससी । अन
त्यशिराणां च त्यक्त्वा स्नानं करोत्यथ ।' इति । शंखः—'दानं प्रतिग्रहो होमः

प्रदीपं कांस्यभाजनम् । नग्नप्रच्छादने श्राद्धे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥' भृगुः- 'ति
तथा पिण्डान् नग्नप्रच्छादनादिकम् । रात्रौ न कुर्यात्संध्यायां यदि कुर्यान्निरर्थकम्

अथ प्रेतपिण्डः । यद्यपि हेमाद्रौ पारस्करेण- 'ब्राह्मणे दशपिण्डास्तु
द्वादश स्मृताः । वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥' इत्युक्तं

प्रेतेभ्यः सर्ववर्णैभ्यः पिण्डान्दद्यादशैव तु ।' इति तेनैवोक्तेः
प्रेतपिण्डनिर्णयः ।

दशैव ज्ञेयाः । मदनरत्नेष्वेवम् । तथा च हेमाद्रौ ब्रा

ह्मण्योः- 'जात्युक्ताशौचतुल्यांस्तु वर्णानां कचिदेव हि । देशधर्मान्पुरस्कृत्य प्रेता
न्वपन्त्यपि ॥' इत्युक्ता-विप्रात्रेषु दशमपिण्डोत्कर्ष उक्तः । देयस्तु दशमः
राज्ञां वै द्वादशेहनि । वैश्यानां वै पञ्चदशे देयस्तु दशमस्तथा ॥ शूद्रस्य दशमः
मासे पूर्णेहि दीयते ।' इति । शुद्धमृतादेः सद्यःशौचे त्र्यहोदौ च तेनैवोक्तम्-
'शौचे प्रदातव्यः सर्वेपि युगपत्तथा । त्र्यहोदौ च प्रदातव्यः प्रथमेद्वयेक एव हि ।
येहनि चत्वारस्तृतीये पञ्च चैव हि ।' त्र्यहो प्रकारान्तरं प्रागुक्तम् । शातात
'आशौचस्य च द्वासेपि पिण्डान्दद्यादशैव तु ।' तत्रैकपात्रे सकृत्पक्त्वा
पिण्डान् दद्यात् । 'उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये । पूर्वदत्ताञ्जलीन् दद्यात्
पिण्डांस्तथैव च' ॥ इति गृह्यकारिकायां पात्रविपर्यये दोषोक्तेः । शिलावि
घटस्फोटादेर्नावृत्तिः । अक्षाभ्यञ्जनादिपदकर्मणः एकहायनीनयनवदप्रयोजकत्वात्
तद्वच्चान्नालौकिकग्रहणम् । केचित्तु- 'नवान्यादाय भाण्डानि आरुक् चरुक् तथ
इति प्रचेतसोक्तेः । पात्रानेकत्वमाहुः । क्रियाकर्तुर्नाशेऽन्येन शेषः समापनीय
'एवं क्रियाप्रवृत्तानां यदि कश्चिद्विपर्ययते । तद्धन्धुना क्रिया कार्या सर्वैर्वा सह
रिभिः ॥' इति शुद्धितत्त्वे बृहस्पतिस्मृतेः । पत्न्याः कर्तृत्वे रजोदर्शने च त
कुर्यात् । 'शावाद्विगुणमार्तवम्' इत्युक्तेः । आशौचान्ते आर्तवे कर्तुर्स्वास्थ्ये वान्
क्रिया सर्वावर्तनीया कर्तुर्विपर्ययात्कालातिक्रमयोगाच्च ॥

वाराहे- 'स्थण्डिले प्रेतभागं तु दद्यात्पूर्वाह्ण एव तु । कृत्वा तु पिण्डसंकल्पना
गोत्रेण सुन्दरि ॥' मरीचिः- 'प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रविर्वर्जितम् । प्रागुदीच
चरुं कृत्वा स्नातः प्रयतमानसः ॥' दर्भवर्जनमनुपनीतपरम् 'असंस्कृतानां भूमौ पि
दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतसोक्तेः । मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे- 'भू
माल्यं पिण्डं पानीयमुपले वा दद्युः' ॥ हारीतः- 'अकृतचूडा ये बाला ये च गभ

१- 'आचार्यविपर्ययेष्वेवम्' इति वदतामयमभिप्रायः- 'आचार्यमृगण्ति' इति

द्विनिःसृताः । सृता अनुपनीता ये अनूढा अपि कन्यकाः ॥ ये मृताश्चाप्यसंस्कारास्तेभ्यो भूमौ प्रदीयते । पैठीनसिः—‘शालिनां सक्तुभिर्वापि पिण्याकैर्वापि निर्वपेत्’ ॥ शुनः—‘पुच्छः—‘फलमूलैश्च पयसा शाकेन च गुडेन च । तिलमिश्रं तु दर्भेषु पिण्डं दक्षिणतो हरेत् ॥ तूष्णीं प्रसेकं पुष्पं च धूपं दीपं तथैव च । शालिना सक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथ निर्वपेत् ॥ प्रथमेहनि यद्रव्यं तदेव स्यादशाहिकम् ।’ मदनरत्ने मात्स्ये—‘तैजसं मृन्मयं वाथ पात्रं संशोध्य यत्नतः । लौकिकाग्नावधिश्रित्य पचेदन्नं घृतप्लुतम् ॥ स्नात्वाथ तिलसंमिश्रं प्रदद्यादर्भसंस्तरे ॥’

शुद्धितत्त्वे देवजानीये च ब्राह्मे—‘प्रथमेऽहनि यो दद्यात् प्रेतायान्नं समाहितः । अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि । मृन्मयं भाण्डमादाय नवं स्नातः सुसंयतः । तण्डुल-प्रसृतिं तत्र त्रिः प्रक्षाल्य पचेत्स्वयम् ॥ सपवित्रैस्तिलैर्मिश्रं कृमिकेशविर्वर्जितम् । द्वारो-पान्ते ततः क्षिप्त्वा शुद्धां वा गौरमृत्तिकाम् ॥ भूपृष्ठे संस्तरे दर्भान् याम्याग्रान् देश-संभवान् । ततोऽवनेजनं दद्यात् संस्मरन् गोत्रनामनी ॥ तिलसपिर्मधुक्षीरैः संसिक्तं तप्त-मेव हि । दद्यात्प्रेताय पिण्डं तु दक्षिणाभिमुखः स्थितः ॥ अर्घ्यैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपै-स्तोयैश्च शीतलैः । ऊर्णातन्तुमयैः शुद्धैर्वासोभिः पिण्डमर्चयेत् ॥ दिवसे दिवसे देयः पिण्ड एवं क्रमेण तु । सद्यःशौचे प्रदातव्याः सर्वेपि युगपत्तथा ॥ त्र्यहाशौ-चेपि दातव्यास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेद्वि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः । दशाहेपि च दातव्यः प्रथमे त्वेक एव हि ॥ एकस्तोयाञ्जलिस्त्वेवं पात्रमेकं च दीयते । द्वितीये द्वौ तृतीये त्रीन्’ इत्या-द्युक्ता—‘एवं स्युः पञ्चपञ्चाशत्तोयस्याञ्जलयः क्रमात् । तोयपात्राणि तावन्ति संयु-क्तानि तिलादिभिः’ ॥ इति । पात्रं कुम्भः । अत्राहःपदमहोरात्रपरम् । तेन रात्रावपि देय-मिति गौडाः । दिवसपदाद्रात्रौ नेति मैथिलाः । स एवेत्युक्तेः । सपिण्डेन दश-पिण्डे प्रक्रान्ते पुत्रागमेपि स न दद्यात् । ‘असगोत्रः सगोत्रो वा’ इति प्रागुक्तेः । दाहकर्तव्यं दशाहं कुर्यादिति मिताक्षरायाम् । शुद्धितत्त्वे वायवीयेपि—‘अस-गोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात्स एव हि ॥’ इति । तत्रैव ‘पूरकेण तु पिण्डेन देहो निष्पद्यते यतः । कृतस्य करणायोगात् पुनर्नावर्तते क्रिया ॥’ शुद्धिप्रकाशे वायवीयेपि—‘निर्वर्तयति यो मोहात् क्रिया-मन्यानिर्वर्तिताम् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥ तस्मात् प्रेतक्रिया येन

मूलफलादिषु । प्रथमेहनि यद्दद्यात्तद्दद्यादुत्तरेहानि ॥ गृहद्वारि श्मशाने वा । यत्राद्यं दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत् ॥'

ब्राह्मे-‘शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा । द्वितीयेन तु कर्णा समामनः ॥ गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमम् । चतुर्थेन तु पिण्डेन गुदानि च ॥ जानुजंघे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा । सर्वमर्माणि षष्ठे नाड्यः । दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च । दशमेन तु पूर्णत्वं तप्तता इति । याजवल्क्येन तु-‘पिण्डयज्ञावृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम् ।’ इत्यु फलनाप्तस्य ज्ञेयमिति विज्ञानेश्वरः । तेन त्र्यहाशौचपरत्वं देवस्य चिन्त्यम् । ‘आशौचस्य च हासोपि पिण्डान्दद्यादशौचं तु ।’ इति वचनाच्च । तत्त्वार्थमिति हारलतादयः ॥

शानातपः-‘जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ॥’ पारस्क्यं तां गात्रि क्षीरोदके विहायसि निद्ध्युः । प्रेतात्र स्नाहीत्युदकं, पिव चेदमिति इदं गात्रावेवेति गौडाः । गारुडे तु-‘अपक्वे मृन्मये पात्रेः दुग्धं दद्यात् इत्युक्तम् । हेमाद्रौ पात्रे तु दशाहमुक्तम् । ‘तस्मान्निधेयमाकाशे दत्तं जलम् । सर्वतापोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥’ देवजानीये कारि- ‘तत्र प्रेतोपकृतये दशगात्रमखण्डितम् । कुर्यात्पदीपं तैलेन वारिपात्रं च भोज्याद्भोजनकाले तु भक्तमुष्टिं च निर्वपेत् ॥ नामगोत्रेण संबुद्ध्या धारिष्ये वत् ॥’ शानातपः-‘भूलोकात्प्रेतलोकं तु गन्तुं श्राद्धं समाचरेत् । तत्पाथे मृतस्य मनुजस्य तु ॥’

अथ दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः । भविष्ये-‘प्रवृत्ताशौचतन्त्रं दशाहमध्ये दर्शपाते दर्शं प्रपद्यते । समाप्य चोदकं पिण्डान् स्नानमात्रं समाप्य ऋष्यशृङ्गः-‘आशौचमन्तरा दशौ यदि स्यात्सर्ववर्णिनाम् प्रततन्त्रस्य कुर्यादित्याह गौतमः ॥’ पैठीनसिः-‘आद्येन्द्रावेव कर्तव्या दकक्रिया । द्विरेन्दवे तु कुर्वाणः पुनः शावं समश्नुते ॥’ मातापित्रोस्तु श्लोव- ‘अन्तर्दशाहे दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत् । पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डाञ्च लीनं ॥’ इदमपि त्र्यहमध्ये दर्शपाते । तदूर्ध्वं दर्शं तु पित्रोरपि तन्त्रं समाप्यमेव राशौचमध्ये तु यदि दर्शः समापतेत् । तावदेवोत्तरं तन्त्रं पर्यवस्येत् त्र्यहात्परम् गालवोक्तेः । अन्येषां तु त्र्यहमध्येपि समाप्तिरिति पराशरस्य आशौच- मते चोक्तम् ।

अथास्थिसंचयः । तत्राश्वलायनेन च कृष्णपक्षे एकादशीत्रयोदशीदर्शेषु
 आपाढीफाल्गुनीप्रौष्ठपदीभिन्नर्क्षे उक्तम् । तदाशौचमध्येऽसंभवे तदूर्ध्वं
 अस्थिसंचयः । च प्रागब्दात्करणे ज्ञेयम् । आशौचमध्ये तु मदनरत्ने संवर्तः—
 'प्रथमोद्दि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यं दिने तद्भोत्रजैः
 सह ॥' छन्दोगपरिशिष्टे तु—'अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थिसंचयनं भवेत् ।' इति द्विती-
 येप्युक्तम् । विष्णुकात्यायनौ—'संचयनं चतुर्थ्याम्' इति । माधवीये यमः—
 'भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुग्मे विवर्जयेत् । वर्जयेदेकपादक्षं द्विपादक्षंस्थिसंचयम् ॥ प्रदा-
 तृजन्मनक्षत्रे त्रिपादक्षं विशेषतः ।' ब्राह्मे—'चतुर्थे ब्राह्मणानां तु पञ्चमेहनि भूभृताम् ।
 नवमे वैश्यजातीनां शूद्राणां दशमात्परम् ॥' दशमेहनीति वा पाठः । शौनकः—
 'पालाशेष्वस्थिदाहे च सद्यःसंचयनं भवेत् ।' काम्यमरणे तु तस्य त्रिरात्रमाशौचम् ।
 द्वितीये त्वस्थिसंचय इत्युक्तम् । अङ्गिराः—'प्रेतीभूतं तथोद्दिश्य यः शुचिर्न करोति
 चेत् । देवतानां तु यजनं तं शपन्त्यथ देवताः ॥' तद्विधिः स्वस्वसूत्रे भट्टकृतौ
 च ज्ञेयः ॥

हेमाद्रौ नागरखण्डे—'त्रीणि संचयनस्यार्थं तानि वै शृणु सांप्रतम् । यत्र स्थाने
 भवेन्मृत्युस्तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् । एकोद्दिष्टं ततो मार्गं विश्रामो यत्र कारितः । ततः
 संचयनस्यार्थं तृतीयं श्राद्धमिष्यते ॥' अपराक्षे मदनरत्ने च ब्राह्मे—'सद्यःशौचे
 तथैकाहे सद्यः संचयनं भवेत् । त्र्यहशौचे तृतीयेद्दि कर्तव्यस्त्वस्थिसंचयः ॥' तत्रैव—
 'श्मशानदेवतायागं चतुर्थे दिवसे चरेत् । मृन्मयेषु च भाण्डेषु कुम्भेषु रुचकेषु वा ॥
 सुपक्वैर्भक्ष्यभोज्यैश्च पायसैः पानकैस्तथा । फलैर्मूलैर्वनोत्पैश्च पूज्याः क्रव्याददेवताः ॥
 धूपो दीपस्तथामालयमर्घ्यं देयं त्वरान्वितैः । तत्र पात्राणि पूर्णानि श्मशानाग्नेः सम-
 न्ततः ॥ निवेदयद्विर्वक्तव्यं तैः सर्वैरनहंकृतैः । नमः क्रव्यादमुख्येभ्यो देवेभ्य इति
 सर्वदा ॥ येऽत्र श्मशाने देवाः स्युर्भगवन्तः सनातनाः । तेऽस्मत्सकाशाद्ब्रह्मन्तु बलिमष्टाङ्ग-
 मक्षयम् ॥ प्रेतस्यास्य शुभाल्लोकान् प्रयच्छन्तु च शाश्वतान् । अस्माकमायुरारोग्यं
 सुखं च ददतां चिरम् ॥ एवं कृत्वा बलिन्सर्वान्क्षीरेणाभ्युक्ष्य वाग्यतः । एवं दत्त्वा बलिं
 चैव दद्यात्पिण्डत्रयं बुधः ॥ एकं श्मशानवासिभ्यः प्रेतयैव तु मध्यमम् । तृतीयं
 तत्सखिभ्यश्च दक्षिणासंस्थमादरात् ॥ ततो यज्ञियवृक्षोत्थां शाखामादाय वाग्यतः ।
 प्रेतस्यास्थीनि गृह्णाति प्रधानाङ्गोद्भवानि च ॥ शिरसो वक्षसः पाण्योः पार्श्वभ्यां चैव

अथ तीर्थेस्थिक्षेपविधिः तत्रैव-‘तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वा कदाचिज्जाह्नवी

तीर्थेस्थिक्षेपनिर्णयः । कश्चिद्विपति सत्पुत्रो दौहित्रो वा सहोदरः ॥ मातुः कुलं पि

वर्जयित्वा नराधमः । अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य नीत्वा चान्द्र
चरेत् ॥’ तत्रैव ब्रह्माण्डपुराणे-‘अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गंग
ये कथंचित् । सद्भान्वधस्यापि दयाभिभूतास्तेषां तु तीर्थानि फलप्रदानि ॥ स्नात्वा
पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैश्च योज्य ततस्तु मृत्पिण्डपुटे निधाय प
दिशं प्रेतगणोपरूढाम् ॥ नमोस्तु धर्माय वदेत्प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपे
उत्थाय भास्वन्तमवेक्ष्य सूर्यं सदक्षिणां विप्रमुखाय दद्यात् ॥ एवं कृते प्रेतपुरः
स्य स्वर्गे गतिः स्यात्तु महेन्द्रतुल्या ॥’ यमः-‘गङ्गातोयेषु यस्यास्थि क्षिप्यते शु
र्मणः । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्सनातनात् ॥’ तथा-‘अस्तंगते गुरौ शुक्रे
मासे मलिम्लुचे । गङ्गायामस्थिनिक्षेपं न कुर्यादिति गौतमः ॥’ दशाहान्तर्न दो
‘दशाहस्यान्तरे यस्य गङ्गातोयेस्थि मज्जति । गङ्गायां मरणं यादृक् तादृक् फ
वाप्नुयात् ।’ इति मदनरत्ने वृद्धमनूक्तेः ॥

शौनकः-‘शौनकोहं प्रवक्ष्यामि अस्थिक्षेपविधिं क्रमात् । आदौ ग्रामाद्वहिर्गत्वा
कुर्यात्सचैलकम् ॥ प्रोक्षयेत्पञ्चगव्येन भुवं मन्त्रैर्विचक्षणः ॥’ गायत्र्याद्यैः पञ्चगव्यमन्त्रै
खातास्थिभूमिं प्रोक्षेदित्यर्थः । उपसर्पादिभिर्मन्त्रैः प्रार्थनं खननं तथा । मृत्तिको
चास्थनां ग्रहणं च यथाक्रमम् ॥’ उपसर्पेति चतुर्भिर्मन्त्रैः क्रमेण प्रार्थनादि ज्ञेयम्
‘स्नात्वास्थिशुद्धिं कुर्वीत एतोन्विन्द्रेति सूक्ततः । स्पृष्ट्वास्पृष्ट्वा ततः स्नानं पञ्चग
शुद्धयति ॥ दश स्नानानि कुर्वीत तत्तन्मन्त्रैर्विचक्षणः । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि स
कुशोदकम् । भस्म मृन्मधु वारीणि मन्त्रतस्तानि वै दश ॥ कुशैः संमार्जयेदस्थीन्
देवेति मन्त्रतः । एतोन्विन्द्रं शुचिर्वेति नतमहं इतीति च ॥ पावमानीर्ममाग्रेष्व रुद्र
यथाक्रमम् ॥’ एतैः कुशैर्मार्जनम् । हेमश्राद्धं ततः कुर्यात्पितृनुद्दिश्य यत्नत
पिण्डदानं प्रकुर्वीत ततश्च तिलतर्पणम् ॥’ अस्थिक्षेपाङ्गं चेदम् । ‘अजिनं कम्
दर्भा गोकेशाः शाणमेव च । भूर्जपत्रं ताडपत्रं सप्तधा वेष्टनं स्मृतम् ॥ हैमं च मौलि
रौप्यं प्रवालं नीलकं तथा । निक्षिपेदस्थिमध्ये तु शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ततो
प्रकुर्वीत तिलाज्येन विचक्षणः । उदीरतेति सूक्तेन हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ततो गत्वा वि
र्तीयं स्पर्शदोषो न विद्यते । मूत्रं पुरीषाचमनं कुर्वन्नास्थीनि धारयेत् ॥’ अत्र दश
वैतरणीऋणमोक्षपापधेनुदानमुक्तम् । दिवोदासीये काश्विखण्डे-‘धनंजय
धर्मात्मा मातृभक्तिपरायणः । आदायास्थीन्यथो मातृगन्धमार्पयिष्येदस्मात् ॥’

‘पट्टवस्त्रं च कौशेयं माञ्जिष्टं श्वेतवस्त्रकम् । कम्बलं शाणपट्टं च अजिनं च तथोत्तरम् ॥’
 एषां विकल्पः । अन्यश्चात्र विशेषस्त्रिस्थलीसेतौ दिवोदासीये च ज्ञेयः । संचयनो-
 त्तं श्राद्धमाहाश्वलायनः—‘श्राद्धमस्मै दद्युः’ इति । स्मृत्यर्थसारे—‘संचयने कृते
 मनुष्यलोकात्प्रेतलोकं गच्छतः पाथेयश्राद्धमामेन कार्यमिति ॥ अनुपनीतस्य न
 संचयनम् ॥’

अथ नवश्राद्धम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेद्गिराः—‘प्रथमेहि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा ।
 नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥’ शिवस्वामी—‘नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायन-
 शाखिनः । आपस्तम्बाः षडित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ॥’ पञ्च
 नवश्राद्धनिर्णयः । एकादशाहिकं विना । ‘मरणाद्विषमेषु दिनेष्वेकैकं नवश्राद्धं कुर्यादान-
 वमाद् । यदि नवमं विच्छिद्येतैकादशे तत्कुर्यात् । इति मदनरत्ने बौधायनोक्तेः ।
 भविष्ये—‘नव सप्त विशां राज्ञां नवश्राद्धान्यनुक्रमात् । आद्यन्तयोर्वर्णयोस्तु षडित्याहु-
 र्महर्षयः ॥’ हेमाद्रौ वृद्धवसिष्ठः—‘अलब्ध्वा तु नवश्राद्धं प्रेतत्वान्न विमुच्यते ।
 अर्वाक् तु द्वादशाहस्य लब्ध्वा तरति दुष्कृतम् ॥’ अतः षडेव । एतान्येव विषमश्राद्धानि
 नीत्युच्यन्ते । नागरखण्डे तु—‘पञ्चमे सप्तमे तद्दशमे नवमे तथा । दशमैकादशे चैव
 नवश्राद्धानि तानि च ॥’ इत्युक्तम् । कात्यायनस्तु—‘चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे
 तथा । यदत्र दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥’ प्रथमे सप्तमे चैवेत्याद्यपादे व्यास-
 पाठः । बह्वृचानां तु—‘नवश्राद्धं दशाहानि नवमिश्रं तु षड्भूतम् ।’ इत्युक्तं नारा-
 यणवृत्तौ । दीपिकायाम्—‘अथ तनुयादाद्ये चतुर्थेदिने श्राद्धम् । पञ्चमसप्तमाष्टनव-
 दिगुद्रेषु युगमद्विजैः ॥’ ‘प्रथमेहि तृतीयेहि पञ्चसप्तनवस्वापि । द्वौद्वौ
 चतुर्थदिनकृत्यम् । पिण्डौ प्रदातव्यौ शेषेष्वेकं तु विन्यसेत् ॥’ एको विषमश्राद्धेवयव-
 पिण्डश्चैव इति द्वावित्यथः । अत्र शाखाभेदाद्वचवस्था ॥

अपराकै भविष्ये—‘नवश्राद्धं त्रिपक्षं च षण्मासं मासिकानि च । न करोति सुतो
 यस्तु तस्याधः पितरो गताः ॥’ वाराहे—‘गतोसि दिव्यलोकं त्वं कृतान्तविहितात्पथः ।
 मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजयेत् ॥ पूजयिष्यामि भोगैस्त्वामेवं विप्रं निमन्त्रयेत् ।
 आवाहनेपि तत्रैव—‘इह लोकं परित्यज्य गतोसि परमां गतिम् । मनसा वायुभूतेन विप्रे
 त्वाहं नियोजये ॥’ इति । तत्रैव । बह्वृचपरिशिष्टे—‘अनूदकमधूपं च गन्धमाल्य-
 विर्वाजितम् । नवश्राद्धममन्त्रं च पिण्डोदकविवर्जितम् ॥’ उदकमर्घ्यः । पिण्डोदकं

प्रेतश्राद्धे दशाहिके ॥ ' इति ऋष्यशृङ्गोक्तौ दशाहिकोक्तेरेकादशाहे स्वधाप्रयोगः ।
हारलता परास्ता ॥

रत्नावल्याम्- 'आशिषो द्विगुणा दर्भा जयाशीः स्वस्तिवाचनम् । पितृशब्दः
वद्धः शर्मशब्दस्तथैव च ॥ पात्रालम्भोऽवगाहश्च उल्मुकोल्लेखनादिकम् । तृप्तिप्र
विकिरः शेषप्रश्नस्तथैव च ॥ प्रदक्षिणाविसर्गश्च सीमान्तगमनं तथा । अष्टादश
र्थाश्च प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ॥' अथ स्वधापितृनमःशब्दानां तिलोत्सीतिमन्त्रे प्रे
ब्दोहेन तूष्णीं वा तिलावपनम् । तूष्णीं प्रर्घ्यदानम् । अमुष्मै स्वाहेति प्रेतनाम्ना प
होमः । नाम्ना एकः पिण्डः । निनयनमन्त्रे ऊहः । अनुमन्त्रणादि त्वमन्त्रकम् । उ
रम्यतामिति विसर्जनम् । एवं नवश्राद्धवर्जैकोद्दिष्टेषु । 'नवश्राद्धे त्वमन्त्रकं सर्वम्'
नारायणवृत्तिः । क्रियानिवन्धे- 'उत्तानं स्थापयेत्पात्रमेकोद्दिष्टे सदा बुध
न्युब्जं तु पार्वणे कुर्यात्तस्योपरि कुशाव्यसेत् ॥ नवश्राद्धं गृहे कुर्याद्भार्या यत्राग्र
वा । सपिण्डीकरणान्तानि प्रेतश्राद्धानि यानि वै । तानि स्युलौकिके वत्सावि
त्वाश्वलायमः ॥' इदं संभवेत्तेन कार्यम् । 'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहपर्युषितं च य
दंपत्योर्भुक्तशेषं च न तद्भुज्जीत कर्हिचित् ॥' इत्यङ्गिरोवचनलिङ्गात् । 'द्वाभ्यां
तु कृच्छ्राभ्यां शुद्धिः स्यात्तु विवेकिनाम् ।' इति ब्राह्मे उक्तम् । विघ्ने तु निर्ण
मृते कण्वः- 'नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् । तत्तदुत्तरसातन्व्यादन्
प्रचक्षते ॥' हेमाद्रौ गालवः- 'शावे तु सूतकं चेत्स्यान्निशायां च मृतौ त
नवश्राद्धानि देयानि यथाकालं यथाक्रमम् ॥' निशायामाशौचान्ते द्व्यहवृद्धौ । अन
रोहणे तु- 'नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् । एक एव वर्षोत्सर्गो गौ
तत्र दीयते ॥'

आशौचान्तदिने कार्यमुक्तं ब्राह्मे- 'यस्ययस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पा
त्वहः । स तत्र वस्त्रशुद्धिं च गृहशुद्धिं करोत्यपि ॥ समाप्य दशमं पिण्डं प्रेतस्पृ
वासर्सी । अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोति च ॥ श्मश्रुलोमनखान्
यत्याज्यं तज्जहात्यापि । गौरसर्पकल्केन तिलकल्केन संयुतम् ॥ शिरःस्नानं
कृत्वा तोयेनाचम्य वाग्यतः । वृषभं गां सुवर्णं च स्पृष्ट्वा शुद्धो भवेन्नरः ॥' क्रि
निवन्धे गृह्यकारिकायाम्- 'अत्र पिण्डत्रयं दद्युस्तत्सखिभ्यस्तथादिमम् । प्रेत
मध्यमं तद्वृत्तीयं च यमाय वै ॥' तथा- 'कर्त्रात्र प्रार्थिताः सन्तो ज्ञातिसंबन्धि

देवलः—‘दशमेहनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत् । तत्र त्याज्यानि वामांसि केशश्मश्रुनखानि च ॥’ अपराकै बृहस्पतिः—‘नवमे वासंसां त्यागो नखरोम्णां तथा न्तिमे’ ॥ तत्रैव व्यासः—आशौचान्त्यदिने क्षौरं जनन्यां च गुरौ मृते । एतत्प्रेतलपवयसामित्याहापस्तम्बः—‘अनुभाविनां च परिवापनम्’ इति । अनुभाविनः कनिष्ठ इति विज्ञानेश्वररत्नाकरादयः । ‘आशौचमनुभवतां पुंसां सर्वांशौचे तु मुण्डनम् आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्ममृतसूतकेषु च । बन्धमोक्षमखदीक्षणेऽपि क्षौमिष्ठस्त्रिखिलेषु चोदुषु ॥’ इति रत्नमालोक्तेर्जननाशौचेपीति शुद्धितत्त्वादयः । अत्र देशचारतो व्यवस्था । परं शिखावर्ज्यम् । केशश्मश्रुनखलोमानि वापयीत शिखावर्ज्यम् इति गोभिलोक्तेः । यत्त्वापस्तम्बः—‘न समावृत्ता वपेयुरन्यत्र विहारादित्येकं विहारो दर्शादियागः । तेन विना समावृत्ता गृहस्था न वपेयुरित्यर्थः । यच्च—‘वृद्धिनिक्षिपति यः केशास्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम्’ इति, तत्—‘केशश्मश्रु धारयतामग्न्या भवसंततिः ।’ इति दानधर्मोक्तं काश्यपसम् । अनुभाविनः पुत्रादय इत्येकं । ‘पुत्रपत्नी च वपनं कुर्यादन्ते यथाविधि । पिण्डदानोचितोन्योपि कुर्यादित्थं समाहितः इत्यपराकै व्यासोक्तेः । यत्तु मिताक्षरायाम्—‘द्वितीयेहनि कर्तव्यं श्रवणं प्रयत्नतः । तृतीये पञ्चमे वापि दशमे वाऽऽप्रदानतः ॥’ इति । ‘आप्रदानतः’ इति चतुर्थादीनि । तत्प्रथमदिने संभवे ज्ञेयम् । ‘अलुप्तकेशो यः पूर्वं सोत्र केशान्प्रवापयेत्ते द्वितीयेहि तृतीयेहि पञ्चमे सप्तमेपि वा ॥ यावच्छ्राद्धं प्रदीयेत तावदित्यपरं मतम् । इति माधवीये मदनरत्ने च बौधायनोक्तेः । मदनपारिजाते तु दशमे प्राग्वत् च समुच्चय उक्तः । यत्तु—‘दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्’ इति—तदेकादशश्राद्धाङ्गविप्रनिमन्त्रणार्थं ज्ञेयम् ॥

अथैकादशाहः । मनुः—‘विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधैः । वैश्यः प्र

रश्मीन् वा याष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥’ शुद्धितत्त्वे देवलः—‘आवा

एकादशाहनिर्णयः ।

निवृत्तेषु सुस्नाताः कृतमङ्गलाः । आशौचादिप्रमुच्यन्ते ब्राह्मणान्स्व वाच्य च ॥’ याज्ञवल्क्यः—‘मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रति संवत्सरं आद्यमेकादशेहनि’ क्षत्रियाद्यैराशौचेऽप्येकादशेहि श्राद्धं कार्यम् । ‘आद्यं श्राद्धमशुच्य कुर्यादेकादशेहनि । कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः ॥’ इति हेमाद्रौ श्रवणोक्तेः । पैठीनसिः—‘एकादशेहि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् । चतुर्णामपि वपनं च पञ्चमाशुच्य ॥’ गृह्य मरीचिः—‘आशौचान्ते ततः सम्यक् पिण्डदानं समा

विष्णुः-‘अथाशौचापगमे ।’ इति । यच्च गौडग्रन्थे हारीतः-‘श्वेभूते एको
कुर्याद् ॥’ यच्च बैजवापः-‘ऊर्ध्वं दशम्या अपरेदुः’ इति तद्विप्रविषयम् । एतेन त
मपिण्डापकर्षपक्षे अवयवपिण्डासमाप्तौ कथमेकादशाहे श्राद्धमिति मूर्खोक्तिः परास्त
वचनादाशौचमध्ये इव तत्राप्यविरोधात् ॥

भविष्ये-‘एकादशभ्यो विप्रेभ्यो दद्यादेकादशेऽहनि । भोजनं तत्र वैकस्मै ब्रा
णाय महात्मने ॥’ यत्तु मात्स्ये-‘एकादशेऽहनि तथा विप्रानेकादशैव तु । क्षत्रा
सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान् ॥’ इति तद्वृद्धगणश्राद्धपरमिति मदनपारिजात
गौडास्त्वस्माद्वचनात्क्षत्रियादीनामाशौचान्त एवेत्याहुः । रामायणेपि-‘समतीते द
तु कृतशौचो यथाविधि । चक्रे द्वादशिकं श्राद्धं त्रयोदशिकमेव च ॥’ द्वादशिकं द्वाद
हेन निर्वर्त्य त्रयोदशाहश्राद्धम् । त्रयोदशिकं चतुर्दशाहविधेयं सपिण्डनपाथेयादि । क्ष
याणां द्वादशाहाशौचे त्रयोदशे महैकोद्दिष्टं चतुर्दशे सपिण्डनम् । द्विविधवाक्यादेकाद
हाशौचान्तयोर्विकल्प इत्येके । सद्यःशौचादौ युद्धहतादेरेकादशाहे । अन्येषामाशौच
इति वयम् । कौर्मे-‘एकादशेहि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्यभावतः । द्वादशे वाहि कर्तव्यम
न्धेप्यथ वाहनि ॥’ निन्द्यं प्रेतक्रियाकालयुक्तम् ॥ एकादशे तु न निषेध इत्युक्तं प्रा
बृहस्पतिः-‘वस्त्रालंकारशय्यादि पितुर्यद्वाहनादिकम् । गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य श्रा
भोक्ते तदर्पयेत् ॥ श्रोत्रिया भोजनीयास्तु नव सप्त त्रयोदश । जातयो बान्धवा निः
स्तथा चातिथयोपरे ॥’ देवयानिकनिबन्धे-‘एकादशसु विप्रेषु प्रेतमावाह्य भोजये
तत्राद्याय च शय्यादि दद्यादाद्यमिति स्मृतम् ॥’ विष्णुः-‘एकवन्मन्त्रानूहेनैकोद्दिष्टे
बहुवचनान्तानेकवचनान्तान्वदेदित्यर्थः । एतत् दृष्टार्थत्वे ॥

१-‘सर्वेभ्यः प्रेतवर्णेभ्यः पिण्डान्दद्यादशैव तु’ । इति पारस्कारोक्तपक्षे-‘राज्ञस्तु दशमः पि
द्वादशेहनि दीयते । वैश्यस्य पञ्चदशमे ज्ञेयस्तु दशमस्तथा ॥ शूद्रस्य दशमः पिण्डो मासे
दीयते ।’ इत्यादिपुराणोक्त इत्यर्थः । इति टीका । २-अयं भावः-प्रायश एकसंवत्सर
त्रायवीयः प्रेतदेहः, तदारम्भश्च शरीरारम्भकाधर्मविशेषः । पितृत्वप्राप्तिप्रतिबन्धकस्तदेहभो
खभोगनाश्यस्तदधर्मनाशार्थं दुःखभोगः । तदर्थं च प्रेतदेह आवश्यकः । तदुत्पत्त्यर्थं च पिण्ड
मिति प्रेतदेहोत्पत्तिर्भवत्येव । एकादशादिश्राद्धानां पूर्णप्रेतशरीरनिवृत्तिः फलम् । ‘यस्यैता
दत्तानि प्रेतश्राद्धानि षोडश । पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि, इति यमोक्तेः ।’ ‘एकादशा

अस्य विघ्ने गौणकालमाह हेमाद्रौ बौधायनः—‘एकोद्दिष्टं श्व एव स्याद्वा दशोहनि वा पुनः । अत ऊर्ध्वमयुग्मेषु कुर्वीताहःसु शक्तितः ॥ अर्धमासेथवा मासि ऋतो संवत्सरोपि वा ॥’ इति । तत्रैव लघुहारीतः—‘एकोद्दिष्टं तु कुर्वीत पाकेनैव सदा स्वयम् । अभावे पाकपात्राणां तदहः समुपोषणम् ॥ गोभिलः—‘ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेथवा । पुनश्च भोजयेदेकं द्विरावृत्तिर्भवेदिति ॥’ एतदाद्यमासिकाद्याब्दिकयोः सिद्धयर्थमिति भट्टाः । तेन महैकोद्दिष्टं षोडशश्राद्धाद्भिन्नमेव । अत एवाद्यं सर्वैकोद्दिष्ट-प्रकृतिभूतमेकादश इति विज्ञानेश्वरः । अन्येत्वाद्यमासिकाब्दिकयोः ‘आद्यमेकादशोहनि’ इति नियमादभेदमाहुः । द्वयोस्तन्त्रत्ववाधार्थं गालवीयमित्यन्ये । युद्धहतादौ तु हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये पैठीनसिः—‘सद्यःशौचेपि दातव्यं प्रेतस्यैकादशोहनि । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धशय्यासनादिषु ॥’ एवमेकादशाहादौ । अतोऽत्र द्वितीयद्वयेकादशाहं वदन् ढौण्डुः शूलपाणिः स्मार्तगौडश्च परास्तः । एतेन ‘आद्यमेकादशोहनि’ इत्याशौचान्तरादिनपरमिति विष्णुक्तेः । प्राशुक्तशंखादिवचनानां चानाकरत्वादिति वदन्तः कल्पतरुवाचस्पतिप्रमुखाः सर्वमहानिवन्धविरोधादुपेपेक्ष्याः । उशनाः—‘व्यहाशौचेपि कर्तव्यमाद्यमेकादशोहनि । अतीतविषये सद्यश्च होर्ध्वं वा तदिष्यते ॥’

याज्ञवल्क्यः—‘एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकाध्वैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत् ॥ उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने । अभिरम्यतामिति वदेयुस्तेभिरतास्महे ॥’ इति । अग्नौकरणनिषेधोन्यपरः । बह्वृचानां सर्वैकोद्दिष्टेषु तद्भवत्येवेत्युक्तं प्राक् । स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न इति कात्यायनः । प्रथमे पात्रे संस्वनित्यस्य तृतीये नापिधानस्य च बाधान्न पात्रन्युब्जतेति शूलपाणिः । प्रचेताः—‘नात्र पात्रालम्भनाशिषः प्रार्थयेत् ॥’ अत्र विशेषो हेमाद्रौ वाराहे—‘श्मश्रुकर्म तु कर्तव्यं नखच्छेदस्तथैव च । स्नपनाभ्यञ्जने दद्याद्विप्राय विधिपूर्वकम् ॥’ तथा—‘उपवेश्यासने भोजनं तत्र प्रकल्पयेत् । पश्चादुपानहौ दद्यात्सर्वाण्याभरणानि च ॥’ विष्णुः—‘दक्षिणान् श्राद्धमुक्त्वा दत्ताक्षय्योदकेषु चतुरङ्गुलपृथ्वीस्तावदन्तरालास्तावदधःखाता वितस्तयायतस्तिष्ठः कर्षूः कुर्यात् । कर्षूणां समीपेऽग्निमाधाय परिस्तीर्यैकैकस्मिन्नाहुतित्रयं जुहुयात् सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय यमायाङ्गिरस्वते इति ॥’ स्थानत्रये प्राग्त्पिण्डनिर्वपणं दधिमधुघृतमांसैः कर्षूत्रयं पूरयित्वैतत्त इति जपेत् । शेषं नवश्राद्धवत् । असाग्रेरप्यन्ते वैश्वदेव इत्युक्तं प्राक् । इदं दशाहकर्त्रा पुत्रेण वा कार्यमित्युक्तम् क्रिया नि

तद्वाण्डान्यपि भाजनम् ॥' विप्राभावेऽप्रावेकोद्दिष्टम् ॥ 'अग्नौ पायसं श्रप्य
ज्यभागान्ते तदग्रे श्राद्धप्रयोगं कृत्वाग्नौ प्रेतमावाह्य गन्वाद्यैः संपूज्य पृ
थात्रमित्यादिनाश्रं संकल्प्योदीरतामवर इत्यष्टाभिश्चतुरावृत्ताभिर्द्वात्रिंशदाहुतं
पिण्डदानादिश्राद्धं समापयेत्' इति । याज्ञवल्क्यः- 'एतत्सपिण्डीकरणमेव
स्त्रियामपि ॥'

अथ वृषोत्सर्गः । स च नित्यः काम्यः । 'न करोति वृषोत्सर्गं सुतीर्थे वा
अलिम् । न ददाति सुतो यस्तु पितुरुच्चार एव सः ॥' उच्चारः पुरीषम् ॥ 'ए
वहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृ
षोत्सर्गो निर्णयः ।
त्सृजेत् ॥' इति मात्स्यकौर्मोक्तेः । 'एकादशोद्दि प्रेतस्य
नोत्सृज्यते वृषः । प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥' इति षट्त्रिंश
निन्दाश्रुतेः । 'एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम् । यमुद्दिश्योत्सृजेन्नी
लमेत परां गतिम् ॥ वृषोत्सृष्टः पुनात्येव दशातीतान्दशपरान् ।' इति देवीपुरा
भविष्यादौ फलश्रुतेश्च । अयं द्वादशाहे उक्तो भविष्ये- 'चैत्र्यां वापि तृतीया
वैशाख्यां द्वादशोद्दि वा ।' इति । विष्णुधर्मे- तु मृताहेत्युक्तः- 'विषुवद्वितये
मृताहे वाश्ववस्य च ।' इति । अयं गृहे न कार्यः । 'न गृहे ओचयेन्नीलं का
न्पुष्कलं फलम् ।' इति कालिकापुराणात् । कामधेनौ- 'वत्सराभ्यन्तरे पि
वृषस्योत्सर्गकर्मणि । वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समारभेत् ॥' तल्लक्षणं तु ब्राह्म
'लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो
उच्यते' ॥ श्वेतवर्णस्य मुखादीनि श्यामानि श्यामस्य वा श्वेतानि यस्य सोपि नील
उक्तो मात्स्यादौ । देवीपुराणे- 'चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वे वा संभवतोपि वा
यत्तु पठन्ति 'वृषोत्सर्जनवेलायां वृषाभावः कथंचन । मृद्भिः पिष्टैश्च दर्भैर्वा वृषं कृ
विमोचयेत् ॥ न शक्यते वृषोत्सर्गो होमं वा तत्र कारयेत् ।' इति तन्निर्मूलः । त
विर्हेमाद्रौ भट्टकृतौ च ज्ञेयः । अत्र देवयाज्ञिकेन वृषोत्सर्गात्पूर्वं पुरुषसूक्तेन विष्ण
रूपिप्रेतोद्देशेनविष्णुतर्पणमुक्तम् । तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

पारस्करः- 'सव्येन पाणिना पुच्छं समालम्ब्य वृषस्य तु । दक्षिणेनाप आदा
सतिलाः सकुशास्ततः ॥ प्रेतगोत्रं समुच्चार्य अमुकस्मै इति ब्रुवन् । वृष एष मया
तत्तं तारयतु सर्वदा ॥ सहेम सतिलं भूमावित्युच्चार्य विनिक्षिपेत् ॥' तथा- 'विध
रयेन्न तं कश्चिन्न च कश्चन वाहयेत् । न दोदयेन्न वा धेनवे न कश्चन वाहयेत् ॥'

पयस्विनीम् ॥' पतिपुत्रयोः साहित्यं विवक्षितम् । अन्वारोहणेपि गोदानमेवेत्युक्तम् । आशौचान्तरोपि वृषोत्सर्गाद्यमासिकशय्यादि दद्यादेवेत्युक्तम् । क्रियानिबन्धे स्मृत्यन्तरे—'सूतके मृतके चैव द्वितीयं मृतकं यदि । पिण्डदानं प्रकुर्वीत वृषोत्सर्गं तथैव च ॥ न हन्यात्सूतके कर्म द्वादशैकादशाहिकम् ॥ शुद्धो वा यदि वाऽशुद्धः कुर्यादेवाविचारयन् ॥' इति ॥

अत्र पददानमुक्तं देवजानीये गारुडे एकादशाहं प्रक्रम्य—'तद्वि दीयते मृत्योर्द्वादशाहे विशेषतः । पदानि सर्व्वस्तूनि वरिष्ठानि त्रयोदश ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवतोप्यात्महेतवे । सुखी भूत्वा महामार्गं वेनतेय गच्छति ॥' तथा—'आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिका च कमण्डलुः । भोजनं भोजनाधानं वस्त्राण्यष्टविधं पदम् ॥' तथा—'भाजनासनदानेन मुद्रिकाभोजनेन च । आज्ययज्ञोपवीतेन पदं संपूर्णतां व्रजेत् ॥ महिषीरथगोदानात्सुखी भवति निश्चितम् । सर्वोपस्कारकानि पदान्यत्र त्रयोदश ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे । स गच्छति स्थानं महाकष्टविवर्जितः ॥ त्रयोदशपदानीत्यं प्रेतयैकादशेहोनि । दानव्यानि यः शक्ति तेनासौ प्रीणितो भवेत् ॥ अन्नं चैवोदकं चैवोपानहौ च कमण्डलुः । छत्रं तथा यष्टिं लोहदण्डं दद्याष्टमम् ॥ अग्नीष्टिकां च दीपं च तिलांस्ताम्बूलमेव च चन्दनं पुष्पदानं चोपदानानि चतुर्दश ॥ योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् स्वमहिम्नोनुसारेण तत्तत्सुखमवाप्नुयात् ॥' इति । अत्र मूलं चिन्त्यम् ।

अथ शय्यादानम् । हेमाद्रौ भविष्ये—'तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमृदां । दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृताम् ॥ हंसतूलीप्रतिच्छिन्नशुभदण्डोपधानिकाम् ॥ प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपदिवासितां तस्यां संस्थापयेद्वैमं हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ॥' अत्र हरिस्थाने प्रेतम् । 'उच्छ्रीं धृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् । ताम्बूलं कुंकुमक्षोदकर्पूरागरुचन्दनम् ॥ दीपिकां पादौ चामरासनभाजनम् । पाश्वेषुं स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ॥ शय्यस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् । भृङ्गारकरकाद्यं तु पञ्चवर्णवितानकम् । मन्त्रसंस्तुत्य 'यथा न कृष्ण शयनं शून्यं सागरजातया । शय्या ममाप्यशून्वास्तु तथा जगन्निजन्मनि ॥ यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च ॥ अर्घं तदेव । 'दत्तस्य सकलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । एकादशाहेपि तथा विधिरेवः प्रकीर्तितः । विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निशामय । तेनोपभुक्तं यत्किंचिद्वस्त्रवाहनभाजनम्

शय्यादाननिर्णयः ।

यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् । तमेव पुरुषं हैमं तस्यां संस्थापयेत्तदा
यित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ॥' पात्रे-‘मृतकान्ते द्वितीयेति
दद्यात्सलक्षणाम् । काञ्चनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रसमन्वितम् ॥ संपूज्य द्विजदांपत
मणिविभूषितम् । उपवेश्य तु शय्यायां मधुपर्कं ततो वदेत् ॥ रजतस्य तु पात्रेण व
समन्वितम् । अस्थि लालाटिकं गृह्य सूक्ष्मं कृत्वा सपायसम् ॥ भोजयेद्वि
विधिरेष सनातनः ॥ एष एव विधिर्दृष्टः पार्वतीयैर्द्विजोत्तमैः ॥’ एतत्प्रतिग्र
वोक्तम्-‘गृहीतायां तु तस्यां वै पुनःसंस्कारमर्हति ॥’ शय्यादानफलं भविष्य
पुरंदरपुरे सूर्यपुत्रालये तथा । सुखं वसत्यसौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ॥ आ
यावत्तिष्ठत्यातङ्कुवर्जितम्’ इति ॥

अथोदकुम्भः । हेमाद्रौ स्मृतिसमुच्चये-‘एकादशाहात्प्रभृतिघटस्ते
युतः । दिनेदिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः ॥’ लौग
उदकुम्भदाननिर्णयः । ‘यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत् । मासिकं चोद
देयं तस्यापि वत्सरम् ॥’ उत्तरार्धे-‘तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं
इत याज्ञवल्क्यपाठः । सपिण्डनापकर्षेऽस्यापकर्षप्राप्ते बाधकमिदमिति शूल्
स्तन्न । प्रकृतिविकाराभावेन तदन्तन्यायाविषयत्वात् । मात्स्ये-‘यावदब्दं च य
दुदकुम्भं विमत्सरः । प्रेतायान्नसमायुक्तं सोश्वमेधफलं लभेत् ॥’ केचिन्नय
मारभ्याहुस्तन्निर्मूलम् । दैवयाज्ञिकः-‘सपिण्डनापकर्षे संवत्सरं यावदुदकुम्भ
गेव दद्यात् नोर्ध्वम् । प्रेतलोकगतस्यान्नं सोदकुम्भं प्रयच्छत ।’ इति गो
राजधृतं विष्णूक्तेः । ‘अन्नं चैव स्वशक्त्या तु संख्यां कृत्वाब्दिकावधि ।
ब्राह्मणे स्कान्द घटादौ निष्क्रयं तु वा ॥ अपि श्राद्धशतैर्दत्तैरुदकुम्भं विना
दरिद्रा दुःखिनस्तात भ्रमन्ति च भवार्णवे ॥ तेनापकृष्य दातव्यं प्रेतस्याप्यु
कम्’ । इति गोभिलभाष्ये स्कान्दाच्च सपिण्डनात्प्रागेव तस्य विधानादूर्ध्व
धादित्याह तन्न । उदकुम्भे पार्वणविधिनानुपपत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावा
क्षरादिविरोधाच्च । वचनं च यदि समूलं तदा वृद्धावपकर्षं विधत्ते । ‘प्रेतश्राद्ध
र्वाणि सपिण्डीकरणं तथा ।’ इति । हेमाद्रौ शाक्यायनोक्तेः । ‘तस्याप्यन्न
कुम्भम्’ इति याज्ञवल्क्यविरोधाच्च ॥

मदनरत्ने गौतमः-‘अदैवं पार्वणं श्राद्धं सोदकुम्भमधर्मकम् । कुर्यात्प्र
काच्छ्राद्धात्संकल्पविधिनान्वहम् ॥’ अधर्मकं ब्रह्मचर्यादिनियमहीनम् । एतन्म

पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः कार्या सपिण्डना ॥ इति । लघुहारीतोक्तावपि—‘तस्या-
प्यन्नं सोदकुम्भं देयं संवत्सरं द्विजे’ । इति याज्ञवल्क्ये । तस्येत्येकत्वोक्तेः । सपि-
ण्डनोत्तरमप्येकोद्दिष्टमेवेत्याह । अत्र पिण्डदानं कृताकृतम् । ‘अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणा-
योदकुम्भं च दद्यात्पिण्डमप्येके निपृणन्ति’ इति हेमाद्रौ पारस्करोक्तेः । श्राद्धा-
शक्तौ पिण्डमात्रमिति गौडास्तत्र । अपिशब्दवाधापत्तेः । हारीतः—‘मृते पितरि वै
पुत्रः पिण्डमब्धं समाचरेत् । अन्नं कुम्भं च विप्राय प्रेतनिर्देशधर्मतः ॥’ प्रेतशब्दोच्चार-
णेनेति हलायुधः । यद्वा प्रेतस्य निर्देशो यत्र तदेकोद्दिष्टं तद्धर्मकमित्यर्थः । अत्राशौ-
चान्तदिनाद्यब्दान्तं यावद्वत्सरापूर्तेः शौचं नाधिकारिविशेषणम् । तेन मृतिदिनमारभ्य
तत्कार्यमिति केचित्तत्र । हेमाद्रिधृतवचोविरोधात् । मध्ये आशौचादिना वाधे
तु लोप एव दार्शवत् । तथा प्रथमाब्दे दीपदानमुक्तम् । देवजानीये गारुडे-
‘प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः । यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य मुखलि-
प्सया ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये । कुर्याद्याम्यमुखं पितृये अग्नि-
संकल्प्य सुस्थितम् ॥’

अथ मासिकानि । तानि च कृत्वैव सपिण्डनं कार्यम् । तथा च गोभिलल

मासिकनिर्णयः । गाक्षी—श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नैव कुर्यात्सपिण्डनम् । श्राद्धानि षो-

शापाद्य विदधीत सपिण्डनम् ॥’ तानि त्वाह जातूकर्ण्यः—‘द्वाद-

प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिकं तथा । त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येता-

षोडश ॥’ आद्यषाण्मासिकाब्दिकशब्दाः ऊनमासिकोनषष्ठोनाब्दिकपराः ॥ हेमा-

तु—‘सपिण्डीकरणं चैव इत्येतच्छ्राद्धषोडशम् ।’ इत्युत्तरार्द्धे पाठः । त-

आद्यमूनमासिकं द्वादशाहे, षाण्मासिकम् ऊनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थः । का-

यनस्त्वन्यथाह—‘द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यषाण्मासिके तथा । सपिण्डीकरणं

इत्येतच्छ्राद्धषोडशम् ॥ एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः । न्य-

संवत्सरश्चैव स्यातां षण्मासिके तदा ॥’ द्विवचनादूनषष्ठोनाब्दिके । इत्यर्थः

पृथ्वीचन्द्रः । व्यासस्त्वन्यथाह—‘द्वादशाहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकाब्दिवे-

श्राद्धानि षोडशैतानि संस्मृतानि मनीषिभिः ।’ द्वादशाहपदमूनमासिकपरं तस्य द्वा-

शाहेप्युक्तेरिति कालादर्शः । मदनरत्नै ब्राह्मे त्वन्यथोक्तम् । ‘नृणां तु त्यक्तदेह-

श्राद्धाः षोडश सर्वदा । चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा ॥ ततो द्वादशभिर्म-

श्राद्धा द्वादश संख्यया ।' इति चतुर्थादीनि दिनानि । भविष्ये त्वन्यथ
'अस्थिसंचयनं श्राद्धं त्रिपक्षे मासिकानि तु । रिक्तयोश्च तथा तिथ्योः प्रेत-
षोडश ॥' इति । रिक्तयोस्तिथ्योरित्यूनपष्ठोनाब्दिकपरमिति हेमाद्रिः । अ
कुलशाखाभेदाद्व्यवस्थेति सर्वनिबन्धाः ॥ गालवः- 'ऊनषाण्मासिकं षष्ठे
प्यूनमासिकम् । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनाब्दं द्वादशे तथा ॥' ऊनमासिके तु गो
'मरणाद्वादशाहे स्यान्मास्यूने वोनमासिकम् ॥' मदनरत्ने कालादर्शं च
गौतमः- 'एकाद्विदिनैरूने त्रिभागेनो न एव वा । श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्या
गौतमः ॥' क्रियानिबन्धेऽक्रतुस्तु- 'सार्धं एकादशे मासे सार्द्धे वै पञ्चमे
ऊनाब्दमूनषण्मासं भवेतां श्राद्धकर्मणि ॥' इत्युक्तम् ॥ 'तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥

ऊनेषु वर्ज्यान्वाह मरीचिः- 'द्विपुष्करे च नन्दासु सिनीवाल्यां भृगोर्दिने
र्दश्यां च नोनानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे ॥' ज्योतिषे- 'त्रिपादक्षतिथिर्भद्रा
रविभिः सह । तदा त्रिपुष्करो योगो द्वयोर्योगे द्विपुष्करः ॥' गालवः- 'अ
दिवसैरूने त्वेकेन द्वितयेन वा । आद्यादिषु च मासेषु कुर्यादूनाब्दिकादिकम् ।
न्यूनपक्षे पञ्चम्यां मृतस्य तृतीयायां त्रिभिर्न्यूने प्रतिपादि यूने द्वितीयायामिति वे
माधवस्तु- 'षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे स्यातां पूर्वद्युरेव ते । मासिकानि स्व
दिवसे द्वादशेऽपि च ॥' इति पैठीनसिवाक्ये ऊनषाण्मासिकं सप्तममासगतमृत-
वैद्युः कार्यम् । ऊनाब्दिकं तु द्वितीयाब्दे मृताहदिनात्पूर्वद्युः कार्यमित्यर्थमाह । पृ
ताहादित्यर्थः । 'मासिकानि स्वकीये तु दिवसे' इत्युक्तेः । इदमेव युक्तम् । मदन
प्येवम् याज्ञवल्क्यः- 'मृतेहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिवत्सर
माद्यमेकादशेहनि ॥' अत्राद्यमासिकमाब्दिकं चैकादशेऽह्नीति निर्णयामृता
'ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेथ वा । पुनश्च भोजयेद्विप्रं द्विरावृत्तिर्भवेदिति ॥
गोभिलीयं च तद्विषयमाहुः । अन्ये तु- 'मासपक्षतिथिस्पष्टे' इत्यादिविरोधाद्
वर्षान्ते एव । मासिकं तु मासादौ । द्विरावृत्तिस्तु एकादशाहिकाद्यमासिकपरा
याज्ञिकोप्येवमाह । लौगाक्षिरपि- 'मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरे
आद्यमेकादशे कार्यमधिके त्वधिकं भवेत् ॥' दीपिकायां तु- 'आद्यं रुद्रमिते
मितदिने वा स्यात्' इत्युक्तम् । गौडास्तु मृततिथ्यवधिके एकदिनाधिके मास
रपदं गौणम् । पूर्णेऽब्दे इति ईषदसमाप्तपरत्वमिति शूलपाणिः । तेन द्वितीयादि
दावाद्यमासिकादीनि तन्मौख्यकृतम् ॥

अशक्तौ तु हारीतः—‘मुख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्याप्तावृतुं प्रति । द्वादशाहेन भोज्या एकोहे द्वादशापि वा ॥ ’ ऋतुं प्रति द्वेद्वे इत्यर्थः । यदा पितुर्मरणाच्चयोर्विशति दिने दशौ वृद्धिर्वा स्यात्तदा द्वादशदिनेषु द्वादशमासिकानि कार्याणीत्यर्थः । त्रैपक्षि त्रिपक्षेतीति मृताहे कार्यम् । ‘त्रैपक्षिकं भवेद्वृत्ते त्रिपक्षे तदनन्तरम् ।’ इति भविष्यो इति मदनरत्ने उक्तम् । पृथ्वीचन्द्रकालादर्शानिर्णयामृतादयस्तु—‘उत्तमान् मासेषु विषमाहे समेपि वा । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यान्मृताहे त्वितराणि तु इति काष्णार्जिनिस्मृतेः । पूर्वत्र वृत्ते प्रवृत्ते इत्यर्थमाहुः । ते तदनन्तरश्व रोधात् त्रैपक्षिकद्वितीयमासिकयोः संकरापत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावाच्चोपेक्ष्य त्रिपक्षसपिण्डने त्वेवंशब्दाभावादधिकरणत्वमेव ज्ञेयम् । यत्तु क्रियानिवन्धे ग डे—‘त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे तु प्रवृत्ते विषमे दिने । मासिकान्यपि चोनानि अष्टाविंश दिने ॥’ इति ॥ तन्निर्मूलम् ॥

स्मृतिरत्नावल्याम्—‘द्वादशाहे यदा कुर्यात्पितुः पुत्रः सपिण्डनम् । एका कुर्वीत प्रेतश्राद्धानि षोडश ॥’ पैठीनसिः—‘सपिण्डीकरणादूर्वाक् कुर्वत्र श्राद्धं षोडश । एकोद्विधविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु ॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं कुर्यात्तदा पुनः । प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ॥’ मदन कात्यायनः—‘श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेहनि । ध्रुवाणि तु प्रकुर्वीत प्रमीत सर्वदा ॥’ ध्रुवाणि त्रैपक्षिकादूर्ध्वानि ॥ क्रियानिवन्धे गारुडे—‘त्रिपक्षात् साग्नेर्भवेत्संस्कारवासरे । ऊर्ध्वं मृतदिनेऽनग्नेः सर्वाण्येव मृताहतः ॥’ एतानि च सपिण्डनात्पूर्वं युगपत्कुर्यात्तदा देशकालकर्तृक्ये तन्त्रत्वादेकः पाक इति केचित् पाकभेद इति भट्टचरणाः । अत्र केचिदाहुः—देशकालकर्तृदैवतैक्ये तन्त्रत्वात् श्राद्धकालातिक्रमापत्तेः—‘द्वादशाहेऽथ सर्वाणि संक्षेपेण समापयेत् ॥ तान्येव तत्तत् कुर्यात्प्रेतशब्दं न कारयेत् ॥’ इति कात्यायनोक्तः । नैकः श्राद्धद्वयं कुर्यात् ऽहनि कुत्रचित् ।’ इत्यस्य दैवतैक्यपरत्वेऽप्यत्र तत्सत्त्वात् । ‘श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः न कारयेत् ।’ इति जाबाल्युक्तः । षोडशसंख्यायाश्च वाजपेये प्राजापत्ययाग शत्ववत्सान्नाय्ययागद्वित्ववच्च दर्शपातसंक्रान्तिश्राद्धवद्युगपदनुष्ठानेष्युपपत्तेः । ‘आय काद्यूनाब्दिकान्तेषु षोडशश्राद्धेषु च क्षणः क्रियताम्’ इत्येवं प्रयोगेणैको विप्रः विध्यंश्चेति । विरुद्धविधिविध्वंसेऽप्येवम् तन्मन्दम् । ‘द्वादशाहेन वा भोज्या द्वादशापि वा ।’ इति हेमाद्रौ हारीतवचोविरोधात् । तेन विप्रभेदात् पिण्ड

एतानि द्वादशाहादौ सपिण्डनात्पूर्वं कृतान्यपि वृद्धिं विनापकर्षे पुनः स्वकाले कर्तव्यं । 'यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं कृतम् । मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्य वत्सरम् ॥' इति मदनरत्नेऽङ्गिरसोक्तेः । न चेदं मासिकानामपकर्षं विधेयं किंतु सपिण्डनोर्ध्वं स्वकालेनुष्ठानमेवेति वाच्यम् । 'श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नतु कुयः सपिण्डताम् ।' इति विरोधात् । 'यस्य संवत्सरादर्वाग्विहिता तु सपिण्डता । विधिवत् कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश ॥' इति माधवीये गोभिलोक्तेश्च । 'अर्वाक् संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं कृतम् । षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः ॥' तत्रैव गालवोक्तेः । षोडशत्वं चैकादशाहासपिण्डनपक्षेः तत्राद्यमासिकस्य कालात्त्वादप्यपक्षेषु यथासंभवं ज्ञेयम् ॥ यत्तु दीपिकायाम्—'अनुमासिकानि तु चान्येव सपिण्डयतः पश्चात् । द्वादश' इत्युक्तेरूनानां न पुनः कृतिरित्युक्तं तदेव रोधाच्चिन्त्यम् । यत्तु गौडाः—'सपिण्डीकरणान्ताः तु ज्ञेया प्रेतक्रिया' बुधैः । 'शातातपोक्तेर्मासिकानां प्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात्सपिण्डनापकर्षे तदन्तन्यायेन तेषामपि मासिकानां न पुनः कृतिः । यत्तु 'मासिकं चोदकुम्भं च' इति लौगाक्ष्या चनं तन्निर्मूलम् । समूलत्वेपि दार्शपरं चेत्याहुः । ते उक्तवक्ष्यमाणवचोनिबन्धविन्युर्वा इत्युपेक्ष्याः । यत्तु मिताक्षरायां सपिण्डनोर्ध्वं स्वकाले एव कार्याणि कर्षस्त्वनुकल्प इत्युक्तम् । तदपि पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम् । तेन वृद्धिं विनापकर्षे कृतिः । 'अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् । प्रेतत्वमिह तस्यापि ज्ञेयं संवत्सराद्यस्य नृप' ॥ इत्यग्निपुराणात् । वृद्धिनिमित्तापकर्षे त्वस्त्येव तन्निवृत्तिः । अन्यथा वृद्धिर्भवतीति शूलपाणिः ॥

कार्णाजिनिः—'सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि । पुनरप्यपकृष्य वृद्धयुत्तरनिषेधनात् ॥' निषेधं चाह कात्यायनः—'निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं तु मासिकानि तन्त्रयेत् । अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु ।' इति । द्विरनुष्ठानं चोत्तरेषामेव पूर्वेषां स्वस्वकालकृतानाम् । तदाह माधवीये कार्णाजिनिः—'अर्वागब्दाद्यस्य सपिण्डीकरणं कृतम् । तदूर्ध्वं मासिकानां स्याद्यथाकालमनुष्ठितिः ॥' हेमाद्रौ ठाकुराचार्यः—'प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सपिण्डीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तव्यं न्दीमुखं द्विजः ॥' वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाहोशनाः—'वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् । स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ॥' इति । आधानेऽपि माह हेमाद्रावुशनाः—'पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतिवासरे । आधानाद्युपसं-

वेतत्प्रागापि वत्सरात् ॥' विशेषस्तूक्तो विवाहनिर्णये । कण्वः—'नवश्राद्धं मासि च यद्यदन्तरितं भवेत् । तत्तदुत्तरसातन्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥' गारुडेपि—'आपदकृतं यत्तु कुर्यादूर्ध्वं मृताहनि ॥'

अथ सपिण्डीकरणम् । माधवीये हारीतः—'या तु पूर्वममावास्या मृतसपिण्डीकरणनिर्णयः । दशमी भवेत् । सपिण्डीकरणं तस्यां कुर्यादेव सुतोऽग्निमान् मृताहादूर्ध्वं दशमी एकादशीत्यर्थः । सपिण्डीकरणं कुर्यात्पूर्ववच्च मान्सुतः । परतो दशरात्राच्चेत्कुहूरब्दो परीतरः ॥' इति कार्णाजिनिस्मृतेश्च । अताग्नेस्तेन विना श्रौतपिण्डपितृयज्ञासिद्धेः । तदाह गालवः—'सपिण्डीकरणात्प्रेतेन पदमास्थिते । आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते' ॥ मदनरत्ने प्रजापतिर्नासपिडचाग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत् । अपराकें कात्यायनः—'एकादश्यां निर्वर्त्य पूर्वं दर्शाद्यथाविधि । प्रकुर्वीताग्निमान्विप्रो मातापित्रोः सपिण्डताम् । आश्विनान्तप्रथमदर्शयोर्मध्ये कस्मिंश्चिद्वितीत्यर्थः ॥ पित्रादीनां सपत्नीकानां देवतात्वेन माप्राग्दर्शात्सपिण्डनं युक्तमित्यपराकः । एवं पितामहादेरपि सपिण्डनं प्राग्दर्शात्कातेन विना पार्वणायोगाद्वादशाहे वा कार्यम् । साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चानग्निमान्भवेद्वादशाहे भवेत्कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः ॥' इति गोभिलोक्तेः । साग्नेः प्रेतस्य तु पक्षे 'प्रेतश्चेदाहिताग्निः स्यात् कर्तानग्निर्यदा भवेत् । सपिण्डीकरणं तस्य कुर्यात्तृतीयेके' इति सुमन्तूक्तेः । मदनरत्ने लघुहारीतोपि—'अनग्निस्तु यदा वीर्यं त्कुर्यात्तदा गृही । प्रेतश्चेदग्निमांस्तु स्यात्त्रिपक्षे वै सपिण्डनम् ॥' द्वयोः साग्नित्वे द्वादशाहे वा । 'साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतो वाप्यग्निमान्भवेत् । द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं पितुः ॥' इति तेनैवोक्तेः ॥

द्वयोरनग्नित्वे तु भविष्ये—'सपिण्डीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनग्निमान् । अनाग्निः प्रेतस्य पूर्णेन्द्रे भरतर्षभ ॥ द्वादशाहानि षण्मासे त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा । एकादश्यामासि मङ्गलस्याप्युपस्थितौ ॥' कात्यायनगोभिलौ—'यदहर्वा वृद्धिरापद्यते । तच्च वृद्धिदिन एवेति वाचस्पतिस्तत्र । 'प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इति नियमात्सप्तमस्य चापराह्णकालीनत्वेन पूर्वत्वबाधापत्तेः । वृद्धिदिने तत्पूर्वदिने वेति श्रीदस्मार्तगौडस्तु—'वृद्धिपूर्वो वर्षान्त्यश्च क्षणः सपिण्डनस्य प्रेतत्वनाशे सहकारी परेद्युर्विघ्नाद्वृद्धयभावेऽपि तत्कर्तव्यतानिश्चयसहितमेव कालान्तरक्रियमाणवृद्धिपूर्वकं सहकृतं प्रेतत्वनाशकम्' इत्याह तत्र । अकाले कृतस्य फलाजनकत्वात् । एतेन

पुलस्त्यः-‘निरग्रिकः सपिण्डत्वं पितुर्मातुश्च धर्मतः । पूर्णे संवत्सरे कुर्याद्वृद्धिर्वा यद् भवेत् ॥’ चतुर्विंशतिमते-‘सपिण्डीकरणं चाब्दे संपूर्णे ऽभ्युदयेपि वा । द्वादशाहे केषांचिन्मतं चैकादशे तथा ॥’

पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः-‘अथ सपिण्डीकरणं, त्रिपक्षे वा तृतीये वा मासि षष्ठे चैकादशे वा द्वादशे वा द्वादशाहे च’ इति । एतत्प्रक्रमे विष्णुः-‘मासिकायां द्वादशाहं श्राद्धं कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि वा कुर्यात् मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्राणाम् । द्वादशेऽह्नि संवत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासो भवेत्तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्धयेत्’ इति आशौचोक्तं द्वादशस्वहस्सु मासिकानि । तेष्वेवाद्यषष्ठद्वादशदिनेषूनमासिकादीनि कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि सपिण्डनं कुर्यात् । अधिमासे तु चतुर्दशेऽह्नि कुर्यात् ॥ शूद्रस्त्रयोदशे द्वादशेऽह्नीत्यस्य मासिकान्त्यदिनपरत्वादिति पृथ्वीचन्द्रः पैठीनसिः-‘संवत्सरान्ते संसर्जनं नवमे मासीत्येके ॥’ अत्र साग्रेरनग्रेर्वोक्तकालाभावे त्रिपक्षादिसंवत्सरान्ता अनुकल्पा ज्ञेयाः । कल्पतरुस्त्वग्रे वृद्धिनिश्चय एव सर्वेऽपकर्षप्रकारा इत्याह । तत्र ‘यदहर्वा’ इति स्वातन्त्र्यश्रुतेः । यद्यपि वृद्धिनिमित्तोपकर्षो निरग्रेरेवेोक्तः तथापि साग्रावपि ज्ञेयः । उक्तकालासंभवे वर्षान्तादिगौणकालवद्बृद्धेरपि प्राप्तेः । वक्ष्यमाणगोभिलवचनात् । ‘अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु ।’ इति दोषश्रुत्यविशेषाच्च । अपरार्कपृथ्वीचन्द्रादिस्वरसोप्येवम् । अत्र वृद्धिपदं चूडोपनयनविवाहमात्रपरम् । सीमन्तादौ तु वृद्धिश्राद्धलोप एवेत्याचार्यचूडामणिः । पुंसवनाद्यन्नप्राशनान्तेष्वावश्यकेष्वपकर्ष इति श्राद्धविवेकः । श्रुतसागरेपि बृहस्पतिः-‘प्रत्यवायो भवेद्यस्मिन्न कृते वृद्धिकर्मणि । तन्निमित्तं समाकृष्य पित्रोः कुर्यात्सपिण्डनम् ॥’ गर्भाधानस्य त्वन्तरेपि संभवात् । ‘अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम् ।’ इति देवलेन प्रथमाब्दे मैथुननिषेधाच्च न तत्रापकर्ष इति श्राद्धकौमुद्यादयस्तत्र ॥ ‘ऋतुस्नातां तु यो भार्याम् । इति निषेधात् । ‘ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ।’ इति मैथुने दोषाभावाच्च । पितामहमरणे पौत्रस्य वृद्धौ नापकर्षः । तस्य महागुरुत्वाभावात् । तत्र तदूर्ध्वेभ्यो वृद्धिश्राद्धमिति श्राद्धचन्द्रिका । तत्र ‘भ्राता च’ इत्यादौ तदभावेऽप्यपकर्षोक्तेः । तेन निर्देशोऽप्युपलक्षणम् ॥

व्याघ्रः-‘आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् । अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते ॥’ एतदाशौचान्तोपलक्षणम् ॥ ‘सर्वेषामेव वर्णानामाशौचान्ते सपिण्डनम् ।’ इति निर्णयामते कात्यायनोक्तैः । एतेऽह्नि चै-

निर्णयामृते गोभिलः—‘द्वादशाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम् । सपिण्डीकरणं कुर्यात् कालेषूत्तरभाविषु ॥’ इदं साग्रेरुक्तकालासंभवे गौणकालविधानार्थमिति मदन पारिजातः । मदनरत्नेष्वेवम् । ऋष्यशृङ्गः—‘सपिण्डीकरणं श्राद्धमुक्तकाले चेत्कृतम् । रौद्रे हस्ते च रोहिण्यां मैत्रभे वा समाचरेत् ॥’ कालादर्शेपि—‘एकादशे द्वादशे द्वि त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा । षष्ठे चैकादशे वाब्दे संपूर्णे वा शुभागमे ॥ सपिण्डीकरणस्येत्यमष्टौ कालाः प्रकीर्तिताः । साग्नौ कर्तर्युभावाद्यौ प्रेते साग्नौ तृतीयकः । अनग्रेस्तु द्वितीयाद्याः सप्त काला मुनीरिताः । रोहिणीरौद्रहस्तेषु मैत्रभे वापि तच्चेरेत् । नारदसंहितायां तु—‘सपिण्डीकरणं कार्यं वत्सरे वार्धवत्सरे । त्रिमासे वा त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा द्वादशेऽद्वि वा ।’ इत्युक्तम् तच्च । वत्सरेर्तातेपि ज्ञेयम् । ‘ततः सपिण्डीकरणं वत्सरात्परतः स्थितम्’ इति भविष्योक्तेः । ‘पितुः सपिण्डीकरणं वत्सरादूर्ध्वतः स्थितम्’ इति नागरखण्डोक्तेः । ‘पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतवासरे ।’ इत्युक्तं शनसोक्तेश्च । ‘पूर्णे संवत्सरे पिण्डः षोडशः परिकीर्तितः । तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैव वाब्दिकमिष्यते ।’ इति हेमाद्रौ वचनाच्च । अस्यानाकरत्वेोक्तिर्मूर्खोक्तिरेव । यत्तु ‘पूर्णे संवत्सरे कुर्यात् सपिण्डीकरणं सुतः । एकोद्दिष्टं च तत्रैव मृताहनि समापयेत् ॥’ इति धवलनिबन्धे जाबाल्युक्तेः । ‘पुत्रः सपिण्डनं कृत्वा कुर्यात्स्नानं सचैलकम् एकोद्दिष्टं ततः कुर्यात् कुतपं न विचारयेत् ॥’ इति स्वल्पमात्स्योक्तेश्चाब्दिकं तद्विपुनः कार्यमिति केचित् । ते निर्मूलत्वाद्धेमाद्रिविरोधाच्चोपेक्ष्याः । षोडशत्वं सपिण्डनस्य षोडशश्राद्धान्तर्भावपक्षे । स्मृत्यर्थसारे तु वर्षान्त्यदिने संवत्सरविमोक्षश्राद्धं सपिण्डनं च कृत्वा परेद्युर्मृताहे वार्षिकं कार्यमित्युक्तम् । गौडा अप्येवमाहुः तत्पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम् ॥

तच्च पुत्रे सति नान्यः कुर्यात् । ‘श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नतु कुर्यात्सपिण्डताम् प्रोषितावसिते पुत्रः कालादपि चिरादपि ॥’ इति वायवीयोक्तेः । षोडशश्राद्धान् वर्षादूर्ध्वं कालाभावोपि तान्यदत्त्वा न कुर्यात् । किंतु दत्तैव । तानि यदि कनिष्ठभ्रात्रादिना कृतानि तदा सपिण्डनमेव कुर्यादित्यपराकः ॥ सपिण्डने तु कनिष्ठान्नैवाधिकार इत्यर्थः । तत्रैव—‘अज्ञानादथ वा मोहान्न कृता चेत्सपिण्डता । तत्राविधिवत्कार्या कालादपि चिरादपि ॥’ तेष्वपि ज्येष्ठस्यैवाधिकारः । ‘ज्येष्ठेन जातमत्रेण पुत्री भवति मानवः ।’ इति मनूक्तेः । अपराकं प्रचेता अपि—‘एशादकाय कृणो ज्येष्ठस्त विधिवत्क्रियाः । कुर्यान्नैकैकशः श्राद्धमाब्दिकं तु प्रथक्प्रथक् ।’

भवेत् ॥' यत्तु वाचस्पतिशुलपाणिभ्यामुक्तं द्रव्यदानानुमत्यभावे कनिष्ठैः पृथ-
 र्यमिति तत्र । एवकारस्य तदभावेऽपि पृथक्करणाभावार्थत्वात् । अन्धादेरिव ज्येष्ठे
 कनिष्ठानामनधिकाराच्च । अतस्तेषां प्रत्यवायमात्रम् । आहिताग्निः कनिष्ठस्तु कुर्यात्
 अन्यथा पितृयज्ञासिद्धेः । एवमावश्यकवृद्धावपि । कनिष्ठोन्यः सपिण्डो वा कुर्यात्
 'भ्रातां वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव च । सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्याद-
 ततः ॥ तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते ।' इति मदनरत्ने लघुहारीत-
 चनात् । वृद्धचनन्तरं प्रथमाब्दमध्येऽपि काम्यं कुर्यात् वृद्ध्यभावे तु प्रथमाब्दादूर्ध्व-
 त्यर्थः । काम्योक्तेरनावश्यकैः पूर्तादौ नापकर्षः । एतद्भ्रातृपुत्रादिसंस्कारे प्राप्ता-
 रस्य नान्दीश्राद्धाधिकारार्थम् अभ्युदयपदं च नान्दीश्राद्धनिमित्तकर्ममात्रपर-
 हेमाद्रिः । तेन ज्येष्ठे देशान्तरस्थे कनिष्ठः सपिण्डनं विनैव वृद्धिं कृत्वा पुत्रसं-
 कुर्यादिति श्रीदत्तोक्तिः परास्ता । भ्रातृशिष्याद्युक्तेरान्दीश्राद्धेऽप्येवमात्र-
 पकर्ष इत्यपास्तम् । अस्य क्रममात्रपरत्वाद् वृद्धिकर्तैव सपिण्डनं कुर्यादिति न
 इति गौडाः । अत एव कन्याया मातृमरणे भ्रात्रा सपिण्डने कृते पितुर्दानाधिका-

शुलपाणिस्तु- 'महागुरौ प्रेतभूते वृद्धिकर्म न युज्यते ।' इति निषेधात् । स्मृ-
 भ्रात्रादिः सपिण्डनं कृत्वा तत्पुत्रकन्यादेरभ्युदयं कुर्यान्न तु स्वपुत्रसंस्कारे संस्कार-
 पितुः सपिण्डनं विनाः वृद्धौ देवतात्वाभावादित्याह तत्र देवताप्रयुक्तापकर्षस्य
 स्तत्वात् वृद्धिविना कनिष्ठेन कृते तु विदेशस्थेन ज्येष्ठेन पुनः कार्यम् । 'यवीयसा
 कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु । तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः ॥' इति स्मृ-
 'ज्येष्ठेन वा कनिष्ठेन सपिण्डीकरणे कृते ।' आद्यपादे 'मातापित्रोः कनिष्ठेन' इति
 पाठः । देशान्तरगतानां च पुत्राणां तु कथं भवेत् । श्रुत्वा तु वपनं कार्यं दशा-
 तिलोदकम् ॥ ततः सपिण्डीकरणं कुर्यादेकादशेऽहनि । द्वादशाहे न कर्तव्यमिति श-
 तपोब्रवीत् ॥' इति वचनाच्चेति भट्टाः । सिंगाभट्टीयेष्वेवम् । पूर्ववचनेऽ-
 मूलं चिन्त्यम् । स्मृत्यर्थसारे तु- 'विभक्ता ऋद्धिकामाश्चेत्पुत्राः पृथक्सपिण्डी-
 कुर्युः' इत्युक्तम् । अत्र दत्तकस्य तत्पुत्रादीनां विशेषः प्रागुक्तः । केचित्तु वृद्धिं विन-
 कनिष्ठस्य सपिण्डनमाहुः । 'मातापित्रोर्मृतेः काले ज्येष्ठे देशान्तरस्थिते । कनिष्ठेन
 कर्तव्यं सपिण्डीकरणं तथा ॥' इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः । 'गते वा रोधिते ज्येष्ठे
 वा प्रेषिते सति । षण्मासान्न निवर्तेत तदा कार्यं कनीयसा ॥' संवर्तः-पुनः सपिण्डी-

करणं श्राद्धं पार्वणवच्चरेत् । अर्घ्यसंयोजनं नैव पिण्डसंयोजनं न च ॥' इति तेषां वचसः निर्मूलत्वात् । प्रोषितावसिते पुत्रे' इत्यादिविरोधाच्चोपेक्षयाः ॥

व्युत्क्रममृतौ तु हेमाद्रौ ब्राह्मे—'मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः । ते

व्युत्क्रममृतौ । देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः । तेभ्यश्च पैतृकः पिण्डो नियोज्यः ।

व्यस्तु पूर्ववत् । मातर्यथ मतायां च विद्यते च पितामही ॥ प्रपितामही

तामही पूर्वस्तु कार्यस्तत्राप्ययं विधिः ॥' एवं प्रपितामहजीवने । तत्पित्रादिभिर्ज्ञेयम्

तदाह सुमन्तुः—'त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने । पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥' यत्तु—व्युत्क्रमात् प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता ।' इति तन्मा

पितृभर्तृभिन्नविषयम् । 'व्युत्क्रमेण मृतानां न सपिण्डीकृतिरिष्यते । यदि माता या

पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः ॥' इति आधवीये स्कान्दोक्तेः मदनरतनादे

चैवम् । अत्र 'प्रपितामहादिभिः पितुः सपिण्डने कृते पितामहे मृते तत्सपिण्डने स

पुनस्तेन सह पितुः सपिण्डनं कार्यम् ।' इति हेमाद्रिमतमाह । अन्ये नैतन्मन्यन्ते

तत्त्वं तु पितुः सपिण्डनाभावे पितामहेन सह पुनः कार्यं, न तत्सत्त्वे । 'त्रयाणामपि

पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने । पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥' इति

विष्णुधर्मोक्तेः । पितामहे प्रपितामहे वा पुत्रान्तरैरसंस्कृतेष्वसंस्कृताभ्यामेव पि

सपिण्डनं कुर्यात् । 'असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः । पितरं तत्र संस्कुर्यात्

इति कात्यायनोब्रवीत् ।' इति छन्दोगपरिशिष्टात् । असंस्कृतौ दाहाद्यौरिति वे

चित् । असपिण्डीकृताविति तु तत्त्वम् ॥ अत एवोक्तं तत्रैव 'पापिष्ठमपि शुद्धेन शु

पापकृतापि वा । पितामहेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चयः ॥' पापिष्ठमकृतसपिण्डनं न

पातितादि । 'अभिषस्तपतितभ्रूणघ्नाः स्त्रियश्चातिचारिणीर्न संसृजेत' इति बैजवापोक्ते

'पापकर्मिणो न संसृजेरन्' इति गौतमोक्तेश्चेत्युक्तं निर्णयामृते ॥

पूर्वयोः पुत्राभावे तु पौत्रः कुर्यादेव । 'पितामहः पितुः पश्चात्पश्चत्वं यदि गच्छति

पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् । नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः

पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥' इति कात्यायनोक्तेः । अ

राकें शूलपाणौ चैवम् । तेन सपिण्डनस्यानित्यत्वादकृतसपिण्डनयोरेव पार्वणा

प्रवेश इति सूत्रोक्तिः परास्ता । 'कृते सपिण्डीकरणे प्रेतः पार्वणभागभवेत् ।' इति

ह्यारीतिविरोधाच्च । केचित्पुत्रान्तराभावे पितामहवार्धिकमप्याहुस्तत्र । श्राद्धषोडशमि

पितृमृतौ तदाशौचं वहन्नेव पौत्रः पितामहकर्म कुर्यात्प्रक्रान्तत्वादिति मतं
जातपृथ्वीचन्द्रौ । यत्तु-‘उत्तरात्रितयरौद्ररोहिणीयाम्यसर्पपितृभेषु चाग्निमे
कर्म सकलं च वर्जयेत्प्रेतकार्यमपि बुद्धिमान्नरः ॥’ इति सपिण्डनप्रकरणे पा
काले निषिद्धक्षेपं सपिण्डनापकर्षः । सर्वकालेषु तद्वत्त्वे तद्वर्ज्यान्त्येव । पूर्वोक्तत्र
नि षोडशश्राद्धानि कार्याणीति वाचस्पतिमिश्रास्तत्र । अस्य पा
वाक्यात्सावकाशकर्मपरत्वात् । अस्य प्रेतमात्रदैवत्यभावाच्च ॥

अथ स्त्रीषूच्यते । हेमाद्रौ बृहस्पतिः-‘भर्तृगोत्रेण नाम्ना च मातुः
पिण्डनम् ॥’ यत्तु भविष्ये-‘पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद्भर्तृगोत्रतः ।’

सुरादिविवाहोदापरम् । ‘आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवि
घ्नाणां सपिण्डननिर्णयः ।

बृद्धशातातपोक्तेः । तन्वानेकवचनेषु पितामह्याः पत्या
वा सहोक्तम् । तत्र व्यवस्थोक्ता भविष्ये-‘जीवत्पिता पितामह्या मातुः कुर्या
नम् । प्रमीतपितृकः पित्रा तत्पित्रा पुत्रिकासुतः ॥’ तत्पित्रा मातुः पित्रा ।
क्षिः-‘पितामह्यादिभिः सार्धं मातरं तु सपिण्डयेत् । पितरि ध्रियमाणे तु
सति ॥’ शंखः-‘मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः । पितामह्यादि
सपिण्डीकरणं स्मृतम् ॥’ येन केनापि मातुः सापिण्डये यत्रान्वष्टकादौ म
पृथगुक्तं तत्र पितामह्या सह कार्यम् । ‘नान्दीमुखेऽष्टकाश्राद्धे गयायां च म
पितामह्यादिभिः सार्धं मातुः श्राद्धं समाचरेत् ॥’ इति शातातपोक्तेः ।
तु पैठीनसिः-‘अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डनम् । श्व
सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत् ॥’ यत्तु लघुहारीतः-‘पुत्रेणैव तु कर्तव्यं
करणं स्त्रियाः । पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोपि ये ॥’ इति । यच्च
यपुराणे-‘सपिण्डीकरणं स्त्रीणां पुत्राभावे न विद्यते ।’ इति । तत्पुत्रपत्यभावे
अत्र सपत्नीपुत्रोपि ज्ञेयः । ‘वह्नीनामेकपत्नीनामेका चेतुपुत्रिणी भवेत् । सव
पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ।’ इति मनूक्तेरेतत्परत्वात् । यत्तु शातातपः-‘मृते पित
न कार्या सहपिण्डता । पितुरेव सपिण्डत्वे तस्या अपि कृतं भवेत् ॥’ इति ।
रम् । केषांचिद्वा मतमिति हेमाद्रिः ॥

अन्वारोहणे तु भर्त्रैव सापिण्डयम् । ‘मृता यातुगता नाथं सा तेन सहपि
अर्हति स्वर्गवासं च यावदाभूतसंश्रुतम् ॥’ इति शातातपोक्तेः । ‘पत्या चैके
सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । सा मृतापि हि तेनैक्यं गता मन्त्राहुतिव्रतैः ॥’ इति यम

यदा माधवपृथ्वीचन्द्रादिमते पृथक्पिण्डस्तदैकेन पत्यैकवचनाच्चैकेनापि । अमातृपिण्डमसपिण्डीकृतेनैव पतिपिण्डेन संयोज्यैकीकृतं पिण्डद्वयं तत्पित्रादिभिः संयोजयेत् । अन्त्यपक्ष एव युक्तः । स्मृत्यर्थसारे तु —‘अन्वारोहणेनैकदिनमरणे स्त्रिय पृथक्सपिण्डनं नास्ति । भर्तुः कृते स्त्रिया अपि कृतं भवति’ । इत्युक्तम् । तन्मतान्तमस्तु । इदं ब्राह्मादिविवाहेषु ज्ञेयम् ॥

आसुरादिषु तु शातातपः—‘तन्मात्रा तत्पितामह्या तच्छ्रद्धा वा सपिण्डनम् । आसुरादिविवाहेषु विज्ञानां योषितां भवेत् ॥’ मातामह्या मातुः पितामह्या तत्प्रपितामह्ये चेत्यर्थः । सुमन्तुः—‘पिता पितामहे योज्यः पूर्णे संवत्सरे सुतैः । माता मातामहे तद्वदित्याह भगवाञ्छिवः ॥’ इदमासुरादिपरं पुत्रिकापुत्रपरं चोक्तं प्राक् । हेमाद्रिब्राह्मादिष्वपि सर्वत्र देशभेदादिकल्पमाह । अतः गुर्जरेषु कोकिलमतातुसारिण्यमातृमातामहप्रमातामहा इति श्राद्धप्रयोगः सपिण्डनं च दृश्यते । हेमाद्रावापस्तम्बोपि—‘कोकिलस्य यथा पुत्रा अन्यसंचयजीविनः । पुष्टास्ते स्वकुलं यान्ति एवं नास्मृता सती ॥’ यदपि विज्ञानेश्वरो मातामहेन मातुः सापिण्डयेन पितृश्राद्धवन्मतं तृश्राद्धं नित्यमित्याह । यच्च वृद्धिश्राद्धे छन्दोगपरिशिष्टम्—‘षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ।’ इति तदेतद्विषयमेव । मातुः पृथक् श्राद्धाभावात् । अतः हेमाद्रौ भविष्ये । मातुः सपिण्डनं प्रक्रम्य—‘उदितेनुदिते चैव होमभेदो यथा भवेत्तथा कुलक्रमायातमाचारं च चरेद् बुधः ॥’ इत्युक्तम् । अस्य वृद्धावपवादमाह तत्र व्याघ्रपात्—‘कुर्यान्मातामहश्राद्धं सर्वदा मातृपूर्वकम् । विधिज्ञो विधिमान्स्थाय वृद्धमातामहादिवत् ॥’ केचिदेतत्पुत्रिकापुत्रपरमाहुः ॥

पत्युः सापिण्ड्यमाह लौगाक्षिः—‘सर्वाभावे स्वयं पत्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकमसपिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च ॥’ इति । यत्तु वचनम्—‘अपुत्रस्य परेतानैव कुर्यात्सपिण्डताम् ।’ इति । यच्चापस्तम्बः—‘अपुत्रा ये स्मृताः केचित्पुरुषास्त्रियोऽपि वा । तेषां सपिण्डनाभावादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥’ इति तत्पुत्रोत्पादनविधिप्रशंसार्थमिति माधवः । ‘सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ॥’ इति हेमाद्रौ प्रचेतसोक्तेश्च । अन्ये तु द्विविधवाक्यद्वयनाद्विकल्पमाहुः । स्मृत्यर्थसारेपि—‘ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च सपिण्डनं नास्ति, तेषां सदैकोद्दिष्टमेव, व्युत्क्रममृतानां सापिण्ड्यं कार्यं न वा । केचित्सर्वत्र सपिण्डनमाहुः ।’

रिति । अपुत्रे व्युत्क्रममृते विशेषो रेणुकारिकायाम्-‘भ्राता वा भ्रातृपुत्रे
शिष्य एव वा । सपिण्डीकरणं कुर्यात् पुत्रहीने मृते सति ॥ सर्वबन्धुवि
कुर्यात्सपिण्डताम् । ऋत्विजं कारयेद्वापि पुरोहितमथापि वा ॥ वसुरुद्रादिति
तेषां सपिण्डता । व्युक्रमाच्च प्रमीता ये तद्विना प्रेतता ध्रुवम् ॥ पुनः सपिण्ड
त्प्रेते पितामहे इति । अत्र मूलं मृग्यम् । यतीनां सपिण्डनं नास्ति किंत्वेका
कार्यम् । तदपि त्रिदण्डिनः । एकदण्ड्यादीनां तदपि नेत्युक्तं प्राक् । द
मृते तु दाहादिसपिण्डनान्तं सर्वं कार्यमिति भट्टचरणाः ॥

सपिण्डनविधिमाह बैजवापः-‘समाप्ते संवत्सरे चत्वार्युदपात्राणि

सपिण्डनविधिः ।

एकं प्रेताय, त्रीणि पितृभ्यः । प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वसिंचति
इति । द्वाभ्यामेवं पिण्डोथाभिमृशति । ‘एष वोनुगतः प्रे
ददामि वः । शिवं भवतु शेषाणां जायन्तां चिरजीविनः ॥’ समानीव
संवदध्वम् ।’ इति । यद्यपि-‘तच्चापि देवरहितमेकार्ध्वैकपवित्रकम् । नैव
तच्चावाहनवर्जितम्’ ॥ इति मार्कण्डेयेनोक्तं तथापि-‘सपिण्डीकरणं
पूर्वं नियोजयेत् ।’ इत्यादिविरोधादिकल्पः, प्रेतांशे वा ज्ञेयम् । अत्र कामका
वपीत्युक्तं प्राक् । मैत्रायणीयपरिशिष्टे ‘पितृविप्रकरे होमः साग्रे
यत्तु गोभिलः-‘अनुक्तकालेष्वपि तु व्युत्क्रमेण मृतावपि । आमेन वा
हेम्ना वापि प्रकल्पयेत् ॥’ इति तदापदि मातापितृभिन्नपरम् । ‘आपन्नोऽ
श्राद्धमामेन कर्हिचिद् ।’ इति तेनैवोक्तेः । शुद्धितत्त्वे कामधेनौ च ल
‘सपिण्डीकरणं यावत्प्रेतश्राद्धं तु षोडशम् । पक्वान्नैव कर्तव्यं सामिषेण द्वि
विश्वप्रकाशे-‘प्रेतः सपिण्डनादूर्ध्वं पितृलोकेतुगच्छति । कुर्यात्तस्य तु पा
द्वि सपिण्डनात् ॥’ स्मृत्यर्थसारेण्येवम् । ततो वृद्धिश्राद्धं कुर्यात् । ए
कार्यम् । ‘अधिमासे न कर्तव्यं श्राद्धमाभ्युदयं तथा । तथैव काम्यं यत्कर्म
माहते’ ॥ इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः ।

इति भट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ सपिण्डीकरणम्

प्रथमान्दनिषिद्धनिर्णयः।

पत्न्यादौ त्वपवादमाह माधवीये ऋष्यशृङ्गः—‘पत्न्याः पुत्रस्य तत्पुत्रभ्रात्रोस्तत्तनयेषु च । स्नुषास्वस्रोश्च पित्रोश्च संघातमरणं यदि ॥ अर्वागब्दान्मातृपितृपूर्वं सापिण्डद्यमाचरेत् ॥’ लौगाक्षिः—‘पत्नी पुत्रस्तथा पौत्रो भ्राता तत्पुत्रका अपि । पितरौ च यदैकस्मिन् त्रियेरन्वासरे तदा ॥ आद्यमेकादशे कुर्यान्निपक्षे तु सपिण्डनम् ॥’ धवलनिबन्धे—‘महागुरुनिपाते तु प्रेतकार्यं यथाविधि । कुर्यात्संवत्सरादर्वागेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥’ भृगुः—‘माता चैव तथा भ्राता भार्या पुत्रस्तथा स्नुषा । एषां मृतौ चरेच्छ्राद्धमन्यस्य न पुनः पितुः ॥’ एतदपि सपिण्डनपरम् । पितुर्मृतावन्यस्य श्राद्धं न चरेदित्यर्थः । शुद्धितत्त्वे देवलः—‘अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम् । वर्जयेद्गुरुपाते तु यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥’ पारस्करभाष्ये बृहस्पतिः—‘पितर्युपरते पुत्रो मातुः श्राद्धान्निवर्तते । मातर्यापि च वृत्तायां पितृश्राद्धाद्वत्ते समम् ॥’ समं पितरं विना न श्राद्धं देवार्थः । शुद्धितत्त्वे देवलः—‘महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्न चाच-

रेत् । आर्त्तिज्यं ब्रह्मचर्यं च श्राद्धं देवक्रियां तथा ॥ ' एतत्सपिण्डनात्मागिति तदुत्तरमपीत्यन्ये । श्राद्धकौमुद्यां कालिकापुराणे पूर्वोद्धे- 'विशेषतः प्रमीतपितृको नरः । यावद्वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ॥ ' केचित्तु- ' शौचं स्यात्षण्मासं मातुरेव च । त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृणां इति स्मृतेः सापत्नमातुरब्दार्धमाहुः । श्राद्धकौमुदीकारस्तु- 'द्वयोरेव रब्दमेकमशौचकम् । नान्येषामधिकाशौचं स्वजातिविहितात्किल ॥ ' इति जातूकर्ण्यविरोधान्निर्मूलमाह । हेमाद्रौ भविष्ये- 'गयाश्राद्धं मृतान् त्वब्दे प्रशस्यते ॥ ' त्रिस्थलीसेतौ गारुडे- 'तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्रौतैव पेतृकम् । अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु ॥ ' इदं वृद्धचर्यसपिण्डनाभ्यां सपिण्डनापकर्षेऽब्दमध्येपि दर्शादि कार्यमेव । 'पितुः सपिण्डनां कृत्वा कुर्वीत त्रैमासिकम् । ' इति छन्दोगपरिशिष्टात् । 'सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वण्ये इति मात्स्यात् । 'ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते । विन्दते पितृं ततः श्राद्धं प्रवर्तते ॥ ' इति हारीताच्चेति शूलपाणिः । यत्तु कातीयगण्डीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् । एकोद्दिष्टविधानेन दद्यादित्याह शूलपाणिः इति । तत्रैकोद्दिष्टविधिना न दद्यादित्यन्वयः । तुर्यपादेन पार्वणे विकल्पः । ब्रह्मवैवर्ते- 'उद्गाहश्रोपनयनं प्रथमेऽब्दे महीपते । कृते सपिण्डनेऽप्यूर्ध्वमस्पर्शकरणं त्यजेत् । तथापि कर्तुमिच्छन्ति त्रीणि चैतानि वै सुताः । मासिकानि चापकृष्य चरेत्पुनः ॥ '

अत्रेदं तत्त्वम् ॥ वृद्धिं विनार्वागापि सपिण्डनापकर्षे पितृत्वप्राप्तिर्वर्षात् 'कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम् । प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते । विष्णुधर्मोक्तेः । 'अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् । प्रेतत्वमाप्तिं विज्ञेयं वत्सरं नृप ॥ ' इत्यग्निपुराणाच्च । तेन तत्सत्त्वेऽपि वृद्धिर्देवपित्र्येषु वृद्धिनिमित्ते त्वनन्तरमेव । 'अर्वाक्संवत्सराद्दृष्टौ पूर्णे संवत्सरेपि वा । ये सपिण्डीकृतप्रेता न तेषां तु पृथक् क्रिया ॥ ' इति शातातपोक्तेः । तथैव काम्यमिति धृतहारीतादिवशाच्चैवमिति । तथा- 'अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरं प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत कृते पितुः सपिण्डने ॥ ' अस्यापवादः- 'अस्थिक्षेपं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । प्रथमेऽब्देपि कुर्वीत यदि स्याद्भक्तिमान्मुतः ॥ '

अथ विधानानि । तत्र पञ्चकमृते मदनरत्ने गारुडे—‘आदौ कृत्वा धनिष्ठार्ध-
मेतन्नक्षत्रपञ्चकम् । खेत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं दाहकर्मणि ॥ शवस्य
विधानानि । च समीपे तु क्षेप्तव्याः पुत्तलास्तदा । दर्भमयास्तु चत्वार ऋक्षमन्त्रा-

भिमन्त्रिताः ॥ ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह । सूतकान्ते नतः पुत्रैः
कार्यं शान्तिकपौष्टिकम् ॥ पञ्चकेषु मृतो यो वै न गतिं लभते नरः । तिलांश्चैव
हिरण्यं च तमुद्दिश्य घृतं ददेत् ॥ ’ क्रियानिवन्धे—‘भाजनोपानहौ छत्रं हैममुद्रां च
वाससी । दक्षिणा दीयते विभ्रे सर्वपातकमोचनी ॥ ’ मदनरत्ने गार्ग्यः—‘यदि भद्राति-
थीनां स्याद्भानुभौमशनैश्चरैः । त्रिपादक्षैश्च संयोगो द्वयोयोगे द्विपुष्करः ॥ द्वित्रिपुष्कर-
योगे तु मृतिर्मृत्यन्तरावहा । दहने मरणे चैव त्रिगुणं स्यात्त्रिपुष्करे ॥ खननेप्येवमेव
स्यादेतदोषोपशान्तये । तिलपिष्टैर्वैर्वापि शरीरं कारयेत्ततः ॥ शूर्पे निधायालंकृत्य दाह-
येत्पैतृकोपरि ॥ ’ तद्वाहे मन्त्रमाह बौधायनः—‘अस्मात्त्वमिति मन्त्रेण तिलपिष्टं
प्रदाहयेत् । द्वित्रिपुष्करयोर्दोषस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ वासवे मरणं चेत्याद्वाहे वापि
पुनर्मृतिः । सुवर्णं दक्षिणां दद्यात्कृष्णवस्त्रमथापि वा ॥ ’ वासवं धनिष्ठा । ब्राह्मे—
‘कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते । न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा संततौ न शुभं भवेत् ॥
न तस्य दाहः कर्तव्यो विना शास्त्रेषु जन्तुषु । अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्व-
कम् ॥ धनिष्ठापञ्चके जीवो मृतो यदि कथंचन । त्रिपुष्करे याम्यभे वा कुलजान्मारयेद्-
ध्रुवम् ॥ तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णामूत्र-
वेष्टिताः ॥ यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत् । प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेत-
भूमिपः ॥ प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु नामान्येतानि च क्रमात् ॥ ’ अत्र प्रतिमा गन्धपुष्पैः पूज-
यित्वा प्रथमां शिरसि । द्वितीयां नेत्रयोः । तृतीयां वामकुक्षौ । चतुर्थीं नाभौ । पञ्चमीं
पादयोर्न्यस्य तदुपरि नामभिर्वृतं हुत्वा—यमाय सोमं त्र्यम्बकमिति मन्त्राभ्यां प्रत्येकं
तास्वाज्यं हुनेदिति भट्टाः । सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम् । कांस्य-
पात्रस्थितं तैलं वीक्ष्य दद्याद्विजन्मने ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रवरुणप्रीतये ततः । मापमुद्भय-
वत्रीहिप्रियंवादि प्रयच्छति ॥ स्वर्णदानं रुद्रजाप्यं लक्ष्मोमो द्विजार्चनम् । गोभूदानं
षडंशेन कुर्यादोषोपशान्तये ॥

अपराकै—‘धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि तन्मुखे । प्रास्याहुतित्रयं तत्र हुनेद्रहवपा-
मिति ॥ ततो निर्हरणं कुर्यादेष साग्नेर्विधिः स्मृतः । इतरं निखनेदेव जले वा प्रतिपादयेत्
त्रिपादक्षमृते तद्वाहिरण्यशकलं मुखे । तस्य पिष्टमयं कुर्यात्पुरुषत्रितयं ततः ॥ होमं

नथा-‘एकाशीनिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् । नवषट्त्रिपलं वापि शक्तिः ॥’ तथान्यत्र-‘स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्नेः स्थापनं ततः निर्वपणं देवतानां तथाहुतिः ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च कालाय सर्वभूतक्षयाय च । औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोद चित्रगुप्ताय वै क्रमात् ॥ विधिना श्रपणं कृत्वा एकैकामाहुतिं हुनेत् । कृष्णं वस्त्रं च हैमनिष्कसमन्वितम् ॥ दद्याद्विप्राय शान्ताय प्रीतो भवतु मे यमः । प्येतदेव । अपरार्क-‘पुनर्वसूत्तराषाढा कृत्तिकोत्तरफाल्गुनी । पूर्वाभाद्रा ज्येष्ठमेतन्निपादभम् ॥’ मयूरचित्रे गर्गः-‘मृतः श्मशानं यो नीत उपजीव गृहे यस्य प्रविष्टोऽसौ तिष्ठेदथ कदाचन ॥ अचिरान्मृत्युमायाति हतदारपा शान्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा । सक्षीराणां घृताक्तानामग्नेर्दुत्वा मुखे बु दुम्बरीणां विधिवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् । सावित्र्यष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिं च कपिलां तिलकांस्यं च हुतांते भूरिदक्षिणा ।’ इति ॥

अथ ब्रह्मचारिस्मृतौ शौनकः-‘ब्रह्मचारिस्मृतौ रीतिं कथयामि समासतः कीर्णदोषस्य प्रायश्चित्तं प्रशान्तये ॥ द्वादशाब्दं षडब्दं वा त्र्यब्दं शक्त्याथवा

अथ ब्रह्मचारिस्मृतौ । स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यदि ॥ संयोज्य च संयोज्यौ तौ ततः परम् ॥’ देशकालौ स्मृत्वा त्राज्मुकनाम्नो मृतस्य ब्रह्मचारिणो व्रतविसर्गं करिष्ये’ इत्युक्त्वा हेम्ना श्राद्धं कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याधारान्ते चतसृभिर्व्याहृतिभिरग्नये व्रतपतये श्रानसंपादनाय विश्वेभ्यो देवेभ्यश्चाज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्य पुनः स्मृत्वार्षिकविवाहं करिष्ये इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वार्षिकशाखां हरिद्रया लिप्त्वा पीतसूत्रेण वस्त्रयुग्मेन चावेष्ट्याग्निं प्रतिष्ठाप्याधारान्तेऽग्नये विवाहविधियोजकाय च यस्मै त्वं कामं कामायेति कामाय व्याहृतिभिश्च स्विष्टकृदादि समाप्यार्कशाखां शवं च दहेत् । विधानमालायाम्-‘अथ ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि । तत्कुलं क्षयमाप्नोति सोऽपि दुर्गतिमाप्नुयात् प्रियमाणस्य षडब्दं व्रतमादिशेत् । त्रिशद्भ्यो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात्कौपीनक हस्तमात्रान्कर्णमात्रान्दद्यात्कृष्णाजिनानि च । पादुकाञ्चत्रमाल्यानि गोपी च ॥ मणिप्रवालमालाश्च भूषणादि समर्पयेत् । एवं कृते विधाने च विघ्नः जायते ॥’ अत्र मूलं मृग्यम् ॥

गगायां प्रक्षिपेत्सुधीः । मासिमासि ततः कुर्यान्मासि श्राद्धानि पार्वणात् ॥ इत्येतत्कु-
ष्ठिमरणे कथितं शास्त्रकोविदैः ॥' शुद्धितत्त्वे भविष्ये—'शृणु कुष्ठिगणं विप्र उत्तरो-
त्तरतो गुरुम् । विचर्चिका तु दुश्चर्मा चर्चरीयस्तृतीयकः । विकर्चूर्वणताम्रौ च कृष्ण-
श्वेते तथाष्टकम् ।' इत्युक्त्वा—'मृते तु प्रापयेत्तीर्थमथवा तरुमूलकम् । न पिण्डं नोदकं
कार्यं न च दानक्रियां चरेत् ॥ षण्मासीयत्रिमासीयमृतः कुष्ठी कदाचन । यदि स्नेहाच्च-
रेदाहं यतिश्चान्द्रायणं चरेत् ॥' अकृतप्रायश्चित्तकुष्ठ्यादिदाहे इदं प्रायश्चित्तम् । अत
एव कुनख्यादिवत्कुष्ठिनोपि द्वादशरात्रं शूलपाणिनोक्तम् । अत एवान्यदीयकुष्ठिनो
मरणान्तमाशौचमुक्तम् । कौर्मे—'क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च । यथेष्टा-
चरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम् ॥' महारोगास्तु—'वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभ-
गंदराः । अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥' इति ॥

रजस्वलायास्तु वृद्धशातातपः—'रजस्वलायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि नाचरेत्

रजस्वलामृतौ ।

ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्स्नातां तां शवधर्मेण दाहयेत् ॥' अतः प्रक्षाल्य काष्ठवद्-
गन्धा व्यहोर्ध्वं दहेत् । संकटे तु मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे—'उदक्या

सूतिका वापि मृता स्याद्यदि तां तदा । आशौचे त्वनतिक्रान्ते दाहयेदन्तरा यदि ॥ उद्धृ-
तेन तु तोयेन स्नापयित्वा तु मन्त्रतः । आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णांश्चतसृभिः ॥
पवमानानुवाकेन यदंतीति च सप्तभिः । ततो यज्ञपवित्रेण गोमूत्रेणाय ते द्विजाः ॥
स्नापयित्वाऽन्यवसनेनाच्छाद्य शवधर्मतः । दाहादिकं ततः कुर्यात्प्रजापतिवचो यथा ॥'
यज्ञपवित्रमापो अस्मानिति मिताक्षरायाम्—'पञ्चभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां
रजस्वलाम् । वस्त्रान्तरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥' गृह्यकारिकायाम्—'अन्त-
रिक्षमृता ये च वद्वावप्सु प्रमादतः । उदक्या सूतिका नारी चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥
ततो यवपिष्टेनानुलिप्याष्टोत्तरशतं शूपोदकैः संस्त्राप्य भस्मगोमयमृत्कुशोदकपञ्चगव्य-
शुद्धोदकैरापोहिष्ठापावमानीभिः संस्त्राप्यान्यवस्त्रे धृते दहेदिति भट्टाः ॥

अत्र प्रायश्चित्तमाह बौधायनः—'उदक्यासूतिकांमृत्यौ चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ।'
इति सूतिकायास्तु मिताक्षरायाम्—'सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ।
कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं क्षिपेत्ततः ॥ पुण्याद्भिरभिमन्त्र्याथो वाचा शुद्धिं लभे-
त्ततः । तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि ॥ अब्लिङ्गाभिर्मन्त्रिताभिर्वाग्मदेव्यभिरेव
च । अन्यैश्च वारुणैर्मन्त्रैः संस्त्राप्य विधिना दहेत् ॥' गृह्यकारिकाम्—'सूतिका-

त्रियने चतु मा नारी द्विर्षं कृच्छ्रमाचरेत् ॥' इदं द्वितीयञ्च हे । 'सूतिका तु यदा स
विस्त्राता मरणं गता । अब्दं कृच्छ्रेण शुद्धयेत व्यासस्य वचनं यथा ॥' इदं तृतीयञ्च
अत्राशक्तौ पक्षान्तरमुक्तं तत्रैव । 'सूतिका तु यदा नारी विस्त्राता मरणं गता । त्रिष
वदिनादवांगिकाब्देन विशुद्ध्यति ॥' ऊर्ध्वं तु- 'सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव
त्यजेत् । मासमेकावधिं यावत्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥

गर्भिणीमृतौ मदनरत्ने शौनकः- 'गर्भिण्युदक्यासंस्कारं शिशुसंस्कारमेव
प्रवक्ष्यामि ममासेन शौनकोऽहं द्विजन्मनाम् ॥ गर्भिणीमरणे प्राप्ते गोमूत्रेण जलैः स
आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः प्रोक्ष्य भर्ता समास्थितः ॥ प्रेतं श्मशाने नीत्वाऽथोलिख्य स
दं नतः । पुत्रमादाय जीवंश्चेत्स्तनं दत्त्वा सुताय तु ॥ यस्ते स्तनः शशय इत्यृचा
निधाय च । उदरं चात्रणं कुर्यात्पृषदाज्येन पूर्य च ॥ मृद्भस्मकुशगोमूत्रैरापोहिष्ठा
भिन्विभिः । स्नाप्य चाच्छाद्य वासोभिः शवधर्मेण दाहयेत् ॥' तत्रैव षडशीति
गद्यानि- 'गर्भिण्यां मृतायां दक्षिणाशिरसं निधाय तस्या नाभिरन्ध्रात्सव्यमुदरं चतुर
हिरण्यगर्भः समवर्ततेति छित्त्वा गर्भश्चेदप्राणस्तं प्रक्षाल्य निखनेत्स यदि जीवन् ।
त्वं मम पुत्रक । इत्युक्त्वा क्षेत्रियेत्वेति पञ्चभिः स्नापयित्वा हिरण्यमन्तर्धाय भूमौ नि
व्याहृतिभिरभिमन्त्र्य यस्ते स्तनः शशय इति स्तनं पाययित्वा शिशुं ग्रामं प्रापयेत् ।
च्छेदम्यले शनायुधायेति पञ्चाहुतीर्हुत्वा प्राणाय स्वाहा पूषणे स्वाहेत्यनुवाकान्
व्याहृत्या वाज्यं हुत्वा भिन्नमुदरं सूत्रेण संग्रथ्य धृतेनानुलिप्य ब्राह्मणाय तिलान्गां
सुवर्णं दद्याद्य ययोक्तेन कल्पनेन दहेत् ॥' बौधायनेन तु शतायुधायेति पञ्चहो
नन्तरं प्रयासाय यासाय वियासाय संयासायोद्यासाय शुचे शोकाय तप्यते तपत्यै ब्र
ह्मत्यार्यै सर्वस्मै इति स्वाहान्तैराहुतयोप्यधिका उक्ताः । गृह्यकारिकायाम्- 'यदा गर्भ
नारी सशल्या संस्थिता भवेत् । कुक्षिं भित्त्वा ततः शल्यं निर्हरेद्यदि जीवति ॥ प्र
निखनेत्तं तु प्रायश्चित्तमतः परम् । सा त्रयस्त्रिंशता कृच्छैः शुद्ध्यते शल्यदोषत
सगर्भदहने तस्या वर्णजं वधपातकम् । प्रायश्चित्तं चरित्वा तु शुद्ध्यन्ति पापकारिणः
शब्दा तु गर्भसंयुक्तां त्रिरब्दं कृच्छ्रमाचरेत् ॥

'अयान्वारोहणं स्त्रीणामात्मनो भर्तुरेव च' । सर्वपापक्षयकरं निरयोत्तारणाय च
अनेकस्वर्गफलदं मुक्तिदं च तथैव च । जन्मान्तरे च सौभाग्यद
पुत्रादिवृद्धिदम् ॥' देशकालौ स्मृत्वाऽरुन्धतीसमाचारत्वस्वर्गल
महीयमानत्वमनुप्यलोमसमसंख्याब्दावच्छिन्नस्वर्गवामभर्तुमदिवचनार्थे

नारायणो देवो बलसत्त्वगुणाश्रयः । गाढं सत्त्वं च मे देयाद्वाणकैः परितोषितः ॥
 सौपस्कराणि शूर्पाणि वाणकैः संयुतानि च । लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै सत्त्वकामा ददाम्य-
 हम् ॥ अग्नेः समीपमागत्य पञ्चरत्नानि पल्लवे । नीलाञ्जनं तथा बद्ध्वा मुखे मुक्ताफलं
 न्यसेत् ॥ ततोऽग्निप्रार्थनं कृत्वा मन्त्रेणानेन मिश्रितम् । स्वाहासंश्लेषनिर्विण्ण सर्वगोत्र-
 हुताशन ॥ सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥ ततोऽग्निवाज्येनाग्नये तेजोधिपतये ।
 विष्णवे सत्त्वाधिपतये कालाय धर्माधिपतये पृथिव्यै लोकाधिष्ठात्र्यै अद्भ्यो रसाधिष्ठा-
 त्रीभ्यो वायवे बलाधिपतये आकाशाय सर्वाधिपतये कालाय धर्माधिष्ठात्रे कलाभ्यः सर्व-
 साक्षिणीभ्यः ब्रह्मणे वेदाधिपतये रुद्राय श्मशानाधिपतये च हुत्वाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य
 दृषदमुपलं च संपूज्य पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वाग्निं प्रार्थयेत् । 'त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि
 साक्षिवत् । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानुषाः ॥ अनुगच्छामि भर्तारं वैधव्यभय-
 पीडिता । स त्वं मार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥ मन्त्रमुच्चार्य शनकैः प्रविशेच्च हुताश-
 नम् ॥' गौडास्तु—'इमा नारीरविधवा' इति । ॐ इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो या याः
 सुशोभनाः । सह भर्तुः शरीरेण संविशन्ति विभावसुम् ॥' इति च विप्रः पठेदित्याहुः ।
 कातरां तु—'प्रेतोत्तरे सुप्तां देवरः शिष्यो वा उदीर्ष्वेति द्वाभ्यामुत्थापयेत् ॥' एतन्महिमा
 मिताक्षरादौ ज्ञेयः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—'अनुव्रजति भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा । पदेपदेऽश्वमेधस्
 फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥' यस्त्वङ्गिराः—'या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत्
 सा स्वर्गमात्मघातेत नात्मानं न पतिं नयेत् ॥' इति । यच्च व्याघ्रपाद—'न त्रियेत
 समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्शिता । न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी ॥' इति
 तत् पृथक्चितिपरम् । 'पृथक्चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति । अन्यासां चैव नारीणां
 स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः ॥' इत्युशनसोक्तेः ॥

पृथक्चितिस्तु क्षात्रियादिपरा । तद्विधिब्राह्मे—'देशान्तरे मृते पत्यौ साध्व-
 तत्पादुकाद्वयम् । निर्धायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥ ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री
 भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचं निवृत्ते तु श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत् ॥' इमा नारीरविधवा
 इति ऋग्वेदवादः । त्र्यहाशौचमन्वारोहणपरमिति स्मार्ताः । निषेधवाक्यानि प्राय-
 श्चित्तार्थं मृतेन पतितेन वा सहमरणनिषेधपराणीत्यप्याहुः । अस्थिदाहे पलाशदाहे वा
 न पृथक्चितिदोषः । अङ्गत्वेन स्थानापत्त्या वा शरीरतुल्यत्वात् । यत्तु—'ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्न-
 वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः । पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृता तु या' ॥ इति हारी-
 त्तिलक-तत्पत्तिव्याख्यानिषेधेन सह गमनस्य दूरतोपास्तत्वादर्थवादमात्रमिति पृथ्वी-

चन्द्रः । जन्मान्तरीयपापवता सह मरणेनोद्धार इति स्मार्तगौडाः । शुद्धित-
व्यासः-‘दिनैकगम्यदेशस्था साध्वी चेत्कृतनिश्चया । न दहेत्स्वामिनं तस्या यावत्
गमनं भवेत् ॥’ तत्रैव भविष्ये-‘तृतीयेद्वि उदक्याया मृते भर्तारं वै द्विजाः । त-
नुमग्नार्थाय स्यापयेदेकरात्रकम् ॥ एकां चितिं समासाद्य भर्तारं यानुगच्छति । तद्भ-
क्रियाकर्ता स तस्याश्च क्रियां चरेत् ॥’ एतद्देशान्तम् । ‘यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पि-
दद्यात्स एव हि ।’ इति वायवीयोक्तेः । आपस्तम्बः-‘चितिभ्रष्टा तु या न-
मोहाद्विचलिता भवेत् । प्राजापत्येन शुद्धयेत तस्माद्वै पापकर्मणः ॥’ तथा-‘अ-
गेहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रियाम् । पिण्डदानक्रियां तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथ-
अन्वारोहे कृते पत्न्याः पृथक्पिण्डांस्तिलाञ्जलीन् । पृथक्शिले न कुर्वीत दद्यादेका-
तया ॥’ अन्यत्रायुक्तम् ॥

इदं गर्भिणीवालापत्यामृतिकारजस्वलाव्यभिचारिणीभिर्न कार्यम् । ‘स्वैरि-
गर्भिणीनां पतितानां च योषिताम् । नास्ति पत्याग्निसंवेशः पतितौ हि तथा उभौ
इति मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहोक्तेः । मदनरत्ने बृहस्पतिः-‘बालसंवर्धनं स-
वालापत्या न गच्छति । व्रतोपवासनियता रक्षेद्गर्भं च गर्भिणी ॥’ तृतीयपादे ‘रजस-
मृतिका च’ इति पृथ्वीचन्द्रोदये गौडीयशुद्धितत्त्वे च पाठः । तत्रैव बृह-
रदीयेपि-‘वालापत्या च गर्भिण्यो ह्यदृष्टकृतवस्तथा । रजस्वलाराजसुते नारोहन्ति ।
तु नाः ॥’ इति । अत्र-‘पतिव्रता सुसंदीप्तं प्रविशेद्या हुताशनम् ।’ इति भारता-
‘ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री’ इति ब्राह्मणं पतिव्रतानामेवाधिकारो न दुर्वृत्तानाम् । यत्तु-
मत्य च याः पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्तन्ते याश्च सततं भर्तृणां प्रतिकूलतः ॥ त-
नुमग्नं काले याः कुर्वन्ति तथाविधाः । कामात्क्रोधाद्भयान्मोहात्सर्वाः पूता भवन्त्यु-
इति भारतम् । तत् कैमुतिकन्यायेन स्तावकमिति पृथ्वीचन्द्रः । ब्राह्मण्या
चिनिषेव न पृथक्चितिः । क्षत्रियादीनां पृथगेका वेति कल्पतरुरत्नाकरमदन-
रिजानादयः । शुद्धिचिन्तामणौ चैवम् । तत्रान्वारोहणे भर्तुः शौचमध्ये त-
वा कृते त्रिगत्रमध्ये एव दश पिण्डाः । सहगगने तु भर्तुराशौचतुल्यमाशौचं पिण्ड-
च । ‘अन्वितायाः प्रदातव्या दश पिण्डारुहणेण तु । स्वाम्याशौचे व्यतीते तु त-
भादं प्रदीयते ॥’ इति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च पैठीनसिस्मृतेः । संस्थितं

मालिङ्गच प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः पिण्डादिकं देयं क्रमशः पतिपिण्डवत् ॥' इति शूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासोक्तेः । अन्यत्रागुक्तम् । यदा तु रजस्वलापि पत्नी मृते पत्यौ देशकालवशात्तदैवानुगच्छति न शुद्धिं प्रतीक्षते । तत्र विधिः देवयाज्ञिकनिबन्धे—'यदा स्त्रियामुदकयायां पतिः प्राणान्समुत्सृजेत् । द्रोणमेकं तण्डुलानामवह्न्याद्विशुद्ध्ये ॥ सुसलाघातैस्तदसृक् स्रवते योनिमण्डलात् । विरजस्का मन्यमाना स्वे चित्ते तदसृक्क्षयम् ॥ दृष्ट्वा शौचं प्रकुर्वीत पञ्चमृत्तिकया पृथक् । त्रिंशद्विंशतिर्दश च गवां दत्त्वा त्वहः क्रमात् ॥ विप्राणां वचनाच्छुद्धा समारोहेद्हुताशनम् । नारीणां सरजस्कानामियं शुद्धिरुदाहता ॥ अत्र श्राद्धादौ निर्णयः पूर्वमुक्तः ॥

इति श्रीभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धावन्त्यकर्मनिर्णयः ॥

अग्निप्रवेशाशक्तौ तु विष्णुः—'मृते भर्तारि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं च' इति । ब्रह्म-

वैवर्ते—'सहानुगमनं शस्तं वैधव्यस्याथ पालनम् ॥' यत्तु तत्रैव—
अग्निप्रवेशाशक्तौ । 'कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादते ।' इति तद्ब्रह्मचर्याशक्यत्व-

परम् । तथा च मनुः—'ब्रह्मचर्यं चरेद्वापि प्रविशेद्वा हुताशनम् ।' काशीखण्डेपि—'पत्यौ-मृतेऽपि या योषिद्वैधव्यं पालयेत्कचित् । सा पुनः प्राप्य भर्तारं स्वर्गलोकं समश्नुते ॥ अनुयाति न भर्तारं यदि दैवात्कथंचन । तत्रापि शीलं संरक्षेच्छीलमङ्गात्पतत्यधः ॥ तद्वै गुण्यादपि स्वर्गात्पतिः पतति नान्यथा । तस्याः पिता च माता च भ्रातृवर्गस्तथैव च ॥'

अथ विधवाधर्माः । मदनरत्ने स्कान्दे—'विधवाकबरीबन्धो भर्तृबन्धाय जायते । शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा ॥ एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः

कदाचन । मासोपवासं वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा ॥ पर्यंकशायिनी
विधवाधर्माः । नारी विधवा पातयेत्पतिम् । नैवाङ्गोद्धर्तनं कार्यं स्त्रिया विधवया क्वचि-

त् ॥ गन्धद्रव्यस्य संभोगो नैव कार्यस्तथा पुनः । तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुस्तिलकुशोदकैः ॥ तत्पितुस्तपितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम् ॥ इदमपुत्रापरमिति मदनपारिजातः । 'नाधिरोहेदनङ्गाहं प्राणैः कण्ठगतैरपि । कंचुकं न परीदध्याद्वासो न विकृतवसेत् ॥ वैशाखे कार्तिके माघे वशेषनियमं चरेत् ॥' प्रचेताः—'ताम्बूलाभ्यञ्जनं च कांस्यपात्रे च भोजनम् । यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥' श्राद्धादौ तु विशेषप्रागुक्तः । यत्तु बौधायनः—'संवत्सरं प्रेतपत्नी मधु मांसं विवर्जयेत् । अधः शयीषण्मासानिति मौद्गल्यभाषितम् ।' इति तदसवर्णापरमित्यपरार्कः ॥

यदि चेतस्था ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्ब्रह्मनादा । अथ पुनरव्रती
 वास्त्रातको वोत्सन्नाग्रको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् । इ
 'प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्याद्वा प्रव्रजेद्वा गृहादपि । वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो
 तः ॥' आतुरो मुमूर्षुः । दुःखितश्चौरव्याघ्रादिभीतः । भारते—'आतुराणां च
 विधिर्नैव च क्रिया । प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत् ॥' जाबाल
 'यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत् ।' इति । अत्र विप्रस्यैवाधिकारः
 प्रव्रजन्ति' इति जाबालश्रुतेः—'आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजे
 मनूक्तेश्चेति विज्ञानेश्वरादयः । वृद्धयाज्ञवल्क्योपि—'चत्वारो ब्र
 आश्रमाः श्रुतिचोदिताः । क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वेको वैश्यशूद्रयोः
 माधवस्तु—'ब्राह्मणः क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा प्रव्रजेद्ब्रह्मात् ।' इति कौर्म
 स्याप्यधिकारः । पूर्ववाक्यं तु काषायदण्डादिनिषेधार्थम् । 'मुखजानामय
 ण्णोर्लिङ्गधारणम् । राजन्यवैश्ययोर्नैति दत्तात्रेयमुनेर्वचः ॥' इति बौध
 पक्षान्तरमाह । तत्त्वं तु कुटीचकादिपरमेतदिति । योपि 'संन्यासं पलपैतुक
 निषेधः सोपि त्रिदण्डादिपर इत्युक्तं प्राक् ॥

स च संन्यासश्रुतुर्धेत्याह हारीतः—'कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृती
 परमो हंसो यो यः पश्चात्स उत्तमः ॥' आद्यः पुत्रादिना कुटीं कारयित्वा
 वसन् काषायवासाः शिखोपवीतत्रिदण्डवान् बन्धुषु स्वगृहे वा भुञ्जान आत
 एतदत्यन्ताशक्तपरम् । द्वितीयस्तु बन्धून्हित्वा सप्तागाराणि भैक्षं चरन्
 स्यात् । हंसस्तु पूर्वोक्तवेषोप्येकदण्डः । 'एकं तु वैणवं दण्डं धारयेन्नित्यं
 इति स्कान्दात् । विष्णुरपि—'यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम्
 ग्रहं प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः ॥' चतुर्थोपि स्कान्दे—'परहंसस्त्रिदण्डं च
 लनिर्मिताम् । शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्म परित्यजेत् ॥' अयमप्ये
 ये तु शिखोपवीतादित्यागनिषेधास्ते कुटीचकादिपराः । यत्तु मेधाति
 स्युस्त्रयो दण्डास्तावदेकेन वर्तयेत् ।' इति । तदपि तत्परमेव । यच्चा
 भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः ।' इति तद्वादण्डादिपरम् न यष्टिप
 ण्डोथ मनोदण्डः कर्मदण्डस्तथैव च । यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी
 इति मनूक्तेः । तस्मात्परमहंसस्यैकदण्ड एव ॥ सोप्याविदधः । विदधस्य

दण्डः' इति वाक्यशेषाच्च । यत्तु यमः—'काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः । स याति नरकान् घोरोन् महारौरवसंज्ञितान् ॥' इति तद्वैराग्यं विना जीवनार्थसंन्यासपरम् । 'एकदण्डं समाश्रित्य जीवन्ति बहवो नराः । नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते ॥' इति स्पृतेः यच्चाश्वमेधिके—'एकदण्डी त्रिदण्डी वा शिखामुण्डित एव वा । काषायमात्रसारोऽपि यतिः पूज्यो युधिष्ठिर ॥' इति । तस्यापि पूर्वोक्तव्यवस्था ज्ञेया ॥

अथ तद्विधिः । बौधायनः—'कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि पित्रादिभ्योऽष्टकं पृथक् ।

संन्यासविधिः ।

वापयित्वा च केशादीन् मार्जयेन्मातृका इमाः ॥' सर्वाणीति स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धादि कृत्वेत्यर्थः । स्मृत्यर्थसारेऽपि—'एकोद्दिष्ट-

विधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश । अग्निमान्पार्वणेनैव विधिना निर्वपेत्स्वयम् ॥' इति । कात्यायनः—'कृच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी । आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां व्रजेत् ॥' बौधायनः—'सदैवमार्षकं दिव्यं पित्र्यं मातृकमानुषे । भौतिकं चात्मनश्चांते अष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् ॥' अत्र क्रममाह हेमाद्रौ शौनकः—'देवश्राद्धं ब्रह्मविष्णु हेश्वरा देवताः । आर्षे देवर्षिर्ब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयः देवर्षिक्षत्रर्षिर्मानुष्यर्षयो वा ॥' मरीच्यादिषु इति संन्यासपद्धतौ तच्चिन्त्यम् । दिव्ये वसुरुद्रादित्याः मानुषे सनकसनन्दनसनातनाः । भूतश्राद्धे पृथिव्यादिभूतानि चक्षुरादिकरणानि चतुर्विधो भूतग्रामश्चेति तिस्रः । पित्र्ये पित्रादित्रयो मातामहाश्च । मातृके मात्रादयस्त्रिस्तिस्रः । आत्मश्राद्धं आत्मपितृपितामहा देवताः । आत्मश्राद्धं परमात्मदैवत्यमिति संन्यासपद्धतौ । तच्चिन्त्यम् । सर्वत्र च नान्दीमुखत्वं विशेषणं ज्ञेयम् । सर्वत्र पिण्डदानम् । युग्मा विप्राः । दक्षक्रतू सत्यवसू वा विश्वेदेवौ । अन्यन्नान्दीश्राद्धवादिति हेमाद्रिः । स्मृत्यर्थसारे—'केशश्मश्रुलोमनखं वापयित्वोपकल्पयेत् । दण्डं जलं पवित्रं च शिष्यं पात्रं कमण्डलुम् ॥' आसनं कौपीनमाच्छादनं कन्थां पादुके इति दश पञ्च वा । एतच्च पूर्वद्युर्नान्दीमुखं कृत्वा परेद्युः पुण्याहवाचनं कृत्वा कार्यमिति शौनकः ॥

बौधायनः—'त्रीन्दण्डानङ्गुलीस्थूलांश्चैणवान् मूर्धसंमितान् । एकादशनवद्वित्रिचतुःसप्तान्यपर्वकान् ॥ वेष्टितान् कृष्णगोवालरज्ज्वा तु चतुरङ्गुलान् । एको वा तादृशो दण्डो गोवालसदृशो भवेत् ॥ अनग्निरग्निमुत्पाद्य नित्येन विधिना ततः ॥' पृष्ठो दिवि विधानेनेत्यर्थः । 'स्वाग्नावेवाग्निमान् कुर्यादपवर्गोक्तमादितः । आज्यं पयो दधीत्येतत्त्रिवृद्धा जलमेव वा ॥ ॐभूरित्यादिना प्राश्य रात्रिं चोपवसेत्ततः । अथादित्यास्तमया-

प्राजापत्यामथापि वा ॥' जाबालश्रुतौ- 'तद्वैके प्राजापत्यामेवेष्टिं कुर्वन्ति
तथा न कुर्यादाग्नेर्यामेव कुर्यात्पश्चात् त्रैधातवीयामेव कुर्यात्' इत्युक्तम् । तेनात्र विकल्पः
अत्राहुः- 'त्रेताग्नेः प्राजापत्या । तद्वाक्यशेषेऽग्नीनिति बहुत्वश्रुतेः । 'एकाग्नेस्त्वाग्ने
इति । अनाहिताग्नेरिष्टस्थाने वैश्वानर आग्नेयो वा चरुरिति माधवः । कात्यायनः
'आत्मन्यग्नीन्समारोप्य वेदिमध्यस्थितो हरिम् । ध्यात्वा हृदि त्वनुज्ञातो गुरुणा प्रैषम
येत् ॥' कपिलः- 'विधिवत्प्रेषमुक्त्वाथ त्रिरुपांशु त्रिरुच्चकैः । अभयं सर्वभूतेभ्यो म
स्वाहेत्यधो भुवि ॥ निनीय दण्डशिक्यादि गृहीत्वाथ बहिर्ब्रजेत् ॥' बौधायनः- 'स्
मेत्यादिना दण्डं येन देवाः पवित्रकम् । यदस्य पारे शिक्यं तु पात्रं व्याहृतिभिस्तथा
युवासुवासाः कौपीनं गृहीत्वा बान्धवांस्त्यजेत्' ॥

अथ क्रमः ॥ तत्र संन्यासेऽधिकारसिद्धयर्थं स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धसपिण्डना
साग्निः पार्वणान्यनग्निस्त्वेकोदिष्टविधिना कृत्वाऽनाश्रमी चेत्कृच्छ्रचतु
संन्यासग्रहणक्रमः ।
यम् । अन्यस्तु तत्कृच्छ्रं कृत्वोदगयने एकादश्यां द्वादश्यां
साग्निरमावास्यायां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां वा यथा पर्वणि प्राजापत्यं स्यात्
तत्र देशकालौ स्मृत्वा परमहंसादिसंन्यासग्रहणं करिष्ये इति संकल्प्य गणेशं संपूज्य
पुण्याहं वाचयित्वा मातृकापूजां वृद्धिश्राद्धं च कृत्वाऽस्तमयात्प्रागौपासनं समिध्याहित
ग्रिस्तु गार्हपत्यं, विधुरोऽग्निहोत्री तु त्रिकाण्डमण्डनोक्तदिशा कुशपत्न्या सह पवम
नेष्ट्यन्तं पूर्णाहुत्यन्तं वाधानं कुर्यात् । ब्रह्मचारी चेलौकिके विधुश्चेद्याहृतिभिः प्रणो
चाग्निमाध्यान्वाग्निरुषसामित्यानीय पृष्ठोदिवीति निधाय तेनैव समिध्य तत्सवितुः,
सवितुः, विश्वानि देव इति तिस्रः समिधोऽभ्यादध्यात् । एवमग्नौ सिद्धे कक्षोपस्थवज्र
वपनं कृत्वा पयोदधियुतमाज्यमपो वा ॐ भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यमि
प्राश्याचम्य पुनरादाय ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहीति द्वितीयं
ॐ स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयादिति तृतीयम्, समस्तया चतुर्थम्, ॐ भूः
वः स्वः सावित्रीं प्रविशामि । तत्सवितुः यात् इति । संन्यासपद्धतौ तु त्रिवृदसीति
प्रथमं, प्रवृदसीति द्वितीयं, विवृदसीति तृतीयं प्राश्यापः पुनन्त्विति जलं प्राश्य सावित्रीं
वेश उक्तः । तत आहवनीयं विहृत्य ब्रह्माणमुपवेश्याज्यं संस्कृत्य चतुर्द्वादश वा गृहीत्वा
समित्पूर्वमोस्वाहा परमात्मन इदमिति हुत्वोपवसेत् । ततः सायं होमं वैश्वदेवं च कृत्वा
अग्नेरुदकुशानास्तीर्य दण्डादीनि दश पञ्च वासाद्य ब्रह्मासने कृष्णाजिनोपविष्टो राज
जागमं कृत्वा प्रातर्होमानन्तरं गन्तव्यं तत्रैतद्विधिः

भोज्य पुण्याहं वाचयित्वा अत्र वा वपनं कृत्वा हैमरूप्यकुशजलैः । स्नात्वा पुरुषाय च कृत्वा प्राणाय स्वाहेति पञ्चाज्याहुतीर्हुत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्य चरुं च जुहुयात् ।

अत्र विरजाहोमं केचिदाहुः । यथोक्तं शिवगीतासु—‘जुहुयाद्विरजामन्त्रैः प्राणा पानादिभिस्ततः । अनुवाकान्तमेकाग्रः समिदाज्यचरुन्पृथक् ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप याते अग्रेति मन्त्रतः । भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् ॥ पापैर्विमुच्य सत्यं मुच्यते नात्र संशयः ॥’ यथा—‘प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं११ स्वाहा ॥’ सर्वत्र लिङ्गोक्तदेवताभ्य इदमिति त्यागः वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकृतिसंकल्पा मे शुध्यन्तां ज्योति० । त्वक्चर्ममं सरुधिरमेदोमज्जास्नायवोस्थीनि मे शुध्यन्तां ज्योति० । शिरः पाणिपादपार्श्वपृष्ठोरुद जंघशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं० । उत्तिष्ठपुरुष हरितपिंगललोहिता देहिदेहि ददापयिता मे शुध्यन्तां ज्योति० । पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशो मे शुध्यन् ज्योति० । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्तां ज्योति० । मनोवाक्का कर्माणि मे शुध्यन्तां ज्योति० ॥ अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योति० । आत्मा शुध्यताम्० । अन्तरात्मा मे शुद्ध्यतां० । परमात्मा मे शुद्ध्यतां० । भुवे स्व क्षुत्पिपासाय स्वाहा । विविधै स्वाहा । ऋग्विधानाय स्वाहा । कषोत्काय स्वाहा । क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामालक्ष्मीं नाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान्निर्णुद पाप्मानं ५ स्वाहा ॥ अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयमात्मा मे शुध्य ज्योति० । ततः स्विष्टकृदादि हुत्वा ब्रह्मणे हिरण्यमाज्यपात्रं धेनुं च दत्त्वा स सिञ्चत्वित्युपतिष्ठेत् ॥ अत्र केचिदनग्रेः सावित्रीप्रवेशं पूर्णाहुतिं चाहुः ॥

ततो याते अग्रे यज्ञिया तनूरिति तिसृभिरेकैकं जिघ्रन्नात्मन्यग्नीन् समारोप्य शु सर्वस्वं दत्त्वा ‘यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च ग्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमा बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये’ इत्युपस्थाय दक्षिणं जान्वाच्य पादाबुपसंगृह्या हि भगवो ब्रह्मेति वदेत् ॥ ततो गुरुरात्मानं ब्रह्मरूपं ध्वात्वा शंखं द्वादशप्रणवैरभिम तेन शिष्यमभिषिच्य शन्नो मित्र इति शान्तिं पठित्वा तच्छिरसि हस्तं दत्त्वा पुरुषस जप्त्वा मम व्रते हृदयं ते दधामीति च जप्त्वोदङ्मुखः प्रणवार्थमनुसंदधदक्षिणे व प्रणवमुपदिश्य तदर्थं च पञ्चीकरणाद्यवबोधय, अयमात्मा ब्रह्म तत्त्वमासि, प्रज्ञानं ब्र त्याद्युपदिशेत् ॥ तदर्थं च वदेत् ॥ ततो नाम दद्यात् ॥ ततः शिष्यस्तेनोपदिष्टो

क्षिप्त्वा, युवा सुवासा इति काषायं कौपीनं वासश्च पारधाय, सखे मां गोप
वैष्णवं पालाशं बल्लमौदुम्बरं वा दण्डं गृह्णीयात् । अत्र पुत्रकामो गृहस्थः श
सूक्तेन दण्डमभिषिच्य दद्यादित्याचारः । ततः शिखामुत्पाट्य ॐभूः स्वा
वा हुत्वा, तथैवोपवीतं हुत्वा, येन देवाः पवित्रेणेति जलपवित्रं, यदस्य पार
सावित्र्या कमण्डलुं, सप्तव्याहतिभिर्भोजनपात्रमिदं विष्णुरित्यासनं वृसीं च व
ॐभूस्तर्पयामीति व्यस्तसमस्ताभिर्महर्नम इति तर्पयित्वा, ॐभूः स्वधो सुव
स्वधो भूर्भुवः स्वर्महर्नमः स्वधेति पितृस्तर्पयित्वा, उदुत्यं चित्रं तच्चक्षुर्हंसः
मित्रस्येति स्नात्वा सुरभिर्मतीभिरापोहिष्ठेति हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिर्व
मार्जयित्वा अष्टोत्तरशतवारमधमर्षणं प्राणायामांश्च कृत्वा, ॐभूर्भुवः सुवारिति
नमः सवित्र इति सूर्यं चोपस्थाय, पुनः स्नात्वा जंघे क्षालयित्वा, ओमिति
सर्वभोमिति ब्रह्म वा एष ज्योतिर्य एष वेदो य एष तपति वेद्यमेवैतद्य एष वेदो
स्तीति जपित्वा, अष्टसहस्रं गायत्रीं जपेदिति ॥

अथ यतिधर्माः । प्रातरुत्थाय ब्रह्मणस्पते इति जपित्वा, दण्डादीनि मृ

मूत्रपुरीषयोगृहस्थचतुर्गुणं शौचं कृत्वाऽऽचम्यपर्वद्वादशीव
यतिधर्माः । दन्तधावनं कृत्वा तेनैव मृदा बहिः कटिं प्रक्षाल्य जलतर्पण

जंघे प्रक्षाल्य वस्त्रादीनि गृहीत्वा मार्जनान्तं कृत्वा केशवादिनमोन्तनामभि
ॐभूस्तर्पयामीत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहतिभिर्महर्जनस्तर्पयामीति तर्पयेत् । ॐ
स्वाहाशब्दांतैस्स्वधाशब्दान्तैश्चैभिरेव पुनस्तर्पयेदिति केचित् । तत आच
प्रणवेन जलमादाय व्याहतिभिरुद्धृत्य गायत्र्या त्रिः क्षिप्त्वा गायत्रं
उदिते सूर्ये प्रणवेन व्याहतिभिर्वाह्यं त्रिर्दत्त्वा मित्रस्य चर्षणीत्याद्यैः पूर्वोक्त
विष्णुस्त्रिर्देवो ब्रह्मजज्ञानमिति चोपस्थाय, सर्वभूतेभ्यो नम इति प्रदक्षिणमा
नत्वा, आदित्याय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयादिति
एवं त्रिकालं विष्णुपूजां ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात् ॥

अथ भिक्षा । 'विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । कालेऽपर

भिक्षा ।

नित्यं भिक्षां यतिश्चेरत्' इत्युक्ते काले उदयमिति चतसृ
पस्थाय, तेनैक्यं ध्यात्वा । आकृष्णेनेति प्रदक्षिणं कृत्वा 'ये
इति जप्त्वा वा 'योसौ विष्णुर्वारव्य आदित्ये पुरुषोऽन्तर्हृदि स्थितः । सोह

मुक्ता प्रणवेन षोडश प्राणायामान्कुर्यादिति संक्षेपः ॥ गौतमव्याख्यायां भृगु
‘यतिहस्ते जलं दत्त्वा भैक्ष्यं दद्यात्पुनर्जलम् । भैक्ष्यं पर्वतमात्रं स्यात्तज्जलं सागरोपमम्
अत्र सर्वत्र मूलं माधवापरार्कमदनरत्नस्मृत्यर्थसारादौ ज्ञेयम् ॥

कण्वः—‘एकरात्रं वसेद् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् । वर्षाभ्योन्यत्र वर्षासु मास
चतुरो वसेत् ॥’ जाबालश्रुतौ—‘शून्यागारे देवगृहतृणकुटीवलमीकवृक्षमूलकुलाल
लाग्निहोत्रगृह्नदीपुलिनगिरिकुहरनिर्झरस्थण्डिलेष्वनिकेतनः’ इति । मात्स्ये—‘३
मासान्विहारः स्याद्यतीनां संयतात्मनाम् । एकत्र चतुरो मासान् वार्षिकान्वसेत्पुन
अविमुक्तप्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते ॥’ अत्रिः—‘भिक्षाटनं जपं स्नानं ध
शौचं सुरार्चनम् । कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदंडवत् ॥ मन्त्रकं शुक्लव
स्त्रीकथा लौल्यमेव च । दिवास्वापं च यानं च यतीनां पतनानि षट् ॥ आसनं प
लोमश्च संचयः शिष्यसंग्रहः । दिवास्वापो वृथाजल्पो यतेर्बन्धकाराणि षट् ॥’ दक्ष
‘नाध्येतव्यं न वस्तव्यं न श्रोत्रव्यं कथंचन । यतिपात्राणि मृद्रेणुदावर्लालुम
च’ मदनरत्ने अत्रिः—‘पित्रर्थं कल्पितं पूर्वमन्त्रं देवादिकारणात् । वर्जयेत्त
भिक्षां परवाधाकर्त्री तथा ॥’ बृहस्पतिः—‘न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवा
यतिः । नचाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत् ॥’ एतद्वेदार्थभिन्नपरम् । अ
‘स्नानं सुरार्चनं ध्यानं प्राणायामो बलिस्तुतिः । भिक्षाटनं जपः सन्ध्या त्याग
र्मफलस्य च ॥’ एते यतिधर्मा इत्यर्थः । अन्येऽपि माधवमिताक्षरादौ ज्ञेय
यतिधर्मसमुच्चये—‘न स्नानमाचरोद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते । पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स
शुद्ध्यति साम्बरः ॥’

अथ यतिसंस्कारः । स्मृत्यर्थसारे—‘संन्यसेद्ब्रह्मचर्याद्वा संन्यसेच्च गृहाद
वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखितः ॥ आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रि

प्रेषमात्रं च संन्यास आतुराणां विधीयते ॥ उत्पन्ने संकटे घोरे चौ
यतिसंस्कारः । प्रादिगोचरे । भवभीतस्य संन्यासमंगिरा मनुरब्रवीत् ॥ यद

स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेद्विजः ।’ इति जाबालश्रुतिः । ‘आतुराणां च सं
न विधिर्नैव च क्रिया । प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र कारयेत् । संन्यस्तोऽ
ब्रूयात्सवनेषु त्रिषु क्रमात् । त्रिवारं च त्रिलोकात्मा शुभाशुभसुधाद्रवे ॥ यत्किंचिद्ब्र
कर्म कृतमज्ञानतो मया । प्रमादालस्यदोषाद्यत्तत्संत्यक्तवानहम् । एवं संत्यज्य भू

च । कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत् ॥' विष्णुः-‘एकरात्रोषितस्या
गतिरुच्यते । न सा शक्या गृहस्थेन ब्रातुरोपि च संन्यसेत् ॥ संन्यस्तमिति यो ब्रू
कंठगतैरपि । न तत्क्रतुशतैः पुण्यं प्राप्तं शक्नोति मानवः ॥' मनुः-‘यो दत्त्वा
प्रव्रजत्यभयं गृहात् । तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥' अथ श्रौ
विलंबितस्य प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूजयेत् ।' इति । अत्र मात्रत्वोपस
कलापाव्यापकत्वेनाप्युपपत्तौ कर्तुर्यागत्यागकलापव्यावृत्तस्यैकत्वानुपपत्तेः ।
दीश्राद्धविरजाहोमादिकर्तुमशक्तस्यातुरस्य विद्यमानाग्नेरिष्टदेवतायै पूर्णाहुतिं हु
स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति आहवनीये दारुमयानि पात्राणि प्रज्वालय मृन्म
प्रक्षिप्य समाप्तिं च मरुत इत्युपस्थाय याते अग्ने इत्यनेन हस्तं प्रताप्य आत्मन्य
रोप्य सर्वप्रायश्चित्तपूर्वकं सप्तपंचकेशान् विसृज्य वापयित्वा यथाविधि स्नात्वा
संन्यासं कुर्यात् ॥

अथातुरसंन्यासविधिः । अपां समीपे गत्वा तिथ्याः स्मरणपूर्वकं स्न
वन्दनादि कृत्वा देशकालौ संकीर्त्य ममाशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानन्दप्राप्तिपर
प्राप्तये च परमहंससंन्यासं करोमीति संकल्पयेत् । तत्र प्रधानानि । प्रेषोच्चारण
महावाक्यानि । ततः संन्यासोचितं क्षौरं कृत्वा पूर्ववत्सप्तपंचकेशान् विसृज्य स्ना
पात्रेण तोयमादाय उपस्पृश्य दक्षिणेन पाणिनाऽप्सु जुहोति । एष वोग्नेर्योनि
गच्छ स्वाहा इति प्रथमाहुतिः । आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवैनं देवताम्यं
स्वाहा इति द्वितीया । ततो हुतशेषं आशुःशिशां इत्यनुवाकेनाभिमन्त्र्य पुत्रेष्
षणा लोकेषणा मया त्यक्ता स्वाहेति प्रथमां पिबेत् । ॐ ॐ भूर्भुवः स्वरोम मया
स्वाहेति द्वितीयां पिबेत् । अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति तृतीयां पिबेत् । त
यमंजलिपूर्णमादाय प्रागादिदिक्षु प्रत्येकं निनयेत् । ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि
सावित्रीं प्रवेशयामि, ॐ स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि, ॐ भुवः स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि
सावित्रीप्रवेशं कृत्वा अथोद्ध्रवाहुः सूर्याभिमुखो भूत्वा ॐ भूः संन्यस्तं मया
संन्यस्तं मया ॐ स्वः संन्यस्तं मया, ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मयेति प्रेषोच्चारं
एवं मंद्रमध्येचैस्त्रिरुक्त्वा तूष्णीं शिखां निकृत्य स्नात्वाचम्य यज्ञोपवीतमुद्धृत्य
गृहीत्वा भूः स्वाहेति अप्सु हुत्वा दिगंबरो भूत्वा पुत्रेषणा वित्तेषणा लोकेषणातो
हमिति ब्रूयात् । अत ऊर्ध्वं न पुत्रगृहं गच्छेत् । मृते च पुरुषसूक्तेन विष्णुज
षिञ्चाति संस्कारमेव कुर्यात् । एवं विरक्तस्यातुरस्य स्वस्थस्य संन्यासविहिताङ्गे

अयमर्थो विद्वत्संमतः प्रयोक्तव्यः । इत्यातुरसंन्यासः । 'सर्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यान-
योगरतस्य च । न तस्य दहनं कार्यं नाशौचं नोदकक्रिया ॥' तथा—'कुटीचकं तु प्रद-
हेत्प्रूरयेत्तु बहूदकम् । हंसो जले तु निक्षेप्यः परहंसं प्रपूरयेत् ॥' पालाशमूले नदीतीरेषु
न्यत्र वा गन्धपुष्पालंकृतं शवं वाद्यघोषेण नीत्वा दण्डमात्रं व्याहृतिभिः खात्वा सप्तव्य-
हृतिभिस्त्रिः प्रोक्ष्य दर्भानास्तीर्य नवघटे एश्वरत्नोदकं क्षिप्त्वा नारायणः परं ब्रह्मेत्य-
भिमन्त्र्य, तेनैव संस्नाप्याष्टाक्षरेण वस्त्रगन्धपुष्पधूपदीपादीन् दत्त्वा, विष्णो हव्यं रक्ष-
स्वेति शवं गते निधाय 'इदं विष्णुः' इति दक्षिणहस्ते दण्डं 'यदस्य पारे' इति सव-
शिक्यं 'येन देवाः पवित्रेण' इति मुखे जलपवित्रं सावित्र्योदरे पात्रं 'भूमिः श्वभे-
ति गुह्ये कमण्डलुं निधाय 'चित्तिः स्रुक्' इति दशहोत्राभिर्मन्त्रयेदिति विश्वा-
र्शटीकायां स्मृत्यर्थसारे च । बृहच्छौनकस्तु—'यतिं पुरुषसूक्तेन स्नापयित्वा
वटं ततः । प्रणवेनाष्टधारं तं प्रोक्षयेदथ सर्वतः ॥ विष्णो हव्यं रक्षस्वेति यजुषा प्रणवे-
न च । गते प्रेतं विनिक्षिप्य चेदं विष्णुर्विचक्रमे ॥ इति मन्त्रेण दण्डं तु दक्ष-
दक्षिणहस्तके । मूर्धानं भूर्भुवः स्वश्चेत्युक्त्वा शङ्खेन भेदयेत् । गते पुरुषसूक्तेन लवण-
प्रपूरयेत् । सृगालश्वादिरक्षार्थं सम्यग्गतं प्रपूरयेत् ॥ इति । कुटीचकस्य तु दा-
कार्यः । यथा सर्वं प्राग्वत्कृत्वाग्निं प्रज्वालय साप्रेर्दक्षिणकरे उपावरोहेत्यवरोह्य निर्म-
वा गते चितिं कृत्वाग्निनाग्निः समिध्यते इत्याग्निं दत्त्वा सावित्र्या प्रणवेन वा दहेत् । त-
ष्टशतं प्रणवं नारायणः परं ब्रह्मेति जप्त्वा सशिरःप्रणवव्याहृत्या गायत्र्या तदस्यास्य
तीर्थं क्षिप्त्वा स्नानाच्छुचिः । नास्यान्यदौर्ध्वदेहिकम् । 'त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं
जायते ।' इति उशनसः स्मृतेः । 'एकादशेहि पार्वणं तदपि त्रिदण्डिनः । हंसपर-
सादीनां पार्वणादि किमपि न कार्यम्' । इति शूलपाणिः श्राद्धचिंतामणौ द-
त्रेयः—'एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् । न कुर्याद्धार्षिकादन्यद्ब्रह्मभि-
भिक्षवे ॥' प्रेतक्रिययैकोद्दिष्टनिषेधे सिद्धे पुनस्तद्ग्रहणमादिकपरम् । तेन तत्-
णमेवम् । त्रिदण्डिनां द्वादशे नारायणबलिः । तद्विधिरन्यश्च विशेषः प्रागुक्त इ-
वहुना ॥

एवं निरूपितमिदं गहनं तु धर्मतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् ॥
तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोस्मि तेषु ॥ १ ॥

मया सद्वासद्वा यदिह गदितं मन्दमतिना ॥

किमेतच्छक्यं बाध्यवसितुमपि स्वल्पमतिना ॥

उत्तेनं रतिकन्तिद्विनिमित्तं विस्मयानमदिमा ॥

श्रीभट्टरामेश्वरसूरिसूनुश्रीभट्टनारायणसूरिसूनोः ॥

श्रीरामकृष्णस्य सुतः कृतीमं व्यधानिबन्धं कमलाकराख्यः ॥ ४ ॥

नानानिर्णयवत्त्वान्निर्णयसिन्धुः प्रोच्यतां विबुधाः ॥

निर्णयसरोजवत्त्वान्निर्णयकमलाकरोप्यस्तु ॥ ५ ॥

वसुक्रतुक्रतुभूमिते १५६८ गतेऽब्दे नरपतिविक्रमतोथ याति रौद्रे ॥

तपसि शिवतिथौ समापितोयं रघुपतिपादसरोरुहेऽर्पितश्च ॥ ६ ॥

जगति सकलविद्यासिन्धुमुष्टिंधयानां

परभणितिपरीक्षा युज्यते सज्जनानाम् ॥

तदिह मम निबन्धे दूषणं भूषणं वा

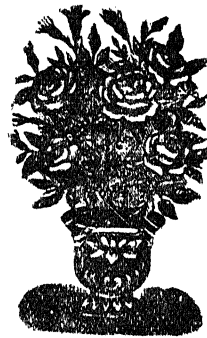
यदि भवति विदग्धैस्तद्धचवश्यं विमृश्यम् ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणश्रमिद्रामेश्वरभट्टसूरिसूनुनारायणभट्टसूनु

न्मुकुटहीराङ्कुरश्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते-

निर्णयसिन्धौ तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ३ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।



कथ्यपुस्तकानि (धर्मशास्त्रग्रंथाः)

नाम,

की. रु. उ

मनुस्मृति—सटीक कुल्लुकभट्टकृत संस्कृतटीकासहित ... १॥

मनुस्मृति—सान्वय भाषाटीकासहित इसमें भगवान् मनुर्जीके कहे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंके यथोचित धर्म और गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमके कर्म और राजाओंके, नीतियुक्त, प्रजापालन और अधर्मियोंके दंड इत्यादिका निर्णय आशौच निर्णय आदि अनेक विषयसंयुक्त है ग्लेज कागज ...

” तथा रफ्

याज्ञवल्क्यस्मृति—पं० मिहिरचंद्रकृत मिताक्षरा नाम पद योजना भावार्थ और तात्पर्यार्थ टिप्पणी तथा भाषाटीकासहित जिसमें आचाराध्याय, व्यवहाराध्याय, प्रायश्चित्ताध्याय आदि तीन अध्यायोंमें राजाओंके नीतियुक्त प्रजापालन करनेके धर्म और अधर्मियोंके दंडदेने और ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके और गृहस्थादिचारों आश्रमके धर्म और व्रतादिकोंके धर्म इत्यादि अनेकविषयसे संयुक्त है ...

अष्टादशस्मृति—मूलमात्र उपरोक्तविषयमें सर्वधर्मनिरूपणाकिया गया है... ..

” तथा भा० टी० छपके तयार है.... ..

बृहत्पाराशरस्मृति—धर्मनिरूपणका अपूर्व ग्रंथ है

पाराशरस्मृति—उत्तरखंड इसमें रामानुज संप्रदायके तत्तचक्रांकितमुद्रा और वैष्णवोंका धर्म लिखा गया है

‘जयसिंहकल्पद्रुम’—मूलमात्र (धर्मशास्त्र ग्रन्थ) यह ग्रन्थ जयपुर महाराज ‘श्रीजय-

सिंहजी’ की आज्ञासे सम्राट् पौंडरिक याजी ‘श्रीरत्नाकर दीक्षितजी’ ने निर्माण किया है । परोपकार शिरोमणि इन महाशयोंने यह ऐसा उपकार किया है कि जो वाणीके अगोचर है अर्थात् कथन नहीं किया जा सकता, क्योंकि निर्णयसिंधु आदि धर्मशास्त्र ग्रंथोंमें तो निर्णय होनेपर भी संदेह ही रह जाता है और इसमें तो हेमाद्रि, मदनरत्न, माधवीय, विष्णुधर्मोत्तर, दीपिका, गृह्यपरिशिष्ट, ब्रह्मसिद्धान्त, निर्णयामृत, वसिष्ठसिद्धान्त, स्मृतिसंग्रह, मत्स्यपुराण आदि ग्रंथोंके प्रमाणोंसे और वृद्धवसिष्ठ, वसिष्ठ, विश्वामित्र, पराशर, गौतम, मरीचि,

| नाम. | क्री. रु. अ. |
|--|--------------|
| निर्णयामृत—मूलमात्र बारहोंमासके तिथिव्रत, श्राद्धादिका निर्णयहै ... | २) |
| धर्मसिंधु—मूलमात्र | २) |
| धर्मसिंधु—पं० मिहरचन्द्रजीकृत भाषाटीका समेत इसके तनि परिच्छेद हैं और संक्रांति मासतिथि आदिका सामान्यनिर्णय, चैत्रादिबारहों मासोंमें आनेवाली तिथियोंके व्रतादिका निर्णय गर्भाधानादि सोलह संस्कारोंका विधान आदिक विधि देवप्रतिष्ठादि श्राद्धविचार आशौचनिर्णय आदि कहागया है । ... | ६) |
| निर्णयसिंधु—टिप्पणीसहित अत्युत्तम ग्लेज | २॥) |
| ” ” तथा रफू कागज | २॥) |
| निर्णयसिंधु—पं० ज्वालाप्रसादजीकृत भाषाटीका सहित इसमें तिथिव्रत, व्रतोंका उद्यापन इत्यादिका निर्णय लिखागया है धर्मसिंधुके समस्त विषय इसमें हैं निर्णय विषयमें इससे उत्तम दूसरा ग्रंथ नहीं है ग्लेज | ६) |
| ” ” तथा रफू | ९) |
| स्मृतिरत्नाकर—धर्मनिरूपण, आदिक अभ्युक्षणादि सप्रमाण निर्णय ... | २) |
| धर्मप्रदीप—सप्रमाण बारह मासके तिथ्यादि निर्णय | १) |
| विवादार्णवसेतु—इसग्रंथमें ऋणदान निक्षेप अस्वामिविक्रय संपूर्णसमुत्थान दत्तप्रदानिक व्रतनादान संविद्व्यतिक्रम क्रमविक्रमानुशय स्वामिपालविवाद सीमाविवाद दंड-पारुष्य वाक्पारुष्य स्तेयसाहस ह्रींसंग्रह ह्रीपुंर्धर्मविभाग द्यूतआह्वय इत्यादि विवाद लिखे गये हैं | २) |
| विवादचिन्तामणि—इसग्रंथमें ऊपरके ग्रंथानुसार व्यवहारादि प्रकारान्तरसे विषयहैं ... | १॥) |
| व्रतराज—टिप्पणीसहित अतिउत्तम जिसमें वर्षभरकी तिथियोंके व्रतोद्यापन और प्रत्येक व्रतोंकी कथा है ग्लेज | ३॥) |
| ” तथा रफू | २॥) |
| प्रायश्चित्तनिर्णय—अग्निपुराणोक्तः | ≡) |
| प्रायश्चित्तैदुशेखर—नानाविध प्रायश्चित्तोंका निर्णय | ॥) |
| अधिमासपरीक्षा | १) |